आत्मनेपद्

'बंगला-साहित्य में राजस्थान' शोध-प्रबन्ध के प्रथम खण्ड को विद्वानों और सुहृदय पाठकों ने जिस आत्मीयता और स्नेहिल प्रेम से अपनाया, उससे उत्साहित होकर द्वितीय खण्ड सुधी-विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है।

प्रसन्नता है कि कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' प्रथम खण्ड को पी-एच० डी० के समतुल्य स्वीकृति प्रदान कर (Published research work equivalent to Ph. D.) मुझे रीडर (Reader) पद पर पदोन्नत किया है।

शोध-प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में तीन अध्याय समाविष्ट हैं—यथा 'बंगला नाटकों में राजस्थान', 'बंगला उपन्यासों में राजस्थान' तथा 'बंगला कहानियों में राजस्थान'। प्रथम खण्ड में विषय प्रवेश के रूप में 'इतिहास का गवाक्ष' एवं 'बंगला काव्यों में राजस्थान' शीर्षक दो अध्याय हैं। इस प्रकार कुल पाँच अध्यायों में पुस्तक के दोनों खण्ड पूरे हुए हैं। प्रथम खण्ड की भाँति मैंने द्वितीय खण्ड के अध्यायों में बंगला रचनाओं के साथ-साथ हिन्दी और राजस्थानी रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है तथा सन्दर्भ ग्रन्थों का हवाला प्रतिपाद्य विषय के साथ ही दिया है, संख्या सूचक अंक देकर पाद टिप्पणियों में नहीं।

प्रथम खण्ड की तुलना में द्वितीय खण्ड काफी बड़ा हो गया है। इसकी वजह है कि बंगला-साहित्य में टॉड के 'राजस्थान' से उप-कथाएँ लेकर नाटक अधिक लिखे गए। नाटकों के पश्चात उपन्यासों की संख्या भी काफी रही। बंगला-भाषा के मूर्धन्य कवि नाटककार माइकेल मधुसूदन दत्त ने कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय के 'पद्मिनी उपाख्यान', जो बंगला-साहित्य की प्रथम काव्य-कृति है, से प्रभावित होकर टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ का मनोयोग से अध्ययन किया और दुखान्त-नाटक 'कृष्णकुमारी' का प्रणयन किया। यह नाट्य-कृति बंगला भाषा की ही नहीं, अपितु भारतीय वाङ्मय की प्रथम दुखान्त रचना है। इस तथ्य को हमने तथ्य सम्मत आधार पर स्थापित किया है। माइकेल के पश्चात् कई बंगला-रचनाकारों ने नाट्य-विधा पर लेखनी चलाई, जिनमें रवीन्द्रनाथ के अग्रज ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर, महाकवि गिरीश घोष एवं कवि-नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय आदि प्रमुख हैं। हिन्दी क्षेत्र में द्विजेन्द्रलाल राय या डी० एल० राय के नाटकों का हिन्दी-नाट्यकारों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। जिस प्रकार मुगलकालीन ऐतिहासिक नाटकों की रचना में द्विजेन्द्रलाल पारंगत थे, वैसे ही हिन्दी में कवि-नाटककार जयशंकर प्रसाद की नाट्य-प्रणयन में अग्रणी भूमिका थी। प्रसादजी ने भारतीय इतिहास के हिन्दू-

काल को अपने नाटकों में जीवन्त किया। प्रसाद जी की आरम्भिक काव्य-कृति 'महाराणा का महत्व' (१९१४ ई०) पर हमने प्रथम खण्ड के 'बंगला काव्यों में राजस्थान' अध्याय के अन्तर्गत विस्तार से चर्चा की है। जयशंकर प्रसाद के पश्चात कवि-नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने जितने नाटक लिखे, उस दृष्टि से शायद ही हिन्दी के किसी रचनाकार ने नाट्य-कृतियों का प्रणयन किया है। हमने तुलनात्मक अध्ययन में प्रेमीजी के प्राय: सभी ऐतिहासिक नाटकों पर विचार किया है। चूंकि आरम्भ में नाटक कविता में लिखे जाते थे और आचार्यों ने उन्हें दृश्य-काव्य की कोटि में स्थान दिया है। अत: हमने भी प्रसंगानुसार कई काव्य-कृतियों का अध्ययन प्रसंग के अनुसार नाटक अध्याय में किया है।

उपन्यास अध्याय में हमने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक भूदेव मुखोपाध्याय, ऋषि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता रमेशचन्द्र दत्त एवं रवीन्द्रनाथ की अग्रजा स्वर्णकुमारी देवी के उपन्यासों पर विस्तार से चर्चा की है। यद्यपि बंकिम ने कुल १४ उपन्यास लिखे हैं, किन्तु टॉड के 'राजस्थान' को आधार मान कर लिखा गया उनका 'राजसिंह' उपन्यास बंगला-साहित्य की प्रथम ऐतिहासिक-औपन्यासिक कृति है। बंकिम का प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' और अन्तिम उपन्यास 'राजसिंह' 'राजस्थान' ग्रन्थ से प्रभावित हैं। उपन्यास अध्याय में हमने हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री की रचनाओं पर विचार किया है। उल्लेखनीय है कि चतुरसेन शास्त्री ने नाट्य-विधा और कथा-साहित्य पर पुरजोर लेखनी चलाई है। उपन्यास अध्याय में भी प्रसंगानुसार काव्य-कृतियों की चर्चा की गई है। हिन्दी-राजस्थानी के अन्य ऐतिहासिक उपन्यासकारों में श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' एवं श्री एल० एन० बिड़ला की औपन्यासिक कृतियों पर किंचित विस्तार से विचार किया है।

पुस्तक का कलेवर यूँ ही काफी बढ़ गया। इसलिए कहानी अध्याय में गल्प-विधा की महज झाँकी प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार हमने बंगला-साहित्य में 'राजस्थान' के माध्यम से साहित्य की विभिन्न विधाओं पर १९वीं सदी के पुनर्जागरण काल-खण्ड में टॉड के 'राजस्थान' के प्रभाव को दर्शाने की विनम्र चेष्टा की है। हमारा यह प्रयास कितना सटीक और सफल बन पड़ा है, इसका निर्णय विद्वान-पाठक करेंगे। हमने तो बगाल और राजस्थान के बोच आड़ी-टेढ़ी बंसपटियाँ लगाकर एक सम्पर्क-सेतु बनाने का कार्य किया है, जिससे देश की सांस्कृतिक एवं भावनात्मक-एकता को बल मिले। देश के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सम्भवत: ऐसे प्रयासों की नितान्त आवश्यकता है, जिससे राष्ट्रीय भावना को बल मिले और देश की स्वतन्त्रता तथा एकता दृढ़ हो सके।

प्रथम खण्ड के 'आत्मनेपद' में मैंने विस्तार से अपनी बातें स्पष्ट करने की चेष्टा की है, फिर भी कई विद्वान मित्रों और सुधी-समालोचकों के पत्र मुझे प्राप्त हुए हैं। पुस्तक के शीर्षक 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' से कुछ विद्वानों का भ्रमित

होना स्वाभाविक है। सामान्यतः शोध-प्रबन्ध के विषय में और मुद्रित पुस्तक के शीर्षक में थोड़ा अन्तर होता है, किन्तु रचना के मूल प्रतिपाद्य विषय की भावना शीर्षक से आनी जाती है। फिर भी मैंने पुस्तक के शीर्षक 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' के साथ कोष्टक में शोध की विषय सामग्री को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उप-शीर्षक दिया है—'१९वीं शताब्दी के नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में टॉड के 'राजस्थान' का बंगला, हिन्दी तथा राजस्थानी-साहित्य पर प्रभाव'। इस साफगोई के बाद शायद अब शंका की कोई गुँजाइश नहीं रहेगी।

१९वीं शताब्दी के नवजागरण में टॉड के बृहद् ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है, इस तथ्य को बंगला-साहित्य तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया हैं। टॉड के 'राजस्थान' का बंगला-साहित्य पर प्रभाव दर्शाने के महत् उद्देश्य से मैं शोध-कार्य में प्रवृत्त हुआ। १९वीं शताब्दी के नवजागरण में महात्मा टॉड के ग्रन्थ ने भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम को उज्वंसित प्रेरणा देने के लिए राजस्थान के स्वतन्त्रता प्रेमियों के वीर-उदात्त चरित दिए। इससे भारतीय मनीषा उद्बुद्ध हो गई। वस्तुतः 'राजस्थान' की यह बेजोड़ भूमिका थी। फलतः पश्चिम की अंग्रेजी शिक्षा में नव्य-शिक्षित बंगाली साहित्यकारों ने टॉड के 'राजस्थान' को उपजीव्य बना कर प्रचुर मात्रा में साहित्य-सृजन किया। इन बंगला रचनाओं का आधुनिक भारतीय भाषाओं पर भी प्रभाव पड़ा और अनायास ही 'राजस्थान' का प्रभाव सारे देश में फैल गया। इस वास्तविकता को हमने भारतीय भाषाओ के कुछ रचनाकारों और उनकी कृतियों का विवरण प्रथम खण्ड में देकर प्रमाणित करने की कोशिश की है। यद्यपि परवर्ती काल मे टॉड के ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजस्थान' पर कई इतिहासकारों ने अनैतिहासिकता के प्रश्न उठाये, किन्तु उस काल-खण्ड में इतिहास के अभाव में टॉड साहब का ग्रन्थ ही राजस्थान के वीर-चरित्रों को जानने का एकमात्र स्रोत था। इस वास्तविकता को दिखाना शोध-कार्य का लक्ष्य रहा है। बंगला-साहित्य के साथ हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं के साहित्य पर टॉड के ग्रन्थ के प्रभाव का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर मैंने एक दुस्साध्य कार्य करने की चेष्टा की है। हिन्दी मे इस दिशा मे शोध-कार्य का नितान्त अभाव था। मैंने अपनी अल्पज्ञता और अधूरे ज्ञान के आधार पर एक पगडण्डी बनाई है, भावी शोधकर्त्ता राजमार्ग का रूप देंगे, ऐसा विश्वास है।

भारत की वीर-भुजा राजस्थान ने ऐसे वीरों और वीरांगनाओ को पैदा किया, जिन्होंने देश-भक्ति का अनूठा दृष्टान्त उपस्थित किया। ऐसी वीर प्रसविनी मरुधरा के प्रति महामना टॉड का तथा बंगला साहित्यकारों का आकर्षित होना स्वाभाविक था। क्योंकि देश की आजादी के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले मरुधरा के वीर धरती (मातृभूमि) के कण तक को विदेशियों की पराधीनता में नहीं जाने देना चाहते थे। धरित्री-

मातृभूमि को पराधीन कराना तो दूर की बात है। वे शूर उड़ती हुई रज (बालू-मिट्टी) को रोकने के लिए अपने शोणित (रक्त) को सींचते थे अर्थात् देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटते थे। कवि के शब्दों में द्रष्टव्य है—

धर को कण नहीं जाण दे धर तो देणी दूर।
उड़ती रजनै थामबा शोणित छिड़कै शूर॥

राजस्थान के ऐसे वीर-चरित्रों को उजागर करने के लिए ही महामना टॉड ने कहा है—'राजस्थान मे एक भी ऐसा छोटा राज्य नहीं है, जिसमें थर्मोपली (उत्तर और पश्चिम यूनान के मध्य एक तंग घाटी और रणक्षेत्र) के समान रणभूमि न हो और एक भी ऐसा नगर नहीं, जिसमें यूरोप के लियोनिदास जैसा वीर-पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।' ऐसी ही भावना राजस्थान के स्वातन्त्र्य वीरों के बारे में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने व्यक्त की है—'बचपन में भारत का इतिहास पढ़ना पड़ता था। मुझे प्रतिदिन सिकन्दर से क्लाइव तक लगातार भारत की पराजय तथा अपमान की कथाओं के नाम और तिथियाँ याद करनी पड़ती थीं। राष्ट्रीय लज्जा के इस ऐतिहासिक-रेगिस्तान में यदि कोई 'ओएसिस' कोई हरियाली है तो है स्वतन्त्रता पर मर-मिटनेवाले राजस्थान के रणबांकुरों के कार्य ···।' स्वाभाविक है कि १९वीं शताब्दी के नवजागरण में स्वातन्त्र्य-संग्राम को ऊर्जा देने के लिए बंगाल के साहित्यकार 'राजस्थान' से प्रभावित होकर रचना प्रक्रिया में प्रवृत्त हुए। बंगाल का क्रान्तिकारी कवि रंगलाल तभी हुंकार कर उठा—

स्वाधीनता हीनताय के बांचिते चाय हे, के बांचिते चाय ?
दासत्व सृंखल बोलो के पोरिबे पाय हे, के पोरिबे पाय ?

अर्थात स्वाधीनता के अभाव में कौन जीना चाहेगा तथा दासता की बेड़ियाँ अपने पैरों में कौन पहनना चाहेगा ?

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने 'साकेत' काव्य के आरम्भ में लिखा है—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।

मेरे लिए भी मैथिलीशरण की बात सहज प्रयोज्य है। राजस्थान के वीर-चरित्रों को उजागर करने में अगर यह शोध-प्रबन्ध भी सफलता अर्जित करता है, तो उसका सारा श्रेय मरुधरा के वीरों और वीरांगनाओं को जाता है और जाता है देश की आन, बान, शान पर मर-मिटनेवाली हुतात्माओं को।

पुस्तक को प्रस्तुत करने में जिन मित्रों, साहित्य-प्रेमियों एवं विद्वानों का सहयोग-परामर्श मिला, उनके प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इनमें प्रमुख हैं सर्वश्री आयकर विशेषज्ञ-सुलेखक एम० सी० भण्डारी, समाजसेवी राधाकृष्ण कानोड़िया,

सुचिंतक अभिमन्यु भुवालका, समाजसेवी पुरुषोत्तम केजड़ीवाल, विधिवेत्ता गजाधर सलारपुरिया, साहित्यप्रेमी आत्माराम सोंथलिया, साहित्य मर्मज्ञ पं० कन्हैयालाल सिलवाल, साहित्यप्रेमी विश्वम्भर दयाल सुरेका, धर्मानुरागी मोतीलाल भोजनगरवाला, साहित्यप्रेमी श्रीराम भुवालका, कवि डॉ० भगवती प्रसाद चौधरी, समाजचिंतक भगवती प्रसाद खेतान, विधिवेत्ता सेडमल टीबड़ेवाल, समाजसेवी सांवरमल गोयनका, समाजचिंतक किशोरीलाल ढांढनिया, पद्मश्री फूलचन्द देवरालिया, धर्मानुरागी केवलचन्द मीमाणी, सुलेखक-चिन्तक पं० श्रीनिवास शास्त्री, धर्मप्राण लक्ष्मी प्रसाद शाह, धर्मानुरागी काशी प्रसाद तुलस्यान, साहित्यप्रेमी रायचन्द बरड़िया, समाजसेवी बाबूलाल अग्रवाल, हनुमान प्रसाद तोदी, नरनारायण हरलालका, श्यामसुन्दर बोहरा, गोविन्द प्रसाद फतेहपुरिया, कपूरचन्द गंगवाल, बनवारीलाल सराफ, हरिराम चौधरी, श्यामसुन्दर झुनझुनवाला; चिंतक पुरुषोत्तम झुनझुनवाला, विधिवेत्ता बजरंगलाल मिश्र, समाजसेवी विमल कुमार खेतान, सूर्यरतन चांडक, साहित्यसेवी कालीचरण केशान, शिवभगवान तोषनीवाल, विधिवेत्ता रामअवतार सरावगी, गीता प्रचारक पं० सत्यनारायण मिश्र, चण्डी प्रसाद शर्मा, ललित कुमार रुइया, समाजसेवी द्वारका प्रसाद गनेरीवाल, विधायक राजेश खेतान, विधायक देवकीनन्दन पोद्दार, पार्षद शान्तिलाल जैन, भानीराम सुरेका, किशनलाल महिपाल, सांवरमल भीमसरिया, विधिवेत्ता अनिल शर्मा, श्यामसुन्दर पोद्दार, युवाकर्मी शम्भु चौधरी, विजय कुमार कानोडिया, विधिवेत्ता सन्तोष कानोडिया, किशनलाल बजाज, कृष्ण कुमार लोहिया, विजय कुमार अग्रवाल, विधिवेत्ता प्रमोद शाह, समाजसेवी द्वारकादास मूनका, जुगलकिशोर मूनका, महावीर प्रसाद रावत, गोपीनाथ नारनोली, काशी प्रसाद पुरोहित, प्रो० सदानन्द सिंह, डॉ० हृदयेश मिश्र, डॉ० दीनानाथ चौधरी, प्रो० साहब उपाध्याय, विधिवेत्ता पं० श्रीनाथ पाण्डेय, राजकुमार सुरेका, मदनलाल ढांढनियां, बेगराज गुप्ता, गौरीशंकर पिलानीवाला, धर्मराज प्रेमराजका, राधेश्याम कानोड़िया, रामगोपाल सोंथलिया, विधिवेत्ता ओमप्रकाश शर्मा, श्यामलाल टीबड़ेवाल, ओमप्रकाश सेक्सरिया, विधिवेत्ता शिवप्रसाद बुधिया, सूफी सूरज प्रकाश देहलवी, विधिवेत्ता सीताराम अग्रवाल, विमल सोडानी, विधिवेत्ता रामदेव कांकरा, प्यारेलाल जैन, पत्रकार गंगादास बिन्नानी, विधिवेत्ता मदनलाल अग्रवाल, बंगला-हिन्दी लेखक गणेश लालवानी, साहित्यकार केसरी कुमार तिवारी, कवि रामकृष्ण गुप्त 'बन्धु', कवि हौशिला प्रसाद मिश्र, समाजसेवी मेघराज शर्मा, शिवचरण शर्मा, समाजसेवी सीताराम रुंगटा (चाईबासा), डॉ० सुबोधचन्द्र सक्सेना (हरदोई), प्रदीप कुमार बथवाल (देवघर), दीनानाथ झुनझुनवाला (वाराणसी), सत्यनारायण अग्रवाल (खगड़िया), शल्य-चिकित्सक डा० श्यामसुन्दर नारनोली (राँची), सांसद बनवारी लाल पुरोहित (नागपुर), रतनलाल चौबे (पुलगाँव), सांवरमल शर्मा (जटनी), रतन कुमार अग्रवाल (सिलिगुड़ी), प्रभात कुमार शर्मा (विशाखापट्टनम), लोकनाथ शौह (बम्बई),

प्रो० चन्द्रशेखर शर्मा (भागलपुर), डॉ० मुरारीलाल शर्मा, प्रो० मालती सहाय, डॉ० केदारराम गुप्त, समाजसेवी हनुमान प्रसाद शर्मा, सुलेखक रामअवतार झुनझुनवाला, मोहनलाल झोलिया, रामस्वरूप टीबड़ेवाल, पत्रकार श्रवण कुमार शर्मा, मोहनलाल पचेरीवाल, विधिवेत्ता भादरमल शर्मा, भवानीशंकर शर्मा, जगन्नाथ शर्मा, नन्दलाल गोयनका, पूर्व सांसद डा० रामजी सिंह, विधिवेत्ता नभय कुमार सिंह, शिवनारायण झुनझुनवाला, पं० सत्यनारायण शर्मा (गुरुधाम), श्री पुरुषोत्तम सराफ (पुरुसंन्यासी), बाबूलाल बोहरा (जमशेदपुर), युवाकर्मी रामानन्द खण्डेलवाल (जयपुर), हरिनारायण गुणाकरका, पं० मालीराम शर्मा (वृन्दावन), पत्रकार केसरी कान्त शर्मा, पं० पूर्णानन्द शर्मा (गुवाहाटी), पत्रकार जी० एस० अग्रवाल, विधायक गोपाल सिंह (खण्डेला), पं० रामप्रसाद पारीक, रामस्वरूप मूनका, गोकुलचन्द चौधरी, डॉ० चन्द्रकान्त बान्दिबडेकर (बम्बई), पत्रकार प्रकाश चन्डालिया, पत्रकार कृष्णकुमार शाह, पत्रकार गोपीलाल शर्मा, राम अवतार शर्मा (गिरिडीह), डॉ० रामकुमार शर्मा (खेतड़ी), सत्यनारायण साखोलिया (रतनगढ़), विधिवेत्ता सत्यनारायण शर्मा (दिल्ली) आदि ।

मेरे कॉलेज के सहयोगी विद्वानों से समय-समय पर महत्वपूर्ण सूचनाएँ एवं सहयोग मिला है । इनके प्रति मैं अभार व्यक्त करता हूँ—राजनीतिशास्त्र-विभाग के डॉ० प्रभात कुमार पालित, प्रो० दीपंकर भट्टाचार्य, प्रो० सुकुमार घोष, इतिहास-विभाग के प्रो० विनयभूषण भट्टाचार्य, प्रो० अमलेन्दु मुखर्जी, अर्थशास्त्र-विभाग के प्रो० सौम्येन्द्र कुमार बागची, दर्शनशास्त्र-विभाग के प्रो० सुबोध कुमार घोष अंग्रेजी-विभाग के प्रो० असीम कुमार गुप्त, प्रो० प्रबाल दत्त, गणित विभाग के प्रो० अशोक कुमार मुखर्जी, डॉ० रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्य, प्रो० मृत्युञ्जय पंडित, रसायन विज्ञान-विभाग के प्रो० दीनानाथ सामन्त, डॉ० श्यामल पंडा, भौतिक विज्ञान-विभाग के प्रो० समरकृष्ण दे, डॉ० तापस कुमार घोष, डॉ० प्रदीप घोष आदि ।

'बंगला-साहित्य में राजस्थान' के प्रथम खण्ड पर अपनी प्रतिक्रिया कई विद्वानो तथा पत्र-पत्रिकाओं की ओर से प्राप्त हुई हैं, जिन्हें पुस्तक के अन्त में दिया गया है । इन विद्वानों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ । सम्मतियाँ प्रेषित करने वालों में प्रमुख हैं प्रसिद्ध उद्योगपति तथा साहित्यकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला, भागलपुर विश्वविद्यालय प्रति-उपकुलपति डॉ० विष्णुकिशोर झा 'बेचन', डॉ० बालाशौरि रेड्डी, जस्टिस गुमानमल लोढ़ा, प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री कन्हैयालाल ओझा आदि ।

पुस्तक की अनुक्रमणिका तैयार करने में मेरे द्वितीय पुत्र चन्द्रशेखर ने सहायता की है । प्रूफ संशोधन में मेरे ज्येष्ठ पुत्र कैलाशचन्द्र तथा श्री सुधाकर त्रिपाठी ने सहयोग किया है, फिर भी अशुद्धियाँ रह गई हैं, इनके लिए दोषी मैं हूँ । श्री विभूति नाथ मिश्र ने मुद्रण कार्य में पूरा सहयोग किया। द्वितीय खण्ड के प्रकाशन में अत्यधिक बिलम्ब हुआ

है, जिसमें प्रेस की व्यस्तता, लोडशेडिंग की विशेष भूमिका रही है। कागजों के मूल्य में असाधारण वृद्धि हुई है। इस मूल्य-वृद्धि के कारण पुस्तक प्रकाशन में संकट पैदा हुआ है। हमें भी इस संकट का मुकाबला करना पड़ रहा है।

अस्तु, अब इस शोध-प्रबन्ध के दोनों खण्ड विद्वान पाठकों के समक्ष उपस्थित हैं। महाकवि कालिदास को 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाट्य कृति की रचना करने के पश्चात् शंका हुई थी। उन्होंने नाटक के प्रथम अंक में लिखा है—'जब तक विद्वान इस नाट्य कृति को सुन्दर नहीं कहें तब तक मैं रचना को सफल नहीं मानता।' मेरे साथ भी महाकवि कालिदास की यह उक्ति प्रयोज्य है—

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग विज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्य प्रत्ययं चेतः ॥

प्रसन्नता है कि मेरी पुस्तक का द्वितीय खण्ड हमारे कॉलेज (महाराजा मणीन्द्रचन्द्र कॉलेज) की स्वर्ण-जयन्ती-वर्ष में प्रकाशित हो रहा है।

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।'

साहित्य-निकेतन शिवकुमार
१०५, मटरूमल लोहिया लेन,
सलकिया, हवड़ा-७१११०६ (प० बंगाल)

समर्पण

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

भागलपुर (बिहार) प्रवासी अग्रज भ्रातृश्री स्व० पं० बिहारीलाल शास्त्री तथा भाभीश्री श्रीमती सुरजी देवी के चरणों में सादर समर्पित।

—शिवकुमार

बंगला-साहित्य में राजस्थान

(द्वितीय खण्ड)

(१९वीं शताब्दी के नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में टॉड के 'राजस्थान' का बंगला, हिन्दी तथा राजस्थानी साहित्य पर प्रभाव)

"The impact and influence of Tod's Rajasthan on Bengali, Hindi and Rajasthani literatures in the Nineteenth Century Indian Renaissance."

विषय-सूची

तृतीय अध्याय

बंगला-नाटकों में राजस्थान

"Drama is a copy of life, a mirror of custom, a reflection of truth."—Cicero.

भूमिका

अनुकरण की सहज प्रवृत्ति से ही नाटक की उत्पत्ति मानी जाती है। मनुष्य दूसरों के कार्य, बातचीत, भाव-भंगी को तदनुरूप अनुकरण की सहजात प्रवृत्ति के वशीभूत होकर नकल करता है। यह प्रवृत्ति आदिम युग से अनवरत चली आ रही है। आज भी जब किसी की कोई बात हमें अच्छी लगती है, हम उसकी नकल कर वैसा ही बनने और करने की कोशिश करते हैं। आदि युग में नृत्य-संगीत के द्वारा अनुकरण की यह चेष्टा थी। कालान्तर में इसी 'नृत्' धातु से नाटक की सृष्टि हुई।

कहा जाता है कि ब्रह्मा ने 'नाट्य वेद' नामक पंचम वेद का प्रणयन किया। देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना के समय जो आनन्दोत्सव अनुष्ठित होता, उसी के परवर्ती काल में यात्राओं का सूत्रपात हुआ और नाटकों का विकास हुआ। यह परम्परा काफी दिन तक चली। संस्कृत में नाटकों का प्रणयन और मंचन हुआ, पर इसकी शुरूआत कब से हुई, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। किन्तु जब से भास कृत नाटकों का अनुसन्धान हुआ है, उससे यह कहा जा सकता है नाटक लिखने का यह प्रयास ई० पूर्व तीसरी या चौथी शताब्दी से आरम्भ हो गया था। 'संस्कृत ड्रामा' पुस्तक के लेखक डॉ० कीथ एवं वीन्टामुन्टरनित्स आदि के अनुसार भास का आविर्भाव अश्वघोष के बाद हुआ था। इतना सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि हमारे देश में संस्कृत नाटकों का लेखन प्रथम शताब्दी के आस-पास हुआ था। प्रथम शताब्दी से ११वीं शताब्दी तक संस्कृत नाटकों का गौरवमय काल रहा है। संस्कृत नाट्य-साहित्य में भारतीय साहित्य-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन देखा जा सकता है।

संस्कृत नाटकों की रचना और उनका मंचन राज्याश्रम मे होता था और जब राजाओं का राज्य ही समाप्त हो गया तब नाटकों का प्रणयन और अभिनय भी काल के गाल में विलीन हो गया। मुसलमान मूर्तिपूजा और नाट्याभिनय के पक्षपाती नहीं थे। इस कारण इस दिशा में कोई प्रयास नहीं हुआ। पुनः अंग्रेजी शासन काल मे नाट्य-विधा का फिर से आविर्भाव हुआ।

एक हजार वर्ष पूर्व नाट्यशाला का जो प्रदीप बुझ गया था, वह पुनः अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी साहित्य के पठन-पाठन से प्रदीप्त हो उठा। अंग्रेजी साहित्य में कालिदास के समान शेक्सपीयर प्रसिद्ध नाटककार थे। यूरोप मे

नाट्यशाला विकसित थी और नाटकों का धड़ल्ले से मंचन होता था। यही वजह है कि जब अंग्रेजी-साहित्य और पाश्चात्य संस्कृति का प्रचार-प्रसार भारत में हुआ तो नाट्यशाला का रुद्ध द्वार पुनः उद्घाटित हुआ। पहले आधुनिक भारतीय भाषाओं में संस्कृत नाटकों का अनुवाद हुआ और भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार नाटक लिखे गए, पर शनैः शनैः उसमें ग्रीक नाट्यशैली का विस्तार हुआ और उसका पूरा कलेवर अंग्रेजी-नाटकों के अनुसार हो गया।

बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य का सर्वप्रथम प्रचलन हुआ था। इसलिए जात्राओं की निम्नगामी प्रवृत्ति से ऊब कर बंगाली समाज ने सहज रूप से इस नए नाट्य रूप को अंगीकार कर लिया और जात्राओं के स्थान पर नाट्यशालाओं में लोग नाटकों का आनन्द लेने लग गए।

प्रथम रंगशाला

बंगाल में और विशेषकर कलकत्ता में, जिस व्यक्ति ने नाट्यशाला के द्वार को उन्मुक्त कर रंगमंच की स्थापना की, वे थे रूस निवासी हेरासिम लेबेडेफ (Herasim Lebedeff)। उन्होंने 'बेंगाली थियेटर' नामक एक नाट्यशाला की स्थापना डुमरा स्ट्रीट में की। लेबेडेफ ने अभिनय के उद्देश्य से गोलकनाथदास की सहायता से 'डिस्गाइज' तथा 'लव इज द बेस्ट डाक्टर' नामक दो अंग्रेजी प्रहसनों का बंगला में अनुवाद किया। इन प्रहसनों में बंगाली समाज की तत्कालीन रुचि का विशेष खयाल रखा गया। 'डिस्गाइज' के अनुदित प्रहसन का मंचन २७ नवम्बर, १७९५ ई० को हुआ था। सम्भवतः यही बंगला भाषा का प्रथम नाटक था, जिसका अभिनय हुआ। लेबेडेफ ने एक हिन्दी व्याकरण पुस्तक की रचना की थी, जिसका नाम है—'Grammer of the Pure and Mixed East Indian Dialects" (लन्दन १८०१ ई०)। इस पुस्तक में उक्त नाटक के अभिनय का वर्णन है।

बंगला रंगमंच का इतिहास

'बेंगाली थियेटर' की स्थापना के अतिरिक्त उस समय अंग्रेजों की कई रंगशालाएँ थीं। उनमें सबसे प्रसिद्ध रंगशाला थी—'सांनूसी रंगशाला'। कहा जाता है कि इनके पूर्व 'चौरंगी थियेटर' की स्थापना हो चुकी थी, किन्तु इस रंगशाला में आम लोगों का प्रवेश नहीं था। साथ ही इन रंगशालाओं में अंग्रेजी नाटक ही अभिनीत होते और अभिनय भी अंग्रेज ही करते। इस समय जो नाटक अभिनीत हुए उनमें उल्लेखनीय हैं शेक्सपीयर के नाटक यथा मर्चेन्ट ऑफ वेनिस, ओथेलो, जूलियस सीजर आदि। अंग्रेजी भाषा में नाटक अभिनीत होने के कारण साधारण जनता पूर्ण-रस का आनन्द नहीं ले पाती थी और लोगों में यह उत्कंठा बनी हुई थी कि कब बंगला भाषा में नाटक लिखे जायेंगे और मंचित होंगे।

धीरे-धीरे नाट्यशालाओं की स्थापना में सम्पन्न बंगाली समाज की भी अभिरूचि बढ़ी और राजा तथा जमींदार मनोरंजनार्थ इस दिशा में आगे बढ़े। इस प्रसंग मे प्रसन्न कुमार ठाकुर के हिन्दू थियेटर का उल्लेख आवश्यक है। हिन्दू थियेटर ही प्रथम नाट्यशाला है, जिसकी स्थापना एक बंगाली नाट्य प्रेमी के द्वारा हुई। इस थियेटर मे जूलियस सीजर और विलसन द्वारा अनुदित भवभूति का 'उत्तर रामचरित' संस्कृत नाटक मंचित हुआ। उल्लेखनीय है कि हिन्दू थियेटर से भी बंगला नाटकों के लिए द्वार उद्घाटित नहीं हुआ। इस भांति लेबेडेफ के बंगाली थियेटर एवं प्रसन्न कुमार ठाकुर के हिन्दू थियेटर से भी बंगाली दर्शकों की आकांक्षा की तृप्ति नहीं हुई। कहने का तात्पर्य अंग्रेजी नाटक लोगों को न तो रस-बोध ही दे सके और न आनन्द की खुराक ही जुटा सके। इस प्रकार दोनों ही नाट्यशालाओं की इतिश्री हो गई।

बंगला नाटकों की रचना और अभिनय के लिए अग्रणी भूमिका श्यामबाजार निवासी नवीनचन्द्र बसु ने अदा की। नवीनचन्द्र बसु ने १८३५ ई० में एक नाट्यशाला की स्थापना अपने निवास स्थान मे की और बंगाली नर-नारियों के द्वारा उन्होंने पौराणिक पाला (नाटक) 'विद्यासुन्दर' का मंचन किया। बंगला 'विद्यासुन्दर' नाटक का हिन्दी अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने १८६८ ई० में किया। कहा जाता है कि भारतेन्दु के इस नाटक का सफलतापूर्वक मंचन भी हुआ।

नवीनचन्द्र बसु के इस प्रयास के बाद तो फिर कलकत्ता में धनी परिवारो द्वारा कई नाट्यशालाओ की स्थापना हो गई, जिनमे प्रमुख हैं विद्युत्साहनी रंगमंच, बेलगछिया नाट्यशाला, पथुरियाघाट बंग नाट्यशाला जोड़ासांकू नाट्यशाला आदि। स्वाभाविक है कि जब इन नाट्यशालाओं की स्थापना हो गई तो बंगला-नाटकों और अभिनेताओ की भी मांग बढी और फलस्वरूप आधुनिक बंगला नाटकों और थियेटरों के लिए एक प्रशस्त राजमार्ग खुल गया। रंगशाला और बंगला नाटकों के आविर्भाव का यही संक्षिप्त इतिहास है।

नवीन युग

सर्वसाधारण के लिए जब नेशनल थियेटर की स्थापना हुई और अंग्रेजी तथा संस्कृत नाटको की केंचुली से बाहर निकल कर बंगला भाषा में नाटक अभिनीत होने लगे। तभी से बंगला नाटकों के सही मायने में नवीन युग के आविर्भाव की बात प्रमाणित होती है। दिसम्बर १८७२ ई० मे पब्लिक थियेटर या नेशनल थियेटर की स्थापना से ही बगला रंगमंच के द्वितीय युग की सूचना होती है। डॉ० सुकुमार सेन ने 'बांग्ला साहित्येर इतिहास' पुस्तक के पृष्ठ २१ में लिखा है—'लेबेडेफ एवं नवीनचन्द्र बसु की रंगशालाओं की बात को अलग रख कर अगर दृष्टिपात किया जाय तो

कहना होगा कि बंगला-नाटक का प्रथम अभिनय आशुतोष देव के निवास स्थान में हुआ। यहाँ पर ३० जनवरी, १९५७ ई० को रात्रि में नन्दकुमार राय द्वारा अनुदित कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक का अभिनय हुआ।" किन्तु इसमें भी केवल आभिजात्य वर्ग के दर्शकों के लिए ही व्यवस्था थी।

माइकेल मधुसूदन दत्त

माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटककार रूप में उपस्थित होने के पूर्व तक बंगला नाटकों का जो रूप था, उसे सही अर्थों में नाटक नहीं कहा जा सकता है। माइकेल के पूर्व तक जितने नाटक बंगला भाषा में लिखे गए उन्हें नाटक न कह कर नाटकों का आभास मात्र कहना ही संगत होगा। संस्कृत-सूतिका-गृह के चिन्ह इनके शरीर में स्पष्ट दीख पड़ते हैं। इन्हें भोर के तारों की क्षण-स्थायी छटा मात्र कहा जा सकता है। सूर्योदय के बाद अर्थात माइकेल के आविर्भाव के पश्चात इनका अस्तित्व लुप्त हो गया।' ये शब्द हैं डॉ० अजित कुमार घोष के, जो उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बांग्ला नाटकेर इतिहास' के पृष्ठ १८ पर लिखे हैं।

किन्तु माइकेल का पूरा अध्ययन करने के पूर्व के इन नाटककारों की बानगी को बिना देखे-परखे हम माइकेल मधुसूदन दत्त का पूरा मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं।

संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद आरम्भिक युग में कई नाटककारों ने किया था तथा संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों का आश्रय लेकर भावानुवाद भी किया था। इनमें हरचन्द्र घोष के 'भानुमति चित्त विलास' (१८५२ ई०) का उल्लेख किया जा सकता है, जो शेक्सपीयर की 'मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का भावानुवाद है।

प्रथम युग

हरचन्द्र घोष का दूसरा नाटक 'कौरव वियोग' (१८५८ ई०) है, जिसे उन्होंने नए दृष्टिकोण से लिखने का प्रयास किया है और इतिहासकारों ने इसे बंगला भाषा का प्रथम नाटक स्वीकार किया है। डॉ० हीरेन चट्टोपाध्याय ने माइकेल मधुसूदन दत्त के 'कृष्णकुमारी' नाटक की आलोचना पुस्तक के पृष्ठ २ पर लिखा है—
'कौरव वियोग' नाटक को यदि बंगला का मौलिक नाटक मान लिया जाय तो भी उसे प्रथम मौलिक नाटक की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। क्योंकि इसका प्रकाशन १८५८ ई० में हुआ है और उसके छः वर्ष पूर्व दो मौलिक

नाटक प्रकाशित हुए हैं, जिनमें एक है ताराचरण सिकदार का 'भद्रार्जुन' नाटक और दूसरा है योगेन्द्र चन्द्र गुप्त का 'कीर्तिविलास' नाटक।

हरचन्द्र घोष ने 'कौरव वियोग' नाटक की भूमिका मे लिखा है कि उन्होंने अंग्रेजी नाटयशास्त्र की पद्धति पर इस नाटक का प्रणयन किया है, किन्तु वास्तविकता यह है कि सिवाय नाटक को ५ अंको में विभाजित करने के उन्होंने अन्य कोई नवीनता नही दिखाई है। हरचन्द्र घोष के बाद काली प्रसन्न सिंह ने 'बाबू' नामक एक प्रहसन लिखा और 'विक्रमोर्वशी' (१८५७ ई०) संस्कृत नाटक का बंगला मे अनुवाद किया। इसके पूर्व रामनारायण तर्करत्न ने 'वेणी संहार' संस्कृत नाटक का बगला भाषा मे अनुवाद किया था। रामनारायण तर्करत्न के 'कुलीन कुल सर्वस्व' (१८५८ ई०) की बडी चर्चा रही। इसे साधारणत· बगला भाषा का प्रथम सामाजिक नाटक कहा जा सकता है।

बगला नाटय-साहित्य के प्रथम युग मे 'कीर्तिविलास' और 'भद्रार्जुन' नाटको का महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुत· इन्हीं नाटको से बंगला भाषा मे नाटय-विधा ने आत्म-प्रतिष्ठा का गौरवपूर्ण स्थान बनाया। 'कीर्तिविलास' प्रथम वियोगान्त नाटक माना जाता है, जो ग्रीक ट्रेजेडी के अनुसार लिखा गया। तब तक बंगला-साहित्य मे पाश्चात्य प्रभाव पूर्ण रूप से आरम्भ नही हुआ था। 'कीर्तिविलास' की भूमिका से पता चलता है कि नाटककार योगेशचन्द्र गुप्त ने अरिस्टोटल के 'पोयटिक' ग्रन्थ को पढा था और वे वियोगान्त नाटक लिखने की ओर प्रवृत्त हुए थे।

त्रासदी नाटक

असल में जो लोग जीवन में मिलन के आनन्द को ही सब कुछ मान लेते हैं, वे जीवन को भी साधारण ढंग से ग्रहण करते हैं। मनुष्य के जीवन में जैसे सुख है, वैसे ही दुःख भी है, बल्कि यूँ कहा जाय कि दुःख की मात्रा कुछ अधिक ही है। इस दुःख की सार्थक अभिव्यक्ति जिस रचना में हुई है, वही रचनाकार सही अर्थों में जीवन-रसिक है और सत्य स्रष्टा है, सत्य का अन्वेषक है। शेक्सपीयर ने इसे इन शब्दो मे स्वीकार किया है—

"Life is a comedy to those that think but a tragedy to those that feel."

'कीर्तिविलास' का नाटककार भूमिका में लिखता है—'भारत के काव्य-शास्त्र के पंडितों की धारणा थी कि धार्मिक व्यक्ति के दुःख का वर्णन करने के उपरान्त रचना को दुखान्त में समाप्त न कर सुखान्त करना चाहिए।

किन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। जीवन धारण से मनुष्य को सुख-दुःख दोनों का भोक्ता बनना पड़ता है। धार्मिक होने से ही उसे हमेशा सुख भोग ही करना पड़ेगा, यह एक अधकचरी धारणा है।'

ताराचरण सिकदार द्वारा रचित 'भद्रार्जुन' नाटक बंगला भाषा का प्रथम सार्थक नाटक माना जाता है। नाटककार ने यूरोपीय पद्धति का अनुसरण कर 'भद्रार्जुन' का प्रणयन किया था और काफी हद तक उनको सफलता भी मिली थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि १८५७ ई० का वर्ष बंगला साहित्य में गौरव का वर्ष रहा है, जिस वर्ष कई नाटक लिखे गए और अभिनीत हुए। इस कालखण्ड के 'कीर्तिविलास' और 'भद्रार्जुन' ने परवर्ती नाटककारों के लिए एक सुगम मार्ग का द्वार उन्मुक्त कर दिया।

माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटकों पर विचार करने के पहले यहाँ पूर्व और पश्चिम की विचारधार पर चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। वस्तुतः इसी वैचारिक संघात के कारण आधुनिकता का बीजारोपण हुआ।

पूर्व-पश्चिम का चिन्तन

भारत की अपनी प्राचीन सभ्यता है। उसका अपना धर्म-संस्कार और जीवन-दर्शन है। भारतीय संस्कृति के साथ कई संस्कृतियों का सम्मिश्रण हुआ और उसमें थोड़ा घना परिवर्तन हुआ, किन्तु उसकी मूल धारा में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। कारण कि भारतीय जीवन-दर्शन का आधार आध्यात्म रहा है। आज भी जब जीवन में पश्चिमी सभ्यता की पूरी नकल देखी जा रही है, उसकी वह चिरंतन आध्यात्मिक धारा प्रवहमान है। इसी धर्म, संस्कृति और जीवनधारा के आधार पर उसका रस-बोध और समाज-संस्कार निर्मित हुआ है। उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी-सभ्यता के पूर्व भारतीय-संस्कृति का संसर्ग इस्लामी संस्कृति से हुआ। चूंकि इस्लामी-संस्कृति भारतीय-संस्कृति से न तो प्राचीन है और न ही उतनी गौरवपूर्ण। इसलिए उसका मामूली प्रभाव हमारी जीवन-पद्धति पर पड़ा। आश्चर्य इस बात का है कि कोई एक हजार वर्ष की पराधीनता के बाद भी भारतीय संस्कृति अपने मूल गौरव में प्रतिष्ठित रही, पर मात्र अंग्रेजों की दो सौ वर्ष की गुलामी से उस पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। किन्तु इसके बावजूद भारतवासियों ने पूर्णरूपेण अपने को अंग्रेज नहीं बनाया। यही वह तथ्य है जिस पर हमें विचार करना है। यही वह अनोखा है, जिसने

पूरी तरह द्वार उन्मुक्त नहीं होने दिया, केवल खिड़की, झरोखों से ही पश्चिमी सभ्यता ने हमारे जीवन में प्रवेश किया। इसे हम भारत की धर्म-सहिष्णुता का औदार्य भी कह सकते हैं, जिसने किसी भी अच्छी बात को आत्मसात करने में अनुदारता या कार्पण्य का प्रदर्शन नहीं किया।

इस वैचारिक दृष्टि को हम नाट्य-साहित्य में बखूबी देख सकते हैं। क्योंकि नाटकों की रचना सामाजिक परिवेश और जीवन-दर्शन को आधार मान कर होती है। तभी तो नाटकों में समाज का पूरा प्रतिबिम्ब झलकता दीख पड़ता है। नाटक देश, काल और समय-सापेक्ष होते हैं। एक देश के नाटक दूसरे देश में देखे जा सकते हैं, पढे जा सकते हैं और उनका कमोबेश अनुकरण भी हो सकता है। कदाचित् यही कारण है कि अंग्रेजी साहित्य के एलिजावेथियन युग के नाटकों का अनुकरण करने पर भी हिन्दी या बंगला नाटकों में उनका पूर्ण रूपान्तरण नहीं हो सका। एलिजा-वेथ-युग के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर हैं। उनका बंगला और हिन्दी नाटककारों ने अनुकरण तो किया, बाहरी कलेवर भी ग्रीक नाटकों के अनुरूप बनाया, पर आत्मा भारतीय ही रही।

भरत मुनि का 'नाट्य-शास्त्र'

ऐसी बात नहीं है कि हिन्दी और बंगला नाटककारों के सम्मुख नाट्य-शास्त्र का कोई रूप नहीं था। संस्कृत में भरत मुनि का 'नाट्य-शास्त्र' था और थे कालि-दास, भवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक। इसलिए केवल आंग-आंगिक रूप ग्रहण कर नाटकों का बाहरी रूप ही निखारने की कोशिश की गई। इस दृष्टि से अवश्य ही यह एक परिवर्तन था और प्रत्यक्षतः पश्चिमी प्रभाव था। इतना ही नहीं बंगला नाटककारों के समक्ष जैसे जात्रा का ग्रामीण नाटकीय रूप था वैसे ही हिन्दी नाटककारों के पास नौटंकी, रामलीला, रास आदि का अक्षय कोष था।

नाटक जीवन की अनुकृति है। जीवन में जो घटित होता है उसका अभिनय द्वारा अनुकरण कर दर्शकों को दिखाया जाता है। ऐसी बात साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं है। कहानी, कविता, उपन्यास में रचनाकार घटनाओं का वर्णन करके ही अपने श्रम की सार्थकता समझता है, पर नाटक को दर्शक अपनी-अपनी आँखों से रंगमंच पर देखते हैं। अगर वे अपने जीवन-दर्शन के प्रतिकूल किसी घटना को देखते हैं तो स्वाभाविक है कि विचलित हो जाते हैं या उसके प्रति उदासीनता दिखाते हैं। ऐसे नाटक न तो समाज में

आदर ही पा सकते हैं और न उनको समर्थन ही मिलता है, उल्टे उनकी निन्दा होती है।

भारतीय दर्शन

पाश्चात्य जीवन-दर्शन में यह जीवन ही वास्तव और सत्य है, पारलौकिक जीवन में उनकी कोई आस्था नहीं। मृत्यु ही जीवन की चरम परिणति है। इसलिए मृत्यु से वहाँ ट्रेजेडी और मिलन से कॉमेडी की सृष्टि हुई है। किन्तु भारतीय जीवन-दर्शन में मृत्यु के बाद भी एक ऐसा परलोक है, जिसकी कामना के लिए इस जीवन को तुच्छ और त्याज्य किया जा सकता है। मृत्यु जीवन का शेष नहीं, मात्र चोला बदल है। इस जीवन में जो अच्छा किया जाएगा उसका प्रभाव पारलौकिक जीवन पर पड़ेगा और दूसरा जन्म इस जीवन के कर्म पर निर्मित होगा।

ऐसी धारणा जिस समाज में बद्धमूल हो, वहाँ मृत्यु जीवन को नष्ट नहीं कर सकती। और जब तक यह धारणा है, सही अर्थों में ट्रेजेडी की रचना नहीं हो सकती। यही बात नारी जीवन के बारे में भी कही जा सकती है। आदर्श नारी पात्र वही है, जो कष्ट सहकर भी सतीत्व की रक्षा करे और आदर्श-दाम्पत्य जीवन जिये। इसमें त्रुटि होने से भारतीय समाज में उस नारी के लिए कोई स्थान नहीं। हिन्दू विधवा नारी की यही गति और नियति है। वह त्याग का जीवन बिताये। उसके जीवन में राग-रंग, हास-विलास, बनाव-शृङ्गार का स्थान नहीं। अगर किसी कारण उसके जीवन में प्रणय हो जाय या दाग लग जाय तो समाज उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं। इन तमाम बातों को कितना ही पश्चिमी जामा पहना कर नाटकों में उपस्थित किया जाय, अगर वह भारतीय जीवन-दर्शन के प्रतिकूल है तो समाज उसे ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं। कदाचित यही कारण है कि माइकेल मधुसूदन दत्त धर्मान्तरण करने के बावजूद भारतीय जीवन-दर्शन के प्रति आस्थाशील रहे। उन्होंने पश्चिम का अनुकरण किया जरूर, पर वे भारतीयता से एक बारगी कट नहीं सके।

अंग्रेजी नाट्य-साहित्य

अंग्रेजी नाट्य-साहित्य का अनुशीलन करने से एक बात साफ तौर से स्पष्ट हो जाती है कि एलिजाबेथियन-युग के नाटकों और जार्ज-युग के नाटकों का आदर्श एक नहीं है। क्योंकि शेक्सपीयर और बर्नार्ड शॉ के नाटकों में आंगिक एवं

भावगत पार्थक्य देखा जा सकता है। यह सच है कि शेक्सपीयर की भांति अंग्रेजी साहित्य में बनार्ड शॉ भी प्रसिद्ध नाटककार हैं। इस पार्थक्य को समझने के लिए अंग्रेजी समाज पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होगा कि एलिजाबेथियन समाज और जार्ज-युग के समाज में परिवर्तन हो गया था। साहित्य युगबोध से असंपृक्त नहीं हो सकता। शेक्सपीयर ने अपने युग के तत्कालीन समाज को दृष्टि में रख कर ऐतिहासिक पात्रों को नाटक का विषय बनाया। समाज का जीवन परिवेश से अर्थात आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक घटनाचक्र से बनता है। इसकी उपेक्षा नहीं हो सकती। यह सत्य है कि विशेष देश और विशेष काल में मनुष्य का चिरंतन स्वरूप वातावरण की उपज होता है। यह स्वरूप समाज के उत्थान-पतन और वातावरण से बनता है। रचनाकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी रचना में, समग्र सामाजिक परिवेश में घटनाओं के घात-प्रतिघात से सत्य का उद्‌घाटन करता है। बनार्ड शॉ के युग में पश्चिम का समाज बदल गया था। उस युग में अगर शेक्सपीयर को नाटक लिखना पड़ता तो वे इस सामाजिक बदलाव को नकार नहीं सकते थे और उन्हें भी युग-सापेक्ष नाटकों का प्रणयन करना पड़ता।

इस युग-बोध को हृदयंगम करने के लिए हमें बंगाल की तत्कालीन समाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करना पड़ेगा और तभी हम सम्यक रूप से बंगला नाट्य-साहित्य का अनुशीलन कर सकेंगे.

१९वीं शती का नवजागरण

भारतीय इतिहास में १९वीं शताब्दी पुनर्जागरण का काल माना जाता है। अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य सभ्यता के प्रचण्ड आघात से भारत का पुराना सामाजिक कलेवर चरमराकर टूटने लगा और उसमें से एक नवजागरण का सामाजिक स्वरूप आत्म-प्रकाश पाने लगा। आरम्भ में यह आघात इतना तेज था कि वह सम्पूर्ण पुरातन को विद्रोह की ज्वाला में भस्म कर देना चाहता था, किन्तु धीरे-धीरे जब उस उबाल में स्थितिशीलता आई तब एक नव-जागृति दृष्टिगोचर होने लगी और भारतीय समाज पाश्चात्य के दर्पण में अपने उज्ज्वल अतीत का पक्षधर बन गया। यह प्रक्रिया कई कारणों से हुई। इस परिवर्तन को या नवजागरण को लाने में कई घटनाओं ने अपना योगदान किया। अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यता का मुका-बला करने के लिए पुराणपंथियों ने कमर कसी, किन्तु पुरातन के प्रति तब भी विद्रोह चरम सीमा पर था। विरोध के बावजूद मेकाले और लार्ड बेंटिंग के प्रयास से अंग्रेजी शिक्षा नीति का प्रचलन हुआ। उनके इस प्रयास का समर्थन समाज का एक वर्ग कर

रहा था, जिसके अगुआ राजा राममोहन राय और डेविड हेयर थे। फोर्ट विलियम कॉलेज एवं हिन्दू कॉलेज की स्थापना के बाद से स्वतन्त्र चिन्तन पूरे जोश में आ गया। हर बात को बुद्धि की तुलना पर रेशनल समझ कर स्वीकार करने की प्रवृत्ति बढ़ी। अंधविश्वास और पुराने सड़े-गले समाज की विकृतियाँ सामने आने लगीं। विद्रोह के इस दावानल को हवा देने में डेरेजियो और उनके साथी आगे आये। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना १८०० ई० में हो गई थी। गिलक्राइस्ट फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यक्ष बने। यहाँ पठन-पाठन के लिए पाठ्य-पुस्तकें लिखी जा रही थीं। बंगला और हिन्दी में पुस्तकें तैयार हो रही थीं। हिन्दी पुस्तकों के प्रणयन में सदल मिश्र और लल्लूजी लाल लगे थे। पश्चिमोत्तर भारत में स्वामी दयानन्द के 'आर्य समाज' (१८७५ ई०) का जोर था तो बंगाल में राजा राममोहन राय के अद्वैतवादी 'ब्रह्म-समाज' का बोलबाला था। धर्म-संस्कार की दृष्टि से आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज (१८२८ ई०), मद्रास की 'थियासाफिकल सोसाइटी' (१८८५ ई०) और बम्बई के 'प्रार्थना-समाज' (१८६७ ई०) का बड़ा महत्व है। सती-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन इस युग की विशेष घटना थी। बाल-विवाह और बहु-विवाह का विरोध हो रहा था। इन तमाम घटनाओं के प्रभाव से साहित्य कैसे अछूता रह सकता था? फलतः उसमें तत्कालीन समाज का स्वरूप चित्रित होने लगा।

राजनैतिक दृष्टि से देश में अंग्रेजों की गुलामी के कारण एक निराशा का भाव था। मुसलमानों का मुगल-शासन अपनी अन्तिम सांस गिन रहा था और हिन्दू राजा सामंती संस्कारों से ग्रसित थे। दोनों ही पुनः राज्य स्थापन के प्रति क्रियाशील थे, जिसकी परिणति स्वाधीनता की पहली लड़ाई अर्थात् १८५७ ई० के सैनिक-विद्रोह में हुई। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही समाज अंग्रेजी-शासन से मुक्ति पाना चाहते थे।

कहने का तात्पर्य है, समाज परिवर्तन के लिए छटपटा रहा था। धर्म अपने संस्कार के लिए प्रस्तुत था और राजनीतिक स्थिति परिवर्तन की आकांक्षी थी। आर्थिक दृष्टि से नील के खेतीहरों पर अंग्रेजों का अत्याचार हो रहा था। जमीन पर नए भू-स्वामियों के जन्म से और जमींदारों के अत्याचार से किसान संत्रस्त था। परिपार्श्व में महाजनी-सभ्यता और उद्योग के खम्भे खड़े हो रहे थे। फलतः किसान सर्वहारा होकर विद्रोह के लिए आमादा था। जाहिर है इन सबका असर साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है।

माइकेल मधुसूदन

ऐसे सामाजिक वातावरण मे मधुसूदन का आविर्भाव हुआ। वे अंग्रेजी शिक्षा मे इतने दीक्षित हुए कि धर्म परिवर्तन तक कर बैठे और माइकेल हो गए। किन्तु उन्होंने बंगला-साहित्य की विजय-वैजयन्ती को उन्नत करने मे अपनी बेजोड भूमिका निभाई। डॉ० अजित कुमार घोष ने अपने 'बांग्ला साहित्येर इतिहास' के पृष्ठ ४२ पर माइकेल मधुसूदन दत्त के बारे मे लिखा है—'मधुसूदन बंगला-साहित्य के प्रथम नाटककार नहीं हैं, यह बात सही है, पर पाश्चात्य नाटकों के अनुकरण पर उन्होंने ही सबसे पहले सार्थक नाटक बगला भाषा में लिखे और भावी नाटककारों के लिए राजमार्ग प्रशस्त किया। इसलिए इस विद्रोही कवि, परम साहसिक, असाधारण प्रतिभा के धनी नाटककार को ही आधुनिक नाट्य-साहित्य का जनक और प्रवर्त्तक के सम्मान से अलंकृत किया जा सकता है।'

नाटककार बनने की कहानी

मधुसूदन के नाटककार बनने के पीछे एक रोचक कहानी है। मधुसूदन ने रामनारायण के 'रत्नावली' नाटक का बेळगछिया उद्यान नाट्यशाला मे मंचन करने के लिए उसका अग्रेजी मे अनुवाद किया था। इस अनुवाद से पाइकपाड़ा के राजा तथा अन्य नाट्य-प्रेमी मुग्ध हो गए। फलत: नाट्य-साहित्य के प्रणयन के लिए मधुसूदन के हृदय मे विचार उत्पन्न हुए। उनके सामने जो बंगला नाटक थे, उनसे उनका मन व्यथित हुआ और उन्होने बंगला भाषा मे नाटक लिखने का निश्चय किया।

माइकेल मधुसूदन दत्त के जीवनी लेखक योगेन्द्रनाथ बसु ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २२७ पर लिखा है—

'एक दिन 'रत्नावली' नाटक की रिहर्सल हो रही थी। रिहर्सल देखते-देखते माइकेल ने अपने मित्र गौरदास बाबू से कहा—'बड़े दुःख की बात है कि 'रत्नावली' ऐसे सामान्य स्तर के नाटक का मंचन करने के लिए राजा लोग इतना अर्थ व्यय करते हैं।' गौरदास बाबू ने कहा—'नाटक सचमुच निम्न-कोटि का है, किन्तु अच्छे नाटक हैं कहाँ? 'विद्यासुन्दर' नाटक का अभिनय आपको पसन्द नहीं। तब क्या किया जाय?' मधुसूदन का उत्तर था—'अच्छा, मैं बंगला में नाटक लिखूँगा।'

गौरदास मधुसूदन के बंगला भाषा-ज्ञान से परिचित थे। जब उनसे बंगला भाषा में पत्र लिखने को कहा जाता तो माथे पर सलवटें पड़ जाती थीं। जो 'पृथ्वी' को 'प्र-थि-वी' लिखते थे। फिर भी गौरदास ने कहा—'अच्छा है, आप लिखिए तो सही।' मधुसूदन को इस कथन में गहरा व्यंग्य लगा। अस्तु, उन्होंने आत्मनिष्ठा के साथ नाटक लिखने में अपने को लगा दिया। एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी की संस्कृत और बंगला पुस्तकें लेकर घंटों पढ़ने लगे। संस्कृत ज्ञान के लिए शिक्षक रखा।

लगन के पक्के मधुसूदन ने जब 'शर्मिष्ठा' नाटक की पाण्डुलिपि गौरदास बाबू को दी तो वे ही नहीं अन्य राजागण आश्चर्यचकित रह गए। उनको विश्वास ही नहीं हो सका कि अंग्रेजीनवीस, मद्रासी साहब मधुसूदन बंगला में ऐसी प्रांजल भाषा में नाटक लिख सकते हैं।

कितना बड़ा आश्चर्य है कि यही माइकेल बंगला भाषा के महाकवि और प्रख्यात नाटककार बने।

माइकेल ने महाभारत के देवयानी-ययाती उपाख्यान को लेकर १८५६ ई० में 'शर्मिष्ठा' नाटक की रचना की थी और १८६० ई० में ग्रीक उपाख्यान को लेकर 'पद्मावती' नाटक लिखा। १८६१ ई० में उनका तीसरा श्रेष्ठ वियोगान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' प्रकाश में आया। यह नाटक कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान' की एक कथा पर आधारित है। इसके बाद मधुसूदन ने जीवन के शेष भाग में 'मायाकानन' नाटक की रचना की। इस नाटक का प्रकाशन काल १८७८ ई० है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी के गद्यकार बालकृष्ण भट्ट ने माइकेल के 'पद्मावती' का १८७८ ई० में, 'शर्मिष्ठा' का १८८० ई० में अनुवाद किया था। १९२० ई० में श्री गौरीशंकर शुक्ल ने 'शर्मिष्ठा' नाटक लिखा। पुनः १९२० ई० में श्री रूपनारायण पाण्डेय ने माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक का हिन्दी में अनुवाद किया।

माइकेल के नाटकों का अध्ययन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि उनके तीन नाटकों के नाम नायिकाओं के नामकरण पर हुए हैं। साहित्य-दर्पणकार ने एक स्थान पर लिखा है—'नामकार्य नाटकस्य गर्भितार्थ प्रकाशकम्' अर्थात् नाटक का नाम गर्भस्थ अर्थ का प्रकाशन करता है। चूंकि माइकेल के नाटकों का नामकरण नायिकाओं के नाम पर हुआ है, इससे स्पष्ट होता है कि नाटकों में नायिकाओं के चरित्र की प्रधानता है। इनके चरित्रों के इर्द-गिर्द ही अन्य पात्रों के चरित्रों का विकास हुआ है। तीन नाटकों की तीन नायिकाओं का चरित्र यथा महाभारत, ग्रीक-पुराण एवं 'राजस्थान' के इतिहास से लिया गया है।

शर्मिष्ठा नाटक

हमने लिखा है कि नाटक लिखने का संकल्प लेकर माइकेल एशियाटिक सोसाइटी से कुछ बंगला और संस्कृत ग्रन्थों को लेकर अध्ययन करने लगे। कालिदास के 'आभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक को पढ़ते-पढ़ते एक श्लोक की ओर उनका ध्यान गया। 'शाकुन्तला' नाटक के चतुर्थ अंक में पतिगृह जाती हुई शकुन्तला को एक श्लोक मे कण्व ऋषि आशीर्वाद देते हैं—

यथातेरिव शर्मिष्ठा मर्त्तुर्बहुमताभव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरूमवाप्नुहि॥

इस श्लोक से ही माइकेल को 'शर्मिष्ठा' नाटक की कहानी का सूत्र मिल गया और उन्होंने महाभारत के आदि-पर्व से 'शर्मिष्ठा' की कहानी को लिया। कथानक तो उन्होंने महाभारत के शर्मिष्ठा-देवयानी-ययाती उपाख्यान से लिया है, लेकिन उनमें किंचित परिवर्तन किया है। शर्मिष्ठा के निर्वासन से नाटक आरम्भ होता है और ययाती के जरामुक्त होने से नाटक समाप्त होता है।

'शर्मिष्ठा' बंगला भाषा का प्रथम यथार्थ नाटक माना जाता है। इसके पूर्व जितने नाटक बंगला मे लिखे गए उनमें न तो कोई कथा-सूत्र का पूर्वापर सम्बन्ध है और न उनमे नाटकीय गुण ही है। तभी उन्होंने सम-सामयिक बंगला नाटकों की तुच्छता को देखकर नाटक लिखने का व्रत लिया था। उन्होंने 'शर्मिष्ठा' नाटक की प्रस्तावना कविता में लिखा है—

शुनगो भारतभूमि, कत निद्रा जाबे तुमि,
आर निद्रा उपचत न होय।
उठो, त्यज घूम-घोर, होइलो होइलो भोर
दिनकर प्राचीते उदय।
कोथाय बाल्मीकि, व्यास, कोथाय तव कालिदास,
कोथा भवभूति महोदय!
अलीक कुनाट्य रंगे, मजे लोक राढ़े बंगे
निरखिया प्राणे नाहि सय।

'शर्मिष्ठा' नाटक का बीज सखी-सपत्नी की ईर्ष्या में है और माइकेल के दूसरे नाटक 'पद्मिनी' का बीज नारी सौंदर्य की स्वाभाविक ईर्ष्या में है।

पद्मावती नाटक

ग्रीक पुराण की एक उपकथा 'एप्ल ऑफ डिस्कोर्ड' या पेरिस का विचार' है।

इसी पर 'पद्मावती' नाटक की कहानी आधारित है, जिसे भारतीय परिवेश में नाटककार ने उपस्थित किया है। मधुसूदन ग्रीक कथाओं से प्रभावित थे। इसलिए उनके नाटकों में जहाँ संस्कृत के कालिदास का प्रभाव देखा जा सकता है, वहीं शेक्सपीयर आदि का भी प्रभाव स्पष्ट है। 'पद्मावती' नाटक में पूर्व-पश्चिम की उपकथाओं का मणिकांचन योग किया गया है। इस नाटक में भी वे 'शर्मिष्ठा' नाटक की भांति संस्कृत नाटकों के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाये थे, बल्कि कहना होगा कि उन्होंने मल्लिक मोहम्मद जायसी के 'पद्मावत' काव्य की कथा से भी अपने नाटक की कथा को जोड़ा है। जायसी के 'पद्मावत' का बंगला में अनुवाद अराकान के कवि आलाओल ने १६६३ ई० में किया था और इसका प्रचार बंगला-साहित्य में था। नाटक का नामकरण भी शायद इसी का फल है। जैसे जायसी ने राजा रत्नसेन को विरही बना कर सिंहल द्वीप में भेजा है और शिव के मन्दिर में पद्मिनी से रत्नसेन का साक्षात्कार कराया है। इसी से मिलती-जुलती बातें 'पद्मावती' नाटक में भी देखी जा सकती हैं, यथा इन्द्रनील का शंकर भक्त होना, विरही होकर संन्यासी के वेष में राज्य से निकलना, पद्मावती के वियोग में मूर्च्छित होना आदि।

फिर भी इतना तो स्वीकारना पड़ेगा ही कि माइकेल ने ग्रीक-पुराण और भारतीय-पुराण का एक सेतु बनाया है, जिसमें उनको कथानक गढ़ने में सफलता मिली है। एक बात यहाँ दिलचस्प है कि ग्रीक कथा का अन्त विषादान्त हुआ है, किन्तु माइकेल ने 'पद्मावती' नाटक को संस्कृत नाटकों के अनुसार प्रसादान्त बनाया है। बंगला-साहित्य के कई आलोचकों ने स्वीकार किया है कि 'पद्मावती' नाटक पर 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' नाटकों का प्रभाव पड़ा है। पद्मावती के साथ इन्द्रनील का मिलन और विच्छेद तथा अंगिरा के आश्रम में उनका पुनर्मिलन शकुन्तला-दुष्यन्त के पुनर्मिलन का स्मरण कराता है।

माइकेल ने 'शर्मिष्ठा' नाटक (१८५९ ई०) के प्रकाशन के दो माह बाद ही 'एकेई कि बले सभ्यता ?' प्रहसन का प्रणयन किया और उसके बाद 'बूड़ो सालीकेर घाड़ रो' लिखा। १८६० ई० के आरम्भ में उनका 'पद्मावती' नाटक प्रकाश मे आया। इसके बाद वे पूर्ण रूप से काव्य साधना में लग गए। बेलगछिया नाट्यशाला के प्रसिद्ध अभिनेता केशवचन्द्र गांगुली को लिखे माइकेल के पत्र से पता चलता है कि इस बीच उन्होंने 'सुभद्रा' नामक नाटक के दो अंक लिखे थे। चूंकि केशवचन्द्र की उक्त नाट्यशाला और उसके संचालक राजाओं में बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी। अतः माइकेल केशव बाबू से परामर्श करके ही कोई नाटक लिखते थे। 'सुभद्रा' को अधूरा छोड़कर उनकी इच्छा रजिया' नाटक लिखने की हुई। इस विषय पर उन्होंने अपने मद्रास प्रवास में एक छोटा काव्य भी लिखा था। मुसलमान पात्र-पात्रियों को लेकर माइकेल ने जब 'रजिया' नाटक लिखना तय किया तब उन्होंने १ सितम्बर १८६० ई० को

केशवचन्द्र को एक पत्र लिखा। उत्तर में केशव बाबू ने 'रजिया' लिखने पर अरुचि दिखाई और मधुसूदन को परामर्श दिया कि वे 'राजस्थान' ग्रन्थ से कहानी लेकर कोई नाटक लिखें। इसका कारण था कि टॉड के 'राजस्थान' से 'पद्मिनी' की उपकथा को लेकर कवि रंगलाल बनर्जी ने १८५८ ई० मे 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य की रचना की थी। इस काव्य-ग्रन्थ की साहित्य-प्रेमियों में बड़ी चर्चा थी। सम्भव है इसी कारण केशवचन्द्र ने 'राजस्थान' का हवाला दिया था।

माइकेल का 'कृष्णकुमारी' नाटक

प्रेरणा का स्रोत

केशवचन्द्र का पत्र मिलते ही मधुसूदन तत्काल कर्नल टॉड के 'राजस्थान' को मनोयोग से पढ़ने लगे और उन्होंने उस ग्रन्थ के प्रथम-खण्ड से 'कृष्णकुमारी' की कहानी का संकलन किया। उनका तीसरा नाटक 'कृष्णकुमारी' इसी प्रयास का फल है। यह नाटक १८६० ई० में लिखा गया, जो उनकी सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति है और बंगला भाषा का प्रथम सर्वोत्कृष्ट नाटक है। उल्लेखनीय है कि इसी काल-खण्ड में उनकी तीन कालजयी रचनाएं लिखी गई, जिनमें एक 'मेघनाद वध' महाकाव्य है, दूसरा श्रेष्ठ 'कृष्णकुमारी' नाटक और तीसरा बहुचर्चित गीतिकाव्य है—'व्रजांगना'। ये तीनों ही रचनाएँ विषादान्त है। कवि-नाटककार मधुसूदन की साहित्य-प्रतिभा को इन ग्रन्थों में देखा जा सकता है। वे पूर्व और पश्चिम की साहित्य विधाओं से परिचित थे और युग-बोध को साक्ष्य मानकर सृजनशील साहित्य का निर्माण कर रहे थे। उनकी इस अव-धारणा को हम अभिनेता केशवचन्द्र गांगुली को लिखे पत्र मे देख सकते हैं और उनकी पांडित्य प्रतिभा को समझ सकते हैं—

"In the great European Drama you have the stern realities of life, lofty passion. and heroism of sentiment. With us it is all softness, all romance. We forget the world of reality and dream of fairylands. The genius of the drama has not yet received even a a moderate degree of development in the country. Ours are drametic poems, and even Willson, the great foreign admirer of our language, has been compelled to admit this. In the Sarmistha, I often stepped out of the path of the dramatist for that of the mere poet. I often forget the real in search of the poetical In the present play, I mean to establish a vigilant guard over myself. I shall not look this way or that way for poetry, if I find here before me, I shall not drive her away, and I fancy, I may safely reckon upon coming across her now and then. I shall endeavour to creat characters who speak as nature suggests and not mouth-mere poetry."

इस पत्र से हम सहज ही मधुसूदन की मानसिकता का अन्दाजा लगा सकते हैं। वे काव्य की कुहेलिका से विरत होकर यथार्थ के धरातल पर पात्रों की सृष्टि करना चाहते थे और यही कारण है कि उन्होंने जीवन के शाश्वत सत्य वियोग का अनुकरण कर

'कृष्णकुमारी' नाटक को वियोगान्त निरूपित किया। यही मौलिक नाटककार का चिन्तन है जो न केवल बंगला नाट्य-साहित्य में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाता है, अपितु 'कृष्ण-कुमारी' को विषादान्त नाटक में परिणत करता है। अपनी इस रूचि के कारण ही माइकेल ने टॉड के 'राजस्थान' से ऐसे उपाख्यान को लिया, जिसके परिप्रेक्ष्य में वे ट्रेजेडी का सही अर्थों में अंकन कर सकें।

यहाँ विचार करने की बात यह भी है कि केशवचन्द्र का पत्र मिलने के साथ ही मधुसूदन ने टॉड के 'राजस्थान' को आद्योपान्त गम्भीरता से पढ़ा और अपनी रूचि का प्लाट चुना जबकि वास्तविकता यह भी है कि बंगला-साहित्य के कृति रचनाकारों मे बंकिम, गिरीश घोष, रंगलाल, द्विजेन्द्रलाल रमेशचन्द्र, स्वर्ण कुमारी आदि ने राष्ट्रीयता की दृष्टि से टॉड के वीर चरित्रों को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाया, वहीं माइकेल ने टॉड के 'राजस्थान' से उपाख्यान तो लिया, पर इस दृष्टि से कि इसके द्वारा जहाँ वे एक ओर राजपूती चरित्रों का यथार्थ की जमीन पर निरूपण कर सकें, वहीं अपनी रूचि और इच्छा को साहित्य में उद्‌घाटित भी कर सकें।

इस प्रसंग में डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य की उक्ति का उल्लेख बड़ा सटीक होगा। आशुतोष बाबू ने 'बांग्ला नाट्य साहित्येर इतिहास' के पृष्ठ १३१ मे लिखा है—'जिस पत्र में केशवचन्द्र ने मधुसूदन को 'रजिया' नाटक लिखने के सम्बन्ध में विरुद्ध मत प्रकट किया था, उसी पत्र में उन्होंने रजिया के स्थान पर राजपूत इतिहास का अवलम्बन कर नाटक लिखने का परामर्श दिया था। क्योंकि राजपूत इतिहास से इसके पूर्व १८५८ ई० में रंगलाल बन्दोपाध्याय ने 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य की रचना की थी और बंगाल के साहित्य-प्रेमी समाज में वह समादरित हुआ था। इसके बाद कोई आधी सदी तक टॉड के 'राजस्थान' ने बंगला-नाट्य और कथा-साहित्य में अपना प्रभावशाली विस्तार किया। नाटक के क्षेत्र में मधुसूदन, द्विजेन्द्रलाल, क्षीरोदप्रसाद आदि ने 'राजस्थान' से उपकरण संग्रह किए थे और कथा-साहित्य के क्षेत्र में बंकिम चन्द्र, रमेशचन्द्र, स्वर्ण कुमारी आदि ने कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी थीं। 'कृष्णकुमारी' की रचना में मधुसूदन ने इस सत्य का उद्‌घाटन अपनी रचना-प्रक्रिया से किया।'

माइकेल ने राजनारायण बसु को 'कृष्णकुमारी' नाटक के सम्बन्ध में अपने एक पत्र में लिखा है—

" ··I have been dramatizing, writting, a regular tragedy in prose ! The plot is taken from Tod. Vol. I, P. 461."

केशवचन्द्र गांगुली को कवि ने पत्र में लिखा—

"For two nights, I sat up for hours over the tremendous pages of Tod and about I.A.M. last Saturday, the Muses smiled! As a true realizer of the Dramatist's conceptions, you will be quite in love with कृष्णकुमारी, as I am. Lord! What a romantic tragedy it will make!"

'कृष्णकुमारी' नाटक १८६० के ६ अगस्त से ७ सितम्बर के बीच लिखा गया और उसका प्रकाशन १८६१ ई० में हुआ। इसे माइकेल ने अभिनेता केशवचन्द्र गांगुली को उत्सर्ग किया है। उल्लेखनीय है कि 'कृष्णकुमारी' १८६१ में प्रकाशित हुआ, किन्तु इसका प्रथम मंचन ८ फरवरी, १८६७ ई० को शोभाबाजार नाट्यशाला में हुआ। कहने का तात्पर्य कोई सात वर्ष बाद 'कृष्णकुमारी' का मंचन हुआ। प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० क्षेत्र गुप्त के शब्दों में—"कृष्णकुमारी' बंगला भाषा का प्रथम ऐतिहासिक नाटक है और काफी हद तक एक सफल नाट्य कृति है। (मधुसूदन रचनावली, पृ० ६१)

मधुसूदन की रचनाओं का संकलन 'मधुसूदन रचनावली' के नाम से साहित्य संसद, कलकत्ता से १९६५ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसके सम्पादक हैं डॉ० क्षेत्र गुप्त।

रचनाकार को जब स्वतन्त्र भाव से अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलता है, तब वह अपेक्षाकृत अधिक सफल होता है। मधुसूदन के शर्मिष्ठा' और पद्मावती' नाटकों में यथा हिन्दू-पुराण और ग्रीक-पुराण का आश्रय लेना पड़ा था। टॉड के इतिहास से जब उन्होंने कृष्णकुमारी का उपाख्यान लिया तो उन्हें सजीव पात्र मिले। पौराणिक पात्रों की तुलना में इतिहास के पचास वर्ष पहले के पात्रों में यथार्थ का पुट होना स्वाभाविक था। कृष्णकुमारी के विषपान की घटना २१ जुलाई १८१० ई० को घटी थी और मधुसूदन ने इस घटना पर १८६० ई० में नाटक लिखा। पुराणों के पात्र तो दैविक थे और इतिहास के पात्र मानवीय थे। मानवीय चरित्रों के द्वन्द्व और जीवन-संघर्ष से लेखक भलीभांति परिचित था। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास नहीं लिखता है, ऐतिहासिक पात्रों को अपनी कल्पना-विलासिता और रूमानियत में वह समकालिक बनाता है। तभी दर्शक ऐसे नाटकों को अपने जीवन से जोड़ते और तदनुरूप उद्बुद्ध होकर प्रेरणा लेते हैं। स्वतन्त्रता के लिए जूझनेवाले, देश की बलिवेदी पर मर-मिटनेवाले वीर, साहसी राजपूत चरित्रों के प्रति तभी तो १९वीं सदी के बंगाल के यशस्वी रचनाकार आकर्षित हुए थे, जिससे वे देशवासियों में विदेशी दासता के प्रति घृणा और मातृभूमि के प्रति आत्मो-

त्सर्ग की भावना भर सकें। जिन राजपूत रमणियों ने सतीत्व के लिए जौहर-व्रत का पालन किया और जीते जी यवनों को अपना अंग तक स्पर्श नहीं करने दिया, ऐसे उदात्त चरित्र कोई दैविक नहीं, अपितु मानवीय थे। इनका आम जनता पर जबर्दस्त असर पड़ना स्वाभाविक था। आजादी की लड़ाई के उस काल में ऐसे वीरोचित-इतिहास का सम्यक चित्रण समय की मांग थी और टॉड के 'राजस्थान' ने इस कमी को पूरा किया।

शायद इसी गरज से माइकेल काव्य की अपेक्षा नाटक लिखने के प्रति आग्रहशील थे। क्योंकि श्रव्य-काव्य तो केवल सुना जा सकता है या पोथियों में लिपिबद्ध किया जा सकता है, किन्तु नाटक दर्शकों के बीच मंचित होते हैं। दृश्य-काव्य का जनता पर सीधा असर पड़ता है। साहित्य की यह विधा बड़ी बलवती होती है। इन सब बातों के साथ माइकेल यह भी चाहते थे कि बंगला नाटक संस्कृत के पाश से मुक्त होकर पश्चिमी ढर्रे पर लिखे जायें, जहाँ केवल प्रस्तावना, नान्दी, नट-नटी, सूत्रधार, विदूषक की भूमिका के साथ सामासिक पदों से युक्त उपमा-अलंकार के लम्बे-लम्बे वाक्य ही न हों, उनमें जीवन को स्पन्दित करने की ऊर्जा भी हो, मानव-जीवन के सुख-दुःख, हास-विलास, मिलन-वियोग का सही चित्रण हो। इसी कारण उन्होंने पात्रों के बहिरंग और अंतरंग मनोभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

आलोचक डॉ० अजित कुमार घोष (बांग्ला नाटकेर इतिहास, पृष्ठ ७८६) ने लिखा है—'कृष्णकुमारी' की कहानी माइकेल ने टॉड प्रणीत 'राजस्थान' से ली है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे जैसे पौराणिक नाटकों के सक्षम रचयिता हैं, ठीक तदनुरूप ऐतिहासिक नाटकों के भी रचयिता हैं। उनके पश्चात बहुत से नाटक बंगला में 'राजस्थान' ग्रन्थ के चरित्रों को लेकर स्वदेश-प्रेम की भावभूमि पर लिखे गए। निस्संदेह इन नाटकों ने देश के अतीत गौरव को उद्घाटित कर हमारे देश-प्रेम-बोध को बहुत अंशों में आलोड़ित किया है। माइकेल के परवर्ती नाटककारों ने ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा है, किन्तु मधुसूदन ने इतिहास के साथ अन्याय नहीं किया है, बल्कि नाटक को इतिहासपरक बनाया है। इस दृष्टि से उनकी प्रशंसा करनी होगी। उन्होंने अपने त्रासदी नाटक के लिए कृष्णकुमारी की शोकपूर्ण कहानी को सोद्देश्य निर्वाचित किया है।'

'कृष्णकुमारी' मधुसूदन दत्त का ही प्रथम ऐतिहासिक नाटक नहीं है, अपितु बंगला भाषा का भी प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। डॉ० सुकुमार सेन ने

(बांग्ला साहित्येर इतिहास, पृष्ठ ८३) पर लिखा है कि राजपूत इतिहास से आख्यान लेकर लिखा गया मधुसूदन दत्त का 'कृष्णकुमारी' बंगला भाषा का प्रथम नाटक है। आपने आगे लिखा है—'कृष्णकुमारी' नाटक बंगला-साहित्य के श्रेष्ठ नाटकों में सर्वोपरि स्थान रखता है। इसके पूर्व एकाधिक वियोगान्त नाटक रचित हुए हैं, किन्तु 'कृष्णकुमारी' ही यथार्थ में बंगला भाषा का प्रथम सार्थक दुखान्त नाटक है। मधुसूदन की स्वदेश प्रीति, राष्ट्रीयता और पराधीनता की वाणी इस नाटक में उच्च स्वर से प्रतिध्वनित हुई है। भीम सिंह के दुःख में ही जैसे हम मधुसूदन के मन की गूंज को सुनते हैं—

भीमसिंह—(गहरी सांस लेकर) 'भगवति ! इस भारतभूमि की क्या वह श्री रह गई है ? इस देश का जब हम प्राचीन वृत्तान्त सुनते और स्मरण करते हैं तब हमें जरा भी विश्वास नहीं होता कि हम मनुष्य हैं। जगदीश, हमारे प्रति इतने प्रतिकूल कैसे हो गए, कह नहीं सकते। हाय ! हाय !! जैसे कोई लवणांबु-तरंग किसी सुमिष्ठि-वारी-नदी में पड़कर, घुलकर उसके सुस्वादु जल को नष्ट कर देती है, इन दुष्ट यवनों ने उसी प्रकार देश का सर्वनाश किया है। भगवति ! क्या हमें इस विपत्ति से कभी छुटकारा मिलेगा ?' (द्वितीय अंक, प्रथम गर्भांक, पृष्ठ १७)

केशवचन्द्र का पत्र

हमने पूर्व में लिखा है उस समय के प्रसिद्ध अभिनेता केशवचन्द्र गंगोपाध्याय ने मधुसूदन को पत्र लिखकर टॉड के 'राजस्थान' से कोई उपाख्यान लेकर नाटक लिखने का परामर्श दिया था। उन्होंने अपने पत्र में लिखा था—

" ··a thought strikes me, can't we call out a subject from the history of the Rajputs ? I believe the field is pretty extensive and may yield annumerable hints for the imagination of a writer like yogrself."

माइकेल ने केशवचन्द्र के सुझाव के मुताबिक कर्नल जेम्स टॉड के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'राजस्थान' से 'कृष्णकुमारी' नाटक की कथावस्तु का चयन किया। मधुसूदन ने 'कृष्णकुमारी' नाटक की भूमिका में लिखा है कि उन्होंने 'राजस्थान' ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के पृष्ठ ४६१ से इस कथा को लिया है—"The plot is taken from Tod's Rajasthan, Vol. I, Page-461." आवश्यकता के अनुसार लेखक ने अन्य अध्यायों से भी तथ्य संग्रह किए हैं, जिन पर हम आगे विचार करेंगे। टॉड के 'राजस्थान' का जो नवीन अंग्रेजी संस्करण दिल्ली से १९८३ ई० में

प्रकाशित हुआ है, उसमें मेवाड़ सम्बन्धी १७वें अध्याय के पृष्ठ ३६५ से ३७२ तक के पृष्ठों में कृष्णकुमारी की विषपान की घटना का वर्णन है।

'कृष्णकुमारी' नाटक की ऐतिहासिकता पर विचार करने के पूर्व टॉड द्वारा वर्णित कहानी का संक्षिप्त रूप पाठकों के सामने रखना उचित होगा। इसका अध्ययन करने से हम देख पायेंगे कि लेखक ने इतिहास का कितना सहारा लिया है और कल्पना को उड़ान भरने के लिए किस परिमाण में घटनाओं, प्रसंगों और तथ्यों को संयोजित किया है।

टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित कहानी

राणा भीम सिंह विक्रम सवत १८३४ (१७७८ ई०) मे अपने बड़े भाई हम्मीर को अकाल मृत्यु के बाद मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। उनके राजत्वकाल मे राजपूती जीवन मे एक अन्धकार का युग चल रहा था। बहुत-सो बाधाओं-विपत्तियों को उन्हें मूकदर्शक की स्थिति मे झेलना पड़ा। इन विपत्तियो में एक दु:खद घटना है उनकी कन्या कृष्ण कुमारी के सम्बन्ध मे। अनिद्य सुन्दरी १६ वर्षीया कृष्णकुमारी जब विवाह के योग्य हुई तो उसके विवाह को लेकर एक मर्मान्तिक घटना घटी। जयपुर के राजा जगत सिंह और मारवाड़ के राजा मान सिह ने भीम सिंह के पास कृष्णकुमारी से विवाह करने के लिए विवाह का प्रस्ताव देकर दूत भेजें। पहले जयपुर के राजा का दूत आया था और भीम सिह ने विवाह की स्वीकृति दे दी थी। इसका कारण था कि मराठों के बार-बार आक्रमण और लूट से राणा अपने को काफी कमजोर समझते थे, किन्तु समस्या तब उत्पन्न हुई जब मारवाड के राजा का दूत विवाह का प्रस्ताव लेकर आया। मान सिंह का तर्क था कि कृष्णा का विवाह मारवाड़ के राजा से होना पहले हो निश्चित हुआ था और अब मारवाड़ की गद्दी पर वह राजा बन कर बैठा है। उसने कहला भेजा कि उससे विवाह न होने पर वह जयपुर के राजा से पाणिग्रहण का विरोध करेगा और मेवाड़ पर आक्रमण करेगा। सिंधिया मान सिह का साथ देने पर तैयार हो गया। इधर जयपुर के राजा ने भो बडी सेना लेकर उदयपुर के पास अपनी छावनी बना ली। परिस्थिति उस समय और जटिल हो गई जब मारवाड़ की गद्दी का दावेदार बन कर धनकुल उपस्थित हुआ। इसका समर्थन जयपुर के राजा और नवाब अमीर खॉ ने किया। युद्ध मे मान सिह पराजित हुआ, पर अमीर खाँ के विश्वासघात से धनकुल मारा गया। इधर मान सिंह की पराजय से राठौरवंशीय सरदार कुपित हो गए और उन्होंने जयपुर की सेना पर आक्रमण कर दिया। फलतः जगत सिंह अपमानित और पराजित होकर भाग गया।

अब पठान अमीर खाँ ने राणा भीम सिह के पास प्रस्ताव भेजा कि या तो वे कृष्णा का विवाह मान सिंह के साथ कर दें नहीं तो कृष्णा की मृत्यु से ही शान्ति स्थापित

हो सकती है। अमीर खाँ के इस षड्यन्त्र में चन्द्रावतों का सरदार अजित सिंह शामिल था। कहा जाता है कि मान सिंह के राठौर सरदारों ने उसे घूस देकर पक्ष में कर लिया था। बाध्य होकर निरुपाय राणा को दूसरी शर्त माननी पड़ी। पहले राणा ने दौलत सिंह को इस अमानुषिक हत्या के लिए तैयार किया। उसके अनइच्छा प्रदर्शित करने पर राणा के भाई जोहनदास को यह कुकृत्य सौंपा गया। जब जोहनदास इस पाशविक हत्या के लिए कृष्णा के पास पहुँचा तो कृष्णा को बात का पता चल गया और उसने तीन बार विषपान कर प्राण-त्याग की चेष्टा की। इस कार्य में जब सफलता नहीं मिली तो चौथी बार विष के साथ अफीम आदि मिला कर उसे पिलाया और वह कुसुमादपि सुन्दरी कोमलांगी मृत्यु को प्राप्त हो गई।

टॉड साहब लिखते हैं—

"Krisnakomari (The Virgin Krishna) was the name of the lovely objects the rivalry for whose hand assembled under the banners of her suitors (Juggat Sing of Jaipoor and Raja Maun of Marwar), not only their native chivalry but all the predatory powers of India, and who like Helen of old involved in destruction her own and the rival Houses." (Tod's Rajasthan, Page 366).

यह दुखान्त घटना २१ जुलाई, १८१० को घटी थी।

नाट्य-साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक निकल (Nicall) ने अपने 'थ्योरी ऑफ ड्रामा' ग्रन्थ के पृष्ठ १२७ पर लिखा है कि पुरुष चरित्र ही सब समय ट्रेजेडी का नायक होता है। स्त्री चरित्र जहाँ प्रधान चरित्र होता है, वहाँ वह निश्चित रूप से शक्तिशाली, दृढ़चेता, पुरुषभावापन्न होगा। कोमल भावना वाली दुर्बल चित्त नारी ट्रेजेडी में अप्रधान और प्रभावहीन होगी।

'कृष्णकुमारी' नाटक की त्रासदी

'कृष्णकुमारी' नाटक में उसके पिता भीम सिंह का चरित्र यथार्थ में ट्रेजैडिक है और इसी वजह से यह नाटक उच्च स्तर का विषादान्त बन पड़ा है। भीम सिंह की कन्या से विवाह करने के लिए दो प्रभावशाली राजाओं की ओर से प्रस्ताव आया है। इनमें से वे किसको रुष्ट करें और किसको तुष्ट यह धर्मसंकट है। ममता के वशीभूत होकर मेवाड़ के राणा अगर एक को कन्यादान करते हैं तो जाहिर है कि दूसरे की क्रोधाग्नि में देश भस्मीभूत हो जायगा और देशभक्त राणा अगर देश की रक्षा करते हैं तो कन्या का विसर्जन करना होगा। इस उभय संकट में फंसे वृद्ध राणा की ट्रेजेडी गहरा उठती है। अन्त में देशहित की विजय होती है। यूरीपिडेस (Euripides) के नाटक 'इफीगेनिया' (Iphigeneia in Aulidi) में देश एवं प्रजा के कल्याण के लिए ग्रीक सेनापति आगामेमनन ने अपनी कन्या इफीगेनिया का उत्सर्ग किया था और 'कृष्ण-

कुमारी' नाटक में राणा भीम सिंह को अपनी कन्या का बलिदान करना पड़ा। इस अमानुषिक कृत्य से राणा ने देश-रक्षा की, यह सच है, पर वे अपनी आत्मा के समक्ष दोषी साबित हुए। ग्लानि, क्षोभ और अनुशोचन से वे विक्षिप्त हो गए। इसी प्रकार अपनी कन्या के स्नेह मे लीयर भी उन्मत्त हो गया था। भीम सिंह आँधी-तूफान की उस काली अमावस की रात में, जब कन्या की हत्या का षड्यन्त्र चल रहा था, लीयर के समान, उद्भ्रान्त हो गए और बार-बार संज्ञाहीन होने लगे। उसके प्रलाप को सुनकर उसकी संज्ञाहीन स्थिति को और यथार्थ संकट को देखकर दर्शक अभिभूत हो क्रन्दन करने लगते हैं। इतना ही क्यों कृष्णकुमारी की माँ अनाहार से प्राण त्याग देती है। सचमुच अन्तिम दृश्य मे भीमसिंह हमें शेक्सपीयर के ट्रेडिक चरित्र का स्मरण बरबस करा देता है। यही माइकेल के दुखान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' की सार्थकता है।

डॉ० क्षेत्र गुप्त ने 'कृष्णकुमारी' नाटक की त्रासदी पर अपना मन्तव्य इन शब्दों मे दिया है "इस नाटक में युग-सन्धि की वेदना का हाहाकार, असहाय, दुर्बल, शक्ति-हीन, अतीत-गौरव से स्खलित जाति का क्रन्दन मुखर हुआ है। मानवीय संवेदनाहीन नीचतापूर्ण कार्य कृष्णा के विषपान के रूप मे महाकाल का भैरवी निनाद है। एक राज-कन्या के विवाह को केन्द्र विन्दु बना कर लगता है जैसे सारे देश को, सम्पूर्ण जाति को युद्ध की ज्वाला में झोंक कर महाक्रन्दन कराया गया है। मधुसूदन ने जहाँ अपनी एक अंगुली से एक राजकन्या की मृत्यु के करुण स्वर को झंकृत किया है, वहीं उन्होंने अपनी शेष चार अंगुलियों से अनजाने में एक महान जाति के क्रन्दन को झंकृत कर दिया है। इससे एक साथ ही इतिहास की व्यापकता, विस्तृति और गाम्भीर्य व्यंजित हुआ है। ('मधुसूदन रचनावली' पृ० ६०)

नाटक को वियोगान्त स्थिति में पहुँचाने के लिए नाटक में जिस पात्र की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है, वह है मदनिका। मृच्छकटिक' नाटक की बसन्तसेना की सहचरी मदनिका के समान ही वह प्रगलभा, प्रवीणा और बुद्धिमति है। मदनिका मधुसूदन की प्रिय चरित्र है, यह हमें उनके एक पत्र से विदित होता है—"But that Madanika is my favourite" ('मधुसूदन-जीवनवृत्त', पृष्ठ ४६५) धनदास धूर्त है, लेकिन मदनिका उससे भी धूर्त है। धनदास उदयपुर जाता है, जगत सिंह के विवाह का प्रस्ताव लेकर और मदनिका जगत सिंह की उपपत्नी विलासवती द्वारा उदयपुर भेजी जाती है। वह विवाह में विघ्न डालने के लिए मानसिंह के चित्र को कृष्णकुमारी को दिखाती है और कृष्णकुमारी का जाली पत्र मानसिंह के पास भिजवाती है। साथ ही धनदास और मारवाड़ के दूत के बीच झगड़ा कराती है। और इस प्रकार विवाह-विध्वंस की पूरी योजना बनाती है।

नाटक में मदनिका के बाद ही धनदास का चरित्र है, वह धनलोलुप, क्रूर स्वभाव का, अनिष्ठान्वेषी एवं प्रवंचक है। शेक्सपीयर के इयागो और धनदास में इतना

ही अन्तर है कि इयागो में क्रूरता जन्मजात है, लेकिन धनदास अर्थ-लोभ में ऐसा करता है। मदनिका द्वारा धनदास हर कदम पर मात खाता है और अन्त में उसे फल भोगना पड़ता है। उसका सिर मुंडवाकर उसे भिखारी बना दिया जाता है। मजेदार बात है कि मधुसूदन ने मदनिका को न तो अनुशोचन का ही अवसर दिया है और न कोई दण्ड ही जबकि सारी खुराफ़ात की वह जड़ है।

इतिहास और कल्पना

माइकेल ने साधारणत. ऐतिहासिक आख्यान के मूल अंश को लिया है, किन्तु उन्होंने नाटक को रोचक और दुखान्त बनाने के लिए काल्पनिक पात्रों का सृजन किया है। राणा भीमसिंह, मारवाड़ के राजा मानसिंह, जयपुर के राजा जगत सिंह आदि पात्रों को तो टॉड के 'राजस्थान' से लिया है, मदनिका, धनदास, विलासवती आदि उनके अपने काल्पनिक पात्र हैं। विलासवती और भीमसिंह की रानी अहिल्या में इतिहास की छाया है, किन्तु उनके नाम काल्पनिक हैं। कुछ घटनाओं में थोड़ा परिवर्तन किया गया है। इन सब पर विचार करने के लिए हमें 'कृष्णकुमारी' नाटक के कुछ पात्रों तथा घटनाओं पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करना होगा।

कृष्णा के विवाह-संकट से राणा भीमसिंह बाध्य हो गए थे, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है और इसीलिए उन्हें कन्या की हत्या करने की स्वकृति देनी पड़ी। इस विषय में टॉड ने लिखा है—

"When the Pathan revealed his design that either the princess should wed Raja Maun, or by her death seal the peace of Rajwarra, whatever arguments were used to point the alternative, the Rana was made to see no choice between consigning his beloved child to the Rathore Prince, or witnessing the effects of a more extended dishonour from the cengeance of the Pathan and the storm of his palace by his licentious adherents—the fiat passed that Krishna Komari should die." (Ibid—Page 368).

मधुसूदन ने नाटक में पठान अमीर खाँ के पत्र का हवाला न देकर एक गुप्त पत्र का वर्णन किया है तथा शेक्सपीयर के नाटकों की भाँति पद्मिनी का स्वप्न-दृश्य दिखलाया है। इतना तो निश्चित है कि कृष्णा का रूपलावण्य इस संकट का कारण बना। वैसे इतिहास और पुराणों में अक्सर युद्ध का कारण जर या जोरू अर्थात् कोई रूपवती रमणी ही रही है। यहाँ 'रूपवती भार्या' शत्रु की बात तो नहीं, किन्तु रूपवती कन्या की बात है। रानी पद्मिनी और हेलेन की रूपराशि से युद्ध-विग्रह की बातें इतिहास में काफी वर्णित हैं। द्रौपदी का चीरहरण और सीता का अपहरण महाभारत-

रामायण की मुख्य घटनाएँ हैं। आल्हा-ऊदल तक में यह बात किम्बदन्ती के रूप में नहीं यथार्थ में दोहराई गई है—

'जेकर बिटिया सुन्दर देखी तापर जाय धरे हथियार'

टॉड ने लिखा है—'कृष्णकुमारी का अपूर्व सौन्दर्य उसी प्रकार उसके पिता और प्रेमियों को नष्ट करने का कारण बना जैसे हेलेन के रूप-सौंदर्य के कारण उसके स्वामी और शत्रुओं को चिर-निद्रा में सो जाना पड़ा।' ग्रीक देश के महाकवि होमर ने इसी रूपसी हेलेन को नायिका बनाकर अपना प्रसिद्ध महाकाव्य 'इलियड' लिखा है।

कृष्णकुमारी अपने समय की सुन्दरी थी। साक्ष्य के लिए टॉड का उद्धरण इसका प्रमाण है—

"Krishna Komari Bae the 'Virgin Princess Krisha', was in her sixteenth years, her mother was of the Chawura race, the ancient kings of Anhulwara. Sprung from the noblest blood of Hind, she added beauty of face and person to an engaging demeanour, and was justly proclaimed the 'flower of Rajasthan" (Ibid—Page 367).

इतिहास के सत्य को ग्रहण न कर माइकेल ने कल्पना का सहारा लेकर जो बातें स्पष्ट कहीं हैं, उनमें अपरापर सम्बन्ध सेतु बांधने का प्रयत्न किया है। मदनिका पूर्णरूप से काल्पनिक पात्र है। कृष्णा से विवाह करने के लिए जगत सिंह उत्सुक है। उस स्थिति में उसकी रानी का प्रतिहिंसा परायण होना स्वाभाविक है। शायद यही दिखाना लेखक का अभीष्ट था। लेकिन हम देखते हैं कि मदनिका इस प्रकार षडयन्त्र करती है कि जगत सिंह जब कृष्णा से विवाह करना चाहता है तभी मानसिंह भी विवाह की इच्छा जाहिर करता है। इतना अवश्य है कि कृष्णा मारवाड़ के पूर्व राजा की वाग्दत्ता थी और इसी अधिकार को मारवाड़ का राजा होने के कारण मानसिंह ने भी उपस्थित किया था। हो सकता है इतिहास की इन अस्पष्ट बातों तथा नाटकीय चमत्कार हेतु नाटककार ने इस घटना को संजोया हो? विलासवती माइकेल का दिया हुआ अपना नाम है। जैसे 'मृच्छकटिक' की मदनिका के समान आलोच्य नाटक में मदनिका अवतरित हुई है, उसी भाँति शूद्रक के 'मृच्छकटिक' की वसन्तसेना की छाया हम विलासवती में देखते हैं। इसके सम्बन्ध में मधुसूदन ने स्वयं लिखा है—

"Jagatsing of Jaipur had a favourite mistress. Tod gives her name as 'Essance of Camphor.' I think we may bring her in and allow her jealousy full play."

उन्होंने आगे लिखा है—

"I have tried to represent Jagatsing as I find in History a somewhat silly and voluptuous fellow."

जगत सिंह और कर्पूरमंजरी

जयपुर के राजा जगत सिंह का चरित्र टॉड ने भी निम्न कोटि का बताया है। वह हमेशा स्त्रियों से घिरा रहता था, राजकार्य में रूचि नहीं रखता था। उसके गिरे हुए चरित्र को ही लेखक ने नाटक में दर्शाया है। जगत सिंह की एक विशेष वारांगना के प्रति आसक्ति थी। टॉड ने इस वारांगना का नाम 'कर्पूरमंजरी' दिया है और मधुसूदन ने उसे विलासवती नाम से हमारे सामने रखा है। वह राजा से प्रेम करती थी, अनुरक्त थी, पर अन्य वेश्याओं के सदृश्य उसका चरित्र नहीं था। जब उसने सुना कि जगत सिंह मेवाड़ की कन्या से विवाह कर उसे रानी बनाना चाहता है तो सौत की ईर्ष्या का भाव उसके मन में जगा। उसने मदनिका की मदद से विवाह में विघ्न डालने का षड्यन्त्र रचा।

टॉड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड में 'आमेर (जयपुर) के इतिहास' का वृत्तान्त के तीसरे अध्याय के ३०३ पृष्ठ पर जो विवरण दिया है, उससे जगत सिंह के दुश्चरित्र का पूरा उद्‌घाटन हो जाता है और कर्पूरमंजरी के प्रति उसकी आसक्ति का पता चलता है।

"Juggat Sing succeeded in A. D. 1803, and ruled for seventeen years, with the disgraceful distiction of being the most dissolute prince of his race or of his age ..Semetimes the daily journals (Akbars) disseminated the scandal of the 'rawula' (femel apartments), the follis of the libertine prince with his concubine Rascaphoor or even less worthy objects, who excluded from the nuptial couch his lawful mates of the noble blood of Joda or Jessa, the Rathores and Bhattis of the desert." (Ibid, Page 303)

इस प्रकार प्रमाणित होता है कि राजा जगत सिंह कापुरुष और इन्द्रियलोलुप था। इसे 'टॉड-राजस्थान' के हिन्दी अनुवादक प० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने भी स्वीकार किया है, किन्तु जहाँ माइकेल ने विवाह-विध्वंस में विलासवती, धनदास और मदनिका को प्रमुखता दी है, वहीं पं० ज्वाला प्रसाद और महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' ग्रन्थ में इस मार्मिक घटना को उकसाने में पोकरण (जोधपुर राज्य) के ठाकुर सवाई सिंह को दोषी ठहराया है। 'राजस्थान' के हिन्दी अनुवाद ग्रन्थ के पृष्ठ ६२४ पर लिखा है—'पोकरण का अधिपति सवाई सिंह महाराज मानसिंह से असंतुष्ट था। वह मानसिंह के स्थान पर धोकल सिंह को मारवाड़ की गद्दी पर बैठाना चाहता था। मानसिंह के पूर्व मारवाड़ की गद्दी पर भीमसिंह विराजमान था। उसकी मृत्यु होने पर उसकी रानी से धोकल सिंह का जन्म हुआ था। सवाई सिंह ने एक तरफ तो जयपुर के राजा जगतसिंह के पास मेवाड़ के

राणा भीमसिंह की रूपवती कन्या कृष्णा से विवाह के लिए प्रस्ताव भेजने की बात कही और दूसरी ओर मेवाड़ के महाराज मानसिंह से मिलकर मित्रवत बातचीत में कहा कि आपको मेवाड़ की परम सुन्दरी कृष्णा से विवाह करना चाहिए क्योंकि वह मारवाड़ के स्वर्गीय राजा भीमसिंह की वाग्दत्ता है।

षड्यंत्र के मूल में

सवाई सिंह के इस षड्यन्त्र से इन्द्रिय-लोलुप जगत सिंह ने सेना सहित उपहार भेजकर विवाह का प्रस्ताव किया और दूसरी ओर मदान्ध मानसिंह सेना लेकर उदयपुर की तरफ बढ़ आया। दो प्रेमियों के इस द्वन्द्व की मर्मान्तक परिणति है 'कृष्णा का विषपान।'

सवाई सिंह (पोकरण) की इस घटना का उल्लेख हम टॉड के 'राजस्थान' के २७वें अध्याय मे पृष्ठ ५६४ पर इस प्रकार पाते हैं—

' His (Raja Maun) predecessor, Raja Bheem, left a widow pregnant, she concealed the circumstance, and when delivered, contrived to convey the child in basket to Sowae Sing of Pokurna. During two years he kept the secret, he at length convened the Marwar Chieftains, with whose concurrence he communicated it to Raja Maun, demanding the cession of Nagore and its dependancies as a domain for this infant, named Dhonkul Sing, the heir-apparent of Marwar." (Ibid, Page 564)

स्वर्गीय भीमसिंह की विधवा रानी से जब बच्चे के बारे में पूछा गया तो उसने इन्कार कर दिया (She disclaimed the child) शायद रानी ने मानसिंह के भय से ऐसा किया हो या अन्य किसी कारण से। सवाई सिंह ने उस समय चुप रहना ही उचित समझा और बालक को जयपुर राज्यान्तर्गत खेतड़ी के शेखावत महाराज के संरक्षण मे भेज दिया। खेतड़ी नरेश जयपुर घराने से ही थे। बाद में जब कृष्णकुमारी के विवाह को लेकर विवाद छिड़ा तो सवाई सिंह ने इसी धोकल सिंह को मारवाड़ का उत्तराधिकारी बना कर पेश किया। माइकेल ने इसका नाम धनकुल दिया है।

मधुसूदन ने नाटक में दिखाया है कि युद्ध में धोकल सिंह या धनकुल मारा गया और जयपुर के राजा को भी पराजय का मुख देखना पड़ा।

ओझाजी और टॉड

राणा भीमसिंह ने निरुपाय होकर अपने भाई बलेन्द्र सिंह को कृष्णा की हत्या के लिए कहा। इच्छा न रहते हुए भी बलेन्द्र सिंह ने आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया, पर जब वह तलवार लेकर महल में गया तो उसकी आत्मा काँप गई। उसने जब अपने

सामने सोलह वर्षीया रूप की सागर भतीजी को देखा तो हृदय ममत्व से पसीज गया और उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी। अन्त में कृष्णा ने जहर पीकर स्वयं आत्महत्या की, लेकिन टॉड ने लिखा है कि राणा ने सबसे पहले अपने दूर के रिश्तेदार दौलत सिंह को कन्या की हत्या के लिए कहा था। ओझाजी ने भी अपने इतिहास ग्रन्थ के पृष्ठ ६९६ पर लिखा है—'राणा ने महाराज दौलत सिंह (भैरवसिंहोत) को बुलाकर कृष्णा का वध करने की आज्ञा दी। यह सुनकर दौलत सिंह का क्रोध भड़क उठा—"ऐसा क्रूर और अमानुषिक आदेश देने वाले की जीभ कट कर गिर जानी चाहिए। निरपराध अबला पर हाथ उठाना मेरा धर्म नहीं है, यह तो हत्यारों का काम है।' तब राणा ने महाराज अरिसिंह (दूसरे) पासवानिये के (अनोरस) पुत्र जवानदास (जोहनदास) को हत्या की आज्ञा दी। कटार लेकर उसने अन्त:पुर में प्रवेश किया, परन्तु सोलह वर्ष की उस सुकुमारी एवं रूपवती राजकुमारी को देखकर उसका शरीर कांपने लगा और हाथ से कटार गिर गई।

ओझाजी की उक्ति के साक्ष्य में टॉड का वक्तव्य यहाँ प्रस्तुत है—

"Maharaja Dowlut Sing, descended four generations ago from one common ancestor with the Rana, was first sounded "to save the honour of Oodipoor" but, horror—struck, he exclaimed, "Accursed the tongue that commands it! Dust on my allegiance, if thus to be preserved!" The Maharaja Jowandas, a natural brother, was then called upon He accepted the poniard, but when in youthful loveliness Krishna appeared before him, the dagger fell from his hand and he returned more wretched than the victim" (Ibid, Page 368).

अपनी मेवाड़ यात्रा में कर्नल टॉड महाराजा दौलत सिंह से मिले थे और उनके वीरोचित स्वभाव से प्रभावित थे। वे दौलत सिंह को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

माइकेल ने नाटक में जवानदास या जोहनदास को बलेन्द्र सिंह के नाम से अभिहित किया है। ओझाजी ने राणा भीमसिंह की रानी का नाम चावड़ी बताया है और टॉड ने उसका कोई नाम नहीं दिया है जबकि माइकेल ने नाटक में उसका नाम अहिल्या दिया है। बलेन्द्र सिंह पर पाश्चात्य प्रभाव देखा जा सकता है। इस चरित्र के बारे में मधुसूदन ने लिखा है—

"I wish Bullender to be serious and like 'Bastard in King John.', (शेक्सपीयर द्वारा प्रणीत नाटक—"The life and death of King John."

भविष्यवाणी

पठान अमीर खाँ और अजीत सिंह के षड्यन्त्र से कृष्णकुमारी को विषपान कराया गया। जब तक वह मर न गई, इन षड्यन्त्रकारियों को चैन नहीं मिला, किन्तु बाद में अमीर खाँ को उसकी आत्मा धिक्कारने लगी। कहते हैं कि दुराचारी अजित सिंह इस अनर्थ का मूल था। अमीर खाँ ने उसे दुत्कारा—'राजपूतों के लायक क्या यही काम है? हट मेरे सामने से, दूर हो, मैं तेरा मुख तक देखना नहीं चाहता।'

इसी प्रकार शक्तावत सरदार संग्राम सिंह ने भी अजीत सिंह को जलील कर फटकार सुनाई थी। इस भर्त्सना को महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' के पृ० ६६८ पर इन शब्दों में व्यक्त किया है—

'कृष्णकुमारी की दुःखद घटना के चार दिन बाद संग्राम सिंह शक्तावत, जो अजीत सिंह चूड़ावत से प्रत्येक बात में भिन्न प्रकृति का बड़ा वीर तथा योग्य था। उदयपुर पहुँचा और बिना आज्ञा के दरबार में घुस आया। वहाँ अजीत सिंह को देखते ही उसने गुस्से में आकर कहा—'तूने अपने बेदाग वंश पर इतना गहरा दाग लगा दिया है कि उसे अब कोई शिशोदिया मिटा नहीं सकता। बप्पा रावल के वंश का नाश अब निकट है और यह दुर्घटना उन नाश का लक्षण है।' यह सुनकर महाराणा ने हाथों से अपना मुख ढक लिया।

तब उसने फिर कहा—'तू शिशोदिया वंश के लिए कलंक का रूप है। हम सबको तूने शर्मिन्दा कर दिया है। तू भी निःसन्तान मरेगा और तेरे साथ ही तेरा नाम नष्ट हो जायेगा। क्या अमीर खाँ पठान ने मेवाड़ को नष्ट कर दिया था कि उसकी रक्षा के लिए तुझे कृष्णकुमारी को मारना आवश्यक हो गया? और यदि ऐसा भी हो गया था, तो क्या तू अपने पूर्वजों की तरह मर नहीं सकता था? क्या तू चित्तौड़ के साकों को भूल गया? अगर तू शत्रुओं पर तलवार लेकर कूद पड़ता, तो तेरा नाम अमर हो जाता। भय से तेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी। यदि तू निरपराध अबला के प्राण लेने के बजाय शत्रु को नष्ट करता, तो कितना अच्छा होता, किन्तु हमारे वंश का नाश निकट आ गया है।'

संग्राम सिंह की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इस दुःखद घटना के एक माह के अन्दर ही अजीत सिंह की पत्नी और उसके दोनों पुत्र मर गए। इससे वह

विरक्त होकर अपने पापों के प्रायश्चित्त के लिए हाथ में माला लिए 'राम-राम' अपना मन्दिरों में पागलों की तरह घूमने लगा, फिर भी उसके मन को शान्ति नहीं मिली। वस्तुतः इस अमानवीय काण्ड के बाद मेवाड़ की स्थिति अच्छी नहीं हुई। बप्पारावल का तेज लुप्त हो गया। यहाँ तक कि महाराणा के ८५ बेटे-बेटियों में से सिर्फ कृष्णा का सगा भाई जवान सिंह ही बचा। १८१८ ई० में मेवाड़ की अंग्रेजों से सन्धि हो गई और कर्नल टॉड पोलिटिकल एजेन्ट होकर उदयपुर आये।

स्थान निर्धारण

'कृष्णकुमारी' नाटक की रचना के साथ ही साथ संस्कृत नाटकों के आदर्श पर लिखे जानेवाले नाटकों का युग समाप्त हो गया। इस नाटक की सफलता से स्वभावतः नाटककार पाश्चात्य नाट्य-पद्धति की ओर आकृष्ट हुए। यहाँ तक कि संस्कृत के पंडित रामनारायण तर्करत्न ने भी अपने परवर्ती मौलिक सामाजिक नाटक 'नव-नाटक' में इस पथ का अनुकरण करने का प्रयास किया। प्रत्यक्ष रूप से रामनारायण का अंग्रेजी साहित्य से विशेष लगाव नहीं था, फिर भी उन्होंने मधुसूदन के 'कृष्णकुमारी' तथा दीनबन्धु मित्र के नीलदर्पण' नाटक को ही अपनी रचना-प्रक्रिया का आदर्श माना।

डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य ने अपनी 'बांग्ला नाट्य-साहित्येर इतिहास' पुस्तक के पृष्ठ १३२ पर लिखा है—'कृष्णकुमारी', एक युगान्तरकारी रचना है। इसे कई दृष्टियों से समझा जा सकता है। पहली बात यह है कि ऐतिहासिक नाटक के रूप में यही बंगला-साहित्य की प्रथम कृति है। दूसरी बात है कि संस्कृत नाट्य-पद्धति से मुक्त यही पश्चिमी धारा का अनुसरण करने वाला बंगला का प्रथम नाटक है। तीसरी बात है कि चरित्र सृष्टि की दृष्टि से भी यही प्रथम नाटक है, जिसमें इतिवृत्तात्मकता से दूर हटकर मौलिक ढंग से यथार्थ की जमीन पर मानवीय चरित्रों का सृजन किया गया है। इन तमाम दृष्टियों से बंगला-साहित्य में 'कृष्णकुमारी' का ऐतिहासिक महत्व स्वयंसिद्ध हो जाता है।'

माइकेल और शेक्सपीयर

पश्चिमी शिक्षा और भावबोध के सम्पर्क से जिस नए समाज की संरचना हो रही थी, वस्तुतः माइकेल उसी की उपज थे और तदनुरूप उनकी साहित्यिक प्रतिभा का विकास हो रहा था। समाज में आहिस्ता-आहिस्ता परिवर्तन आ रहा था और पश्चिम

के साहित्य संस्कारों को प्रबुद्ध समाज हर्ष और ललक से ग्रहण कर रहा था। इसे केवल एक उदाहरण से समझा जा सकता है कि माइकेल के 'मेघनाद बध' काव्य पर तो लोगों ने नाक-भौं सिकोड़ने का भाव प्रदर्शित किया, किन्तु 'कृष्णकुमारी' के प्रसंग में ऐसा नहीं हुआ। राष्ट्रीय विसंगति होने पर भी उसे उच्च स्वर से सराहा गया। एक ही काल की एक ही रचनाकार की दोनों रचनाएँ हैं। दोनों के प्रति भिन्न दृष्टिकोण होने का कदाचित यह कारण हो सकता है कि 'मेघनाद-बध' पौराणिक दैविक आख्यान था, जो सर्वजन विदित था। इसकी नवीनता थी कि कवि ने अपनी काव्य-कृति का नायक इसमें राम के स्थान पर मेघनाद को बनाया था, पर 'कृष्णकुमारी' की कहानी समकालीन इतिहास की मानवीय मर्मस्पर्शी घटना थी। इस ट्रेजेडी नाटक के प्रति विशेष रुझान होने का कारण था। तत्कालीन शिक्षित समाज में शेक्सपीयर के त्रासदी नाटकों का अबाध रूप से मंचन हो रहा था। अतः 'कृष्णकुमारी' ऐसे ट्रेजेडी नाटक को देखने और आनन्द लेने की लोगों में बलवती स्पृहा थी।

केवल भावगत सादृश्य के आधार पर ही 'कृष्णकुमारी' को पश्चिमी ढर्रे पर लिखा नाटक नहीं कह सकते हैं। इसके चरित्र भी अंग्रेजी नाटकों की छाया लिये हुए हैं। राणा भीमसिंह और बलेन्द्र के बारे में हमने पहले ही अपना मत व्यक्त किया है। मदनिका पुरुष वेष में बड़े दुस्साहसिक कार्य करती है। लगता है इसका अनुसरण मधुसूदन ने शेक्सपीयर के नाटकों से किया है। शेक्सपीयर ने 'एज यू लाइक इट' मे स्त्री-पात्र गनीमेडे (Ganimede) एवं 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' में पोर्शिया (Portia) को पुरुष वेष में उपस्थित कर रोचकता और कुतूहल पैदा किया है। असल में शेक्सपीयर-युग में स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष करते थे। अतः स्त्री-चरित्रों को पुरुष की वेश-भूषा में दिखाना असंगत नहीं लगता था। हमारे देश में भी मधुसूदन के समय की बात तो सवा सौ वर्ष पुरानी है, पारसी थियेटर कम्पनियों के युग तक स्त्रियों का पार्ट पुरुषों को ही करना पड़ता था। यूँ आज भी रामलीला, नौटंकी और फाग आदि में पुरुष ही स्त्री-चरित्रों का अभिनय करते हैं। मधुसूदन के युग के बाद धीरे-धीरे नारी-शिक्षा का सूत्रपात हुआ और कुछ हद तक नारी को स्वतंत्रता मिली तब भी बड़ी मुश्किल से सम्भ्रान्त महिलाएँ रंगमंच पर आने का साहस जुटा पाती थीं। देश में स्वतंत्रता के समय तक रंगमंच इससे अधिक पीड़ित था। रजत-पट ने जैसे-जैसे रंगमंच का चरवण करना शुरू किया यह समस्या मिटी और आज तो

हीरोइन बनना एक क्रेज में शुमार हो गया है। साधारण घरों की कौन कहे अब तो कुलीन सुगृहणियाँ तक रजतपट की तारिका बनने के लिए बावली हैं। पता नहीं दूरदर्शन के आने के बाद स्थिति किस सीमा में पहुँचेगी ?

इन पंक्तियों के लेखक का अपना निजी अनुभव है कि अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की सुधार-समिति के द्वारा जब पहली बार १९४९ ई० में मिनर्वा थियेटर के रंगमंच पर समाज की ओर से नाटक खेले गए तब एक सामाजिक क्रान्ति का कार्य किया गया। यह कार्य था कि सम्भ्रान्त घरों की महिलाओं ने रंगमंच पर पहली दफा अभिनय किया। आज 'अनामिका' आदि के मंच पर अनेक महिला रंगकर्मी चर्चित हैं, पर उस समय अवश्य ही यह एक युगान्तकारी कार्य था। हमारे साथ उस समय स्व० भँवरमल सिंघी, सुशीला सिंघी, ज्ञानवती लाठ, श्यामानन्द जालान आदि अभिनय में सक्रिय थे और पं० ललित कुमार सिंह 'नटवर' का कुशल निर्देशन था।

आलोचना

'कृष्णकुमारी' नाटक में एक कमी खटकती है। इसका एक प्रधान पात्र यवनिका के पीछे ही रह गया है। यह है मारवाड़ का राजा मानसिंह, जिसने कृष्णा के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा था और उसी के कारण विवाह एक समस्या बन गया था। मानसिंह इस दृष्टि से जगत सिंह का प्रतिद्वन्द्वी है। अगर जगत सिंह को नायक माना जाय तो कहना होगा मानसिंह प्रतिनायक है। प्रतिनायक की भूमिका का स्पष्ट चित्रण नाटक में दर्शकों के समक्ष न होना अभाव को व्यंजित करता है। पात्रों के कथोपकथन से ही उसकी भूमिका का निर्वाह किया गया है। कृष्णकुमारी के प्रणयी के रूप में संस्कृत नाटकों की भाँति उसे धीरोदात्त नायक चित्रित किया जाता तो वियोगान्त नाटक की सृष्टि में करुण-रस का गहरा परिपाक होता। सम्भव है ऐतिहासिकता को बरकरार रखने के लिए नाटककार ने ऐसा किया हो ? क्योंकि टॉड ने मानसिंह के चरित्र का अधिक उल्लेख नहीं किया है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि नाटक में तो मानसिंह की अनुपस्थिति खटकती है, पर नाटक की सम्यनिष्ठा पर कोई आँच नहीं आती। यह भी मुमकिन है कि संकलन त्रय में स्थानगत ऐक्य के कारण लेखक ने ऐसा किया हो ?

अलौकिक दृश्यों की अवतारणा

'कृष्णकुमारी' नाटक में अलौकिक दृश्यों की अवतारणा की गई है। आधुनिकता की दृष्टि से भले ही ऐसे दृश्यों को त्रुटि मान लिया जाय तो भी कहना होगा इससे नाटक के सौंदर्य की क्षति नहीं हुई है। पर इतना तो मानना ही होगा कि नाटक की

शेष परिणति को एक अलौकिक स्वप्न-दृश्य मे बहुत पहले ही नाटककार ने दिखाया है, जिससे उत्सुकता में किंचित् व्याघात हुआ है।

पंचम अंक के तृतीय गर्भांक मे रानी अहिल्या तपस्विनी को अपने एक दुःख-स्वप्न की बात कहती है—

अहिल्या—'मेरी कृष्णा जैसे पलंग पर सोई है और तभी एक पुरुष खड्ग लेकर उसकी हत्या के लिए आता है।'

स्वप्न की इस घटना को इसी गर्भांक मे सत्य रूप में परिणत किया जाता है। कहा जा सकता है कि Coming events cast their shadow before याने भावी घटनाएँ अपने पूर्वाभास की प्रतिच्छाया पहले दर्शाती हैं। शेक्सपीयर के नाटकों में अलौकिक घटनाओ की भरमार है। वस्तुतः समसामयिक रुचि संस्कार और धार्मिक विश्वास को आधार मानकर ही साहित्य की रचना होती है। १६वीं सदी में हमारे देश के लोगों में ऐसी अलौकिक घटनाओं के प्रति आस्था थी और शेक्सपीयर के युग के लोगों में भी। ज्ञान-विज्ञान के सम्प्रसारण और रेशनल भावबोध के कारण अब लोगों में अंध-विश्वास के प्रति अरुचि जरूर पैदा हुई है फिर भी कुछ लोग अलौकिक घटनाओं में एक खास किस्म की दिलचस्पी लेते हैं। अलौकिक स्वप्न-दृश्य हमें बंकिम के 'विषवृक्ष' उपन्यास में भी मिलते हैं। इन दृश्यो को रचना का बाह्य सौष्ठव मानना ही संगत होगा। बाह्य अलंकरणों से रचना कुछ अंशों में सुन्दर तो बनती है, पर बौद्धिक आधार पर हृदय उसे ग्रहण करने में थोड़ा हिचकिचाता है।

संस्कृत कवि का कथन

कवि कालिदास ने कहा है 'स्नेह पापशंकी होता है और अशुभ की आशंका करता है।' जब हमारा कोई प्रिय परदेश जाता है तो हम उसके अशुभ की चिन्ता अधिक करते हैं और यही भावनाएँ स्वप्न बनकर हमारे हृदय-मस्तिष्क को मथती रहती हैं। तब अहिल्या का पुत्री के बारे मे शंकित होना कहाँ अजूबा है ?

शेक्सपीयर ने अलौकिक घटनाओ के साथ-साथ भूत-प्रेतो का वार्तालाप भी प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों में कभी-कभी अशरीरी आत्मा आकर नाटक के प्रयोजन को सिद्ध कर जाती है। इस विषय मे 'हैमलेट' नाटक में युवराज हेमलेट ने अपने दार्शनिक मित्र होरेशियो को जो वाक्य कहा वह आज भी चर्चित प्रवाद बना हुआ है—"There are more things in heaven and earth than are dreamt of in your philosophy." हेमलेट ने अपने मृत पिता की प्रेत-मूर्ति

के दर्शन किए और उससे उपदेश भी ग्रहण किये। 'जूलियस सीजर' नाटक में सीजर की मृत्यु के बाद उसकी प्रेतात्मा नाटक की घटनाओं को जबरदस्त ढंग से प्रभावित करती है। मेकबेथ' नाटक में मेकबेथ से जिन डायनों की भेंट हुई थी, वे सिर्फ अलौकिक शक्ति सम्पन्न ही नहीं थीं, नाटक में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका भी है।

बंकिम का अभिमत

बंकिम यह मानते थे कि तर्क की कसौटी पर अतिप्राकृत या अलौकिक घटनाएँ नहीं टिक पातीं। उनका संयोजन अगर नाटक या उपन्यास में किया जाता है तो उससे साहित्य के रस-प्रवाह में विघ्न पड़ता है। किन्तु देखा गया है कि बंकिम ने स्वयं ज्योतिषियों और ज्योतिष-गणना को अपने 'राजसिंह' उपन्यास में स्थान दिया है। 'कृष्णकुमारी' नाटक में जिन अलौकिक घटनाओं का दृश्यांकन किया गया है, उनके पीछे कौन-सा तर्क है तथा नाटक की परिणति को उन्होंने कितना प्रभावित किया है, इस पर विचार करना समीचीन होगा।

आलोच्य नाटक के तृतीय अंक में हम अलौकिक घटना को देखते हैं, जिसमें रानी पद्मिनी को दिखाया गया है। वैसे इसका पूर्वाभास हमें दूसरे अंक में भीमसिंह और उसकी रानी अहिल्या के वार्तालाप से हो जाता है। इस बातचीत में रानी पद्मिनी और उसके जौहर का प्रसंग आता है।

रानी पद्मिनी के अलौकिक आविर्भाव के पूर्व एक स्वप्न-दृश्य दिखाया गया है। इस स्वप्न को नाटक की काल्पनिक पात्र तपस्विनी देखती है, जिसका नाम है भगवती कपालकुण्डला। कृष्णकुमारी के विवाह में विघ्न उपस्थित होने की आशंका से ही वह त्रिपटी में भगवान गोविन्दजी के मन्दिर में एक कुस्वप्न देखती है। इस स्वप्न को अलौकिक की संज्ञा नहीं दी जा सकती। क्योंकि साधारणतः जब हमारे चेतन मन में कोई क्रिया होती है तब अवचेतन मन में उसकी प्रतिक्रिया होती है और हम स्वप्न देखते हैं। किन्तु जब स्वप्न भविष्य की किसी घटना का संकेत करता है तब हम उसे अलौकिक या दैविक संकेत कहते हैं। ऐसा स्वप्न दर्शन पंचम अंक के तृतीय गर्भांक में है, जिसे अहिल्या देखती है। इसके तत्काल बाद ही कृष्णा की हत्या के लिए बलेन्द्र उपस्थित होता है।

रानी अहिल्या के इस स्वप्न में उसका मानसिक उद्वेलन है। वह अपनी कन्या के भविष्य के प्रति चिन्तित है और चिन्ता का स्वप्न में तब्दील हो जाना स्वाभाविक है। ऐसे ही एक स्वप्न की चर्चा पंचम अंक के द्वितीय गर्भांक में चार संन्यासियों के वार्तालाप में होती है। इन संन्यासियों में एक गुसाईंजी हैं। इन्होंने अपने संध्याकालीन ध्यान में एक अलौकिक स्वप्न देखा है, जो अशुभ संकेत देता है।

पद्मिनी की प्रेरणा

स्वप्न की सभी घटनाओं को हम छोड़ भी दें तब भी तृतीय अंक के द्वितीय गर्भांक में जिस अलौकिक घटना का वर्णन हुआ है, उससे नाटक की शेष परिणति अत्यधिक प्रभावित होती है। उस समय तक कृष्णकुमारी के मन में द्वन्द्व उतना गहरा नहीं हो पाया है। क्योंकि जयपुर का राजा उससे विवाह करना चाहता है और मान सिंह के प्रति उसके हृदय में अनुराग का स्फुरण हुआ है! विवाह होने पर उसे माता-पिता और उदयपुर के उपवन को छोड़कर जाना पड़ेगा—यह स्वाभाविक है। हिन्दू कन्या के साथ ऐसा होता आया है। इसी उधेड़बुन में चिन्तन करती हुई कृष्णा जब फुलवाड़ी मे परिभ्रमण कर रही है तभी अकस्मात सारा उद्यान जैसे एक पद्मगन्ध से सुवासित हो जाता है। उसके शरीर मे सिहरन की झुर्झुरी होती है। वह थम कर रुक जाती है। उसी समय आकाश में मधुर वाद्यध्वनि बज उठती है। कृष्णा उसे सुनने के लिए उत्सुक होकर आकाश की ओर देखती है और संज्ञाहीन हो जाती है। तपस्विनी उसकी यह दशा देखकर त्वरित वहाँ आती है और उसे अपनी गोद में ले लेती है। कृष्णा तब भी आकाश की ओर कातर दृष्टि से देखती है और कहती है—'आप उस मधुरवाणी को फिर से सुनाइए।'

ज्ञान-शून्य होने के बाद जो स्वप्निल घटना घटती है, उसका बखान कृष्णकुमारी ने खुद किया है। इस अद्भुत घटना को केवल वही देखती है, तपस्विनी नहीं। प्रमाण है कि तपस्विनी न तो आकाश में बजने वाली मनमोहक ध्वनि को सुन पाती है और न कुछ देख पाती है। कृष्णा को अनुभव होता है जैसे वह स्वर्ण-मंदिर में बैठी है। देखती है कि एक परम सुन्दरी रमणी उसके सामने आती है। रमणी के हाथ में कमल पुष्प है। वह कहती है—'मुझे प्रणाम करो, मैं तुम्हारी जननी हूँ। जो युवती इस महान कुल की मर्यादा की रक्षा अपने प्राण देकर करती है, स्वर्ग में उसका स्वागत होता है। मैं भी इसी कुल की वधू हूँ—मेरा नाम पद्मिना है। तुम भी मेरी भाँति साहस का कार्य करोगी तो अवश्य ही मेरे समान ही तुम्हारा गौरव बढ़ेगा।'

इस अलौकिक घटना की किसी तर्क से व्याख्या नहीं की जा सकती। अमूमन ऐसा होता है कि जब मनुष्य किसी बात को सोचता है तब वह स्वप्न के रूप में उसके सामने आती है। दर्शनशास्त्र की भाषा में इसे हेलुसिनेशन (Hallucination) कहते हैं। एक राजकन्या के जीवन में ऐसा होता है कि उसका पाणिग्रहण करने के लिए एक से अधिक प्रस्ताव आते हैं। उसने स्वयं मदनिका से कहा था—'पारिजात पुष्प को लेकर इन्द्र के साथ यदुपति का विवाद तो शुरू हुआ। अब देखना है

किसकी जीत होती है ?' कुछ आलोचकों का मत है कि पद्मिनी का स्मरण करा कर कृष्णा को उसी पथ पर अग्रसर करना लेखक का अभीष्ट था।

चूँकि 'कृष्णकुमारी' नाटक के पूर्व टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर कवि रंगलाल ने 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य की रचना की थी और इसकी ओर अभिनेता केशवचन्द्र ने मधुसूदन की दृष्टि आकर्षित की थी। सम्भव है उसी मानसिकता के प्रसंग में नाटक में पद्मिनी का स्वप्न-दृश्य आ गया हो ? 'कृष्णाकुमारी' नाटक का परवर्ती उपन्यासकारों और नाटककारों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। बंकिम इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। उनके 'राजसिंह' और विषवृक्ष' में हम मधुसूदन की छाया देख पाते हैं।

कृष्णा का चरित्र

जब रचनाकार संवेदनशील होकर किसी पात्र की रचना करता है तो वह पात्र जीवन्त हो जाता है। कृष्णकुमारी के लिए हम कह सकते हैं कि मधुसूदन ने दुःख के महासमुद्र में डुबकी लगाकर उसका सफल और कारुणिक चित्रण किया है, जिसे दर्शक देखकर अभिभूत हो जाते हैं और त्रासदो नाटक का आनन्द लेते हैं। कृष्णा के चरित्र-चित्रण में नाटककार ने यथासम्भव टॉड का ही अनुकरण किया है। यहाँ तक कि राणा भीमसिंह की विक्षिप्तावस्था तथा मृत्यु के पूर्व कृष्णा का माता से हुआ कथोपकथन टॉड के वर्णन से सादृश्य रखता है, देखिए—

"Why afflict yourself, my mother, at this shortening of the sorrows of life. I fear not to die! Am I not your daughter? Why should I fear death? We are marked out for sacrifice from our birth; we scarcely enter the world but to be sent out again." (Ibid—Page 368)

बलेन्द्र सिंह जब कृष्णा की हत्या करने आता है और जब उसके हाथ काँप जाते हैं, तलवार गिर जाती है, तो वह सारी वस्तुस्थिति समझ जाती है। कृष्णा कहती है— 'चाचा जी ! इस संसार में ऐसा कोई जीव नहीं है, जिसकी मृत्यु का परवाना विधाता ने नहीं लिखा है। लेकिन सबकी मौत गौरवशाली नहीं होती। बहुत-से पेड़ों को लोग काटते हैं, जलाते हैं, किन्तु कुछ पेड़ों को काटकर देव-प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं। कुल की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए या परोपकार के लिए जिसकी मृत्यु होती है, वह महिमामंडित होता है····यही बात सती पद्मिनी ने मुझसे कही थी। माँ ! ···मैं आ रही हूँ····आ रही हूँ।'

और कृष्णा सदा के लिए दुनिया से अलविदा हो जाती है, अन्न-जल त्याग कर कृष्णा की माँ भी परलोक सिधारती है।

उल्लेखनीय है कि 'कृष्णकुमारी' नाटक के साथ ही माइकेल मधुसूदन दत्त का नाटककार के रूप में रचना-प्रक्रिया का कार्य समाप्त हो गया। तेरह वर्ष अर्थ-संकट में पड़कर उन्होंने 'मायाकानन' नाटक की रचना की, किन्तु उसे अधूरा ही छोड़कर वे इस संसार से चल बसे। 'मायाकानन' की तुलना उनके आरम्भिक जीवन की नाट्य-कृतियों से नहीं की जा सकती। यह रचना उनकी पूर्व रचनाओं से वजन में काफी हल्की पड़ती है।

कवि-नाटककार माइकेल मधुसूदन दत्त का जन्म २५ जनवरी १८२४ ई० को यशोहर जिले के सागदांडी (अब बंगलादेश) में हुआ था। इनके पिता राजनारायण दत्त फारसी भाषा के पण्डित थे और कलकत्ता की सदर दीवानी अदालत में कार्यरत थे। माइकेल की मृत्यु कलकत्ता में रोगाक्रान्त होने के कारण २९ जून, १८७३ ई० को हुई। जीवन के अन्तिम दिनों में उनके दिन आर्थिक संकट में गुजरे। माइकेल ने मद्रास प्रवास में रेवेका मेक्टोविस के साथ विवाह किया था। रेवेका अनाथाश्रम की क्रिश्चियन छात्रा थी। रेवेका से तलाक लेने के बाद आपने हेनवियटा के साथ विवाह किया। इससे उनको चार संतान हुई। हेनवियटा की मृत्यु २६ जून, १८७३ ई० को हुई। और उसके मृत्यु-सम्वाद के तीन दिन बाद अर्थात् २९ जून, १८७३ ई० को माइकेल संसार से चल बसे। मधुसूदन दत्त ने ९ फरवरी, १८४७ ई० को हिन्दू-धर्म त्याग कर ईसाई-धर्म ग्रहण किया था। आपने कलकत्ता के मिशन रो स्थित ओल्ड मिशन चर्च में क्रिश्चियन-धर्म ग्रहण किया था और तब उनका नाम हुआ था 'माइकेल'। यही माइकेल मधुसूदन दत्त बंगला भाषा के श्रेष्ठ कवि और नाटककार हैं।

'कृष्णकुमारी' का हिन्दी अनुवाद

माइकेल के 'कृष्णकुमारी' का हिन्दी अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय 'कविरत्न' ने १९२० ई० में किया, जिसका गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशन हुआ। पं० रूपनारायण अच्छे अनुवादकर्ता और कवि थे। आपने बंगला की कई नाट्यकृतियों का अनुवाद किया है। यह अनुवाद भी सुन्दर हुआ है। कवि होने के कारण अनुवादकर्ता ने नाटक के गीतों और अन्य काव्यांशों का हिन्दी में अनुवाद किया है।

'कृष्णकुमारी' की भूमिका के उपक्रम में माइकेल ने जिस चतुस्पदी का व्यवहार किया है, पं० रूपनारायण ने भी तदनुरूप अनुवाद किया है। इस भूमिका में ही नाटक का मूल वक्तव्य इन शब्दों में व्यक्त हुआ है—

पर प्रिय जन्म-भूमि को रखने को रक्त-पात से प्रथक अहह !
कृष्णकुमारी निज तन—विषजड़—विष पीकर त्याग दिया ।
और मृत्यु के साथ ब्याह-बंधन को कहीं मधुर समझा,
जिसके सुन्दर सुयश-सुमन का सौरभ अब भी फैला है ।

माइकेल ने अपनी नाट्यकृति का नाम 'कृष्णकुमारी' दिया है, पर अनुवाद में इसका नाम रखा गया है 'कृष्णाकुमारी ।

सम्पादकीय वक्तव्य में अनुवादक ने अपनी बात कविता में ही इस प्रकार कही है—

बंग भाषा के कवि-सम्राट
कुशल मधुसूदन ने यह प्लाट
नीव रूप से खड़ा किया है एक मनोहर नाट्य-भवन ।
उसी का ले हम यह अनुवाद,
उपस्थित हुए बहुत दिन बाद ।

उल्लेखनीय है कि कवि माइकेल ने 'कृष्णकुमारी' नाटक की रचना १८६० ई० में की थी, जिसका प्रकाशन १८६१ ई० में हुआ और हिन्दी में उसका अनुवाद १९२० ई० में हुआ ।

हिन्दी-नाटकों पर माइकेल का प्रभाव

माइकेल मधुसूदन दत्त (१८२४-१८७३ ई०) बंगला-साहित्य के मूर्धन्य कवि और नाटककार हैं। आपकी कृतियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ। आपका 'मेघनाद वध' काव्य बंगला साहित्य की एक प्रसिद्ध कृति है। राष्ट्रकवि मैथिली-शरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाद वध', 'वीरांगना' तथा 'विरहणी ब्रजांगना' का हिन्दी में अनुवाद किया। इसके पूर्व श्री बालकृष्ण भट्ट ने माइकेल के 'पद्मावती' नाटक का अनुवाद १८७८ ई० तथा 'शर्मिष्ठा' नाटक का अनुवाद १८८० ई० में किया था। बंगला-साहित्य के रचनाकारों में मधुसूदन दत्त तथा बंकिमचन्द्र की रचनाओं के अनुवाद १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में धड़ल्ले से हो रहे थे। माइकेल के वियोगान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' की त्रासदी से साहित्य जगत में एक प्रकार की मर्म-स्पर्शी समवेदना व्याप गई थी। चूंकि कृष्णकुमारी के विषपान की घटना १९वीं सदी के आरम्भ की थी। अतः कृष्णकुमारी के जीवन-चरित्र को लेकर हिन्दी में कुछ जीवनियाँ भी प्रकाश में आईं। गुजराती, मराठी और उर्दू में भी कृष्णकुमारी की दु:खदघटना को लेकर नाटक तथा उपन्यास लिखे गए। इनमें हकीम बरहम का उपन्यास

'कृष्णकुमारी' बड़ा प्रसिद्ध है। १९२० ई० में श्री रूपनारायण पाण्डेय ने माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक का अनुवाद हिन्दी में किया तथा ठाकुर इच्छरचन्द शाहपुरिया ने 'कृष्णकुमारी' की जीवनी लिखी, जिसका प्रकाशन लाहौर से लाजपत राय एण्ड सन्स ने किया। इसी प्रकार 'कृष्णकुमारी बाई' नाम से एक जीवनी मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ ने पाटलीपुत्र कार्यालय, बांकीपुर, पटना से वि० सं० १९७३ में प्रकाशित की।

हमने लिखा है कि टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर सबसे पहले बंगला भाषा में रचनाएँ प्रणीत हुई। इन रचनाओं में राजस्थान के वीर-चरित्रों को उजागर किया गया। पश्चात हिन्दी में पहले तो इन बंगला भाषा की कृतियों का अनुवाद हुआ और तत्पश्चात राजस्थान के वीर-चरित्रों को लेकर मौलिक रचनाओं का प्रणयन हुआ। ऐसी काव्य-कृतियों की चर्चा हमने 'काव्य अध्याय' में भी की है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'विषपान' नाटक

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि-नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक से प्रेरणा लेकर बीसवीं सदी के चौथे दशक में विषपान' नाटक की रचना की। उनका यह ऐतिहासिक नाटक भी उनके 'रक्षाबन्धन' ऐतिहासिक नाटक की भाँति चर्चित हुआ।

प्रेमीजी गाँधी-युग के नाटककार हैं। जैसे माइकेल मधुसूदन दत्त ने अंग्रेजी नाटकों से प्रभावित होकर सर्वप्रथम बंगला में वियोगान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' की रचना की, वैसे ही प्रेमीजी ने भी हिन्दी में 'विषपान' ट्रेजेडी नाटक लिखा। चूंकि दोनों रचनाकारों के कालखण्ड में बड़ा अन्तर है। अत: स्वाभाविक है कि दोनों के नजरिए में भी फर्क है। जब माइकेल ने टॉड के 'राजस्थान' को आधार मानकर 'कृष्णकुमारी' की रचना की तब राजस्थान के बारे में कोई इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था। पश्चात् नई खोजों के आधार पर टॉड के 'राजस्थान' को कुछ अनैतिहासिकताएँ सामने आई। गाँधी-युग में स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन हो रहा था और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास चल रहे थे। राजपूतों की पारस्परिक फूट के कारण कितना बड़ा सर्वनाश हुआ, इसका ज्वलंत उदाहरण है मेवाड़ की राजकुमारी का विषपान। देश में पारस्परिक सौहार्द्र और एकता बने, यह गाँधी-युग की सबसे बड़ी बात थी, जिसे प्रेमीजी अपने नाटकों में दिखा रहे थे; देश-प्रेम और राष्ट्रीयता का गीत गा रहे थे। इन भावनाओं के प्रस्फुटन से ही स्वातन्त्र्य-संग्राम गतिशील हो सकता था। हरिकृष्ण 'प्रेमी' इस भांति चारण-कवि के रूप में गान कर रहे थे और देशवासियों को फूट के कुपरिणाम अपने नाटकों में दिखा रहे थे।

'विषपान' नाटक

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'विषपान' नाटक की भूमिका का नामकरण किया है 'पुकार'। 'विषपान' का प्रकाशन पहले लाहौर से हुआ था, बाद में आत्माराम एण्ड सन्स ने इसे दिल्ली से प्रकाशित किया। १९५८ ई० के 'विषपान' के पंचम संस्करण में लेखक ने 'वक्तव्य' में लिखा है—'पंजाब के भयंकर हत्या-काण्ड ने मुझे भी लाहौर से उखाड़ फेंका और अभी तक मैं जीवन को किसी भूमि में स्थिर करने के प्रयत्न में रहा।××× 'विषपान' का यह चौथा संस्करण पाठकों के सामने है। आज देश स्वतन्त्र है—किन्तु उसकी नस-नस में अभी तक गुलामी के संस्कार बसे हुए हैं। इसलिए मैंने जो विचार कई वर्ष पहले दिए थे वे आज भी मननीय हैं।

राजस्थान की एकता के लिए 'विषपान' की नायिका 'कृष्णा' ने विषपान किया था—और कल ही महात्मा गाँधी ने भारतीय एकता के लिए अपने प्राण दिए हैं। इतना बड़ा बलिदान लेकर भी हिन्दुस्तानियों ने राष्ट्रीय एकता का महत्त्व नहीं समझा। इसीलिए मुझे सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता का राग बार-बार गाना पड़ रहा है।'

असल में उक्त वक्तव्य प्रेमीजी ने १९४८ ई० में लिखा था – जब 'विषपान' का चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी साम्प्रदायिक हिंसा की बलिवेदी पर शहीद हो गए। इसीलिए हमने लिखा है कि मधुसूदन और प्रेमीजी के युगबोध और तत्कालीन मानसिकता में एक बड़ा अन्तर था। प्रेमीजी ने 'विषपान' की 'पुकार' भूमिका के पृष्ठ ७ पर लिखा है—"मैंने अपने देश के इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। उसमें अपने देश के वर्तमान पतन के कारण खोजे हैं। इस देश के समान निर्बल देश संसार में दूसरा कोई नहीं है और इसके समान शक्तिमान भी नहीं है। जिस समय सम्पूर्ण भारत एक होकर खड़ा हुआ संसार की कोई शक्ति इस पर विजय न पा सकी। पौराणिक युग की बातों को संसार कपोल-कल्पित कहानियाँ भी कहले तब भी गुप्तवंश और मौर्यवंश के समय का भारतीय पराक्रम और वैभव देश की शक्ति को प्रकाशित करता है। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के समय हमारा देश अनेक छोटे राज्यों में बंट चुका था और प्रत्येक राजा अपने वंश-गौरव के अभिमान में दूसरे से लोहा लेने को प्रस्तुत था। ऐसे समय में ही विदेशी शक्ति भारत पर विजय प्राप्त कर सकी।"

राष्ट्रीय एकता

राजपूतों का इतिहास फूट से भरा पड़ा है। जब कोई बाहरी युद्ध नहीं होता था तो वीर राजपूत शौर्य प्रदर्शन या किसी 'सुन्दरी रमणी' के निमित्त युद्ध का डंका बजा देते थे। इसी की त्रासदी है 'कृष्णकुमारी' और 'विषपान' नाटक।

प्रेमीजी ने पृष्ठ ७ पर ही आगे लिखा है—"भारत के मुसलमान राज्यों का इतिहास इससे भिन्न नहीं है। अलाउद्दीन की शक्ति और अकबर की बुद्धिमत्ता ने जब देश को एक सूत्र में बाँधा उस समय बाहर के आक्रमण भारत पर सफल नहीं हुए। जब पठान राज्य अनेक टुकड़ों में विभाजित हो गया

तब बाबर को आक्रमण करने का साहस हुआ। मुगल साम्राज्य जब छिन्न-भिन्न होने लगा तब अहमदशाह अबदाली और नादिरशाह को इस देश पर चढ़ दौड़ने का साहस हो सका। पठानों और मुगलों के समानधर्मी होने पर भी युद्ध के मैदान में आमने-सामने खड़े होने में कोई हिचक पैदा नहीं हुई। जभी एक साम्राज्य समाप्त हुआ, भारत की एकता नष्ट हुई, तभी किसी बाहरी शक्ति ने इसकी स्वाधीनता पर आक्रमण किया है। राष्ट्रीय एकता का अभाव इस देश की सबसे बड़ी कमजोरी है। इस संघर्ष के युग में यदि हम ऊँचा सिर करके चलना चाहते हैं तो पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करें। मैंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास को इस रूप में प्रकट किया है, जिससे देश-प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावनाएँ पनपें।" ('विषपान' नाटक, पृष्ठ ७-८)

माइकेल का 'कृष्णकुमारी' और प्रेमी जी का 'विषपान' नाटक

नाटककार के वक्तव्य को उद्धृत कर हमने 'प्रेमी' जी की राष्ट्रीय भावना को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। अब हम माइकेल मधुसूदन के 'कृष्णकुमारी' नाटक तथा हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'विषपान' नाटक की तुलना प्रस्तुत करना चाहेंगे। जैसा कि हमने लिखा है माइकेल ने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर नाटक का प्रणयन किया, किन्तु प्रेमी जी को टॉड और माइकेल के अतिरिक्त इतिहास की बहुत सारी सूचनाएँ मिल गई थीं। कृष्णकुमारी मेवाड़ के राणा भीमसिंह की अपूर्व सुन्दरी कन्या थी।

टॉड के 'राजस्थान' में 'कृष्णकुमारी' के विषपान की घटना का विवरण है। 'टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास' में लिखा है—'राणा हम्मीर की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई भीमसिंह आठ वर्ष की अवस्था में संवत १८३४ (सन् १७७८ ई०) में मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। चालीस वर्षों में जो चार राजकुमार इस राज्य के अधिकारी बने, भीम उनमें चौथा था। उसने मेवाड़ के सिंहासन पर बैठ कर पचास वर्ष तक राज्य किया। इस अर्द्ध शताब्दी में जो अनर्थ और उत्पात इस राज्य में पैदा हुए, उनके द्वारा इस राज्य की शेष शक्तियाँ भी छिन्न-भिन्न हो गयीं। वह जन्म से ही अयोग्य और उत्साहहीन था। उसमें स्वयं समझने और विचारने की शक्ति नहीं थी। इसीलिए दूसरे लोग आसानी से उसको अपने अधिकार में कर लेते थे।' (टॉड लिखित 'राजस्थान का इतिहास', अनुवादक-केशव कुमार ठाकुर, छब्बीसवाँ परिच्छेद, पृ० २६५)

प्रेमीजी का आदर्शवाद

उल्लेखनीय है कि मजे हुए ऐतिहासिक नाटककार प्रेमीजी ने 'विषपान' नाटक के सभी पात्रों का नामकरण किया है, किन्तु मेवाड़ के राणा अर्थात् कृष्णा के पिता का तथा उसकी माँ का नाम नहीं दिया है। नाटक में राणा और उनकी राणी की प्रधान भूमिका है—नाटक में पात्रों की तालिका में लिखा है—महाराणा—मेवाड़ के महाराज तथा स्त्री-पात्रों में लिखा गया है—महारानी—मेवाड़ की महारानी। माइकेल ने टॉड के अनुसार मेवाड़ के महाराणा का नाम 'कृष्णकुमारी' नाटक में राणा भीमसिंह दिया है तथा उनकी महारानी अर्थात कृष्णा की माँ का नाम दिया है—अहिल्या। टॉड ने अपने ग्रन्थ में महारानी का कोई नाम नहीं दिया है। दोनों ही नाटकों में ऐतिहासिक पात्र करीब-करीब वही है, केवल काल्पनिक पात्रों में अन्तर है। माइकेल के काल्पनिक पात्र हैं मदनिका और धनदास तथा प्रेमीजी के पुरुष पात्रों में कलुआ तथा स्त्री पात्रों में रमा, राधा। माइकेल के बाद नाटकों की टेकनिक बदल गई थी और नाट्य-विधा में काफी परिवर्तन हो गया था। शायद इसीलिए न तो 'विषपान' में अलौकिक घटनाओं का वर्णन है और न स्त्री पात्रों का पुरुष-भेष में अवतरित होना। दोनों नाटकों की कहानी समान ही है, सामान्य परिवर्तन भी देखा जा सकता है। माइकेल ने जोहनदास या जवानदास का नाम बलेन्द्र सिंह दिया है। जवानदास राणा के स्व० पिता हम्मीर की उपपत्नी का पुत्र था। हमें ऐसा लगता हैं कि राष्ट्र के कलंक की इस अमानवीय घटना का काला टीका छिपाने के लिए शायद प्रेमीजी ने मेवाड़ के महाराणा का नाम और उनकी रानी का नाम नहीं दिया। मेवाड़ आजादी के लिए लड़नेवाला देश का अडिग प्रहरी रहा है, जिसमें प्रताप ऐसे वीर हुए हैं। मेवाड़ के महाराणा को इस कलंक से अभिषिक्त करना शायद प्रेमी जी को अभीष्ट नहीं था। इसे हम नाटककार का अतिशय भावनात्मक आदर्शवाद भी कह सकते हैं।

अब हम संक्षेप में 'विषपान' नाटक की कुछ घटनाओं का उल्लेख करेंगे। माइकेल के नाटक 'कृष्णकुमारी' में कृष्णा को दो-तीन दृश्यों में फुलवाड़ी में दिखाया गया है और इसी फुलवाड़ी में कृष्णा को 'पद्मिनी' का अलौकिक दृश्य दीखता है और उसे विषपान की प्रेरणा मिलती है। प्रेमी जो ने 'विषपान' में कृष्णा को पहले अंक के पहले दृश्य में ही पुष्पवाटिका में विचरण करते दिखाया है। 'विषपान' में अलौकिक घटनाएँ तो नहीं हैं, पर कृष्णा के द्वारा मीरा के विषपान, शंकर के हलाहल पीने और पद्मिनी के जौहर आदि के बनाये हुए चित्र दिखाये जाते हैं। अंक तीन, दृश्य पाँच में कृष्णा कहती है—'मैंने विषपान किया है, रमा! (राधा से) राधा, मेरी चित्रशाला से मीरा का विषपान, शंकर का विषपान और पद्मिनी का जौहर, तीनों चित्र ले आ। ला कर मेरे सामने टांग दे।' ('विषपान' नाटक, अंक ३, दृश्य ५, पृ० १०५)

विषपान की प्रेरणा

कृष्णा को विषपान की प्रेरणा उक्त तीन चित्रों से मिलती है और वह मेवाड़ की स्वतन्त्रता को बचाने तथा पिता को संकट से मुक्त करने के लिए विषपान कर लेती है। यह प्रेमीजी की नई उद्भावना है। पुनः कृष्णा इसी दृश्य में माता से कहती है—'मुझे दुःख है कि मैंने आपकी आज्ञा नहीं मानी—क्योंकि आपकी आज्ञा मोह का परिणाम थी। वह देखो माँ! मेरे बनाये हुए चित्र। मीराजी में इतनी शक्ति थी कि संसार के दिए हुए विष को पीकर जी सकीं। तुम्हारी कृष्णा की साधना इतनी ऊँची नहीं है। लेकिन यह समझती है—वह मर कर भी हजारों को जीवित कर जायगी। मेरे हाड़-मांस के शरीर के लिए अम्बर, मारवाड़ और मेवाड़ के वीर-योद्धा अपने बहुमूल्य प्राण गंवायें, यह मुझे स्वीकार नहीं था। इसीलिए ·· ओह!' (कराहती है।)

महाराणा—तेरे बिना मैं कैसे जी सकूँगा?

कृष्णा—पिताजी! आपको जीना ही पड़ेगा। वह देखिए भगवान शंकर कंठ में हलाहल रख कर नील-कंठ बन गए हैं। आप भी दुःख का कालकूट कंठ में रख कर संसार का उपकार कीजिए। दूसरों को दुःख से बचाने के लिए महापुरुषों को हलाहल पीना पड़ता है।

संग्राम सिंह—बेटी! तूने हमारे पौरुष पर अविश्वास किया, हमें अपना विक्रम दिखाने का अवसर न दिया।

कृष्णा—मैं जानती थी कि आप आ गए हैं और मेवाड़ में रक्त की बाढ़ लाने वाले हैं। इस बाढ़ में न केवल मेवाड़ डूबता, बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान गर्क हो जाता। इतना बड़ा पाप मैं अपने सिर पर नहीं लेना चाहती।

महारानी—तेरा यह फूल-सा शरीर क्या इसीलिए था?

कृष्णा—माताजी! उधर देखिए. उस चित्र में महारानी पद्मिनी वीरांगनाओं के साथ जौहर की ज्वाला में प्रवेश कर रही हैं। देश और जाति का गौरव रखने के लिए प्राण देने में क्षत्राणियाँ अपना सौभाग्य समझती हैं। आपकी पुत्री ने आपके दूध को लजाया नहीं है, माँ! राजपूत कुल का मस्तक ऊँचा किया है।

(दौलत सिंह का महाराणा जगत सिंह और महाराजा मानसिंह के साथ प्रवेश)

कृष्णा—आप भी आ गए ताऊजी!

दौलत—आ गया हूँ बेटी ! और मुझे प्रसन्नता है कि मैंने महाराजा जगत सिंह और महाराजा मानसिंह जी में मेल करा दिया है। उन्हें साथ ले आया हूँ। अब तेरी भाँवरें ठीक मुहूर्त में पड़ सकेंगी।

कृष्णा—लेकिन, ताऊजी ! मेरी भाँवरें मुहूर्त से पहले ही पड़ गई। यमराज की डोली मुझे लेने आ गई है। मैं जा रही हूँ। मुझे आशीर्वाद दो !'

समीक्षा

प्रेमीजी का 'विषपान' नाटक तीन अंकों में लिखा गया है। यह उनकी सशक्त रचना है, जिसमें राष्ट्रीय एकता के भाव कूट-कूट कर भरे गए हैं। उल्लेखनीय है कि श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'विषपान' नाटक को बंगला-हिन्दी-मण्डल द्वारा ऐतिहासिक नाटक के रूप में पुरस्कृत किया गया है।

एकता का संदेश

माइकेल और प्रेमी के नाटकों मे जैसे समय का बड़ा अन्तराल है, वैसे ही विचारों और भावनाओं का। माइकेल शेक्सपीयर आदि अंग्रेजी नाटककारों से प्रभावित होकर दुखान्त नाटक रचना की शुरूआत कर रहे थे। भारतीय नाट्य-साहित्य में ट्रेजेडी का श्रीगणेश अगर माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक से माना जाय, तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि यह जैसे बंगला भाषा का प्रथम ऐतिहासिक वियोगान्त नाटक है, वैसे ही आधुनिक भारतीय भाषाओं का भी। प्रेमीजी के युग में देश के विचार तेजी से बदल गए थे और स्वतन्त्रता के साथ देश को अखण्डता, एकता और देशवासियों के लिए भाईचारे की बात अहम हो गई थी। गाँधी-युग में राजनीतिक दृष्टि से यह समय की सबसे बड़ी मांग थी और उसी युग-बोध को 'विषपान' में प्रेमीजी ने रेखांकित किया है। राजपूतों की पारस्परिक फूट को एकता में बदलने का नाटककार का प्रयास देश की जनता को एकता का सन्देश देता है। यह सन्देश आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना देश को पराधीनता के काल में था। बल्कि स्वतन्त्र भारत में देश की एकता, अखण्डता की अहमियत बहुत ज्यादा बढ़ गई है।

प्रसिद्ध समीक्षक प्रो० जयनाथ 'नलिन' ने 'हिन्दी नाटककार' पुस्तक मे हिन्दी के प्रख्यात नाटककारों पर सुन्दर कृति की रचना की है। आपकी यह पुस्तक १९५२ ई० में आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुई। प्रो० 'नलिन ने 'हिन्दी नाटककार' पुस्तक के पृष्ठ १२२ पर श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के बारे में लिखा है—

"जब 'प्रेमी' की लेखनी कला-सृजन के लिए सजग हुई तब भारतीय महान राष्ट्र दासता की शृंखला तोड़ने के लिए संघर्ष कर रहा था। उसकी कल्पना

ने ज्यों ही जीवन के रंग पहचानने की चेष्टा की, उसने देखा देश के दीवाने सिर पर कफन बाँध कर खून की रंगीनी से राष्ट्र के आंगन में बलिदान के महान यज्ञ के लिए चौक पूर रहे हैं। देश का आकाश राष्ट्रीय आन्दोलन के उमंग-भरे कोलाहल से गूँज रहा है। गाँधीजी के नेतृत्व में भारत का बूढ़ा और जवान अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए आकुल हो रहा है। अधिकार की मांग में अपने को अधिकारी प्रमाणित करने का निर्माणकारी कार्य देश को करना है—सम्मिलित संघर्ष। और हिन्दू-मुस्लिम-एकता उस सम्मिलित संघर्ष की शक्ति है। जिस देश-भक्ति ने हिन्दुत्व का रूप धारण करके भारतेन्दु को प्रेरित किया; जो आर्य-संस्कृति चेतना के रूप में प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी, उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावना ने 'प्रेमी' को हिन्दू-मुस्लिम-एकता का चोला पहन कर प्रकाश दिखाया। पर केवल हिन्दू-मुस्लिम-एकता ही, 'प्रेमी' के नाटकों में नहीं है, उनमें वह सब कुछ है, जो राष्ट्रीय, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के लिए अनिवार्य है।"

राजस्थानी भाषा में माइकेल की अनुगूँज

बंगला के महाकवि-नाटककार माइकेल मधुसूदन ने १८६० ई० मे 'कृष्णा-कुमारी' विषादान्त नाटक बंगला भाषा में लिखा और १९४० ई० के आसपास हिन्दी के सफल नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'विषपान' नाटक की रचना की। इसी परम्परा को अक्षुण्ण बनाने के लिए १९४७ ई० में राजस्थानी भाषा-साहित्य के प्रसिद्ध कवि डॉ० मनोहर शर्मा ने 'अरावली की आत्मा' काव्य-ग्रन्थ की रचना की, जिसका प्रकाशन कलकत्ता से श्री रतनलाल जोशी ने 'लोक भारती' प्रकाशन से किया। 'अरावली की आत्मा' पुस्तक पर हमने पुस्तक के प्रथम-खण्ड के 'बंगला-काव्यों में राजस्थान' अध्याय में चर्चा की है। अब यहाँ प्रस्तुत है 'अरावली की आत्मा' काव्य में संकलित कवि मनोहर जी की 'कृष्णाकुमारी' काव्य-रचना।

हमने अपने अध्ययन में प्रसंगानुसार बंगला रचनाओं के साथ हिन्दी-राजस्थानी कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ में किया है। चूंकि नाट्य-विधा मुख्यतः दृश्य-काव्य की श्रेणी में आती है। अतः बंगला की नाट्य-कृतियों के साथ हमने प्रसंग के अनुसार हिन्दी-राजस्थानी काव्य-रचनाओं को अध्ययन का विषय बनाया है। इस पद्धति से अध्ययन की एकरूपता रहेगी और पाठक भी विषयानुक्रम के अन्तर्गत साहित्य-रस का आनन्द ले सकेंगे।

मनोहरजी की 'कृष्णाकुमारी' काव्य-रचना

राजस्थानी-हिन्दी के कवि डॉ० मनोहर शर्मा ने अपनी 'कृष्णाकुमारी' रचना में राजस्थानी पद्य में विषपान की पूरी घटना का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। किन कारणों और परिस्थितियों में कृष्णा को अपने पिता के राज्य के लिए अपने जीवन का बलिदान देना पड़ा, इसे कवि ने उजागर किया है। प्रेमीजी की भाँति मनोहरजी ने कृष्णा के त्याग को सशक्त भाषा में रेखांकित किया है। राजस्थान की रूपसी ललना का यह त्याग मीरा और पद्मिनी की कोटि में आता है, यही इसका वैशिष्ठ्य है।

आरम्भ में कवि मनोहर ने कृष्णा के सौंदर्य पर कलम चलाई है—

बड़ो घरानो सूर्यकुल, राणाजी को राज।
धन धरती मेवाड़ की, रजपूती को सान ॥
भीम सुता किस्ना भयी, ज्यूँ पून्यूँ को चाँद।
अगजग नै उज्वल करै, इमरत रस सूँ सांद ॥

('अरावली की आत्मा', 'कृष्णकुमारी', पृ० ४६)

राजस्थान में मेवाड़ अपनी कीर्ति और यश से इतिहास में प्रसिद्ध है। उसमें राणा सांगा, राणा प्रताप, राणा हम्मीर के समान वीर-रत्न पैदा हुए, पर राणा भीमसिह ने अपनी क्लीवता से उस गौरव को नष्ट कर दिया। उसे अपनी ही कन्या कृष्णा को विषपान कराने के लिए मजबूर होना पड़ा। असल में राजपूतों की पारस्परिक फूट से तब तक मेवाड़ ही नहीं सम्पूर्ण राजस्थान राजनीतिक दृष्टि से बुरी तरह कमजोर हो गया था। राणा में वह बल और विवेक नहीं था कि वह मेवाड़ की अस्मिता के रक्षार्थ तलवार का जौहर दिखाता, जिसकी अमर कीर्ति देश के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

कवि कहता है—

किस्ना तणै विवाह मैं भयो गूढ़ तकरार।
दो राजा दो फौज ले, आय चढ्या बटमार ॥ (वही, पृ० ५०)

कृष्णा के विवाह के लिए भयंकर युद्ध हुआ। मारवाड़ और जयपुर के राजा अपनी-अपनी सेना लेकर उपस्थित हो गए। चूंकि अब मेवाड़ पहले जैसा वीर व्रती नहीं था, वह निस्तेज हो गया था। वह अपने वीरों को भूल गया था—

अब पिछलो मेवाड़ ना, ना वो तेज खरार।
उडणै पिरथीराज का, दिन भूल्यो संसार ।। (वही, पृ० ५०)

भारतीय नारी की यह कितनी बड़ी त्रासदी है और खासकर राजपूतों में यह परम्परा है कि एक राजकुमारी के लिए कई राजाओं की तलवारें उसके पाणिग्रहण के लिए म्यानों से निकल पड़ती हैं। अपने होनेवाले पति के बारे में कन्या कुछ नहीं जानती और उसे तलवार के बलबूते पर अपने जीवन को विजेता के साथ बाँधना पड़ता है। इसे नारी-नियति की विडम्बना ही कहा जायगा। कृष्णा सोचती है—

मैं देख्यो ना मान नृप, जगत सिंघ ना भूप।
के नारी संसार मैं, आई ओछे रूप ।। (वही, पृ० ५०)

कृष्णा ने मारवाड़ के राजा मानसिंह तथा जयपुर के राजा जगत सिंह को कभी देखा नहीं था और वे उसे पाने के लिए फौज लेकर मेवाड़ की सरहद में आ गए। कृष्णा अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है कि संसार में नारी का जन्म क्या इसीलिए हुआ है? इसी व्यथा को तुलसी के 'मानस' में पार्वती-शंकर के विवाह प्रसंग में पार्वती की माँ मयना ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

कत विधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं ।।

तुलसी की उक्ति 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' हिन्दी-जगत में प्रवाद बन गई और वह न केवल नारी के लिए अपितु देश की स्वतन्त्रता के लिए प्रयोज्य हो गई।

विवाह की यह प्रथा क्यों और कैसे चली? सृष्टि के इस कार्य-कारण सम्बन्ध में शुरू में ही क्यों व्याघात हुआ? यह एक ऐसा शाश्वत प्रश्न है, जिस पर विश्व-साहित्य-युद्धों की रणभेरी से अनुगुंजित है। मनुष्य की इस वृत्ति से कितने युद्ध-विग्रह दुनिया में हुए कहना कठिन है। आज भी यह परम्परा बदस्तूर जारी है। भौतिकवाद ने दाम्पत्य-जीवन की इस सत्यता को झुठलाने की कोशिश अवश्य की है, पर प्रकृति और पुरुष के इस चिरंतन-सत्य से मानव-हृदय विमुख कहाँ हुआ है?

कवि मनोहर ने भी इस यथार्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है—

राजा रंक समान दो, दोनूं नर को रूप।
या माया संताप की, कारण भई करूप ।।
ना जाण्यो संसार यो, मानव हिव को भेद।
दुख सूँ निपज्यो परम सुख, सुख सूँ निपज्यो खेद ।। (वही, पृ० ५१)

हिन्दुओं की फूट के कारण ही देश दासता के बन्धन में बंधा। इतिहास इस सत्यता का साक्षी है। कृष्णा के विषपान की घटना में इस फूट का फायदा डाकू-लुटेरे अमीर खाँ ने उठाया। उसने पहले राजा मान का पक्ष लिया और फिर उसने तोते की तरह आँखें फेर लीं। उसी के षडयन्त्र से कृष्णा को विषपान कराने के लिए राणा भीम सिंह को बाध्य होना पड़ा। उसने कहला भेजा कि इस संकट से बचने का एक ही रास्ता है कि कृष्णा को मौत के हवाले कर दिया जाय। इससे न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। अर्थात जिस रूप की सागर कृष्णा के लिए मेवाड़ पर संकट के बादल घिरे हैं, वे छँट जायेंगे। अमीर खाँ की साजिश देखिए—

धाड़ी अधम अमीर खाँ, कालदूत आदेस।
के कृष्णा द्यो मौत नै, के उजड़ै यो देस॥ (वही, पृ० ५१)

मेवाड़ अब वह शेर नहीं था, वह नख-दन्त विहीन हो गया था। अमीर खाँ के हुक्म से काँप गया—

अंग-अंग ढीला भया, टूट्या नख अर दंत।
अब मेवाड़ी सेर कै, बल को आयो अंत॥ (वही, पृ० ५१)

राणा ने दरबार में मंत्रणा की और दौलत सिंह को कृष्णा की हत्या के लिए आदेश दिया, पर उस वीर ने इस अमानुषिक कार्य को करने में अपनी हेठी समझी। फिर जवानदास ने इस जघन्य कुकर्म के लिए कटार हाथ में ली, पर वह कृष्णा के रूप-सौंदर्य को देखकर खिसक गई। तब कृष्णा को 'विषपान' कराया गया। इसका भी असर नहीं हुआ तो उसमें अफीम घोलकर पिलाया गया और कृष्णा ने देश की एकता के लिए विषपान कर प्राण त्याग दिए।

कवि के शब्दों में सुनिए—

दौलतसी आदेस पा, गरज्यो सत कै नाम।
कन्या कै हथियार गल, महा-नीच को काम॥
काल कटारी हाथ ले, चाल्यो दास जवान।
कन्या के सत रूप सूँ, भयो काठ तज ग्यान॥
विस प्यायो पण आ पड्यो, यो ना मेरो काम।
तीन बेर उलटो फिर्यो, सत को राख्यो नाम॥
अन्त समय अम्मल भयो, क्रिस्ना को जमदूत।
राजपूताँ की जात कै, सिर पर छायो भूत॥

हँस कर प्यालो पी गई, राखी सत की आन।
रजपूती नै साथ ले, डूब्यो राजस्थान॥ (वही, पृ० ५२)

सचमुच 'विषपान' की घटना से राजस्थान अरावली के गौरव-शिखर से जमीन पर गिर गया, अरावली की मान-मर्यादा मानव-इतिहास में कलंकित हो गई। कृष्णा के विछोह में उसकी माँ ने प्राण त्याग दिए।

क्रिस्ना जाणी छत्री गुण, भयो जमीं सूं लोप।
क्रिस्ना की जननी गई, भयो काल को कोप॥

इस प्रकार डॉ० मनोहर शर्मा ने 'कृष्णाकुमारी' काव्य-रचना में माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक एवं हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'विषपान' नाटक की त्रासदी की मानवीय संवेदना के साथ अपनी सुमधुर राजस्थानी में अमरत्व प्रदान कर दिया। कवि की भाषा, भाव और शब्द-विन्यास अभिव्यंजना में समर्थ हैं। मनोहर जी ने 'अरावली की आत्मा' में राजस्थान के प्रमुख वीर-चरित्रों पर अपनी लेखनी चलाई है। हमने भी यथा स्थान उनका प्रयोग किया है।

ज्योतिरिन्द्रनाथ का 'सरोजिनी' नाटक

द्वितीय युग

हमने पूर्व के पृष्ठों में यह दिखाने की कोशिश की है कि १९वीं सदी के मध्य से बंगला-साहित्य में नाट्य-रचना की प्रक्रिया शुरू हुई और उसमें समाज-संस्कार का नव्य रूप उभर कर सामने आया। इस बदलाव के पीछे पश्चिमी शिक्षा का प्रबल जोर था। रंगमंच के इतिहास में 'पब्लिक थियेटर' की स्थापना का महत्वपूर्ण स्थान है। कलकत्ता में दिसम्बर १८७२ ई० में इस थियेटर की स्थापना हुई थी, जो सभी के लिए सुगम होने से 'नेशनल थियेटर' के नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना से बंगला-साहित्य में नाटक का द्वितीय उत्थान आरम्भ होता है। बंगला नाटकों के द्वितीय युग में सामाजिक चेतना का स्थान राष्ट्रीयता ने ले लिया। इसलिए नाटकों का कथ्य सामाजिक विषयों से हटकर ऐतिहासिक कलेवर ग्रहण करने लगा। पश्चिमी विचारधारा के संवास से दो चीजें सामने आईं। पहली बात हुई सामाजिक क्रान्ति की। इसके पुरोधा बने राजा राममोहन राय, डिरोजियो, रिचार्डसन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एवं ब्रह्म-समाज के नेतागण। दूसरी ओर विलियम जोन्स की एशियाटिक सोसाइटी (१७८४) तथा अन्य यूरोपीय विद्वानों की गवेषणा से भारत का प्राचीन संस्कृत वाङ्मय और उसका साहित्य सामने आया। गहरी नींद में सोया देश पश्चिम के आलोक में अपने प्राचीन रत्न-भण्डार को चमकता देख पुनर्जीवित हो उठा और नवोदय की लहर व्याप गई।

हिन्दू-मेला

नव-चेतना ने 'हिन्दू-मेला' की स्थापना की। 'हिन्दू-मेला' की स्थापना में ओड़ासांकू ठाकुरबाड़ी (रवीन्द्रनाथ का पुश्तैनी भवन जहाँ अब रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय है) का उल्लेखनीय योगदान है। देश के गौरवमय इतिहास और प्राचीन भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार के लिए दुर्दमनीय जिजीविषा पैदा हो गई। 'तत्त्व-बोधिनी' पत्रिका में इस विषय के लेख प्रकाशित होने लगे। अन्ततः कुछ देशभक्तों के सत् प्रयास से अप्रैल १८६७ ई० में 'चैत्र-मेला' का रूप 'हिन्दू-मेला' में बदल गया। इस मेले में स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शनी लगने लगी और नए स्वरों में राष्ट्रीयता का स्वर गूंजने लगा। सत्येन्द्रनाथ ठाकुर ने इस अवसर पर स्वदेशी संगीत की रचना की, जिसके बोल थे—

मिले सबे भारत संतान, एक तान मन-प्राण
गाओ भारतेर यशोगान

ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर

'हिन्दू-मेला' के पीछे कट्टर राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना थी। इस युग-बोध ने बंगला ऐतिहासिक नाटकों की रचना का सूत्रपात किया। डॉ० बरुण कुमार चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक 'टॉडेर राजस्थान उ बांग्ला साहित्य' के पृष्ठ ३३ पर लिखा है—'१९वीं शताब्दी में बंगला-साहित्य में ऐतिहासिक नाटक और उपन्यासों की रचना आरम्भ हुई। इसके मूल में स्वदेशी चेतना काम कर रही थी। पश्चिमी शिक्षा में दीक्षित समाज ने अपने हितचिन्तन के लिए ही इतिहास की तलहटियों में प्रवेश किया। कारण था कि भारतीयों ने ग्रीक और रोमन इतिहास में जब उन जातियों की गौरव कहानियों को पढ़ा तो वे स्वयं भी अपने अतीत दर्शन की ओर मुखातिब हुए। वे भारत की गौरवमय वीरोचित कथाओं के अनुसन्धान में लग गए। इन कथाओं में वीरता और देशभक्ति के गीत गाये गए हैं और हँसते-हँसते हुतात्माओं ने देश की बलि-वेदी पर प्राण उत्सर्ग किए हैं।'

इसी प्रसंग में हम यहाँ उस कालखण्ड के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार, ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर की मानसिकता का उल्लेख उन्हीं के शब्दों में करना चाहेंगे—'हिन्दू-मेला के बाद ही मेरे मन में प्रेरणा हुई कि मैं कैसे और किस प्रकार देशवासियों के हृदय में देशानुराग और स्वदेश-प्रेम की भावना भर सकता हूँ। मैंने निश्चय किया कि मैं नाटकों में ऐतिहासिक वीरों की गाथा गाऊँगा और भारत के गौरवमय इतिहास को लोगों के सामने रखूँगा।' (ज्योतिरिन्द्र-नाथ की जीवनी—लेखक—बसंत कुमार चट्टोपाध्याय, पृष्ठ १४१)

उक्त उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने नाटकों की रचना शुरू की। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पाँचवें पुत्र और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई ज्योतिरिन्द्रनाथ (१८४८ ई०-१९२५ ई०) अमित प्रतिभा के अधिकारी थे। बंगला-साहित्य के ऐतिहासिक नाटकों के प्रणयन में उनकी भूमिका रही है। आपने नाटक, गीतिनाट्य और प्रहसन लिखे, जिनकी संख्या ३३ है, किन्तु मुख्यतः ऐतिहासिक नाट्यकार के रूप में उनकी ख्याति रही। उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की बंगला में पुख्ता नींव रखी, जिस पर गिरीशचन्द्र ने प्रभूत कार्य किया और द्विजेन्द्रलाल राय के हाथों ऐतिहासिक नाटकों का चरम उत्थान हुआ। इस पर हम आगे के पृष्ठों में चर्चा करेंगे।

'१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माइकेल मधुसूदन दत्त, ज्योतिरिन्द्रनाथ,

गिरीश घोष आदि नाटककारों ने राष्ट्रीय युगचेतना से उद्बुद्ध होकर देशात्मबोध को जगाने के लिए तथा भारत के अतीत स्वर्णिम युग को प्रत्यक्ष करने के लिए जहां ऐतिहासिक नाटक लिखे, वहीं हेमचन्द्र-नवीनचन्द्र ने देश-प्रेम के गीत गाये और काव्य रचना की तथा औपन्यासिक बंकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम' के मंत्र से देशवासियों में भारत के लिए प्राणोत्सर्ग करने की प्रेरणा जुटाई।' (डॉ० अजित कुमार घोष, 'बांग्ला नाटकेर इतिहास', पृ० १०६)

माइकेल का प्रभाव

शेक्सपीयर ने जैसे अपने पूर्ववर्ती नाटककार क्रिस्टोफर मारलो से प्रेरणा ली थी वैसे ही ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने माइकेल मधुसूदन दत्त के नाटकों से उत्साहित होकर टॉड के 'राजस्थान' से कथानक लेकर दो नाटक लिखे, जिनमें प्रथम है 'सरोजिनी' नाटक और दूसरा है 'अश्रुमति'।

'सरोजिनी' या 'चित्तौड़ आक्रमण' नाटक १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें अलाउद्दीन की द्वितीय चित्तौड़-आक्रमण की घटना का वर्णन है। इस नाटक पर 'कृष्णकुमारी' नाटक को गहरी छाप है। 'अश्रुमति' नाटक में दो नई उद्भावनाओं का संयोजन है। एक तो अश्रुमति की कल्पना और दूसरा उसका यवन-प्रेम। पहले 'सरोजिनी' नाटक की कहानी पर विचार उचित होगा।

'सरोजिनी' की कहानी

कहानी इस प्रकार है—दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन के प्रथम चित्तौड़ आक्रमण को मेवाड़ के राजपूतों की संगठित शक्ति ने जब पराभूत कर दिया तो दिल्ली के बादशाह ने छलबल विक्रम से पुनः चित्तौड़-आक्रमण की योजना बनाई। मुहम्मद अली नाम का अलाउद्दीन का एक विश्वासी अनुचर था। उसने ब्राह्मण युवक का छद्म वेष बनाकर 'भैरवाचार्य' नाम धारण किया और मेवाड़ की कुलदेवी चतुर्भुजा के पुरोहित का शिष्य बन गया। कुछ दिन बाद अपनी चालाकी से वह देवी का पुरोहित बन गया। उस समय मेवाड़ के राणा लक्ष्मण सिंह के दो प्रधान सरदार थे, जिनमें एक था बादलाधिपति विजय सिंह और दूसरा था गाराधिपति रणधीर सिंह। राणा की एकमात्र कन्या रूपवती सरोजिनी के साथ विजय सिंह का विवाह होने की बात पक्की हुई। रणधीर सिंह राणा का सेनापति था। वह भी सरोजिनी से विवाह का इच्छुक था। राजकन्या के विवाह को लेकर मेवाड़ के सरदारों में युद्ध-विग्रह का आयोजन हो और अलाउद्दीन मौके का फायदा उठाकर चित्तौड़ पर आक्रमण करे इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर भैरवाचार्य नामक छद्मवेषी मुसलमान पुरोहित ने अमावस्या की एक रात को देवग्राम स्थित देवी के मन्दिर के परिपार्श्व में अवस्थित श्मशान में राणा लक्ष्मण सिंह को देवी की मूर्ति

दिखाई और देववाणी में सुना गया कि देवी क्षुधित है तथा जब तक राजकुमारी की बलि नहीं दी जायगी तब तक उसकी क्षुधा शान्त नहीं होगी। लक्ष्मण सिंह दुविधा में पड़ गए। उनके सामने एक तरफ कन्या-प्रेम था दूसरी तरफ यवनों से देश बचाने का राज-कर्तव्य और देश-प्रेम था।

रणवीर सिंह को राणा ने वस्तुस्थिति बताई। दोनों ने पुन: देवी के दर्शन किए और प्रपंची भैरवाचार्य की बनावटी देववाणी सुनी। सेनापति रणवीर के परामर्श से राणा कर्तव्य पालन के लिए प्रस्तुत हुए। चित्तौड़ पत्र भेजा गया कि देवग्राम में सरोजिनी का विवाह होगा। अत: रानी कन्या को लेकर वहाँ ततकाल आ जाय। इसके पश्चात राणा ने अपने विश्वासी अनुचर रामदास को सारी स्थिति स्पष्ट की। रामदास ने राणा को पिता के कर्तव्य का स्मरण दिलाया। इससे राणा पुन: दुविधा मे पड़ गए और उन्होंने दोबारा पत्र दिया कि विवाह-विच्छेद हो गया है। इसलिए देवग्राम में आने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु दूसरा पत्र मिलने के पूर्व ही रानी राजकुमारी सरोजिनी को लेकर देवग्राम तक आ गई। रणवीर की कुमंत्रणा से राणा का मन फिर बदल गया। उन्होंने चुपचाप सरोजिनी की बलि देने का निश्चय किया। अब तक दूसरा पत्र रानी को मिल गया और बीच रास्ते से ही रानी सदल-बल चित्तौड़ लौट गई। फिर रानी को खबर भेजी गई कि विवाह तो देवग्राम में होगा, पर उसे वहाँ उपस्थित होने की जरूरत नहीं। इधर बलि का आयोजन चल रहा था। इसी समय रामदास ने आकर सभी बातें बता दीं। यह सुनकर विजय सिंह क्रोधित हो गया। राणा ने रानी और सरोजिनी को देवग्राम त्याग का अवसर दिया और विजय सिंह के प्रति क्रोधित होकर राणा ने पुत्री से कहा—'यदि तुम मेरी पुत्री हो तो इस जन्म के लिए विजय सिंह को भूल जाओ।' विजय सिंह ने पहले से ही रौशनआरा नाम की एक मुसलमान युवती तथा उसकी सहेली को बन्दी बना रखा था। रौशनआरा विजय सिंह के प्रति आकृष्ट थी और इसी कारण वह सरोजिनी के प्रति विद्वेष रखती थी। रानी और राजकुमारी के देवग्राम परित्याग की बात रौशनआरा ने रणवीर को बता दी। विजय सिंह की बाधा के बावजूद सरोजिनी को पकड़ कर देवी के मन्दिर मे लाया गया। बलि के आयोजन की तैयारी देखकर राणा का मन ममत्व से उद्वेलित हो गया। यह देखकर रणधीर ने राणा की आँखों पर पट्टी बांध दी। भैरवाचार्य कुठार लेकर सरोजिनी की बलि के लिए उद्यत हुआ। तभी विजय सिंह अपने सैनिकों को लेकर वहाँ आ पहुँचा और उसने भैरवाचार्य से कुठार छीन लिया और उसके षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ किया। भयभीत भैरवाचार्य ने अपनी गणना की भूल स्वीकार की और कहा कि देववाणी का आदेश बलि के लिए था और बलि केवल राजकुमारी की ही हो ऐसा जरूरी नहीं। इस क्षेत्र की किसी भी सुन्दरी कुमारी की बलि दिया जा सकता है। जल्दी से एक युवती पकड़ कर लाई गई, जिसका मुंह ओढ़नी से ढँका हुआ था। भैरवाचार्य ने कुठार से उसका वध कर दिया।

हत्या के बाद उद्घाटित हुआ कि वह युवती रोशनआरा है और भैरवाचार्य की पुत्री है। इस बीच विजय सिंह राजकुमारी सरोजिनी का अपहरण कर वहाँ से दूर जा चुका था। इधर खबर मिली कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया है। सभी राजपूत सरदार राणा के साथ चित्तौड़ रक्षा हेतु दौड़े। भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में राणा लक्ष्मण सिंह के साथ उनके द्वादश पुत्र मारे गए। विजय सिंह भी खेत रहा। रानी पद्मिनी ने सखियों के साथ जौहर-व्रत का पालन किया। अलाउद्दीन जब चित्तौड़ के किले में पहुँचा तो उसे रणवास में सरोजिनी दिखाई दी। उसने उसे पद्मिनी समझ कर पकड़ने की चेष्टा की, किन्तु तब तक सरोजिनी भी जौहर के अग्निकुण्ड में कूद पड़ी थी। इस तरह सिवाय राख की ढेरी के अलाउद्दीन को चित्तौड़ के किले में और कुछ नहीं मिला।

'सरोजिनी' नाटक

जैसा कि हमने कहा है माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक से प्रेरित होकर ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'सरोजिनी' नाटक की रचना की। अपनी कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए नाटककार ने मुहम्मद अली नाम के छद्मवेषी भैरवाचार्य की अवतारणा की। छद्मवेषी भैरवाचार्य कृष्णकुमारी की भांति सरोजिनी के विवाह प्रसंग को लेकर विजय सिंह और रणधीर सिंह में द्वन्द्व लगाना चाहता है। वह अलाउद्दीन का गुप्तचर है। उसका उद्देश्य है राजपूतों में विग्रह कराना और उनकी शक्ति का क्षय करना, जिससे इस आन्तरिक कलह के अवसर पर अलाउद्दीन आक्रमण कर सके। 'सरोजिनी' नाटक का आरम्भ भैरवाचार्य की भविष्यवाणी से होता है।

नाटक के प्रथम अंक के प्रथम गर्भांक में दिखाया जाता है कि राणा लक्ष्मण सिंह चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी चतुर्भुजा के मन्दिर के पास के एक श्मशान में अर्द्धरात्रि को घूम रहे हैं। उन्हें भयंकर शब्द सुनाई देते हैं और पश्चात् चतुर्भुजा देवी की मूर्ति दीख पड़ती है। वे चकित हो जाते हैं और आगे बढ़ कर साष्टांग प्रणाम कर स्तोत्र पाठ करते हैं—

> विपक्षपक्षनाशनिम् महेशहृद्विलासिनिम्।
> नृमुण्डजालमालिकाम् नमामि भद्रकालिकाम्॥

और तभी आकाशवाणी होती है—

> मूढ़! वृथा युद्ध-सज्जा यवन विरुद्धे—
> रूपसी ललना कोन आछे तव घरे
> सरोज-कुसुममय; यदि दिस् पिते
> तार उष्ण शोणित, सबेई थामिबे

अजेय चित्तौरपुरी, नतुबा इहार
निश्चय पतन होबे, कहिलाम तोरे।
आर शोन् मूढ़ नर ! बाप्पावंशजात
यदि द्वादश कुमार राजच्छत्रधारी,
एके एके नाहि मरे यवन-संग्रामे,
ना रहिबे राजलक्ष्मी तव वंशे आर....

लक्ष्मण सिंह—मातः ! "मैं भूखा हूँ" तब क्या यह तुम्हारी ही आवाज थी ? पिछले यवन-युद्ध में मेरे आठ हजार आत्मीय राजपूतों के बलिदान से, उनके रक्त से तुम्हारी रक्तपिपासा शान्त नहीं हुई ?

पुनः आकाशवाणी—

पुनर्वार बोलि तोरे शोन् मूढ़ नर !
इतर बलिते मोर नाहि प्रयोजन,
राजवंश-प्रवाहित विशुद्ध शोणित
यदि दिस् पिते मोरे—तबेई मंगल।

(ज्योतिरिन्द्रनाथ ग्रन्थावली, पंचम खण्ड, 'सरोजिनी' नाटक, प्रथम अंक, प्रथम गर्भांक, पृ० २३०)

छद्मवेषी भैरवाचार्य ने प्रथम भविष्यवाणी में राणा लक्ष्मण सिंह से कहा—'अरे मूर्ख ! व्यर्थ में तुम यवनों से युद्ध कर रहे हो। यदि तुम सरोज-कुसुम के समान किसी ललना का उत्तप्त शोणित मुझे पिलाओगे तभी चित्तौड़ की रक्षा होगी नहीं तो बप्पारावल का वंश विनष्ट हो जायेगा। यदि तुम अपने द्वादस पुत्रों को एक-एक कर राजा बनाओगे और युद्ध में भेजोगे तभी तुम्हारे वंश की रक्षा होगी।' यह सुनकर जब राणा देवी से आठ हजार राजपूतों के शोणित पान से भी प्यास न बुझने की बात कहते हैं तो पुनः भविष्यवाणी होती है—'अरे मूढ़ ! इतर या अन्य किसी के रक्त से मेरी प्यास नहीं मिटेगी। राजवंश का शुद्ध रक्त मुझे चाहिये। ऐसा करने से ही तुम्हारा मंगल होगा।' कहने का तात्पर्य भैरवाचार्य ने राणा को सरोजिनी का बलिदान करने तथा अपने बारह पुत्रों को युद्ध में बलि करने का परामर्श दिया। इस भविष्यवाणी को सुनकर राणा चले जाते हैं और मुहम्मद अली (भैरवाचार्य) अपने फते-उल्ला (चेला) को लेकर देवी के मन्दिर में पहुँच जाता है। राणा थोड़ी देर के बाद रणधीर सिंह को लेकर मन्दिर में आते हैं और भैरवाचार्य से भविष्यवाणी का स्पष्टीकरण पूछते हैं। भैरवाचार्य अपनी गणना कर बताता है कि 'सरोजिनी' की बलि से ही यह संकट टल सकता है। सरोजिनी राणा की प्राणप्यारी पुत्री थी। विजय सिंह उससे विवाह करना चाहता था।

और सरोजिनी भी उसके प्रति अनुरक्त थी। सेनापति रणधीर सरोजिनी से विवाह करने का इच्छुक था। यही सरोजिनी का बलिदान राणा के दो प्रतिद्वन्द्वी सेना नायकों में विग्रह का कारण बनता है। भैरवाचार्य अपनी चालाकी में कृतकार्य होने पर अपने चेले फते-उल्ला की मारफत अलाउद्दीन को चित्तौड़ पर आक्रमण करने का पत्र भेजता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'सरोजिनी' नाटक में अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। टॉड के इतिहास में 'मैं भूखा हूँ' तथा राणा के बारह पुत्रों को रण में भेजने की देवी की आज्ञा होती है—पर सरोजिनी की मौलिक कल्पना नाटककार की अपनी है—जो अनैतिहासिक है। ऐसी ही कल्पना ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'अश्रुमति' नाटक में की है। 'सरोजिनी' नाटक में तो नाटककार को थोड़ी ख्याति मिली पर अश्रुमति' नाटक विवादास्पद बन गया। इस पर आगे के पृष्ठों में हम चर्चा करेंगे।

सरोजिनी विजय सिंह के प्रति अनुरक्त है और राणा भी अपनी पुत्री का विवाह उसी के साथ करना चाहते हैं तो सेनानायक रणधीर सिंह भैरवाचार्य की बात को स्वीकार कर लेता है और सरोजिनी के बलिदान पर जोर देता है। माइकेल के 'कृष्णकुमारी' नाटक में भी अमीर खाँ के द्वारा कृष्णा की हत्या करने का षडयन्त्र होता है। रणधीर का रजपूती सेना पर प्रभाव है। सरोजिनी के बलिदान का मार्मिक दृश्य नाटक के पंचम अंक, तृतीय गर्भांक में इस प्रकार है—

चतुर्भुजा देवी के मन्दिर का प्रांगण

(धूप-धूना आदि सामग्री बलिदान के लिए सजाई गई है। सरोजिनी यज्ञवेदी पर बैठी है। राणा लक्ष्मण सिंह म्लान मुख से खड़े हैं। पुरोहित भैरवाचार्य अपने आसन पर बैठा है। राणा के पास रणधीर सिंह खड़ा है और चारों ओर सेना के सिपाही हैं।)

भैरवाचार्य—महाराज ! अब विलम्ब करने का समय नहीं है। बलिदान की घड़ी टल रही है। अब आप आज्ञा दें।

लक्ष्मण सिंह—मुझसे आज्ञा की अनुमति लेना और मन्दिर की दीवालों से आज्ञा लेना एक सा है। मेरी आज्ञा की अब क्या जरूरत है ? अब आज्ञा लेनी है तो रक्तपिपासु रणधीर से आज्ञा लो या फिर उन्मत्त राजपूत सैनिकों से आज्ञा लो। अब मेरी बात कौन सुनता है, मेरी आज्ञा कौन मानता है ?

रणधीर—महाराज ! देवी की आज्ञा के विरुद्ध युद्ध करना व्यर्थ है।

भैरवाचार्य—महाराज ! शुभ मुहूर्त बीत रहा है। अब विलम्ब करना अनिष्ट-कारी होगा। जय हो ! चतुर्भुजा देवी की जय हो !

सैनिक—(समवेत स्वर में) जय चतुर्भुजा देवी की जय ! महाराज शीघ्र आज्ञा दें ! अब देर न करें !

सरोजिनी—पिताजी ! आज्ञा दीजिए। सचमुच अब देर किस बात की ? देखिए ! मेरे रक्त के लिए सभी लालायित हैं। अपनी इस अभागी बेटी को अब अन्तिम विदा दीजिए। (वही, पृ० २७४)

अन्त में राणा की आँखों पर पट्टी बांधी जाती है और भैरवाचार्य कुठार लेकर सरोजिनी की बलि के लिए उद्यत होता है। तभी विजय सिंह सेना लेकर वहाँ उपस्थित होता है। वह भैरवाचार्य से कुठार छीन लेता है और पाखण्डी भैरवाचार्य को सैनिकों से पकड़ने की आज्ञा देता है। राणा की आँख की पट्टी खोली जाती है। भैरवाचार्य अपनी गणना की भूल स्वीकार करता है। सरोजिनी के स्थान पर रोशनआरा की बलि दी जाती है। रोशनआरा भैरवाचार्य की पुत्री है। कपटाचरण करने वाले भैरव को इसका पता तब चलता है जब वह कुठार से अपने ही हाथों अपनी बेटी का वध कर देता है। इस प्रकार कपटवेशधारी भैरवाचार्य (मुहम्मद अली) का भण्डाफोड़ होता है।

अनैतिहासिकता

आलोच्य नाटक 'सरोजिनी' की कथावस्तु ऐतिहासिक होते हुए भी इसकी मूल घटना अनैतिहासिक है। राणा भीमसिंह की रानी पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था तथा पद्मिनी ने जौहरव्रत का पालन किया था। यह आख्यान टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित है, पर सरोजिनी के बलिदान का वर्णन नहीं है। हाँ, इतना जरूर है कि राणा लक्ष्मण सिंह ने देववाणी का श्रवण किया था और देवी ने उनके द्वादश पुत्रों की बलि की कामना की थी। इस देववाणी का उल्लेख 'राजस्थान' में अवश्य पृष्ठ २१४ पर मिलता है—

"The Rana (Lakumsi succeeded his father in 1275 A D.) after an arduous day. stertched on his pallet, and during a night of watchful anxiety, pondering on the means by which he might preserve from the general destruction one at least of his twelve sons; when a voice broke on his solitude, exclaiming "Myn Bhooka ho"; (I am hungry) and raising his eyes, he saw, by the dim glare of the cheragh (lamp), advancing between the grenite columns, the magestic form of the guardian goddess of Cheetore. "Not satiated", exclaimed the Rana, "though eight thousand of my kin were late an offering to thee ?" "I must have regal victims; and if twelve who wear the diadem bleed not for Cheetore, the land will pass from the line." This said she vanished." (Ibid, Page 214)

देववाणी

नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ने अपने नाटक में चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी के रूप में चतुर्भुजा देवी का उल्लेख किया है। यह देवी अभी भी नाथद्वारा और उदयपुर के निकट स्थित हैं। तीर्थयात्री नाथद्वारा तीर्थ का परिभ्रमण करने के पश्चात् चतुर्भुजा का दर्शन करते हैं। टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ में वर्णित देवी की भविष्यवाणी को लेखक ने मुहम्मद अली (छद्मवेषधारी भैरवाचार्य) का षड्यन्त्र बताया है और इसी प्रसंग में सरोजिनी के बलिदान की कथा को काल्पनिक आधार से जोड़कर नाटक को रोमांटिक करुणरस में नियोजित कर दिया है। जोड़ासांकू ठाकुरवाड़ी के टैगोर परिवार के ही ज्योतिरिन्द्रनाथ के चचेरे भाई अवनिन्द्रनाथ ठाकुर ने १९०९ ई० में अपने कहानी-संग्रह 'राजकाहिनी' में देवी की भविष्यवाणी का 'पद्मिनी' कहानी में जिक्र किया है। आपने दिखाया है कि पद्मिनी ही छद्मवेष में देवी का रूप धारण कर राणा लक्ष्मण सिंह को कहती है—'राजा-प्रजा, बालक-वृद्ध सभी मिलकर प्राणोत्सर्ग करें, तभी चित्तौड़ की रक्षा हो सकती है, नहीं तो सूर्यवंश का राजपरिवार चित्तौड़ के सिंहासन पर अधिष्ठित नहीं रह सकता है।'

'कृष्णकुमारी' और 'सरोजिनी'

सरोजिनी के बलिदान की घटना से राणा लक्ष्मण सिंह के मन में जैसा द्वन्द्व पैदा होता है उसका सादृश्य मधुसूदन के 'कृष्णकुमारी' नाटक में देखा जा सकता है। कृष्णकुमारी की हत्या के कारण राणा भीमसिंह के मानस में उद्वेलन होता है। रवीन्द्रनाथ के 'विसर्जन' नाटक में वर्णित रघुपति एव 'सरोजिनी' नाटक के भैरवाचार्य में काफी समानता दीख पड़ती है।

ग्रीक नाटक का प्रभाव

कई आलोचकों के मतानुसार 'सरोजिनी' नाटक पर यूरीपिडेस के नाटक 'इम्फोगेनिया एट आलिस' की छाया है। डॉ० सुकुमार सेन ने 'बांग्ला साहित्येर इतिहास' के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ ३०५ पर लिखा है—'सरोजिनी' नाटक पर प्राचीन ग्रीक नाटक 'इम्फीगेनिया' का जबरदस्त प्रभाव देखा जा सकता है। यद्यपि ज्योतिरिन्द्रनाथ ने मूल ग्रीक नाटक नहीं पढ़ा था, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने उक्त नाटक का रेजान द्वारा किया गया फ्रांसीसी अनुवाद देखा था और वे उससे प्रभावित थे। लक्ष्मण सिंह एवं सरोजिनी के चरित्रों पर मधुसूदन के 'कृष्णकुमारी' नाटक के पात्रों का भी प्रभाव है।

किन्तु इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि ज्योतिरिन्द्रनाथ ने कथानक का गठन करने में अपनी मौलिक प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। एक तरफ पिता का कर्तव्य और दूसरी तरफ राज-कर्तव्य के बीच की मानसिक स्थिति में डूबते-उतराते राणा के चरित्र को नाटककार ने बड़े मनोयोग से हमारे सामने प्रस्तुत किया है।'

दरअसल यूरिपिडेस के नाटक और 'सरोजिनी' नाटक में घटना और चरित्रों का सादृश्य देखा जा सकता है। लक्ष्मण सिंह, रणधीर सिंह, विजय सिंह के साथ क्रमशः 'इफ्फीगेनिया' के आगामेम्नन, मेनेलास और एकिलिस की तुलना की जा सकती है। आगामेम्नन सन्तान वत्सलता एवं देश-प्रेम के कारण गहरे मानसिक द्वन्द्व में पड़ता है। राणा की भी यही मनोदशा है। विजय सिंह की भांति एकिलिस निरपराध बालिका की रक्षा करता है और नायिका इफीगेनिया की रक्षा के लिए अपने प्राणों को संकट में डालता है। उसी तरह विजय सिंह सरोजिनी का उद्धार करता है।

रोचक संस्मरण

ज्योतिरिन्द्रनाथ के 'सरोजिनी' नाटक का उस समय बड़े चाव और उत्सुकता के साथ मंचन होता था। दर्शक बड़ी संख्या में उपस्थित होकर आनन्द लेते थे। यह नाटक अत्यधिक करुणापूर्ण होने की वजह से काफी लोकप्रिय हो गया था। विशेषकर सरोजिनी के बलिदान की कारुणिक नियति दर्शकों की आँखों में अश्रु प्रवाहित करती थी। इस प्रसंग में सरोजिनी की भूमिका अदा करने वाली प्रसिद्ध अभिनेत्री विनोदिनी का संस्मरण यहाँ उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा। विनोदिनी ने 'आमार अभिनेत्री जीवन' प्रबन्ध में लिखा है—'कपटभेषधारी भैरवाचार्य जब कुठार हाथ में लेकर सरोजिनी का बध करने के लिए उद्यत होता तो दर्शक सांस रोक कर एक अमानवीय लोमहर्षक काण्ड के लिए विचलित हो जाते, कई तो हाथों से आंख बन्द कर लेते और उसी समय हठात विजय सिंह जब धूमकेतु की भांति उपस्थित होता और कहता—'यह सब झूठ है, यह सब झूठ है, भैरवाचार्य ब्राह्मण नहीं मुसलमान है, यवनों का क्रीत जासूस है।' यह सुनते ही शोक-सागर में डूबे दर्शक एक साथ अपनी कुर्सियों से उठकर चिल्लाते—'मारो, मारो; काटो, काटो।' दो-चार दर्शक इतने उत्तेजित हो जाते कि वे छलांग लगा कर स्टेज पर आ धमकते और भैरवाचार्य को उसी की कुठार से मारने पर उतारू हो जाते।'

यह संस्मरण 'सरोजिनी' नाटक की सार्थकता का परिचायक है और सिद्ध करता है कि दर्शकों और नाटक की कला के बीच किस प्रकार साधारणीकरण-रस का परिपाक हो सकता है। यही 'सरोजिनी' नाटक की सफलता और लोकप्रियता का रहस्य है। भावविमुग्ध लोग ज्योतिरिन्द्रनाथ को अमित बधाई-सन्देश देते और हाथ की तालियों से प्रेक्षागृह गूँज उठता था।

जौहरव्रत

'सरोजिनी' नाटक ६ अंकों में लिखा गया है। राजपूत रमणियों का जौहरव्रत दर्शाने की गरज से ही शायद नाटककार ने छठे अंक की अवतारणा की है अन्यथा नाटक ५ अकों में ही सुखान्त रूप से समाप्त हो जाता है। भैरवाचार्य की कलई खुलने और विजय सिंह द्वारा सरोजिनी के उद्धार से नायक-नायिका का सुखान्त मिलन दर्शकों को आनन्द की तृप्ति प्रदान करता है, पर ज्योतिरिन्द्रनाथ का उद्देश्य तो महत था। उन्हें राजपूत इतिहास की वीरतापूर्ण कहानी से देशवासियों को जगाना था। इसीलिए उन्होंने कहानी का ताना-बाना बुना था। म्लेच्छों से राजपूत रमणियों ने सतीत्व रक्षा किस ओजस्विता और वीरता से की यह दिखाना नाटककार का लक्ष्य था।

नाटक के अन्तिम दृश्य में जलती हुई चिता के सम्मुख राजपूत रमणियाँ आत्माहुति देने के पूर्व जिस गीत को बार-बार गाती हैं, वह इस प्रकार है—

> जल् जल् चिता, द्विगुन द्विगुन,
> परान सौंपिबे विधवा बाला।
> जलूक जलूक चितार आगुन,
> जुड़ाबे एखनि प्राणेर ज्वाला। (वही, पृ० २८५)

कहा जाता है कि इस गीत की रचना नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ के अनुज विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने की थी। नाटक के अन्त में भरत-वाक्य के रूप में भारत की पराधीनता एवं गुलामी की करुण कहानी का वर्णन एक लम्बी कविता में इस तरह किया गया है—

> स्वाधीनता-रत्नहारा, असहाया अभागा जननि !
> धन-मान यत पर हस्तगत
> पर-शिरे शोभे तव मुकुटेरमणि···· (वही, पृ० २८७)

'सरोजिनी' नाटक का हिन्दी अनुवाद

ज्योतिरिन्द्रनाथ के बंगला नाटक 'सरोजिनी' का अनुवाद १९०२ ई० में भारत जीवन प्रेस, काशी से श्री रामकृष्ण वर्मा ने प्रकाशित किया। इसके पूर्व 'सरोजिनी'

नाटक का हिन्दी अनुवाद लखनऊ से प्रकाशित हुआ था ; जिसके अनुवादक थे श्री केशव प्रसाद मिश्र। श्री केशव प्रसाद मिश्र के हिन्दी अनुवाद को ही १९०२ ई० में काशी से श्री रामकृष्ण वर्मा ने प्रकाशित किया।

हमने 'सरोजिनी' नाटक की अनैतिहासिकता पर पूर्व में प्रकाश डाला है। वस्तुत: यह नाटक ज्योतिरिन्द्रनाथ की उर्वर कल्पना-प्रसूत है। हिन्दी अनुवाद के आरम्भ में श्री रामकृष्ण वर्मा ने 'आवश्यक सूचना' शीर्षक से एक नोट प्रकाशित किया है, जिसमें लिखा है—

"इस 'सरोजिनी' नाटक में पाठकगण राणा लक्ष्मण सिंह आदि ऐतिहासिक पात्रों के सम्बन्ध में अनेक बातें पायेंगे। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इस पुस्तक में सरोजिनी के बलिदान में राणा लक्ष्मण सिंह की सम्मति, रानी का पति की भर्त्सना करना, राणा का कपट भाषण, सेना के विद्रोह का भय, सरोजिनी को मारने के लिए उद्यत करने का प्रयत्न आदि, जो बातें राणा लक्ष्मण सिंह के विषय में लिखी गई हैं वे बिल्कुल कल्पित हैं। इतिहास और इन बातों में कोई लगाव नहीं है। इससे हम इसके पाठकों को सूचित करते हैं कि वे इसमें उल्लिखित घटनाओं को सत्य कदापि नहीं समझें। यह एक कल्पित गल्प है न कि इतिहास।"

इसी भांति ज्योतिरिन्द्रनाथ के 'अश्रुमति' नाटक पर भी बड़ा विवाद हुआ, जिस पर हम आगे चर्चा करेंगे।

ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर का 'अश्रुमति' नाटक

ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर का तीसरा मौलिक नाटक है—'अश्रुमति' जिसकी रचना उन्होंने १८७९ ई० में की थी। नाटक पाँच अंकों में विभाजित है तथा नाटककार ने इसे अपने छोटे भाई रवीन्द्रनाथ को उनके विलायत प्रवास में उपहार स्वरूप भेंट किया है।

'अश्रुमति' नाटक के आमुख में नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ने टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से उद्धरण दिया है। इससे प्रतीत होता है कि नाटक की कथावस्तु उन्होंने राजस्थान' से ही संकलित की है। राणा प्रताप, सलीम, मानसिंह, हल्दीघाटी, शक्ति सिंह आदि की कहानी तो इतिहास पुष्ट है, किन्तु अश्रुमति और सलीम की प्रेम-कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। नाटक के आरम्भ में टॉड की उक्ति इस प्रकार दी गई है—

"There is not a pass in the Alpine Aravulli that is not sanctified by some deed of Partap, some brilliant victory or, oftener, more glorious defeat. Huldighat is the Thermopylae of Mewar; the field of Deweir her Marathon."

(Annals and Antiquities of Rajasthan—By James Tod, Vol. I, Chapter XI, Page 278).

टॉड का प्रभाव

'अश्रुमति' नाटक के मुखबंध में उल्लिखित उक्त अंश से सहज ही यह अनुमान होता है कि नाटककार ने टॉड के ग्रन्थ से उपकथा लेकर राणा प्रताप के देश-प्रेम, त्याग और वीरता को चित्रित करने के लिए नाटक लिखा है। यूं प्रताप के जीवन-चरित्र को आधार मानकर नाटक की रचना अवश्य हुई है, किन्तु इसमें उनकी कन्या अश्रुमति और अकबर के पुत्र सलीम की रोमांटिक कहानी को कथा का उपजीव्य बनाया गया है। अस्तु, कहानी इस प्रकार है—

'अश्रुमति' की कहानी

चित्तौड़ के राणा प्रताप सिंह से अपमानित होकर मानसिंह ने उनकी कन्या अश्रुमति का अपहरण कर मुसलमान सेनापति फरीद खाँ के साथ उसका विवाह करने का षड्यन्त्र किया और अपने अपमान का बदला लेने में प्रवृत्त हुआ। शाहजादा सलीम

ने फरीद खाँ के चंगुल से अश्रुमति का उद्धार किया और उसे अपने शिविर में रखा। फलतः दोनों के बीच प्रेम-संचार होने लगा। इधर प्रताप के भाई शक्तिसिंह ने बीकानेर के बन्दी राजकुमार पृथ्वीराज से मन्त्रणा कर सलीम से अश्रुमति का उद्धार करने की चेष्टा की, पर अश्रुमति तैयार नहीं हुई। सलीम के प्रति उसने अपनी अनुरक्ति की बात बताई। फरीद खाँ ने मानसिंह के परामर्श से सलीम के मन में विद्वेष पैदा करने की चेष्टा की। सलीम जब अश्रुमति से विवाह करने पर राजी हुआ तो शक्ति सिंह के अनुरोध से अश्रुमति ने सात दिन की मोहलत मांगी। इससे सलीम के मन में सन्देह हो गया। इसी बीच अश्रुमति को उसके पिता की खबर देने के लिए रात में गुप्त रूप से पृथ्वीराज अश्रुमति के पास आया। फरीद खाँ के षड्यन्त्र से यह सूचना सलीम को मिल गई। वह तत्काल वहाँ पहुँचा और उसने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। सलीम और पृथ्वीराज के बीच तलवारों के वार हो रहे थे कि पीछे से फरीद खाँ ने चोरी से पृथ्वीराज पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी। सलीम उन्मत्त हो गया उसने अश्रुमति पर भी छुरी से आघात किया, किन्तु छुरी दूर जा पड़ी और अश्रुमति बेहोश हो गई। उसने समझा वह मर गई। इसी समय शक्ति सिंह ने उपस्थित होकर फरीद खाँ और मानसिंह के षड्यन्त्र का सलीम के सामने भण्डाफोड़ किया। शक्ति सिंह अश्रुमति को लेकर अरावली पर्वत पर चला गया। वहाँ भील सरदार की सुश्रुषा से अश्रुमति स्वस्थ हो गई। इसके बाद अश्रुमति को पेशोला झील के किनारे बनी कुटिया में लाया गया, जहाँ राणा प्रताप मरणासन्न अवस्था मे थे। जब प्रताप को पता चला कि उसके चिरशत्रु अकबर के पुत्र सलीम से अश्रुमति प्रेम करती है, तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उसे विषपान की आज्ञा दी। अश्रुमति विषपान करने जा रही थी कि इसी समय शक्ति सिंह वहाँ आ गया और उसने भतीजी के निष्कलंक होने की बात कही। इसे सुनकर प्रताप थोड़े शान्त हुए पर उन्होंने प्रायश्चित स्वरूप अश्रुमति को चिर योगिनी बनने का आदेश दिया और स्वयं मृत्यु की गोद में सो गए।

मंगलगढ़ के पास सलीम की छावनी के नजदीक स्थित श्मशान मे अश्रुमति योगिनी के वेष में उपस्थित होती है। वहाँ वह देखती है कि उसकी सहेली मलिना, जो पृथ्वीराज के प्रति आसक्त थी, पृथ्वीराज के मृत शरीर को पकड़ कर पागलों की भांति प्रलाप कर रही है। सलीम उदासीन भाव से घूमता हुआ श्मशान में आता है और वहाँ अश्रुमति को वियोगिनी के वेष में देखता है तो उसे उसकी प्रेत-छाया समझ बैठता है। फिर भी वह प्रेत-छाया रूपी अश्रुमति से क्षमा याचना करता है और अनुनय से पूछता है—'क्या वह उसे हृदय से प्रेम करती थी ?' अश्रुमति अपने मन की व्यथा एक गीत में व्यक्त करती है और वहाँ से अन्तर्ध्यान हो जाती है। यहीं नाटक पर यवनिकापात हो जाता है।

'अश्रुमति' नाटक

'अश्रुमति' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम गर्भांक में दिखाया गया है कि उदय-सागर के तीर पर राजा मानसिंह का स्वागत किया गया। वह सोलापुर युद्ध से विजयी होकर स्वयं राणा प्रताप से मिलने आया था। मानसिंह के भोजन की समुचित व्यवस्था की गई है। प्रथम गर्भांक में राणा प्रताप, अमर सिंह, मन्त्री और रक्षकगण प्रवेश करते हैं—

राणा प्रताप—मंत्रीवर! मानसिंह के भोजन की पूरी व्यवस्था हो गई है तो?

मन्त्री—यह देखिए महाराज! सब कुछ तैयार है—केवल उनके आगमन की प्रतीक्षा है। भोजन के समय महाराणा तो उपस्थित रहेंगे ही?

राणा प्रताप—क्या कहते हैं मंत्रीवर? जिस क्षत्रिय नराधम ने मुसलमान के साथ अपनी बहन का विवाह किया उसके साथ सूर्यवंशी मेवाड़ का राणा भोजन करेगा?

मन्त्री—महाराज! आतिथ्य-सत्कार तो महत् धर्म की श्रेणी में आता है। इसमें त्रुटि होने से अपयश की सम्भावना रहती है। विशेष कर मानसिंह अनिमंत्रित अथिति हैं।

राणा प्रताप—आतिथ्य-सत्कार बड़ा धर्म है। इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सत्कार में कोई कमी नहीं रहेगी। मेरा पुत्र अमर सिंह उप-स्थित रहेगा। यह सब कुछ मैं आतिथ्य-धर्म की मर्यादा के लिए कर रहा हूँ, अन्यथा मैं ऐसे व्यक्ति का दर्शन भी पाप समझता हूँ, जिसने मातृभूमि का अपमान कर अपने वंश-गौरव को कलंकित किया है।

(एक प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—महाराणा की जय हो! अम्बर के राजा मानसिंह आ गए हैं।

राणा प्रताप—अच्छा, उन्हें ले आओ।

प्रहरी—जो आज्ञा महाराज! (प्रहरी का प्रस्थान)

राणा प्रताप—(मन्त्री और अमर सिंह के प्रति) मैं अन्दर रहूँगा। तुमलोग उनका स्वागत-सत्कार करो। मैं चला।

मन्त्री और अमर सिंह—जो आज्ञा महाराज!

(एक ओर से राणा का प्रस्थान और दूसरी ओर से ४ अंगरक्षकों सहित मानसिंह का प्रवेश)

राजा मानसिंह भोजन करने बैठता है और राणा प्रताप को उपस्थित न देख कर उन्हें बुलाने को कहता है। मन्त्री कहता है कि उनके सिर में पीड़ा है। इस पर मान कुपित होकर भोजन से उठ जाता है और तभी राणा प्रताप भीतर से आ उपस्थित होते हैं। दोनों में तर्क-वितर्क होता है और मानसिंह इस अपमान का बदला लेने की बात कहता है, राणा के दर्पपूर्ण की बात कहता है। मानसिंह के चले जाने के बाद राणा उस स्थान को गंगाजल से धुलवाकर शुद्ध कराते हैं। यह सब टॉड के राजस्थान में है।

('ज्योतिरिन्द्रनाथ ग्रन्थावली' पंचम खण्ड, 'अश्रुमति' नाटक, प्रथम अंक, प्रथम गर्भांक, पृ० १६६)

प्रथम अंक के द्वितीय गर्भांक में राणा प्रताप को उद्विग्न दिखाया जाता है। कमलमीर दुर्ग के कक्ष में राणा प्रताप, मन्त्री और कुछ सरदार बैठे हैं।

मन्त्री—महाराज ! आप चिन्तातुर दीख पड़ रहे हैं ?

राणा प्रताप—देखो मंत्री ! पूजनीय राणा सांगा और मेरे बीच यदि कोई मेवाड़ का राणा न होता, यदि उदय सिंह का अस्तित्व न रहता तो कभी भी यवन राजस्थान की धरती पर प्रवेश नहीं कर पाते।

मन्त्री—यह सत्य है महाराज !

इस कथोपकथन के बाद राणा विलासी जीवन का परित्याग करने की शपथ लेते हैं और राजपूत सरदार भी राणा के साथ तब तक भोग-विलास का जीवन त्यागने की प्रतिज्ञा करते हैं जब तक चित्तौड़ का, मातृभूमि का उद्धार न हो जाय।

(वही, पृ० १६७-१६८)

राणा प्रताप के उक्त कथन का साक्ष्य हमें टॉड के 'राजस्थान' के पृष्ठ २६६ पर इन शब्दों में मिलता है—

"Often was Partap heard to exclaim, Had Oody Sing never been, or non intervened between him and Sanga Rana, no Toork should ever have given laws to Rajasthan."

(Tod's Rajasthan, Vol. I, Page 266)

'अश्रुमति' नाटक के प्रथम अंक के पंचम गर्भांक में नाटककार ने दिखाया है कि राणा प्रताप एवं महाराणी के बीच जब कमलमेर दुर्ग में वार्तालाप होता है तो अश्रुमति के विवाह की बात महाराणी अपने पति राणा प्रताप से कहती हैं। महाराणी को पुत्री के विवाह की चिन्ता है। वह विवाह योग्य हो गई है। इसी अंक के छठे गर्भांक में दिखाया गया है कि मुगल सेना सलीम के सेनापतित्व में हल्दीघाटी का युद्ध

करने आ गई है। सलीम के शिविर में राजा मानसिंह फरीद खाँ को बुला कर राणा प्रताप की पुत्री अश्रुमती का अपहरण करने की आज्ञा देता है। मानसिंह मन-ही-मन कहता है—"जिस राजपूत ने अपनी बहन का विवाह तुर्क के साथ किया है उसके साथ सूर्यवंशी राणा भोजन करने से घृणा करते हैं, यह दर्प है दर्प, झूठा अहंकार है। प्रताप के इस दर्प को, उसके अहंकार को मुझे चूर्ण करना ही होगा। हमारी बहन का विवाह तो दिल्ली के सम्राट से हुआ, लेकिन मैं उसकी कन्या का विवाह एक साधारण मुसलमान से करूँगा। फिर देखूँगा राणा का सिर कैसे नहीं अवनत होता है।"

मानसिंह—देखो फरीद, प्रताप सिंह की कन्या का अपहरण कर उसे बंदिनी बनाने के लिए मैंने तीन-चार गुप्तचरों का दल सेना सहित अरावली पर्वत की पहाड़ियों में भेजा है। तुम भी कुछ सैनिकों को लेकर जाओ। जो दल-नेता उसका हरण करके लायेगा, वही उस कन्या-रत्न का स्वामी होगा। समझे? (वही, पृ० १७२)

इस तरह राजा मानसिंह अपने अपमान का बदला लेने के लिए महाराणा प्रताप की कन्या अश्रुमति का अपहरण कराने के गर्हित कार्य में लिप्त होता है। क्रोध और ईर्ष्या से वह इतनी नीचता पर उतर आता है कि राणा की पुत्री का विवाह एक साधारण मुसलमान सैनिक से कराने की कुत्सित योजना बनाता है।

हल्दीघाटी-युद्ध के बाद राणा अरावली की कन्दराओं में कष्ट का जीवन व्यतीत करते हैं। द्वितीय अंक के प्रथम गर्भांक मे एक गुहा के प्रवेश द्वार पर राणा प्रताप अपनी महाराणी से वार्तालाप करते हुए दिखाये जाते हैं, जिसमें बिलाव द्वारा बच्चों की घास की रोटी ले भागने की बात आती है। राणा और महाराणी में वार्तालाप हो ही रहा है कि दो-चार भील वहाँ आते हैं—उनके साथ भीलपति वृद्ध मल्लू भी है। इसी भील-पति ने अश्रुमति का दस वर्ष पालन-पोषण किया था। चार दिन पूर्व वह अश्रुमति को राणा के पास पहुँचा गया था। आज उसे देखने आया है। वह अपनी भील-भाषा मे कहता है—

मल्लू—राजा, मैं आपके पास आया हूँ बिटिया को देखने। दस वर्ष जिसे मैंने पाला-पोषा उसे देखने के लिए प्राण छटपटा रहे थे। चार दिन पूर्व मैं आपकी बेटी को आपको सौंप गया था। उसके बिना चार दिन से घर में खाना-पीना बन्द है। इसलिए एक बार उसे देखने आया हूँ।...

राणा प्रताप—(अश्रुमति को पुकार कर) देखो, कौन आया है?

(अश्रुमति का प्रवेश)

राणा प्रताप—तुम्हारे प्रतिपालक भीलराज, तुम्हें देखने आये हैं।

(अश्रुमति आगे बढ़ कर मल्लू को प्रणाम करती है)

मल्लू—कैसी हो बेटी, मन लग गया तो तुम्हारा—तुमको घर में सब याद करते हैं। राजा सा'ब ! यह—यह हमारी उच्छामुती है, हम तो इसे इसी नाम से पुकारते हैं। इसका भला सा क्या नाम है ?

राणा प्रताप—इसका नाम है 'अश्रुमति'। आज से चौदह वर्ष पहले जब चित्तौड़ पर यवनों का अधिकार हुआ था तभी इसका जन्म हुआ था और इसीलिए इसका नाम रखा गया था अश्रुमति।

(वही, पृ० १७७)

नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने आलोच्य नाटक में न तो कोई कथा का तारतम्य रखा है और न इतिहास की रक्षा की है। यहाँ तक कि नाटक में बीकानेर के कवि पृथ्वीराज की मृत्यु भी दिखाई है, जो इतिहास से मेल नहीं खाती। प्रताप के भाई शक्तिसिंह की पुत्री कवि पृथ्वीराज की पत्नी थी, यह भी नाटककार की अपनी कल्पना है। यहाँ हम नाटक के कुछ अंशों को उपस्थित करना चाहेंगे, जिनसे अश्रुमति के अपहरण की घटना को नाटककार ने दिखाया है।

राणा प्रताप मल्लू (भीलपति) के साथ प्रस्थान करते हैं और वहाँ मलिना आ जाती है। यह अश्रुमति की सखी है और कवि पृथ्वीराज के प्रति अनुरक्त है। अरावली पर्वत पर राणा के शिविर में रहनेवाली मलिना दिल्ली दरबार के कवि पृथ्वीराज के प्रति अनुरक्त है, यह कल्पना की पराकाष्ठा है। अस्तु, मलिना अपनी सखी अश्रुमति से बातचीत के दौरान बताती है कि बचपन से ही वह पृथ्वीराज के प्रति आसक्त थी। पता नहीं बीकानेर का पृथ्वीराज चित्तौड़ कब आया और कब मलिना का उसके साथ प्रेमालाप हुआ ? दोनों सखियाँ बातचीत करती हैं और गुहा में चली जाती हैं। थोड़ी देर बाद अश्रुमति गुहा से बाहर आती है। गर्मी के कारण वह गुहा के बाहर एक खटिया पर सो जाती है। इसी समय फरीद खाँ अपने साथियों के साथ आता है और सोई हुई अश्रुमति का खटिया सहित अपहरण करके ले जाता है। थोड़ी देर बाद मलिना अश्रुमति की खोज में गुहा के बाहर आती है और अश्रुमति को न पाकर उद्विग्न होती है। इतने में ही महाराणी अश्रुमति को खोजती हुई आती हैं। राणा प्रताप भी आते हैं। सभी उद्विग्न होकर अश्रुमति को खोजते हैं पर उसका कहीं पता नहीं लगता है। तब राणा प्रताप कहते हैं—'शेर की मांद से कोई उसके बच्चे को ले जाय, ऐसी हिम्मत किसकी हुई ? मैं उसकी खोज में जाता हूँ। महाराणी ! बड़े ही अशुभ

लग्न में अश्रुमति का जन्म हुआ था। इस कन्या के कारण पता नहीं हमें कितना अश्रुपात करना होगा। अब इस स्थान में रहना निरापद नहीं है। अगर अश्रुमति मिलती है तो ठीक नहीं तो अब इस पर्वत प्रदेश में रहना नहीं है। इसे छोड़ कर हमें सिन्धु नदी के उस पार जाकर रहना होगा, तब देखेंगे, इस मरुभूमि में यवनों को क्या मिलता है।

(अश्रुमति, द्वितीय अंक, प्रथम गर्भांक, पृ० १७६-८०)

नाटक के द्वितीय अंक के द्वितीय गर्भांक में दिखाया जाता है कि फरीद खाँ अश्रुमति को सुप्तावस्था में लेकर सलीम के शिविर में आता है और मानसिंह को अपहरण में सफल होने की सूचना देता है—

फरीद खाँ—यह देखिए राजा साहब ! मेरा शिकार। शिकार सही है या नहीं, यह आप ही बता सकते हैं।

मानसिंह—(सोई हुई अश्रुमति का निरीक्षण करते हुए) हाँ, शिकार ठीक हुआ है। यह प्रताप सिंह की कन्या ही है। वैसे मैंने इसे बहुत वर्ष पहले बचपन में देखा था""ठीक है, फरीद अब इस कन्या-रत्न को लेकर तुम घर बसाओ। तुम्हारे परिश्रम का यही पुरस्कार है। (स्वगत) अब देखना है राणा कैसे अपने सूर्यवंश की रक्षा करते हैं ? (दर्प सहित प्रस्थान) (वही, पृ० १८०)

थोड़ी देर बाद अश्रुमति की निद्रा भंग होती है। वह अपने को अनजान जगह मे पाकर चिल्लाती है और वहाँ शहजादा सलीम आ जाता है। अश्रुमति भयभीत होकर सलीम के पास खड़ी होती है और अपने को फरीद डकैत से बचाने की प्रार्थना करती है। उसी समय मानसिंह आ जाता है। पता चलता है कि मानसिंह की आज्ञा मे ही राणा प्रताप की पुत्री का अपहरण कराया गया है। सलीम इस कायरतापूर्ण कार्य की भर्त्सना करता है, पर मानसिंह शहजादे को समझाता है कि सम्राट अकबर के आदेश से ही ऐसा किया गया है। सलीम पहले तो अश्रुमति को राणा के पास सम्मानपूर्वक वापस भेजने का आदेश देता है पर जब मानसिंह उसे सम्राट का आदेश कहता है तो वह शान्त होता है, पर अश्रुमति को अपने संरक्षण में रखता है।

ऐसी अनैतिहासिक कई घटनाएँ 'अश्रुमति' नाटक में हैं। आश्चर्य देखिए कि जयपुर का राजा अश्रुमति को पहचानता है, क्योंकि बचपन में उसने उसे देखा था। नाटककार की अनोखी कल्पना है। जबकि नाटक में कहा गया है कि दस वर्ष तक अश्रुमति भीलपति मल्लू के संरक्षण में पालित-

पोषित हुई। अब पता नहीं कब राजा मानसिंह ने उसे देखा था और अगर देखा भी था तो दो-तीन वर्ष की बच्ची को युवावस्था में भी पहचान लिया यह ज्योतिरिन्द्र बाबू का ही कमाल है।

कई परस्पर विरोधी घटनाओं और परस्पर विरोधी तथ्यों से नाटक एक अजीब पहेली बन गया है। चूंकि यह राणा प्रताप से सम्बन्धित है और एक विवादास्पद नाटक है। इसीलिए हमने इस पर विस्तार से चर्चा करना जरूरी समझा। साथ ही यह नाटक एक ऐसे नाटककार की लेखनी से लिखा गया है जो विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई हैं, जोड़ासांकू ठाकुरबाड़ी के जानेमाने साहित्यकार हैं। साथ ही ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने 'अश्रुमति' नाटक को अपने अनुज (रवीन्द्रनाथ) को उपहारस्वरूप उस समय भेंट किया है जब वे इङ्गलेण्ड गए थे। उत्सर्ग पत्र में लिखा है—'भाई रवि, तुम 'अश्रुमति' को देखने के लिए उत्सुक रहे हो। यह लो मैं अपनी 'अश्रुमति' को तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। तुम्हारे इङ्गलैण्ड प्रवास में 'अश्रुमति' को देख कर अगर तुम्हारे प्रवास की पीड़ा का थोड़ा सा भी मोचन होगा तो मुझे खुशी होगी—तुम्हारा, बड़ा भाई, ६ श्रावण, १८०१ (शकाब्द)।'

उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार 'अश्रुमति' नाटक का हिन्दी क्षेत्रों मे विरोध हुआ, उसी प्रकार बंगाल में भी इसकी प्रतिक्रिया हुई। बंगला भाषा के प्रसिद्ध नाटककार श्री गिरीशचन्द्र घोष स्वयं एक कुशल अभिनेता भी थे। उन्हें 'अश्रुमति' नाटक में अभिनय करने के लिए आग्रह किया गया। वे तैयार हो गये और उन्होंने 'अश्रुमति' नाटक के एक दो अंकों में अभिनय किया, किन्तु जब उन्हें पता चला कि देशभक्त राणा प्रताप की पुत्री अश्रुमति यवन सम्राट अकबर के पुत्र सलीम से प्रेम करती है, तो तत्काल उन्होंने उसमें अभिनय करना बन्द कर दिया। गिरीश बाबू नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ की इस अनैतिहासिक दन्तकथा से बड़े क्षुब्ध हुए। उन्होंने स्वयं भी 'राणा प्रताप' नामक नाटक लिखा था, जो अधूरा रह गया। इसका हमने गिरीश घोष के नाटकों के अध्ययन में उल्लेख किया है। गिरीश बाबू के अभिनय से रुष्ट होकर विरत होने की बात का उल्लेख 'महाराणा प्रताप स्मृति-ग्रन्थ' में पृष्ठ १७४ पर श्री सुखमय मुखोपाध्याय के लेख में देखा जा सकता है।

वियोगान्तक नाटक

'अश्रुमति' वियोगान्तक नाटक है। अगर अश्रुमति भी कृष्णकुमारी की भांति विषपान करती तो यह नाटक पूर्णतः ट्रेजेडी हो जाता, लेकिन विषपान से भी बढ़कर उसे आजन्म जीवन वियोगिनी होना पड़ा यह दुःखान्त नाटक की चरम परिणति

है। सम्भव है पिता की मृत्युशैया के पास अश्रुमति को अपनी भूल का अहसास हुआ हो और उसके बाद उसकी जीवन-धारा ही बदल गई हो ?

प्रतिक्रिया

'अश्रुमति' नाटक यद्यपि सफल रहा, दर्शकों ने इसे देखा और सराहा, पर जब इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ तो हिन्दी क्षेत्रों में इसके प्रति आक्रोश और घृणा की भावना फैल गई। सच बात तो यह थी कि प्रताप की अश्रुमति नामक कोई कन्या थी ही नहीं। साथ ही देशभक्त प्रताप की कन्या यवन से प्रेम करे, यह बात ही कल्पनातीत थी। इस नाटक से प्रताप का देश-प्रेम और विधर्मियों से उनकी शत्रुता की हेठी होती है, आँच आती है। फलतः गैर-बंगाली पाठकों और दर्शकों का कुपित होना स्वाभाविक था। हिन्दी-भाषियों के अभियोग और आलोचनाओं का उत्तर ज्योतिरिन्द्रनाथ ने दिया और स्वीकार किया कि अश्रुमति की कहानी काल्पनिक है, लेकिन इसमें राणा प्रताप के चरित्र को कहीं भी हेय या छोटा दिखाने की धृष्टता नहीं की गई।

उस समय कलकत्ता से 'भारत मित्र' दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित होता था। यह पत्र अपने तेज-तर्रार सम्पादकीय और निष्पक्ष समाचार प्रेषण के कारण बड़ा प्रसिद्ध था। इसके सम्पादक थे हिन्दी गद्य के उन्नायक तथा व्यंग्य शैलीकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त। हिन्दी के इस तेजस्वी पत्रकार-लेखक ने 'अश्रुमति' नाटक के रचनाकार श्री ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर को एक कड़ी फटकार का पत्र सितम्बर १९०१ ई० में लिखा और अपने समाचार-पत्र में उसकी तीखी आलोचना प्रकाशित की। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को कल्पित घटनाओं के आधार पर महाराणा प्रताप के यश को कलुषित करने पर बड़ा क्षोभ था। राणा की कन्या एक यवन से प्रेम करे यह कल्पना से परे था। फलतः उन्होंने ज्योतिरिन्द्र बाबू को पत्र लिखा। इस पत्र का उल्लेख 'गुप्त-निबन्धावली' के प्रथम भाग के पृष्ठ ५४७ पर इस प्रकार मिलता है—'हिन्दू लोग महाराणा प्रताप की बड़ी इज्जत करते हैं, सवेरे उठकर उनका नाम स्मरण करते हैं, उनका उज्ज्वल यश आज तक श्रद्धा से गाया जाता है। उसे सुनकर इस गिरी दशा (अंग्रेजों की पराधीनता) में भी भारतीयों का हृदय स्फीत हो जाता है।'

'भारत-मित्र' सम्पादक को पत्र

ज्योतिरिन्द्रनाथ के जीवनीकार मनमथनाथ घोष ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८२

पर नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के उस पत्र का उल्लेख किया है, जो उन्होंने 'भारत मित्र' (हिन्दी) के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त को १ अक्टूबर १९०१ ई० को लिखा था। पत्र इस प्रकार है—'अश्रुमति बचपन से ही निरुद्देश्य थी और बहुत दिनों तक उसका लालन-पालन भील-परिवार के द्वारा हुआ था। वह इस बात से अनभिज्ञ थी कि कौन राजपूत है और कौन मुसलमान। सलीम के द्वारा जब डाकुओं से अश्रुमति का उद्धार हुआ तो पहले वह उसके प्रति कृतज्ञ हुई और शनैः शनैः कृतज्ञता प्रेम में रूपान्तरित हो गई। उद्धारक या त्राणदाता के प्रति ऐसी भावना पैदा होना या प्रेम करना अस्वाभाविक नहीं होता।'

पत्र में आगे लिखा है—

'महाराणा प्रताप को मैं अपना आराध्य मानता हूँ और देवता की भांति उनके प्रति श्रद्धानत हूँ। राणा प्रताप की वीरता, उनका शौर्य, उनकी सहिष्णुता, उनकी कुलश्रेष्ठता, उनकी देशभक्ति का मैं कायल हूँ। वे हमारे प्रातःस्मरणीय आदर्श पुरुष हैं। उनके चरित्र के इस उच्च और उज्ज्वल पक्ष को बंगाली समाज के समक्ष प्रस्तुत करना ही इस नाटक के द्वारा मेरा अभिप्राय रहा है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि अश्रुमति नाम की राणा की कोई कन्या नहीं थी। यह मेरी कोरी कल्पना मात्र है। इस विषय में मेरा एक ही वक्तव्य है कि नाटक की काल्पनिक उद्-भावना से राणा प्रताप का चरित्र जरा भी क्षुण्ण नहीं हुआ है, अपितु उनके यश में वृद्धि ही हुई है।'

समीक्षा

'अश्रुमति' नाटक पढ़ने से ऐसा लगता है कि इसमें दो कहानियाँ समानान्तर चलती हैं। एक है राणा प्रताप की वीरतापूर्ण कहानी और दूसरी है अश्रुमति-सलीम की प्रेम-कहानी। अगर नाटककार राणा प्रताप के त्याग-बलिदान की कहानी का वर्णन नहीं करता तो वह अश्रुमति की कहानी निरूपित करने के लिए स्वतन्त्र था। लेकिन उसने एक ओर तो प्रताप के स्वतन्त्रता-संग्राम की गौरवमयी कहानी का बखान किया और उसके परिपार्श्व में यह दिखाया कि उन्हीं प्रताप की कन्या उनके शत्रु से प्रेम करती है। स्वाभाविक है कि अश्रुमति का विपरीत धर्मा चरित्र पाठक-दर्शकों को कचोटने वाला बन गया। अश्रुमति का मानवीय दृष्टि से सलीम के प्रति आसक्त होना अन्याय नहीं, किन्तु उस पिता के शत्रु से प्रेम करना, जिसके लिए वह दूर-दूर की ठोकरें खाता है, मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए अरावली

की कन्दराओं-पहाड़ियों में अलख जगाता है, घोर अपमान और निहायत शर्म की बात लगती है। यह मान भी लें कि राजा मानसिंह ने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए ऐसा कुत्सित कार्य किया, फिर भी अश्रुमति का शत्रु-प्रेम किसी भी भाँति गले नहीं उतरता। ज्योतिरिन्द्रनाथ ने अपनी सफाई में कहा है कि अश्रुमति भील-परिवार में पालित हुई थी इसलिए उसे पिता के गौरव और यवन-विद्वेष का पता नहीं था। ऐतिहासिक नाटक के रचयिता लेखक को यह पता होना चाहिए था कि भील-परिवारों ने प्रताप के साथ मेवाड़ की आजादी में कंधे से कंधा लगाया था और अपने को पूरी तरह राणा के प्रति समर्पित कर दिया था। तब यह कथन कितना बौना और हास्यास्पद लगता है कि भील-परिवारों में पली कन्या अपनी अस्मिता को भुला बैठी। यह इतिहास को तोड़-मरोड़ कर की जाने वाली बचकानी व्याख्या है।

नाटककार ने बताया है कि यवनों का जब पहली बार चित्तौड़ पर आक्रमण हुआ, उसी संकट की घड़ी में अश्रुमति का जन्म हुआ था और इसी कारण उसका नाम 'अश्रुमति' रखा गया। उसके बाद वह भील-परिवार के द्वारा पालित-पोषित हुई और राणा अरावली में स्वतन्त्रता के लिए जद्दोजहद करते रहे। परन्तु जब अश्रुमति का मानसिंह द्वारा अपहरण होता है तब तक वह युवती हो गई थी और पिता के कष्टों की सहभागिनी थी। जाहिर है जब उसने पिता के कष्टों को भोगा था और अपनी आँखों से राणा के वीरोचित उद्दाम चरित्र को देखा था तब यह कैसे स्वीकारा जा सकता है कि वह राणा प्रताप के देश-प्रेम और यवन-विद्रोह से परिचित नहीं थी? प्रेम अंधा होता है, यह मान लें तो बात जुदा है। तब भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसी स्थिति में नाटककार को महाराणा की गौरवमय कहानी के वर्णन को फिर कोई आवश्यकता नहीं थी।

लेखक ने 'अश्रुमति' नाटक के प्रथम अंक में प्रताप की वीरता का ओजस्वी भाषा में प्रस्तुतीकरण किया है, किन्तु बाद में अश्रुमति के प्रेम से प्रताप की तेजस्विता खर्व हो जाती है। नाटककार अश्रुमति के चरित्र में प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व दिखाने की कोशिश करता तो कदाचित नाटक एक श्रेष्ठ कृति बन सकता था, पर ऐसा उसने नहीं किया। इससे नाटक विवादपूर्ण होकर रह गया।

'राजस्थान' का अनुसरण

अस्तु, अब हम देखेंगे कि ज्योतिरिन्द्रनाथ ने किस प्रकार और किस सीमा तक टॉड के 'राजस्थान' से ऐतिहासिक घटनाओं का संकलन किया है। सोलापुर युद्ध में

विजयी होकर जब राजा मानसिंह लौट रहा था, तो स्वयं उसने रास्ते में महाराणा का आतिथ्य ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। भोजन के समय जान-बूझकर प्रताप शरीक नहीं हुए, उन्होंने सिर दर्द का बहाना बना लिया। असल में वे मानसिंह के साथ भोजन करने में अपनी हेठी समझते थे। वे मानसिंह को यवनों का क्रीत-दास मानते थे। यही घटना थी जिसे मानसिंह ने अपना अपमान समझा और प्रतिशोध लेने के लिए वह उग्र हो उठा। इसी प्रतिशोध की बात का सहारा लेकर 'अश्रुमति' के नाटककार ने उसके अपहरण की कहानी की कल्पना गढ़ी है। जो भी हो, यह बात तो सिद्ध है कि मानसिंह के अपमान की घटना का नाटककार ने हूबहू वर्णन टॉड के 'राजस्थान' से किया है। इसे हम 'राजस्थान' ग्रन्थ के २६८ पृष्ठ पर पूरी तरह पाते हैं और 'अश्रुमति' से उसका मिलान करते हैं।

अमर की विलासिता

'अश्रुमति' के पाँचवें अंक में मृत्यु-शैया पर पड़े हुए राणा प्रताप की मानसिकता का वर्णन भी लेखक ने टॉड के ग्रन्थ के आधार पर ही किया है। मृत्यु के पूर्व अपने पुत्र अमरसिंह के आचरण से प्रताप को ठेस लगी थी। राणा प्रताप मेवाड़ की आजादी के लिए घोर कष्ट के दिन काटते थे। वर्षा से बचने के लिए उन्होंने पेशोला झील के किनारे पर्णकुटी बना ली थी और उसी में रहते थे। एक दिन कुटिया में प्रवेश करते समय अमर सिंह माथा नीचा न किए हुए घुसा और उसकी पगड़ी झोपड़ी के एक डंठल में फँस कर गिर गई। इससे उसके मुख पर क्रोध की रेखा खिंच गई। प्रताप ने पुत्र के इस विलासी उद्दण्ड स्वभाव के प्रति दुःख प्रकट किया कि अमर के द्वारा मेवाड़ की स्वतन्त्रता सुरक्षित नहीं रह सकेगी। टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ के पृष्ठ २७७-७८ पर लिखा है—

"On the banks of the Peshola, Pertap and his Chiefs had constructed a few huts (the site of the future palace of Oodipore) to protect them during the inclemency of the rains in the day of their distress. Prince Umra, forgetting the lowliness of the dwelling, a projecting bamboo of the roof caught the folds of his turban and dragged it off as he retired. A hasty emotion, which disclosed a varied feeling, was observed with pain by Pertap; who thence adopted the opinion that his son would never withstand the hardships necessary to be endured in such a cause.

"These Sheds" the dying prince, "will give way to Sumptuous dwellings, thus generating the love of ease; and luxury with its concomitants will ensue, to which the independence of Mewar, which we have bled to maintain, will be sacrificed, and you my

Chiefs, will follow the purnicious example." They pledged themselves, and became guarantees for the prince, "by the throne of Bappa Rawul." that they would not permit mansions to be raised till Mewar had recovered her independence. The soul of Pertap was satisfied, and with joy he expired." (Ibid, Page 277-78)

राणा प्रताप की इस मनोदशा पर हिन्दी के यशस्वी कवि जयशंकर प्रसाद का हृदय क्रन्दन कर उठता है। उन्होंने अपनी 'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता में देशवासियों को राणा प्रताप की आजादी की जंग की पताका को सम्भालने का आह्वान किया है—

पेशोला की उर्मियाँ हैं शान्त घनी छाया में—
तटतरु हैं चित्रित तरल चित्रसारी में।
झोपड़े खड़े हैं बने शिल्प से विषाद के—
दग्ध अवसाद से।

\+ + +

कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
मैं हूँ—मेवाड़ में,
अरावली शृङ्ग-सा समुन्नत सिर किसका ?
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?

\+ + +

आज भी पेशोला के—
तरल जल-मंडलों में,
वही शब्द घूमता सा—
गूँजता विकल है।
किन्तु वह ध्वनि कहाँ ?
गौरव की काया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़ !
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?

(जयशंकर प्रसाद के 'लहर' काव्य से)

देश की स्वतन्त्रता के लिए असीम कष्ट सहनेवाले राणा प्रताप के जीवन-चरित्र को 'अश्रुमति' नाटक में जिस सहृदयता से चित्रित किया गया है उसे देखकर या पढ़कर अनायास हृदय द्रवित हो जाता है। प्रताप को ऐसे दिन भी देखने पड़े हैं जब उनके बच्चों के लिए बनाई हुई रोटी बन-बिलाव ले भागता है और उनकी आँखों से अनजाने आँसुओं की बून्द लुढ़क पड़ती है। ऐसे मार्मिक प्रसंगों का वर्णन नाटककार ने टॉड के 'राजस्थान' से प्रेरित होकर किया है।

ओझाजी का मत

कहा जाता है कि बच्चों को रोटी के लिए बिलबिलाते देखकर प्रताप विचलित हो गए थे और उन्होंने अकबर को 'बादशाह' स्वीकार करने का पत्र दिया था, किन्तु प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस बात को स्वीकार नहीं करते।

नाटक के प्रथम अंक में ज्योतिरिन्द्रनाथ ने पृथ्वीराज को वीर और कवि के रूप में प्रस्तुत किया है। पृथ्वीराज एक स्थान पर कहता है—'मेरा राज्य गया, सब कुछ गया। मैं प्रताप की किस भाँति मदद कर सकता हूँ। कविता ही मेरा सम्बल है। मैं बीच-बीच में अपनी कविता से प्रताप का मनोबल ऊँचा करूँगा. यही मेरी इच्छा है।'

पृथ्वीराज की इस मानसिक स्थिति का ओझाजी ने 'उदयपुर राज्य का इतिहास' में पृष्ठ ७६४-६५ पर इन शब्दों में बखान किया है—

'राजपूतों में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह अकबर ने बीकानेर के राजा रायसिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज से, जो एक अच्छा कवि था, कहा कि राणा प्रताप अब हमें बादशाह कहने लग गया है और हमारी अधीनता स्वीकार करने पर उतारू हो गया है। इस पर पृथ्वीराज ने कहा कि यह बात झूठी है। बादशाह ने प्रत्युत्तर में कहा कि तुम सही बात मंगाकर हमारे सामने पेश करो। तब पृथ्वीराज ने नीचे लिखे दो दोहे बनाकर राणा प्रताप के पास भेजे—

पातल जो पतसाह, बोले मुख हूँतां बयण।
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव उत॥
पटकूँ मूँछाँ पाण, के पटकूँ निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक॥

अर्थात महाराणा प्रताप सिंह यदि अकबर को अपने मुख से बादशाह कहें तो कश्यप का पुत्र (सूर्य) पश्चिम में उगने लगे। कहने का अर्थ जैसे सूर्य का पश्चिम मे उदय होना असम्भव है, वैसे ही आप (महाराणा) के मुख से बादशाह शब्द का

निकलना भी असम्भव है। हे दीवाण! (महाराणा) मैं अपनी मूँछों पर ताव दूँ अथवा अपनी तलवार का अपने ही शरीर पर प्रहार करूँ, इन दो में से एक बात लिख भेजिए।

इन दोहों का उत्तर महाराणा प्रताप ने इस प्रकार दिया—

> तुरक कहासी मुख पतौ, इण तन सूं इकलिंग।
> ऊगै जांही ऊगसी, प्राची बीच पतंग॥
> खुसी हूँत पीथल कमध, पटको मूँछाँ पाण।
> पछटण है जेते पतौ, कलमाँ सिर केवाण॥
> सांग मूंठ सहसी सको, समजस जहर सवाद।
> भड़ पीथल जीतो भला, वैण तुरक सूं वाद॥

('राजपूताने का इतिहास', पृ० ७६४-६५)

अर्थात भगवान एकलिंग इस शरीर से (प्रताप के मुख से) तो बादशाह को तुर्क ही कहलावेंगे और सूर्य का उदय जहाँ होता है, वहाँ ही पूर्व दिशा में होता रहेगा। हे वीर राठौर पृथ्वीराज! जब तक प्रताप सिंह की तलवार यवनों के सिर पर है तब तक आप अपनी मूँछों पर खुशी से ताव देते रहिये। राणा प्रताप सिर पर सांग का प्रहार सहेगा, क्योंकि अपने बराबर वाले का यश जहर के समान कटु होता है। हे वीर पृथ्वीराज! तुर्क (बादशाह) के साथ आपका जो वचन रूपी विवाद है, आप उसमें भलीभांति विजयी हों।'

राणा प्रताप के बारे में पृथ्वीराज का यह दोहा राजस्थान की डिंगल भाषा में तथा पुरानी हिन्दी में बड़ा प्रसिद्ध है—

> माई एहा पूत जण, जेहा राणा प्रताप।
> अकबर सूतो ओझकै जाण सिराणे सांप॥

अर्थात हे माता! ऐसे पुत्र को जन्म दे जैसा कि राणा प्रताप है, जिसको सिरहाने के पास रहा साँप समझ कर अकबर आधी रात को चौंक उठता है याने भयभीत होता है।

महाराणा के पत्र की बात का उल्लेख टॉड ने अपने ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के ११वें अध्याय के पृष्ठ २७३ पर किया है। पृथ्वीराज ने जो पत्र प्रताप को लिखा था, 'अश्रुमति' के नाटककार ने उसे कविता के रूप में तृतीय अंक में इन शब्दों में व्यक्त किया है—

हिन्दूर भरसा—आशा हिन्दूर ऊपर।
से आशारो परे राणा छेड़े छे निर्भर।
प्रताप छिलोगो भाग्यि—नचेत आकबर
करे छिलो समभूमि—सब एकाकार।

+ + +

क्षत्रिय वीरेर आर कोथा से विक्रम ?
महिला रो कोथा रबे सतीत्व सम्भ्रम ?
यथार्थ से राजपूत 'नयरोजा' दिने
विसर्ज्जिते पारे कि गो आपन संभ्रमे ?
किन्तु बोलो कयजन करेनि विक्रय
सेई जे अमूल्य-धन खेये लज्जाभय ?
क्षत्रियेर मूल्य-धन बेचिलो क्षत्रिय
विकाबे से रत्न कि गो चित्तौर तुमिओ ?

+ + +

विश्वजन जिज्ञासि छे 'कोन् गुप्त बले
एड़ालेन महाराणा शत्रुर कोशले?'
नाहि प्रतापेर—शोनो—अन्य कोन बल,
हृदयेर वीर्य आर कृपाण सम्बल....

('अश्रुमति' नाटक, तृतीय अंक, प्रथम गर्भांक, पृ० १८४)

हिन्दुओं की आशा और भरोसा हिन्दू सूर्य प्रताप पर था। प्रताप था तभी तो सौभाग्य से स्वाधीनता बची, नहीं तो अकबर श्मशान भूमि करके सब एकाकार कर देता। क्षत्रियों में वैसे बल-विक्रम कहाँ है ? स्त्रियों का सतीत्व अब किसके बलबूते पर रहेगा ? नौरोज में हिन्दू ललनाओं की इज्जत लूटी जाती है। हाय ? क्षत्रियों ने ही अपने क्षात्र-धर्म को बेच दिया तब क्या अब चित्तौड़ भी उस अमूल्य-रत्न को बेचेगा ? लोग पूछते हैं क्या ये शब्द महाराणा के हैं ? कह दो नहीं, ये राणा के नहीं किसी और के हैं। बस, अब तो वीरता और कृपाण ही सम्बल है।

ऐसी कचोटने वाली बात पृथ्वीराज ने राणा प्रताप के समक्ष पेश की और प्रत्युत्तर में राणा ने इस झूठ का पर्दाफाश कर सिंह के समान गर्जना की। महाराणा को मानों दस हजार राजपूत वीरों की शक्ति पृथ्वीराज के इस काव्य-पत्र से मिल गई।

पृथ्वीराज का कार्य पूरा हो गया। उसने राणा की अस्मिता को झकझोर कर जगाने का जो बीड़ा उठाया था, वह कार्य सम्पूर्ण हो गया।

टॉड ने पृथ्वीराज की कविता का अंग्रेजी अनुवाद यूं किया है—

"The hopes of Hindu rest on the Hindu, yet the Rana forsakes them. But for Pertap, all would be placed on the same level by Akbar, for our Chiefs have lost their valour and our females their honour. Akbar is the broker in the market of our race; all has he purchased but the son of Oodoh; he is beyond his price. What true Rajpoot would part with honour for nine days (Noroza); yet how many have bartered it away ? Will Cheetore come to this market, when all have disposed of the chief article of rhe Khetri ? Though Putto has squandered away wealth, yet this treasure has he preserved Despair has driven many to this mart to witness their dishonour; from such infamy the descendant of Hamir alone has been preserved The wcrld asks, whence the concealed aid of Pertap ? None but the soul of manliness and his sword; with it, well has he maintained the Khetri's pride. This broker in the market of men will one day be overreached; he can not live for ever; then will our race come to Pertap, for the seed of Rajpoot to sow in our desolate iands. To him all look for its preservation. that its purity may again become resplended." (Ibid, Page 273)

नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ के 'अश्रुमति' नाटक में उल्लिखित बंगला कविता टॉड का अक्षरशः अनुवाद है।

पृथ्वीराज की कविता भूरसिंह शेखावत द्वारा सम्पादित 'महाराणा यश प्रकाश' के पृष्ठ ६४-६५ पर उद्धृत है, जो इस प्रकार है—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट ॥
चौहटे तिण जायर चीतोड़ो,
बेचै किम रजपूत वट ॥ १ ॥
रोजायतां तणे नवरोजे.
जेथ मुसाणा जणो जण ॥
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे,
पतो न खरचे खत्रीपण ॥ २ ॥

परपँच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो ॥
रज बेचवाँ न आवे राणो,
हाटे मीर हमीर हरो ॥ ३ ॥

पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाळ तणे बलराण ॥
खत्र बेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खूम्माण ॥ ४ ॥

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार ॥
है राखियो खत्री ध्रम राणे,
सारा ले बरतो संसार ॥ ५ ॥

('महाराणा यश प्रकाश', पृ० ९४-९५)

अर्थात् जहाँ पर मानहीन पुरुष और निर्लज्ज स्त्रियाँ हैं और जैसा चाहिए वैसा ग्राहक अकबर है, उस बाजार में आकर चित्तौड़ का स्वामी (प्रताप सिंह) राजपूती को कैसे बेचेगा ? ॥ १ ॥

मुसलमानों के 'नौरोज' में प्रत्येक व्यक्ति लुट गया, परन्तु हिन्दुओं का पति प्रताप सिंह दिल्ली के उस बाजार में अपने क्षत्रियपन को नहीं बेचता ॥ २ ॥

हम्मीर का वंशधर (राणा प्रताप सिंह) प्रपंची अकबर की लज्जाजनक दृष्टि को अपने ऊपर नहीं पड़ने देता और पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा तथा अलाभ को अच्छा समझ कर बादशाही दुकान पर रजपूती बेचने के लिए कदापि नहीं आता ॥ ३ ॥

अपने पुरखों के उत्तम कर्त्तव्य देखते हुए आप (महाराणा) ने भाले के बल से क्षत्रिय धर्म को अचल रखा, जबकि अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को बेच डाला ॥४॥

अकबर रूपी ठग भी एक दिन इस संसार से चला जायगा और उसकी यह हाट भी उठ जायगी, परन्तु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रियों के धर्म में रह कर उस धर्म को केवल राणा प्रताप सिंह ने ही निभाया। अब पृथ्वी पर सबको उचित है कि उस क्षत्रियत्व को अपने व्यवहार में लावें। अर्थात् राणा प्रताप सिंह की भांति आपत्ति-विपत्ति भोग कर भी पुरुषार्थ से धर्म की रक्षा करें ॥ ५ ॥

यह भी एक विडम्बना है कि राजपूताने के प्रायः सभी राजपूतों ने अपनी बहन-बेटियों को यवनों को देकर अपनी रजपूती शान में बट्टा लगा दिया था। दूसरों की कौन कहे स्वयं राणा प्रताप के भाई जगमल और शक्तिसिंह अकबर से मिल गए थे। जगमल को मेवाड़ की गद्दी न मिलने के कारण अकबर की शरण में जाना पड़ा और शक्ति सिंह को 'अहेरिया' में बराह शिकार के कारण प्रताप से असन्तुष्ट हो अकबर के पास जाना पड़ा। किन्तु शक्ति सिंह ने हल्दीघाटी की लड़ाई में दो यवनों से प्रताप की जीवन-रक्षा कर अपने को धन्य बनाया। उस समय दो बिछुड़े भाइयों में जो प्रीति का प्रदर्शन हुआ उसकी इतिहासकारों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। 'अश्रुमति' नाटक में शक्ति सिंह ने अश्रुमति का उद्धार कर उसका विवाह पृथ्वीराज से कराने की कोशिश की और उसे प्रताप की कुटिया तक पहुँचाया।

अनैतिहासिक आख्यान

आलोचकों ने 'अश्रुमति' की कहानी को अनैतिहासिक बताया है। बंगला के आलोचक डॉ० सुशील राय ने 'ज्योतिरिन्द्रनाथ' नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ १५० पर लिखा है—'अश्रुमति' को ऐतिहासिक नाटक नहीं कहा जा सकता है। केवल ऐतिहासिक पात्रों का नाम ले लेने मात्र से ही और कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण करने से नाटक ऐतिहासिक नहीं हो जाता है।'

उल्लेखनीय है कि 'अश्रुमति' नाटक में रवीन्द्रनाथ की 'भानुसिंह पदावली' पुस्तक से 'गहन कुसुम कुंज माझे....' गीत लिया गया है।

अन्त में यह कहना होगा कि माइकेल मधुसूदन ने टॉड के राजस्थान' की बंगला भाषा में शुरूआत की, उसे ज्योतिरिन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उसका चरम विकास गिरीशचन्द्र से होता हुआ द्विजेन्द्रलाल राय में पूर्णता को प्राप्त हुआ।

बन-विलाव का 'घास की रोटी' ले भागना

टॉड के 'राजस्थान' का प्रभाव सबसे पहले बंगला-साहित्य की रचनाओं में हमें देखने को मिलता है। बंगला-भाषा की इन रचनाओं का धड़ल्ले से अनुवाद होने लगा और हिन्दी के साहित्यकार भी टॉड के 'राजस्थान' की ओर आकर्षित हुए। पहले जहाँ बंगला पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ, कालान्तर में टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर हिन्दी के यशस्वी रचनाकारों ने अपनी साहित्यिक कृतियों का प्रणयन आरम्भ किया। उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु-युग में स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास का अनुवाद प्रस्तुत किया।

यहाँ हम देखेंगे कि नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने टॉड के ग्रन्थ से प्रभावित होकर जंगली बिलाव की उस घटना का वर्णन किया है, जिससे बच्चे बिल-

खिलाने लगे। राणा प्रताप विचलित हो गए और उन्होंने अकबर को सन्धि-पत्र लिखा। यह एक ऐसी घटना है, जिससे राणा का चरित्र विवादास्पद बन जाता है। हमने दिखाया है कि महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा इस अनैतिहासिक बात को नहीं स्वीकारते। पर यह एक ऐसा मानवीय पक्ष है, जिसकी इतनी प्रशस्ति हुई कि इस घटना पर बंगला और हिन्दी के कई साहित्यकारों ने लेखनी चलाई। यहाँ हम हिन्दी के वीर-रस के श्रेष्ठ कवि पं० श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी' काव्य-पुस्तक से कुछ अंश प्रस्तुत करना चाहेंगे। 'हल्दीघाटी' खण्ड-काव्य की रचना कवि ने १९३९ ई० में की थी, जिसका प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ था और कवि ने अपने वीर-रस प्रधान महाकाव्य को हिन्दी के मनीषी पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी को समर्पित किया था।

श्यामनारायण का 'हल्दीघाटी' काव्य

कवि श्यामनारायण ने 'हल्दीघाटी' काव्य की भूमिका में लिखा है—

'प्रताप! आज सात वर्षों से तेरी पवित्र कहानी गा गा कर सुना रहा था, मोह होने पर भी आज उसे पूर्ण कर रहा हूँ। मुझे इसमें क्या सफलता मिली, मैंने साहित्य-देश-धर्म की क्या सेवा की, मैं नहीं कह सकता। यह तो तू ही बता सकता है कि मेरी 'हल्दीघाटी' और तेरी 'हल्दीघाटी' में क्या अन्तर है।

वीर शिरोमणि! तेरी अक्षुण्ण वीरता, धर्मनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता और देश-सेवा ही नहीं, बल्कि चंचल गति वाले चेतक घोड़े का हवा से बातें करना, चंडिका की जीभ की तरह लपलपाती हुई रुधिर प्रसविनी तलवार का बिजली की तरह गिरना, रक्त तृषित तीव्र भाले का ताण्डव झालामान्ना और मानसिंह प्रवृत्ति सरदारों का आत्मविसर्जन, वीर सिपाहियों का आजादी के लिए खेलते-खेलते हल्दीघाटी के महायज्ञ में आहुति बन कर स्वाहा हो जाना, भूख और प्यास के मारे तड़पते हुए तेरे बच्चों का करुण-क्रन्दन और तेरा प्राणों के दीपक के उजियाले में वन-वन पलायिता स्वतंत्रता की टोह लगाना आज भी आँखों के सामने सिनेमा फिल्म की तरह खिंचा हुआ है।

\+ + ÷

वीर वैरागी! अब तेरे दिन भागने के और रात जागने की आई। तू हल्दीघाटी युद्ध के बाद चावण्ड के समीप जावरमाला की गुफाओं में दिन

बसर करने लगा। यह स्थान उस जगह है जहाँ सुदृढ़ गढ़ की तरह चारों ओर दुर्भेद्य पहाड़ खड़े होकर तेरी रक्षा कर रहे थे। शत्रुओं के आक्रमण का बिल्कुल भय नहीं था। समीप ही आजादी के लोभ से तलवार लेकर मरने वाले भीलों की बस्ती थी।

\+ + +

घासों की सूखी रोटी, जब तक सोते का पानी।
तब तक जननी हित होगी कुर्बानी पर कुर्बानी॥

छत्रहीन सम्राट! चाँदनी रात थी, तू गुफा के द्वार पर बैठकर मेवाड़ उद्धार की विकट समस्या सुलझा रहा था, भीतर मेवाड़ की राजराजेश्वरी भूख से तड़पते हुए बच्चों को घासों की सूखी रोटियों का एक-एक टुकड़ा दे-देकर बझा रही थी। कई दिन के निर्जल व्रत के बाद बच्चे पारण करने में लगे हुए थे। इतने में एक वनबिलाव ने तेरी कन्या के हाथ से रोटी छीन ली। वह चिल्ला उठी। तेरा ध्यान टूटा। तूने दौड़ कर उस बिलखती हुई बच्ची को गोदी में उठा लिया और रोने का कारण पूछा। उसने अपनी तुतली बोली में दुःख कथा कह सुनाई। तेरा जो हृदय अनेक विघ्न-बाधाओं की आँधी में हिमाचल के समान अटल रहा वही आज बेटी की बातें सुनकर हिम की तरह पिघल गया। तू संधि-पत्र लिखने चला, किन्तु वीर-हृदया रानी ने कलम पकड़ कर कहा, प्राणनाथ! संधि-पत्र लिखने का अधिकार तुम्हें नहीं है, यह अधिकार तो उन्हें प्राप्त है, जिन्होंने हल्दीघाटी के रण में प्राणोत्सर्ग किये हैं, यह अधिकार झाला-मान्ना और चेतक को है और है उस मेवाढ़-वाहिनी को जिसने अपना जीवन देकर मेवाड़ को जीवन दिया है। तुम्हारे रण के कारण कितनी ललनाओं के सिन्दूर धुल गये और हाथों की चूड़ियाँ टूट गईं और प्राणवल्लभ! तुम संधि-पत्र लिखते हो? कभी नहीं, तुम संधि-पत्र नहीं लिख सकते। यदि मेवाड़ की रक्षा का भार तुमसे वहन नहीं होता तो आज से मैं स्वाधीनता के लिए लड़ूँगी, तुम अपनी तलवार मुझे दो, मैं चण्डी बन जाऊँ प्रियतम! ('हल्दीघाटी', पृ० १ से २०)

इतने में अचल-गुहा से, शिशु-क्रन्दन की ध्वनि आई?
कन्या के क्रन्दन में थी करुणा की व्यथा समाई॥

\+ + +

यह स्वतंत्रता कैसी है, वह कैसी है आजादी ?
जिसके पद पद पर बच्चों ने अपनी मुक्ता बिखरादी ॥
सहने की सीमा होती है, सह सका न पीड़ा अन्तर ।
हा, संधि-पत्र लिखने को, वह बैठ गया आसन पर ॥
कह सावधान रानी ने राणा का थाम लिया कर ।
बोली अधीर पति से, वह कागद मसि-पात्र छिपाकर ॥
'तू संधि-पत्र लिखने का कह कितना है अधिकारी ?
जब बन्दी माँ के दृग से अब तक आँसू हैं जारी ॥
थक गया समर से तो, तब रक्षा का भार मुझे दे ।
मैं चण्डी सी बन जाऊँ, अपनी तलवार मुझे दे ॥'
('हल्दीघाटी', पञ्चदश सर्ग, पृ० १६६-१७१)

इस प्रकार हम देखते हैं कि टॉड के 'राजस्थान' से ऐतिहासिक तथ्य लेकर सबसे पहले बंगला भाषा के रचनाकारों ने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया और उसके पश्चात हिन्दी तथा देश की अन्य भाषाओं में रचना-प्रक्रिया शुरू हुई। सभी कवियों और लेखकों ने बुनियादी बातें तो 'राजस्थान' से लीं, पर उन पर अपने नजरिए से रोशनी डाली। कुछ किम्वदन्तियाँ जब प्रवाद बन गईं तो उन्होंने ऐतिहासिक यथार्थ का जामा पहन लिया। इन्हीं प्रवादों में राणा प्रताप के बच्चों के द्वारा घास की रोटी खाने की घटना है। मिथक नायक के जीवन से ऐसी अजूबा दास्तान का जुड़ जाना अचरज की बात नहीं है। फिर भी यहाँ हम देखेंगे कि रचनाकारों ने एक ही घटना को किस नई दृष्टि से देखा-परखा है। टॉड के 'राजस्थान' में दिखाया गया है कि राणा प्रताप ने विलाव के रोटी ले भागने की मार्मिक घटना से द्रवित होकर अकबर को संधि-पत्र लिखा और अकबर के दरबारी कवि पृथ्वीराज (पीथळ) ने राणा को ओजस्वी भाषा में पत्र लिखा। इस प्रसंग पर हिन्दी और बंगला में कविताएँ हैं। राजस्थानी में इस पर प्रभूत रचना हुई है। कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने अपनी नई सूझ से दिखाया है कि जब राणा सन्धि-पत्र लिखने पर आमादा होते हैं तो रानी कलम पकड़ लेती है। इस कलम पकड़ने की घटना ने रानी के उज्ज्वल चरित्र को तेजस्विता से महिमामण्डित कर दिया है, वह कहती है—'राणा ! अगर तू आजादी की लड़ाई में थक गया है तो तलवार मुझे दे—मैं चण्डी बन कर अपना कर्तव्य पूरा करूँगी।' याने यहीं पर राणा का संधि-पत्र लिखना बन्द हो जाता है और राणा का सुप्त होता शौर्य पुनः जग कर सिंहनाद करने लगता

है। राणा की आँखों पर छाया कुहासा हट जाता है। वह सिंहणी के रूप में रानी की मूर्ति को देखता है—

> हो उठा विकल उस नभ का हट गया मोह घन काला।
> देखा वह ही रानी है वह ही अपनी मृग-बाला॥

राणा प्रताप ऐसी वीर पत्नी को पाकर निहाल हो गए। उनको कर्तव्य-बोध का ज्ञान हो गया। वे अपनी भावनाओं को दबा नहीं सके और बोल पड़े—

> बोला वह अपने कर में राणी का कर थाम 'क्षमा कर'
> हो गया निहाल जगत में, मैं तुमसी रानी पाकर॥"

('हल्दीघाटी', पृ० १७१)

राणा प्रताप द्वारा अकबर को सन्धि-पत्र लिखने की घटना हिन्दी और अन्य भाषाओं में सर्वाधिक चर्चित हुई। रचनाकारों ने अपने नजरिए से उसे देखा-परखा, पर हर रचनाकार ने उसमें अपना नया चमत्कार उत्पन्न किया। इसका कारण स्पष्ट है साहित्य और इतिहास में एक आधारभूत अन्तर होता है। इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है और साहित्य हृदय की संवेदनशील भावनाओं की उपज है, तभी तो कहा गया है—'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजे होंगे गान, उमड़ कर आँखों से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान।'

इस प्रसंग में प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री का कथन उद्धृत करना अधिक समीचीन होगा। शास्त्रीजी ने 'आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में महाराणा प्रताप' निबन्ध मे लिखा है—'रचनाकारों की प्रदीप्त कल्पना ऐतिहासिक चरित्रों के अन्तर्निहित गुणों को परिपुष्ट करने के लिए या उन्हें अधिक मानवीय बनाने के लिए न केवल वास्तविक घटनाओं की अभीष्ट व्याख्या करती है बल्कि वांछित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कल्पित घटनाओं का संयोजन भी करती है। इस अधिकार का संगत उपयोग करने वाले समर्थ स्रष्टा या तो उन चरित्रों को अपने समय के अनुकूल (और इसलिए अधिक मर्मस्पर्शी!) बनाना चाहते हैं या उनमें कुछ शाश्वत मूल्यो का आरोप कर कालबद्धता मे कालातीत की झलक देना चाहते हैं। दूसरी स्थिति में वे चरित्र अपना व्यक्तित्व बनाये रखकर भी उन मूल्यों के प्रतीक बन जाते हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में महाराणा प्रताप के चरित्र-चित्रण में पहली पद्धति की ही प्रधानता है, फिर भी कहीं-कहीं दूसरी पद्धति भी कार्यरत रही है।' ('हल्दीघाटी चतुःशती समारोह', स्मारिका, १९७६, पृ० सं० ९४)

कवि सेठिया की 'पातल 'र पीथल' कविता

ऐसी ही मर्मस्पर्शी किन्तु ओजस्वी भाषा में हिन्दी और राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि कन्हैयालाल सेठिया ने 'पातल 'र पीथल' शीर्षक राजस्थानी कविता में बन-बिलाव के रोटी ले भागने की बात कही है तथा बच्चे अमर के करुण क्रन्दन को सुनकर राणा प्रताप दुःखी होते हैं, अनुशोचन करते हैं और अकबर को 'सम्राट' मानने का पत्र लिखते हैं। उस पत्र के मिलने पर अकबर को सुखद आश्चर्य होता है। वह बीकानेर के कवि पृथ्वीराज को बुला कर पत्र दिखाता है। पृथ्वीराज राणा की देशभक्ति पर मुग्ध था। पत्र की मुहर को देखकर उसे विश्वास हो जाता है, पर वह अकबर से कहता है कि यह पत्र झूठा है। अकबर पृथ्वीराज से कहता है कि वह राणा को पत्र लिखकर अपने सन्तोष के लिए स्पष्टीकरण मंगा ले। पृथ्वीराज ओजभरी वाणी में राणा के सोये शौर्य को जगाता है और इसका फल सुखद होता है। प्रत्युत्तर में राणा पृथ्वीराज को आश्वस्त करते हुए लिखते हैं कि 'जब तक राणा प्रताप के शरीर में एक बून्द रक्त रहेगा, वह अकबर की दासता नहीं स्वीकार सकता।'

कवि सेठिया ने लिखा है—

अरै घास री रोटी ही जद् बन बिलावड़ो ले भाग्यो।
नान्हों सो अमर्‌यो चीख पड़्यो राणा रो सोयो दुख जाग्यो।
हूँ लड्यो घणूं हूँ सह्यो घणूं
मेवाड़ी मान बचावण नै,
हूँ पाछ नहीं राखी रण में
बैर्‌यां रो खून बहावण में,
जद् याद करूँ हल्दीघाटी नैणां में रकत उतर आवै,
सुख दुख रो साथी चेतकड़ो सूती सी हूक जगा ज्यावै,
पण आज बिलखतो देखूं हूँ
जद् राज कंवर नै रोटी नै
तो क्षात्र-धरम नै भूलूँ हूँ
भूलूँ हिंदवाणी चोटी नै।
\+ \+ \+

आ सोच हुई दो टूक तड़क राणा री भीम बजर छाती.
आँख्यां में आँसू भर बोल्या मैं लिखस्यूँ अकबर नै पाती,

पण लिखूँ कियां जद देखे है आडावळ ऊँचो हियो लियां
चित्तौड़ खड्यो है मंगरां में विकराळ भूत सी लियां छियां,
मैं झुकूँ कियां ? है आण मनै
कुल रा केसरिया बाना री,
मैं बुझूं कियां ? हूँ सेस लपट,
आजादी रै परवाना री ।

(कवि सेठिया की 'पातल 'र पीथल' कविता से)

अन्य रचनाकारों ने बच्ची के रुदन की बात कही है और उसी के करुण-क्रन्दन से राणा प्रताप की भीम के समान छाती फट जाती है और वे भावनाओं मे बह गए। क्षणिक उत्तेजना मे उन्होने अपने संचित शौर्य और आजादी को सन्धि-पत्र लिख कर खर्व कर दिया, पर कवि कन्हैयालाल सेठिया ने 'बच्ची' के स्थान पर 'अमर' के रोने की बात कही है। अगर हम इतिहास को गवाह माने तो देखेंगे कि उस समय कुंवर अमर अबोध बालक नहीं था, अपितु अठारह-बीस वर्ष का युवक था। महाराणा प्रताप का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला ३, १५९७ वि० सं० अर्थात् ९ मई, १५४० ई० को हुआ था तथा उनके पुत्र कुंवर अमर सिंह का जन्म १६ मार्च, १५५९ ई० को हुआ था। श्री बड़ा-बाजार कुमारसभा पुस्तकालय द्वारा १९७६ मे प्रकाशित 'हल्दीघाटी चतुःशती समारोह' पुस्तक के पृष्ठ २४ पर महाराणा प्रताप के जीवन की प्रमुख घटनाओं की सूची दी गई है। उसके अनुसार हल्दीघाटी का युद्ध आषाढ कृष्णा ७मी, १६३३ वि० सं० अर्थात् १८ जून १५७६ को हुआ था। उस समय अमर की उम्र १७ वर्ष की थी और बिलाव द्वारा रोटी झपटने की बात जरूर ही एक या दो या तीन वर्ष बाद घटी होगी। तब अमर का बच्चो की भांति बिलबिलाना और रुदन करना जरा असंगत प्रतीत होता है। क्षत्रिय कुमार की यह उम्र तो रण मे वीरता दिखाने की होती है न कि रुदन की। मेवाड़ में इसी उम्र के युवको ने इतिहास मे अपने को अमर कर दिया, जिसमे गोरा-बादल, जयमल और पत्ता आदि का नाम गौरवान्वित है। इतना ही नहीं केसरीसिंह बारहठ के 'प्रताप-चरित' काव्य मे एवं कविराज श्यामलदास के 'वीर-विनोद' मे तो वर्णन है कि तब तक अमर का विवाह ही नहीं हो गया था, उसके एक पुत्र भी पैदा हो गया था। अस्तु, कवि आगे कहता है—

पण फेर अमर री सुसक्याँ राणा रो हिवड़ो भर आयो,
मैं मानूं हूँ दिल्लीस तनै समराट् सनेशो कैवायो।

राणा को पत्र लिखने के पूर्व संकोच होता है। उसे अपना प्रण याद आता है, केसरिया बाना स्मरण होता है। वे अपने को आजादी के परवाने की शेष लपट भी

स्वीकारते हैं, पर अन्तर की सिसकियाँ उन्हें मजबूर कर देती हैं और वे दिल्लीपति अकबर को 'सम्राट' का संदेश भिजवाते हैं।

स्वाभाविक है कि बादशाह अकबर को पत्र पाकर आश्चर्य हुआ। पहले तो पूरा विश्वास ही नहीं हुआ, इसलिए बार-बार पत्र पढ़ा गया।

राणा रो कागद बांच हुयो अकबर रो सपनूँ सो सांचो,
पण नैण कर्‌यो विसवास नहीं जद बाँच-बाँच नै फिर बाँच्यो,
कै आज हिवालो पिघल बह्यो
कै आज हुयो सूरज सीतल,
कै आज सेस रो सिर डोल्यो
आ सोच हुयो समराट् विकल,

आखिर अकबर ने पृथ्वीराज को बुला भेजा। वे आये। अकबर ने 'कागद' (पत्र) दिखाकर कहा—

म्हें बाँध लियो है पीथल सुण पिंजरे में जंगली शेर पकड़,
ओ देख हाथ रो कागद है तूँ देखाँ फिरसी कियाँ अकड़ ?
मर डूब चुळू भर पाणी में,
बस झूठा गाल बजावै हो,
पण टूट गयो बीं राणा रो,
तू भाट बण्यो बिड़रावै हो,
मैं आज पातस्या धरती रो मेवाड़ी पाग पगां में है,
अब बता मनै किण रजवट रै रजपूती खून रगाँ में है ?

राणा प्रताप का पत्र पाने से सचमुच अकबर ने जंगल के शेर को पिंजड़े में बन्द कर लिया था। इसी का हवाला देकर वह पृथ्वीराज से पूछता है कि अब तुम्हारी अकड़ कैसे रहेगी ? तुमको तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए। तुम व्यर्थ में राणा की वीरता के गाल बजाया करते थे। अब उस राणा की प्रतिज्ञा भंग हो गई और तुम भाटों की भांति बिरुदावली बखानते रहो।

जद पीथळ कागद ले देखी
राणा री सागी सैनाणी,
नीचै स्यूँ धरती खसक गई
आंख्यां में आयो भर पाणी,

पण फेर कही तत्काल संभल आ बात सफा ही झूठी है,
राणा री पाग सदा ऊँची राणा री आण अटूटी है।

राणा प्रताप के पत्र को पीथल ने देखा-परखा। जब राणा के विशेष संकेत चिन्ह अर्थात 'सैनाणी' को देखा तो उन्हें विश्वास हो गया। फिर भी उन्होंने कहा कि यह पत्र सरासर झूठा है। राणा का सिर हमेशा ऊँचा रहा है और उनकी कठोर प्रतिज्ञा कभी टूटने वाली नहीं है।

अकबर और पृथ्वीराज मे विवाद छिड़ गया। आखिर तय हुआ कि पृथ्वीराज सच्चाई जानने के लिए राणा को पत्र लिखें। पीथल तो यही चाहते थे। उन्होंने वीर भाषा मे राणा के सुप्त-शौर्य को झकझोरने के लिए वीर-रस में पत्र लिखा—

'म्हे आज सुणी है नाहरियो
स्यालों रै सागै सोवै लो,
म्हे आज सुणी है सूरजड़ो
बादल री ओटाँ खोवैलो,

× × ×

म्हे आज सुणी है थकाँ खसम
अब रांड हुवैली रजपूती,
म्हे आज सुणी है म्याना में
तरवार रवैली अब सूती,
तो म्हांरो हिवड़ो कांपे है मूंछ्यां री मोड़ मरोड़ गई,
पीथल नै राणा लिख भेजो आ बात कठै तक गिणां सही ?'

पीथल ने राणा को लिखा—'हमने सुना है कि अब शेर सियारों के साथ सोयेगा, सूरज बादलों की ओट में छिप जायेगा। तलवारें अब म्यान में सो जायेंगी। इन बातों को सुनकर हमारा हृदय कांपता है और मूंछों की मरोड़ याने शान खत्म हो गई है। क्या यह सब सच है ? अगर सच है तो राणाजी आप पीथल को लिख भेजें।

पीथल के पत्र को पढ़ते ही राणा का सोया हुआ शौर्य जग गया, आँखें लाल हो गईं और वे अनुशोचन से पश्चाताप करने लगे। उन्होंने पुनः प्रतिज्ञा की—'अगर मैं सच्ची राजपूतनी का पैदा किया हूँ तो भले ही भूखों मर जाऊँ पर मेरी पाग दिल्ली के दरबार में नहीं झुकेगी। दिल्ली का माल ही झुकेगा।'

पीथल रा आंखर पढ़ता ही
राणा री आख्यों लाल हुई,
धिक्कार मनै हूं कायर हूं
नाहर री एक दकाल हुई
हूं भूख मरूँ हूं प्यास मरूँ
मेवाड़ धरा आजाद रवै
हूं घोर उजाड़ां में भटकूँ
पण मन में माँ री याद रवै,
हूँ रजपूतण रो जायो हूँ रजपूती करज चुकाऊँला,
ओ सीस पड़ै पण पाग नहीं दिल्ली रो मान झुकाऊँला,

राणा ने फिर पृथ्वीराज (पीथल) को पत्र लिखा कि भला बादलों की क्या औकात है जो सूरज को ढक ले। शेरों के हत्थे को सहने के लिए सियारों की माँ ने पैदा ही नहीं किया। जब तक हमारे बाजुओं में तलवार है तब तक राजपूतनी रॉड (विधवा) नहीं हो सकती। मेवाड़ की धरती धधकती आग और आँधी में चमकेगी और कड़खे की तानों पर खाँडा खड़केगा याने युद्ध के नगाड़ों पर तलवारें दुश्मनों पर गाज बन कर गिरेंगी। इसलिए आप अपनी मूंछों की शान बढ़ायें याने उन्हें ऊँची रखें। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अकबर से जीवन भर लड़ता रहूँगा और उजड़े हुए मेवाड़ को पुनः बसा दूँगा। राणा के इस प्रतिज्ञाबद्ध पत्र को पाकर पीथल की बांछें खिल गई और अकबर के हौसले पस्त हो गए—

कवि सेठिया के शब्दों में सुनिए—

पीथल के खिमता बादल री
जो रोकै सूरज उगाळी नै,
सिंघां रो हाथल सह लेवै
बा कूख मिळी कद स्याळी नै ?
× × ×
आं हाथां में तरवार थकां
कुण रॉड कवै है रजपूती ?

म्याना रै बदलै बैर्‌यां री
छात्यां में रैवेली सूती
मेवाड़ धधकती अंगारो आंध्यां में चमचम चमंकलो,
कड़खै री उठती तानां पर पग-पग पर खांडो खड़कैलो,
राखो थे मूँछ्यां ऐंठ्योड़ी
लोही री नदी बहा दूयूँला.
हूँ अथक लडूँला अकबर स्यूँ
उजड्यो मेवाड़ बसा दूयूँला,
जद राणा रो संदेश गयो पीथल री छाती दूणी ही
हिंदवाणों सूरज चमकै हो अकबर री दुनिया सूनी ही।

(कवि सेठिया की 'पातल 'र पीथल' कविता से)

कवि सेठिया ने १९४२ ई० के स्वातन्त्र्य-संग्राम में देशवासियों को आजादी के लिए उद्बुद्ध करने के उद्देश्य से इस कविता की रचना की थी। मैंने जब कवि सेठिया का ध्यान 'अमर' की ओर आकर्षित किया तो उनका उत्तर था—'कवि इतिहासकार नहीं होता, उसे तो जन-जागरण के लिए संदेश देना होता है। मैं अगर 'अमर्‌यो' न लिखकर 'नान्यो' लिखता तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे तो मार्मिक संवेदना के लिए घास की रोटी को बनबिलाव द्वारा ले भागने की बात कहनी थी। इसे भी इतिहासकार नहीं मानते और घास की रोटी को अतिरंजित बताते हैं।'

श्री कन्हैयालाल सेठिया के तर्क से मैं पूर्णतः इसलिए संतुष्ट नहीं हुआ कि छोटी बच्ची के रुदन में एवं बीस वर्ष के युवा के रुदन में बड़ा फर्क होता है। हम तुतली जुबान में अबोध बच्चे पर जितने भावुक हो जाते हैं—किसी युवा या किशोर पर नहीं। अमर की वह उम्र तो युद्ध में वीरता दिखाने की थी। उसके चरित्र में उद्दण्डता और राजसी सुख था, जिसका हमने पुस्तक में यथास्थान वर्णन किया है। स्वयं राणा भी अपने पुत्र के इस आचरण से दुःखी थे और एक बार तो उन्होंने डी० एल० राय के नाटक 'प्रताप सिंह' में अमर पर इसलिए गोली दाग दी कि वह एक यवन कन्या का शीलहरण करने पर उतारू हो गया था। किसी भी वीर-चरित्र को महिमामण्डित करने के लिए उसका व्यक्तिगत आचरण चरित्र की बड़ी कसौटी बनता है। द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक 'प्रताप सिंह' में राणा का महान चरित्र निखरता है।

राधाकृष्ण दास की कविता

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास ने १८९७ ई० में 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा था। साथ ही आपने 'प्रताप विसर्जन' शीर्षक एक लम्बी कविता भी लिखी थी। इस कविता में राणा प्रताप के मानसिक कष्ट को दिखाया गया है। प्रताप कुंवर अमर सिंह की विलास-प्रियता के कारण बड़े दुःखी थे। उन्हें आशंका थी कि उनकी बहुमूल्य स्वाधीनता को उनका पुत्र तुच्छ दाम पर न बेच दे। मरणासन्न प्रताप के प्राण तभी निकले जब सभी सरदारों ने हाथ मे तलवार लेकर यह प्रतिज्ञा की—'जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय।'

'हल्दीघाटी' काव्य का कारुणिक चित्रण

हिन्दी और बंगला के परवर्ती साहित्यकारों ने स्वाधीनता पर इसीलिए जोर दिया, जिसमें हिन्दी वीर-रस के कवि श्यामनारायण का नाम आदर से लिया जा सकता है।

कवि श्यामनारायण पाण्डेय ने 'हल्दीघाटी' काव्य में दिखाया है कि—

अपने अचल गुहा से, शिशु क्रन्दन की ध्वनि आई।
कन्या के क्रन्दन में थी, करुणा की व्यथा समाई॥

+ + +

इस करुण क्रन्दन से वीरव्रती राणा का हिमालय के समान अचल मन कम्पायमान हो गया—

तो भी उस वीर-व्रती का, था अचल हिमालय सा मन।
पर हिम सा पिघल गया वह, सुन कर कन्या का क्रन्दन॥

राणा ने बच्ची को गोद में लिया और रुदन का कारण पूछा—

भूखे-प्यासे कुम्हिलाये, शिशु को गोदी में लेकर।
पूछा 'तुम क्यों रोती हो, करुणा को करुणा देकर॥
अपनी तुतली भाषा में, वह सिसक-सिसक कर बोली।
जलती थी भूख तृषा की उसके अन्तर में होली॥
हा सही न जाती मुझसे, अब भूख की ज्वाला।
कल से ही प्यास लगी है, हो रहा हृदय मतवाला॥

बच्ची कहती है कि माँ ने उसे घास की रोटी खाने को दी और सोते का पानी दिया। वह रोटी का एक-आध कौर खा पाई थी कि एक बनबिलाव आया और रोटी छीन

कर भाग गया। वह दहाड़ मार कर रोने लगी। पिता के पूछने पर बच्ची कहती है—

सुनलो हूँ तू लाजा है, मैं प्याली छोनी तेली।
क्या दया न तुमको आती, यह दछा देख कल मेली ॥

बच्ची कहती है—'एक दिन था कि मुझे दूध, मलाई और मिठाई खाने को मिलती थी, आज यह सब सपना हो गया। मैं भूखी रहती हूँ, इसलिए भूख से रुलाई आ रही है। फिर वह स्वयं राणा से (पिता से) प्रश्न करती है—

वह कौन छत्रु है जिछने छेना का नाछ किया है ?
तुमको. माँ को, हम छब को, जिछने बनबाछ दिया है ॥
यह छोती छी पैनी छी, तलवाल मुझे भी दे दे।
मैं उछको माल भगाऊँ, छुन मुमको लन कलने दे।'

('हल्दीघाटी', पृ० १६०-१६२)

यह मार्मिक कथोपकथन कितना हृदय-विदारक और कारुणिक है ? श्यामनारायण ऐसे वीर-रस के कवि की लेखनी से ही ऐसा स्वाभाविक, निश्छल वर्णन हो सकता है। तुतली वाणी का प्रभाव हृदय की अन्तरात्मा को स्पर्श करता है। तब कौन-सा पत्थर हृदय पिता होगा जो आत्म-विह्वल न हो जाय ? और राणा प्रताप भी हो गए तो आश्चर्य क्या ? उल्लेखनीय है कि १९३२ से पाण्डेय जी 'हल्दीघाटी' का गीत गा रहे थे और उनका यह काव्य-ग्रन्थ १९३९ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके बाद १९४२ में श्री सेठिया जी ने पातल 'र पीथल' की रचना की। जरूर ही उन्होंने इतिहास पढ़ा होगा और राजस्थान की धरती पर राणा प्रताप की यशोगाथा में गाये जानेवाले हिन्दी और राजस्थानी चारण-गीतों और काव्यों को पढ़ा-सुना होगा। तब उनकी रचना मे, जो बड़ी प्रसिद्ध है 'बच्ची' के स्थान पर 'अमर्‌या' की बात असंगत और अस्वाभाविक जान पड़ती है। समीक्षक का कार्य नीर-क्षीर का विवेचन करना है और पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर। मैंने धृष्टता की है तो क्षमा का पात्र हूँ और सत्य का प्रकाशन है तो उदारमना मनीषी सेठिया जी से आशीर्वचन की अपेक्षा है और साथ ही प्रार्थना है—'अमर्‌वा' में संशोधन की।

मैथिलीशरण की 'पत्रावली'

पृथ्वीराज राठौड़ (पीथल) एवं राणा प्रताप (पातल) के पत्र-व्यवहार का प्रसंग इतना महत्वपूर्ण बन गया कि सभी रचनाकारों ने इस पर अपनी लेखनी चलाई। प्रस्तुत है हिन्दी के राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली' काव्य पुस्तक का पद्यमय 'महाराज पृथ्वीराज का पत्र', जिसमें इस वृत्तान्त का सुन्दर वर्णन है—

'स्वस्ति श्री स्वाभिमानी कुल कमल तथा हिन्दू-सूर्य-सिद्ध ।
शूरों में सिंह सुश्री शुचि रुचि सुकृती श्री प्रताप-प्रसिद्ध ॥
लज्जाधारी हमारे कुशल युत रहें आप सद्धर्म-धाम ।
श्री पृथ्वीराज का हो विदित विनय से प्रेमपूर्ण प्रणाम ॥ १ ॥
मैं कैसा हो रहा हूँ इस अवसर में घोर आश्चर्यलीन ।
देखा है आज मैंने अचल चल हुआ सिन्धु, संस्था-विहीन ॥
देखा है क्या कहूँ, मैं निपतित नभ से इन्द्र का आज छत्र ।
देखा है और भी, हाँ, अकबर-कर में आपका संधि-पत्र ॥ २ ॥
खो के स्वाधीनता को अब हम सब हैं नाम ही के नरेश ।
ऊँचा है आपसे ही इस समय अहो देश का शीर्ष-देश ॥
जाते हैं क्या झुकाने अब उस सिर को आप ही हो हताश ?
सारी राष्ट्रीयता का शिव-शिव ! फिर तो हो चुका सर्वनाश ! ॥४॥

+ + +

फूलों सा चूस डाला अकबर अलि ने देश है ठौर-ठौर ।
चंपा सी लाज रखी अविकृत आपनो धन्य मेवाड़-मौर ॥ १२ ॥

+ + +

माँ ! है जैसा प्रताप प्रिय-सुत जन तू तो तुझे धन्य मानें ।
सोता भी चौंकता है अकबर जिससे साँप ज्यों हो सिरानें ॥ १४ ॥
'राना ऐसा लिखेंगे यह अघटित है, की किसी ने हँसी है ।
मानो हैं एक ही वे बस नस-नस में धीरता ही धँसी है ।'
यों ही मैंने सभा में कुछ अकबर की वृत्ति है आज फेरी ।
रक्खो चाहे न रक्खो अब सब विधि है, आपको लाज मेरी ॥ १५ ॥

+ + +

दो बातें पूछता हूँ, अब अधिक नहीं, हे प्रतापी प्रताप !
आज्ञा हो, क्या कहेंगे अकबर को तुर्क या शाह आप ?
आज्ञा दीजे जो उचित समझिए, प्रार्थना है प्रकाश—
मूछें ऊँची करूँ या सिर पर पटकूँ हाथ हो के हताश ॥ २१ ॥

('पत्रावली', पृ० १-६)

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी सरल भाषा में उसी परम्परा से चलते हुए ऐतिहासिक भावों को अपनी कविता में संजोया है। आपने 'अकबर सूतो ओझ कै, आण सिराणे साँप' का अपनी भाषा में वर्णन किया है और निम्न राजस्थानी पद्य को भी नए शब्द दिए हैं—

पटकूँ मूँछाँ पाण, कै पटकूँ निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो मंहली बात इक॥

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'पत्रावली' काव्य पुस्तक की रचना की है, जिसमें ऐतिहासिक आधार पर लिखित कुछ पद्यात्मक पत्र हैं। इनमें से मुख्य-पत्र है 'महाराज पृथ्वीराज का पत्र राणा प्रताप के नाम'। इस पत्र में कवि ने अपना मन्तव्य पृष्ठ १ पर दिया है—'महाराणा प्रताप सिंह स्वाधीनता की रक्षा के लिए वन-वन भटकते रहे पर उन्होंने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। एक बार कौटुम्बिक विपत्ति के कारण उनका हृदय विचलित हो गया था। इसी से उन्होंने अकबर के साथ सन्धि करने का निश्चय किया था। किन्तु बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज का पत्र पा कर वे फिर अपने व्रत पर आरूढ़ हो गए थे।' आपने पृष्ठ ७ पर 'महाराणा प्रताप सिंह का पत्र' का प्रकाशन किया है, जो उन्होंने कवि पृथ्वीराज के पत्र के उत्तर में दिया था। गुप्त जी ने लिखा है—'पृथ्वीराज का पूर्वोक्त पत्र पाने के पूर्व ही महाराणा सन्धि-पत्र के लिए पश्चाताप कर रहे थे। उस पत्र को पाकर उन्हें सन्तोष हुआ। यह पत्र उसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है।'

राणा प्रताप का पत्र इस प्रकार है—

निदाघ-ज्वाला से विचलित हुआ चातक अभी।
भुलाने जाता था निज विमल-वंश-व्रत सभी।
अहा! ऐसे ही में जलद सुख का सत्र पहुँचा,
अहो पृथ्वीराज प्रियवर! कृपा पत्र पहुँचा॥ १॥
दिया पत्र द्वारा नव-बल मुझे आज तुम ने,
बचा ली बाप्पा के विमल-कुल की लाज तुम ने।
हुआ है आत्मा का यह प्रथम ही बोध मुझको,
दिखाई देता है न इस ऋण का शोध मुझको॥ २॥

('पत्रावली' पृ० ७)

कवि कहता है कि राणा को पृथ्वीराज के पत्र से बड़ा सन्तोष मिला। उन्हें अपने भूले हुए कर्तव्य का बोध हो गया। वे सोचते थे कि हमारे भाई ही अब शत्रु पक्ष

से मिल गए हैं तो जन्मभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा कैसे होगी ? प्रताप ने अपनी उस स्थिति का भी पत्र में वर्णन किया है, जिसके कारण उन्हें अकबर को पत्र लिखना पड़ा। जब वनबिलाव बच्ची के हाथ की रोटी लेकर भाग गया तो बच्ची के क्रन्दन ने उनके दृढ़ हृदय को विचलित कर दिया। देखिए -

हमारे भाई ही बन कर विपक्षी जब यहां,
मिले हैं तुर्कों से तब फिर भला मंगल कहां ?
न होने पाती जो स्फुटित हम में फूट इतनी,
मचाते तो कैसे अरिगण यहां लूट इतनी ? ६ ॥
विचारों में था यों जिस समय व्याकुल पड़ा,
कि भारी चीत्कार श्रवण कर चौंका, जग पड़ा।
कहूँ हा ! देखा क्या प्रकट अपनी मृत्यु-घटना,
अचम्भा है मेरे हत हृदय का ही न फटना ॥ ११ ॥
बनी थी जो रोटी विरस तृण का चूर्ण कर के,
बचाती बेटी को उस समय जो पेट भर के।
उसे देखा मैंने अपहृत बिडाली कृत वहां,
न देखा बेटी को अहह ! फिर था साहस कहां ॥ १२ ॥

(वही, पृ० ९-१०)

बच्ची के रुदन से राणा का हृदय उनको धिक्कारता है और वे अनुशोचन करते हैं कि क्या इन्हीं के लिए मैंने देश की आजादी का व्रत लिया था ? वे पृथ्वीराज को पत्र में लिखते हैं कि बेटी के रोने से उनका मन स्थिर नहीं रह सका। शोक-विह्वलता में राणा ने सन्धि-पत्र लिखा था। उनकी स्वीकारोक्ति को कवि मैथिलीशरण के शब्दों में सुनिए—

विधातः ! बाप्पा के अतुल-कुल की हा ! यह गति,
किसी ने देखी है अवनि पर ऐसी अवनति !
जिन्हें प्रासादों में सुख सहित था योग्य रहना,
उन्हें खाने का भी वन-वन पड़ा दुःख सहना ! १३ ॥
स्वयं मैं ही हूँ क्या इस विपद का कारण नहीं,
व्रतों के पीछे भी जिस विपद में पारण नहीं।
नहीं तो रोते क्यों यह शिशु कि है राज्य जिनका,
मुझे चाहे जो हो पर अहह ! क्या दोष इनका ॥ १४ ॥

क्षुधा से बेटी का यह तड़पना मैं निरख के,
न हे पृथ्वीराज! स्थिर रह सका धैर्य रख के।
मुझे आत्मा की भी सुध-बुध न हा! रंचक रही,
क्षमा कीजे मेरी यह अबलता—केवल यही ॥ १५ ॥

(वही, पृ० १०-११)

और राणा ने पुनः जोश में आकर अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा को दोहराया और कहा कि मैं मातृभूमि के लिए सभी कष्टों को सहन करूँगा। इसलिए जब तक 'पत्ता' (प्रताप) के शरीर में रक्त है, वह झुकेगा नहीं। हे 'पीथल' (पृथ्वीराज) तुम अपनी मूँछों पर ताव दो। सूर्य जहाँ पूर्व में उगता था वहीं उगेगा और मैं तुर्कों के सामने आत्म-समर्पण नहीं करूँगा। राणा ने पत्र के अन्त में इस प्रकार लिखा—

तुम्हारी वाणी है अमृत, कवि जो हो तुम अहो!
जिया हूँ मैं मानों मर कर पुनः पूर्व-सम हो।
सहूँगा दुःखों को सतत फिर स्वातंत्र्य-सुख से,
करूँगा जीते जी प्रकट न कभी दैन्य मुख से ॥ २० ॥
तुम्हारा 'पत्ता' है जब तक, सहे क्यों न विपदा,
करो मूँछें ऊँची तब तक सखे! 'पीथल' सदा।
सुनोगे तुर्कों को न तनु रहते शाह हम से,
वहीं—प्राची में ही—रवि उदित होगा नियम से ॥ २१ ॥

(वही पृ० ११-१२)

इस प्रकार गुप्त जी की 'पत्रावली' में पृथ्वीराज और राणा के पत्रोत्तर का प्रांजल भाषा में वर्णन किया गया है। कवि मैथिलीशरण की 'पत्रावली' का प्रकाशन संवत १९७६ में साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से हुआ है। 'पत्रावली' काव्य पुस्तक में राणा और पृथ्वीराज के पद्यात्मक पत्रों के अतिरिक्त अन्य पत्र हैं—'महाराज राज सिंह का पत्र औरंगजेब के नाम', 'औरंगजेब का पत्र अपने पुत्रों के नाम', 'महाराज यशवन्त सिंह की पत्नी का अपने पति के नाम पत्र'। इन पत्रों में गुप्तजी ने ऐतिहासिक तथ्यों का बड़ी खूबी से वर्णन किया है। 'पत्रावली' में 'महारानी अहिल्या बाई का पत्र' तथा 'रूपनगर की राजकुमारी रूपवती का पत्र महाराणा राज सिंह के नाम हैं'। हमने अन्य पत्रों का उल्लेख प्रसंगानुसार ग्रन्थ के अन्य पृष्ठों में किया है।

हमने पूर्व में लिखा है कि वन-बिलाव के द्वारा रोटी ले भागने के प्रसंग को

आधार बना कर हिन्दी एवं राजस्थानी के कई कवियों ने काव्य-रचनाएँ की हैं। इतिहासकार राणा प्रताप के कष्ट की बातों को तथा पत्र लिखने की बात को असत्य बताते हैं। उनका कहना है प्रताप का परिवार कष्ट में जरूर था, पर इतना विपन्न नहीं था कि घास की रोटियां खानी पड़तीं। ऐसी स्थिति होती तो सम्पूर्ण मेवाड़ श्मशान में परिणत हो गया होता। इतिहासकार बताते हैं कि पहाड़ी उपत्यकाओं में प्रताप का ही राज्य था, तब ऐसी घटना का घटित होना आश्चर्य प्रकट करता है। गाँधी जी ने अपने आश्रम में एक बार कच्चा अन्न खाने का प्रयोग किया था, फलतः स्वयं बापू तथा आश्रमवासी अतिसार के शिकार हो गए थे। अगर राणा का परिवार घास की रोटियाँ खाता तो अकाल-मृत्यु या अनाहार-मृत्यु की नौबत आ जाती।

रणवीर सिंह का 'प्रताप' काव्य

वि० सम्वत् २०१४ में कवि ठाकुर रणवीर सिंह शक्तावत 'रसिक' ने 'प्रताप' महाकाव्य की खड़ी बोली में रचना की। इसका प्रकाशन सामन्त-साहित्य-सदन, अजमेर से हुआ है। रणवीर सिंह की अन्य रचनाएँ हिन्दी और राजस्थानी में हैं। आपने भूमिका में लिखा है कि यह काव्य-ग्रन्थ टॉड के 'राजस्थान', मेवाड़ के दरबारी कोविदों से सुनी हुई कथाओं पर तथा अन्य किम्बदन्तियों पर आधारित है। कवि ने भी बच्ची के रुदन की बात अपने काव्य-ग्रन्थ में लिखी है। 'प्रताप' काव्य में कवि ने दो अछूते प्रसंगों का वर्णन किया है, जिनसे राणा प्रताप के चरित्र पर नई रोशनी पड़ती है। इतिहासकारों का कहना है कि 'हल्दीघाटी' युद्ध में कौन जीता? कौन हारा? इसका उत्तर तो इतिहासकार देंगे, किन्तु इतना निश्चित है कि 'हल्दीघाटी' के महासमर ने अरावली की उपत्यकाओं को थर्मोपली बना दिया। 'हल्दीघाटी चतुःशती समारोह-१९७६' की स्मारिका के सम्पादक श्री जुगलकिशोर जैथलिया ने भूमिका में लिखा है—'हल्दीघाटी' का युद्ध अथवा प्रताप एवं अकबर का संघर्ष हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष नहीं था। यह तो स्वाधीनता का अपहरण करने वाले विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध जन-नेता का जन-सहयोग से लड़ा जाने वाला स्वातंत्र्य-संग्राम था। जिसमें हकीम सूर जैसे देश-भक्त पठान भी राणा का साथ देने वालों में थे।' श्री जैथलिया ने आगे लिखा है—"शनैः शनैः सारा देश ही इस विदेशी आक्रमण को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर तैयार हो गया। 'हल्दीघाटी' ने देश को नवीन ज्योति

दी, नई युद्ध-पद्धति (छापामार युद्ध-कला) दी, जिसे विकसित कर छत्रपति शिवाजी तथा उनके उत्तराधिकारियों ने इसे कारगर रण-नीति म परिवर्तित किया।"

ऐसी ही एक छापामार युद्ध की घटना का साहसिक वर्णन ठाकुर रणवीर सिंह शक्तावत ने 'प्रताप' काव्य के पृष्ठ के १४० से १४६ पर किया है—

अकबर ने जब हाल युद्ध का जाना सारा,
सुना कि, बचा प्रताप, जंग में गया न मारा।
('प्रताप' काव्य, द्वादश सर्ग, पृ० १४०)

'हल्दीघाटी' युद्ध का वर्णन जब अकबर ने सुना और उसे पता चला कि राणा प्रताप बच गया, तो उसे बड़ा भय हुआ। उसने छलबल से प्रताप को बन्दी बनाने की योजना बनाई। जब अजमेर के 'उर्स' पर्व का समय आया तो वह लश्कर लेकर अजमेर आया। उसने अपने सेनापति आसफ खाँ को हुक्म दिया कि तुम सेना लेकर मेवाड़ जाओ और राणा प्रताप को बन्दी बना कर लाओ—

आसफ खाँ को हुक्म दिया—तुम लश्कर लेकर,
जाओ अब मेवाड़. जोर से डंका देकर।
हो प्रताप जिस ठौर, वहाँ जा पता लगाओ;
उसे पकड़ कर जल्द यहां पर लेकर आओ।
(वही, पृ० १४१)

आसफ खाँ की सेना जब मेवाड़ पहुँची तो प्रताप चौकन्ना हो गये। उन्होंने अपने परिवार को सुरक्षित स्थान में रख दिया और खुद मेवाड़ी सैनिकों को लेकर यवन सेना की टोह में वन-वन घूमने लगे। जहाँ भी उन्होंने शत्रु-पक्ष के सैनिकों को पाया, तत्काल उन्हें स्वर्ग पहुँचाया—

पाकर खबर प्रताप, चेत कर फिर वह फौरन,
कर परिवार-प्रबन्ध, लगा फिरने फिर वन-वन।
जहा कहीं भी शत्रु-पक्ष का सैनिक पाया,
करके कुन्त-प्रहार शीश तत्काल उड़ाया। (वही, पृ० १४१)

इस प्रकार राणा प्रताप ने आसफ खाँ और उसकी सेना के छापामार युद्ध से छक्के छुड़ा दिए। इसी बीच शिकार के बहाने अकबर भी अरावली के बीहड़ जंगलों में आया। उसका उद्देश्य प्रताप रूपी शेर का शिकार करना था। अकबर के सारे यत्न विफल हुए—

फिर शिकार-मिस शीघ्र स्वयं अकबर भी आया,
रहा वहां छह मास, किन्तु मन में पछताया ।
करने गया शिकार, कई शेरों को मारा,
मरा न शेर प्रताप, यत्न कर अकबर हारा । (वही, पृ० १४२)

अन्त में अकबर ने अपने शाही लश्कर का शिविर उदयसागर तट पर लगाया और वहीं अपनी बेगम के साथ आमोद-प्रमोद करने लगा। राणा को इस सैर-सपाटे की खबर मिली। राणा एक डोंगी (छोटी नाव) लेकर रात के धुंधलके में अकबर के शिविर में पहुँचे। उन्होंने सोये हुए अकबर की मूँछें काट लीं तथा मूँछों के स्थान पर बेगम की लटें काट कर रख दीं। इस साहसिक घटना का वर्णन मेवाड़ के दरबारी कवि राव मोहन सिंह कृत 'प्रताप-यश-चन्द्रोदय' काव्य के पृष्ठ ७५ पर दी गई वार्ता में मिलता है। कवि रणवीर सिंह शक्तावत ने भी अपने 'प्रताप' काव्य में उसी घटना का रोचक वर्णन किया है -

शाह-शिविर था खास उदय सागर के तट पर.
पहुँचा वहां प्रताप रात्रि में डोंगी लेकर ।
सोये हुए निशंक शाह-बेगम को लख कर,
कतर मूँछ, लट काट चला चट पर्चा रख कर ।
लिखा पत्र में—'तुर्क ! आज तो छोड़ा तुझको,
दूँगा अब बेमौत कब्र में पहुँचा तुझको ।' (वही, पृ० १४२)

अकबर सवेरे जब सोकर उठा तो उसने मूँछों को सफाचट पाया और उसने बेगम की कटी लटों को देखा तो अचम्भे में पड़ गया। प्रताप के पत्र को जब उसने पढ़ा तो सारी वस्तुस्थिति समझ में आ गई।

अकबर अपने आप उठा जब हुआ सबेरा,
मिली सफाचट मूँछ हाथ जब मुँह पर फेरा ।
बेगम की लट देख बुद्धि बेहद चकराई,
पत्र पढ़ा तब बात समझ में उसके आई ! (वही, पृ० १४२)

अकबर शर्मिन्दा हो गया और अपनी शक्ल छिपाने लगा तब बेगम बोली—

बोली, 'जहांपनाह ! जान की खैर नहीं है.
है अब एक अजाब यहां पर सैर नहीं है ।
खुदावन्द ! है खैर, खुदा का शुक्र मनायें,
बोलें फौरन कूच, देर मत जरा लगायें ।' (वही, पृ० १४३)

कवि शक्तावत ने अपनी सीधी-सरल भाषा में अकबर की मूँछें काटने का वृतान्त बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत किया है। इसे हमें कवि की अपनी सूझ कहना चाहिये कि उसने एक साधारण पर अजीबोगरीब घटना का बड़ी साफगोई से बखान किया है। इसी प्रकार की दूसरी घटना है, जिसमें प्रताप का पुत्र अमर यवन रमणियों को बन्दी बनाता है। प्रताप यह सुनकर अमर को फटकार बताते हैं और कहते हैं कि 'पर-नारी-अपहरण वीर का धर्म नहीं है।'

अकबर अपने लाव-लश्कर को लेकर बेइज्जत होकर लौट गया तो राणा प्रताप निशंक होकर अरावली पर्वत की पहाड़ियों में घूमने लगे और आजादी की अलख जगाने लगे। भौगोलिक दृष्टि से जो सूरत का मार्ग है, वह आगरा से सूरत जाता है, पर बीच में मेवाड़ राज्य का हिस्सा उसमें आता है। जब-जब मुगल सेना आगरा से सूरत के मार्ग को जाती तो रास्ते में प्रताप मुगल सेना का मुकाबला करते। इस अवरोध की सूचना दिल्ली दरबार को मिली तो अकबर ने अपने चुने हुए सेनापतियों के साथ बड़ी सेना भेजी। पर राणा प्रताप ने मुगल सेना का बहादुरी से सामना किया। उसी युद्ध मे मिर्जा रहीम खाँ (रहीम खानखाना) के शिविर पर अमर ने धावा बोला। शिविर अमर के कब्जे में आ गया। उसमे मिर्जा की बेगमें थीं। अमर उन्हें बन्दी बना कर ले आया। इससे राणा प्रताप ने अमर को सदुपदेश दिया और उसके इस आचरण की निन्दा की। देखिए—

जो सूरत को मार्ग आगरे से जाता था,
उसमें कुछ मेवाड़-राज्य में भी आता था।
बस, प्रताप ने शीघ्र उक्त रास्ते को रोका,
दिखा कि कोई तुर्क उसे फिर फौरन टोका।
पहुँची अकबर पास सूचना उसको सत्वर,
उसने भेजा शीघ्र आगरे से फिर लश्कर।
मानसिंह-भगवन्त-खानखाना के संग में,
भेजे सुभट अनेक शाह ने बड़ी उमंग में।
पहुँचे चट मेवाड़ उक्त भट लोहा लेने,
किन्तु वहां पर उन्हें पड़ लेने के देने।
किया प्रयत्न प्रकाण्ड, युक्ति कुछ काम न आई,
हुआ न कैद प्रताप, सभी ने मुँह की खाई।

× × ×

एक बार अरि-शिविर, अमर ने घेरा जाकर,
टूट पड़ा ज्यों—सिंह पड़ा हो मृग-दल पा कर।
भगे तुर्क ले जान कई तो भय के मारे,
जो न भगे सो शीघ्र गए असि-घाट उतारे।
बची शिविर में सिर्फ औरतें मिर्जा खाँ की.
उन पर अमर कुमार वृथा भृकुटी कर बाँकी।
और लिवा कर साथ, लौट कर जब वह आया,
सुन प्रताप ने वृत्त अमर सिंह को समझाया।

('प्रताप' काव्य, द्वादश सर्ग, पृ० १४४-१४५)

यह है वीरव्रती राणा का चरित्र। वह चाहते तो सोये हुए अकबर की केवल मूँछें ही नहीं काटते, अपितु उसे यमलोक भी पहुँचा सकते थे। यही बात अमर सिंह को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि दुश्मन की बहू-बेटियों का अपहरण, उनका अपमान वीरों का काम नहीं है। वे नारी-जाति को सम्मान और आदर की दृष्टि से देखते थे। उनके लिए अपनी और दुश्मन की बहू-बेटियां समान थीं। उन्होंने अमर सिंह को केवल शिक्षा ही नहीं दी, यह आदेश भी दिया कि मिर्जा खाँ की बेगमों को सही सलामत आदर सहित उनके हरम में पहुँचाने की व्यवस्था की जाय। ऐसे आदर्श वीर दीपक लेकर ढूंढ़ने से भी दुनिया में नहीं मिलते। इसी उदात्त चरित्र के कारण ही राणा प्रताप भारत की आजादी के अप्रतिम नायक बने।

राणा कहते हैं—

कहा—'अरे, क्यों व्यर्थ इन्हें तू लेकर आया ?
ऐसा अनुचित कर्म तुझे किसने सिखलाया ?
पर-नारी की ओर देखना पाप महा है,
अबला-हरण अधर्म—घोर अन्याय कहा है।
हो अमित्र या मित्र, अपरिचित या परिचित हो,
हो हिन्दू या तुर्क, चाहता हित कि अहित हो।
नारी उसकी क्यों न अप्सरा-सी हो सुन्दर,
लाता है न कदापि वीर नर उसको हर कर।

इसको वापस शीघ्र शिविर में ही पहुँचाओ,
ऐसा घोर अधर्म और मत करना, जाओ।
मिर्जा खाँ के पास वधू पहुँची जब उसकी,
आत्मा लगी तुरन्त दुआ देने तब उसकी।
(वही, पृ० १४५-१४६)

ठाकुर रणवीर सिंह शक्तावत के पूर्व हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद ने इसी कथानक पर १९१४ ई० में 'महाराणा का महत्व' नामक काव्य लिखा था, जिस पर हमने 'काव्य अध्याय' में पूर्व में ही विस्तार से प्रकाश डाला है।

प्रसिद्ध इतिहासकार जे० एम० शेलाट ने राणा प्रताप के छापामार (गुरिल्ला) युद्धों के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा है, जिसका उल्लेख 'हल्दीघाटी चतुःशती समारोह, १९७६ की स्मारिका' के पृष्ठ ६९ पर इन शब्दों में है—

"It is to his (Pratap's) credit that he perfacted the strategy of guerilla warfare, exploiting in full the geographical advantage of the hills and ravince it was from him that later on Shivaji learnt that strategy which foiled all attempts of Aurangzeb to subdue the Deccan." —J M. SHELAT.

अरुणप्रकाश की काव्य-कृति 'महाराणा का पत्र'

१९८३ ई० में 'प्रताप जयन्ती' के अवसर पर कलकत्ता के सुपरिचित कवि अरुणप्रकाश अवस्थी ने 'महाराणा का पत्र' नामक अपनी काव्य-पुस्तक का प्रकाशन किया। इसका प्रकाशन 'प्रताप परिषद्' की ओर से आधुनिक पुस्तक-भवन की ओर से किया गया है। भूमिका कवि-साहित्यकार डॉ० चन्द्रदेव सिंह ने लिखी है।

वन-बिलाव के द्वारा घास की रोटी ले भागने की घटना को लेकर प्रचुर साहित्य रचा गया है। साथ ही महाराणा के द्वारा अकबर को पत्र लिखने तथा प्रत्युत्तर में कवि पृथ्वीराज के पत्र की बात हमने इन पृष्ठों में काफी विस्तार से लिखी है। कवि अरुण प्रकाश अवस्थी की कृति 'महाराणा का पत्र' एक सशक्त काव्य-रचना है। कवि ने राणा प्रताप के द्वारा लिखे पत्र को महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि इतिहासकारों की भांति अनैतिहासिक बताया है और बड़ी ही प्रभावशाली भाषा में अपने तर्क उपस्थित किए हैं। हम 'महाराणा का पत्र' की चर्चा के साथ ही इस प्रसंग को अब यहाँ समाप्त करेंगे। इस प्रसंग को हमने नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ के 'अश्रुमति' नाटक के प्रसंग से आरम्भ किया था। सच बात तो यह है कि ज्योतिरिन्द्र नाथ ने अपने नाटक की रचना १८७९ ई० में की और कवि अरुणप्रकाश की रचना

का प्रकाशन १९८३ ई० में हुआ है। इस बीच इस घटना पर अनेक कवि-कोविदों और साहित्यकारों ने रचना-प्रक्रिया की है और इतिहासकारों ने अपने सुचिन्तित वक्तव्य दिए हैं। हमने पूर्व में कहा है कि मिथक नायक के जीवन के साथ कई अजूबा बातें जुड़ जाती हैं और वे इतिहास का अंग बन जाती हैं। यही स्थिति राणा प्रताप के साथ भी हुई, जो भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के प्रमुख प्रहरी थे। कवि अरुणप्रकाश अवस्थी की रचना 'महाराणा का पत्र' से इस घटना पर काफी हद तक नये ढंग से प्रकाश पड़ा है।

राणा के पत्र की सत्यता का प्रश्न

कवि अरुणप्रकाश ने 'महाराणा का पत्र' काव्य के पृष्ठ 'ज' पर एक गम्भीर प्रश्न उठाया है—"महाराणा का पत्र अकबर के नाम : कितना सत्य कितना असत्य"। आपने लिखा है—'भारतीय एवं विदेशी इतिहासकारों के अतिरिक्त सत्योद्घाटन के प्रतीक कवियों एवं साहित्यकारों ने जिस घटना को चित्रित कर विस्मयात्मक ऊहापोह में डाल दिया है वह है राणा प्रताप द्वारा अकबर को संधि-पत्र लिखना। पता नहीं किस तथ्य को आधार बनाकर इतिहासकारों ने इस घटना को यथार्थ का रूप देने का प्रयत्न किया है। जिस शूर-सिंह राणा प्रताप द्वारा प्रदत्त पगड़ी को धारण करनेवाला चारण कवि भी जब अकबर के दरबार में पहुँचता है तो उन्हें 'सलाम' करने के पूर्व अपनी पगड़ी उतार लेता है। अकबर के पूछने पर वह कहता है—'हे दिल्लीपति! मैं तो दरबारी शिष्टाचारवश आपके प्रति सम्मान कर सकता हूँ, पर यह पगड़ी तो हिमालय के समान दृढ़ महाराणा प्रताप की दी हुई है। इसे पहने ही मैं सिर कैसे झुका सकता हूँ?' जिस नर-शार्दूल के गौरव एवं आकाश-गंगा के समान विस्तृत प्रभाव के प्रति सर्वसाधारण में इतना सम्मान था, वह अपनी समस्त गरिमा को विस्मृत कर अकबर को पत्र लिखे, यह बात गले के नीचे नहीं उतरती है।'

सच है महाराणा प्रताप द्वारा अकबर को पत्र लिखने की बात की इतिहास ग्रन्थों से पुष्टि नहीं होती। यहाँ तक कि 'आईने अकबरी' एवं 'अकबरनामा' में भी राणा के पत्र का उल्लेख नहीं है। पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अतिरिक्त जगदीश सिंह गहलौत, डॉ० रघुवीर सिंह आदि इतिहासकार इसे नहीं स्वीकारते। श्री अरुणप्रकाश ने पृष्ठ 'झ' पर लिखा है—'डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी अनेक

उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उस पत्र को कोरी कल्पना बताकर उसे सामन्त ऊदावत द्वारा लिखित बताया है।" अवस्थी जी ने इसी ऊदावत सरदार के मुँह से अकबर के सामने इसकी स्वीकारोक्ति कराई है—

सहसा कहीं से संधि का प्रस्ताव झूठा आ गया।
मोहान्ध बन कर यवनपति था सत्य से भरमा गया।
पा संधि का प्रस्ताव अकबर भर गया उल्लास से।
दिखला दिया दरबारियों को पत्र था विश्वास से॥
पत्र जाली है कि सच है महाराणा ने लिखा।
या फिर किसी सरदार ने कुछ भी नहीं उसको दिखा।
केवल समझने के लिए उस यवनपति की प्रतिक्रिया।
यह पत्र ऊदावत बली सरदार ने था लिख दिया॥

('महाराणा का पत्र' काव्य, पृ० २७-२८)

कवि ने बताया है राणा को शान्ति मिले और युद्ध की तैयारी करने का अवसर मिले, इसी भावना से प्रेरित होकर ऊदावत सरदार ने महाराणा के नाम से अकबर को पत्र लिखा था। पर वही प्रश्न यहाँ उठाया जा सकता है कि ऊदावत सरदार की इस घटना का उल्लेख भी इतिहास ग्रन्थों में नहीं है। अस्तु, कवि के मुख से सुनिए—

कुछ शान्ति राणा को मिले केवल यही थी भावना।
मेवाड़ की स्वाधीनता की कुछ बढ़े सम्भावना।
राणा समय का लाभ पा रण की करें तैयारियाँ।
इस देश के आकाश से मिट जायें सब लाचारियाँ॥

(वही, पृ० २८)

नई कल्पना

कवि अरुणप्रकाश अवस्थी ने दिखाया है कि अकबर को पत्र मिलने से प्रसन्नता हुई और उसने दिल्ली में आनन्दोत्सव मनाने का आदेश दे दिया। शहर में खुशियाँ मनाई जाने लगीं कि राणा प्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है। 'महाराणा का पत्र' के रचनाकार ने दिखाया है कि उस समय महाकवि पृथ्वीराज जेल में बन्द थे और उन्हें वहीं यह खबर मिली। वे अधीर हो गए, अनुशोचन करने लगे। अन्त में उन्होंने राणा प्रताप को पत्र लिखा। जेल से उन्होंने वह पत्र सरदार रामसिंह के हाथ राणा के पास भिजवाया। यह कवि की अपनी कल्पना है—

सुना राठौर पृथ्वीराज ने राणा का खत आया।
लिया ज्यों सूंघ विषधर ने कलेजा ही निकल आया॥

(वही, पृ० ३१)

महाकवि पृथ्वीराज कारागृह में बन्दी थे। उन्हें राणा के पत्र की खबर से मर्मान्तक पीड़ा हुई और वे सुध-बुध खो बैठे। उनके हृदय में अन्तर्द्वन्द्व शुरू हो गया। वे यह विश्वास ही नहीं कर सके कि वीर प्रतापी महाराणा ने अकबर को पत्र लिखा है। उनकी आँखों के सामने कई चित्र उभरते हैं, उनमें यवनों के क्रीत-दास मानसिंह का चित्र भी है जो अकबर की गुलामी का उपदेश देता है। अकबर का चित्र भी उभर कर आता है जो कवि को राणा का पत्र दिखलाता है—

काली-काली दीवारें थीं काली थी दुर्गम कारा।
काली-काली जंजीरें थीं काला था घन अंधियारा।
घोर कालिमा के सागर में कवि का चिंतन सजग बना।
खोज रहा था समाधान वह धीर-वीर निर्भीक बना॥

× × ×

कवि ने देखा कुटिल राहु सा दिल्लीपति था तना हुआ।
राष्ट्र-मयंक-कलंक साथ में मान गर्व से सना हुआ।
विपुल विचारों के गज पर रख अंकुश कविवर मुसकाये।
बोले धन्य हुआ दर्शन पा आज शाह कैसे आये?
अकबर तो मद में फूला था बोला पत्र पढ़ो राठौर।
संधि-पत्र आया राणा का हुआ समर्पित गढ़ चित्तौर।
कहाँ गया अभिमान तुम्हारा कहाँ राजपूतों की शान।
मेरे चरणों के नीचे है आज समूचा हिन्दुस्तान॥
काँप उठा कवि का अभ्यन्तर रुद्ध हुई कवि की वाणी।
पानी-पानी हुआ लाज से बन्दीगृह में सेनानी।
पढ़ा पत्र तो लगा कि जैसे हुए अनेकों वज्राघात।
हा दुर्दैव! खा गया सचमुच क्या आर्यों का पौरुष मात।
अंधकार छा गया दृष्टि में पारद सा मन डोल उठा।
सहसा हँसकर व्यंग्य भाव से मानसिंह यों बोल उठा।

कविवर भावुक बनो न इतना कुछ यथार्थ को पहचानो।
इस पददलित जाति का त्राता तुम दिल्लीपति को मानो॥

(वही, पृ० ४२-४३)

मान के इस उपदेश को सुनकर कवि पृथ्वीराज तिलमिला जाते हैं और क्रोधित होकर कहते हैं, 'आज तक बादशाह के सामने दुम हिलाना ही तुम्हारा काम रहा है। तुम अपनी सीमा में रहो। तुम्हें रजपूती शान, आत्माभिमान तथा देश की आजादी का क्या पता ?' पुनः कवि अकबर से कहता है कि यह पत्र सरासर झूठा है—

लेकिन मान, पत्र झूठा है, शाह अन्यथा मत माने।
छोड़ कांच की चमक यवनपति पारसमणि को पहचाने॥

(वही, पृ० ४५)

इस स्वप्न के भंग होते ही कवि पुनः विचलित होता है और राणा को पत्र लिखता है। पत्र लिखकर उसे राणा प्रताप के पास भेजने के लिए वीर रामसिंह को देते हैं, जो घोड़े पर सवार होकर राणा के पास जाता है। कवि अरुणप्रकाश ने महाकवि पृथ्वीराज के पत्र में ऐसी जोशीली बातें लिखीं, जिनसे राणा का सुप्त-शौर्य पुनः जग गया। देखिए—

है एकलिंग को प्रथम नमन, फिर महाशक्ति को नमस्कार।
हे अरावली के सिंह तुम्हें, अर्पित मेरी श्रद्धा अपार॥
मूँछों पर कैसे हाथ धरूँ, सोचता शीश को काट मरूँ।
या लज्जा से बन अश्रु गलूँ, बोलो राणा क्या आज करूँ॥
यह है सवाल भारत माँ का, यह है इस माटी का सवाल।
यह राजपूत का है सवाल, यह हल्दीघाटी का सवाल॥
नगपति के पावन आंगन से, क्या आज वीरता चली गई ?
मैं पूछ रहा हूँ भारत से, क्या भारतीयता चली गई ?
आर्यत्व मर गया आर्यों का, नगराज हिमालय झुका आज।
नीलाम्बर को छूनेवाला, धरती पर माँ का गिरा ताज॥
हे राणा दिल्ली में देखो, बोलते शान से हैं श्रृगाल।
पिंजड़े में बन्दी सिंह हुआ, लज्जा से सबके झुके भाल॥
झुक गए अगर तो भारत का दिनमान अस्त हो जायेगा।
झुक गए अगर तो भारत का हौसला पस्त हो जायेगा॥

राणा यदि पत्र सत्य है तो विश्वास दीप बुझ जायेगा।
यह देश हजारों सालों तक जंजीरों से बंध जायेगा॥
धरूँ मूँछ पर हाथ या, त्यागूँ अपने प्राण।
इन दो में अब क्या करूँ, लिख देना दीवान॥

× × ×

भारत-भारती को कर प्रणाम, फिर एकलिंग का नाम लिया।
राणा के नाम लिखी पाती, झट रामसिंह के हाथ दिया॥
('महाराणा का पत्र' काव्य, पृ० ५१-५६)

अरावली की दुर्भेद्य घाटी में जहाँ राणा प्रताप का शिविर था, वीर रामसिंह कवि पृथ्वीराज का पत्र लेकर पहुँचा। राणा ने जब पृथ्वीराज के पत्र को पढ़ा तो उनके शरीर में क्रोधाग्नि भड़क उठी, सोया वीरत्व जग गया—

राणा ने कर में पत्र लिया, पढ़ कर मन में हो गए दंग।
कुछ तो अपने से लजा गए, कुछ चेहरे का उड़ गया रंग॥
आहत विषधर से तड़प उठे, फौलादी बख्तर कड़क उठे।
अकबर का दर्प मसलने को युग बाहुदण्ड भी फड़क उठे॥
झनझन कर लौह कवच टूटे, भीषण भाले पर हाथ पड़ा।
काँपे सारे सामन्त शूर केहरि सा उठ हो गया खड़ा॥
हट गए रामसिंह कुछ पीछे अन्तर की भाषा गए भाँप।
पटका जब अंगद ने निज पग गिरि अरावली भी गया काँप॥

(वही, पृ० ६३)

राणा प्रताप ने साफ शब्दों में सरदारों के सामने घोषणा की कि मैंने उस तुर्क को पत्र नहीं लिखा था। राणा वीर रामसिंह को आश्वस्त करके कहते हैं कि तुम जाकर कवि पृथ्वीराज से कह देना कि राणा जीवन पर्यन्त अकबर से देश की आजादी के लिए लड़ता रहेगा—

कर उठा केसरी सिंहनाद—मैंने न तुर्क को पत्र लिखा।
शोणित घृत से मैंने बाली यह स्वतंत्रता की दीप-शिखा॥
है एकलिंग की शपथ मुझे यह भाल नहीं झुक सकता है।
तुम खुद ही सोचो रामसिंह, क्या सरित-वेग रुक सकता है?

इन भोले-भाले भीलों के धिक्कारेंगे मुझको रण-प्रण।
हे रामसिंह धिक्कारेंगे, मेरे शरीर के अगणित व्रण॥
धिक्कारेगा नभ से झाला, धिक्कारेगी हल्दीघाटी।
क्या मुझे नहीं धिक्कारेगी, भारत की बलिदानी माटी?
हे रामसिंह धिक्कारेगा मुझको हर बलिदानी सपूत।
जाकर कविवर से कह देना, मैं भी हूँ तुमसा राजपूत॥

(वही, पृ० ६३-६४)

इसके बाद राणा प्रताप ने दृढ़-चित्त होकर कवि पृथ्वीराज को पत्र लिखा और उसे वीर रामसिंह के सुपुर्द कर दिया—

एकलिंग की मूर्ति के प्रथम जोड़ता हाथ।
भारत माँ के चरण में पुनः झुकाऊँ माथ॥
लिखता उत्तर तुम्हें सुमिर वज्रअंग को।
शीश झुकेगा नहीं शपथ है एकलिंग की॥

रवि प्राची के ही पनघट पर मुस्काएगा।
नित धरती पर अपना प्रकाश फैलाएगा॥
पर स्वयं चकित हूँ हे शिल्पी हे काव्यव्रती।
कैसे जाना राणा प्रताप झुक जायेगा?

कैसे जाना यह समर बन्द हो जाएगा,
कैसे जाना रवि रजनी में खो जाएगा?
कैसे जाना भारत माता की क्यारी में,
राणा प्रताप कंटक बबूल बो जाएगा?

है एकलिंग की शपथ मुझे यह सच मानो,
मैं बाँध कफन मर मिटने को साथी निकला।
मेरे प्रण को समझो पत्थर की लकीर,
राणा प्रताप है वही, नहीं कुछ भी बदला॥
तुम दो मूँछों पर ताव सामने अकबर के,
मैं कभी उसे सम्राट नहीं कह सकता हूँ।

इस मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए वीर,
सिर पर भालों के लाख वार सह सकता हूँ ।।
जब तक चलती है श्वास न प्रण से डोलूँगा,
जय एकलिंग के साथ देश की बोलूँगा ।
विश्वास रखो मैं माँ के बन्धन खोलूँगा,
तलवार शत्रु के शीश सर्वदा तोलूँगा ।।

(वही, पृ० ६७ एवं ७२)

महाराणा प्रताप के इस पत्र को जो कवि पृथ्वीराज के पत्र के उत्तर में लिखा गया था, पत्रवाहक रामसिंह ने उसे कवि के पास बन्दी-गृह में पहुँचा दिया। महाकवि को पत्र पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। सम्राट अकबर को जब राणा के जोश भरे उत्तर की खबर मिली तो उसके सारे हौसले पस्त हो गए और वह भय के अतल सागर में डूबने लगा—

इस भाँति पत्र राणाजी का, लेकर आए वे महावीर ।
पहुँचे बन्दीगृह के भीतर, थे जहाँ पड़े कविवर अधीर ।।
लख रामसिंह को आगे बढ़, छाती से कवि ने लगा लिया ।
तब रामसिंह ने पुलकित पाती को कर में थमा दिया ।।
फिर बोल उठे वे हे कविवर, हे युग-द्रष्टा वाणी के वर !
राणा तो सचमुच भारत है, यह पाती है आत्मा का स्वर ।।
इस पाती का अक्षर-अक्षर, माटी की बात बोलता है ।
इस पाती का अक्षर-अक्षर, मन के शत बन्ध खोलता है ।।
कवि बोल उठे कारागृह में, राणा की जय राणा की जय !
प्रतिध्वनि गूँजो दीवारों से प्रणवीर महाराणा की जय !
है धन्य-धन्य भारत माटी है धन्य यहाँ की परिपाटी ।
है धन्य-धन्य मेवाड़ धरा, है धन्य-धन्य हल्दीघाटी ।।
यह देश बड़ा मतवाला है, मर-मर कर जीने वाला है ।
इसके अन्तर में ज्वाला है, आँधी में जलने वाला है ।।
यह देश नहीं देवालय है, इसका गौरव चिर अक्षय है ।
टूटती नहीं इसकी लय है, सचमुच भारत चिर अव्यय है ।।

× × ×

फैली दिल्ली में बात कि राणा झुके नहीं,
प्रण पर अपने हैं अटल, अटल है स्वाभिमान ।
कुंठित तलवारें नहीं हुईं भारत-भू की,
पथराया अभी नहीं आर्यों का कीर्तिमान ॥
अकबर सुन राणा प्रताप का दुर्दम प्रण,
अंगुली दाँतों से दाब देर तक खड़ा रहा ।
ज्यों सूँघ लिया हो महा भयंकर विषधर ने,
सपनों का पूरा महल ध्वस्त हो वहीं रहा ॥
सोचने लगा अंतःपुर में कर सिर पर धर,
यह धरती वह जो उगला करती अंगारें ।
यह कैसी माटी जहाँ उगाई जाती है,
शोणित की प्यासी जहर बुझी हो तलवारें ॥
यह कौन धातु है जिससे भारत देश बना,
वह कैसा साँचा जिसमें हिन्दू ढलता है ।
जो पैदा होता कर में अपने लिए कफन,
छाया में मरता पर लपटों पर खिलता है ॥
मैं जान न पाया अब तक हिन्दू क्या होता,
रखती कितनी खर ताप यहाँ की माटी है ।
कितना कड़ुवा होता पानी इस धरती का,
हर कदम-कदम पर हँसती हल्दीघाटी है ॥
यह देश अनोखा है, अजेय है, शानी है,
यह भूचालों पर केवल पलता रहता है ।
संघर्षों में उज्ज्वल बनता इसका स्वरूप,
यह हवन-कुण्ड सा प्रतिपल जलता रहता है ॥
जो इसे मिटा देने का दम भरता रहता,
वह स्वयं बुलबुला सा क्षण में मिट जाता है ।
गाता रहता यह ऋचा काल की छाती पर,
यह देश प्रलय की गोदी में मुसकाता है ॥

ढलने वाला है नहीं कभी यह आफताब,
दिन-रात धधकने वाला वह अक्षय पावक
यह वह गुलशन है हरा-भरा इस दुनिया का,
जन्मते यहाँ पर राणा से केहरि-शावक ।।

('महाराणा का पत्र' काव्य, पृ० ७५-८३)

कवि अरुणप्रकाश अवस्थी ने बड़ी ही प्रभावशाली भाषा में 'महाराणा का पत्र' काव्य की रचना की है। इसमें ओज और प्रसाद दोनों गुण हैं और है देश-प्रेम की प्रबल पुकार। कवि ने अद्यतन हुए अनुसंधानों का अपने काव्य में प्रयोग किया है। यद्यपि रचनाकार ने उन्हीं बातों को अपने कथ्य का उपजीव्य बनाया है, जो पूर्व में कवि-कोविदों ने कही है, किन्तु सम्प्रेषण की कवि की अपनी कला-शैली है, जो स्तुत्य है। श्री अवस्थी ने कई नई उद्भावनाओं का संयोजन किया है, किन्तु इस बात को अस्पष्ट ही रखा है कि किस कारण से महाकवि पृथ्वीराज अकबर की कारा में बन्दी थे। जबकि अन्य रचनाकारों ने उन्हें अकबर के दरबार में दिखाया है और राणा के पत्र की उन्हें वहीं खबर लगती है। 'महाराणा का पत्र' काव्य में पृथ्वीराज को राणा के पत्र का पता कारागृह में लगता है और स्वप्न-दृश्य में अकबर उन्हें राणा का पत्र दिखलाता है।

श्री अरुणप्रकाश अवस्थी अच्छे कवि-साहित्यकार और पत्रकार हैं। आपने 'महाराणा का पत्र' काव्य के अतिरिक्त जो रचनाएँ लिखी हैं उनमें उल्लेखनीय हैं—'रावीतट' काव्य, 'वंदनीय युगे-युगे', 'यह देश नहीं देवालय है' (निबन्ध-संग्रह), 'आलोर का आलोक' उपन्यास आदि। डॉ० प्रभाकर माचवे ने 'महाराणा का पत्र' के बारे में लिखा है—"इस वीर-रसपूर्ण काव्य में अवस्थी जी ने यह सिद्ध किया है कि राणा प्रताप ने अकबर को कोई पत्र नहीं लिखा, अनेक सर्गों और छन्दों में लिखे इस काव्य में प्रसाद के साथ ओज गुण भी है। कृति कई स्थलों पर देशकाल से परे विश्वात्मक और सार्वजनीन महत्व की बन गई है।"

महाकवि गिरीशचन्द्र घोष

बंगला-साहित्य के सर्वाधिक यशस्वी नाट्यकार महाकवि गिरीशचन्द्र घोष (१८४४ ई०—१९१२ ई०) नाट्य रचयिताओं और अभिनेताओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। वे सार्वजनिक मंच (National Theatre) के प्रतिष्ठाताओं में प्रमुख थे और सार्वजनिक मंच या नेशनल थियेटर की स्थापना के काल अर्थात् १८७२ से ही उससे जुड़े हुए थे। एक कुशल अभिनेता के रूप में उनकी ख्याति थी। नेशनल थियेटर की स्थापना के उपरान्त, नाट्य-मंच की अपेक्षाओं-आकांक्षाओं ने तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी के रम्याख्यानों और माइकेल मधुसूदन दत्त आदि की कविताओं ने उन्हें रंगमंचीय नाटक प्रस्तुत करने की प्रेरणा जुटाई। उन्होंने बंकिम की 'कपालकुण्डला' और 'मृणालिनी' का नाट्य रूपान्तर किया। परवर्ती काल में रवीन्द्र के उपन्यास 'चोखेर बाली' का भी उन्होंने नाट्य रूप प्रस्तुत किया।

नाट्यकार के रूप में

डॉ० अजित कुमार घोष ने 'बांग्ला नाटकेर इतिहास' के पृष्ठ २३२ पर लिखा है— गिरीशचन्द्र के पूर्व बंगला नाट्य-कला भारतीय आभिजात्य श्रेष्ठियों के अन्तःपुर में मन्दगति से संचरण कर रही थी। गिरीश घोष ने ही सर्वप्रथम उसे आम जनता के दरबार में उपस्थित कर उसके अनिन्द्य सौंदर्य और अपूर्व महिमा-गरिमा को सर्वजन सुलभ किया।' वस्तुतः महाकवि गिरीश का यह एक क्रान्तिकारी कार्य था। क्योंकि बंगाल में नाट्य-मंच की नेशनल थियेटर के पूर्व स्थापना तो हो चुकी थी, किन्तु उन रंगशालाओं में कुलीन राजा-जमीन्दारों का ही वर्चस्व था, आम जनता का प्रवेश निषेध था। केवल धनी-सम्पन्न वर्ग ही नाटक का आनन्द ले सकता था, सबके लिए नाट्य-रस ग्रहण करना कठिन था। इसलिए बंगाल एवं बंगला-साहित्य में ७ दिसम्बर, १८७२ का दिन स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा जब गिरीश घोष आदि सज्जनों के द्वारा सर्वसाधारण के लिए नेशनल थियेटर (बाद में ग्रेट नेशनल थियेटर) की स्थापना हुई। इस नेशनल थियेटर ने नाट्य रचना और अभिनेकला को नया आयाम दिया और धड़ल्ले से नाट्य कृतियाँ रची जाने लगीं। नए-नए कुशल अभिनेता मंच पर अपनी कला को निखारने के लिए उपस्थित होने लगे। इसमें एक मार्के की बात थी कि नेशनल

थियेटर के मंच पर अब पुरुष नारी-चरित्रों का अभिनय नहीं करते थे, अपितु स्त्रियाँ ही स्त्री-पात्रों का अभिनय करती थीं। इसे हम युगान्तरकारी घटना से अभिहित कर सकते हैं।

गिरीश घोष ने जितने नाटक लिखे उतने बंगला-साहित्य के किसी नाटककार ने नहीं लिखे। इसका एक कारण भी था। इस बात का उल्लेख उन्होंने अपने एक मित्र कुमुदबन्धु सेन से किया था। इस प्रसंग का वर्णन 'गिरीशचन्द्र उ नाट्य-साहित्य' पुस्तक के पृष्ठ १८ पर देखा जा सकता है। पुस्तक में लिखा है—'श्री कुमुदबन्धु सेन से एक दिन बातचीत के सिलसिले में गिरीशचन्द्र ने कहा कि उन्हें नाटक रचना के लिए बाध्य होना पड़ा अर्थात out of sheer necessity. जब माइकेल और बंकिम की रचनाओं का नाट्य-रूपान्तर कर लिया गया तो मंच के लिए नए नाटकों की जरूरत समझी गई। और जब अभिनयोपयोगी कोई नाटक उपलब्ध नहीं हुआ तब मुझे बाध्य होकर नाटक लिखने की ओर प्रवृत्त होना पड़ा। ('गिरीशचन्द्र उ नाट्य-साहित्य'—कुमुदबन्धु सेन, पृष्ठ १८)

गिरीशचन्द्र ने जब नाटक रचना का कार्य आरम्भ किया उस समय बंगला नाट्य-साहित्य अपने शैशव-काल का अतिक्रमण कर यौवनावस्था में प्रवेश कर रहा था। स्वाभाविक है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती नाटककारों से प्रेरणा ग्रहण की। दीनबन्धु के 'नीलदर्पण' से वे प्रभावित थे। ऐतिहासिक नाटकों में उन्होंने ज्योतिरिन्द्रनाथ के नाटकों से स्वदेश-प्रेम की प्रेरणा ली।

डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य के शब्दों में—'यद्यपि गिरीशचन्द्र राष्ट्रीय आदर्श के परिपोषक थे, किन्तु संस्कृत नाट्य-साहित्य की धारा से वे बिल्कुल कटे हुए थे और अंग्रेजी के शेक्सपीयर आदि नाट्यकारों और अंग्रेजी नाट्य-पद्धति से प्रभावित थे। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि उन्होंने संस्कृत प्रभाव से मुक्त कर बंगला नाट्य-साहित्य को एक नई धारा की ओर उन्मुख किया।' ('बांग्ला नाट्य साहित्येर इतिहास', पृष्ठ २९४)

गिरीशचन्द्र ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने शेक्सपीयर के नाट्यादर्शों को अपनी रचनाओं में ग्रहण किया है। 'महाकवि शेक्सपीयर मेरे आदर्श हैं, उन्हीं के पदचिन्हों का मैंने अनुसरण किया है—गिरीशचन्द्र।' (गिरीशचन्द्र उ नाट्य साहित्य—कुमुदबन्धु सेन, पृष्ठ ३८)। रामकृष्ण-विवेकानन्द के सम्पर्क से उन्होंने अपने नाटकों में लांछिता, हतभागिनी पतिताओं के उद्धार के लिए

प्रयास किया। किन्तु रामनारायण, दीनबन्धु और माइकेल मधुसूदन की भाँति बंगाली समाज के विभिन्न स्तरों के बारे में उनकी कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। उनके नाटकों की दूसरी सबसे बड़ी त्रुटि है कि इनमें कोई द्वन्द्व नहीं है, व्याख्यानी है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से गिरीशचन्द्र घोष के नाटकों को इन विभागों में बाँटा जा सकता है, यथा पौराणिक नाटक, चरित-नाटक, रोमांटिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक एवं सामाजिक नाटक-प्रहसन। गिरीशचन्द्र घोष की सभी रचनाओं का प्रकाशन साहित्य संसद, कलकत्ता से १९६९ ई० में हुआ है। यह प्रकाशन 'गिरीश रचनावली' के नाम से चार खण्डों में है, जिसके सम्पादक हैं डॉ० रथीन्द्रनाथ राय एवं डॉ० देवीपद भट्टाचार्य।

गिरीशचन्द्र का 'आनन्द रहो' नाटक

गिरीशचन्द्र ने सर्वप्रथम ऐतिहासिक नाटक 'आनन्द रहो' बंगाब्द १२८८ में लिखा। आपने नाटक की रचना टॉड के 'राजस्थान' के आधार पर की है। वैसे यह नाटक इतिहास की दृष्टि से गिरीशचन्द्र का प्रथम नाटक है और ऐतिहासिक नाट्य-रचना की दृष्टि से दूसरा नाटक। नाटक पांच अंकों में लिखा गया है। 'आनन्द रहो' नाटक का प्रथम अभिनय ग्रेट नेशनल थियेटर में ६ ज्येष्ठ, १२८८ बंगाब्द में हुआ। सच पूछा जाय तो गिरीशचन्द्र की प्रतिभा का जितना परिचय हमें पौराणिक नाटकों मे मिलता है, उतना ऐतिहासिक नाटकों में नहीं। यूँ उनके बाद के ऐतिहासिक नाटक कुछ दृष्टि से ज्यादा सफल कहे जा सकते हैं। 'आनन्द रहो' नाटक में गिरीश-प्रतिभा के हस्ताक्षरों से हमें महरूम रहना पड़ता है। 'भारती पत्रिका में इस नाटक के सम्बन्ध में द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर की उक्ति यहाँ पेश की जा सकती है—'गिरीश बाबू की लेखनी से इस ढंग की अराजकतापूर्ण कल्पना की हम आशा नहीं कर सकते।' डॉ० सुकुमार सेन का मन्तव्य भी इस प्रसंग में इसी सच्चाई का अनुमोदन करता है—'ऐतिहासिक नाटक की छाप लिए हुए भी 'आनन्द रहो' नाटक में ऐतिहासिकता कुछ भी नहीं है। इसमें केवल अकबर, मानसिंह, राणा प्रताप इत्यादि कुछ ऐतिहासिक चरित्रों के नाम गिना दिए गए हैं। सम्भव है ज्योतिरिन्द्रनाथ के नाटक 'अश्रुमति' से इनको 'आनन्द रहो' नाटक लिखने की प्रेरणा मिली हो। नाटक की दृष्टि से इसे नाटक नहीं कहा जा सकता है। इसमें न तो कहानी का प्रवाह है और न कोई समस्या है। भाषा भी खण्डित-सी जान पड़ती है। नाटक में बेताल की केन्द्रीय भूमिका है जो हर दृश्य और अंक में 'आनन्द रहो' की रटना लगाता रहता है। इस रहस्यमय बेताल ने नाटक में अपनी किसी सार्थकता का परिचय नहीं दिया है।' (बांग्ला साहित्येर इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ सं० ३५३)

कथानक

टॉड के 'राजस्थान' से कथावस्तु लेने के बावजूद 'आनन्द रहो' नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं और तत्वों को खोजना एक कष्टकर कसरत है। 'आनन्द रहो' नाटक की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है—राजा मानसिंह की बढ़ती शक्ति से अकबर

शंकित हो जाता है। विशेषकर अकबर बादशाह के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर राजा मानसिंह सलीम के स्थान पर अकबर के भाई के पुत्र खुसरू का पक्ष लेकर षड्यन्त्र करता है। इस षड्यन्त्र को छल-बल-कौशल से अकबर व्यर्थ करने की चेष्टा करता है और मानसिंह की विषपान से हत्या करने की दुरभिसन्धि करता है। बादशाह अपने षड्यन्त्र के जाल का स्वयं शिकार होता है। इस घटना के अतिरिक्त नाटक में मानसिंह की पुत्री लहना और झाला सरदार के पुत्र नारायण सिंह की प्रेम-कहानी का रोमांस वर्णित किया गया है। सलीम भी लहना से प्रेम करता है। राणा प्रताप से अकबर की सन्धि का प्रस्ताव, भामाशाह की राणा के प्रति उदारता और प्रताप का आत्मोत्सर्ग आदि दिखाया गया है।

नई उद्भावना

मूल कहानी मे कपोलकल्पित पात्रों का सृजन, प्रेम-कहानी की अवतारणा आदि प्रसंगों का तानाबाना तो नाटककार ने बुना, किन्तु उनमें कोई तालमेल या संगति नहीं रख पाया। सम्भव है जिस प्रकार ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'अश्रुमति' नाटक में राणा प्रताप की कन्या का सलीम के साथ प्रेमालाप दिखाया, कुछ उसी प्रकार गिरीशचन्द्र ने भी मानसिंह की कन्या का सलीम के साथ प्रेम दिखाने की कोशिश की है। 'आनन्द रहो' नाटक में सलीम लहना से प्रेम करता है, पर लहना झालापति के पुत्र नारायण सिंह के प्रति अनुरक्त है। अकबर भी लहना के प्रति सलीम की आसक्ति से परिचित है और इसी कारण वह नारायण सिंह को जेल में बन्दी बनाता है तथा लहना का मानसिंह की हत्या मे प्रयोग करता है।

अकबर मानसिंह को विष देकर मारना चाहता था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। इस बात का समर्थन हमें विंसेन्ट ए० स्मिथ Vincent A. Smith के Akbar the great Mogul ग्रन्थ के Chapter-XI के ३२६ पृष्ठ पर इस प्रकार मिलता है -

"I do not believe a word of the story about the alleged accidental self-poisoning in any of its forms, although it is true that Akbar like many European Princes of his time, did remove several of his enemies by secret assassination, probably using poison in certain cases. On the whole, while it is perhaps most probable that Akbar died a natural death, the general belief that he was poisoned in some fashion by some body may have been well-founded. The material do not warrant a definitive judgement."

कर्नल जेम्स टॉड का कथन इस प्रकार है—

"A desire to be rid of the great Raja Maun of Amber, to

whom he was so much indebted, made the emperor descend to act the part of the assaissin. He prepared a majoom, or confection, a part of which contained poison, but caught in his own snare, he presented the innoxious portion to the Rajpoot and ate that drugged with death himself.

We have a sufficient clue to the motives which influenced Akbar to a deed so unworthy of him, and which were more fully developed in the reign of his successor; namely, a design on the part of Raja Maun to alter the succession, and that Khoosru, his nephew, should succeed instead of Selim." (Tod's Rajasthan, Vol. I, Chapter XII, Page 279).

राजा मानसिंह का खुशरू के उत्तराधिकार के लिए सलीम के स्थान पर षड्यन्त्र स्वाभाविक था और कदाचित इस बात की कान में भनक पड़ने से अकबर ने मानसिंह को विष देने का छल किया और स्वयं अपने ही षड्यन्त्र का शिकार हो गया। 'आनन्द रहो' नाटक में गुप्तचर के रूप में चित्रित बेताल ने ही जहर के शर्बत के गिलास को बदल दिया और जो विष मानसिंह को दिया जाने वाला था, उसे अकबर पी गया।

'आनन्द रहो' नाटक के पंचम अंक के तृतीय गर्भांक में इस प्रकार गिरीशचन्द्र ने वर्णन किया है—

अकबर—यह बड़ा सुस्वादु शर्बत है—आप पीजिए (स्वयं पीकर) यह क्या ? विश्वासघात ! विश्वासघात !

मानसिंह—(राजा मान सतर्क था—सावधान होकर) अकबरशाह ! आप नहीं जानते, आपका विषपात्र आपके मुख में है।

('गिरीश रचनावली' चतुर्थ खण्ड, 'आनन्द रहो' नाटक, पृष्ठ ६६६)

असल में बेताल ने पात्रों को बदल दिया था। विष की असह्य यन्त्रणा से जब अकबर छटपटाता है और पानी के लिए याचना करता है तब मानसिंह कहता है—

मेरी कन्या के प्रति दवा का प्रयोग कराकर आपने जल की मनाही कर दी थी और अब आपके लिए भी वही व्यवस्था है।

अकबर ने मानसिंह को विष देने के षड्यन्त्र में सभी पहरेदारों को अपने कक्ष से हटा दिया था। फलतः वहाँ कोई दूसरा अनुचर नहीं था जो पानी के लिए छटपटाते अकबर को जल पिलाता। अकबर की यह कारुणिक दशा नाटक में बड़े मर्मान्तक रूप से दिखाई गई है।

अकबर का पत्र

बादशाह अकबर ने महाराणा प्रताप के पास सौजन्यता प्रदर्शन करने के लिए पत्र दिया था। इस पत्र की राणा प्रताप के सभासदों में बड़ी प्रतिक्रिया हुई। इसे दम्भपूर्ण कुटिलता भरा पत्र समझा गया। क्योंकि एक महाबली व्यक्ति एक साधारण राजपूत के पास ऐसा पत्र क्यों भेजेगा ? इसका अर्थ था कि अकबर अपनी महानता का दम्भ प्रदर्शन करना चाहता था। 'आनन्द रहो' के द्वितीय अंक के द्वितीय गर्भांक में हम इस घटना को इस प्रकार पाते हैं—

पहला सरदार—सिंह का प्रतिद्वन्द्वी सिंह ही हो सकता है।

दूसरा सरदार—बादशाह तो कम शक्तिशाली नहीं है।

मन्त्री—इस संधि के प्रस्ताव से राणा सहमत होंगे, ऐसा नहीं लगता।

(वही, पृ० ६७६)

भाट ग्रन्थों में ऐसा लिखा गया है कि प्रताप के अपूर्व साहस और वीरता का अकबर पर प्रभाव पड़ा और उसके हृदय में दया का संचार हुआ और बादशाह ने राणा को दुःख देने का विचार त्याग दिया। पर स्वदेश का उद्धार करने के लिए मुसलमानों से युद्ध करने के कारण यदि प्रताप को जन्म भर भी भयंकर युद्ध करना पड़ता तो वे इससे विचलित नहीं होते। ऐसी स्थिति में सन्धि की बात को कैसे मान सकते थे ? पर राणा ने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि जिस शत्रु ने इतने दिन तक उन्हें सताया, बीस हजार राजपूतों का रुधिर मेवाड़-भूमि पर बहाया, अन्त में फिर वही युद्ध बन्द करके चला जायगा। अतः राणा प्रताप के लिए यह एक पीड़ादायक बात थी। अकबर यदि जन्म भर तक प्रताप को युद्ध की पीड़ा देता, तब भी वे क्षण भर के लिए दुःखी नहीं होते, परन्तु शत्रु के इस अनुग्रह से, इस असह्य कुलिश कठोर प्रहार से वे अत्यन्त व्याकुल हो गए और अनर्थकारी राज-सम्मान को हजार बार धिक्कारने लगे।

टॉड ने कहा है—

" but for the high-minded the generous Rajpoot, to be the object of that sickly sentiment, pity, was more oppressive than the arms of his foe." (Ibid, Page 277).

भामाशाह की देशभक्ति

राणा प्रताप जब व्यथित होकर मेवाड़ का परित्याग कर रहे थे तब उनके मन्त्री भामाशाह ने अर्थ-सहायता से उनमें पुनः युद्ध करने की असीम भावना भरी। इस घटना का प्रकरण भी गिरीशचन्द्र के नाटक में हमें मिलता है—

राणा प्रताप—मंत्री ! मैं तो हल्दीघाटी के युद्ध के बाद अर्थहीन हो गया था ।
क्यों तुमने अपना अर्थबल देकर मुझे युद्ध के लिए प्रेरित किया ?
(वही, पृ० १७७)

राणा प्रताप चित्तौड़ के उद्धार से जब निराश होकर जन्मभूमि से विदा ले रहे थे तभी उनके परमविश्वासी मन्त्री भामाशाह ने अतुल धनराशि देकर राणाजी को पुनः युद्ध के लिए उत्साहित किया । टॉड के 'राजस्थान' में इस घटना का विस्तार से वर्णन है । उसी को 'आनन्द रहो' नाटक में दिखाया गया है—टॉड का वर्णन देखिए—

"He (Pertap) determined to abandon Mewar and the blood-stained Cheetore (no longer the stay of his race) and to lead his Seesodias to the Indus plant ..with his family, and all that was yet noble in Mewar, his chiefs and vassals, a firm and intrepid band, who preferred exile to degradation, he descended the Aravulli and had reached the confines of the desert, when an incident occured which made him change his measures, and still remain a dweller in the land of his forefathers. If the historic annals of Mewar record acts of unexampled severity, they are not without instances of unparalleled devotion. The minister of Pertap, whose ancestores had for ages held the office, placed at his prince's disposal their accumulated wealth, which, with other resources is stated to have been equivallent to the maintenance of twentyfive thousand men for twelve years. The name of Bhama Sah is preserved as the saviour of Mewar." (Ibid, Page 275).

महाकवि गिरीश का 'चण्ड' नाटक

टॉड के 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड के सातवें अध्याय से उपकथा लेकर नाट्य-कार गिरीशचन्द्र ने 'चण्ड' नामक सफल नाटक लिखा। 'चण्ड' का प्रथम अभिनय ११ श्रावण, १२९७ बंगाब्द में हुआ। इस नाटक में ऐतिहासिकता की पूर्ण रक्षा की गई है तथा गिरीशचन्द्र ने कुछ काल्पनिक पात्रों का सृजन कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। आपने लाखा (लाक्ष) राणा की पत्नी की सहचरी बिजरी का सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। बिजरी की राणा के मझौले पुत्र रघुदेवजी के प्रति आसक्ति की प्रतिहिंसा में जल कर रणमल रघुदेवजी की हत्या करवाता है। रघुदेवजी की हत्या का पाप उसे ले डूबता है और सारे मेवाड़ निवासी उसकी क्रूरता, अत्याचार और षड्यन्त्र से विचलित हो जाते हैं। इस तरह नाटककार ने बिजरी, पूर्णराय भाट, गुँजमाला, कुशला आदि पात्रों को अपनी कल्पनाशक्ति से नाटक में स्थान दिया है, पर यह भी सही है कि टॉड के 'राजस्थान' में इन पात्रों का जिक्र आया है।

'चण्ड' की कहानी

'चण्ड' नाटक की कहानी इस प्रकार है—राठौर राजा का एक भाट राणा लाक्ष के पुत्र चण्ड (चन्द्र) के लिए राठौर राजकुमारी के विवाह का नारियल लेकर आता है। उस समय चण्ड दरबार में उपस्थित नहीं था। राणा ने भाट का आदर सत्कार किया और अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए परिहास में कहा—'तुम्हारे राजा ने शायद वृद्ध के हाथ में नारियल देने से निषेध किया है।' राणा के इस कथन से दरबार में हँसी का फव्वारा छूट गया। जब चण्ड दरबार में आया और उसने पिता की बात सुनी तो उसने निश्चय किया कि पिता ने कौतुकवश भी जिस राजकुमारी के बारे में ऐसे वचन कहे हैं, वह उसके लिए विवाह योग्य नहीं है, बल्कि वह उसके लिए माता के समान है। इस बात को कह कर चण्ड ने विवाह करने से अपनी असहमति प्रकट की। राणा ने चण्ड को लाख तरह से समझाया पर वह अपनी बात पर अडिग रहा। बाध्य होकर बूढ़े राणा ने स्वयं विवाह करने का निश्चय किया। लेकिन यह बात भी साफ तौर से बता दी कि अगर इस विवाह से पुत्र पैदा हुआ तो वही राज्य का अधिकारी होगा। चण्ड ने इसे शिरोधार्य किया और अपनी स्वीकृति जताई। कुछ समय बाद राणा को पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम मुकुल रखा गया। मुकुल पाँच वर्ष का था तभी राणा को संसार त्याग कर गया जाना पड़ा। मुसलमानों ने गया पर आक्रमण किया था और इस तीर्थ स्थान की रक्षा आवश्यक थी। राणा के गया जाने के पूर्व मुकुल को सिंहासन

पर बैठाया गया और चण्ड अपने छोटे भाई के रक्षक के रूप में राजकार्य चलाने लगा। यद्यपि चण्ड निष्ठा और ईमानदारी से राजकार्य का संचालन करता था और मुकुल के प्रति प्रेमभाव रखता था, पर राजमाता हुंजमाला को यह अच्छा नहीं लगा। वह मन ही मन चण्ड से ईर्ष्या करने लगी और अन्त में कलंक लगा कर चण्ड को निर्वासित कर दिया। चण्ड के मेवाड़ त्याग के बाद राजमाता ने अपने पिता रणमल को चित्तौड़ बुला लिया। रणमल ने आकर राजकार्य अपने हाथ में ले लिया और चित्तौड़ पर अधिकार करने की इच्छा से मुकुल की हत्या करने पर अमादा हो गया। गुंजमाला को जब स्थिति का भान हुआ तो वह निरुपाय हो गई। अन्त में बाध्य होकर उसने निर्वासित चण्ड से सहायता की याचना की। चण्ड अपने भील सरदारों को लेकर चित्तौड़ आया और उसने रणमल को मार कर चित्तौड़ का राठौरों से उद्धार किया। पश्चात पुनः मुकुल को सिंहासन पर बैठाकर राज्य संचालन और प्रजापालन करने लगा।

मातृ जाति के प्रति श्रद्धा

टॉड ने चण्ड की इस कथा को बड़ी ओजस्विता से अपने वृहद् ग्रन्थ 'राजस्थान' में चित्रित किया है और राजपूत जाति के इस त्याग और नारी को दी जाने वाली मर्यादा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कदाचित् इसी भावना से प्रेरित होकर गिरीशचन्द्र ने भी बड़े मनोयोग से 'चण्ड' नाटक की रचना की है। महात्मा टॉड ने लिखा है—

"If devotion to the fair sex be admitted as a criterion of civilisation, the Rajpoot must rank high. His susceptibility is extreme and fires at the slightest offence to female delicacy, which he never forgives." (Ibid, Page 223).

राजस्थान का भीष्म

भारतवर्ष में आप्तवाक्य प्राचीन समय से प्रचलित है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।' चण्ड ने अपने आत्मत्याग से नारी जाति के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसकी मिशाल महाभारत के भीष्म से की जा सकती है और उसने अपने छोटे भाई के प्रति जो आदर, सम्मान और प्रेम-भाव दर्शाया उसकी तुलना रामायण के भरत से की जा सकती है। ऐसे उदात्त चरित्रों की कहानी से ही प्रभावित होकर महात्मा टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ की रचना की और राजपूत जाति के गौरवपूर्ण, वीरतापूर्ण एवं स्वदेश-प्रेम को विश्व के सामने और खास कर अंग्रेज जाति के सामने उजागर किया।

राठौर राणा का भाट जब राजकुमार चण्ड के लिए विवाह का नारियल लेकर दरबार में उपस्थित होता है उस प्रसंग का उल्लेख 'राजस्थान' ग्रन्थ में इस प्रकार है—

"Lakha Rana was advanced in years, his sons and grandsons established in suitable domains, when 'the cocoa-nut came' from Rinmull prince of Marwar, to affiance his daughter with Chonda, the heir of Mewar. When the embassy was announced, Chonda was absent, and the old chief was seated in his chair of state surrounded by his court.

The messenger of Hymen was courteously received by Lakha, who observed that Chonda would soon return and take the gage; 'for' added he, drawing his fingers over his moustaches, "I don't suppose you send such playthings to an old greybeared like me." This little sally was of course applauded and repeated; but Chonda offended at delicacy being sacrificed to wit, declined accepting the symbol which his father had even in jest supposed might be intended for him, and as it could not be returned without gross insult to Rinmull, the old Rana, incensed at his son's obstinacy, agreed to accept it himself, provided Chonda would swear to renounce his birthright in the event of his having a son, and be to the child but the "first of his Rajpoots," He swore by Eklinga to fulfil his father's wishes." (Ibid, Page 223).

परिहास में भी पिता ने जिस कन्या से विवाह की इच्छा की उसे माता के रूप में मान लेना और स्वयं उससे विवाह न करना ऐसे उदात्त चरित विरल ही मिलते हैं। तभी महात्मा टॉड ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि स्त्री जाति के प्रति इस प्रकार की श्रद्धा का भाव यूरोप में क्या विश्व में मिलना कठिन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे ही राजपूतों के वीरोचित गुणों से मुग्ध होकर टॉड ने राजस्थान के स्वर्णिम इतिहास को विश्व साहित्य-इतिहास के समक्ष बड़े आदर के साथ रखा। श्रद्धा और भक्ति में अतिरंजना से क्षुब्ध होकर कतिपय इतिहासकारों ने टॉड के इतिहास को ऐतिहासिक भूलों से भरा वाग्जाल बताया है। किन्तु यह क्या कोई कम बात है कि जब भारत का और राजस्थानी वीरों का कोई लिखित इतिहास नहीं था, तब टॉड ने भगीरथ प्रयत्न करके मरुगंगा को प्रवाहित किया। पश्चात इतिहासकारों ने इस मरुगंगा में गोता लगा कर मूल्यवान रत्न निकाले और अपने को प्रति-

आपित किया। इमारत में नींव का महत्त्व होता है, नींव के पत्थर का बलिदान होता है, लोग इमारत की पच्चीकारी, मीनाकारी और उसके कंगूरों को देखकर, उसके स्वत्व को नजरअंदाज कर देते हैं। कुछ अंशों में यही त्रासदी टॉड के 'राजस्थान' के साथ भी हुई। स्वयं महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने नाक-भौंह सिकोड़ी और नए सिरे से राजपूताने का इतिहास लिखा। कहा जाता है कि पहले उन्होंने टॉड के 'राजस्थान' में करतब्योंत करने की मंशा जाहिर की थी, पर जब बात नहीं बनी तो उन्होंने नए सिरे से राजपूताने के इतिहास की रचना कर डाली। किन्तु इतिहास रचना में उन्हें भी टॉड के 'राजस्थान' के ऋण को स्वीकारना पड़ा और अपने 'राजपूताना का इतिहास' को महामना टॉड को समर्पित करना पड़ा।

जब राजस्थान के वीरतापूर्ण और त्यागपूर्ण इतिहास से विदेशी अभिभूत हो सकते थे तब यह स्वाभाविक है कि देश-प्रेम और स्वतन्त्रता के आकांक्षी बंगाली साहित्यकार इन उपाख्यानों से अपने को और बंगला-साहित्य को अलंकृत कर साहित्य-भण्डार को भरने लगे। 'आनन्द रहो' की असफलता को सफलता मण्डित करने के सत् उद्देश्य से ही महाकवि गिरीशचन्द्र घोष ने 'चण्ड' नाटक की रचना की।

गिरीशचन्द्र ने 'चण्ड' नाटक की सूचना में ही पूरी कहानी पद्य में दर्शक-पाठकों के समक्ष इन शब्दों में प्रस्तुत की है—

लाक्षराणा मतिमान्,
ज्येष्ठ पुत्र चण्ड तॉर गुनेर आधार।
राठौरीय रणमल्ल
चण्डे दिते दुहिता हइलो बाँछा तॉर।
राजपूत-प्रथा मानि, भटे नारिकेल आनि,
राठौरेर अभिप्राय करिल प्रचार।
कौतुके कहिल राणा, "भट्टराज, बुझि माना—
नारिकेल प्रदानिते शुभ्र गुम्फजार ?"

× × ×

परिहासि नरराय सम्बोधिलो जे कन्याय,
मने मने कुमार करिलो आन्दोलन
माता सम तारे मानि, ग्रहण करिलो पाणि,

राणा कलो सुधाइलो, नारिकेल नाहि निलो,
नरपति नारिकेल करिलो ग्रहण।
करि राणा अभिमान कहिलो—
'ए कन्या-गर्भे जन्मिले नन्दन,
दिबो राज्य-अधिकार, सिंहासन हबे तार।

× × ×

कुमार जन्मिलो परे, नृत्य घरे-घरे
पंचम-वर्षीय पुत्र, देखो किबा कर्मसूत्र,
हिन्दू-यवनेर जुद्ध गयाधामे घोर।
धर्म-युद्धे विसर्ज्जन, ए जीवन मम प्रण,
तुमि मम प्रतिरूप लह राज्य मोर।
कहे चण्ड—'हे धीमान, करेछेन वाक्य-दान,
बिमाता-नंदन अधिकारी ए चितोर।'
कोले तूले एतो बलि, सिंहासने महाबली,
बसाइलो शिशु-भ्राता मुकुल-किशोर!

('गिरीश रचनावली', तृतीय खण्ड, 'चण्ड' नाटक, सूचना, पृ० ४३९-४०)

'चण्ड' नाटक में नाटककार ने लिखा है—

गयाधामे धर्मरणे लाक्षराणा जबे
करिलो गमन, चण्डे दिते सिंहासन
बांछा छिलो तांर, केबा होतो प्रतिवादी
ज्येष्ठ पुत्र राज्य अधिकारी चिरदिन
के करितो निवारण मुकुट ग्रहण
चण्डेर, केमने बलो मुकुल पाइतो
राज्यभार? उदार-स्वभाव मतिमान
पितारे प्रतिज्ञा होते करिलो उद्धार,
तोमार नन्दने करिलो राज्य-समर्पण।

('चण्ड' प्रथम अंक, द्वितीय गर्भांक, पृ० ४४१)

राज्यसिंहासन का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता है, यह पुरातन परम्परा है।

चण्ड वीर और पराक्रमी था। वह सिंहासन पर बैठता तो उसे कौन रोकता? पर चण्ड ने अपनी उदारता, त्याग और पितृभक्ति का परिचय दिया और कठोर प्रतिज्ञा से पिता के मानसिक द्वन्द्व को शमित कर दिया। चण्ड ने यह-भीष्म प्रतिज्ञा उसी प्रकार की जैसे महाभारत के भीष्म ने प्रतिज्ञा कर राजा शान्तनु को आत्म-विह्वल कर दिया था।

गया तीर्थ पर यवनों का आक्रमण

नियति की यह एक विडम्बना है कि बारह वर्ष की राठौर कन्या गुंजमाला के साथ पचास वर्ष के महाराणा लाख का विवाह हुआ। गुंजमाला के गर्भ से मुकुल का जन्म हुआ। मुकुल पाँच वर्ष का हुआ तब राणा को पता चला कि मुसलमानों ने पुण्यतीर्थ गयाजी पर चढ़ाई कर दी है। गया पवित्र-क्षेत्र की रक्षा करने के लिए भारतवर्ष के समस्त राजाओ ने आक्रमण का प्रतिरोध करने का संकल्प किया। राणा लाख ने भी इस प्रतिरोध मे सहभागी बनने और अपने जीवन को सार्थक बनाने का निश्चय किया। गया-युद्ध मे जाने के पूर्व वे मेवाड़ राज्य की व्यवस्था कर लेना चाहते थे। उन्होंने राजकुमार चण्ड को बुलाकर कहा— मैं जिस युद्ध में शामिल होने जा रहा हूँ, उससे जीवित लौट सकूँगा इसमें सन्देह है। गया का उद्धार हो गया तो मैं शेष जीवन तीर्थ-धाम में ही बिताऊँगा और धर्मयुद्ध में मारा गया तो मेरे शरीर का धर्म-रक्षा में बलिदान होगा। पर चिन्ता है मुकुल की उपजीविका (भविष्य) का क्या होगा? उसके लिए कौन सी सम्पत्ति निर्धारित होगी?' उदारमना और तेजस्वी कुमार चण्ड ने स्थिर भाव से विनीत वाणी मे उत्तर दिया—'मुकुल के लिए चित्तौड़ का राजसिंहासन है।'

चण्ड की भीष्म प्रतिज्ञा

कदाचित इस सरल और उदार उत्तर को सुनकर पिता के मन मे शंका हो, इसलिए बुद्धिमान चण्ड ने राणा की गया यात्रा के पूर्व ही मुकुल के राज्याभिषेक कार्य को सम्पन्न करा दिया। पाँच वर्ष के बालक मुकुल को राजगद्दी पर बिठा कर, चण्ड ने सबसे पहले सिंहासनारूढ़ राजा मुकुल को राज्योचित सम्मान दिया और अपनी राजभक्ति का परिचय दिया। उसने नए राजा के प्रति अनुगत और विश्वासी रहने की प्रतिज्ञा की। इस स्वार्थत्याग के कारण मेवाड़ के सरदारों ने चण्ड को दरबार में सबसे ऊँचा स्थान दिया और यह विधि की गई कि उस दिन से किसी सामन्त को भूमिवृत्ति का दान-पत्र दिया जायगा, तो उस दान-पत्र पर राणा मुकुल के हस्ताक्षरों से ऊपर चण्ड के खड्ग का चिह्न रहेगा। उल्लेखनीय है कि चित्तौड़ के राजाओं ने उस दिन से जिसको जो भूमि दान की, उस दान-पत्र पर सालुम्ब्रापति के खड्ग का चिन्ह लगा हुआ दिखाई देता है। चण्ड के वंशवाले चन्द्रावत (चन्दावत) नाम से पुकारे जाते हैं। उनके स्वामी और

सरदार के रहने का स्थान सालुम्ब्रा है। मेवाड़ के सरदारों की सभा में सालुम्ब्रापति सर्वश्रेष्ठ गिने जाते हैं। राणा मुकुल का राज्यारोहण १३९८ ई० में हुआ था। टॉड का वर्णन इस घटना का साक्ष्य है—

"Mukulji had attained the age of five when the Rana resolved to signalise his finale, by a raid against the enemies of their faith, and to expel the 'barbarian' from the holy land of Gya. In ancient times this was by no means uncommon, and we have several instances in the annals of these states of princes resigning 'the purple' on the approach of old age, and by a life of austerity and devotion, pilgrimage and charity, seeking to make their peace with heaven 'for the sins inevitably committed by all who wield a sceptre' But when war was made against their religion by the Tatar proselytes to Islam, the Sutledge and the Caggar were as. the banks of the Jordan—Gya, their Jerusalem, their holy land; and if there destiny filled his cup, the Hindu Chieftain was secure of beatitude (Mookt) exempted from the trouble of 'second birth' (This is a literal phrase denoting further transmigration of the soul, which is always deemed a punishment. The soldier, who falls in battle in the faithful performance of his duty, is alone exempted, according to their martial mythology from the pains of second birth or re-birth) and born from the scene of probation in celestial cars by the Apsaras, was introduced at once into the 'realm of the sun.' (Ibid, Page 223-224)

भारतीय जीवन दर्शन

राणा लाक्ष का धर्म-युद्ध में प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत होना, भारतीय परम्परा है, जिसका उल्लेख महात्मा टॉड ने किया है। भारत का यह चिन्तन अति प्राचीन है। गीताकार ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रस्तुत होने हेतु श्रीकृष्ण के मुख से कहलाया है—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ 'गीता' २।३७ ॥

रणक्षेत्र में लड़ते-लड़ते प्राण देनेवाले वीर को स्वर्ग मिलता है। इस धारणा और विश्वास ने क्षत्रियों-राजपूतों को अजस्र प्रेरणा जुटाई--और वे विदेशियों से मातृभूमि की रक्षा करते हुए अथवा नारी की सतीत्व-रक्षा के लिए हँसते-हँसते मर मिटने पर प्रस्तुत हो गए। रजपूती ललनाओं ने भी युद्ध

में जाते पति, बेटे और भाई की आरती उतार कर रणक्षेत्र में भेजा है और अपने वीर कुल को सराहा है। इन वीरबालाओं ने स्वयं भी सतीत्व की रक्षा के लिए खुशी-खुशी जौहर-व्रत का पालन किया है। ऐसी सतियों से मरुधरा का चप्पा-चप्पा गौरवान्वित है।

गीता की दार्शनिक पीठिका

कितना आश्चर्य है कि गीता ने क्षत्रियों को मध्यकाल में देश की बलि-वेदी पर उत्सर्ग होने की प्रेरणा जुटाई और पश्चात् तिलक के 'गीता रहस्य' और गाँधी की 'कर्मगीता' ने देश की आजादी के दीवानों को फांसी पर चढ़ने और अंग्रेजों की गोलियाँ खाने के लिए प्रस्तुत किया। हमारे स्वातंत्र्य-संग्राम में क्रान्तिकारी देशभक्तों के लिए गीता ही दार्शनिक पीठिका बनी। फाँसी पर चढ़नेवाला देश-भक्त मृत्यु को चोला-बदल मानता था। वह गीता की इस उक्ति में पूर्ण आस्था और विश्वास रखता था—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि
अन्यानि संयाति नवानि देही॥ 'गीता' २।२२॥

क्योंकि भारतीय आत्मा को अमर मानते हैं—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ 'गीता' २।२३॥

गुँजमाला और धात्री कुशला

चार अंकों में लिखे गए 'चण्ड' नाटक में इतिहास की पूर्ण रक्षा की गई है। प्रथम अंक के द्वितीय गर्भांक में गुंजमाला और धात्री कुशला के वार्तालाप में कहानी की उस घटना का वर्णन किया गया है, जिसमें कुमार चण्ड ने राठौर राजकुमारी से विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी। धात्री कुशला का सच्ची राजपूत रमणी के रूप में चित्रण किया गया है, जो देशहित और राजहित में सत्य वचन पालन करने से जरा भी नहीं डरती है। गुंजमाला के मन में यह भ्रम था कि मेवाड़ के वंशगत अभिमान के कारण चण्ड ने उसके विवाह के नारियल का अपमान किया था। लेकिन असलियत कुछ और थी। उसी को स्पष्ट करने के लिए तथा चण्ड के उदात्त चरित्र को उजागर करने के लिए धात्री कुशला दरबार में घटी घटना का विवरण देती है।

गुंजमाला कहती है कि मैं उस बात को जानती हूँ, तुम व्यर्थ में गोलमाल कर रही हो। जन्म से ही चण्ड को मेरे पिता के वंश से घृणा है, इसलिए उसने नारियल को ग्रहण नहीं किया। वह पुनः चण्ड के प्रति अपनी ईर्ष्या का कारण बताती हुई तर्क देती है, जिस चण्ड का मेरे पिता के प्रति इस प्रकार का अपमानजनक मनोभाव है, वह मुकुल का कल्याण करेगा, इसमें पूरा सन्देह है। गिरीशचन्द्र के शब्दों में देखिए—

जानि से काहिनी, केनो करो गण्डगोल
आजन्म चण्डेर घृणा पितृवंशोपरे
ताई नारिकेल नाहि करिलो ग्रहण
× × ×
जार मम पिता प्रति हेन व्यवहार
मुकुलेर कल्याण से करिबे एखन !

कुसला गुंजमाला को समझाती है—

नारिकेल जबे भट्ट आनिलो सभाय
कौतुक करिया राणा कहिला भट्टरे
'तव नारिकेल बुझि नहे वृद्ध हेतु
शुभ्र गुम्फ जार तार नाहि अधिकार ?'
× × ×
ए रहस्य-कथा क्रमे शुनि चण्डदेव
मने मने विचार करिलो पिता जेई
कन्या लये रहस्य करिलो, कि प्रकारे
सेई कन्या पुत्र हये करिबो ग्रहण ! (वही, पृ० ४४३)

लेकिन गुंजमाला के मन से चण्ड के प्रति ईर्ष्या का भाव किसी तरह दूर नहीं होता है। उसकी इस भावना को जगाने मे उसकी सहचरी (दासी) चण्ड के विरुद्ध उसे भड़काने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह सुन्दरी थी। उसका नाम बिजरी था। सचमुच नाटककार ने बिजली के सदृश्य इस काल्पनिक चरित्र की अवतारणा की है। बिजरी चण्ड के छोटे भाई रघुदेवजी के प्रति अनुरक्त थी। रघुदेवजी वीतरागी, अनासक्त संन्यासी था। बिजरी की मनोकामना थी कि वह रघुदेवजी के साथ विवाह कर मेवाड़ की रानी बने। कदाचित वह भी गुंजमाला के साथ मिलकर चण्ड को निर्वासित करने के षड्यन्त्र में लिप्त थी।

चण्ड पूर्ण राजभक्ति के साथ मुकुल को छोटे भाई का स्नेह देता और राज्योचित सम्मान देकर राज-काज कुशलता से चलाता था। मुकुल को बचपन से ही देश के शत्रुओं से युद्ध करने की प्रेरणा देता था। उसे युद्ध-विद्या और घुड़सवारी सिखाना चाहता था। मुकुल भी धात्री कुशला और चण्ड के प्रति विशेष प्रेम करता था। एक दिन घुड़सवारी के लिए चण्ड ने एक टट्टू (छोटा घोड़ा) मंगाया। इससे गुँजमाला के मन में सन्देह पैदा हुआ। उसने समझा चण्ड मुकुल को घुड़सवारी के बहाने मार डालना चाहता है। उसने बिजरी से मंत्रणा कर अपने पिता रणमल को चित्तौड़ आने का समाचार भेज दिया। साथ ही भरी सभा में चण्ड पर अभियोग लगा कर उसे निर्वासित कर दिया।

चण्ड का निर्वासन

नाटककार ने चण्ड के चित्तौड़ से विदा होने का बड़ा कारुणिक प्रसंग नाटक में दिखाया है। आत्मत्यागी, वीर और प्रजापालक चण्ड के प्रति लगाये गए अभियोग से लोग अपार दुःखी होते हैं और अनुताप करते हैं। इस दृश्य में जहाँ एक तरफ गुंजमाला को केकैयी के रूप में और बिजरी को मंथरा के रूप में दिखाया गया है, वहीं चण्ड के चित्तौड़ के परित्याग को राम-वन-गमन के रूप में दिखाया गया है। यह नाटककार की अपनी सूझ है। इसी प्रकार धात्री कुशला पर धात्री पन्ना की प्रतिछाया झलकती है। जैसे पन्ना ने उदय सिंह की, पुत्र का बलिदान देकर, जीवन रक्षा की, कुशला भी तदनुरूप मुकुल के लिए प्राणोत्सर्ग कर शिशोदिया वंश की रक्षा करना चाहती थी। कुशला का पुत्र शिखण्डी भी राजभक्ति के नशे में आकण्ठ डूबा हुआ था। वह रणमल के षड्यन्त्र का घोर विरोध करता है और अत्याचारी रणमल के खिलाफ विद्रोह की घोषणा करता है। इन घटनाओं और पात्रों में गिरीशचन्द्र की मौलिक प्रतिभा का दर्शन होता है।

गुंजमाला के बुलाने पर उसका पिता रणमल अपने पुत्र जोधराज (जिसने बाद में जोधपुर बसाया था) को तथा अपने विश्वासी सरदार खण्डाधारी को साथ लेकर चित्तौड़ आता है। वह अपनी कुटिलता से चित्तौड़ पर अधिकार कर मुकुल की हत्या करना चाहता है। रणमल कामुक और अत्याचारी है। बिजरी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर वह अपनी काम वासना तृप्त करना चाहता है और बिजरी के, रघुदेवजी के प्रति प्रेम को कुशलता से काम में लगाकर रघुदेवजी की हत्या कराता है। इस हत्याकाण्ड में तथा बिजरी को रणमल की अंकशायिनी बनाने में खण्डाधारी की दुष्टतापूर्ण भूमिका रहती है।

चण्ड का प्रत्यावर्तन

रघुदेवजी की हत्या से चित्तौड़ की प्रजा का क्रोध रणमल के विरुद्ध भड़क उठता है। बिजरी भी प्रतिशोध की ज्वाला में जलने लगती है। जब गुंजमाला को पता चलता है कि रणमल मुकुल की हत्या करके मेवाड़ का निष्कंटक अधिपति बनना चाहता है तब उसकी आँखें खुलती हैं और इस कार्य में धात्री कुशला अपनी राजभक्ति और देश-प्रेम का उदाहरण रखती है। अन्ततः चण्ड को रक्षा के लिए निमन्त्रित किया जाता है। चण्ड अपने भील सैनिकों के साथ चित्तोड़ आकर राठौरों को मार भगाता है और रणमल की इस आक्रमण में हत्या होती हैं। इस प्रसंग को नाटककार ने बड़ी कुशलता और नाटकीयता से परिपूर्ण किया है। गुँजमाला देवताओं की पूजा और प्रसाद चढ़ाने के उद्देश्य से देव-मन्दिरों में जाती है और इन्हीं देव-मन्दिरों में चण्ड के मिलने की सूचना मिलती है। अन्त में अमावस्या को रात में चित्तौड़ पर चण्ड की भील सेना का आक्रमण होता है। चित्तोड़गढ़ पूर्णतः चण्ड के कब्जे में आ जाता है। रणमल उस समय अपनी पुत्री गुँजमाला की दासी (बिजरी) को जबरन कमरे में लेकर नशे में बेसुध पड़ा था। बिजरी ने उस कामातुर रणमल को उसी की पगड़ी से उसी के पलंग में बाँध दिया था। तभी चण्ड के सैनिकों ने रणमल के कक्ष मं नंगी तलवारें लेकर प्रवेश किया। रणमल का नशा सैनिकों को अर्थात् अपनी मौत को सामने देखकर उतर गया। पलग से बँधा होने पर वह विवश था, फिर भी उसने पलंग सहित अपने को खड़ा किया और पास में पड़े एक पीतल के पान-पात्र से सैनिकों पर आक्रमण करने चला, पर अन्त में धराशायी होकर मर गया। उसके पाप का प्रायश्चित उसे मिल गया।

राजपूताने का भीष्म के नाम से जाना जाने वाला चण्ड अपने कर्त्तव्य से उदासीन नहीं था। चित्तोड़ त्याग के समय उसने यह कह दिया था कि जरूरत पड़ने पर वह मातृभूमि की रक्षा के लिए उपस्थित होगा। उसने समय आने पर अपने वचन का पालन किया और कर्त्तव्य पूरा किया। चित्तौड त्याग के समय चण्ड अपने साथ दो सौ अहरियों को साथ ले गया था, जो उसके जीवन-मरण के साथी थे। इन अहरियो के परिवार चित्तोड़ में ही थे। इसलिए चण्ड को रणमल की सूचनाएँ मिलती रहती थीं।

देवतुल्य रघुदेव

रणमल द्वारा कुटिलता से सम्पूर्ण मेवाड़ राज्य को अपने कब्जे में करने की बात का उल्लेख 'राजस्थान' ग्रन्थ में है। उसने रघुदेवजी की हत्या कराई इसका भी उल्लेख है, पर रघुदेवजी ने क्यों संन्यास लिया तथा ईश्वराधना में क्यों लीन रहते थे, इसका कोई उल्लेख ग्रन्थकार नें नहीं दिया है। ग्रन्थ में उल्लेख है कि रणमल ने रघुदेवजी के लिए सम्मानसूचक पहरावा (पोशाक) भेजो। चूँकि राजपूत सम्मान से भेजे गए पहरावे को पहन लिया करते हैं और भेजने वाले के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। इसलिए

ज्योंही रघुदेवजी ने पहरावे को धारण किया कि रणमल के एक गुप्तचर ने पीछे से छुरा मार कर उनकी हत्या कर दी। रघुदेवजी की हत्या से मेवाड़वासी बड़े दुःखी हुए और रणमल की भर्त्सना करने लगे। लोग रघुदेवजी को देवतातुल्य मानते थे। मृत्यु के बाद रघुदेव देव-सम्मान को पाकर 'पितृ देवताओं' में गिने जाने लगे। तबसे मेवाड़ के नागरिक अपने घरों में उनकी मूर्ति स्थापन कर भक्ति श्रद्धा से पूजा करते हैं।

"The queen-mother found herself without remedy, and a remonstrance to her father produced a hint which threatend the existence of her offspring. Her fears were soon after augmented by the assassination of Raghoodeva, the second brother of Chonda, whose estates were Kailwarra and Kowaria. To the former place, where he resided aloof from the court, Rao Rinmul! sent a dress of honour, which etiquette requiring him to put on when presented the prince was assassinated in the act.

Raghoodeva was so much beloved for his virtues, courage, and manly beauty, that his murder became martyrdom, and obtained for him divine honours, and a place amongst the Pitri-deva of Mewar, His image is on every hearth, and is daily worshipped with the Penates. Twice in the year his altars receive public homage from every Sesodia, from Rana to the serf" (Ibid, Page 225)

'चण्ड' : एक सशक्त रचना

इस प्रकार गिरीशचन्द्र ने 'चण्ड' नाटक की रचना ऐतिहासिक उपकरणों को लेकर की। इसमें उन्हें पूरी सफलता मिली। माइकेल की भांति आपने भी अमिताक्षर छन्द में नाटक लिखा। यह छन्द वीर-रस के परिपाक के लिए उत्तम समझा जाता है। वैसे नाटककार ने पद्य के साथ गद्य का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। चण्ड के आक्रमण का उत्तेजनापूर्ण दृश्य जिस वीरोत्तेजक वातावरण में प्रस्तुत किया है, ऐसा बंगला के नाटकों में कम देखा जाता है। वैसे नाटक में रघुदेवजी का सामान्य वर्णन है, किन्तु हत्या के बाद उनकी आत्मा नाटक में केन्द्रीय प्रेरणा का कार्य करती है। जैसे शेक्सपीयर के नाटक 'जूलियस सीज़र' में सीजर की मृत्यु के बाद उसकी आत्मा प्रकाश हो जाती है, वैसे ही रघुदेवजी की मृत आत्मा नाटक के सभी चरित्रों को अनुप्रेरित करती है। कुछ आलोचकों का मत है कि गुंजमाला और चण्ड के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर नाटककार एक त्रासदी की सृष्टि कर सकता था। क्योंकि जिस राजकुमार चण्ड के साथ उसका विवाह होने की बात थी, उसमें बाधा आ.

गई और घटना-चक्र से गुँजमाला को चण्ड की पत्नी न बनकर विमाता बनना पड़ा। वृद्ध राणा की रानी बनकर वह चित्तौड़ आई। स्वाभाविक है कि चण्ड को पास में पाकर उसके मन में स्त्रियोचित ईर्ष्या जगी और उसने चण्ड पर मिथ्या दोषारोपण करके निर्वासित कर दिया। जब रणमल ने चण्ड की हत्या करने के लिए अपने गुप्तचरों को भेजा तो गुंजमाला ने इस हत्या-काण्ड में बाधा डाली। यह एक आदर्श की बात थी, पर नाटककार ने इसके बाद कहानी को द्वन्द्व की ओर न मोड़कर आदर्श की ओर उन्मुख कर दिया। अस्तु, जो भी हो गिरीशचन्द्र की 'चण्ड' नाट्यकृति एक सशक्त रचना है और दर्शकों ने इसे भरपूर सराहा है।

आकर्षण के केन्द्र : राणा प्रताप

टॉड के 'राजस्थान' से उपकरण लेकर बंगला-साहित्य में जितने ग्रन्थ लिखे गए उनमें सबसे अधिक आकर्षण का चरित्र राणा प्रताप रहा है। राजपूत जाति के इतिहास में राणा प्रताप के समान वीर, कष्ट-सहिष्णु, दृढ़-प्रतिज्ञ, आत्मत्यागी का मिलना दुष्कर है। यह एक ऐसे स्वतंत्रता के पुजारी का चरित्र है जो दीपक लेकर खोजने पर भी विश्व-इतिहास में विरल है। स्वाभाविक है कि ऐसे राणा प्रताप के महान त्याग की कहानी को लेकर गिरीशचन्द्र ने १३१० बंगाब्द (१९०४ ई०) में 'राणा प्रताप' नाटक लिखने का संकल्प किया, लेकिन द्वितीय अंक के दो दृश्यों को लिखने के बाद वे इससे विरत हो गए और 'सिराजुद्दौला' नाटक लिखने लगे। असल में 'आनन्द रहो' नाटक की रचना करते समय ही उन्होंने निश्चय किया था कि वे राणा प्रताप पर एक पूर्णाङ्ग नाटक लिखेंगे। राणा प्रताप पर एक पूर्णाङ्ग नाटक लिखने की उनकी योजना थी, पर जब १९०५ ई० में द्विजेन्द्रलाल राय का 'प्रताप सिंह' नाटक प्रकाश में आ गया तो उन्होंने अपने 'राणा प्रताप' नाटक को अपूर्ण ही छोड़ दिया। उनका यह अधूरा नाटक 'राणा प्रताप' 'अर्चना' नामक मासिक पत्रिका में १३१४ बंगाब्द (१९०८ ई०) में प्रकाशित हुआ था।

हिन्दी में राणा प्रताप पर प्रथम नाटक

वस्तुत: बंगला भाषा में ही नहीं अपितु हिन्दी भाषा में भी राणा प्रताप का उदात्त चरित्र स्वतन्त्रता का पर्याय बन गया। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बंगला के साहित्यकारों ने राणा प्रताप के जीवन-चरित्र को लेकर नाटक लिखे

उसके पूर्व ही हिन्दी में राणा प्रताप पर एक नाटक रचित हो गया था। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के आरम्भ के समय को अर्थात् १८५० ई० से १९०० ई० तक के काल-खण्ड को भारतेन्दु-युग के नाम से जाना जाता है और उसके बाद द्विवेदी-युग आरम्भ होता है। भारतेन्दु ने हिन्दी में स्वयं नाटकों का प्रणयन किया तथा उन्होंने नाटककारों की एक गोष्ठी तैयार की, जिन्होंने नाटक लिखे। श्री बड़ाबाजार कुमार सभा पुस्तकालय द्वारा १९७६ ई० में प्रकाशित "हल्दीघाटी चतु:शती स्मारिका" के पृष्ठ ९६ पर प्रो० विष्णुकान्त शास्त्री ने अपने निबन्ध "आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि में महाराणा प्रताप" में लिखा है—"दिवंगत भारतेन्दु के दिए निर्देश के अनुसार ही उनके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्णदास ने १८९७ ई० में "महाराणा प्रताप सिंह" या "राजस्थान केसरी' नाटक की रचना की थी। इसकी प्रमुख घटनाएँ टॉड के 'राजस्थान' के अनुसार ही हैं, जिनमें कई की अनैतिहासिकता को बाद में नाटककार ने स्वीकार किया था, किन्तु यह गौण बात है, मुख्य तो है इसकी आश्चर्यजनक रूप से विकसित साहसपूर्ण राजनीतिक दृष्टि।"

इस नाटक की प्रस्तावना के परिपार्श्व में कहलवाया गया है—श्री राधाकृष्ण दास ने 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा है, उसको खेलो। वह समयानुकूल है क्योंकि एक तो वीर केसरी प्रातः स्मरणीय प्रताप सिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत् प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व वर्णन सभी को अच्छा लगेगा और अकबर के काल से अंग्रेजी काल में बहुत बातों में समानता भी है।" ('राधाकृष्ण ग्रन्थावली', पहला खण्ड, पृ० ६७०)

पृथ्वीराज का पत्र पाकर अपनी क्षणिक दुर्बलता को धिक्कारते हुए 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक में महाराणा कहते हैं—

पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग मांही।
को पहिरै दासत्व शृंखला निज पग मांही॥
इक दिन की दासता अहै शतकोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहुँते उत्तम॥

राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप' नाटक की हिन्दी-जगत में धूम मच गई और इसका बार-बार मचन हुआ। आलोचकों द्वारा इसे भारतेन्दु-युग का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना गया। राजस्थान की वीरांगना पद्मिनी के जौहर व्रत का उल्लेख कर देश

की नारी जाति में उत्साह-उद्दीपन भरने के लिए बाबू राधाकृष्णदास ने 'महाराणा प्रताप' या 'राजस्थान केसरी' की ख्याति के बाद 'महारानी पद्मावती' अथवा 'मेवाड़ कमलिनी' नाटक लिखा। इसमें अलाउद्दीन की चित्तौड़ की चढ़ाई का तथा गोरा-बादल की वीरता का वर्णन है। राधाकृष्णदास के 'महाराणा प्रताप सिंह' अथवा 'राजस्थान केसरी' नाटक पर हमने आगे के पृष्ठों में विस्तार से चर्चा की है।

राणा प्रताप की कथा

गिरीशचन्द्र ने 'राणा प्रताप' की कथा-वस्तु टॉड के 'राजस्थान' से ली है और उसके दो अंकों से उसकी सार्थकता प्रमाणित होती है।

नाटककार ने 'राणा प्रताप' नाटक के प्रथम अंक, द्वितीय दृश्य में राणा प्रताप की व्यथा का इन शब्दों मे वर्णन किया है—

महायुद्धे अवशिष्ट मुष्टिमेय सेना,
राज्य छिन्न-भिन्न, अर्थशून्य धनागार,
आत्मीय-स्वजन तुर्की-अर्थे प्रलोभित—
करियाछे तुर्कीर दासत्व स्वीकार !
केह भग्नीदाने—तनया प्रदाने केह—
हइयाछे आकबरेर प्रासाद भाजन !
राजस्थाने राजपूत अराति,
एकमात्र मिवारेर वीरत्व सम्बल—

('गिरीश रचनावली'—चतुर्थ खण्ड, 'राणा प्रताप' नाटक, प्र० अंक, द्वि० दृश्य, पृ० ३७४)

हल्दीघाटी के युद्ध में मेवाड़ की बड़ी सेना के वीर मातृभूमि पर बलिदान हो गए, अर्थ-संकट भी था। राणा के भाई जगमल और शक्ति सिंह अकबर के प्रलोभन में आ गए थे। राजपूत यवनों को अपनी बहन और बेटी दे रहे थे और अकबर के दरबार में राजपूत उसकी विरुदावली का कीर्तन कर रहे थे। यह बात राणा प्रताप को कचोट रही थी। मारवाड़, आमेर, बीकानेर, बूँदी आदि राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

एकमात्र मिबार व्यतीत—
स्वाधीनता-ध्वजा अवनत राजस्थाने। (वही, पृ० ३७४)

प्रताप की प्रतिज्ञा

अकबर के शासन-काल में एकमात्र मेवाड़ ही आजादी की ध्वज-पताका

को स्वाधीन भाव से फहरा रहा था और देश की आजादी का शंख फूँक रहा था। आजादी की रक्षा के लिए राणा प्रताप को कठोर व्रत की प्रतिज्ञा करनी पड़ी, राजसुख छोड़ना पड़ा और अरावली की वनस्थली में परिवार को भूखा रखकर स्वाधीनता का अलख जगाना पड़ा। अरावली का प्रत्येक पत्थर राणा के इस त्याग, वीरता और स्वाधीनता-युद्ध का यशोगान करता है। राणा ने खुद कठोर प्रतिज्ञा की और राजपूत सरदारों से कराई। इसका सजीव चित्रण गिरीशचन्द्र ने 'राणा प्रताप' नाटक के इसी दृश्य में इस प्रकार किया है—

महाव्रते व्रती उहे वीरेन्द्र समाज,
महाव्रत उपयोगी नियम पालन,
अद्य होते कर्तव्य सबार।
हे सरदार निचय,
चितोर वैधव्यगान शुनियाछो भट्ट-मुखे सबे,
विधवा चित्तौर—
तबे केन शोक-चिन्ह ना करि धारण।
यतदिन चित्तौर ना हइबे उद्धार,
मम पण-श्मश्रुजटा करिबो धारण,
अट्टालिका-माझे—
स्थान नाहि आर शोकार्त राणार,
वासयोग्य पल्लव-कुटीर,
शोकातेर कांचन ना होय सुशोभन,
तृण सिंहासन, तृण शय्या,
भोज्य-पात्र—वृक्षपत्र आजि हते,
अग्निवत अन्य धातु स्पर्श करि ज्ञान,
लौह स्पर्शे रबो निशिदिन
लोह संस्पर्श अशुचिर विधि
विलास-वर्ज्जन महाव्रत ग्रहणेर प्रथम नियम।
सकले—जय जय महाराणा प्रतापेर जय!

(वही, पृ० ३७५)

टॉड का वर्णन इस कथन और महाव्रत का पूर्ण समर्थन करता है—

"To commemorate the desolation of Cheetore, which the bardic historian represents as a 'widow' despoiled of the ornaments to her loveliness, Pertap interdicted to himself and his successors every article of luxury or pomp, untill the insignia of her glory should be redeemed. The gold and silver dishes were laid aside for Pateras of leaves; their beds hensforth of straw and their beards left untouched. But in order more distinctly to mark their fallen fortune and stimulate to its recovery, he commanded that the martial Nakaras, which always sounded in the van of battle or processions, should follow in the rear." (Ibid—Page 265)

भाट और चारण ग्रन्थों से अपने पितृ-पुरुषों की यशोगाथा सुनकर राणा प्रताप के मन में देश-प्रेम और देश-स्वातन्त्र्य की भावना जगी थी। उन्होंने पच्चीस वर्षों तक अरावली की पहाड़ियों में स्वतन्त्रता का संग्राम किया और संन्यासी का सा जीवन बिताया। टॉड ने लिखा है महाराणा प्रताप के लोक-विस्मयकारी वीरत्व और शौर्य का ज्वलन्त निदर्शन आजतक मेवाड़ की प्रत्येक उपत्यका में प्रकाशमान होकर विराजमान है। चित्तौड़ नगरी की जो सुन्दरता थी और जो शोभा थी, वह अकबर की क्रोधाग्नि में भस्म हो गई थी। चित्तौड़ की ऐसी दीन दशा देखकर महाकविगणों ने उसको 'बसन-भूषणहीन विधवा' के नाम से पुकारना शुरू किया था। जिस प्रकार माता के परलोक गमन करने पर पुत्रगण अपना सुख-चैन त्याग देते हैं, वैसे ही स्वदेश-भक्त राणा ने जननी-जन्मभूमि की पराधीनता के शोक में भोग-विलास की वस्तुओं का त्याग कर दिया था। चित्तौड़ की वर्तमान दुर्दशा होने के पूर्व राणाकुल का रणदमामा सेना के सामने बजता था, परन्तु प्रताप ने आज्ञा दी कि अब वह सेना के पीछे बजाया जायगा। इसी दमामे की बात को गिरीशचन्द्र ने अपने नाटक में इस प्रकार कहा है—

> शत्रु-हस्ते विजित चित्तौर—
> अनुकूल जयलक्ष्मी नहे जतदिन,
> अग्रगामी नाहि हय संग्राम-दामामा,
> दामामा विलाप-नाद करिबे पश्चाते। (वही, पृष्ठ ३७५)

अपूर्णता में पूर्णता

इस तरह गिरीशचन्द्र के अपूर्ण नाटक 'राणा प्रताप' से भी पूर्णता का आनन्द पाठकों को मिलता है। नाटककार ने नाटक में गद्य-पद्य दोनों का मणिकांचन प्रयोग किया है। 'चण्ड' नाटक की भाँति उन्होंने इस नाटक में भी अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग

किया है। नाटक में राणा के राज्यारोहण और मानसिंह के राणा से विरोध का वर्णन भी मिलता है। चूंकि मानसिंह ने अपनी बुआ का विवाह अकबर के साथ किया था। इसलिए राणा ने मानसिंह के साथ भोजन नहीं किया। मानसिंह असन्तुष्ट होकर लौट जाता है और अकबर से परामर्श कर प्रताप पर आक्रमण करता है। यह युद्ध हल्दीघाटी में हुआ था और अकबर के पुत्र सलीम ने सेना का संचालन किया था। ये सारी बातें टॉड के वर्णन के अनुसार नाटक में देखने को मिलती हैं।

बंगभंग-आन्दोलन की भूमिका

१८५७ के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम से ही अंग्रेज-सरकार चौकन्नी थी। लेकिन १८५७ के विद्रोह के बाद से तथा १८८५ ई० में राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना से देश-वासियों में राष्ट्रीयता की भावना शनैः शनैः प्रबल होती जा रही थी। साम्राज्यवादी अंग्रेज देशवासियों में साम्प्रदायिकता के विष को फैला रहे थे। अंग्रेजों की नीति रही है—"फूट डालो और शासन करो।" इसीलिए उन्होंने काँग्रेस के विरुद्ध सर सैयद महमूद को खड़ा किया और हिन्दू-मुसलमानों में विभेद पैदा करने की कोशिश की। चूंकि बंगाल में राष्ट्रीय भावनाएँ जोर पकड़ रही थीं और अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्तिकारी सक्रिय हो रहे थे। इससे बंगाल के विभाजन की योजना अंग्रेज सरकार ने बनाई। उन दिनों लार्ड कर्जन देश के बडे लाट थे। कर्जन कूटनीति का पण्डित था। उस समय बंगाल, बिहार और उड़ीसा एक ही प्रान्त थे। कर्जन ने प्रशासन की सुविधा का बहाना लेकर बंगाल को विभाजित करने का मनसूबा बनाया। असल में वह बंगाल के हिन्दुओं को पूर्वी बंगाल के मुसलमानों से अलग करना चाहता था, जिससे बगाल के राष्ट्रीय मोर्चे में दरार पड़ जाय।

लार्ड कर्जन ने गुप्त रूप से बंगाल के बंटवारे की चेष्टा की। लेकिन जुलाई १९०५ ई० में उसका यह षडयंत्र जाहिर हो गया। बंगाल के राष्ट्रीय नेता इस विभाजन का प्रबल विरोध करने पर उतारू हो गये। बंगाल के साहित्यकार और मनीषी जनता को संगठित करने और देशभक्ति की भावना को भरने में लगे हुए थे। १९०५ ई० में जब जापान ने रूस को पराजित किया तो इससे भारत के लोगों में उत्साह की लहर व्याप गई। छोटे से जापान ने रूस के बड़े साम्राज्य को हरा दिया, यह मामूली बात नहीं थी। जापान की इस विजय ने भारत के लोगों का मनोबल बढ़ा दिया और लोग अंग्रेजों को देश से निकालने और आजादी प्राप्त करने के लिए दूने जोश से प्रेरित हो गए। बंगाल की जनता ने कर्जन की योजना को विफल बनाने के लिए तैयारियाँ शुरू कर दीं। बंगाल के साहित्यकारों ने नारा दिया—बंगाल का विभाजन—'भारतमाता का विभाजन है, मातृभूमि का विभाजन है।' दूसरी ओर लार्ड कर्जन बंगाल-विभाजन पर दृढ़ था। इस कशमकश से देश में स्वदेशी की भावना बढ़ी

और देश-प्रेम के प्रति लोग जागरूक हुए। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार शुरू हो गया और लोग स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने लगे। यह अंग्रेज-सरकार के विरुद्ध आर्थिक मोर्चे की लड़ाई थी। छात्रों और युवकों में देशभक्ति की भावना प्रबल थी। ७ अगस्त, १६०५ ई० को कलकत्ता के टाउन हाल में कासिमबाजार राज्य के महाराजा मणीन्द्र चन्द्र नन्दी की अध्यक्षता में विभाजन के विरुद्ध एक बड़ी सभा हुई और वक्ताओं ने कर्जन के इस षड्यन्त्र के खिलाफ आवाज बुलन्द की। १६ अक्टूबर, १६०५ को बंगाल का विभाजन सरकारी तौर पर होने को था। उल्लेखनीय है कि कासिमबाजार राज्य के महाराजा मणीन्द्र चन्द्र की स्मृति में हमारे कॉलेज महाराजा मणीन्द्र चन्द्र कॉलेज की स्थापना १६४० ई० में कलकत्ता में हुई।

हड़ताल, जुलूस, सभाएँ

१६ अक्टूबर १६०५ ई० को बंगाल में अभूतपूर्व आन्दोलन हुआ और बंगभंग का कड़ा विरोध किया गया। इस दिन बंगाल के किसी घर में चूल्हा नहीं जला— 'अरंधन व्रत' अर्थात भोजन न बनाकर उपवास का दिन पालित हुआ। बंगाल की महिलाओं ने उस दिन बंग-लक्ष्मी-व्रत का पालन किया और काँच की चूड़ियों के स्थान पर स्वदेशी शंख की चूड़ियाँ धारण करने का व्रत लिया। सम्पूर्ण प्रान्त में अभूतपूर्व हड़ताल हुई। राष्ट्रीय गीत गाये गए। राष्ट्र-कवि रवीन्द्रनाथ के नेतृत्व में कलकत्ता के बाघबाजार से एक विशाल जुलूस निकला। इस प्रतिवाद जुलूस में हिन्दू-मुसलमान अर्थात् सभी जाति और भाषाओं के लोग बड़ी संख्या में थे। जुलूस में लोग झण्डा और तख्तियाँ लिए हुए थे—जिन पर लिखा था "एक देश, एक भगवान, एक जाति, एक प्राण।" कवि रवीन्द्र नंगे पाँव जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जुलूस की अपार भीड़ अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज लगा रही थी। कवि रवीन्द्र अपना स्वरचित गीत जुलूस के आगे-आगे गा रहे थे—

बांग्लार माटि, बांग्लार जल
बांग्लार वायु, बांग्लार फल,
पुण्य होऊक, पुण्य होऊक, पुण्य होऊक हे भगवान।
एक होऊक, एक होऊक, एक होऊक हे भगवान....

(यह गीत रवीन्द्र-रचनावली के 'गीत-वितान' के 'पूजा और स्वदेश' खण्ड में है, जिसका प्रकाशन विश्वभारती से माघ १३४८ बंगाब्द में अर्थात् १९४३ ई० में हुआ है ।)

रक्षा-बंधन का पालन

विशाल जुलूस बाघबाजार से जगन्नाथ घाट पर आया और सभी ने भागीरथी गंगा में स्नान किया तथा रक्षा-बन्धन (राखी) के त्यौहार का पालन किया। हिन्दू और मुसलमानों ने एक-दूसरे को राखी बाँधी और भाईचारे का प्रदर्शन किया। चितपुर रोड स्थित बड़ी मस्जिद में रवीन्द्रनाथ के नेतृत्व में जुलूस गया और वहाँ पर हिन्दू-मुसलमानों ने एक दूसरे को राखी बाँधी। सायंकाल उसी दिन सर्कुलर रोड पर 'मिलन-मन्दिर' का शिलान्यास किया गया। मृत्यु-शैया पर सोये जननेता आनन्द मोहन बसु ने रुग्णावस्था में सभा की अध्यक्षता की। श्री आनन्द मोहन बसु के लिखित भाषण को श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने पढ़कर सुनाया। हिन्दू और मुसलमानों ने स्वदेशी वस्त्रों के पहनने की शपथ ली तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने के लिए विदेशी वस्त्रों की होली जलाई।

इस प्रकार लार्ड कर्जन की बंगभंग की नीति का जबरदस्त प्रतिकार हुआ। बंगभंग के आन्दोलन से देश में स्वदेशी की भावना का प्रबल प्रचार हुआ और लोग भारतमाता की मुक्ति के लिए कटिबद्ध हुए। स्वातन्त्र-संग्राम के इतिहास में 'बंगभंग आन्दोलन" का महत्वपूर्ण स्थान है।

डॉ० किरणचन्द्र चौधरी ने 'हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया' पुस्तक के पृष्ठ ३५७ पर बंगभंग-आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखा है—

The students community played a very important role in the Swadeshi movement. They collected England made cloth and made bon-fire of them. They picketted the shops so that they might not sell English made cloth or articles. The anti-partition movement developed a deep sense of nationalism among the Indians in general and the Bengalees in particular. (History of Modern India, By Dr. K. C. Chaudhuri, 1983, Page 357).

साहित्यकारों की सक्रिय भूमिका

बंगभंग आन्दोलन में रवीन्द्रनाथ टैगोर, रजनीकान्त सेन, द्विजेन्द्रलाल राय, रंगलाल बन्दोपाध्याय, हेमचन्द्र बन्दोपाध्याय ने राष्ट्रीय गीतों का प्रणयन किया और देशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना भरी। रवीन्द्र ने लिखा—"मायेर देया कापड़ माथाय तूलेने रे भाई" अर्थात् मातृभूमि का मोटा कपड़ा भाई अपने माथे पर लगा लो। मुकुन्ददास ने जो गीत लिखा उसके बोल हैं—'छेड़े दाओ रेशमी

चूड़ी बंगनारी कभू हाथे आर पोरो ना....।' अर्थात् बंगाल की नारियो रेशमी चूड़ी याने काँच की चूड़ी छोड़ दो और उसे पुनः कभी मत धारण करो। राष्ट्रगुरु सुरेन्द्रनाथ और विपिनचन्द्र पाल ने बंगभंग के राष्ट्रीय आन्दोलन को राजनीति के दर-वाजे पर पहुँचा कर स्वातंत्र-संग्राम को आगे बढ़ाया।

'भारत-मित्र' में बालमुकुन्द गुप्त

इस समय कलकत्ता से हिन्दी पत्रों में राष्ट्रीय भावनाएँ भरी जा रही थीं। प्रखर पत्रकार बालमुकुन्द गुप्त 'भारत-मित्र' में लार्ड कर्जन पर अपने व्यग्य लेखों में कटाक्ष कर रहे थे और राष्ट्रीय भावनाओं को भर रहे थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त का 'शिव-शम्भु का चिट्ठा' हिन्दी में काफी चर्चित है। गुप्त जी 'भारत-मित्र' के सम्पादक थे। २१ अक्टूबर १६०५ ई० को 'भारत-मित्र' में 'बंगभंग विच्छेद' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें लार्ड कर्जन को सम्बोधित कर लिखा गया है—'आपके शासन काल में बंग-विच्छेद इस देश के लिए अन्तिम विषाद और आपके लिए अन्तिम हर्ष है।....यह बंग-विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं देश-विच्छेद है। बग निवासी इससे विछिन्न नहीं हुए, वरंच और युक्त हो गए। जिन्होंने गत १६ अक्टूबर के दिन का दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंग-देश या भारतवर्ष में नहीं, पृथ्वी भर में वह अपूर्व दृश्य था। आर्य सन्तान उस दिन अपने प्राचीन देश में, विचरण करती थी। बंगभूमि ऋषि-मुनियों के समय की आर्य्य-भूमि बनी हुई थी। किसी अपूर्व शक्ति ने उसको उस दिन एक राखी से बाँध दिया था। बहुत काल के पश्चात् भारत सन्तान को होश हुआ कि भारत की मिट्टी वंदना के योग्य है। इसी से वह एक स्वर से 'बन्दे मातरम्' कह कर चिल्ला उठी। बंगाल के टुकड़े नहीं हुए, वरंच भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंग देश से आकर चिमटे जाते हैं।' इस टिप्पणी का उपसंहार करते हुए सम्पादक ने घोषणा की थी कि 'भारतवासियों के जी में यह बात जम गई कि अंग्रेजों से भक्तिभाव करना वृथा है, प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बल की वह नहीं सुनते।'

साहित्यकार डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने शोध-प्रबन्ध 'हिन्दी-पत्रकारिता' में स्वदेशी आन्दोलन और श्री बालमुकुन्द गुप्त के साहित्यिक कार्यों का उल्लेख किया है। डॉ० मिश्र के 'हिन्दी-पत्रकारिता' ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली से १६८५ ई० में प्रकाशित हुआ है। डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र ने ग्रन्थ के पृ० २६३ पर

लिखा है—"भारतमित्र में प्रकाशित शिवशम्भु के चिट्ठे और शाइस्ता खाँ के खत जैसी ही चर्चा गुप्त जी द्वारा लिखित और भारतमित्र में प्रकाशित 'टेसू' की भी होती थी।"

'भारतमित्र' में गुप्तजी की स्वदेशी आन्दोलन शीर्षक कविता प्रकाशित हुई जो इस प्रकार है—

"देख देश को अपने ख्वार, बंगनिवासी उठे पुकार।
आंगन में दीवार बनाई, अलग किये भाई से भाई।
भाई से किये भाई दूर, बिना विचारे बिना कसूर।
आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें।
चाहे बंग हो सौ भाग, पर न छूटे अपना अनुराग।
भोग विलास सभी को छोड़, बाबूपन से मुँह लो मोड़।
छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो खयाल।
अपनी चीजें आप बनाओ, उनसे अपना अंग सजाओ।
भजो बंग माता का नाम, जिससे भला होय अंजाम॥

('हिन्दी पत्रकारिता', पृ० २६५)

भगिनी निवेदिता ने अपनी पुस्तक 'श्री राणा प्रताप सिंह' के पृष्ठ ११८ पर लिखा है—"इतिहासकारों की राय में लार्ड कर्जन के शासनकाल में कोई भी कार्य इतना अप्रिय सिद्ध नहीं हुआ जितना बंगाल का विभाजन। विभाजन का षड्यन्त्र तो वास्तव में १९वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में आरम्भ हो गया था। लालफीताशाही के कारण, जिसकी चर्चा स्वयं लार्ड कर्जन ने की है, पूरी योजना सन् १९०३ ई० के मध्य तक उसके पास पहुँची। कर्जन ने ३ दिसम्बर, १९०३ ई० को यह घोषणा की कि बंगाल प्रान्त का बंटवारा किया जाय।"

१९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भयंकर दुर्भिक्ष देश में पड़ा था और इसी समय दिल्ली दरबार लगा था। यह अंग्रेजों की अमानवीय दृष्टि का बड़ा उदाहरण है। श्री योगेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय ने 'स्वदेशी आन्दोलन और बांग्ला साहित्य' पुस्तक के पृष्ठ १९ पर लिखा है—"दुर्भिक्ष पीड़ित देश को अपनी हालत पर छोड़कर सन् १९०३ ई० में दिल्ली दरबार लगा और ३ दिसम्बर को 'कैलकटा गजट' में बंग-भंग का सरकारी प्रस्ताव पास हुआ। ..."

स्वदेशी आन्दोलन की व्यापकता

हिन्दी-बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने 'वन्दे-मातरम का

इतिहास' पुस्तक में 'बंग-भंग आन्दोलन' पर विस्तार से चर्चा की है। आपकी यह शोध-कृति १९७९ ई० में सरस्वती विहार, दिल्ली से प्रकाशित हुई है, जिसमें आपने 'बन्दे-मातरम' की रचना का पूरा इतिहास लिपिबद्ध किया है। बंकिम का यह गीत उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'आनन्दमठ' का राष्ट्रीय गीत है।

श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने 'बन्दे-मातरम का इतिहास' पुस्तक के पृष्ठ ७५ पर लिखा है कि "बंग-भंग आन्दोलन के कारण स्वदेशी की भावना लोगों में फैलने लगी। विलायती कपड़ों का मोह छोड़ कर 'माँ के दिए वस्त्र' महिलाएँ तक अपनाने लगीं। घर में नित्य प्रयोग में आनेवाली विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया। अधिकांश घरों में चरखे पर महिलाएँ धागा तैयार करने लगीं। उन धागों से बने कपड़े पुरुष और महिलाएँ पहनने लगीं। स्वदेशी वस्तुओं की दुकानें सभी जगह खुल गईं।"

आपने आगे पृष्ठ ७६ पर उस गीत का उल्लेख किया है, जिसे महिलाएँ चरखा कातती हुई गाती थीं—

चरका आमार भातार-पूत
चरका आमार नाति
चरकार दौलते आमार
दुआरे बांधी हाथी।

अर्थात्—चरखा मेरा पति, पुत्र है, चरखा मेरा नाती-पौत्र है। चरखे की बदौलत मैं अपने दरवाजे पर हाथी पालती हूँ।

कवि और नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय

हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि १९वीं शताब्दी के मध्य भाग से बंगला-साहित्य और समाज नवजागरण से अत्यधिक प्रभावित हुआ। कभी उस पर समाज-संस्कार आन्दोलन का प्रभाव पड़ा, कभी धार्मिक-आन्दोलन का और कभी राष्ट्रीय-आन्दोलन का। फलस्वरूप साहित्य में और विशेषकर बंगला नाट्य-विधा पर इन आन्दोलनों का जबरदस्त प्रभाव पड़ा। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ऐतिहासिक नाटक लिखने की जो बलवती अभिलाषा थी, उसके पीछे 'हिन्दू मेला' में उद्दीप्त देश-प्रेम की भावना कार्य कर रही थी। इस भावना को नई ऊर्जा बंगभंग आन्दोलन से मिली।

बंग-भंग का प्रभाव

१९वीं सदी के देश-प्रेम में हिन्दू-गौरव के इतिहास को चित्रित करने की प्रवृत्ति थी, किन्तु २०वीं सदी में इस मानसिकता में थोड़ा परिवर्तन आ गया। बंग-भंग का राष्ट्रीय आन्दोलन साम्प्रदायिक-प्रीति मिलन की ओर उन्मुख हुआ। द्विजेन्द्रलाल राय. के ऐतिहासिक नाटकों में इस प्रचेष्टा को बखूबी देखा जा सकता है। उनके 'शाहजहाँ' नाटक मे कर्ण सिंह और शाहजहां की मित्रता, 'मेवाड़ पतन' में महावत खाँ के प्रति कल्याणी की निष्ठा, 'प्रताप सिंह' मे शक्ति सिंह का दौलत-उन्निसा के साथ विवाह आदि विषय हिन्दू-मुस्लिम मिलन के बलिष्ठ प्रमाण हैं। साम्प्रदायिक एकता की इस भावना को नव्य रूप देने में नाटककारों ने ऐतिहासिक कथानकों को तोड़ा-मरोड़ा है और कल्पना का ज्यादा मात्रा मे सहारा लिया है। किन्तु कहना होगा कि युग-बोध और समसामयिक मानसिकता के वातावरण में दर्शकों ने इतिहास की इस विकृति को अनदेखा किया और साम्प्रदायिक मिलन की घटनाओं का स्वागत किया। क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद के 'आलमगीर' नाटक में जब दर्शक आलमगीर के मुख से हिन्दू-मुसलमानों के मिलन की बात सुनते हैं तब आनन्दातिरेक से झूम उठते हैं। जबकि इतिहास में आलमगीर (औरंगजेब) का चरित्र एक कट्टर मुसलमान के रूप में चित्रित हुआ है। यह बगभंग की सार्थक उपलब्धि थी, जिसने एक ओर स्वदेश प्रेम की सरिता को प्रवाहित किया और दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर बल दिया। अंग्रेज 'फूट डालो और शासन करो की नीति से अनुप्राणित होकर भारत के हिन्दू-मुसलमानों में विभेद स्थापित करना चाहते

थे और इसी वजह से वे बंग-भंग पर आमादा थे, किन्तु स्वदेशी आन्दोलन की जिजीविषा ने उसे पराभूत कर दिया और अंग्रेजों को बंगभंग की कुत्सित भावना का लार्ड कर्जन को परित्याग करना पड़ा। इस कार्य में द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों की प्रभावशाली भूमिका थी, जो टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित हैं।

शायद ऐतिहासिक नाटकों को पूर्णता प्रदान करने के लिए द्विजेन्द्रलाल राय की प्रतिभा के स्पर्श की प्रतीक्षा थी। उनकी प्रतिभा ने बंगला-साहित्य के नाट्य-साहित्य इतिहास को स्वर्णिम युग में परिणत कर दिया। सच पूछा जाय तो द्विजेन्द्रलाल राय के आविर्भाव के साथ ही आधुनिक नाट्य-साहित्य के युगान्तरकारी युग का सूत्रपात होता है। उनके नाटक संस्कृत नाट्य-शास्त्र के आंगिकों से पूर्णतः मुक्त हैं और इनमें अंग्रेजी नाटकों का सही रूप देखने मे मिलता है।

इतिहास के रचयिता

द्विजेन्द्रलाल राय (१८६३-१९१३) ने साहित्य क्षेत्र में कवि और प्रहसन रचयिता के रूप में सबसे पहले ख्याति अर्जित की। अंग्रेजी में एम० ए० पास करने के बाद वे विलायत गए और उसके बाद उन्होंने नाटकों की रचना की। द्विजेन्द्रलाल का प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'ताराबाई' (१९०३) है, जो गद्य और पद्य में लिखा गया है। 'पाषाणी' की भाँति यह भी उनका गीतिनाट्य है। नाटककार ने 'ताराबाई' नाटक की भूमिका में कैफियत देते हुए लिखा है—'यद्यपि मैंने नाटक की मूल कथा टॉड के 'राजस्थान' से ली है, लेकिन मैंने स्थान-स्थान पर कल्पना का सहारा लिया है। इसे मैं बुरा नहीं मानता और न ही ऐतिहासिक नाटक की त्रुटि स्वीकारता हूँ, क्योंकि नाटक अन्ततः इतिहास नहीं है।' वस्तुतः नाट्य रचना की कई विशेष टेकनिक हैं। इतिहास को नाटक में रूपान्तरित करने के लिए या ऐतिहासिक रोमान्स को सुन्दर बनाने के लिए नाटककार को कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। हाँ, इतना जरूर है कि रोमान्स सृष्टि में अगर नाटककार अतिशय कल्पना विलासी हो जाता है तब ऐतिहासिकता क्षुण्ण हो जाती है। 'ताराबाई' नाटक पढ़ने पर यह प्रश्न अनायास उठ खड़ा होता है। स्वयं टॉड ने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—

"I should observe, that it never was my intention to treat the subject in severe style of history, which would have excluded many details useful to the politician as well ae the curious student. I offer this work as a copious collections of materials for the future

historian." (Annals and Antiquities of Rajasthan, by James Tod, Introduction, Page XV).

द्विजेन्द्रलाल के सभी ऐतिहासिक नाटक टॉड द्वारा वर्णित मुगल-राजपूत इतिहास से सम्बन्धित हैं। वैसे उन्होंने 'चन्द्रगुप्त' की रचना हिन्दू इतिहास से कथानक लेकर की है। ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के द्वारा बंगला साहित्य में ऐतिहासिक नाटक लिखने की जिस धारा का सूत्रपात हुआ, उसका चरम उत्कर्ष हमें द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको में मिलता है। ऐतिहासिक नाटकों की रचना में द्विजेन्द्रलाल राय बंगला साहित्य के ही नहीं भारतीय साहित्य के अप्रतिम नाटककार हैं। आपके नाटकों का भारतीय भाषाओं पर असर पड़ा और हिन्दी के नाटककार विशेष रूप से प्रभावित हुए। द्विजेन्द्रलाल राय की भांति हिन्दी में जयशंकर प्रसाद ने भारत के अतीत इतिहास को नाटकों में रूपायित किया। दोनों नाटककारों में तुलनात्मक दृष्टिभेद इतना ही है कि एक ने मुख्यतः हिन्दू इतिहास को अपने नाटकों की रचना का उपजीव्य बनाया और दूसरे ने मुगल-राजपूत इतिहास को। ज्योतिरिन्द्रनाथ से लेकर क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ऐसे नाटककारों में एकमात्र गिरीशचन्द्र घोष ने ही अपने नाटकों में इतिहास का सही मायने में अनुसरण किया। इनके बाद जिस व्यक्ति का उल्लेख किया जा सकता है वे हैं द्विजेन्द्रलाल राय।

प्रसाद और डी० एल० राय

द्विजेन्द्रलाल राय की लोकप्रियता और ख्याति के पीछे उनके ऐतिहासिक नाटकों का अवदान है। 'ताराबाई' नाट्य-काव्य मे ही सर्वप्रथम उनकी ऐतिहासिक नाट्य रचना की प्रतिभा का पता लगता है, किन्तु तब तक उनकी अपनी नाट्य-शैली का शुभारम्भ नहीं हुआ था। अमित्राक्षर छन्द मे उन्होने नाटक रचना का प्रयास तो किया, पर सफलता अभी दूर थी। इसी वजह से परवर्ती नाटको मे उन्होने पद्य की अपेक्षा गद्य का पूर्ण रूप से इस्तेमाल करना शुरू किया। गद्य में भी उनकी काव्यमयी भाषा प्रभावी रही है। हिन्दी के प्रख्यात कवि-नाटककार श्री जयशंकर प्रसाद की काव्यमयी भाषा के साथ द्विजेन्द्रलाल की भाषा का साम्य देखा जा सकता है। दोनों ही नाटककार मूलतः कवि थे और समय की मांग के कारण नाटककार बन गए थे। इसी कारण दोनों के नाटकों में मधुर गीतों का और विभिन्न राग-रागनियों का रूप भी देखने को मिलता है।

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटक लिखने में कवि-नाटककार जयशंकर प्रसाद की बड़ी ख्याति है। आपने भारत के अतीत गौरवमय इतिहास को नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रसादजी की रूचि हिन्दू इतिहास के उद्‌घाटन पर रही, पर हिन्दी के दूसरे ऐतिहासिक नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी ने द्विजेन्द्रलाल राय की भांति राजपूत-मुगल इतिहास पर चर्चित और प्रभावशाली नाटक लिखे हैं। आपके दो प्रसिद्ध नाटक हैं 'रक्षा बंधन' और 'कीर्ति-स्तम्भ'। प्रेमीजी के 'रक्षा बन्धन' नाटक में मेवाड़ की महारानी कर्मवती का हुमायूं को भाई कहकर राखी भेजना और हुमायूं का गुजरात के मुसलमान बादशाह बहादुरशाह के विरुद्ध एक हिन्दू राज्य की रक्षा के लिए पहुँचना। यह कथावस्तु ही हिन्दू-मुसलमान भेदभाव की शान्ति का प्रयास है। असल में बंगभंग आन्दोलन के बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास साहित्य के माध्यम से होने लगा। यह हमने द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों मे देखा है। यही भावना हरिकृष्ण 'प्रेमी के नाटक 'रक्षाबंधन' में देखने को मिलती है। प्रेमीजी का दूसरा नाटक है 'कीर्ति-स्तम्भ'। इसका निर्माण मेवाड़ के राणा कुम्भा ने चित्तौड़गढ़ में किया था। नाटक में मेवाड़ के राणा रायमल के तीन पुत्र सांगा, पृथ्वीराज और जयमल को लेकर कहानी का तानाबाना बुना गया है। इस नाटक पर द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक 'ताराबाई' की छाया मालूम देती है। जो भी हो, इतना तो स्वीकारना पड़ेगा कि हिन्दी नाटकों के द्वितीय उत्थानकाल में प्रसाद और प्रेमी का बड़ा योगदान रहा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ५२८ पर लिखा है—'प्रसाद' और 'प्रेमी' के नाटक यद्यपि ऐतिहासिक हैं, पर उनमें आधुनिक आदर्शों और भावनाओं का आभास इधर-उधर बिखरा मिलता है। प्रसाद के 'स्कंदगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' दोनों में स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम और आध्यात्मिकता का आधुनिक रूपरंग बराबर झलकता है। आजकल के मजहबी दंगों का स्वरूप भी हम 'स्कंदगुप्त' में देख सकते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी के 'शिव-साधना' नाटक में शिवाजी भी कहते हैं—'मेरे शेष जीवन की एकमात्र साधना होगी भारतवर्ष को स्वतंत्र कराना, दरिद्रता की जड़ खोदना, ऊँच-नीच की भावना और धार्मिक तथा सामाजिक असहिष्णुता का अन्त करना, राज-नीतिक और सामाजिक दोनों प्रकार की क्रान्ति करना।'

जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक की रचना द्विजेन्द्रलाल राय के 'चन्द्रगुप्त' नाटक के बाद की थी। प्रसाद के नाटक पर राय के 'चन्द्रगुप्त' का प्रभाव दिखाते हुए डॉ० रथीन्द्रनाथ राय ने अपने शोध-प्रबन्ध में कुछ उद्धरण देकर दोनों की भाषा में बड़ा साम्य दर्शाया है।

इतिहास में देशात्मबोध और राष्ट्रीयता का जैसा उन्मेष उनके बाद के नाटकों में हुआ है, 'ताराबाई' में नहीं। 'ताराबाई' के चरित्र में एक भारतीय आदर्श वीरांगना का चरित्र अवश्य उभरा हैं, जो अपने पिता के छिने राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए ऐसे वीर पुरुष से विवाह करना चाहती है जो उसका पुनरुद्धार कर सके।

अतीत : वर्तमान में

द्विजेन्द्रलाल राय की लोकप्रियता के पीछे जहाँ उनके ऐतिहासिक नाटकों का प्रबल हाथ है, वहीं इस कार्य में तत्कालीन युगजीवन और युगबोध ने भी बड़ी भूमिका निभाई है। स्वदेशी आन्दोलन की उन्मादना और विदेशी वस्तुओं की होली से बंगाली समाज का तेवर मुखर था, उद्वेलित था। कुछ कर गुजरने की आकांक्षा थी। बंगभंग ने इस अग्नि में घी का काम किया। इन्हीं भावनाओं को नाटककार ने अपने नाटकों में युग की वाणी दी है, प्रेरणा दी है और लोगों की सोई अस्मिता को भरपूर जगाया है। अतीत इतिहास में शौर्य-वीर्य और आदर्शवाद की कथाएँ रहती हैं। यही इतिहास का रोमांस है। इसी गौरवमय इतिहास को टॉड के 'राजस्थान' से लेकर सोये, पराधीन भारतीयों को जगाने के लिए द्विजेन्द्रलाल राय ने लेखनी उठाई और वे सफल हुए। अतीत की समस्याओं को उन्होंने अपने युग की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में उत्कीर्ण किया, नया दिगंत उन्मोचित किया और मानवीय दृष्टिकोण दिया।

Indian Stage (Vol. IV) में एच० एन० दासगुप्ता ने लिखा है—

"The above movements too would have proved short lived, were not the aforesaid dramas produced at that time. At such time of the greatest need, these dramas acted like a great inspiration and changed the servile mentality of the people."

द्विजेन्द्रलाल राय पर किए गए अपने शोध-प्रबन्ध 'द्विजेन्द्रलाल राय : कवि उ नाट्यकार' में प्रसिद्ध आलोचक डॉ० रथीन्द्रनाथ राय ने लिखा है—'द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों की कुछ विशेषताएँ हैं जो उनके पूर्ववर्ती नाटककारों में नहीं मिलतीं। ज्योतिरिन्द्रनाथ के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना अधिक है। वैसे द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों में यह देखा जाता है, पर इतिहास उसमें गौण नहीं हुआ है। गिरीशचन्द्र के नाटकों में ऐतिहासिक तथ्य पूरी मात्रा में विद्यमान हैं, द्विजेन्द्रलाल की भांति वे न तो

अन्तरद्वन्द्व की सृष्टि कर पाये हैं और न घटनाओं का नाटकीय प्रस्तुतीकरण ही। हाँ, क्षीरोद प्रसाद ने स्वदेशी आन्दोलन की पट-भूमिका में अपने ऐतिहासिक नाटकों की रचना तो की, किन्तु उनके नाटकों में ऐतिहासिक रोमान्स की प्रवणता है। जीवनधर्मी नाटकों में कल्पना का स्थान किस सीमा तक समीचीन है, इसका सम्यक ज्ञान द्विजेन्द्रलाल राय को था और इसी ढर्रे पर उन्होंने ऐतिहासिक नाटकों की रचना की।' ('द्विजेन्द्रलाल : कवि उ नाट्यकार', पृष्ठ २८१-८२)

इस तरह हम कह सकते हैं कि द्विजेन्द्रलाल राय (१८६३-१९१३) के नाटकों से ही बंगला नाट्य-साहित्य के आधुनिक युग का आविर्भाव हुआ। उनके नाटकों में आधुनिक नाटक की सभी विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। यहाँ हमारा अभिप्राय अत्याधुनिक नाटकों से नहीं है। नाटक के आंगिक भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण आदि सभी दृष्टियों से आपने नवीनता की सृष्टि की। सच कहा जाय तो आपने ही बंगला नाटकों को मध्ययुगीन धारा से असम्पृक्त कर नवीन धारा का सूत्रपात किया।

कवि-नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की समस्त रचनाओं और नाट्य-कृतियों का प्रकाशन दो खण्डों में डॉ० रथीन्द्रनाथ राय के सम्पादन में १९६४ ई० में साहित्य-संसद, कलकत्ता से हुआ है।

द्विजेन्द्रलाल का 'ताराबाई' नाटक

द्विजेन्द्रलाल ने जब 'ताराबाई' नाटक की रचना २२ सितम्बर, १६०३ ई० में की उस समय तक बंगभंग या स्वदेशी आन्दोलन की शुरूआत नहीं हुई थी। इसलिए इसमें देशप्रेम की तीव्रता देखने को नहीं मिलती, पर बाद में वे स्वदेशी आन्दोलन के सहभागी हो गए थे। इस विषय में पी० गुहाठाकुरता का वक्तव्य उल्लेखनीय है—

"Dvijendralal Roy was deeply strived by Swadeshi movement, and for a time almost completely threw himself into it."

(P. Guhathakurta, Bengali Drama, London, 1930, Page 154)

'ताराबाई' नाटक की भूमिका

'ताराबाई' नाटक की भूमिका में नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय ने लिखा है—"एई नाटकेर उपादान टॉड प्रणीत 'राजस्थान' होइते गृहीत होइलो। पृथ्वीराज उ तारार काहिनी एखनऊ राजस्थाने चारण कवि द्वारा राजपूत दिगेर मनोरंजनार्थे गीत होइया थाके।" अर्थात् इस नाटक की कथावस्तु मैंने टॉड के 'राजस्थान' से ली है। पृथ्वीराज और तारा की वीरतापूर्ण कहानी आज भी राजस्थान मे चारण-कवियो द्वारा लोगों के मनोरंजनार्थ गाई जाती है।

आपने आगे अंग्रेजी में लिखा है—

"When they assemble at the feast after a day's sport, or in a sultry evening spread the carpet in the terrace to inhail the leaf or take a cup of Kusumba, the tale of Prithwi recited by the bards in the highest treat they can enjoy."

द्विजेन्द्रलाल ने 'ताराबाई' नाटक की भूमिका में यह भी लिखा है—"यद्यपि मैंने नाटक की मूल कथा 'राजस्थान' से ली है, किन्तु कुछ अप्रधान घटनाओं को मैंने अपनी कल्पना से सजाया है, जिन्हें देख कर कुछ लोगों को इनमे इतिहास सम्मत बातें न मिलें। लेकिन इन कल्पना प्रसूत घटनाओ को मैं बुरा नहीं मानता—क्योंकि नाटक इतिहास नहीं है।"

'ताराबाई' का कथानक

'ताराबाई' नाटक की कहानी संक्षेप में इस प्रकार है—मेवाड़ के राणा रायमल के तीन पुत्र थे—सांगा, पृथ्वीराज एवं जयमल। वृद्ध पिता की मृत्यु के बाद

इनमें से कौन राजा बनेगा, इस बात को लेकर उनमें प्रतिद्वन्द्विता थी। एक दिन बूढ़े राणा की शैया के पास ही तीनों पुत्रों में राजगद्दी को लेकर विवाद हो गया। इस अपराध के कारण राणा ने पृथ्वीराज को राज्य से निर्वासित कर दिया और सांगा को राजगद्दी के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया। उन्होंने अपने सबसे छोटे पुत्र जयमल को राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया। मानसिक दुःख के कारण सांगा संन्यासी की भांति राज्य छोड़कर अन्यत्र चला गया। टोड़ाधिपति सुरतान (शूरथान) अपने राज्य से वंचित होकर निर्वासित स्थिति में कालयापन कर रहा था। उसकी एक कन्या थी तारा, जो सुन्दरी, वीर और गुणवती थी। उसका संकल्प था कि वह अपने पिता के राज्य का पुनरुद्धार करेगी और जो वीर उसके इस कार्य को मूर्त रूप देगा उसी के साथ विवाह करेगी। जयमल तारा के प्रति प्रणय का अभिलाषी हुआ, किन्तु उसके अशिष्ट आचरण के द्वारा सुरतान के हाथ मे उसकी मृत्यु हुई। मेवाड़ के सेनापति का नाम सूर्यमल था, जो राणा रायमल का भाई था। अपनी पत्नी तामसी की कुमन्त्रणा से उसने मेवाड़ के सिंहासन पर कब्जा करने के लिए अपने भाई के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की। इस बीच पृथ्वीराज ने अपने अपूर्व साहस और वीरता से तारा के पिता का राज्य जीत कर उसे पुनः टोड़ाधिपति के रूप में प्रतिष्ठित किया और तारा का पाणिग्रहण किया। जब उसने अपने चाचा सूर्यमल (सूरजमल) के विद्रोह की बात सुनी तो तारा को साथ लेकर उसने सूर्यमल को पराजित कर बन्दी बनाया। वृद्ध राणा रायमल को पृथ्वीराज की वीरता पर मुग्ध होना पड़ा और अन्ततः उसने पृथ्वीराज को ही मेवाड़ की गद्दी सौंपने का निश्चय किया। राणा रायमल की एक पुत्री थी, जिसका नाम यमुना था। सिरोही के दुराचारी राजा प्रभुराव के साथ उसका विवाह हुआ था। वह यमुना को कष्ट देता था। पृथ्वीराज के मेवाड़ को गद्दी पाने में भी प्रभुराव एक बड़ा बाधक था। इसलिए पृथ्वीराज प्रभुराव को उचित शिक्षा देने के लिए सिरोही गया। प्रभुराव ने अतिथि के रूप में आये पृथ्वीराज को भोजन में विष देकर उसकी हत्या कर दी। पति की मृत्यु के बाद तारा ने भी आत्माहुति देकर प्राण त्याग दिए।

नाटक की त्रासदी

पृथ्वीराज की कारुणिक त्रासदी में नियति नटी का बड़ा हाथ नाटक में उभर कर सामने आया है, शायद यही दिखाना नाटककार का उद्देश्य रहा हो। नाटक में पृथ्वीराज को वीर और पराक्रमी दिखाया गया है। यद्यपि वह मेवाड़ की प्रजा का प्रिय पात्र था, पर भाग्यचक्र से उसे निर्वासित होना पड़ा। अपने बाहुबल से उसने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। इतना ही क्यों उसने तारा के पिता के छिने हुए राज्य का भी पुनरुद्धार किया और तारा ऐसी वीर विदुषी के साथ विवाह किया। अपने पिता के राज्य में सूर्यमल द्वारा किए गए विद्रोह का उसने दमन किया, पर अन्त में अपने ही बहनोई के हाथों उस समय उसका अन्त हुआ जब मेवाड़ का राज्य उसे मिलनेवाला

था। उसका अन्त एक कापुरुष के द्वारा हुआ, यही नाटक की सबसे बड़ी ट्रेजेडी है।

यद्यपि इस नाटक का नामकरण तारा के नाम पर 'ताराबाई' किया गया है, किन्तु नाटक में सूर्यमल और तामसी की कहानी ने प्रधानत्व पा लिया है। सही मायनें में मेवाड़ के सिंहासन को लेकर नाटक में विवाद का आरम्भ होता है और उसी के तानेबाने में कहानी का विकास होता है। मेवाड़ के सिंहासन के लिए पृथ्वीराज का निर्वासन, सांगा का वैराग्य, सूर्यमल (सूरजमल) का सिंहासन पाने के लिए विद्रोह और इसी के साथ पृथ्वीराज की विषाक्त भोजन से दुखद मृत्यु। लगता है जैसे मेवाड़ के सिंहासन पर नियति का कोप है और इसे ही नाटककार ने उद्घाटित किया है।

वीरबाला ताराबाई

'ताराबाई' नाटक पर शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' नाटक का प्रभाव लक्षित होता हैं। जहाँ सूर्यमल पर मैकबेथ के चरित्र की छाया है, वहीं तामसी पर लेडी मैकबेथ की पूरी तस्वीर उभर कर नाटक में आई है। ऐसा लगता है कि इस नाटक पर रवीन्द्रनाथ के 'विसर्जन' नाटक की भी थोड़ी घनी छाया है। नाटक का मुख्य पात्र पृथ्वीराज है। राजस्थान के चारण-काव्यों में पृथ्वीराज की वीरता का बड़ा प्रशस्ति-पूर्ण बखान है, जिसका उल्लेख टॉड ने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में किया है। 'ताराबाई' नाटक मे टॉड के वर्णन का ईमानदारी से वर्णन हुआ है और विशेषकर पृथ्वीराज के चरित्र का तदनुरूप चित्रण किया गया है। पृथ्वीराज एक उद्धत वीर है, उसमें शौर्य पराक्रम है, लेकिन विनयशीलता और सौजन्यता का अभाव है। यही कारण है कि दर्शकों को उसकी कारुणिक मृत्यु ही प्रभावित करती है, अन्य कार्यों के प्रति कोई उत्सुकता नहीं देखी जाती है। वियोगान्त नाटक के नायक मे जो उदात्त गुण का समावेश होना चाहिए, उसका दोष खटकता है। ताराबाई के चरित्र मे अवश्य ही एक वीरबाला का आकर्षण है। इसी कथानक को लेकर हरिकृष्ण 'प्रेमी' द्वारा हिन्दी में 'कीर्तिस्तम्भ' नाटक लिखा गया, जिसमे तारा का वीर राजपूत नारी के रूप में अच्छा चित्र उभरा है। ताराबाई और उसकी माँ के चरित्रों में जिस शौर्य और दृढ़ता का नाटककार ने वर्णन किया है, उसकी गम्भीर छाप हमें द्विजेन्द्रलाल के परवर्ती नाटकों मे देखने को मिलती है। पुरुष वेश मे ताराबाई का शिकार करना, युद्ध मे जाना आदि उसके वीर ललना के गुण है। इन गुणो को नाटक मे कुशलता से दर्शाया गया है। तारा के प्रेम मे भी एक राजपूत रमणी की दृढ़ प्रतिज्ञा है। वह लौकिक प्रेम से बढ़कर देशप्रेम को प्राथमिकता देती है। यही देशप्रेम उसके उदात्त चरित्र को आकर्षक बनाता है। इस तरह तारा का चरित्र पूर्ण रूप से इतिहास से अनुमोदित है। टॉड के कथन से यह प्रमाणित होता है—

This event (death of Jeimal) led to the recall of Pirthiraj,

who eagerly took up the gage desgraced by his brother The adventure was akin to his taste. This exploit which won the hand of the fair Amazon, who equipped with bow and quiver, subsequently accompanied him in many perilous enterprises. (Tod's Rajasthan. Page 237).

ताराबाई और पृथ्वीराज की कहानी को लेकर लिखा गया जहाँ द्विजेन्द्रलाल का यह प्रथम ऐतिहासिक नाटक है, वहीं इस कहानी को लेकर बंगला नाट्य-साहित्य में भी यह प्रथम नाटक है। जैसा कि हमने पूर्व में कहा है इस नाटक में इतिहास और कल्पना का मिश्रण हुआ है। नाटक में वर्णित पुरुष पात्रों में से सभी का उल्लेख 'राजस्थान' ग्रन्थ में मिलता है। स्त्री पात्रों में केवल ताराबाई का इतिहास में उल्लेख है। नाटक में दर्शाया गया है कि वृद्ध राणा रायमल ने मृत्युमुखाभिमुखी होने की छलना की और उसके तीनों पुत्रों यथा सांगा, पृथ्वीराज और जयमल में राजगद्दी के लिए तलवारें म्यान से बाहर हो गईं। इस दृश्य को अपनी आँखों के सामने देखकर राणा ने पृथ्वीराज को राज्य से निकाल दिया और सांगा को राजगद्दी से वंचित कर जयमल को भावी राणा के रूप में मनोनीत कर दिया, किन्तु 'राजस्थान' ग्रन्थ में यह विवाद एक चारिणी की भविष्यवाणी को लेकर हुआ। टॉड ने लिखा है—

"Raemul succeeded in Sambat 1530 (A. D. 1474) by his own valour to the seat of Koombho...He had three sons, celebreted in the annals of Rajasthan. Sanga, the competitor of Babar, Pirthiraj, the Rolando of his age, and Jeimal. Unhappily for the country and their father's repose, fraternal affection was discarded for deadly hate and their feuds and dissensions were a source of constant alarm... As it was, it presented a striking contrast to them, his (Raemul's) two elder sons banished, the first, Sanga, self-exiled from perpetual fear of his life and Pirthiraj, the second from his turbulence, while the youngest, Jeimal, was slain through his intemperence; A skatch of these feuds will present a good picture of Rajpoot character, and their mode of life when their arms were not required against their contry's foes." [Ibid, Page 235].

ऐसा कहा जाता है कि सांगा (संग्राम सिंह या युद्ध का शेर) और पृथ्वीराज का जन्म राणा रायमल की झाला रानी की कोख से हुआ था और जयमल का दूसरी छोटी रानी से हुआ था, जिसका राणा पर प्रभाव था। इसलिए राणा का मोह जयमल के प्रति था।

टॉड ने अपने राजस्थान' ग्रन्थ में लिखा है कि प्राचीन तक्षशिला अब तोड़ातक के नाम से पुकारी जाती है। उस समय उस टोड़ा या तोड़ा राज्य पर सुरतान राव

नामक एक राजपूत का अधिकार था। लाल अफ़गान ने उसपर कब्जा कर सुरतान को राज्य से निकाल भगाया था। सुरतान अरावली के नीचे बसे बेदनौर नगर में आकर रहने लगा। उसकी तारा नामक एक सुन्दर कन्या थी, जिसे वह बचपन से ही राजस्थान की वीरगाथाएं सुनाया करता था। वह वीरबाला बड़ी होने पर घोड़े पर सवार होकर अपने पिता के साथ युद्ध में जाया करती थी। उसकी सुन्दरता और रूप गुण से आकर्षित होकर कई राजपूत राजाओं ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, पर सुरतान की प्रतिज्ञा थी—"जो कोई राजपूत यवनों से तोड़ांतक का उद्धार करेगा, उसी के साथ तारा का विवाह होगा।" इस प्रतिज्ञा को सुनकर कुमार जयमल बेदनौर आया और उसने तारा के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु वीर नारी तारा ने कहा—"पहले तोड़ांतक राज्य का उद्धार कीजिए. फिर मेरे साथ विवाह होगा।" जयमल ने इस बात को स्वीकार कर लिया, पर वह अपने कुकर्म से इस सुन्दरी नारी को प्राप्त करने पर आमादा हो गया। अभद्र आचरण के कारण सुरतान ने क्रोधित होकर जयमल को मार डाला। भट्ट लोगों ने अपने वर्णन में लिखा है—
"जयमल के भाग्याकाश के लिए तारा अनुकूल तारा सिद्ध नहीं हुई।"

पृथ्वीराज के भाग्याकाश की चमक

तारा पृथ्वीराज के भाग्याकाश में चमकी। पृथ्वीराज और तारा दोनों वीर थे। दोनों में यवनों से टोड़ा राज्य छीनने की बलवती अभिलाषा थी। तारा पृथ्वीराज की वीरता पर मुग्ध थी और पृथ्वीराज तारा के सौंदर्य तथा वीरता पर, किन्तु शर्त पूरी हुए बिना पृथ्वीराज तारा से विवाह नहीं कर सकते थे। इसलिए एक बड़ी सेना लेकर वे तोड़ातंक पहुँचे। साथ में वीर वेष में तारा भी गई। जब पृथ्वीराज के सैनिक नगर में पहुँचे तो यवन लोग ताजिया समारोह मना रहे थे। पृथ्वीराज भी अपने दल के साथ उनमें मिल गए। जब ताजिया अफ़गान बादशाह के महल के पास पहुँचा तो महल के झरोखे में यवनराज (लाल पठान) वस्त्राभूषण पहन रहा था। अनजाने घुड़सवारों को देखकर उसे कुछ भ्रम हुआ। इसी बीच तारा का एक सनसनाता तीर आकर उसकी छाती में लगा और तभी पृथ्वीराज ने शूल चला कर उस अभागे अफ़गान को पृथ्वी पर लिटा दिया। यवनराज के मरने से यवनों में हाहाकार मच गया। पृथ्वीराज के सैनिकों ने मारधाड़ कर नगर के तोरण द्वार को घेर लिया, पर एक प्रचण्ड मतवाला हाथी फाटक की अर्गला को रोके था। वीर नारी तारा ने विशाल फरसा लेकर हाथी की सूड़ को काट डाला और तोड़ांतक पर पुनः तारा के पिता सुरतान का अधिकार हो गया। प्रतिज्ञा पूरी होने पर पृथ्वीराज का विवाह तारा के साथ हुआ। टॉड के इस वृत्तान्त का उल्लेख 'ताराबाई' नाटक में मिलता है।

चारणी की भविष्यवाणी

चारणी देवी के मन्दिर में देवी की सेविका की भविष्यवाणी का वृतान्त टॉड के 'राजस्थान' में पृष्ठ २१० पर इस प्रकार वर्णित हुआ है—

"एक दिन पृथ्वीराज और जयमल अपने चाचा सूरजमल (सूर्यमल) के पास बैठ कर उत्तराधिकार के विषय में तर्क कर रहे थे कि उसी समय सांगा ने आकर धीरे से कहा 'न्याय के अनुसार तो मेवाड़ के दस हजार नगरों का मैं ही उत्तराधिकारी हूँ—अगर तुमलोग चारणी देवी की बात पर विश्वास करते हो तो अभी इस झगड़े का निपटारा हो सकता है' इस बात को सबों ने मान लिया और चारणी देवी के भवन में गए। नाहर मुंगरों पहाड़ की निर्जन कंदरा में स्थित मन्दिर में पहुँच कर पृथ्वीराज और जयमल एक चौकी पर बैठ गए, सामने बिछे व्याघ्रचर्म पर सांगाजी बैठ गए और उनके चाचा सूरजमल भी उसी व्याघ्रचर्म के ऊपर अपना एक घुटना टेक कर बैठ गए। जैसे ही पृथ्वीराज ने चारणी देवी की सेविका संन्यासिनी से अपनी अभि-लाषा प्रकट की, वैसे ही उसने उंगली उठा कर व्याघ्रचर्म की ओर इशारा किया। इससे बात साफ हो गई कि सांगाजी ही राजा होंगे और सूरजमल भी राज्य के कुछेक अंश को भोगेंगे। इस बात को सुनकर पृथ्वीराज ने तलवार निकाल कर सांगाजी पर आक्रमण किया, पर सूरजमल ने तत्काल पृथ्वीराज के आघात को निष्फल किया। चारणी की सेविका भाग गई पर मन्दिर के भीतर सांगा और पृथ्वीराज का युद्ध होने लगा। इस लड़ाई में दोनों को अगणित घाव लगे और सांगा की एक आँख जाती रही।"

चारणी की इस भविष्यवाणी की बात का उल्लेख हमें 'ताराबाई' नाटक के प्रथम अंक, प्रथम दृश्य में मिलता है—सूर्यमल अपनी पत्नी तमसा से बातचीत करता है। तमसा के चले जाने के बाद वह स्वगत कथन में कहता है कि आश्चर्य इस बात का है कि तमसा को इस बात का पता कैसे चला ? यह सच है कि एक दिन मैं चारणी के मन्दिर में गया था। चारणी ने मेरा हाथ देख कर कहा था कि मुझे मेवाड़ के राज्य का अधिपति बनने का सौभाग्य मिलेगा। उसी घड़ी और समय से मेवाड़ का राणा बनने की मेरी अभिलाषा, उच्चाकांक्षा बढ़ी है, और मैं क्यों नहीं राणा बनूंगा जबकि मै राणा का भाई हूँ—

आश्चर्य ! आश्चर्य इहा !

जानिलो कि रूपे तमसा
आमार पाप अंतरेर कथा ?
से दिन गियाछिलाम चारणी मंदिरे,
कहिलो चारणी, हस्त देखिया आमार,
"मेवारेर राज्य लाभ तोमार"—सहसा
के जेन ओमनि वेगे करिलो आघात
उच्चाशार रुद्ध द्वारे। होइलो चंचल
उद्वेल, हृदय एई नव समस्यार
आहारे बिहारे एई—कयदिन धरि,
के कर्णे नियत जेन करिछे झंकार—
'आमिई बा केन एइ राज्यस्वत्व होते
होइबो वंचित, जबे राजभ्राता आमि ?'

('द्विजेन्द्र रचनावली', प्रथम खण्ड 'ताराबाई' नाटक, प्रथम अंक, प्र० दृश्य, पृ० ४२)

'ताराबाई' नाटक में सूर्यमल और उसकी पत्नी तमसा का चरित्र सर्वापेक्षा आकर्षक बन पड़ा है। सूर्यमल के चरित्र मे राज्यलिप्सा के साथ अपने भाई के पुत्रों के प्रति वात्सल्य था। इस चारित्रिक द्वन्द्व को नाटककार ने बड़ी खूबी से दिखाया है। शेक्सपीयर के मैकबेथ का चरित्र भी इसी द्वन्द्व से पुष्ट था। जब मैकबेथ को डायनों ने राजा बनने की भविष्यवाणी की तो वह राजा डानकन की हत्या करने पर उतारू हो गया। चूंकि चारणी देवी की सेविका ने यह भविष्यवाणी की थी कि मेवाड़ का राजा सांगा होगा और सूरजमल (सूर्यमल) भी राज्य के कुछ अंश को भोगेगा। इस भविष्य-वाणी से बैंकों की तरह सूरजमल के मन में भी राज्यलिप्सा जगी और जब जयमल की हत्या हो गई तथा पृथ्वीराज और सांगा मेवाड़ से निर्वासित थे, उसने मौके का फायदा उठाकर राणा रायमल के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी। सूरजमल की इस दुरभि-सन्धि में लेडी मैकबेथ की भांति तमसा ने अपनी दुष्टतापूर्ण भूमिका निभाई। (इस प्रसंग में देखिए—प्रो० शिवकुमार द्वारा अनुदित शेक्सपीयर का नाटक 'मैकबेथ'। प्रका-शक—माडर्न बुक एजेन्सी प्रा० लि०, कलकत्ता। प्रकाशन तिथि १९८६)

कारुणिक अन्त

पृथ्वीराज को उसके बहनोई ने किस प्रकार विष देकर हत्या की थी—इस कारुणिक घटना की संगति 'राजस्थान' में मिलती है—

"एक दिन पृथ्वीराज के पास उसकी बहन का पत्र आया। उसकी बहन सिरोही के राजा पामूराव (प्रभुराव) के साथ ब्याही गई थी। पामूराव दुष्ट प्रकृति का पुरुष था और नशे में धुत्त होकर अपनी पत्नी पर अत्याचार करता था।—पृथ्वीराज ने आरम्भ से अन्त तक अपनी भगिनी के पत्र को पढ़ा, पढ़ते ही क्रोध चढ़ आया, पापी को दण्ड देने के लिए सिरोही की ओर चला। वहाँ पहुँच कर उसने अपनी बहन की दुर्दशा अपनी आँखों से देखी। बहन फिर भी पति के प्रति विनीत और श्रद्धानत थी। पृथ्वीराज ने पामूराव को मारने के लिए उसके गले पर तलवार रख दी। परन्तु पतिव्रता राजपूत बाला ने भाई के चरणों को पकड़ कर कहा, 'क्षमा करो, क्षमा करो, मुझको विधवा मत करो, मैंने विधवा बनने के लिए तुम्हें नहीं बुलाया था।' पामूराव भी विनीत होकर पृथ्वीराज से अपने प्राणों की भीख मांगने लगा। पृथ्वीराज बोला—'यदि तुम मेरी बहन की जूतियों को अपने सिर पर रखो तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ, यदि तुम उसके पांव छुओ तो मैं तुम्हें क्षमा कर सकता हूँ।' पामूराव इस बात पर सम्मत हुआ। पृथ्वीराज बन्धुभाव से पाँच दिन वहाँ रहा। दुष्ट पामूराव ने पृथ्वीराज को छठे दिन विष के लड्डू देकर विदा किया, जिन्हें रास्ते में खाते ही पृथ्वीराज की मृत्यु हो गई।'

(टॉड का 'राजस्थान', पृष्ठ २१२-१३)

द्विजेन्द्रलाल राय ने प्रभुराव की पत्नी कमला (यमुना) में एक आदर्श भारतीय नारी की पतिव्रता का चित्रण किया है। वस्तुतः कमला का चरित्र रक्तमांस की मानवी का नहीं है, अपितु उसमें किसी देवी मूर्ति की परिकल्पना की गई है। द्विजेन्द्रलाल ने ऐसे नारी चरित्रों का चित्रण अपने परवर्ती ऐतिहासिक नाटकों में किया है, जिस पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ टॉड के मूल अंग्रेजी से एक उद्धरण देकर इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है—

Pirthiraj was poisoned by his brother-in-law, of Aboo, whom he had punished for maltreating his sister. [Ibid, Page 239].

इस प्रकार 'ताराबाई' नाटक पृथ्वीराज की मृत्यु और तारा की आत्माहुति से ५ अंकों में समाप्त हो जाता है।

'ताराबाई' नाटक का हिन्दी अनुवाद

कवि और कई पत्रों के सम्पादक पं० रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के प्रख्यात

नाटककारों की प्रसिद्ध रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में बड़े ही परिश्रम और लगन से किया है। बंगला भाषा के प्रसिद्ध नाटककार और महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त की प्रसिद्ध कृति 'कृष्णाकुमारी' नाटक का आपने गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से १९२० ई० में प्रकाशन किया। इसके पूर्व पं० रूपनारायण पाण्डेय ने बंगला के प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की काव्य-नाट्य कृति 'ताराबाई' का १९१७ ई० में हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, बम्बई से प्रकाशन किया था।

पं० रूपनारायण पाण्डेय की 'ताराबाई' काव्य-नाट्य कृति की भूमिका यहाँ उल्लेखनीय है—"स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलाल राय ने अनेक मनोहर नाटक लिखे हैं, उनमें 'ताराबाई' भी है। इस नाटक का उपादान टॉड साहब के 'राजस्थान' से लिया गया है। पृथ्वीराज और ताराबाई की कहानी अब भी राजपूताने के चारण-कवियों द्वारा गाई जाती है। कवि ने नाटक का मूल वृत्तान्त तो 'राजस्थान' से लिया है और अप्रधान घटनाओं की स्वयं कल्पना की है। कवि ने इसे (ताराबाई नाटक) अन्त्यानुप्रासहीन (अतुकान्त) पद्य में लिखा है। ऐसी कविता बंगला भाषा में इस समय प्रख्यात है। नवीनचन्द्र सेन, माइकेल, गिरीश घोष, द्विजेन्द्रलाल राय, रवीन्द्रनाथ आदि सुकवि अन्त्यानुप्रासहीन कविता (Blank verse poems) के पथ-प्रदर्शक या आचार्य समझे जाते हैं।

हमारी हिन्दी में अभी तक यही फैसला नहीं हुआ है कि कविता के लिए खड़ीबोली उपयुक्त है या ब्रजभाषा। कोई ब्रजभाषा का पक्ष लेकर खड़ी-बोली को थोथी भाषा, रूखी जबान कह कर कोसता है और कोई खड़ीबोली का हिमायती बन कर ब्रजभाषा को गँवारू भाषा कहने में जरा भी नहीं हिचकता। अभी यह प्रश्न उठाया ही नहीं गया है कि अन्य सहयोगिनी भाषाओं की तरह हिन्दी में भी अंत्यानुप्रासहीन कविता का प्रचार होना चाहिए या नहीं। इतना होने पर भी यह बात नहीं कही जा सकती कि हिन्दी के कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट नहीं हुआ है।

समाचार-पत्रों और मासिक-पत्रों में कभी-कभी एक-आध अन्त्यानुप्रासहीन कविता प्रकाशित हो जाया करती है। काशी से निकलने वाले 'इन्दु' में श्रीयुत् बाबू जयशंकर प्रसाद जी की ब्लैंकवर्स (अन्त्यानुप्रासहीन) कविताएँ प्रायः हर महीने निकला करती हैं। पं० अयोध्या प्रसाद जी उपाध्याय भी इस तरह की कविता के पक्षपाती हैं। आपका 'प्रिय प्रवास' महाकाव्य अन्त्यानुप्रासहीन पद्यों में लिख कर प्रकाशित कराया गया है।"

आगे पृ० ३ पर भूमिका में पं० रूपनारायण ने लिखा है—"ब्लैंकवर्स के

सबसे पहले कवि होमर थे। उन्होंने लेटिन भाषा में कविता की, शेक्सपीयर ने भी ब्लेंकवर्स में कविता की और मिल्टन ने भी।"

इस प्रकार पं० रूपनारायण पाण्डेय ने अन्त्यानुप्रासहीन या अतुकान्त कविता रचना पर अपने वक्तव्य में जोर दिया है। आपके कथन से यह स्पष्ट है कि १९१७ ई० तक हिन्दी कविता की भाषा स्थिर नहीं हुई थी। इसीलिए हमें प्रसादजी तथा मैथिलीशरण की आरम्भिक कविताएँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। प्रसादजी और मैथिलीशरण गुप्त अतुकान्त कविता के हिमायती थे। प्रसादजी ने 'पेशोला की प्रतिध्वनि' तथा 'महाराणा का महत्व' तथा गुप्तजी ने 'विकट भट्ट' की रचना अतुकान्त कविता में की है। इन तथ्यों से यह बात सिद्ध होती है कि बंगला का प्रभाव केवल भाव-बोध की दृष्टि से ही हिन्दी पर नहीं पड़ा, अपितु छन्द-अलंकार की दृष्टि से भी हिन्दी कवियों ने बंगला कवियों का अनुसरण किया। १९१३ ई० में रवीन्द्र को नोवेल पुरस्कार मिलने के बाद यह प्रभाव द्रुतगति से हिन्दी में हुआ। पंतजी, निरालाजी तथा अन्य हिन्दी के कवि रवीन्द्र का अनुसरण करने लगे।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक

हिन्दी के यशस्वी नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने देश को आजादी के बाद देशवासियों को उद्बुद्ध करने के लिए तथा नए भारत का निर्माण करने में देशवासियों के सामने डी० एल० राय के 'ताराबाई' नाटक की भांति 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक की रचना के माध्यम से राजस्थान के इतिहास-पृष्ठों के वे पृष्ठ उद्घाटित किए, जिनमें यह दिखाया गया है कि किन कारणों से देश की स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ तथा किन गुणों के कारण भारत ने अपनी खोई स्वतन्त्रता को अर्जित किया। 'कीर्ति-स्तम्भ' का प्रकाशन १९५५ ई० में राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली से हुआ है। यह नाटक तीन अंकों में लिखा गया है।

नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटक 'कीर्तिस्तम्भ' की भूमिका में लिखा है—'भारतीय इतिहास में राजपूत काल की वीर-गाथाएँ मृतवत प्राणों में नवजीवन और नवस्फूर्ति प्रदान करने वाली हैं। देश की उदित हो रही पीढ़ी को वीर, साहसी, त्यागी, निर्भय एवं देशप्रेमी बनाने के लिए इन वीर गाथाओं का ओजस्वी शब्दों में उपस्थित किया जाना आवश्यक है।'

"मेवाड़ के इतिहास में महाराणा कुम्भा के काल में मेवाड़ राज्य की कीर्ति और शक्ति उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँच गई थी। कुम्भा ने अनेक

बार मालवा के सुल्तान और गुजरात के बादशाह को पराजित किया एवं दिल्ली की लोदी सल्तनत का भी दर्प चूर्ण किया। कुम्भा केवल तलवार के ही धनी नहीं थे, अपितु उन्होंने अपने राज्यकाल में साहित्य एवं ललित कलाओं की अभिवृद्धि भी की। ऐसे गुणी, वीर पुरुष, सुशासक, कलाप्रेमी का प्राणान्त मुकुट के मोह में विवेक और मनुष्यता को खो देनेवाले अपने ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी (उदय सिंह) द्वारा हुआ।" ('कीर्तिस्तम्भ' नाटक, भूमिका (दर्पण), पृ० १-२)

महाराणा कुम्भा के ज्येष्ठ पुत्र ऊदाजी ने पिता की हत्या कर मेवाड़ की राजगद्दी प्राप्त की थी। तब हत्यारे के अनुज रायमल ने सामन्तों और प्रजा के सहयोग से ऊदाजी को परास्त किया और मेवाड़ के महाराणा बने। इन्हीं राणा रायमल के तीन पुत्र थे संग्राम सिंह (सांगा), पृथ्वीराज एवं जयमल। सूरजमल ऊदाजी के पुत्र थे। इन सभी राजकुमारों में मेवाड़ के मुकुट के लिए प्रतिस्पर्द्धा होने लगी। इसी कथानक को लेकर 'कीर्तिस्तम्भ' की रचना हुई है।

कर्नल जेम्स टॉड ने सूरजमल को अपनी पुस्तक में संग्राम सिंह का चाचा बताया है तथा एक स्थान पर उसे ऊदाजी का पुत्र बताया है। प्रेमीजी का कथन है कि उन्होंने टॉड के इस कथन का अपने ढंग से प्रयोग किया है। वे कहते हैं—'सूरजमल को कर्नल टॉड ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अनाल्स ऑफ राजस्थान' में एक स्थान पर संग्राम सिंह का काका या चाचा लिखा है, दूसरे स्थान पर ऊदाजी का पुत्र। 'मैंने नाटकीय सुविधा की दृष्टि से उसे ऊदाजी का पुत्र माना है। ऐतिहासिक नाटक ऐतिहासिक व्यक्तियों एवं घटनाओं को लेकर लिखा जाता है, फिर भी इतिहास और नाटक में कुछ अन्तर आ ही जाता है क्योंकि नाटककार कल्पना की कूची से इतिहास के फीके चित्रों में रंग भर कर उन्हें आकर्षक बनाता है।' (वही पृष्ठ ३)

'ताराबाई' और कीर्तिस्तम्भ' नाटक

द्विजेन्द्रलाल राय ने 'ताराबाई' नाटक में सूरजमल को महाराणा रायमल का भाई बताया है तथा उसकी पत्नी तमसा का चित्रांकन किया है। तमसा पर शेक्सपीयर के नाटक 'मैंकबेथ' की पत्नी लेडी मैकबेथ की छाया है। प्रेमीजी के नाटक में हम तमसा के रूप में सूरजमल की छोटी बहन ज्वाला को पाते हैं जो सारे अनिष्ट का कारण बनती है। सचमुच वह ज्वाला है, जिसने भाइयों के बीच राज्य-प्राप्ति की ज्वाला को धधका दिया। द्विजेन्द्रलाल के 'ताराबाई' नाटक की भांति प्रेमीजी ने अपने

नाटक में वीर रमणी तारा का चित्रण किया है। वह अपने पिता के तोड़ा राज्य की प्राप्ति के लिए पृथ्वीराज से सहायता लेती है और अन्त में लाल पठान को मार कर तोड़ा राज्य तारा के पिता सुरतान राव को पुनः मिल जाता है। राव सुरतान की यह प्रतिज्ञा थी कि जो वीर पुरुष उनके राज्य को जीत कर उन्हें दिलवा देगा, उसके साथ वे अपनी वीर कन्या का विवाह करायेंगे।

'कीर्तिस्तम्भ' और 'ताराबाई' नाटक में इतिहास की ये सारी घटनाएँ उभर कर आई हैं। पृथ्वीराज को दोनों ही नाटककारों ने उद्दण्ड और पराक्रमी दिखाया है। पृथ्वीराज वीर था, पर विवेक शून्य था। उसने सांगा से अपने अधिकार के लिए लड़ाई लड़ी। सांगा ने निर्वासन ग्रहण कर लिया। पृथ्वीराज की उद्दण्डता के कारण राणा रायमल ने पृथ्वीराज को निकाल दिया। पर वह अपनी वीरता से तोड़ा राज्य जीतने में सफल हुआ तथा तारा ऐसी वीर रमणी को उसने अपनी पत्नी बनाया। इधर जयमल की मृत्यु हो जाने से सूरजमल ने विद्रोह कर दिया और मेवाड़ का राणा बनने के लिए युद्ध करने लगा। पृथ्वीराज ने सूरजमल को परास्त किया, किन्तु वह खुद अपने बहनोई द्वारा विषपान कराने पर मारा गया। प्रेमीजी ने दिखाया है कि इस षड्यन्त्र में सूरजमल की बहन ज्वाला और उसकी दासी यमुना का हाथ था। पहले यमुना दिल्ली दरबार की गणिका थी। बाद में वह ज्वाला के लिए जासूसी का कार्य करने लगी। उसी की कुमन्त्रणा से सिरोही नरेश अर्थात् पृथ्वीराज के बहनोई ने राजकुमारी आनन्द देवी (पृथ्वीराज की बहन) का अपमान शुरू कर दिया था। इससे कुपित होकर पृथ्वीराज अपने बहनोई को दण्ड देने सिरोही गया था। वहाँ बहनोई ने डर कर उसका स्वागत किया और उसे विषपान करा कर मार डाला। द्विजेन्द्रलाल ने सिरोही नरेश की पत्नी का नाम कमला बताया है तथा प्रेमीजी ने आनन्द देवी। दोनों ही नाटककारों ने मेवाड़ कुमारी का उज्ज्वल चरित्र प्रस्तुत किया है।

'कीर्तिस्तम्भ' नाटक के तीसरे अंक के आठवें दृश्य में संग्राम सिंह की वीरता के ओजस्वी चरित्र को दिखाया गया है। इस दृश्य में ज्वाला और यमुना अपने कुकर्मों के लिए पश्चाताप करती हैं। तारा भी पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद मेवाड़ की रक्षा में अपनी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन करती है—देखिए—

(शंख-ध्वनि करते हुए राजयोगी का प्रवेश)

राजयोगी—नहीं महाराणाजी ! यह जयघोष मेवाड़ी योद्धाओं का ही है।

महाराणा रायमल—मेवाड़ी सेना को तो मैंने गढ़ में ही एकत्र कर रखा है। अभी तो शत्रु का चित्तौड़ पर आक्रमण ही नहीं हुआ, जय का तब क्या प्रश्न ?

राजयोगी—महाराणा जी ! शत्रु को चित्तौड़ तक आने देना मेवाड़ के वीर योद्धाओं ने

अपना अपमान समझा और संसार जानता है कि मेवाड़ का प्रत्येक व्यक्ति संकट-काल में स्वेच्छा से [illegible] धारण कर सकता है।

(हाथ में मेवाड़ की राजपताका लिए एक भील के छद्मवेश में संग्राम सिंह का तथा सूरजमल और ज्वाला को बन्दी बनाए हुए, कुछ भील सैनिकों का प्रवेश)

तारा—मेवाड़ के सम्मान के रक्षक, मेवाड़ के सच्चे सपूत आज मालवा के सुलतान की सेना को पराजित कर और देश से द्रोह करनेवाले सूरजमल और ज्वाला को बन्दी बनाकर महाराणाजी का आशीर्वाद प्राप्त करने आए हैं।

× × ×

(यमुना का प्रवेश)

यमुना—(ज्वाला से) अनर्थ हो ही गया राजकुमारी! मैं उन्हें रोक नहीं पाई। सिरोही नरेश ने मालवा की सेना को निकट आई ज्ञात कर योजना के अनुसार अन्नागार में आग लगा ही दी, किन्तु जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह मेवाड़ की विजयी सेना है, तो उन्होंने भी अग्नि में प्रवेश कर जीवनाहुति दे दी।

ज्वाला—सचमुच अनर्थ हो गया, यमुना!

यमुना—(महाराणा से) महाराणाजी! इस अनर्थ का कारण मैं हूँ। मुझे दण्ड दीजिये। मेरे ही कारण राजकुमार पृथ्वीराज के प्राण गए। मैंने ही पिशाचिनी बनकर राजकुमारी आनन्द देवी की मांग का सिंदूर चाट लिया। महाराणाजी मुझ हत्यारिन को दण्ड दीजिए।

× × ×

ज्वाला—काकाजी! विध्वंस का खेल अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर अब समाप्त हो गया है। खेल में हार कैसी? जीत कैसी? अनुताप कैसा? शान्ति कैसी? आप क्षत्रिय हैं, भगवान राम के वंशज हैं, आपका जीवन लोककल्याण के लिए है। क्रोध में आकर मैंने और दादा भाई (सूरजमल) ने मेवाड़ की राजलक्ष्मी को रक्त के समुद्र में विसर्जित करना चाहा, किन्तु आपके तेजस्वी और दूरदर्शी पुत्र ने इस डूबती हुई नैया को उबार लिया।

महाराणा रायमल—मेरा पुत्र? कौन सा पुत्र?

(संग्राम सिंह आगे बढ़ कर महाराणा के चरण छूता है)

संग्राम सिंह—(कृत्रिम स्वर में) मेवाड़ का प्रत्येक व्यक्ति आपका पुत्र है।

सूरजमल—और इस नाते सूरजमल भी आपका पुत्र है। बंधे न हों तो मेरे हाथ जो कल तक आपके मस्तक के ग्राहक रहे हैं वे आपके चरणों की रज अपने

मस्तक पर धरने में सौभाग्य मानें।

संग्राम सिंह—(नकली दाढ़ी-मूछें हटाकर) दादा भाई ! मेवाड़ यही तो आपके मुख से सुनना चाहता था। (भील सैनिकों से) बन्दियों के बन्धन खोल दो (सैनिक ज्वाला और सूरजमल के बन्धन खोलते हैं। संग्राम सिंह ने सारे मेवाड़ियों को बन्धन मुक्त करने के लिए वनवास और अज्ञातवास का व्रत लिया था। आज उसके प्रकट होने की स्वर्ण बेला आ गई है।

('कीर्ति-स्तम्भ', तीसरा अंक, आठवाँ दृश्य, पृ० २०७-२१०)

हरिकृष्ण प्रेमी ने अपने नाटक में संग्राम सिंह के उज्ज्वल चरित्र का सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। चारणी की भविष्यवाणी के बाद पृथ्वीराज ने संग्राम सिंह पर आक्रमण किया था। दोनों मे युद्ध हुआ था। पृथ्वीराज को रायमल ने देश से निकाल दिया था। पश्चात उसने तोड़ा राज्य का उद्धार कर लाल पठान को मारा और तारा से विवाह किया किन्तु उसके बहनोई के विषपान से उसकी मृत्यु हुई। संग्राम सिंह ने राजगद्दी का मोह त्याग कर अज्ञातवास किया और मेवाड़ की आजादी के लिए अलख जगाया। उसने भीलों की सेना एकत्रित की और जब सूरजमल तथा ज्वाला के षड्यन्त्र से मालवा के सुलतान ने मेवाड़ पर आक्रमण किया तो उसने अपनी भीलो की वीर सेना से उसे परास्त कर मेवाड़ की स्वतन्त्रता को बचाया।

इतिहास मे राणा संग्राम सिंह ऐसे ही वीर कार्यो से प्रसिद्ध है। उन्होने पानीपत के मैदान से बाबर को परास्त किया था।

प्रेमीजी ने 'कीर्ति-स्तम्भ' नाटक के माध्यम से मेवाड़ के वीरों की कीर्ति-गाथा को सशक्त भाषा मे प्रस्तुत किया है।

नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी ने कीर्ति-स्तम्भ की भूमिका (दर्पण) के उपसंहार मे लिखा है—"मैंने नाटक की रचना निरुद्देश्य नहीं की है। भारत सदियों की पराधीनता के पश्चात स्वतन्त्र हुआ है और अब इसे नवार्जित स्वतन्त्रता की रक्षा भी करनी है एवं राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और शक्तिशाली भी बनाना है। प्राचीन इतिहास हमारी शक्ति और दुर्बलता का दर्पण है। मैंने बार-बार यह दर्पण अपने देशवासियों के सम्मुख रखा है ताकि हम अपने जीवन से उन दुर्बलताओं को दूर करें, जिन्होंने हमें पराधीनता में बांधा और फिर स्वतंत्र किया तथा उन गुणों का विकास करें जिनकी राष्ट्र के नव-निर्माण में अपेक्षा है। ('कीर्ति-स्तम्भ', भूमिका (दर्पण), पृ० ५)

'कीर्ति-स्तम्भ' के पहले अंक के पहले दृश्य में जिस राष्ट्रीय गान को 'कीर्ति-

स्तम्भ' के सामने प्रस्तुत किया गया है, वह इस प्रकार है—

झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
इसका रंग केसरिया है,
दिनकर इसके मध्य उगा है,
मानो अभी प्रभात हुआ है
छाया प्राणों में उजियारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।

लहर-लहर लहराने वाला,
उर में जोश जगाने वाला,
करता रणमद में मतवाला,
वीरों को प्राणों से प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा॥

बाप्पा के वंशज बलिदानी।
एकलिंग के गण अभिमानी,
कभी शत्रु से हार न मानी,
यम को भी रण में ललकारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा॥

('कीर्ति-स्तम्भ', नाटक; पृ० ३)

द्विजेन्द्रलाल का 'प्रताप सिंह' नाटक

स्वतन्त्रता के अमर सेनानी और स्वदेश-प्रेम के अनन्य उपासक प्रताप का चरित्र एक ऐसी उदात्तता का प्रतीक है, जिसकी मिसाल विश्व इतिहास में विरल है। टॉड के 'राजस्थान' में इस आजादी के दीवाने का जो वर्णन किया गया है, आज वह स्वतन्त्रता, देश-प्रेम और आत्म-त्याग का पर्याय बन कर मिथक बन गया है। ऐसे वीर शिरोमणि राणा प्रताप के जीवनवृत्त को लेकर बंगला-साहित्य में कई नाटक और आख्यान लिखे गए, किन्तु ऐतिहासिक अक्षुण्णता की दृष्टि से द्विजेन्द्रलाल राय का 'राणा प्रताप सिंह' (८ मई, १९०५) नाटक एक सफल और युगधर्मी कृति है। इस तथ्य को एक स्वर से बंगला के सुधी आलोचकों ने स्वीकार किया है।

प्रताप का गौरवमय चरित्र समस्त भारतीय जनता को आजादी की प्रेरणा देने वाला चरित्र रहा है। हिन्दी साहित्य में इनके देश-प्रेम को लेकर प्रचुर साहित्य रचा गया है, किन्तु इनमें कवि श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी', जयशंकर प्रसाद की 'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता एवं गणेशशंकर विद्यार्थी का साप्ताहिक 'प्रताप' में सम्पादकीय कुछ ऐसे हस्ताक्षर और दस्तावेज हैं जो हिन्दी की थाथी कहे जा सकते हैं। गणेशशंकर विद्यार्थी का कथन उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है—

'प्रताप हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप! दृढ़ता और उदारता का प्रताप! तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता, स्वतंत्रता और तपस्या का आदर है तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्योछावर करते।'

ऐसे ही वीर प्रताप पर द्विजेन्द्रलाल राय ने 'प्रताप सिंह' नाटक की रचना की। बंगला में इसके पूर्व ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने 'अश्रुमति' नाटक में प्रताप के चरित्र पर प्रकाश डाला है और गिरीशचन्द्र घोष ने भी अपने अधूरे नाटक 'राणा प्रताप' में प्रताप की वीरता, धीरता और स्वातन्त्र्य-प्रेम पर कलम चलाई है। इन नाटकों पर हम पहले ही विचार कर चुके हैं। 'अश्रुमति' में इतिहास की अन्याय कल्पना की अतिरंजना है। गिरीश बाबू ने 'राणा प्रताप' लिखने की प्रेरणा १९०४ ई० में जुटाई पर बाद में वे 'सिराजुद्दौला' नाटक लिखने लगे और इसी बीच १९०५

ई० में द्विजेन्द्रलाल का 'राणा प्रताप सिंह' नाटक प्रकाश में आ गया। इस कारण उन्होंने दो अंक लिखने के बाद अपने संकल्प का परित्याग कर दिया।

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० अजित कुमार घोष के शब्दों में कहना पड़ता है—'द्विजेन्द्रलाल के ऐतिहासिक नाटकों का युग सही अर्थों में 'राणा प्रताप सिंह' नाटक से ही समझा जाना चाहिए। 'राणा प्रताप सिंह' नाटक से ही महाव्रतनिष्ट स्वदेशी भावना का सूत्रपात होता है।'

आपने आगे लिखा है—'स्वाधीनता संग्राम के श्रेष्ठतम सैनिक प्रताप के अतुल वीरत्व, अनुपम देश-प्रेम एवं अलौकिक त्याग के यशस्वी चरित्र को नाटककार ने बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से रेखांकित किया है। हो सकता है आधुनिक भावबोध के परिप्रेक्ष्य में प्रताप की सूक्ष्म कुल मर्यादा का बोध संगति न रखता हो, लेकिन स्वदेश-रक्षा के लिए ऐसे त्याग की बात किस जाति, देश और इतिहास में मिलती है? दृढ़ संकल्प की साधना में इतना दुस्सह क्लेश किसने अंगीकार किया है और त्याग का ऐसा उदाहरण कहाँ मिलता है? कष्ट-सहिष्णुता का ऐसा जीवन किसने भोगा है? वंश-गौरव की रक्षा में उन्हें कितने ही वीर राजपूतों की सहायता से वंचित होना पड़ा, अपने भाई शक्ति सिंह को पाकर भी खोना पड़ा, अन्याय का प्रतिकार करने में अपनी सहधर्मिणी को गंवाना पड़ा, ऐसा चरित्र स्तुत्य ही नहीं वरेण्य है।' ('बांग्ला नाटकेर इतिहास'—डॉ० अजित कुमार घोष, पृष्ठ २०६)

असल में द्विजेन्द्रलाल की ख्याति उनके ऐतिहासिक नाटकों से बंगला-साहित्य में ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय-साहित्य में हुई। उन्होंने 'ताराबाई' नाट्य-रचना के माध्यम से टॉड के 'राजस्थान' का सूक्ष्म दृष्टि से अन्वेषण किया और उनके उपादानों से 'ताराबाई' के पश्चात 'राणा प्रताप सिंह', 'दुर्गादास' और 'मेवाड़-पतन' नाटक लिखे। 'ताराबाई' की रचना के काल तक द्विजेन्द्रलाल की अपनी शैली नहीं बन पाई थी, किन्तु 'राणा प्रताप सिंह' नाटक के लिखने से उनकी एक विशिष्ट शैली सामने आई। यह परिवर्तन महत्व का समझा जाता है। 'ताराबाई' में नाटककार ने पद्य शैली अपना कर उसे गीति-नाट्य का रूप दिया था, पर 'राणा प्रताप सिंह' नाटक में पद्य के स्थान पर उन्होंने गद्य में सम्वाद लिखे।

सार-संक्षेप

द्विजेन्द्रलाल राय ने 'राणा प्रताप सिंह' नाटक का कथानक टॉड कृत 'राजस्थान' से लिया है और ऐतिहासिकता की दृष्टि से रचनाधर्मिता का ईमानदारी

से पालन किया है। 'राणा प्रताप सिंह' नाटक का सार-संक्षेप इस प्रकार है—

मेवाड़ के राज्य से च्युत होने के बाद प्रताप सिंह ने राजपूत सरदारों के समक्ष मेवाड़ की राजधानी चित्तोड़ का उद्धार करने के लिए काली माता के सम्मुख कठिन शपथ ली। राजपूताने का सारा प्रदेश मुगल साम्राज्य के अधीन हो गया, प्रताप अपने परिवार और सरदारों को लेकर अरावली के अरण्य में आश्रय लेते हैं, इधर मेवाड़ पर मुगलों का अधिकार होने पर वह निरजन श्मशान तुल्य हो गया है। प्रताप के आदेश से मेवाड़ वासियों ने मेवाड़ का परित्याग कर दिया है। सम्राट अकबर प्रताप के प्रताप को पराजित करने के लिए अपने प्रधान सेनापति मानसिंह को प्रताप के विरुद्ध अस्त्र धारण करने के लिए कहता है। इस बीच मानसिंह प्रताप के पास अपनी कन्या का सम्बन्ध उनके पुत्र अमर सिंह से करने के उद्देश्य से जाता है, पर अपमानित होता है। फलतः वह एक बड़ी मुगल सेना लेकर प्रताप पर आक्रमण करता है। हल्दीघाटी के युद्ध क्षेत्र में घमासान युद्ध होता है। अकबर का पुत्र युवराज सलीम भी युद्ध में आता है। प्रताप बड़े साहस से वीर राजपूतों को लेकर अकबर की विशाल सेना का सामना करता है। किन्तु राजपूत सेना पराजित होती है। प्रताप का घोड़ा 'चेतक' राणा को लेकर युद्ध क्षेत्र से सुरक्षित स्थान में भाग जाता है और झाला प्रताप की रक्षा में प्राण गंवाता है। चेतक भी स्वामी की प्राण रक्षा कर स्वर्ग सिधारता है। शक्तिसिंह दो मुगल सैनिकों को मारकर प्रताप की जीवन-रक्षा करता है। दोनों बिछुड़े भाई मिलते हैं। प्रताप बाद में परिवार सहित घोर जगल में कष्ट का जीवन बिताते हैं। परिवार के कष्ट और बच्चों की क्षुधा को देखकर उनके मन में समर्पण की भावना जगती है, पर विश्वस्त सरदारों की प्रेरणा से उनका मन बदल जाता है। पृथ्वीराज और भामाशाह इसमें काफी मदद करते हैं। पृथ्वीराज के पत्र और भामाशाह के अर्थबल से मनोबल ऊँचा होता है। फिर एक बड़ी राजपूत सेना संगठित होती है। पच्चीस वर्ष तक स्वतन्त्रता का अलख जगाने के उपरान्त जीवन की सन्ध्यावेला में प्रताप मेवाड़ के अधिकांश भाग का पुनरुद्धार करते हैं लेकिन चित्तौड़ का उद्धार होने के पूर्व ही वह वीर आँख मूंद लेता है—चित्तौड़ उद्धार की उनकी आशा पूरी नहीं होती है।

बंगभंग की स्वदेश भावना

१९०५ ई० में आरम्भ होनेवाले बगभंग आन्दोलन की स्वदेश भावना से अनुप्राणित होकर उसी वर्ष द्विजेन्द्रलाल राय ने 'राणा प्रताप सिंह' नाटक का प्रणयन किया। टॉड के 'राजस्थान' से कथानक लेकर बंगला-साहित्य में सबसे अधिक ऐतिहासिक नाटक द्विजेन्द्रलाल राय ने ही लिखे हैं। उन सबमें यह नाटक ऐतिहासिकता की दृष्टि से पूर्ण नाटक है—क्योंकि टॉड की प्रत्येक घटना का नाटक में उल्लेख हुआ है। डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य ने लिखा है—'स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात

होने के साथ ही साथ द्विजेन्द्रलाल ने देशभक्ति के आदर्श को लक्ष्य में रखकर 'राणा प्रताप सिंह' नाटक की रचना की। इस नाट्य-कृति से उन्होंने बंगला-साहित्य में एक स्वतंत्र नवीन नाटक रचना के युग का आरम्भ किया। द्विजेन्द्रलाल की स्वतंत्र नाट्य-शैली के साथ भाषा का निखार और सौष्ठव भी इसी नाटक से शुरू हुआ।' (बांग्ला नाट्य साहित्येर इतिहास—डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य, पृष्ठ ६८२)

रोमांस का वृतान्त

'राणा प्रताप सिंह' नाटक की मूल कहानी के साथ प्रताप के भाई शक्तिसिंह और अकबर की भगिनी दौलत-उ-न्निसा की रोमांटिक कहानी का भी समावेश हुआ है, लेकिन मूल कहानी से इस रोमांस की संगति नहीं बैठती। अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा के व्यर्थ-प्रणय का एक रोमांटिक वृतान्त भी इसमें उल्लिखित हुआ है। वह भी शक्ति सिंह से मानसिक अनुरक्ति रखती थी, पर दौलत के लिए अपने प्रेम को उत्सर्ग करना चाहती थी। इतना कहना ही होगा कि इन रोमांटिक आख्यानों से राणा प्रताप के चरित्र का एक उज्ज्वल पक्ष उद्घाटित होता है, जो शायद नाटककार को अभीष्ट था। इस विचार से मेहर का चरित्र जितना प्रभावशाली बन पड़ा है, दौलत का नहीं।

नाटक में प्रताप सिंह, शक्ति सिंह, मानसिंह आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। इन तीन चरित्रों का ही चरित्र-चित्रण नाटक में हुआ है। स्त्री पात्रों में प्रताप की पत्नी लक्ष्मी का चरित्र जितना उभर कर सामने आया है, अन्य किसी का नहीं। इतिहास की निर्देशना से घटनाओं का सम्यक् उद्घाटन तो हुआ है, पर रोमांटिक अंश को लगता है जबरन ठूँसने की कोशिश की गई है। नहीं तो दौलत-उ-न्निसा का युद्धक्षेत्र-शिविर में केवल एक दृष्टि देखने मात्र से ही प्रेमासक्त हो जाना कुछ अजीब किस्म का लगता है। तब तक बम्बइया फिल्मों की कल्पना शायद नहीं की गई थी लेकिन द्विजेन्द्रलाल ने ऐसी अस्वाभाविकता का मनगढ़न्त वृतान्त दिया है। नाटककार ने कथोपकथन में उपन्यास की घटनाओं में ऐसा घटित होने का संकेत दिया है। सम्भवतः इसी कारण बंगला-साहित्य के प्रख्यात इतिहासकार डॉ० सुकुमार सेन ने अपने वक्तव्य में कहा है—'प्रताप सिंह' 'राणा प्रताप' नाम से स्टार थियेटर में अभिनीत हुआ था। द्विजेन्द्रलाल के इस गद्य-नाटक को नाट्योपन्यास कहना ज्यादा सही होगा। नाटक में कहानी उपन्यास की कहानी-धारा में प्रवहमान है। अंकों और दृश्यों में विभाजित होने पर तथा कथोपकथन के होने से भी कहानी उपन्यास की भांति सपाट बयानी है।

यथा—शक्ति सिंह स्तम्भित हो गए, इसके बाद क्या उत्तर देंगे। सोचा, आश्चर्य है, मैं भ्रमित हूँ, नहीं तो इस बालिका के छोटे-से प्रश्न का मैं उत्तर देने में निरुत्तर हूँ। कुछ देर वे चुपचाप सोचने लगे। फिर बोले—'इरा मैं इसका क्या उत्तर दूँ, समझ नहीं पा रहा हूँ, अच्छा सोचूँगा।' (बांग्ला साहित्येर इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३८९)

कठोर-व्रत

काली की मूर्ति के सामने प्रताप ने देशोद्धार की जो प्रतिज्ञा की उसका वर्णन टॉड के 'राजस्थान' में है। राणा ने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक चित्तौड़ का उद्धार नहीं होगा वे राजसी सुख-भोग का परित्याग करेंगे, सोने-चांदी के बर्तनों की अपेक्षा भोजपत्रों में रूखा-सूखा भोजन करेंगे, दाढ़ी नहीं बनायेंगे, तृण की शैया पर शयन करेंगे, मुगलों से किसी प्रकार का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करेंगे। इन तमाम प्रतिज्ञाओं का उल्लेख देखिए टॉड ने किस ओजस्विता से अपने वृहद ग्रन्थ में किया है—

Pertap succeeded to the titles and renown of an illustrious house, but without a capital, without resources, his kindred and clans dispirited by reverces; yet possessed of the noble spirit of his race, he meditated the recovery of Cheetore the vindication of the honour of his house and the restoration or its power. (Ibid, Page 264).

'राणा प्रताप सिंह' नाटक में नाटककार ने दिखाया है कमलमीर के जंगल में राणा प्रताप अपने राजपूत सरदारों के साथ काली मन्दिर में काली की मूर्ति के सामने प्रतिज्ञा करते हैं—

प्रताप—काली माँ के सामने सभी शपथ करो!

सभी राजपूत सरदार—हम शपथ करते हैं!

प्रताप—हम चित्तौड़ के लिए जरूरत पड़ने पर अपने प्राण तक देंगे!

सभी—हम चित्तौड़ के लिए प्राण देंगे!

प्रताप—जब तक चित्तौड़ का उद्धार न हो, तब तक भोजपत्रों में भोजन करेंगे, तब तक तृण-शैया पर शयन करेंगे, तब तक विलास का परित्याग करेंगे। और प्रतिज्ञा करो कि हम और हमारे वंशधर मुगलों के साथ कोई सम्बन्ध-सूत्र स्थापित नहीं करेंगे।

सभी—हम प्रतिज्ञा करते हैं........

('द्विजेन्द्र रचनावली', प्रथम खण्ड, 'राणा प्रताप सिंह' नाटक—प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृष्ठ ६१)

नाटक में दिखाया गया है कि राणा प्रताप ने जब चित्तौड़ का परित्याग कर दिया तो उन्होंने मेवाड़ वासियों से भी मेवाड़ छोड़ कर अरावली के जंगलों में निवास करने का आदेश दिया। इसे सभी मेवाड़ के लोगों ने स्वीकार किया। राणा का इसके पीछे उद्देश्य था कि भले ही अकबर ने मेवाड़ पर अधिकार कर लिया है, पर उसे मेवाड़ से एक छदाम भी कर न मिले और वह विधवा-मेवाड़ पर अपना स्वत्व न जताये। एक दिन राणा के निर्देश की अवमानना करके एक भेड़पालक चरवाहा जब चित्तौड़ के निकट पहाड़ी भूमि पर भेड़ें चरा रहा था तो यह देखकर प्रताप क्रोधित हुए। उन्होंने उसकी हत्या कराकर अकबर को चुनौती दी। इस घटना का वर्णन टॉड के 'राजस्थान' में भी है और नाटक में भी। देखिए—

(राणा प्रताप का सैनिक एक गड़ेरिये को पकड़ कर राणा प्रताप के सामने लाता है।)

राणा प्रताप—तुमने मेरी आज्ञा सुनी है ?

चरवाहा—हाँ, सुनी है।

प्रताप—तो भी तुम भेड़ चरा रहे थे—क्यों ?

चरवाहा—मुगल दुर्गाधिपति की आज्ञा से।

प्रताप—तब दुर्गाधिपति ही तुम्हारी प्राण रक्षा करेगा। मैं तुम्हें प्राण दण्ड की आज्ञा देता हूँ।

(वही, प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य, पृष्ठ ६७)

गडेरिये की हत्या

टॉड के 'राजस्थान' में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है—

"राणा प्रताप ने अपने पितृ पुरुषों की श्रेष्ठ रीति का अनुसरण करके सघन और दुर्गम पहाड़ी स्थानों में अपनी सेना के मोर्चे बनाये। तथा शीघ्र ही इस मर्म की आज्ञा का प्रचार किया कि जिस किसी को हमारी अधीनता स्वीकार करनी हो, वह शीघ्र ही बस्ती छोड़कर परिवार सहित पर्वतों में आकर आश्रय ग्रहण करे, नहीं तो वह शत्रु समझा जायेगा और प्राणदण्ड से दण्डित होगा।' इस आज्ञा के प्रचारित होते ही प्रजागण अपने अपने स्थानों को छोड़कर दल के दल मेवाड़ की पर्वत-माला में आकर बसने लगे। थोड़े दिनों के बीच में ही मेवाड़ के अधिकांश स्थान सूने हो गए। इस बात की परीक्षा करने के लिए कि हमारी आज्ञा का भलीभांति पालन

होता है या नहीं, प्रताप सिंह सवारों को साथ लेकर एकान्त गिरि निवास को छोड़ कर पर्वत के नीचे जाते और सभी स्थानों को भलीभांति देखकर दुर्गम पर्वतवास में लौट आते।

एक समय वे अपने सेवकों को साथ लिए हुए अन्तल्ला नामक स्थान में, जो कि बनास नदी के तीर पर बसा हुआ था, भ्रमण कर रहे थे। उस समय उन्होंने देखा कि एक अजपालक उन उपजाऊ खेतों में निर्भय होकर बकरियाँ चरा रहा है। अभागे चरवाहे ने समझा था कि उसे कौन देखता है, इस कारण अपने राजा की आज्ञा का निरादर करके निर्भय होकर घूम रहा था। राणाजी ने राजाज्ञा का अपमान करने के कारण दो चार प्रश्न करके उसे प्राण दण्ड दिया तथा राजद्रोहियों को ऐसा दण्ड दिया जाता है, इसे दिखाने को उसकी मृतक देह एक वृक्ष पर टांग दी।" (टॉड का 'राजस्थान' पृष्ठ २८२)

मानसिंह की इच्छा

'राणा प्रताप सिंह' नाटक में दिखाया गया है कि राणा ने उस चरवाहे का सिर काटकर मुगल दुर्गपति के दरवाजे पर टंगवा दिया। इस तरह इतिहास की छोटी-छोटी बातों का भी द्विजेन्द्रलाल राय ने नाटक में वर्णन किया है। राजा मानसिंह के अपमान का वृतान्त भी नाटक में इतिहास के अनुरूप हुआ है, पर मानसिंह अपनी कन्या का विवाह राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह से करने की मनोकामना लेकर गया था। इस प्रकरण का उल्लेख टॉड ने नहीं किया है। असल में यह नाटककार की अपनी कल्पना की उपज है। इस घटना के द्वारा द्विजेन्द्रलाल ने अपने व्यक्तिगत सामाजिक विचारों का प्रतिपादन मान सिंह के मुख से कराया है। मानसिंह मुगलों का दास है, वह अकबर के साले का पुत्र है तथा युवराज सलीम के साथ उसकी भांजी के विवाह की बात चल रही है। इस दृष्टि से हिन्दुओं के राजपूती समाज में वह निन्दा का पात्र बना हुआ है और नीची निगाह से देखा जाता है। कदाचित इसी कारण वह अपनी कन्या का विवाह राणा प्रताप के पुत्र से करना चाहता है। इससे उसकी कुल-मर्यादा की वृद्धि की आशा है। क्योंकि उस समय केवल मेवाड़ के राणा प्रताप ने ही अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की थी और सारे राजपूताने में उसने अपना गर्वोन्नत सिर ऊँचा कर रखा था। इस प्रसंग का उल्लेख नाटक में इस प्रकार हुआ है—

अकबर ने जब मानसिंह को बुलाकर कहा—'प्रताप सिंह ने हमारे एक चरवाहे को प्राण दण्ड दिया है और तीन बार मुगल सेना को निर्मूल किया है। ऐसे हिंसक बाघ को खुला छोड़ना उचित नहीं। अब उस पर आक्रमण करना ही होगा। महाराजा मानसिंह ! आपका क्या विचार है ?'

मानसिंह ने जवाब दिया—'मेरा विचार है कि शोलापुर से लौटते समय प्रताप सिंह से भेंट कर लूँ। यदि चतुराई और कौशल से काम बन जाता है तो बुरा क्या है ? अर्थात बिना युद्ध के ही, बिना रक्तपात के बाघ को बस में किया जा सकता है तो युद्ध की क्या आवश्यकता है ? नहीं तो युद्ध होगा ही।'

'उत्तम।' यह कह कर अकबर चला गया और राजा मानसिंह सोचने लगा—'आमी एइ प्रस्तावेर जोन्ये प्रस्तुत होयेई एसे छिलाम। रेवार (मानसिंहेर कन्या) विवाहेर जोन्ये पिता पुनः पुनः अनुरोध करें पाठाच्छेन। आमार इच्छा जे प्रताप सिंहेर ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंहेर संगे ताहार विवाह प्रस्ताव करे देखी, जदि प्रताप के सम्मत करते पारि। एइ कलकित अम्बरवंश के जदि मेवारेर निष्कलंक रक्ते परिशुद्ध करे निते पारि। आमरा सब पतित। एई कलंकित विपुल राजपूत कुले—प्रताप, उडछे केवल तोमारई एक शुभ्र पताका ! धन्य प्रताप !'

अर्थात मैं इस प्रस्ताव के रखने के उद्देश्य से ही आया था। पिताजी रेवा के विवाह के लिए बार-बार आग्रह कर रहे हैं। मेरी इच्छा है कि राणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमर के साथ रेवा का विवाह प्रस्ताव रखा जाय। अगर प्रताप को राजी कर सका तो अपने को धन्य मानूंगा। अगर कलंकित अम्बरवंश का सम्बन्ध निष्कलंक मेवाड़वंश से हो जाय तो हमारा रक्त भी शुद्ध हो जायेगा। हम सब पतित हैं। हम कलंकित राजपूतों में केवल प्रताप की निष्कलंक उज्ज्वल पताका उच्चाभिमान से उड़ रही है। प्रताप ! तुम धन्य हो। (वही, प्रथम अंक, षष्ठ दृश्य, पृष्ठ १०३-१०४)

यह नाटककार द्विजेन्द्रलाल की अपनी उद्‌भावना है और राणा प्रताप के प्रति भक्ति।

हिन्दुओं की संकीर्णता, उनका जातीय अहम और उनकी उच्चाशयता ने ही उन्हें पराधीन बनाया है, अन्यथा यवनों का आधिपत्य भारत भूमि पर नहीं होता। अपनी इस मान्यता की स्थापना करने के लिए नाटककार ने तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक कुसंस्कारों की अच्छी खासी खिंचाई की

है। नाटक के पंचम अंक के षष्ठ दृश्य में दिखाया गया है कि अकबर के दरबारी राजपूत राजा मानसिंह की एकान्त पुष्पवाटिका में धर्म-समाज पर चर्चा कर रहे हैं। चर्चा में भाग लेने वाले राजपूत हैं मारवाड़, बीकानेर, ग्वालियर, चन्देरी के राजागण। मानसिंह कहता है—'महाराज, स्वाधीनता! जाति का जीवन रहने पर तो स्वतंत्रता की बात उठती है। वह जीवन्तता कब की समाप्त हो गई है। जाति अब सड़-गल रही है।'

चन्देरी के राजा—'सो कैसे?'

मानसिंह—क्या इसे भी प्रमाण देकर समझाना होगा? क्या यह आलस्य की निन्द्रा, उदासीनता, निष्चेष्टता, जीवन्तता के लक्षण हैं? द्रविड़ के ब्राह्मण, वाराणसी के ब्राह्मणों के साथ भोजन नहीं कर सकते, सामुद्रिक यात्रा करने से जाति भ्रष्ट होती है, धर्म भ्रष्ट होता है। धर्म केवल बाह्याडम्बरों से घिर गया है। ये जीवन्त जाति के लक्षण नहीं हैं। भाई की भाई से ईर्ष्या, द्वन्द्व, अहंकार, ये जीवन्त जाति के लक्षण नहीं हैं। वे दिन खत्म हो गए महाराज, जब जाति और धर्म में सत्य, प्रेम के लिए निष्ठा थी।'

बीकानेर के राजा—'वे दिन फिर आ सकते हैं, बशर्ते हिन्दू एक हों।'

मानसिंह—'यही तो नहीं हो रहा है। हिन्दुओं का प्राण और मन इतना शुष्क हो गया है, इतना जड़ हो गया है, इतना जीवन से कट गया है कि एकता नामुमकिन है।'

ग्वालियर के राजा—'इसके मानी उनमें कभी एकता नहीं होगी?'

मानसिंह—'होगी, उस दिन होगी, हिन्दू जब शुष्क शून्यता की, जीर्ण आचरण की खोल से मुक्त होकर बाहर निकलेंगे और जीवन्त, जागृत, विद्युत् के बल से कम्पमान नवधर्म को ग्रहण करेंगे।'

(वही, पंचम अंक, षष्ठ दृश्य, पृष्ठ १५६)

असल में उक्त कथोपकथन में नाटककार ने समसामयिक विचारधारा को नाटक में दर्शाने या यूं कहें ठूंसने की कोशिश की है तथा मानसिंह के मुख से अपने विचार व्यक्त कराये हैं। जैसे राजा मानसिंह के साथ प्रताप ने भोजन नहीं किया, क्योंकि वे उसे अकबर का जरखरीद गुलाम मानते थे, जिसने अपनी बूआ (फूफी) का विवाह अकबर से कराया था। नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय की भी, जब वे अंग्रेजी में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण कर विलायत की यात्रा (१८८४ से १८८६ ई०) की थी, तब कट्टरपंथी-

पोंगापंथी हिन्दू-समाज का कोप भाजन बनना पड़ता था। उस समय समुद्रयात्रा करनेवाले को जाति बहिष्कृत किया जाता था। इसीलिए उन्होंने राजा मानसिंह के मुख से कहलवाया है—"सामाजिक संकीर्णता का विसर्जन किए बिना देश प्रेम का कोई माने नहीं, वह अर्थहीन और एकांगी है।" प्रताप की पराजय के मूल में राजपूत जाति की संकीर्ण मनोवृत्ति मुख्यतः दोषी है, इस कटु सत्य को मानसिंह के कथन से प्रचारित करना ही नाटककार का अभीष्ट था, जिसे उसने उजागर किया है। सामाजिक सहिष्णुता की दृष्टि से प्रताप सिंह के चरित्र में उदारता नहीं थी, मानसिंह के परिवार ने मुगल परिवार से वैवाहिक नाता जोड़ा था, इस कारण उन्होंने मानसिंह का अपमान किया, शक्ति सिंह ने मुगल रमणी दौलत-उ-न्निसा से विवाह किया था—इस कारण उन्होंने शक्तिसिंह का परित्याग किया। प्रताप के चरित्र की इस सामाजिक अनुदारता को दर्शाने के कारण ही कदाचित ट्रेजेडिक नायक के रूप में राणा प्रताप का चरित्र उतना ओजस्वी नहीं बन पड़ा है। यह भी कहा जा सकता है कि देशात्मबोध के नाटक में सामाजिक संकीर्णता का प्रश्न खड़ा कर नाटककार ने मूल लक्ष्य से अपने को एकांगी बना लिया है।

शक्ति सिंह का चरित्र

प्रताप के भाई शक्ति सिंह का चरित्र नाटक में विशेष महत्व रखता है। नाटककार ने उन कारणों को दर्शाने की कोशिश की है, जिनकी वजह से शक्ति सिंह देशद्रोहिता, भ्रातृ-द्रोहिता और धर्म-द्रोहिता के लिए उच्छृंखल हो गया था। शक्ति सिंह के द्वारा अकबर को अपना परिचय देते हुए कहलवाया गया है—"चूंकि शक्ति सिंह के जन्म पर ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि यह लड़का मेवाड़ (जन्मभूमि) के लिए अभिशाप बनेगा। जब शक्ति सिंह पाँच वर्ष का हुआ तब उसने एक दिन छुरा लेकर उसकी धार की परीक्षा लेनी चाही। शक्ति सिंह ने अपने हाथ की रेखाओं को मिटाने के लिए हाथ पर वार किया। जब उसके पिता उदय सिंह ने उसे ऐसा करते देखा तो उनको ज्योतिषियों की भविष्यवाणी पर यकीन हो गया और उन्होंने बालक शक्ति सिंह का वध करने की आज्ञा दी। जब शक्ति सिंह को वध करने के लिए ले जाया जा रहा था तभी शालुम्ब्राधिपति गोविन्द सिंह आ पहुँचे। उन्होंने बालक पर

दया की और अपना उत्तराधिकारी बनाया। गोविन्द सिंह ने बालक की प्राणभिक्षा मांगी। तबसे वह शालुम्राधिपति का पोष्यपुत्र हो गया और उन्हीं के साथ उनके राज्य में रहने लगा। कुछ दिन बाद गोविन्द सिंह के एक पुत्र पैदा हुआ। इस बीच प्रताप मेवाड़ के राणा बन गए और स्नेहवश शक्ति सिंह को अपने पास लिवा लाये।

शक्ति सिंह के जीवन की इस घटना का टॉड के इतिहास में उल्लेख नहीं है। यही कारण था कि न तो शक्ति सिंह में मेवाड़ की जन्मभूमि के प्रति लगाव था और न ही बड़े भाई के प्रति अनुराग था। वह धर्म में विश्वास नहीं करता था। वह विद्वान होने के साथ तार्किक था और व्यंग्य-वाण चलाने में पटु था। किन्तु वह वीर और साहसी था। वह ज्येष्ठता से श्रेष्ठता का कायल था। इसीलिए उसने प्रताप से कई बार अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने का दुस्साहस किया था। अहरिया शिकार की घटना में एक सूअर को मारने में प्रताप और शक्ति सिंह का वाक्-युद्ध ही नहीं असली युद्ध हो गया था और राजपुरोहित ने बलिदान देकर दोनों को शान्त किया। ब्रह्महत्या के दोष से प्रताप ने शक्ति सिंह को निर्वासित कर दिया और वह बदले की भावना से अकबर से जा मिला। हल्दीघाटी के युद्ध में दो मुगल सैनिकों को मार कर शक्ति सिंह ने प्रताप की रक्षा की। इन तमाम बातों का उल्लेख नाटक में हुआ है और टॉड ने अपने ग्रन्थ में भी किया है।

टॉड के वर्णन में उल्लेख है कि जब सलीम को पता चला कि शक्ति सिंह ने दो मुगल सैनिकों की हत्या कर प्रताप की रक्षा की है तब पहले तो वह क्रोधित हुआ, पर बाद में सत्य वचन सुनकर सन्तुष्ट हो गया, किन्तु 'राणा प्रताप सिंह' नाटक में दिखाया गया है कि शक्ति सिंह की तेज तर्रार वाक्शक्ति, असीम साहस और मुगलों के विरुद्ध कटाक्ष वाण-वचनों से दर्शक हर्षित हो जाते हैं। वह अकबर की कूटनीति और भारत की लूट का बड़े शब्दों में विरोध करता है। इससे कुपित होकर सलीम उसे पदाघात कर जेल के शिकंजों में बन्दी बना लेता है। जेल से मेहरुन्निसा उसे छुड़ाती है और शक्ति सिंह तथा दौलत-उ-न्निसा को पलायन करने में मदद देती है। शक्ति सिंह दौलत से विवाह करता है। दोबारा अकबर की सेना का जब महावत खाँ के सेनापतित्व में आक्रमण होता है तब दौलत युद्ध में मर जाती है। शक्ति सिंह विक्षिप्त हो जाता है। वह सलीम के पदाघात का बदला लेने दिल्ली आता है। उस समय सलीम राजा मानसिंह की भांजी से विवाह करने के

लिए दूल्हा बनकर जा रहा है। बारात में एक पागल के वेष में शक्ति सिंह आता है और हाथी के ओहदे से सलीम को खींच कर पदाघात करता है—कहता है—"मैं शक्ति सिंह हूँ, सलीम—यह लो पदाघात का बदला सूद सहित" और दो बार सलीम को भरे बाजार में दो लात मारता है और अपनी पिस्तौल से आत्महत्या कर लेता है। ('राणा प्रताप सिंह' नाटक, पंचम अंक, सप्तम दृश्य, पृष्ठ १५८)

शक्ति सिंह के चरित्र को तथा उसकी प्रेम कहानी को नाटककार ने विशेष रुचि के साथ चित्रित किया है। इस प्रेम-कहानी के ताने-बाने मे जिन नारी पात्रो का जिक्र आया है, वे नाटककार की अपनी सूझ के, उनकी मौलिक प्रतिभा के निदर्शन है। जैसे नाटककार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने 'अश्रुमति' नाटक मे प्रताप की कन्या अश्रुमति का सलीम के प्रति प्रणय दर्शाया है—वही द्विजेन्द्रलाल राय ने 'प्रताप सिंह' मे अकबर की भगिनी दौलतउन्निसा एवं उसकी पुत्री मेहर-उ-न्निसा का शक्ति सिंह के प्रति प्रणय दिखाया है। दौलत तो शक्ति के साथ विवाह कर लेती है, पर मेहर अपने गुप्त प्रेम को हृदय मे छिपाये प्रताप के अरण्य-शिविर मे आती है। प्रेमिका को यह सन्तोष रहता है कि वह अगर शक्ति सिंह को न पा सकी तो कम-से-कम उसके निकट का साहचर्य प्राप्त कर सके। चूँकि प्रताप की पुत्री इरा के साथ मेहर-उ-न्निसा की शक्ति सिंह के युद्ध-शिविर मे मुलाकात हो चुकी थी। अत· मेहर के बारे मे कोई शका नहीं की जाती है। मेहर प्रताप से पुत्री का स्नेह पाती है और जब रुग्ण इरा परलोक सिधार जाती है तो मेहर इरा का स्थान ग्रहण कर प्रताप के पारिवारिक सदस्यो की भांति रहती है। यहाँ प्रताप के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष दिखाया गया है। जो प्रताप मानसिंह के साथ भोजन करने में कुल की हेठी समझता है, वही मेहर के हाथ का पकाया भोजन खाता है और उसे बेटी का दर्जा देता है। तब प्रताप पर संकीर्णता का अभियोग कैसे लगाया जा सकता है?

अमर की उद्दण्डता

इतना ही नही भोग-विलासी अमर सिंह सुरापान के नशे मे जब एक दिन मेहर का हाथ पकड कर असत् उद्देश्य की चेष्टा करता है तो प्रताप आग बबूला हो जाते हैं और अमर सिंह को दण्ड देने के लिए पिस्तौल निकालते है। कहते है—"मैं यह पहले से ही जानता हूं, जिस पुत्र का बचपन आलस्य और उद्दण्डता में बीता, उसका यौवन उच्छृंखल होगा ही। तुमने आश्रयिता रमणी के प्रति जो अशोभनीय आचरण दर्शाया है उसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी—मेरा पुत्र होकर ऐसा

कुकर्म करेगा इसे मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। कुलांगार! मैं तुझे दण्ड दूँगा—ठहरो। (कह कर पिस्तौल का निशाना बनाते हैं)।

बीच ही में अमर सिंह की माँ लक्ष्मी आ जाती है—"अमर सिंह शराब के नशे में है—उसे स्वामी, क्षमा करें।" पर प्रताप गोली चला देते हैं और गोली अमर सिंह के न लग कर लक्ष्मी के लग जाती है। वह महिमामयी देवी तत्काल स्वर्ग सिधार जाती है। (वही, अंक ५, दृश्य ४, पृ० १५२)

प्रताप का चरित्र

प्रताप के उदात्त चरित्र की बात जब मेहरुन्निसा प्रताप के शिविर से लौटकर अकबर को बताती है तो अकबर प्रताप के वीर चरित्र का कायल हो जाता है। अभी तक उसने उसके शौर्य को देखा था, पर अब उसने कष्ट-सहिष्णुता और मानवीय गुण से महिमान्वित तेज को देखा तो वह प्रताप के प्रति ईर्ष्या-भाव से विरत हो गया और उसने प्रताप पर पुनः आक्रमण करने का विचार छोड़ दिया। यहाँ यह भी दिखाया गया है कि अकबर को यह बात मन ही मन कचोटती थी कि उसकी पुत्री उसके परम शत्रु प्रताप के शिविर में है। उसने चित्तौड़ की एवज में मेहर को पाने का प्रस्ताव प्रताप के पास भेजा था, लेकिन प्रताप ने ससम्मान मेहरून्निसा को अकबर के यहाँ भिजवा दिया और कहलाया कि राजपूत सौदा नहीं करता, मेरे बाहुबल में ताकत होगी तो मैं खुद चित्तौड़ को जीतूँगा। यह है वीर केसरी प्रताप का औदार्य और आत्मबल।

ज्योतिरिन्द्रनाथ ने 'अश्रुमति' नाटक में अश्रुमति की अनुरक्ति सलीम के प्रति दर्शायी है और द्विजेन्द्रलाल राय ने 'प्रताप सिंह' नाटक में अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा को प्रताप के शिविर में दिखाया है। कदाचित यह द्विजेन्द्रलाल राय पर 'अश्रुमति' नाटक का प्रभाव है।

टॉड ने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में वर्णन किया है कि भामाशाह से अर्थबल प्राप्त कर राणा ने सेना का फिर से संयोजन किया और चित्तौड़ को छोड़ कर मेवाड़ के अधिकांश इलाकों को फिर से जीत लिया। उनकी चित्तौड़ उद्धार की कामना पूरी नहीं हुई।

The minister of Pertap (Bhama Sah) whose encestors had for ages held the office, placed at his prince's disposal their accumula-

ted wealth, which, with other resources is stated to have been equivalent to the maintenance of twenty-five thousand men for twelve years."

"In one short compaign (Sambat 1586, A.D. 1530) he had recovered all Mewar, except Cheetore, Ajmer and Mandelgurh, and determinig to have a slight ovation in return for the triumph Raja Maun had enjoyed (who had fulfilled to the letter his threat, that Pertap should "live in peril"), he invaded Amber, and sacked its chief mart of commerce, Malpoora" (Ibid, Page 275-276).

प्रताप की पुत्री इरा, अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा तथा पृथ्वीराज की पत्नी जोशी का जैसा मानवीय धरातल पर द्विजेन्द्रलाल ने चित्रण किया है, उनका विकसित रूप हमें उनके परवर्ती नाटकों यथा 'दुर्गादास' और 'मेवाड़ पतन' में मानसी, सत्यवती, कल्याणी, महामाया और सरस्वती में मिलता है।

नारी पात्र

इरा, मेहरुन्निसा और दौलतउन्निसा द्विजेन्द्रलाल के काल्पनिक नारी पात्र हैं, जो उनके मतवाद के प्रवक्ता हैं। इरा रक्तमास की मानवी नहीं है, नाट्यकार की भावनाओं की प्रतीक है। इरा के समक्ष देशप्रेम से बढ़कर मनुष्यत्व, परोपकार और विश्व-प्रेम है। तभी तो इस राजपूत कन्या के मुख से ध्वनित होता है—"नहीं पिताजी! यह धरती ही एक दिन स्वर्ग होगी। जिस दिन इस धरती पर परोपकार, प्रेम, भक्ति का प्राबल्य होगा, उस दिन असीम प्रेम की ज्योति विश्व को अपने आलिंगनपाश में आबद्ध कर मानवता का सिर ऊँचा करेगी। उस स्वार्थत्याग से ही धरती पर स्वर्ग उतर आयेगा।" (वही, अंक तीन, दृश्य ७, पृ० १०७)

इरा की इसी उक्ति में 'मेवाड़ पतन' नाटक की कल्याणी और मानसी की उद्भावना को स्पष्टतः खोजा जा सकता है। दौलतउन्निसा के चरित्र में नाटककार ने प्रेम की विश्व-विजयी भूमिका को दर्शाया है। मेहरुन्निसा के चरित्र में वैचारिक द्वन्द्व और तार्किकता विशेष लक्ष्य करने लायक है। समाज-धर्म विषय में उसके मुख से मनुष्यत्व की महिमा का गुणगान कराया गया है। वह जिस प्रकार अपने पिता अकबर से धर्म और समाज पर शास्त्रार्थ करती है, दर्शकों को थोड़ा आश्चर्य तो होता है, पर उसके तर्क अकाट्य हैं। वह नारी की स्वतंत्रता की पक्षधर है। अकबर स्त्री को पैरों की जूती से ज्यादा महत्व नहीं देता। वह हिन्दू स्त्री को बेगम तो बनाता है,

पर अपनी बेटी या भगिनी को हिन्दू की पत्नी बनाने में गौरवहानि समझता है। उसकी इसी दोगली नीति का शक्ति सिंह पर्दाफाश करता है। मेहरुन्निसा शक्ति सिंह और दौलतउन्निसा के विवाह को अपने संकीर्णतावादी पिता अकबर के सामने तर्क की युक्ति देकर समझाती है—

मेहर—सम्राट ! किसेर जोन्ये एतो तर्क, एतो युक्ति, एतो आलोचना, बुझी ना। धर्म एक। ईश्वर एक। नीति एक। मानुस स्वार्थपरताय, अहंकारे, लालसाय, विद्वेसे ताके विकृत करेछे। धर्म !—आकाशेर ज्योतिष्क-मंडलीर दिके चेये देखुन, पिता, सुप्रसन्ना, श्यामला धरीत्रीर दिके चेये देखुन महाराज !—सेई एक नाम लेखा, से नाम ईश्वर। मानुस ताके परब्रह्म, आल्ला, जिहोमा, एई सब भिन्न नाम दिए परस्पर के अवज्ञा कच्छें, हिंसा कच्छें, विवाद कच्छें ! मानुस एक, पृथ्वीर भिन्न-भिन्न जायगाय भिन्न-भिन्न मानुस जन्मे छे बले तारा भिन्न नय। शक्तिसिंह उ मानुस, दौलतउन्निसा उ मानुस। प्रभेद कि ?''

(वही, तृतीय अंक, पंचम दृश्य, पृ० १३२)

पृथ्वीराज की पत्नी

पृथ्वीराज की पत्नी जोशी का नामकरण अवश्य ही काल्पनिक है। पर पृथ्वीराज और जोशी ऐतिहासिक पात्र हैं। बीकानेर के राजा के भाई कवि पृथ्वीराज अकबर के दरबार में रहते थे और अकबर की प्रशस्ति में काव्य रचते थे। उनकी पत्नी के साथ कामाचारी अकबर ने नौरोज के मीनाबाजार में उसके सतीत्व का अपहरण करना चाहा था और उस वीर बाला ने कटार लेकर अकबर की छाती पर वार करने की चेष्टा की थी। कापुरुष अकबर ने प्राणभिक्षा माँगी थी और फिर ऐसे लम्पट आयोजन न करने की बात कही थी। जोशी ने पृथ्वीराज को भी अपनी ओजस्वी वाणी से देशप्रेम और जातीय-बोध की भावना से उद्‌बुद्ध किया था—

'राणा प्रताप सिंह' नाटक में जोशी पृथ्वीराज से कहती है—"अकबर हिन्दू राजबधुओं को अपनी भोग की वस्तु समझता है, वह क्लीव और स्त्रैण है, पापी और काम का दास है।'' फिर वह कहती है—"आज मैंने उस पापी का असली चेहरा देखा है—आज यदि यह पवित्र कटार मेरी सहायता नहीं करती तो तुम्हारी पत्नी अब तक अकबर की हजारों वारांगनाओं में से एक होती।' (वही, चतुर्थ अंक, तृतीय दृश्य, पृष्ठ १३८)

टॉड का कथन इसका प्रमाण है—

"On retiring from the fair, she found herself entangled amidst the libyrinth of apartments by which egress was purposely ordained, when Akbar stood before her; but instead of acquiescence, she drew a poniard from her corset, and held it to his breast, dictating, and making him repeat the oath of renunciation of the infamy to all her race……The guardian goddess of Mewar, the terrifie "Mata", appears on her tiger in the subterranean passage of this palace of pollution, to strengthen her mind by a solemn demunciation, and her hand with a weapon to protect her honour." (Ibid, Page 275).

अकबर का चरित्र

अकबर गुणग्राही राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ अन्तर्दृष्टि रखने वाला इन्द्रिय-परायण था। कुछ लोगो को अकबर का यह चरित्र अनैतिहासिक लग सकता है जबकि कई इतिहासकारों ने उसे 'अकबर द ग्रेट' कहा है, पर द्विजेन्द्रलाल राय ने इसमें खुद अपनी सफाई इन शब्दों मे पेश की है—"बहुत से लोग शायद यह सोचें कि मैंने इस नाटक में अकबर के चरित्र को ऐतिहासिक मर्यादा से विकृत किया है। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया है—मैंने इतिहास में अकबर के चरित्र को इसी नजरिए से देखा है।" टॉड के 'राजस्थान' मे भी अकबर की इन्द्रिय लालसा का उल्लेख हुआ है—

It is scarcely to be credited that a statesman like Akbar should have hazarded his popularity or his power, by the introduction of a custom alike appertaining to the Celtic races of Europe as to these the Goths of Asia and that he should seek to degrade those whom the chances of war had made his vassals, by conduct so nafarious and repugnant to the keenly cherished feelings of the Rajpoot. Yet there is not a shadow of doubt that many of the noblest of the race were dishonoured on the 'Naroza', and the chivalrous Pirthiraj was only preserved from being of the number by the high courage and virtue of his wife, a princess of Mewar, and daughter of the founder of the Suktawuts. On one of these celebrations of the Khooshroz, the monarch of the Moguls was struck with the beauty of the daughter of Mewar, and he singled her out from amidst the united fair of Hind as the object of his passion " (Ibid, Page 274-275)

द्विजेन्द्रलाल राय ने 'राणा प्रताप सिंह' नाटक लिखने के उपरान्त 'मेवाड़

पतन' नाटक लिखा। लगता है जैसे प्रताप की वीरतापूर्ण कहानी का 'राणा प्रताप सिंह' नाटक उसका पूर्वार्द्ध खण्ड है और 'मेवाड़ पतन' उत्तरार्द्ध। 'राणा प्रताप सिंह' नाटक में असंगतियाँ भी आई हैं और कहानी कहीं-कहीं शिथिल हो गई है, पर ऐसा महसूस होता है जैसे पत्नी के मरने के बाद (२९ नवम्बर, १९०३ को नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय की पत्नी सुरबाला देवी की मृत्यु हुई थी) कौतुक-रस और हास-परिहासपूर्ण प्रहसन लिखनेवाला द्विजेन्द्रलाल जीवन की गम्भीरता और प्रौढ़ता की ओर अग्रसर हो रहा है। डॉ० रथीन्द्रनाथ राय के शब्दों में—"द्विजेन्द्रलाल के अनेक नाटकों की भांति 'राणा प्रताप सिंह' में भी अति नाटकीयता है, पर यह दो-एक स्थानों पर ही देखी जाती है, सम्पूर्ण नाटक में इसका अभाव है, स्त्री-वियोग के बाद हास्य-रस का कवि जीवन की गम्भीरता में उतर आया। 'राणा प्रताप सिंह' नाटक में अन्तरद्वन्द्व का अभाव खटकता है। कहानी भी मंथर गति से अग्रसर होती है। ऐतिहासिक नाटक लिखने की दृष्टि से वे काफी मंजिल आगे बढ़े हैं, पर इतिहास को पूरी तरह जीवन में समरस नहीं कर पाये हैं।" ('द्विजेन्द्रलाल : कवि उ नाट्यकार', पृष्ठ २८९)।

क्रमिकता की दृष्टि से हम 'दुर्गादास' नाटक के बाद 'मेवाड़ पतन' पर चर्चा करेंगे।

राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अनुरोध से श्री राधाकृष्ण दास ने १२ दिसम्बर, १८६७ ई० को अपना 'राजस्थान केसरी' अथवा 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा, जिसका प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने किया। राधाकृष्ण दास ने नाटक के निवेदन मे पृष्ठ २ पर लिखा है—"इस ग्रन्थ के लिखने में मुझे टॉड साहब के 'राजस्थान', पूज्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के 'उदयपुरोदय', कुंवर योधसिंह मेहता के 'मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास', मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ, जोधपुर के 'महाराणा प्रताप सिंह का जीवन-चरित्र' तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती 'प्रताप नाटक' से बहुत कुछ सहायता मिली है। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव-स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसी को उपन्यास और किसी को इतिहास-स्वरूप में यथा-वकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ। मैंने बहुत परिश्रम और खोज से परम प्रसिद्ध भगवद्भक्ति-परायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवन-चरित्र तैयार किया है, जिसे लेकर फिर उपस्थित होऊँगा।"

हिन्दी में प्रथम

श्री राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक हिन्दो में ही नहीं बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में प्रथम माना जायेगा। हमने पूर्व में गिरीशचन्द्र घोष के अधूरे नाटक 'राणा प्रताप' (१६०४ ई०) तथा द्विजेन्द्रलाल राय के 'प्रताप सिंह' (१६०५ ई०) की चर्चा की है। इतिहास तिथियों की दृष्टि से बंगला में राणा प्रताप पर लिखे गए नाटकों में राधाकृष्ण दास का नाटक प्रथम ठहरता है, जो १८६७ ई० में लिखा गया। हाँ, इतना जरूर है कि गुजराती भाषा में राणा प्रताप पर उनके नाटक लिखने के पूर्व ही कवि गणपतिराम राजाराम ने 'प्रताप' नाटक लिख दिया था। यू बंगला साहित्य मे राणा प्रताप पर १८६७ ई० के पूर्व नाटक तो नहीं लिखा गया, किन्तु बंगला के युग प्रवर्त्तक कवि रंगलाल बंद्योपाध्याय ने अपने काव्य 'शूर-सुन्दरी' में महाराणा के जीवन के कई वीरोचित तथा स्वतन्त्रता के लिए किए गए कार्यों का वर्णन बड़ी ओजस्वी

भाषा में किया है। वैसे 'शूर-सुन्दरी' की पूरी कथा ही प्रताप के जीवन की व्याख्या है। परवर्तीकाल में जितने भी काव्य, नाटक, उपन्यास या ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए उनमें 'शूर-सुन्दरी' काव्य को कहानी का पूरा सांगोपांग वर्णन हमें मिलता है।

बाबू राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक हिन्दी संसार में बड़ा चर्चित रहा। इसका कई स्थानों पर सफलतापूर्वक मंचन हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक का १६३८ ई० में ६वाँ संस्करण प्रकाशित हुआ। इस ऐतिहासिक नाटक के मुख-पृष्ठ पर छपा है—"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार।" इस प्रकार नाटक के कई संस्करण प्रकाशित हुए, यह इसकी प्रसिद्धि का पुष्ट प्रमाण है। इतना ही नहीं कई वर्ष बाद जब लक्ष्मणनारायण गर्ग का नाटक 'महाराणा प्रताप' प्रकाशित हुआ, तो उसकी भूमिका में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने राधाकृष्ण दास और उनके 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक का बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया। चूंकि राधाकृष्ण दास का यह नाटक भारतेन्दु काल की रचना है, इसलिए इसमें भारतोय नाट्य-पद्धति का पूरा प्रयोग किया गया है। जैसे नान्दी पाठ, सूत्रधार आदि। नाटक सात अंकों में समाप्त होता है, जिसमें कई गर्भाङ्क हैं। यद्यपि नाटक में अरबी-फारसी के कथोपकथन प्रचुर मात्रा में हैं, किन्तु स्थान-स्थान पर ब्रजभाषा और कुछ राजस्थानी भाषा के भी सम्वाद हैं। आरम्भ में नाटक प्रायः पद्य में ही लिखे जाते थे, गद्य का प्रचलन जब १६वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ तो नाटक गद्य में लिखे जाने लगे। भारतेन्दुकाल आधुनिक हिन्दी का प्रथम युग है, इस दृष्टि से इसे हम सन्धिकाल भी कह सकते हैं। अतः राधाकृष्णदास के नाटक में गद्य-पद्य समान रूप से हैं—शेर, गजल, दोहा, चौपाई, गोति-काव्य की पूरी बहार है। इस नाटक के सूत्रधार के कथन में तत्कालीन समाज की तथा अंग्रेजी राज्य में होनेवाले नए आविष्कारों की झाँकी मिलती है—रेलों का आरम्भ, टेलिग्राफ का शुरुआत आदि। अंग्रेजी राज्य के प्रति राजभक्ति की भावना की ध्वनि भो वैसे ही देखने को मिलती है, जैसे भारतेन्दु ने कहा था—"अंग्रेजी राज सदा सुखकारी, पै धन विदेस चलि जात यहै दुख भारी।"

लेखक ने आरम्भ मे राणा प्रताप की जीवनी को अपनी भूमिका में विस्तार से लिखा है और इस ऐतिहासिक जीवनी को टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से उद्धरण देकर प्रमाणित किया है। नाटक में भी बीच-बीच में पाद-टिप्पणियों में टॉड के उद्धरण दिए गए हैं। लेखक ने बड़े ही कौशल से उस समय अंग्रेजी राज्य पर आये संकट (अफगान युद्ध) का संकेत दिया है और ऐसे संकट में उत्साह प्रदान के लिए वीर चरित्रों के नाटक को उपादेयता को दर्शाया है, जिसे प्रकारान्तर से हम कह सकते हैं कि राधाकृष्ण दास भारतीय जनता को अपने वीर पुरुषों की वीरता का स्मरण करा कर स्वतन्त्रता के लिए

प्रेरित कर रहे हैं। तभी तो उन्होंने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए त्याग स्वीकार करने वाले वीर श्रेष्ठ प्रताप पर नाटक लिखा।

नाटक के रोचक प्रसंग

'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम गर्भाङ्क मे महाराणा प्रताप को मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाये जाने की घटना है। साथ ही महाराणा की प्रतिज्ञा इन शब्दों मे है—

जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाई दासता-शृङ्खल तोड़ौं॥

('महाराणा प्रताप सिंह', नाटक प्र० अंक, प्र० गर्भाङ्क, पृ० ८)

द्वितीय अंक के प्रथम गर्भाङ्क मे दिल्ली के जनाना मीनाबाजार (नौरोज) का दृश्य है, जिसमें कवि पृथ्वीराज की पत्नी को एक वृद्धा भुला-फुसला कर अकबर के पास तक पहुँचाती है और जब बादशाह उसके शील-हरण की हरकत करता है तो क्षत्राणी कमर मे छिपी कटार निकाल कर अकबर की छाती पर सवार हो जाती है। कहती है—"ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहाँ निबटारा किए देती हूँ और तेरे बोझ से पृथ्वी को हल्का करती हूँ। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)।

अकबर—(आर्त्त स्वर में) तौबा तौबा ! मैं हाथ जोड़ता हूँ, मेरी बात खुदा के लिए सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो।

रानी – कह, क्या कहता है।

अकबर—मैं अपने गुनाहों के लिए सख्त नादिम हुआ, मेरा कसूर मुआफ करो, मेरी जां-बख्शी करो, मैं खुदा की कसम खा कर कहता हूं, मुझे मेरी उम्रे नातजुर्बाकार और दुनियाबी यारों ने धोखा दिया। मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेकचलनी को कभी ख्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रकीक दिल तमः के फंदे से फाँसना आसान था वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बख-शिए ! लिल्लाह मुझे बख्शिए। अब किसी के साथ ऐसा गुनाह सरजद न होगा। (वही, पृ० २५)

चतुर्थ अंक के प्रथम गर्भाङ्क में तानसेन के पीछे-पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर को दिखाया गया है। अकबर वृन्दावन की ब्रजनारियों के कृष्ण-प्रेम को

देखने भेष बदल कर आता है और गोप-ग्वालों के प्रेम को देखकर वहाँ की माटी को सिर पर प्रेम से लगाता है।

तानसेन और अकबर किनारे खड़े होते हैं। कुछ व्रजवासिनी गोपियाँ सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं—

माई री नेकु न निकसन पैए।
घाट बाट पुर वन वीथिन में जहीं तहीं हरि पैए।
उत सुनियत इत को चलियत हू मन वाही पै जैए।
ब्रह्मदास छूटिए कहाँ लौं कान्हमई ब्रज मैए॥
(सब जाती हैं)

तानसेन—(विह्वल होकर) खुदावंद ! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा। धन्य हैं उनके भाग्य, जिन्हें ब्रजरज नसीब हो।

अकबर—तानसेन ! आज तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझसे नापाक बदबख्त को भी ब्र.ज नसीब हुई। धन्य है वीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं। (वही, पृष्ठ ४०)

'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक में राजा मानसिंह का उदयपुर में अपमानित होना, अकबर से अपने अपमान की कथा कहना आदि ऐतिहासिक प्रसंग सुन्दर ढंग से वर्णित हैं। हल्दीघाटी युद्ध, राणा और शक्ति सिंह का मिलन, चेतक घोड़े का प्राणान्त आदि प्रसंग भी हैं। नाटक में राजपूत वीर गुलाब सिंह और राजपूत कन्या मालती का प्रणय प्रसंग भी है। इन दोनों के स्वस्थ-प्रेम में मांसल-प्रेम की बजाय देश-प्रेम अधिक प्रभावी रहा है। मालती ऐसे वीर को प्रणयी बनाना पसन्द करती है, जो देश के लिए स्वतन्त्रता के लिए प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत रहे। गुलाब सिंह दिल्ली जा कर अकबर की युद्ध तैयारी की गुप्त सूचनाएँ लाता है, वह हल्दीघाटी में वीरता दिखाता है। मालती चारणी का तथा घायल-सैनिकों की सेवा का काम करती है। एक बार मुगलों से युद्ध करते हुए तथा राणा प्रताप को बचाने में गुलाब सिंह भयंकर रूप से घायल हो जाता है। तब राणा एक राज-वैद्य को लेकर आते हैं और षष्ट अंक के षष्ट गर्भाङ्क में कहते हैं—'वैद्यराज ! आज जो आप गुलाब सिंह को बचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूँगा—आहा, आज के युद्ध में गुलाब सिंह की वीरता प्रशंसनीय थी और मुझे बचाने में ही उसकी यह दशा हुई। गुलाब सिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौड़ की रक्षा से भी अधिक आनन्द प्राप्त होगा।"

बच्चों के हाथ से बनबिलाव द्वारा घास की रोटी ले भागने की घटना से राणा

मर्माहत होते हैं, अकबर को सन्धि-पत्र लिखते हैं, कवि पृथ्वीराज उन्हें उत्साहवर्द्धक पत्र लिखता है। भामाशाह की सहायता से पुन: प्रताप सेना इकट्ठी कर अपने खोये हुए राज्य को पाते हैं, चित्तौड़ पर उनका अधिकार नहीं हो पाता है, इन तमाम घटनाओं का नाटक में उल्लेख है। नाटक के अन्त में राणा अपने सरदारों को पुरस्कार देते हैं। चेतक की समाधि बनाने का आदेश देते हैं और भामाशाह के वंशधरों को मन्त्री बनाने का परवाना लिखवाते हैं। गुलाब सिंह और मालती के विवाह में स्वयं सम्मिलित होते हैं। इस प्रकार नाटक सुखान्त समाप्त होता है। अकबर भी रहीम खानखाना की बात मान कर प्रताप को परेशान करने के लिए युद्ध-विराम करता है।

ऐतिहासिक-गलती

राधाकृष्ण दास के 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक में यद्यपि हल्दीघाटी के युद्ध में सलीम को सेना का नेतृत्व करते हुए दिखाया गया है, पर पाद्-टिप्पणी में 'ऐतिहासिक गलती' के अन्तर्गत लिखा है—"यह बात निश्चित रूप से प्रसिद्ध हुई है कि हल्दीघाटी की लड़ाई में अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहजादा (सलीम)। पर मानसिंह था और उसके संग शाही अफसर थे। (वही, पृ० ७६)

नाटक में रंगलाल की प्रतिध्वनि

आलोच्य नाटक मे बंगला भाषा के प्रसिद्ध कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय की राष्ट्रीय कविता 'स्वाधीनता-हीनताय के बाचिते चाय' का हिन्दी रूपान्तर सप्तम अंक पंचम गर्भाङ्क में दिया गया है। राणा प्रताप को जब पृथ्वीराज का पत्र मिलता है और उसे पढ़ने के बाद वे पश्चाताप करते है तब कहते है—(क्रोध पूर्वक, मूछों पर हाथ फेरते हुए) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छिः !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवौ जग माहीं।
को पहिरै दासत्व-शृङ्खला निज पग मांहीं ।।
इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ।।

(यह कविता रंगलाल की राष्ट्रीय कविता का हिन्दी अनुवाद है। नाटक की पाद् टिप्पणी में लिखा है—'हिन्दी बंगवासी' १२ अप्रैल, सन् १८९७ से उद्धृत)।

प्रताप आगे कहते हैं—

जब लौं तन में प्राण न तब लौं मुख को मोड़ौं।
जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहि छोड़ौं ।।

जब लौं जिह्वा सरस दीन वच नहिं उच्चारौं।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं विचारौं॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को क्षत्रिय नाम न बोरिहौं।
जब लौं न आर्यध्वज नभ उड़ै तब लौं टेक न छोरिहौं॥

(वही, पृष्ठ १२४-२५)

कवि पृथ्वीराज के जोशीले पत्र को पढ़ कर राणा का सोया शौर्य जग गया और उन्होंने उक्त वीर वाक्य कहे। टॉड ने अपने इतिहास में लिखा है कि पृथ्वीराज के पत्र से प्रताप को १० हजार घोड़ों का बल मिल गया।

बाबू राधाकृष्ण दास के नाटकों को हिन्दी-नाट्य की परम्परा के विकास मे गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। आपने 'मुद्राराक्षस', 'मीलदेवी', 'महारानी पद्मावती', दुखिनी बाला' आदि नाटक लिखे। 'महाराणा प्रताप' नाटक के पूर्व इनका 'महारानी पद्मावती' अथवा 'मेवाड़ कमलिनी' नाटक प्रकाशित हुआ। इसमें राणी पद्मिनी के जौहर-व्रत का मार्मिक वर्णन है। असल में राधाकृष्ण दास ने राजस्थान के दो प्रमुख चरित्रों 'पद्मिनी' और 'राणा प्रताप' पर नाटक लिख कर १९वीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण में देश-प्रेम और स्वाधीनता के गीत गाए। बंगला और हिन्दी-साहित्य मे इस दृष्टि से स्वदेशाभिमान को जगाने के लिए १९वीं सदी में पुरजोर कार्य हो रहे थे। राधाकृष्ण दास ने बंगला के कई नाटकों का भी हिन्दी में अनुवाद किया तथा बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास 'राजसिंह' को अनुदित किया।

मिलिन्द का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक

विश्वभारती (शान्ति निकेतन) के भूतपूर्व हिन्दी-प्राध्यापक प्रो० जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक हिन्दी का चर्चित नाटक है। इसका प्रकाशन लाहौर से हुआ और इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। इसे बड़ी कुशलता से हिन्दी रंगमंच पर खेला गया।

'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में जगमल को विलास की रंगरेलियों में डूबा हुआ दिखाया गया है। चन्द्रावत रंग में भंग कर उपस्थित होता है और जगमल को इन शब्दों में धिक्कारता है—"मेवाड़ के मुकुटधारी! होश में आओ। तुम्हारी इस काल-रात्रि का अन्त अब निकट है। प्रभात के सूर्य की किरणें जागृति की बिजली बनकर प्रजा के प्राणों को छुआ ही चाहती हैं। मेवाड़ के कोने-कोने से स्वाधीनता का जीवन-संगीत फूट रहा है। देख लो, आँखें फाड़-फाड़ कर देख लो। सुन लो, कान खोल कर सुन लो!"

जगमल भयभीत हो जाता है और मुकुट तथा तलवार दे देता है। दूसरे दृश्य मे प्रताप को मेवाड़ का राणा बनाया जाता है।

'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक के प्रथम अंक के पाँचवें दृश्य मे एक राष्ट्रीय गान गाया जाता है। यह गीत देशवासियों को जगाने के लिए लिखा गया है। गीत बडा ही प्रभावोत्पादक है और भाव सुन्दर है—

प्यारे राजस्थान, हमारे प्यारे राजस्थान।
तू जननी, तू जन्मभूमि है, तू जीवन तू प्राण।
तू सर्वस्व शूर-वीरों का, भारत का अभिमान।
उष्ण रक्त अगणित अरियों का बार-बार कर पान,
चमकी है, कितने युद्धों में तेरी तीक्ष्ण कृपाण।
तेरी गौरवमयी गोद का रखने को सम्मान,
करते रहे सपूत निछावर हँसते-हँसते प्राण।
'जौहर' की ज्वाला में जिनकी थी अक्षय मुसकान,
धन्य वीर बालाएं तेरी, धन्य धन्य बलिदान।
जब तक जीवित हैं, हम तेरी वीर-व्रती सन्तान,
ऊँचा मस्तक अमर, अमर है तेरा रक्त निशान!
हमारे प्यारे राजस्थान, प्यारे राजस्थान हमारे प्यारे राजस्थान!
('प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक, पृ० २३-२४)

वैसे आलोच्य नाटक मे और बातें तो इतिहास सम्मत है, पर नाटककार ने कई नई उद्भावनाओ को दिखाया है, बनबिलाव द्वारा रोटी ले भागने की बात राणा को एक भील आकर बताता है और राणा चिन्तातुर हो जाते हैं। उसी समय यवन सेना प्रताप के शिविर पर आक्रमण करने आती है। राणा युद्ध बन्द कर सन्धि का प्रस्ताव लिख कर भीलराज को देते हैं और उसे अकबर के पास भिजवाने को कहते हैं। यह तीसरे अंक के तीसरे दृश्य मे दिखाया गया है। राणा प्रताप के जीवन की इस अद्भुत घटना को नाटककार ने अजीब ढंग से दिखाया है। पत्र लिख कर देने के बाद वे जैसे अर्द्ध विक्षिप्तावस्था मे हो जाते हैं। इसी अक के चौथे दृश्य मे राणा प्रताप का एक दूत अकबर के दरबार मे पत्र लेकर पहुँचता है। कवि पृथ्वीराज उस पत्र को जाली करार देते हैं और एक जोशीला पत्र राणा को लिखते हैं। इसी अंक के पंचम दृश्य मे राणा प्रताप को पृथ्वीराज का पत्र मिलता है और वे पुनः अकबर से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होते हैं। पृथ्वीराज के पत्र के उत्तर मे कहते है—"पृथ्वीराज को कहला दो—

"चिन्ता न करो, प्रताप अपने प्रण पर अटल है। तुम्हारे पत्र का उत्तर कलम से नहीं, शीघ्र ही तलवार की धार से दिया जायेगा। अकबर को इस बार खूब सावधान कर देना।' और तुम भीलराज ! जाओ शीघ्र युद्ध की तैयारी करो····।
('प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक, तृतीय अंक, पंचम दृश्य, पृ० ८८)

भामाशाह की आर्थिक सहायता से राणा प्रताप पुनः सेना संगठित कर अकबर से युद्ध करते हैं और चित्तौड़ के अलावा मेवाड़ के अधिकांश भागों पर पुनः अधिकार कर लेते हैं।

'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक के तीसरे अंक के छठे दृश्य में शक्ति सिंह को गेरुए वस्त्रों में एक वीरव्रती के रूप में दिखाया गया है, जो गीत गाकर मेवाड़ के लोगों से देश पर मर मिटने की भीख मांगता है। गीत इस प्रकार है—

आज भिखारी आया द्वार, मांग रहा है हाथ पसार।
ऐ माँ-बहनो, बहू-बेटियो, लाज रखो माता की आज,
देदो अपने 'झोली के धन' देदो अपने सिर के ताज,
सुनो देश की करुण पुकार, आज भिखारी आया द्वार।
('प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक, तृतीय अंक, ६ठा दृश्य, पृ० ९३-९४)

इस प्रकार शक्तिसिंह प्रायश्चित कर देशोद्धार के लिए प्राणपण से जुट जाता है। यह लेखक 'मिलिन्द' की अपनी कल्पना है। 'प्रताप-प्रतिज्ञा' तीन अंकों का नाटक है। इसकी भाषा प्रांजल है और प्रभावोत्पादक है। पुस्तक के अन्त में गीतों की स्वर-लिपि दी गई है। इस स्वर-लिपि को शान्ति-निकेतन के संगीताध्यापक प्रोफेसर रणजीत सिंह ने तैयार किया है।

'महाराणा प्रताप' नाटक में प्रेमचन्द की उक्ति

१९२७ ई० में आगरा से लक्ष्मणनारायण गर्ग का 'महाराणा प्रताप' नाटक प्रकाशित हुआ। इस नाटक में मेवाड़ के स्वतन्त्रता संग्रामी वीर राणा प्रताप का जीवन चित्रित हुआ है। 'महाराणा प्रताप' नाटक की भूमिका 'माधुरी' पत्र के सम्पादक तथा हिन्दी उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने लिखी है।

प्रेमचन्द जी ने राणा प्रताप के बारे में भूमिका में लिखा है—"राजपूताने की वीर-भूमि ने एक से एक नर-रत्न प्रसव किए हैं, पर देशभक्त महाराणा प्रताप जैसा उज्ज्वल, निष्कलंक, दिव्य दूसरा रत्न नहीं हुआ। राणा उसी वीरकुल का तिलक है। ऐसी अपार कीर्ति, ऐसा अदम्य साहस, ऐसा अजेय

जाति गौरव भारत में ही नहीं समस्त भूमण्डल में अपना जवाब नहीं रखता—उसके चरित्रगान से कविता कभी तृप्त न होगी, उसका वीर-चरित्र सदैव वाणी को अलंकृत करता रहेगा। यह वीर-कथा कवि-कल्पना के लिए स्फूर्ति का आनन्द स्रोत है और रहेगी। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इस वीर-कथा पर सुन्दर नाटक रचे जा चुके हैं। हिन्दी में भी यह विषय अछूता नहीं, स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण दास अब भी हिन्दी भाषा के लिए गौरव की वस्तु हैं और रहेंगे। (राधाकृष्ण के नाटक 'राणा प्रताप सिंह' की ओर संकेत) किन्तु आत्मोत्सर्ग की कथा संख्याओं में परिबद्ध होना नहीं जानती, मनचले कवियों और लेखकों की कल्पना को उत्तेजित करने के लिए उसमें अक्षय शक्ति संचित रहती है।"

उन दिनों लखनऊ से प्रकाशित मासिक 'माधुरी' के प्रेमचन्द जी सम्पादक थे। आपने 'राणा प्रताप' नाटक की यह भूमिका १५ अगस्त, १९२७ ई० को लिखी थी। उल्लेखनीय है कि बाबू राधाकृष्ण दास ने ही हिन्दी मे सबसे पहले 'राणा प्रताप' नाटक की रचना की थी। इसी का उल्लेख प्रेमचन्द जी ने किया है। सच है वीर-चरित्र तो बार-बार गाये जाते हैं और हर युग में उनकी चर्चा रहती है।

'अरावली का शेर' नाटक

श्री चतुर्भुज ने 'अरावली का शेर' अर्थात 'राणा प्रताप सिंह' नाटक की रचना १९५५ ई० मे की, जिसका द्वितीय संस्करण साधना मन्दिर, पटना से १९६१ ई० मे प्रकाशित हुआ। इस नाटक का प्रथम संस्करण राजस्थान सरकार के अनुदान से १९५५ ई० मे प्रकाशित हुआ था। राजस्थान सरकार ने लेखक को आर्थिक सहयोग देकर महाराणा प्रताप के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना ज्ञापित की है। श्री चतुर्भुज ने 'अरावली का शेर' नाटक की कथा-वस्तु टॉड के राजस्थान से ली है। लेखक ने नाटक की भूमिका में पृष्ठ ३ पर लिखा है—"ब्रिटिशकालीन राजपूताना के पोलिटिकल एजेन्ट ले० कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'Annals & Antiquities of Rajasthan' (Vol. I & II) मे राजस्थान का विस्तृत इतिहास लिखा है। टॉड के ग्रन्थ के आधार पर ही 'अरावली का शेर' नाटक लिखा गया है।"

लेखक ने टॉड के राजस्थान मे 'महाराणा प्रताप सिंह' अर्थात 'अरावली का शेर' के जीवन की तमाम घटनाओं का चित्रण नाटक में बड़ी आत्मीयता से किया है। नाटककार ने अपनी नई कल्पना से एक दृश्य में राणा प्रताप और अकबर के कल्पित साक्षात्कार का चित्रांकन किया है। लेखक ने इस दृश्य की अवतारणा के पक्ष में तर्क

दिया है कि इससे दोनों ऐतिहासिक व्यक्तियों के चरित्र ऊपर उठ गए हैं। राणा प्रताप को अकबर से सन्धि करने के लिए जिन कारणों से विवश होना पड़ा, उनका उल्लेख नाटक में कारुणिक ढंग से किया है। आजादी के दीवाने प्रताप को पच्चीस वर्षों तक अकबर से युद्ध करना पड़ा, फिर भी वे देश-प्रेम की उमंग से वंचित नहीं हुए। उन्हें पत्नी और अपनी बच्ची को इस त्यागमय जीवन में गंवाना पड़ा। बच्ची अनाहार से काल कवलित हो गई। इन बातों का संयोजन लेखक ने राणा की मानसिक स्थिति का वर्णन करने के लिए किया है। राणा प्रताप की इस कारुणिक स्थिति में कवि पृथ्वीराज का पत्र एवं भामा शाह की आर्थिक मदद उनमें पुनः देश की आजादी के लिए सन्नद्ध होने में प्रेरणा जुटाती है। प्रस्तुत है इन घटनाओं को उजागर करने वाले 'अरावली का शेर' नाटक के अंश—

स्थान—एक जंगल। समय—प्रभात

(साधारण वस्त्र पहने हुए, दीन-वेश में प्रताप सिंह खड़े हैं। सामने गोविन्द सिंह हैं)।

प्रताप—गोविन्द सिंह जी, मैंने तय कर लिया है। तय करके ही मैंने संधि-पत्र सम्राट अकबर के पास भेजा है। अब आपका रोकना व्यर्थ सिद्ध होगा।

गोविन्द—राणाजी, आपने क्या कर डाला? अरावली का शेर दिल्ली दरबार में कैद होकर रहना चाहता है? क्या राजस्थान के अन्य राजाओं की तरह मेवाड़ के महाराणा भी अकबर को सलाम करना अपना अहोभाग्य समझेंगे? क्या आसमान का सूर्य भी तारों का जीवन बिताएगा? क्या आज साधारण नदी और गंगा नदी में कोई भेद नहीं रहेगा? यदि यही करना था तो फिर हल्दीघाटी में आपने चौदह हजार सैनिकों का रक्तपात क्यों कराया? वर्ष पर वर्ष बीत गए, हम स्वाधीनता के नाम पर घास-पात खा कर क्यों जी रहे हैं। नहीं, नहीं राणाजी, हम यह संधि नहीं होने देंगे। प्राण देंगे, पर विदेशियों के आगे न झुकेंगे।

प्रताप—गोविन्द सिंह जी, भाग्य की मार से मेरा हृदय चूर-चूर हो गया है। मेवाड़ की कुल-देवी रुष्ट हैं। मैंने जीवन के प्रारम्भ से ही देश के लिए युद्ध आरम्भ किया, हर तरह का स्वार्थ-त्याग किया। मेवाड़ के वीर-

पुत्र मेरे आदेश मात्र पर शहीद हुए। लेकिन नियति का विधान मैं नहीं बदल सका। हल्दीघाटी में चौदह हजार सैनिकों की बलि देकर भी मैं संग्राम में जीत नहीं सका। मानसिंह ने धुरमेटी, गोगुण्डा आदि मेरे इलाकों पर मुगल-झण्डा फहरा दिया। उदयपुर को महावत खाँ ने जीत लिया। परिवार के साथ प्राणों को बचाते हुए, भूख-प्यास को बर्दाश्त करते हुए हम जंगलों में मारे-मारे फिर रहे हैं। दुश्मन हमारी ताक में हैं। खाना-पीना, सोना-बैठना आज वर्षों से हराम हो गया है। पाँच बार लगातार रोटियाँ बनीं और हम बिना खाये-पीये भागने को मजबूर किए गए। भूख और प्यास से आक्रान्त होकर मेरी कन्या मर गई। आज मेरी पत्नी बीमार है····गोविन्द सिंह जी मेरा धैर्य समाप्त हो गया है। अब मैं संधि अवश्य करूँगा।

('अरावली का शेर' नाटक, तृतीय अक, प्रथम दृश्य, पृ० ६७-६८)

इस प्रकार लेखक ने राणा की मानसिक व्यथा का कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है। अन्य लेखकों ने जहाँ बनबिलाव के द्वारा घास की रोटी ले भागने की घटना का जिक्र किया है, तथा बच्ची के रुदन की बात कही है, वही 'अरावली का शेर' मे बच्ची के अनाहार से मरने की बात कह कर लेखक ने नई उद्भावना का परिचय दिया है। ऐसे ही समय मे राणा को कवि पृथ्वीराज का पत्र मिलता है। यह पत्र अमर सिंह राणा के पास लेकर आता है। राणा पत्र को पढ कर पुन शौर्य से दीप्त हो जाते है, पर अमर सिंह अनुशोचन करता है। वह सन्धि के पक्ष मे है। उसे आजादी के लिए किया जानेवाला कष्ट असह्य प्रतीत होता है। वह अपनी इस व्यथा को प्रताप और गोविन्द सिह के सामने व्यक्त करता है। राणा प्रताप और सालुम्ब्राधिपति गोविन्द सिह दु खी होते है और अमर को समझाते है। तभी छद्मवेश मे अकबर एक फकीर के भेष मे उपस्थित होता है—

(छद्मवेशी अकबर नेपथ्य से—राणा की जय हो ! एक फकीर भेंट करना चाहता है'।)

प्रताप—अमर फकीर को भीतर ले आओ।

(अमर जाकर फकीर को भीतर ले आते है। फकीर के वेश मे छद्मवेशी अकबर।)

प्रताप—अपनी कुटी में एक फकीर को देखकर हम प्रसन्न हुए। प्रताप का प्रणाम स्वीकार हो।

अकबर—(आशीष देने का भाव) फकीर भूखा है। भोजन चाहिए।

प्रताप—भोजन ? इस जंगल में हम आपको क्या खिला सकते हैं शाह साहब ?

अकबर—जो आप खायेंगे, वही हमें दें !

प्रताप—अगर मैं कुछ भी न खाऊँ तो आपको क्या दूँगा ?

अकबर—यह मानने की बात नहीं है कि प्रताप भूखा है।

प्रताप—प्रताप आज से नहीं, कई रोज से भूखा है। पूरा परिवार भूखा है। सच मानिए।

अकबर—वजह ?

प्रताप—देश-भक्ति के नाम पर हम अन्न नहीं, गम खाकर जीवित हैं।

अकबर—लेकिन ऐसी वतनपरस्ती किस काम की जहाँ दाने के लाले पड़े हों ?

प्रताप—शाह साहब, आप फकीर हैं। आप इसे नहीं समझ सकते।

फकीर—लेकिन हमने तो सुना है कि शाहंशाह अकबर मेवाड़ आपको वापस देने को तैयार हैं। फिर आप उनकी मातहत क्यों नहीं मान लेते ?

प्रताप—अकबर की महानता की मैं इज्जत करता हूँ, लेकिन उनकी तलवार से लोहा लेता हूँ। अकबर ने लड़ कर मेवाड़ को जीता है, मैं भी लड़ कर मेवाड़ को वापस लूँगा।

अकबर—हौसला बुरा नहीं है। लेकिन आपकी सारी जिन्दगी खत्म हो जायेगी, परिवार मिट जायेगा पर आप अकबर को हरा नहीं सकते।

प्रताप—वीर हार-जीत को नहीं देखता। अपनी मर्यादा को देखता है। हम अन्तिम सांस तक अकबर के शत्रु बने रहेंगे।

अकबर—इसलिए कि अकबर मुगल है। क्यों ?

प्रताप—नहीं, बल्कि इसलिए कि अकबर हमारी आजादी के शत्रु हैं। मुसलमानों से हमारी कोई शत्रुता नहीं है। मुसलमान हमारे भाई हैं।

(वही, पृ० ७१-७२)

इस प्रकार छद्मवेशी अकबर और प्रताप के बीच कथोपकथन होता है और तभी छद्मवेशी अकबर कहता है—"अगर अकबर आपके सामने आये तो क्या उसे यही जबाब देंगे ?" प्रत्युत्तर में प्रताप कहते हैं—"मैं जो कुछ कह रहा हूँ छद्मवेशी भारत सम्राट अकबर के सामने कह रहा हूँ।" यह सुनते ही गोविन्द सिंह और

अमर सिंह म्यान से तलवार निकाल कर आक्रमण करने को उद्यत होते हैं। राणा प्रताप उन्हें रोकते हैं और कहते हैं कि इस समय सम्राट अकबर नहीं, फकीर के भेष में अकबर हैं। हम इनका बध नहीं कर सकते। इज्जतपूर्वक इन्हें अरावली के जंगलों से पार कर विदा करना है। अकबर राणा की इस उदारता पर मुग्ध होता है। इस प्रकार लेखक ने नई कल्पना के द्वारा अकबर और प्रताप के साक्षात्कार का प्रस्तुतिकरण कर एक अनोखा कार्य किया है।

लेखक श्री चतुर्भुज ने अपने नाटक में राणा प्रताप के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है। लेखक ने केवल टॉड के 'राजस्थान' से ही तथ्य संग्रह नहीं किए हैं अपितु बंगला और हिन्दी-राजस्थानी मे इसके पूर्व लिखी रचनाओं से भी सामग्री जुटाई है। लेखक ने राणा प्रताप के चाचा सगर सिंह के पुत्र महिपति सिंह को ही महावत खाँ के रूप में प्रस्तुत किया है, जिसने धर्म-परिवर्तन किया था। ये घटनाएँ डी० एल० राय के नाटक 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक से काफी मेल खाती हैं। साथ ही हल्दीघाटी के युद्ध-शिविर मे शक्ति सिंह और राणा प्रताप की कन्या का मिलन हमे ज्योतिरिन्द्रनाथ के नाटक 'अश्रुमति' का स्मरण कराता है। अस्तु, 'अरावली का शेर' नाटक एक तथ्य-परक नाटक है। इसकी एक खूबी यह भी है कि नाटक में स्त्री-पात्र नहीं है। इसका कारण है कि जब नाटक १९५५ ई० मे बख्तियारपुर (बिहार) में पहली बार नाटककार के निर्देशन में मंचित हुआ तब तक स्त्री-पात्रों का हिन्दी रंगमंच पर अभाव था। कदाचित इसी कारण लेखक ने अपने नाटक मे स्त्री-पात्रों की अवतारणा नहीं की है। लेकिन जब नाटक 'मगध-कलाकार' (बख्तियारपुर) द्वारा मंचित हुआ तो उसमें एक हिन्दू ने अकबर की भूमिका अदा की तथा एक मुसलमान अभिनेता ने राणा प्रताप की। 'अरावली का शेर' नाटक काफी सराहा गया और इसकी हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना तथा देश-भक्ति का दर्शकों मे श्रद्धापूर्ण आदर हुआ।

द्विजेन्द्रलाल राय का 'दुर्गादास' नाटक

बंगभंग के स्वदेशी-आन्दोलन से पूरी तरह अपने को द्विजेन्द्रलाल ने जोड़ लिया था और उस समय देशप्रेम की प्रबल धारा बह रही थी। युग की मांग के अनुरूप द्विजेन्द्रलाल ने टॉड के 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड से 'मारवाड़-जोधपुर' की उपकथा को लेकर 'दुर्गादास' नामक ऐतिहासिक नाटक ५ नवम्बर, १९०६ ई० को लिखा। इस नाटक में मेवाड़, मारवाड़, मराठा और मुगलकालीन तीस वर्षो की कथा का ताना-बाना बुना गया है। घटनाओं की एक दूसरे के साथ संगति में यतिभंग का भान होता है। इसलिए बंगला-साहित्य के अधिकांश आलोचकों ने इसे ऐतिहासिक कसौटी पर खरा उतरने का प्रमाण-पत्र नहीं दिया है! कुछ अशो मे बात सही भी है। क्योंकि मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह के पुत्र अजित सिंह का जन्म १६७९ ई० में हुआ था और औरंगजेब की मृत्यु १७०७ ई० में हुई थी। नाटक में अजित के जन्म से औरंगजेब की मृत्यु पर्यन्त घटनाओं का वर्णन है। औरंगजेब को मुगल साम्राज्य के पतन का कारण इतिहासकारो ने स्वीकार किया है। उसके जीवनकाल में मुगल साम्राज्य हर-हराकर गिरने लग गया था और औरंगजेब के जीवन के अन्तिम दिनों मे मेवाड़, मारवाड़ और मराठों ने सर उठाना शुरू कर दिया था। स्वाभाविक है कि इतने बड़े उत्थान-पतन के घटनाचक्र को ७० पृष्ठो के ५ अंकों में विभाजित नाटक मे समेट लेना कोई हँसी-खेल नहीं है। जाहिर है घटनाएँ अधिक होंगी और कई राज्यो की कहानी का समावेश होगा तो पात्रों की अधिकता भी होगी।

कदाचित इसी कारण बंगला के बड़े-बड़े आलोचकों और इतिहासकारो ने 'दुर्गादास' नाटक को वह मर्यादा और स्नेह नहीं दिया है, जो इसे प्राप्त होना चाहिए। विलक्षण बात तो यह है कि जहाँ अन्य बंगला के नाटकों, उपन्यासों और काव्य ग्रन्थों में बड़े-बड़े राजाओं की वीरतापूर्ण प्रशस्ति और व्याज-स्तुति हुई है, वहाँ दुर्गादास ऐसे एक वीर सैनिक की अदम्य वीरता, स्वामी-भक्ति और उज्ज्वल चरित्र का नाटककार ने बड़ी आत्मीयता से वर्णन किया है। दुर्गादास ऐसे वीरश्रेष्ठों की बदौलत ही राजपूती इतिहास गौरव के शिखर पर है। इसी कारण नाटक का नामकरण उस वीर पुँगव के नाम पर किया गया है। ऐसे देश-भक्त के देश-प्रेम की झाँकी स्वदेशी-आन्दोलन में प्रस्तुत कर द्विजेन्द्रलाल ने एक स्तुत्य कार्य किया और स्वातंत्र्य-संग्राम की इतिहास-गाथा में एक

जाज्वल्यमान चमकते नक्षत्र को जोड़ा है। इसलिए इतिहास के निष्कर्ष पर जो खरा-खोटा निकले, हमें तो नाटककार की भावना का आदर करना होगा। इतना ही क्यों हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए इस नाटक में जिन पात्रों की सृष्टि की गई है और उनके जो सत् कार्य दिखाये गए हैं, उसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। कासिम और दिलेर खाँ राष्ट्रीय एकता के प्रतीक बन जायें तो कोई आश्चर्य नहीं। दर्शक एक ओर औरंगजेब ऐसे दुराचारी, लम्पट और कट्टर मुसलमान को देखते हैं, जो हिन्दुओं पर जजिया कर लगाता है, मन्दिरों को विध्वंस करता है और धर्मान्तरण कराता है, वहीं कासिम मुसलमान होते हुए भी अजित की प्राण रक्षा करता है और जीवन पर्यन्त निष्ठा के साथ अजित की सेवा करता है। उसमें इस्लाम की जो उदार भावना, धर्म-सहिष्णुता और मानवीय प्रेम है, उसका कौन कायल नहीं होगा ? तभी तो वह अजित का प्रिय काका बन जाता है और इसी सम्मान को राठौर राजपूतों से पाता है।

'दुर्गादास' नाटक की कथा

हमारी ऐसी मान्यता है कि 'दुर्गादास' मे टॉड द्वारा वर्णित ऐतिहासिक तथ्यो का नाटककार ने यथासाध्य निरूपण किया है। अस्तु, 'दुर्गादास' नाटक की ऐतिहासिकता पर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे। इसके पूर्व हम यहाँ नाटक का कथासार प्रस्तुत कर रहे है, कहानी संक्षेप मे यूँ है—

औरगजेब के षड्यन्त्र से जब काबुल मे जोधपुर के राजा यशवन्त सिंह की मृत्यु हो गई तो सम्राट ने उसकी विधवा पत्नी महामाया और उनके नवजात शिशु अजित सिंह को बन्दी करने का मनसूबा बनाया, किन्तु मारवाड के सेनापति दुर्गादास ने असीम साहसिकता और वीरता का परिचय देकर महामाया और अजित को औरंगजेब के चगुल मे मुक्त कर उन्हे मेवाड के राणा राजसिंह के आश्रय मे पहुँचाया। औरगजेब ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सेना लेकर मेवाड पर आक्रमण किया। राजपूतो के साथ हुए भीषण युद्ध मे मुगल सेना बुरी तरह पराजित हुई। इस युद्ध मे राजपूत सेना ने दुर्गादास के सेनापतित्व मे अद्भुत वीरता का परिचय दिया। इस हार से क्षुब्ध होकर औरंगजेब ने पुन: और बडी सेना लेकर मारवाड पर आक्रमण किया। इस युद्ध मे भी मुगल सेना को पराजय का मुख देखना पड़ा। इतना ही नही औरगजेब का पुत्र अकबर, जिसे बगाल से विशेष रूप से इस युद्ध के लिए बुलावा गया था, सपरिवार राजपूतो का बन्दी हुआ। इसके बाद मजबूर होकर औरंगजेब को राजपूतो के साथ सन्धि करनी पड़ी।

राजपूतों से सन्धि करके औरंगजेब ने दक्षिणात्य में मराठा वीर शिवाजी के पुत्र शम्भुजी को वश में करने की योजना बनाई। दिवंगत पति के राज्य को निष्कंटक बनाकर तथा अजित सिंह को मारवाड़ की गद्दी पर अधिष्ठित कर राजमाता महामाया ने पति से स्वर्ग में मिलने के उद्देश्य से जलती चिता में प्रवेश कर आत्म-बलिदान किया। औरंगजेब के क्रोध का अकबर शिकार हुआ और उसे वीर दुर्गादास ने शरण दी। अकबर को शरण देने के कारण राजपूत सरदारों ने दुर्गादास का परित्याग कर दिया। दुर्गादास अकबर को लेकर शम्भुजी के आश्रय में गया। वहाँ शम्भुजी के एक मुसलमान अनुचर की विश्वासघातकता के कारण दुर्गादास औरंगजेब का बन्दी हुआ। सम्राज्ञी गुलमोहर ने बन्दी दुर्गादास से प्रणय की याचना की, किन्तु सच्चरित्र दुर्गादास ने उसे ठुकरा दिया। दुर्गादास के ओजस्वी चरित्र से मुग्ध होकर औरंगजेब के सेनापति दिलावर खाँ ने उसे मुक्त कर दिया। दुर्गादास पुनः राजपूतों के आग्रह पर मारवाड़ गए। शाहजादा अकबर ने वैराग्य धारण कर मक्का की यात्रा की। अकबर की कन्या रजिया को मारवाड़ के राजमहल से लेकर औरंगजेब तक पहुँचाने के अपराध में पुनः दुर्गादास को निर्वासित होना पड़ा और वैराग्य धारण करना पड़ा। शम्भुजी औरंगजेब के हाथों बन्दी होते हैं और मारे जाते हैं और कुछ दिन बाद औरंगजेब की भी इसी भांति मृत्यु होती है। यही दुर्गादास नाटक का कथा-सार है।

आलोचना

इस नाटक की खास त्रुटि यह है कि इसमें कोई कहानीगत ऐक्य नहीं है। 'दुर्गादास' नाटक में यह त्रुटि 'प्रताप सिंह' नाटक से भी ज्यादा है। विभिन्न घटनाओं के घात-प्रतिघात के द्वारा एक विशेष उद्देश्य की ओर ही कहानी प्रवाहित होनी चाहिए, किन्तु नाटक में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। "दुर्गादास के चरित्र के माध्यम से आदर्श देश-प्रेम और नैतिक चरित्र बल दिखाना ही नाटककार का उद्देश्य रहा है। इसे दिखाने के लिए ही नाटक में कई अप्रासंगिक घटनाओं का संयोजन करने की परिकल्पना की गई है। नाटक की दूसरी बड़ी त्रुटि यह है कि जिस द्रुत नाटकीयता से कहानी आरम्भ हुई है, अन्त में वह शिथिल हो गई है। नाटक की उत्सुकता इससे क्षुण्ण हुई है। कालगत ऐक्य निर्मम रूप से असफल हुआ है।" (बांग्ला साहित्येर इतिहास—डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य, पृष्ठ ६८६-८७)

युग-सापेक्षता

विद्वान नाटककार के भूमिका-वक्तव्य से ही प्रमाणित होता है कि द्विजेन्द्रलाल राय ने 'आदर्श देश-प्रेम और नैतिक-चरित्रबल' दिखाने की चेष्टा की है और इसीलिए उन्होंने दुर्गादास को नाटक का चरित्र नायक बनाया। जहाँ बंगला-साहित्य में अधिकांश

उपन्यास, नाटक और काव्य ग्रन्थ टॉड के 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड के 'मेवाड़ अध्याय' से कथानक लेकर लिखे गए हैं, वहीं 'दुर्गादास' नाटक की यह एक खासियत है कि इसका कथानक मुख्यत: 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड के 'मारवाड़ अध्याय' से लिया गया है। यह सही है कि कहानी मारवाड़ और मेवाड़ अध्यायों में गुँथी हुई है, किन्तु दुर्गादास और यशवन्त सिंह मूलत: मारवाड़ के राठौड़ हैं, इसलिए मारवाड़ अध्याय में कहानी विस्तार से लिखी हुई है और नाटककार ने भी उसी अध्याय को दृष्टि में रख कर इस ऐतिहासिक नाट्यकृति की विशेष रूप से रचना की है। कोई भी कृति-युग सापेक्ष होती है और नाटक में इस बात का ईमानदारी से निर्वाह किया गया है। एक इतिहासकार ने कहा है स्वतंत्रता को खो कर भी इतिहास की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि इतिहास का बड़ा महत्व है। जिस जाति का गौरव-मय इतिहास रहेगा, वह जाति पराधीन होकर भी अपने इतिहास से प्रेरणा लेकर फिर स्वतंत्र हो सकती है। भारत का प्राचीन इतिहास स्वर्णिम रहा है और इसी लुप्त-विलुप्त इतिहास को बंगला-साहित्य में जिस परिश्रम से द्विजेन्द्रलाल राय या डी० एल० राय ने उजागर किया, हिन्दी नाटकों में जयशंकर प्रसाद ने किया।

औरंगजेब की कूटनीति

शाहजहाँ की वृद्धावस्था मे मुगल सल्तनत के लिए उसके पुत्रो यथा दारा, शूजा और औरंगजेब में कई बार भयंकर लड़ाइयाँ हुई थीं। इन लड़ाइयों और युद्धों मे राजपूत राजाओ ने अपनी-अपनी दृष्टि से अर्थात किसी ने दारा का, किसी ने शूजा का और किसी ने औरंगजेब का पक्ष लिया था। राजा यशवंत सिंह दारा के पक्ष मे थे, जो सम्राट का असली उत्तराधिकारी और उदार था। औरंगजेब के साथ यशवंत सिंह की मालवा मे मुठभेड़ हुई थी। जब औरंगजेब अपने पिता को बन्दी बनाकर और भाइयों को मारकर दिल्ली के मुगलिया तख्त पर बैठा तो उसने राजा यशवन्त सिंह से सुलह-नामा कर लिया औ उन्हें सम्मानित किया। उसे इस वीर राठौड़ से पूरा भय था। अतः वह यशवंत सिंह से मुक्ति पाना चाहता था। उसने काबुल में अफगान विद्रोहियों का दमन करने के लिए राजा यशवन्त सिंह को अटक भेजा, जो काबुल के पास है। पीछे से उसने राजा यशवन्त सिंह के सुकुमार वीर पुत्र पृथ्वी सिंह को दरबार मे बुलाकर सम्मान की पोशाक भेंट की। यह परिधान विषाक्त था, जिसके पहनने से कुमार मर गया। इस तरह औरंगजेब ने अपनी कूटनीति से जहाँ पृथ्वी सिंह को मारा वहीं षड्यन्त्र से काबुल मे राजा यशवन्त सिंह को भी। काबुल की प्रतिकूल जलवायु के कारण वहाँ उनके दो अन्य पुत्र जगत सिंह और दलथम्मन उनकी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व मर गए थे।

यशवन्त सिंह की मृत्यु सम्वत १७३७ (१६८१ ई०) में हुई और उसी वर्ष कुछ माह बाद मराठा वीर केसरी शिवाजी भी परलोक सिधार गए। इस तरह औरंगजेब ने अपने दो प्रबल पराक्रमी शत्रुओं से छुटकारा पाया, जिन्हें वह साक्षात यम समझता था।

दुर्गादास की बहादुरी

राजा यशवन्त सिंह की मृत्यु के बाद उनकी पटरानी (महामाया) जब पति के साथ सती होने लगी तो राठौड़ सरदार ऊदा कूपावत ने उन्हें ऐसा करने से जबरन रोका, क्योंकि उन्हें सात माह का गर्भ था और उसी पर मारवाड़ के राजवंश की गद्दी का उत्तराधिकार निर्भर करता था। बाद में जब रानी ने पुत्र को जन्म दिया तो उसका नाम अजित रखा गया। राठौड़ सरदार रानी और शिशु को लेकर मारवाड़ के लिए रवाना हुए। रास्ते में वे दिल्ली रुके। औरंगजेब पूरी तरह राजा यशवन्त सिंह के खानदान को समाप्त कर मारवाड़ पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। अत: उसने रानी के लश्कर और परिवार के लोगों को रोक लिया और राठौड़ सरदारों से शिशु अजित को उसके सुपुर्द करने को कहा। उसने सरदारों को बड़े-बड़े प्रलोभन दिए। यहाँ तक कहा कि मारवाड़ को टुकड़ों में विभाजित कर अलग-अलग सरदारों को राजा बना दिया जायेगा, पर वीर राठौड़ सरदार स्वामी-भक्ति और देश-भक्ति से विचलित नहीं हुए। उन्होंने दिल्ली में अपनी वीरता का जौहर दिखाया और औरंगजेब के जबड़ों के बीच से रानी और अजित को छुड़ा ले भागने में कामयाब हुए। शिशु को मिठाई की एक टोकरी में एक मुसलमान ने सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया और रानी भी सुरक्षित अजित को लेकर मेवाड़ के राणा राजसिंह के आश्रय में पहुँच गई। स्मरण रहे राजा यशवन्त सिंह की माँ मेवाड़ की राजकुमारी थी। इसलिए बालक अजित का मेवाड़ बड़ा-ननिहाल था। दिल्ली की इस लड़ाई में राठौड़ वीर दुर्गादास ने जो अदम्य साहस और वीरता तथा व्युत्पन्न बुद्धि का परिचय दिया वह राजस्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में मंडित है, उसी का बिस्तार से टॉड ने वर्णन किया है और 'दुर्गादास' नाटक के रचयिता द्विजेन्द्रलाल राय ने भी यथावत चित्रण किया है। इस बात की पुष्टि में हम 'दुर्गादास' नाटक के प्रथम अंक का प्रथम दृश्य यहाँ अविकल रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं—

(स्थान—दिल्ली के प्रासाद-भवन (आम खास) में सिंहासन पर सम्राट औरंगजेब, बायें बीकानेर के महाराजा श्याम सिंह, दक्षिण में सेनापति ताहवर खाँ और दो प्रहरी। सामने राठौड़ सेनापति दुर्गादास और उनके बड़े भाई समरदास)

औरंगजेब—दुर्गादास ! यशवन्त सिंह की मृत्यु मुगल साम्राज्य के लिए बड़ा दुर्भाग्य है।

दुर्गादास—जहाँपनाह ! साम्राज्य के कल्याण के लिए, राजाज्ञा का पालन करना और मरना प्रत्येक प्रजा के लिए गौरव की बात है।

औरंगजेब—तुमने उचित कहा है दुर्गादास ! भला यशवन्त सिंह के अलावा कौन था जो दुर्दमनीय काबुल के विद्रोहियों का दमन करता ? उनके (यशवन्त सिंह) प्रति मैं ऋणी हूँ—उस ऋण को मैं जीवन में चुका नहीं सकूँगा—(श्याम सिंह से) क्यों महाराज, आपका क्या विचार है ?

श्याम सिंह—वाजिब कहा है आपने।

समरदास—क्यों ? जहाँपनाह ने तो उस ऋण को यशवन्त सिंह के पुत्र पृथ्वीसिंह की प्राणहत्या कर चुका दिया है।

औरंगजेब—मैंने उस बालक की हत्या की है ? युवक ! तुम क्या कह रहे हो, शायद तुम नहीं जानते। मैंने उसकी हत्या नहीं की है ? मैं पृथ्वी सिंह से अपने पुत्र के समान प्रेम करता था। मैंने खुद अपने हाथ से उसे राज-सम्मान की पोशाक पहनाई थी।

समरदास—सम्राट ! उस अबोध बालक ने भी यही सोचा था, लेकिन वह पोशाक विषबुझी पोशाक थी, उसे वह सरल बालक पृथ्वीसिंह नहीं जानता था।

श्याम सिंह—युवक ! तुम किससे बातें कर रहे हो—जानते हो ?

समरदास—खूब अच्छी तरह जानता हूँ, महाराज बीकानेर ! आपके प्रभु के साथ—मेरे नहीं।

औरंगजेब—(औरंगजेब अकचका गया। उसने इस प्रकार का दोषारोपण भरे दरबार मे कभी किसी से नहीं सुना था। उसकी भौंहें तन गईं किन्तु बाद में संयत होकर)—कौन कहता है कि राज-सम्मान की पोशाक विषाक्त थी ?

दुर्गादास—नहीं, जहाँपनाह ! उसका कोई सबूत नहीं है। वह सम्मान की पोशाक विषाक्त थी, यह लोगों का अनुमान है।

समरदास—(क्रोध से) अनुमान ? उसके पहनने के बाद ही विष की दारुण यंत्रणा से बेचारे बालक की मृत्यु हो गई। क्या मैंने उसकी उस मौत को आँखों से नहीं देखा था ? अनुमान ! तब यशवन्त सिंह

को अफगानिस्तान में भेज कर हत्या कराना भी अनुमान है और आज उसकी रानी और पुत्र को दिल्ली के अवरोध में रखना भी अनुमान है। अनुमान ! दुर्गादास तब तुम भी अनुमान हो, मैं भी अनुमान हूँ, सम्राट औरंगजेब भी अनुमान हैं, मुगल साम्राज्य अनुमान है, यह निखिल विश्व अनुमान हैं। यह अनुमान नहीं दुर्गादास, यह ध्रुव सत्य है, स्थूल है, यथार्थ है प्रत्यक्ष है।

दुर्गादास—शान्त होइए—दादाभाई ! याद कीजिए क्या प्रतिज्ञा कर यहाँ आये थे ?

समरदास—अच्छा, मैं चुप रहता हूं। लेकिन एक बात कह देना चाहता हूं जनाब। याद रखिएगा हम दूध पीते बच्चे नहीं हैं, जो कुछ नहीं समझते, थोड़ा-थोड़ा समझते हैं।

दुर्गादास—सम्राट से मेरी प्रार्थना है कि महाराज यशवन्त सिंह की महारानी और उसके शिशु पुत्र तथा परिवार को अपने राज्य में लौटने की अनुमति दें।

औरंगजेब—मैं उनको पुरस्कृत करना चाहता हूँ। जो अनुग्रह महाराज यशवन्त सिंह के प्रति दिखाने में मैंने कार्पण्य नहीं किया, उससे मैं उनके परिवार को कैसे वंचित कर सकता हूँ ? क्यों महाराज बीकानेर ?

श्याम सिंह—सम्राट का शुरू से ही यशवन्त सिंह के परिवार के प्रति असीम अनुग्रह रहा है।

समरदास—मैं अब बिना बोले नहीं रह सकता हूँ दुर्गादास ! सम्राट ! मेहरबानी कर 'अनुग्रह' न करें, यही आपसे अनुग्रह है। आपकी टेढ़ी भृकुटी देख कर मैं डरता नहीं, क्योंकि उसे मैं समझता हूँ, किन्तु आपकी हँसी देखकर डर लगता है जनाब ! क्योंकि उसे नहीं समझता। साफ शब्दों में कहिए कि यशवन्त सिंह के प्रति, उनके परिवार के प्रति प्रतिहिंसा चाहते हैं। जैसे आपने उनका बध किया, उनके ज्येष्ठ पुत्र का बध किया, उसी तरह उनकी रानी और पुत्र का भी बध करना चाहते हैं। साफ कहिए कि यशवन्त सिंह के परिवार को जिन्दा नहीं छोड़ना चाहते हैं। अनुग्रह न करें, यही आपसे

भीख मांगता हूँ। आपकी शत्रुता से दोस्ती ज्यादा भयंकर है।

दुर्गादास—दादा भाई! क्या आप मेरी प्रार्थना पर पानी फेर देना चाहते हैं? अच्छा है, आप लौट जायें।

समरदास—चला जाता हूँ दुर्गादास! लेकिन एक बात और कहे जाता हूँ—केवल एक बात। मैं सम्राट अकबर से सम्राट औरंगजेब की एक बात में ज्यादा श्रद्धा करता हूँ। वह है—महाराजाधिराज अकबर के समान पाखण्डी नहीं हैं। ये निखालिस मुसलमान हैं, सरल कट्टर धार्मिक मुसलमान हैं। सम्राट औरंगजेब वैवाहिक छल-बल से हिन्दुओं का हिन्दुत्व नष्ट नहीं करते हैं। साफ लफ्जों में खून-खराबे से इस्लाम की, अपने धर्म की भारत में स्थापना करना चाहते हैं। करें, इससे डरता नहीं हूँ। लेकिन अनुग्रह न दर्शायें। जितना अनुग्रह किया है क्या थोड़ा है? उसी से अभी तक हम जर्जरित हैं। प्रार्थना है अनुग्रह न करें—दुहाई है। (प्रस्थान)

(ताहवर खाँ समरदास को पकड़ने के लिए उद्यत होता है—औरंगजेब इशारे से मना करता है)

औरगजेब बीकानेर महाराज को जाने की आज्ञा देता है और एकान्त में दुर्गादास को पुरस्कार का प्रलोभन देता है और रानी तथा शिशु को अपने हवाले करने के लिए कहता है, पर वीर केसरी दुर्गादास उस पर लानत फेंकता है। तब औरंगजेब ताहवर खाँ को दुर्गादास को बन्दी बनाने का आदेश देता है। दुर्गादास म्यान से तलवार निकाल कर प्रस्तुत होता है और तूर्य बजाता है। (तभी पाँच राठौड़ सरदार नंगी तलवारें लेकर उपस्थित होते हैं।) दुर्गादास कहता है—'सम्राट अभी तो पाँच को देख रहे हैं और दूसरी बार तूर्य बजाऊँगा तो पाँच सौ सैनिक हाजिर होंगे। इसलिए जो करें, सोच समझ कर करें। (दुर्गादास सरदारों के साथ चला जाता है)

औरंगजेब अचम्भित रह गया, मन ही मन बोला—दुर्गादास, दुर्गादास! जानता था तुम वीर हो, साहसी हो, किन्तु तुम्हारा इतना साहस होगा, नहीं जानता था (फिर रुक कर ताहवर खाँ से) ताहवर खाँ!

ताहवर खाँ—खुदावन्द!

औरंगजेब—सेनापति दिलेर खाँ को मेरा हुक्म सुनाओ—इसी क्षण बड़ी सेना

लेकर वह यशवन्त सिंह के निवास पर घेरा डाले।

('द्विजेन्द्र रचनावली', प्रथम खण्ड, 'दुर्गादास' नाटक, प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृ० १६१-१६३)

टॉड के 'राजस्थान' में राजा यशवन्त सिंह को काबुल भेजने की घटना का वर्णन इस प्रकार है—

"The emperor (Arungzeb) saw that the only chance of counteracting Jeswunt's inveterate hostility was to employ him where he would be least dangerous. He gladly availed himself of a rebellion amongst the Afghans of Cabul...leaving his elder son, Pirthi Sing, in charge of his ancestral domains, with his wives, family and the chosen bands of Maroo, Jeswunt departed for the land of the 'barbarian' from which he was destined never to return." (Annals and Antiquities of Rajasthan—By James Tod, Vol. II, Chapter VI, Page 39-40).

पृथ्वीसिंह की हत्या किस प्रकार औरंगजेब ने की उसका उल्लेख 'राजस्थान' मे इस प्रकार है—

'...Arungzeb having commanded the attendance at court of Jeswunt's heir (Pirthi Sing)...he ordered him a splendid dress, which, as customary, he put on...That day was his last ! —he was taken ill soon after reaching his quarters and expired in great torture, and to this hour his death is attributed to the poisoned robe of honour presented by the King (Arungzeb), (Ibid, Page 40).

दैवी शक्ति

टॉड के 'राजस्थान' में उस युद्ध का पूरा विवरण है, जिसमे राजा यशवन्त सिंह की पत्नी और शिशु अजित की रक्षा हुई थी तथा राठोड़ वीरो ने दिल्ली में अपनी बहादुरी और दिलेरी का गरिमामय परिचय दिया था। इन घटनाओ को न टककार ने बड़ी ओजस्वी भाषा में 'दुर्गादास' नाटक में दर्शाया है। हम राजस्थान' से कुछ अश यहाँ उद्धृत करते हैं—

'रोष से उन्मत्त राठोड़ सरदार' आमखास को छोड़कर शीघ्रतापूर्वक अपने डेरों में आये। उन डेरों को शीघ्र ही औरंगजेब की सेना ने घेर लिया। किन्तु ऐसे आपत्ति-काल में उन्होंने धैर्य धारण किया और राजपुत्र के जीवन की रक्षा के निमित्त वे कोई सदुपाय सोचने लगे। सरदारगण राजधानी में आनेवाले हिन्दुओं को मिष्टान्न भेंट देने के बहाने अनेक प्रकार के पकवान चारों ओर भेजने लगे। एक पकवान की टोकरी में

अजित को भेज दिया। एक विश्वासी मुसलमान के हाथ अजित को टोकरी में बिठाकर निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया गया।

राजकुमार अजित की सुरक्षा हो गई तो राठोड वीर अपनी सहगामिनी स्त्रियो के सम्मान और गौरव की रक्षा करने पर तत्पर हुए। मान-रक्षा का केवल एक ही उपाय था—'जौहर'। वीर नारी राजपूत स्त्रियो ने इष्टदेव का नाम लेते-लेते उस भयानक घर मे प्रवेश किया जहाँ पहले से बारूद और काठ-कबाड़ इकट्ठा किया गया था। द्वार बन्द कर दिया गया और एक झरोखे से बारूद मे अग्नि दे दी गई। भयंकर शब्द के साथ बारूद का विस्फोट हुआ और क्षणमात्र मे कमल के समान स्त्रियाँ भस्म हो गई, रूप, यौवन, लावण्य सब एक पल मे अग्नि-लपटो मे समा गया।

निश्चिन्त होकर राठौड वीर मुगल सेना पर टूट पडे, दिल्ली के राजमार्ग पर खून की धारा बहने लगी। दुर्गादास रानी की तथा कुछ बचे सरदारो की रक्षा करने मे कामयाब हुआ और उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ अजित को पहुँचा दिया गया था। (टॉड का 'राजस्थान', द्वि० खण्ड, पृष्ठ १०५)

किस प्रकार अढाई सौ राजपूतो ने औरंगजेब के पाँच हजार सैनिको से लोहा लिया और अजित की प्राण रक्षा की। इस अद्भुत घटना का वर्णन नाटक मे इस प्रकार किया गया है—यशवन्त सिंह की वीर विधवा पत्नी ने दैवी-शक्ति सदृश्य प्रतिभासित होकर ऐसा कार्य किया जिसे सेनापति दिलावर खाँ हत्बुद्धि होकर बस देखता रह गया।

औरंगजेब—कि ? यशोवन्तेर रानी आढ़ाई सौ मात्र सैन्य निये पाँच हाजार मोगल सैन्येर व्यूह भेद करे चले गेलो ? आर से मोगल सेनार सेनाध्यक्ष स्वयं दिलेर खाँ—एर मध्ये किछु रहस्य आच्छे····। मोगल सैन्य कि मेयेर थेके अधम होयेछे, जे एकटा नारीर गति प्रतिरोध करते पारलो ना ?—संगे तार आड़ाई सौ मात्र सैन्य ?

दिलावर—जहाँपनाह ! जखन सेइ नारी मोगल सैन्य-व्यूहेर सम्मुखे एसे दांडालेन-निरवगुण्ठना, आलुलायितकेशा, वक्षे सुप्त पुत्र—तखन महारानीर आड़ाई सौ सैन्य आड़ाई लक्ष बोध होलो। सेई मोगल सैन्य कृष्ण मेघेर ऊपर दिए तिनि विद्युतेर मतो एसे चले गेलेन, केउ ताके स्पर्श कर्ते साहस करलो ना····देखलाम से एक महिमामय दृश्य ! कि से महिमा ! जहाँपनाह ! निर्मेघ ऊषार चेये निर्मल, वीणार झंकारेर चेये संगीतमय, ईश्वरेर नामेर चेये पवित्र सेई मातृमूर्ति ! बज्राहतेर न्याय दाडिये रोइलाम।'

('दुर्गादास' नाटक, प्रथम अंक, सप्तम दृश्य, पृष्ठ १७२-१७३)

नाटक में मेवाड़ के राणा राजसिंह का वीरोचित व्यवहार और राजा यशवन्त सिंह की विधवा रानी की बहादुरी का सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। इसका वर्णन टॉड ने भी अपने ग्रन्थ 'राजस्थान' में किया है—

"It was not, however, till the death of those two powerful princes, Jeswunt Sing of Marwar and Jey Sing of Amber, both poisoned by command of the tyrant, the one at his distant government of Cabul, the other in the Dekhan, that he deemed himself free to put forth the full extent of his long-concealed design, the imposition of the Jezeya or capitation tax, on the whole Hindu race. But he miscalculated his measures, and the murder of these princes, far from advancing his aim, recoiled with vengeance on his head.

Foiled in his plot to entrap the infant sons of the Rathore by the seif-devotion of his vassals (Two hundred and fifty Rajpoots opposed five thousand of the Imperialists as a pass, till the family of Jeswunt escaped), the compound treachery evinced that their only hope lay in a deadly resistance. The mother of Ajit, the infant heir of Marwar, a woman of the most determined character was a prince of Marwar and she threw herself upon the Rana (Raj Sing) as the natural guardian of his rights, for sanctuary during the dangers of his minority This was readily yeilded, and Kailwa assigned as his residence, where under the immediate safeguard of the brave Doorga-das Ajit resided, while she nursed the spirit of resistance at home. A union of interests was comented between these the chief states of Rajpootana for which they never before had such motive, and but for repeated instances of an ill-judged humanity, the throne of the Moguls might have been completely overturned. (Ibid, Vol. I, Page 302).

आदर्श की अतिशयता

द्विजेन्द्रलाल राय ने मुख्य कहानी के साथ कई उप-कथाओं को जोड़कर नाटक का रस-भंग किया है, यथा अकबर की कहानी, जयसिंह-कमला-सरस्वती की कहानी, शम्भुजी की कहानी आदि। शाहजादा अकबर और जयसिंह तथा कमला का इतिहास में उल्लेख है, पर सरस्वती नाटककार की अपनी उपज है, जिसे एक पतिपरायण नारी के रूप मे चित्रित किया गया है। डॉ० रथीन्द्रनाथ राय का कथन है—'नाट्यकार ने दुर्गादास को नाटक का चरित नायक बनाया है, लेकिन सही अर्थों में उसे वह मर्यादा नहीं मिली है। आद्योपान्त नाटक में दुर्गादास की उपस्थिति होने के

बावजूद उसका चरित्रांकन यथार्थ मनुष्य की भूमिका पर नहीं किया गया है। उसमें आदर्श की अतिशयता है। दैविक गुणों से भूषित होने पर वह धरती का पुत्र नहीं दीखता।" ('द्विजेन्द्रलाल : कवि उ नाट्यकार', पृष्ठ २६०)

ऐसा लगता है जैसे नाटककार ने अपने पिता (स्व० कार्तिकेशचन्द्र राय देवशर्मा, जिन्हें नाटक उत्सर्ग किया गया है) के देवचरित्र का भाव रूप दिखलाया है। नाटक की भूमिका में 'दुर्गादास' को त्रासदी कहा गया है, पर केवल गुलमोहर की आत्महत्या, रजिया का उन्माद, दुर्गादास का वैराग्य, शम्भुजी की हत्या, औरंगजेब की मृत्यु, अजित सिंह की निराशा आदि विषादान्त घटनाओं से आच्छन्न 'दुर्गादास' नाटक सही अर्थों में ट्रेजेडी नहीं बन पड़ा है। हाँ, दुर्गादास की यह उक्ति त्रासदी को ध्वनित करती है—'व्यर्थ हुआ है सब, इस जाति को एकता में नहीं बाँध सका, ऊँचाई पर नहीं लेजा सका....।'

औरंगजेब का अंतिम जीवन

द्विजेन्द्रलाल ने अपने 'शाहजहाँ' नाटक के औरंगजेब से इस नाटक में यत्-किंचित उसका दूसरा रूप दिखाया है। शायद युवा होने के कारण वह तब क्रूर, कुटिल और स्वार्थपरायण था, पर 'दुर्गादास' नाटक में वार्धक्य के कारण, पुत्रों की राज्यलिप्सा के कारण, बेगम उदीपुरी (गुलमोहर) के कुकर्म, दिलावर खाँ के परित्याग आदि के कारण उसका जीवन विषादपूर्ण हो गया था। इसीलिए नाटककार ने भूमिका में लिखा है—'औरंगजेब की पैशाचिकता का मैंने वर्णन नहीं किया है जैसा टॉड और अर्म ने किया है—मैंने उसे सरल, कट्टर मुसलमान के रूप में चित्रित किया।' सचमुच औरंगजेब का शेष जीवन कष्टकर था। मेवाड़ और मारवाड़ तथा मराठों ने सिर उठा लिया था। कई बार उसे पराजय का मुख देखना पड़ा था और जिस बेगम के प्रेम में वह पागल था, उसने भी उसे अन्त में त्याग दिया था। इतिहास में उसे मुगलिया सल्तनत के पतन का कारण कहा जाता है। प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने इस बात को इन शब्दों में कहा है—

'The last years of Aurangzib's life were unspeakably gloomy. In the political sphere he found that his life-long endeavour to govern India justly and strongly had ended in anachy and disruption throughout the empire. A sense of unutterable lonliness haunted the heart of Aurangzib in his old age...his last wife Udaipuri, a low animal type of partner, whose son Kam Bakhsh broke his imperial father's heart by his freaks of insane folly and passion. His domestic life was darkened as bereavements thickened round his closing eyes." (A short History of Aurangzib : J. N. Sarkar, Page 380-81).

युग का प्रभाव

स्वदेशी आन्दोलन की पटभूमि में लिखे 'दुर्गादास' नाटक में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता की प्रचेष्टा नाटककार ने की है। कासिम और दिलेर खाँ इस एकता के प्रतीक हैं। दिलेर खाँ का औरंगजेब को कहा हुआ यह कथन 'हिन्दू-मुसलमान अगर साम्प्रदायिक विद्वेष को भूलकर परस्पर भाई के रूप में आलिंगनबद्ध हों तो सम्राट ! उस दिन हिमालय से कन्या कुमारी तक एक ऐसे साम्राज्य की सृष्टि होगी, जिसे विश्व ने कभी नहीं देखा था। ('दुर्गादास' नाटक, पृष्ट २२६)

कहना नहीं होगा यह उक्ति सतरहवीं शताब्दी के दिलेर खाँ की नहीं है, अपितु 'बंगभंग' की उस अस्मिता की है जो अंग्रेजी शासन के विरुद्ध स्वातंत्र्य संग्राम के लिए देशवासियों को प्रबुद्ध कर जगा रही थी। एकता की इस भावना ने अग्रेजों की बंगभंग की मंशा को समाप्त किया और एक दिन अंग्रेजों को भारत छोड़ कर जाना पड़ा।

रचनाकार युगधर्म का प्रवक्ता होता है और जहाँ वह समसामयिक विषयों, समस्याओं और मुद्दों को अपनी रचनाओं में अंकित करता है, उसमें अतीत के गौरवगान के साथ भविष्यद्रष्टा का अंकन होता है। यह 'दुर्गादास' की कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। वैसे 'प्रताप सिंह' की तुलना में इस नाटक में थोड़ी बहुत त्रुटियाँ हो सकती हैं, पर पहले नाटक की अपेक्षा 'दुर्गादास' में नाटकीयता का प्रचुर समावेश हुआ है। यही कारण है कि 'दुर्गादास' का मंचन केवल बंगाल के प्रेक्षागृहों में ही नहीं हुआ, बल्कि भारत के अन्य स्थानों में भी बड़े आदर के साथ इसका अभिनय हुआ और द्विजेन्द्रलाल राय या डी० एल० राय की ख्याति में चार चाँद लग गए, विशेषकर ऐतिहासिक नाटककार के रूप में।

'दुर्गादास' नाटक का हिन्दी अनुवाद

बंगला भाषा के प्रसिद्ध नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के प्रसिद्ध नाटक 'दुर्गादास' का हिन्दी अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय ने किया। इसके तेरहवें संस्करण का प्रकाशन अप्रैल, १९६३ में हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लि०, बम्बई से हुआ। नाटक की भूमिका श्री नाथूराम प्रेमी ने लिखी है। यह भूमिका पं०

रूपनारायण पाण्डेय के द्वारा अनुदित नाटक 'दुर्गादास' के द्वितीय संस्करण में अर्थात १९१९ ई० में प्रकाशित हुई थी। द्विजेन्द्रलाल राय के 'दुर्गादास' नाटक के एक दर्जन से अधिक संस्करण इसकी प्रसिद्धि के प्रमाण हैं।

द्विजेन्द्रलाल के 'दुर्गादास' नाटक का हिन्दी अनुवाद १९२० ई० में कलकत्ता से भी प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक हैं मीरगंज (राजशाही) निवासी श्री द्वारिका नाथ मैत्र। आपने 'दुर्गादास' नाटक का हिन्दी अनुवाद ३१ जनवरी, १९१४ ई० को किया था। श्री द्वारिकानाथ मैत्र के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन श्री रामलाल वर्मा द्वारा आर० एल० वर्मन एण्ड कं०, कलकत्ता से हुआ है। यद्यपि पं० रूपनारायण पाण्डेय के हिन्दी अनुवाद की काफी प्रसिद्धि हुई, पर कलकत्ता से प्रकाशित 'दुर्गादास' नाटक के अनुवाद से इस बात का पता चलता है कि द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक उस काल में काफी चर्चित थे। उनके नाटकों का अनुवाद हिन्दी भाषियों के साथ-साथ बंगला भाषा के विद्वान भी कर रहे थे।

आचार्य चतुरसेन का अजित सिंह' नाटक

हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार-नाटककार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'अजित सिंह' नाटक की रचना की, जिसके तृतीय संस्करण का प्रकाशन १९४९ ई० में गौतम बुक डिपो, दिल्ली से हुआ है। इस नाटक में आचार्य चतुरसेन ने वीर दुर्गादास की बहादुरी का बखान किया है, जिसकी वीरता और बुद्धि कौशल से मारवाड़ के राजा यशवन्त सिह के पुत्र अजित सिंह की औरगजेब से रक्षा हुई।

चतुरसेन शास्त्री इतिहास के पण्डित हैं। अतः आपने भूमिका में सभी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया है। आपने नाटक मे पन्ना धाय की भांति दुर्गा धाय के त्याग-बलिदान को दिखाया है। दुर्गा धाय ने बालक अजित की रक्षा के लिए अपने पुत्र को 'राजकुँवर' बताकर औरंगजेब के सुपुर्द कर दिया। औरंगजेब ने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया और जब वह पाँच वर्ष का हुआ तो उसका नाम मुहम्मद रख दिया।

चतुरसेन शास्त्री के 'अजित सिंह' नाटक में कई नई उद्भावनाओं का समवेश है।

डॉ० मनोहर शर्मा की 'दुर्गादास' काव्य-कृति

राजस्थान के प्रसिद्ध कवि-साहित्यकार डॉ० मनोहर शर्मा ने मारवाड़ के वीर पुँगव दुर्गादास पर काव्य-रचना की है। उनकी यह रचना 'अरावली की आत्मा' काव्य-पुस्तक में संकलित है। इसका प्रकाशन १९४७ ई० में कलकत्ता से हुआ है। कवि ने मेवाड़ के वीर केसरी राणा प्रताप तथा मारवाड़ के वीर दुर्गादास को मरुधरा के दो अनमोल रत्नों से आख्यायित किया है। उनका दोनों वीरों की प्रशस्ति में देखिए यह दोहा—

पातल दुरगो दो जणा, सत को राख्यो कोल।
राजस्थानी खाण का, ये हीरा अनमोल॥
('अरावली की आत्मा' काव्य, पृ० ११)

राणा प्रताप और दुर्गादास ने सत्य की रक्षा का पालन किया। राजस्थान वीरों की खान है। इस खान के ये दोनों वीर अनमोल हीरे हैं। राणा क्षत्रिय वीर था और दुर्गादास देश-भक्त सरदार था। वह हमेशा घोड़े की पीठ पर सवार होकर तथा हाथ में तलवार लेकर युद्ध-भूमि में वीरता का प्रदर्शन किया करता था—

वो छत्रो, रजपूत वो, वो साचो सिरदार।
नित घोड़ै की पीठ पर, नित कर मैं तरवार॥ (वही, पृ० ११)

दुर्गादास स्वामी-भक्त सरदार था। वह मारवाड़ की ढाल था। उसने अपनी बहादुरी से अपने शरीर को ही अमरत्व नहीं दिया, अपितु देश के यश की भी रक्षा की—

साम धरम को रूप तूँ, मारवाड़ की ढाल।
तन राख्यो, राख्यो सुजस, राख्यो देस विसाल॥ (वही, पृ० ११)

दुर्गादास ने औरंगजेब की कूटनीति का पर्दाफाश किया और अपनी बुद्धि-चातुरी से देश का कार्य किया। मारवाड़ के राजा जसवन्त सिंह ने भी स्वर्ग मे कहा कि मैं दुर्गादास के ऋण से उऋण नहीं हो सकता—

दुरनीति औरंज की, तूँ काटी तत्काल।
कारज सार्‌या देस का, चाल अनोखो चाल॥
सुरगापत कै बाग मैं, यूँ बोल्यो जसवन्त।
थाँसू उरिण न होयस्याँ, ओ नाहर द्युतिमान॥
(वही, पृ० १२-१३)

डॉ० मनोहर शर्मा ने अपनी काव्य-रचना से मरुधरा के वीर-चरित्रों को उजागर किया है और उनकी कीर्ति-गाथा में रचनाधर्मिता का पालन किया है। राजस्थानी इतिहास में वीर दुर्गादास का यश इस श्रद्धा से गाया गया है कि प्रातःकाल उसका नाम लेने मे पाप कट जाते हैं और सुख-समृद्धि मिलती है—

दुरगै की कीरत करी, राजस्थानी ख्यात।
पाप कटै सम्पत फलै, नाम लियाँ परभात॥
('अरावली की आत्मा' काव्य, पृ० १३)

१९५६ ई० में कवि नारायण भाटी ने 'दुर्गादास' काव्य-ग्रन्थ की रचना की। हिन्दी अनुवाद सहित इस काव्य-पुस्तक का सम्पादन श्री बिजयदास देथा एवं श्री कोमल कोठारी ने किया है।

रामकुमार वर्मा का 'जौहर की ज्योति' नाटक

१६६७ ई० में डॉ० रामकुमार वर्मा का 'जौहर की ज्योति' नाटक प्रकाशित हुआ है। इस नाटक का कथानक मारवाड़ के वीर दुर्गादास की जीवनी पर आधारित है। असल में राजस्थान के अन्य जितने ऐतिहासिक पात्रों पर रचनाएँ हुई हैं वे या तो राजा हैं या रानी, किन्तु एक वीर सरदार की इतनी प्रशस्ति हुई और उस पर प्रचुर साहित्य लिखा गया, उस वीर केसरी का नाम है दुर्गादास।

डॉ० वर्मा ने 'जौहर की ज्योति' नाटक की भूमिका में पृ० ६ पर लिखा है—"इसमें संदेह नहीं कि समस्त देश में राष्ट्रीयता की प्रेरणा राजस्थान में सबसे अधिक रही है। पश्चिमी सीमा से लगा हुआ होने के कारण विदेशी आक्रमण-कारियों ने उस पर निरन्तर आक्रमण किये हैं और दक्षिण का द्वार समझ कर उन्होंने उसे अपनी विजय का राजमार्ग समझा है। इसका परिणाम यह हुआ कि आक्रमण को रोकने के लिए तथा विदेशियों से संघर्ष लेने के लिए वहाँ एक ऐसे वर्ग की परम्परा स्थापित हुई जो रण-क्षेत्र को अपने जीवन की प्रगति में एक आवश्यक अंग मानने लगा और उसके लिए निरन्तर सन्नद्ध और कटि-बद्ध रहने लगा।

राजस्थान में अनेक राजवंश हुए जिनकी कीर्ति-गाथा से हमारे देश का इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखा जा सकता है। न केवल राजपूत वीरों ने अपितु राजपूत नारियों ने या तो कृपाण लेकर युद्धों में शत्रुओं से लोहा लिया या अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए अपने को अग्नि की लपटों में समर्पित कर दिया। अग्नि में समर्पित हो जाने के जौहर-पर्व से राजस्थान का इतिहास अनन्तकाल तक गौरव की कान्ति से देदीप्यमान रहेगा।"

वीर दुर्गादास ने जिस प्रकार मारवाड़-वंश की रक्षा के लिए उपाय रचे और अपनी बुद्धि और शक्ति का परिचय दिया यही 'जौहर की ज्योति' नाटक का मुख्य विषय है। प्रकारान्तर से इस नाटक को दुर्गादास के शौर्य और विक्रम की एक रक्त-रंजित रूपरेखा कह सकते हैं। दुर्गादास की मारवाड़ के लिए की गई वीरता हमे मेवाड़-केसरी राणा प्रताप का स्मरण दिलाती है। महाराणा प्रताप ने जिस प्रकार मेवाड़ की रक्षा की, उसी प्रकार दुर्गादास ने मारवाड़ की। प्रताप नरेश थे, राणा थे और दुर्गादास महज एक सरदार था। ऐसे वीर की कीर्ति आज भी राजस्थान के गौरवमय इतिहास में अमर है। टॉड ने इसका प्रभावशाली भाषा में वर्णन किया है तथा बंगला के प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय ने 'दुर्गादास' नाटक लिखा। इसकी इतनी

प्रसिद्धि हुई कि पहले हिन्दी में 'दुर्गादास' नाटक का अनुवाद हुआ और बाद में कई रचनाकारों ने अपनी कलम चलाई। देश की अन्य भाषाओं में भी द्विजेन्द्रलाल के 'दुर्गादास' नाटक का अनुवाद हुआ और पुनः इस वीर पर मौलिक रचनाएँ लिखी गईं।

वर्माजी के 'जौहर की ज्योति' और द्विजेन्द्रलाल राय के 'दुर्गादास' के प्रथम अंक में काफी समानता है। दोनों नाटककारों ने दिखाया है कि औरंगजेब महाराज यशवन्त सिंह की रानी और उनके पुत्र अजीत सिंह को अपने संरक्षण मे रखने की बात कहता है, किन्तु उसका असली मकसद यशवन्त सिंह के वंश को समाप्त करना है। राठौड़ वीर दुर्गादास औरंगजेब के इस षडयन्त्र को विफल करता है। मुगल सेना से मुट्ठी भर राजपूतो का युद्ध होता है और अजित तथा रानी की रक्षा होती है।

टॉड के इतिहास में वर्णित है कि महाराज यशवन्त सिंह के पुत्र पृथ्वी सिंह को औरंगजेब दिल्ली दरबार मे विषबुझी पोशाक देता है, जिसके पहनने से उसकी मृत्यु होती है। डॉ० वर्मा ने अपनी भूमिका में भी इस बात को स्वीकार किया है, किन्तु द्वितीय अंक में दुर्गादास मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से कहता है—"महाराणा! काबुल में कुमार पृथ्वी सिंह को जो राजसी पोशाक औरंगजेब ने प्रदान की थी वह विष से सींची गई थी। उसको धारण करते ही कुमार पृथ्वी सिंह भूमि पर गिर पड़े और थोडी देर में स्वर्ग चले गये।" (पृ० १८)

'जौहर की ज्योति' नाटक में दिखाया गया है कि औरंगजेब के पुत्र अकबर को दुर्गादास संरक्षण देता है, उसके परिवार को अपने पास रखता है। अकबर की पुत्री सफीयत-उ-न्निसा बानू है। इसका पालन वीर दुर्गादास पुत्री की तरह करता है। जब सफीयत युवा होती है तो अजीत भी यौवन के द्वार मे प्रवेश करता है। दोनों एक दूसरे के प्रति आसक्त होते हैं। दुर्गादास अजीत को प्रेम-प्रसंग से दूर रह कर देश की रक्षा का पाठ पढ़ाता है। युवक अजीत इस पर कुपित होता है और सफीयत से गन्धर्व विवाह करता है। अन्त मे वीर दुर्गादास सफीयत को समझाता है, वह अपने प्रेम की कुर्बानी देती है। इसी घटना के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है 'जौहर की ज्योति'। सफीयत जब राजकुमार अजीत के जीवन से हट जाने की बात कहती है तब वीर दुर्गादास कहता है—"सफीयत! अनेक वर्षों तक तुम राजस्थान ही नहीं, देश के गौरव के लिए जीवित रहो। ....राजकुमार! तुम स्तब्ध होकर देख रहे हो? नारी के जौहर की ज्योति देखो।" (पृ० ६६)

इस प्रकार नाटक यहीं समाप्त हो जाता है। 'जौहर की ज्योति' डॉ० राम कुमार वर्मा का चर्चित नाटक है।

द्विजेन्द्रलाल राय का 'मेवाड़ पतन' नाटक

जैसा कि हमने लिखा है, द्विजेन्द्रलाल राय ने राजपूत-मुगल इतिहास को लेकर पाँच नाटक और एक नाट्य-काव्य लिखा। 'ताराबाई' उनका नाट्य-काव्य है। यह टॉड के इतिहास पर आधारित है। टॉड के 'राजस्थान' से कथा-वस्तु लेकर आपने 'प्रताप सिंह', 'दुर्गादास' एवं 'मेवाड़ पतन' और मुगल इतिहास से 'नूरजहाँ' तथा 'शाहजहाँ' नाटक लिखे। हिन्दू इतिहास पर उनका अन्तिम ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' है। 'दुर्गादास' की रचना के बाद आपने 'नूरजहाँ' नाटक की रचना की और बाद में ७ दिसम्बर १६०८ ई० को एक खास उद्देश्य को लेकर 'मेवाड़ पतन' नाटक लिखा। यह नाटक विशेष चर्चित हुआ। इसे 'प्रताप सिंह' नाटक का परिशिष्ठ कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं होगी। ऐतिहासिकता की दृष्टि से 'मेवाड़ पतन', 'प्रताप सिंह' के समतुल्य ही कहा जायेगा।

आबार तोरा मानुस हो

विशेष उद्देश्य से अनुप्राणित होकर लिखने का तात्पर्य है कि एक उदार साम्यमूलक महानीति के प्रचारार्थ इसकी रचना हुई है। नाटककार ने स्वयं 'मेवाड़ पतन' की भूमिका में लिखा है—'इस नाटक में मैंने एक महानीति का उद्घोष किया है और वह है 'विश्व-प्रेम'। कल्याणी, सत्यवती और मानसी के चरित्र क्रमशः दाम्पत्य प्रेम, देश-प्रेम एवं विश्व-प्रेम के रूप में कल्पित हुए हैं। इसमें दिखाया गया है कि विश्व-प्रेम ही सर्वापेक्षा गरीयसी है।' नाटक की घटना एवं पात्रों का संलाप लेखक के विचारों का वाहक और धारक होता है। इससे नाटक का क्रन्दनमय रूप सान्त्वना में पर्यवसित हो गया है। इसी से नाटक की निराशावाद की अन्तिम चरम परिणति आशावाद में रूपान्तरित हुई है, जिसकी प्रतिध्वनि नाटक के अन्त में इन शब्दों में ध्वनित होती है—

'किसेर शोक करिस भाई—
अबार तोरा मानुस हो।
गिएछे देश दुःख नाई—
आबार तोरा मानुस हो॥'····

('द्विजेन्द्र रचनावली', प्रथम खण्ड, 'मवाड़ पतन' नाटक,
पंचम अंक, अष्टम दृश्य, पृ० ३५०)

नियति नटी

द्विजेन्द्रलाल ने 'मेवाड़ पतन' नाटक को बंगला साहित्य के महाकवि और नाटककार स्व० माइकेल मधुसूदन दत्त को उत्सर्ग किया है। स्वाभाविक है कि कवि-नाटककार द्विजेन्द्रलाल माइकेल से प्रभावित हैं। माइकेल के 'कृष्णकुमारी' के सदृश आपने भी मेवाड़ पतन को ट्रेजेडी में परिणत करने की चेष्टा की है। पर बात पूरी तरह बन नहीं पाई है और उनका विश्व-प्रेम जैसे एक दुर्लंघ्य, दुर्जेय नियति आच्छादित करने में प्रभावी हो गया है। इस नियति से गोविन्द सिंह और अमर सिंह जूझते हैं, किन्तु इसे रोक नहीं पाते हैं। इसी नियति नटी का खेल हमें हिन्दी के कवि, कथाशिल्पी और नाटककार जयशंकर प्रसाद के नाटकों में मिलता है। दोनों नाटककारों में यह सादृश्य दर्शनीय है।

'मेवाड़ पतन' का कथानक

पाँच अंकों में लिखे गए 'मेवाड़ पतन' नाटक पर आलोचना करने के पूर्व उसके कथासार का उल्लेख यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। संक्षेप मे कथासार इस प्रकार है—

राणा प्रताप के पुत्र. अमर सिंह अब मेवाड़ के राणा है। उनकी राजधानी उदयपुर है। मेवाड़ की पुरानी राजधानी चित्तौड़ मुगलों के कब्जे में है। प्रताप प्राण त्यागने के पूर्व चित्तौड़ को छोड़ कर बाकी मेवाड़ के करीब-करीब पूरे इलाके का पुनरुद्धार कर चुके थे। मुगल सेना का हिदायत अली खाँ के नेतृत्व में मेवाड़ पर आक्रमण होता है, किन्तु राजपूत वीरों के पराक्रम से वह पराजित होकर पलायन करता है। शीघ्र ही शाहजादा परवेज के अधिनायकत्व में पुनः नए सिरे से मुगल सेना का मेवाड़ पर आक्रमण होता है। मुगलों का आश्रित सगर सिंह सेना के साथ आता हैं। यह सगर सिंह मुगलों के सेनापति महावत खाँ का पिता है। उसने धर्म परिवर्तन कर अपना नाम महावत खाँ रख लिया था। सगर सिंह राणा प्रताप के ज्येष्ठ भ्राता थे। किन्तु दूसरी बार भी राजपूतो के हाथों मुगलों को पराजय का मुख देखना पड़ा। अन्त मे महावत खाँ एक विशाल मुगल सेना लेकर आता है और भयंकर रूप से मेवाड़ पर आक्रमण करता है। जाहिर है कि पिछले दो युद्धों में मेवाड़ के अनेक वीरश्रेष्ठ वीरगति को प्राप्त हो चुके हैं। इस बार मुगलों की विशाल सेना का मुकाबला करने के लिए मेवाड़ में वह शक्ति नहीं थी। नियति को कौन टाल सकता है, मेवाड़ पतन होता है, उदयपुर का दुर्ग मुगलों की सेना के अधिकार में चला जाता है। कितनी विडम्बना है कि राणा प्रताप ने रक्त सींच कर जिस मेवाड़ का पुनरुद्धार किया था, वह पुनः अमर

सिंह के काल मे मुगलो के अधीन हो जाता है । इसी से हमने इसे 'प्रताप सिंह' नाटक का परिशिष्ट या उत्तरार्द्ध से सज्ञायित किया है । नाटककार ने नाटक मे यही दिखाने की कोशिश की है कि किस प्रकार मेवाड का पतन हुआ ।

महावत खाँ

किन्तु 'मेवाड़ पतन' मे एक बात दिखाने की प्रचेष्टा की गई है कि जाति-विद्वेष पतन के मूल मे रहा है । धर्मान्तरकारी महावत खाँ के मुख से नाटककार ने जातीय-विद्वेष की बातें बार-बार कहलवाई है । 'स्वजाति-विद्वेष ही जाति के विध्वंस का कारण है ।' यह नाटक मे महावत खाँ के कथन और आचरण मे दिखाया गया है । टॉड ने महावत खाँ का परिचय इतना ही दिया है कि वह राणा प्रताप के भाई सगर सिह का पुत्र था । इसी सूत्र को लेकर नाटककार ने 'महावत खाँ' और कल्याणी की कहानी को गढा है । इतिहास मे महावत खाँ का मेवाड से या राजपूतो से कोई सम्बन्ध नही था । इतिहासकारो ने उसका नाम जमाना बेग बताया है और उसका आदि स्थान काबुल मे था । हां, इतना जरूर है कि उसकी वीरता, निर्भीकता एव सैन्य-संगठन की प्रतिभा का परिचय 'मेवाड पतन' के नाटककार ने बखूबी दिया है । जहाँगीर उसे सम्मान दिया करता था और एक दफा इसी महावत खॉ ने जहाँगीर को बन्दी बनाया था । 'प्रताप सिंह', 'नूरजहाँ' और 'मेवाड़ पतन' इन तीनो नाटको मे द्विजेन्द्रलाल ने महावत खॉ को चित्रित किया है ।

हिन्दू-मुसलमान एकता की सदिच्छा से तथा स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित उस समय दर्शको न महावत खॉ के अभिनय को बडे कौतुहल और आदर से देखा है । दो बार मुगल सेना के पराजित होने पर भी अनिच्छा से महावत खॉ ने मुगल सेना का मेवाड के विरुद्ध मोर्चा सम्भाला था । इसका कारण था कि हिन्दू-धर्म छोडने के बावजूद उसने देश-प्रेम का त्याग नही किया था । युद्ध मे विजयो होने पर भी उसने उदयपुर के दुर्ग मे प्रवेश नही किया, अपितु उसने वह सम्मान शाहजादा खुर्रम को अर्पण किया था । किन्तु महावत खाँ ने किस कारण से धर्म-परिवर्तन किया था, नाटक मे इसका उल्लेख नही है, हॉ किस कारण से उसने मेवाड पर चढाई करने मे सहमति दी इसका एक कारण उसके इस कथन मे हम देख सकते हे—जब कल्याणी को उसके पिता गोविन्द सिंह ने इस कारण निर्वासित कर दिया था कि वह अभी भी एक विधर्मी को पति मान कर पूजा करती है । इस घटना का पता लगने पर महावत खाँ कहता है—'यही आपका उदार हिन्दू-धर्म है पिता । ···आपने प्रायश्चित की बात कही, मैं प्रायश्चित करूँगा, किन्तु मुसलमान बनने के लिए नहीं, एक दिन हिन्दू था, उस पाप का प्रायश्चित करने के लिए ।' ('मेवाड पतन' नाटक, तृतीय अंक, चतुर्थ दृश्य, पृ० ३२६)

चतुर्थ अक के द्वितीय दृश्य मे मुगलो के आश्रित मारवाड के राजा गजसिंह की

इस गर्वोक्ति उक्ति के उत्तर में कि 'मेवाड़ में मैं एक राजपूत को जिन्दा नहीं रहने दूँगा' महावत कहता है—'यह मैं जानता हूँ महाराज! राजपूतों के प्रति मुसलमानों का उतना विद्वेष नहीं है, जितना स्वजाति के लोगों का …हिन्दुओं को स्वजाति पर उत्पीड़न करके जितना आनन्द मिलता है, उतना अन्य किसी बात में नहीं …।' ('मेवाड़ पतन' नाटक, चतुर्थ अंक, द्वितीय दृश्य, पृ० ३३१)

राणा अमर सिंह ने मुगलों की एक लाख सेना का महज पाँच हजार राजपूतों की सेना लेकर वीरता से मुकाबला किया था। इसे देखकर महावत खाँ द्रवित हो गया, वह कहता है—'मैं इसलिए गौरव का अनुभव करता हूँ कि धर्म से मैं मुसलमान होने पर भी जाति से राजपूत हूँ और यह समझ कर कि मैं अमर सिंह का भाई हूँ। जो व्यक्ति पाँच हजार सेना लेकर मेरी एक लाख सेना के विरुद्ध पहाड़ की तरह अडिग रहा, वह मरने के लिए ही आया था। यह निर्भीकता, यह स्वदेश-प्रेम भारत में केवल राजपूत जाति में ही है। और मैं राजपूत होकर भी …।' ('मेवाड़ पतन' नाटक, चतुर्थ अंक, षष्ठ दृश्य, पृ० ३३५)

मानसी

नाटक के अन्त में राणा अमर सिंह जब महावत खाँ को अपना वध करने के लिए कहता है तब महावत खाँ का उत्तर हे—'मैं कसाई नहीं हूँ।' किन्तु अमर सिंह उसे बार-बार युद्ध के लिए ललकारता है और दोनों जब युद्ध पर उतारू हो जाते है तो अमर सिंह की पुत्री मानसी वहाँ आती है और कहती है—'शान्त हों पिताजी! जो सर्वनाश होने को था हो गया, अब अपने भाई के खून से अपने हाथ मत रंगिए। इस शोक (मेवाड़ पतन) की सान्त्वना हत्या नहीं, इसकी सान्त्वना है फिर से मनुष्य बनना।' और चारणी गाती है—

आबार तोरा मानुस हो—

('मेवाड़ पतन' नाटक, पंचम अंक, अष्टम दृश्य, पृ० ३५०)

राणा अमर सिंह और महावत खाँ गले मिलते हैं। (पटाक्षेप) नाटक समाप्त होता है पचम अंक के अष्टम दृश्य में।

गोविन्द सिंह

'मेवाड़ पतन' नाटक का अति प्रभावशाली चरित्र है शालुम्राधिपति गोविन्द सिंह। गोविन्द सिंह का विशाल व्यक्तित्व हमें राणा प्रताप का स्मरण करा देता है। क्या देश-प्रेम, क्या जाति-धर्म और क्या स्वामी-धर्म, सभी दृष्टियों से पूरे नाटक में

गोविन्द सिंह का गर्वोन्नत मस्तक इतना विराट हो गया है कि उसके परिपार्श्व में राणा अमर सिंह का चरित्र बचकाना प्रतीत होता है। लगता है सचमुच उसने राणा प्रताप के साथ मुगलों से पच्चीस वर्ष तक देश की आजादी के लिए जद्दोजहद की थी। देश-प्रेम के सामने वह कन्या और पुत्र का परित्याग कर देता है और अन्त मे स्वयं आत्म-त्याग करता है—यह मेवाड़ पतन की बड़ी त्रासदी है।

दुःख ही जिसका साथी था, विपत्ति की गोद मे जिसका पालन हुआ था, दारिद्र्य से जिसका भाईचारा था, अरावली की पर्वत-घाटियाँ ही जिसकी चिरसंगिनी थी, अनाहार मे भी जो हँसता था, ऐसा गोविन्द सिंह प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में एक कुटिया मे राणा अमर सिंह के सन्धि-प्रस्ताव पर नाराजगी जाहिर करते हुए पुत्र अजय सिंह से कहता है—'संधि की मंत्रणा तो इसके पहले कभी की नहीं अजय! पच्चीस वर्ष से युद्ध ही करता आया हूँ। मैंने जीवन में तलवार की झंकार और भेरी-नाद ही सुना है और सुनी है घोड़ों की टाप के साथ मृत्यु की आर्तध्वनि। यही इतने दिन देखा है। शत्रु के साथ संधि की बात सोची तक नहीं, संधि कैसे की जाती है अजय! यह आज तक नहीं जाना।' (वही, पृ० २९५)

भाषा का सौष्ठव

द्विजेन्द्रलाल की लेखनी से निकलने वाली भाषा की शायद बंगला नाटको को वर्षो से प्रतीक्षा थी और वह पूरी हुई। ऐसी काव्यमयी प्रांजल भाषा का निदर्शन न बंगला के पूर्ववर्ती नाटको मे मिलता है और न परवर्ती नाटकों मे।

प्रथम अक के तृतीय दृश्य मे सन्धि प्रस्ताव की मन्त्रणा सभा मे गोविन्द सिंह वर्णन करता है कि प्रताप की मृत्यु के बाद मेवाड़ पुनः कुटियो से राज-भवन मे आ गया और भोग-विलास मे फँस गया। ऐश्वर्य के प्रतीक एक बड़े दर्पण को गोविन्द सिंह निशाना बना कर अपनी बात की पुष्टि करता है। इन बातो का उल्लेख हमको टॉड के 'राजस्थान' मे इस प्रकार मिलता है—

'Of the seventeen sons of Pertap Umra, who succeeded (1597 A D.), was the eldest.

The repose thus enjoyed realised the prophetic fears of Pertap, whose admonitions were forgotten. Umra constructed a small palace on the banks of the lake named after himself "the abode of immortality......"

A magnificent mirror of European fabrication adorned the em-

bryo palace Animated with the noble resentment at the inefficacy of his appeal to the better feelings of his prince, the chieftain of Saloombra hurld 'the slave of the carpet' against the splendid, bauble, and starting up, seized his sovereign by the arms and moved him from the throne. 'To horse, Chiefs !' he exclaimed "and preserve from infamy the son of Pertap." (Ibid, Page 278, 280).

सत्यवती

'मेवाड़ पतन' नाटक में जब राणा अमर सिंह सन्धि के लिए राजी होते हैं तभी मन्त्रणा-सभा में सत्यवती (सगर सिंह की पुत्री और गज सिंह की पत्नी) प्रवेश करती है और राणा को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती है। सत्यवती की वीरोचित वाणी से उत्तेजित होकर गोविन्द सिंह दर्पण को तोड़ता है। (वही, पृ० २९९)

नाटक में सत्यवती चारणी के वेष में मेवाड़वासियों को मातृभूमि के लिए मर मिटने के लिए प्रेरणा देती है। उसके देश-प्रेम और राजपूत क्षत्राणी की अस्मिता को देखने से लगता है कि द्विजेन्द्रलाल राय ने 'जान ऑफ आर्क' से छाया ली है और मानसी के चरित्र का अंकन 'फ्लोरेन्स ऑफ नाइटेंगल' के आधार पर किया है। नाइटेंगल अस्पताल में सैनिकों की सेवा करती है और मानसी युद्ध में शिविर बना कर सैनिकों की सेवा-सुश्रुषा करती है। उसकी सेवा-भावना में मानवीय दृष्टि से कोई भेद नहीं। वह युद्ध में राजपूत वीरों की सेवा करती है और मुसलमान सैनिकों की भी।

अमर सिंह

नाटक में इतिहास के अनुरूप राणा अमर सिंह का चरित्र-चित्रण किया गया है। उसमें जहाँ प्रताप के वीरोचित गुण थे वहीं ऐशो-आराम के प्रति भी एक दमित कामना थी। सरदारों के द्वारा प्रेरित किए जाने पर उसमें राजपूती वीरता लक्षित होती थी। वह नहीं चाहता था कि व्यर्थ में युद्ध करके राजपूत वीरों से मेवाड़ को खाली किया जाय। इस द्वन्द्व को नाटक में यथार्थ रूप से देखा जा सकता है। टॉड ने राणा अमर सिंह के बारे में लिखा है—

"All comment is superfluous on such a character as Rana Umra. He was worthy of Pertap and his race. He possessed all the physical as well as mental qualities of a hero, and was the tallest and strongest of all the princes of Mewar. He was not so fair as they usually are, and he had a reserve bordering upon gloominess, doubtless occasioned by his revereses, for it was not natural to him..." (Ibid, Page 292).

सगर सिंह

मुगलों के आश्रित सगर सिंह का चरित्र भी नाटक में उल्लेखनीय है। वह राणा प्रताप का भाई था, जो मुगलों से जा मिला था। उसी का पुत्र महावत खाँ था। जहाँगीर ने कांटे से कांटा निकालने के लिए उसे चित्तौड़ का राणा बना दिया था। चित्तौड़ के महल में जब वह रहा तो उसे अपने वंश के कुल-गौरव-पुत्रों की दास्तान का प्रत्यक्षीकरण हुआ और उसमें सोया रजपूती खून उबलने लगा। इस घटना का वर्णन नाटक में बड़ा हृदयग्राही है। वह तब वहाँ से संन्यासी के वेष में महावत खाँ के पास आता है और कल्याणी का वृतान्त बताता है।

चित्तौड़ के दुर्ग मे भैरव की विकराल मूर्ति देखकर वह अनुतप्त होता है। इस दृश्य मे ऐसा लगता है कि द्विजेन्द्रलाल पर शेक्सपीयर का पूरा प्रभाव है। शेक्सपीयर ने मृतात्माओं और डाकनियों का अपने नाटको में चित्रण किया है। सगर सिंह चित्तौड़ का परित्याग करता है और उसे राजपूतों के हवाले करता है।' जहाँगीर के दरबार मे वह मुगल बादशाह की कड़े शब्दों में भर्त्सना करता है और अपनी कटार से आत्म-वलिदान करता हे। ('मेवाड़ पतन' नाटक, तृतीय अंक, पंचम दृश्य, पृ० ३२८) इसका वर्णन टॉड के 'राजस्थान' मे हमें मिलता है—

"Sugra, who abandoned Pertap and went over to Akber, was selected; the sword of investiture was girded on him by the emperrer's (Jahangir) own hands, and under the escort of a Mogul force he went to reign amidst the ruins of Cheetore.

The triumphal column raised by vistory over a combination of kings, was a perpetual momento of his infamy; nor could he pass over one finger's breadth of her ample surface, without treading on seme fragment which reminded him of their great deeds and his own unworthiness. (Ibid, Page 281-82)

सगर सिंह चित्तौड़ में सात वर्ष तक रहा, किन्तु किसी मेवाड़वासी ने उसे राणा का सम्मान तक नहीं दिया। वह अपने ही पाप में जलता रहा। उसे सुख की नीन्द नहीं आती थी। रात में मेवाड़ के वीर पुरुषों के चित्र उसे धिक्कारते थे। वह अपनी हीनता और कायरता के कारण स्वयं से घृणा करने लगा। एक दिन युद्ध के देवता भैरू ने उसे फटकारा और उसकी निन्दा की और कहा कि तु अभी अपने कलंकित शरीर को इस चित्तौड़ दुर्ग से हटा ले तभी तेरा निस्तार होगा। सगर सिह ने अपने भतीजे अमर सिंह को बुला कर चित्तोड़ का भार सौंप दिया और संन्यासी होकर कंधार के गिरिशृंगों मे जाकर घूमने लगा। वहाँ भी उसे शान्ति नहीं मिली।

कुछ समय बाद वह जहाँगीर की राज्य-सभा में बुलाने पर आया और वहाँ जो हुआ उसके सम्बन्ध में टॉड ने लिखा है—

"...upon going to court and being upbraided by Jehangir, he drew his dagger and slew himself in the emperor's presence : an end worthy of such a traitor." (Ibid, Page 282),

नाटककार ने दिखाया है कि कन्या सत्यवती के देश-प्रेम से अभिभूत होकर सगर सिंह के मन में देशाभिमान जागा और उसने आत्माहुति दी।

नाटक में अमर सिंह की पुत्री मानसी और गोविन्द सिंह के पुत्र अजय सिंह के बीच प्रणय कहानी का ताना-बाना बुना गया है, किन्तु जब गोविन्द सिंह के द्वारा कल्याणी निर्वासित होती है तो भाई अजय भी उसकी रक्षा के लिए साथ जाता है और बहन की मुगल आततायियों से रक्षा करने में प्राण देता है। इस तरह की कई काल्पनिक उपकथाओं से द्विजेन्द्रलाल ने नाटक की कहानी में रोमांस की सृष्टि की है, पर उन्हें सफलता नहीं मिली है। इसका कारण था कि उन्होंने नाटक की रचना एक विशेष उद्देश्य या लक्ष्य को सामने रखकर की थी। इसीलिए वे उसी ओर बढ़ रहे थे। उनकी धारणा थी कि पराधीनता की बेड़ियों को भारतवासियों ने अपने ही हाथों पहना था। उनका निश्चय था कि अब उन्हें अपने ही हाथों उन शृंखलाओं का मोचन करना होगा। यही नाटक का उद्देश्य है। सम-सामयिक राजनीतिक चेतना से उनके मन में ये भाव जगे थे। कदाचित इसीलिए 'मेवाड़ पतन' में पराजित देश की मर्मवेदना ही प्रतिध्वनित नहीं हुई है, इसमें से एक नए जीवन का स्वर भी फूटा है—यह स्वर 'आबार तोरा मानुस हो' में ध्वनित हुआ है।

द्विजेन्द्रलाल के इस परिवर्तन के पीछे क्या मानसिकता थी। इस पर उन्हीं के पुत्र कवि दिलीप कुमार राय ने लिखा है—

"I began to revers his [Dwijendralal] patriotism, too, the first fire of which had made him switty famous in Swadeshi days when he wrote patriotic Dramas one after the other...It was then the hey day of Bengali patriotism and he caught its contagion, a contagion we should avoid to-day, ...It was at this point that Dwijendralal grew suddenly and utterly sick of patriotism. it was the turning point of his life that he wrote Fall of Mewar. [Translater's note : Page 7-9 : Fall of Mewar].

इसलिए नाटककार के मानसिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में 'मेवाड़ पतन' एक उच्च कोटि की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें एक्शन के स्थान पर आइडिया पर ज्यादा जोर दिया गया है। इस दृष्टि से इसे हम नाटककार के दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन करने वाला नाटक भी कह सकते हैं। पर इसके साथ-साथ यह भी मानना पड़ेगा कि नाटक की वस्तुधर्मिता क्षुण्ण हुई है और पात्रों में लेखक का भावादर्श आरोपित हो गया है।

फिर भी डॉ० विमल कान्ति समद्दार के शब्दों में कहना होगा—'मेवाड़ पतन' में पराधीनता की वेदना जिस हद तक प्रकट हुई है वहीं राष्ट्रीयताबोध के ऊपर मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गई है।'
('मेवाड़ पतन की आलोचना', पृ० ७)

डॉ० सेन का मौन

द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का अध्ययन करते समय इन पंक्तियों के लेखक को एक बात से बड़ा ही कष्ट हुआ कि जहाँ बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचकों ने, जिनमें डॉ० अजित कुमार घोष, डॉ० आशुतोष भट्टाचार्य, डॉ० रथीन्द्रनाथ राय आदि ने द्विजेन्द्रलाल राय पर तथा उनके नाटकों पर विस्तार से प्रकाश डाला है, वहीं बंगला-साहित्य के मूर्धन्य इतिहासकार डॉ० सुकुमार सेन ने उन पर परिपाटी निभाने के लिए कुछ लिख दिया है। उनके मूल बंगला भाषा में लिखे गए इतिहास में भी दो-चार पंक्तियाँ द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटकों पर हैं। किन्तु डॉ० सेन के इतिहास के हिन्दी अनुवाद में, जिसका प्रकाशन साहित्य अकादमी ने १९७८ में किया है और जिसकी प्रस्तावना जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है, में लिखा गया है—'ताराबाई' (१९०३) और 'सोराब-रुस्तम' (१९०८) नाटक की अपेक्षा भावुकतापूर्ण काव्य अधिक हैं। पहले का कथानक राजपूत इतिहास से लिया गया है। डी० एल० राय के बाद के नाटक गद्य में लिखे गए हैं और उनकी कहानियाँ राजपूत इतिहास से ली गई हैं।' ('बंगला-साहित्य का इतिहास'—डॉ० सुकुमार सेन; पृष्ठ २३५)

द्विजेन्द्रलाल राय का रवीन्द्रनाथ से एक समय बड़ा विवाद चला था। वैसे दोनों ही व्यक्ति बंगला-साहित्य के सर्वजनप्रिय साहित्यकार रहे हैं।

रवी बाबू की ख्याति से और उनकी रचनाओं से आज भी बंगला-साहित्य महिमामंडित है। द्विजेन्द्रलाल और रवीन्द्र समसामयिक थे। डी० एल० राय ने रवीन्द्रनाथ और बंकिम से प्रेरणा ली है। पर इतना मानना ही पड़ेगा कि नाटककार की हैसियत से और विशेषकर ऐतिहासिक नाटकों के प्रणेता के रूप में डी० एल० राय हिन्दी भाषा और हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में काफी चर्चित रहे हैं, उन्होंने देशानुराग की प्रेरणा जुटाई है।

हिन्दी-साहित्य में चर्चा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ४६६ पर लिखा है—'बाबू राधाकृष्ण दास के 'महाराणा प्रताप' या 'राजस्थान केसरी' की कुछ दिन धूम रही और उसका अभिनय भी बहुत बार हुआ। इसके उपरान्त बंगला में श्री द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों की धूम हुई और उसके अनुवाद हिन्दी में धड़ाधड़ हुए। इसी प्रकार रवीन्द्र बाबू के कुछ नाटक भी हिन्दी में लाए गए।'

'मेवाड़ पतन' नाटक का हिन्दी अनुवाद

द्विजेन्द्रलाल के 'मेवाड़ पतन नाटक के हिन्दी अनुवाद का ग्यारहवाँ संस्करण हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से मार्च, १९३५ ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक है श्री रामचन्द्र वर्मा और भूमिका लिखी है श्री नाथूराम प्रेमी ने।

श्री नाथूराम प्रेमी ने भूमिका के पृष्ठ ४ पर लिखा है—"यह नाटक कलकत्ता के मिनर्वा थियेटर (दक्षिण भारत मे भी कई स्थानो मे) अभिनीत हो चुका है। इसे जिस प्रकार दर्शकों ने पसन्द किया है, उसी प्रकार साहित्य-सेवको ने इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। एक प्रवीण समालोचक ने तो इसे इस युग का सर्वगुण सम्पन्न श्रेष्ठ प्रकाश कह डाला है।" 'मेवाड़ पतन' नाटक के एक दर्जन संस्करण प्रकाशित हुए, यह इसकी ख्याति की सबसे बडी उपलब्धि है।

अब हम बंगला-साहित्य के अन्य ऐतिहासिक नाटको पर विचार करेंगे जो टॉड के 'राजस्थान' से प्रभावित होकर लिखे गए है। इन नाट्य-कृतियो के रचनाकारो मे बगला भाषा के कई प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार है।

क्षीरोद प्रसाद का 'पद्मिनी' नाटक

नाट्यकार क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद (१८६८-१९२७) कवि और नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के समकालीन नाटककार थे और आपने भी कई ऐतिहासिक नाटकों की रचना की है। उल्लेखनीय है कि टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से उपकथा लेकर बंगला-साहित्य मे सर्वप्रथम कवि रंगलाल ने १८५८ ई० मे 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी। इसके बाद तो राजस्थान की वीर-कथाओं की बंगला-साहित्य मे जैसे धूम मच गई और धडल्ले से काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानियाँ और इतिहास ग्रन्थ लिखे जाने लगे। पद्मिनी की कहानी को लेकर क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ने १९०६ ई० मे 'पद्मिनी' नाटक की रचना की। आपके अन्य नाटक है—'अहेरिया', 'आलमगीर', 'रघुवीर' आदि।

वैसे टॉड के 'राजस्थान' में वीर राजपूतों की कहानियों से पुस्तक भरी पड़ी है, किन्तु इन वीरों में कुछ चरित्र इतने आकर्षक और महिमामय हैं, जिन पर बार-बार साहित्य मनीषियों ने कलम चलाई है और उनके कार्यकलापों का ओजस्वी भाषा में वर्णन किया है। 'पद्मिमी' का चरित्र ऐसी ही एक अनिंद्य सुन्दरी वीर वाला का चरित्र है, जिसके जौहर की कथा को पढ़ कर शरीर में सिहरन पैदा हो जाती है और नारी-जाति के प्रति अनायास श्रद्धा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। भारतीय ललनाओं के ऐसे दुर्लभ चरित्र विश्व-इतिहास में दुर्लभ हैं तभी तो आज भी चित्तौड़गढ़ की जौहर की वह स्थली पुण्यभूमि बन गई है और इतिहास की एक अमूल्य थाथी मानी जाती है।

गढ़ तो चित्तौड़गढ़

आचार्य धर्मेन्द्र ने 'गोकुल' मासिक पत्र के प्रवेशांक (जनवरी, १९८६) के अंक के पृष्ठ ३१ पर लिखा है—'हमारे देश का इतिहास तो कौन पढ़ा सकता है और कौन पढ़ सकता है, किन्तु यदि इस देश के भाग्य-विधाता केवल मेवाड़ का मेवाड़ भी नहीं तो केवल चित्तौड़ का इतिहास ही नयी पीढ़ी को पढ़ाने की व्यवस्था कर सकें तो देश के भविष्य की रूपरेखा ही कुछ और होगी। संसार के किसी देश के पास हिमालय नहीं है, गंगा नहीं है, अयोध्या नहीं है, अजन्ता

नहीं है, काशी नहीं है, वेद, गीता और रामायण नहीं हैं, यह सब ठीक है, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि संसार की किसी सभ्यता के पास, किसी राष्ट्र, किसी जाति या किसी परम्परा के पास न मेवाड़ की पावन धरा है और न चित्तौड़-सा पवित्र तीर्थ।'

'गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया' यह उक्ति चित्तौड़गढ़ की विशालता और वीर कार्यों की प्रशस्ति है। आचार्य धर्मेन्द्र ने आगे लिखा है—'हमारे गौरव-तीर्थों के मूल्यांकन के लिए भी हमें परकीयों के प्रशस्ति-पत्र की आवश्यकता होती है, किन्तु कर्नल जेम्स टॉड जैसे अद्वितीय प्रशासक की प्रशस्ति का हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो अब 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रेकार्ड' द्वारा चित्तौड़ के महत्व को मान्यता दिए जाने की हमारी चेतना पर कोई अनुकूल प्रभाव पड़ेगा, इसकी आशा कैसे की जाय?'

भट्ट कवियों के अनुसार चित्तौड़गढ़ पर अल्लाउद्दीन का आक्रमण संवत १३४६ (१२९० ई०) में हुआ था, किन्तु फरिश्ता इसे १३ वर्ष बाद बताता है। जो भी हो यह एक ऐतिहासिक घटना है, जिसकी रूमानियत ने बाद में कई रूप ग्रहण किए। इसी उपकथा को टॉड के ग्रन्थ से क्षीरोद प्रसाद ने लेकर 'पद्मिनी' नाटक लिखा। बंगला के ऐतिहासिक नाटकों मे और विशेषकर देश-प्रेम की भावना को जगाने में इस नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका है।

'पद्मिनी' नाटक में रानी पद्मिनी का चरित्र-चित्रण उतना प्रभावशाली नहीं हुआ है और यही कारण है कि त्रासदी गहरा नहीं पाई है। नाटककार ने नसीबन बेगम के क्रूर चरित्र का वर्णन किया है, जिसकी इच्छा पूर्ति के लिए इतने बड़े नरसंहार की दास्तान बन गई। नसीबन अल्लाउद्दीन की बेगम है जो ईर्ष्या के कारण रूपवती पद्मिनी को दासी बनाना चाहती है। क्षीरोद प्रसाद बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास से प्रभावित दीख पड़ते हैं, जिस प्रकार औरंगजेब की उदीपुरी बेगम रूपनगर की चंचल कुमारी को दासी बनाना चाहती थी, वैसे ही अल्लाउद्दीन की बेगम नसीबन पद्मिनी को दासी बनाना चाहती थी। नाटक में सर्वाधिक जीवन्त चरित्र गोरा और उसकी बहादुरी का रहा है। क्षीरोद प्रसाद की ख्याति 'आलमगीर' नाटक से जितनी अधिक हुई उतनी अन्य किसी नाटक से नहीं। इसी नाटक से अभिनेता शिशिर भादुड़ी बंगीय नाट्य मंच पर चमके।

'अहेरिया' नाटक

क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ने टॉड के 'राजस्थान' के द्वितीय खण्ड के

जैसलमेर इतिहास से उपकथा लेकर 'अहेरिया' नाटक लिखा। इस नाटक में वे उतने सफल नहीं हुए, जितना 'पद्मिनी' नाटक की रचना में। अहेरिया राजपूतों में शिकार की एक प्रथा है, जिसका भी उन्होंने सही निरूपण नहीं किया। इस नाटक की रचना १९१५ ई० में हुई थी और इसके बाद उन्होंने १९२१ में 'आलमगीर' नाटक लिखा था। उनका १९०३ ई० में गद्य-पद्य में लिखा 'रघुवीर' नाटक यद्यपि गिरीशचन्द्र के 'चण्ड' नाटक से प्रभावित है, पर इसमें भी वे रघुवीर के चरित्र का सम्यक उद्घाटन नहीं कर पाये हैं। चण्ड का भाई वीतरागी होकर भीलों के बीच में रहता था। भील उसे आदर की दृष्टि से देखते थे। टॉड ने भी 'राजस्थान' ग्रन्थ में लिखा है कि रघुदेव मेवाड़ वासियों में देवतुल्य समझा जाता था। रणमल ने विषैली पोशाक भेंट कर उसकी हत्या कराई। इस हत्या की घटना का टॉड ने उल्लेख किया है।

बंगला-साहित्य में राजस्थान पर अन्य नाटक

टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से उपकथाएँ लेकर बंगला-साहित्य में केवल माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीशचन्द्र घोष, ज्योतिरिन्द्रनाथ और क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ऐसे प्रख्यात नाटककारों ने ही नाटक नहीं लिखे, बल्कि अपेक्षाकृत कम चर्चित नाटककारों ने भी टॉड के 'राजस्थान' को आश्रय बनाकर नाटक लिखे हैं। इस तरह बंगला नाटक की जो मध्ययुगीन धारा माइकेल से आरम्भ हुई वह द्विजेन्द्रलाल राय तक आते-आते नये युग या आधुनिक युग में परिणत हो गई। यहाँ आधुनिक युग के कुछ नाटककारों की नाट्य-रचनाओं की हम सूचना मात्र देंगे। क्योंकि बंगला-साहित्य के यशस्वी नाटककारों की रचनाओं पर विस्तार से चर्चा करने से पुस्तक का पहले ही कलेवर बढ़ गया है। अब बंगला नाटकों के इस विषय को हम बाध्य होकर संक्षेप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं :

गंगाधर चट्टोपाध्याय ने १९१९ ई० में 'ताराबाई' नाटक की रचना की, किन्तु इनका यह नाटक द्विजेन्द्रलाल राय के 'ताराबाई' नाटक की तुलना मे एक साधारण कोटि का नाटक है।

शरतचन्द्र दे ने 'शिलादित्य' नाटक की रचना टॉड के 'राजस्थान' से कहानी लेकर १९०१ ई० में की थी। ५ अंकों में विभाजित इस नाटक मे शिलादित्य के वीरत्व और तेजत्व का बखान है। इसके कथोपकथन पद्य में हैं।

मनमोहन राय ने १९०६ ई० में 'जागरिता' या 'मेवाड़ कीर्ति' नाटक लिखा। इसमें राणा प्रताप और अकबर के विरोध की कहानी का वृतान्त है। देश-प्रेम और स्वाधीनता की रक्षा के महत उद्देश्य से प्रभावित होकर मननोहन ने इस नाटक की रचना की थी। इसीलिए आपने राणा प्रताप के वीर चरित्र को लेकर नाटक की अवतारणा की है। स्वाधीनता की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान की बात को नाटक में कई स्थानों पर ओजस्वी भाषा में कहा गया है। हे स्वर्ग से गरीयसी मातृभूमि तुम्हारी स्वतन्त्रता के लिए हम अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे। इस भावना को इन शब्दों में देखिए—

स्वर्ग होते गरीयसी मातृभूमि
उद्धारेर तरे मातृभक्त पुत्रगण
आजि समवेत जातीय—पताका तले।
आमराउ क्षुद्र स्वार्थ दिबो बलिदान।

गिरिजा मोहन नियोगी ने 'मेवाड़ महिमा' या 'राजपूत गरिमा' नाटक का प्रणयन १९१० ई० में किया। इस नाटक में लाखा या लक्ष राणा के वीर पुत्र चण्ड के भीष्म तुल्य चरित्र का वीरोचित भाषा में वर्णन है। यूँ नाटककार ने इतिहास का सहारा लिया है, पर अपनी कल्पना की उड़ान भी दिखाई है। चण्ड की पत्नी भील नारियों की एक बड़ी सेना संगठित करती है और रणमल के अत्याचार का विरोध करती है। रणमल की पुत्रवधू अर्थात योधराज की पत्नी चण्ड की पत्नी के यहाँ शरण लेती है। ऐसी कई काल्पनिक घटनाओं का नाटक में उल्लेख है। टॉड के 'राजस्थान' में रणमल द्वारा भेजे गए विषैले परिधान से रघुदेव की हत्या की बात कही गई है, पर नाटककार ने रणमल के विश्वासघातियों से उसकी हत्या का उल्लेख किया है। इतिहास में चण्ड ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी, पर नाटक में उसकी पत्नी का वर्णन है।

बंगला-साहित्य में टॉड के 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड से ही कथावस्तु लेकर बड़ी संख्या में उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानियाँ लिखी गईं। इस प्रथम खण्ड में भी मेवाड़ के इतिहास के प्रति ही रचनाकारों का आकर्षण रहा है। द्वितीय खण्ड से बहुत कम कहानियाँ लेकर रचनाएँ लिखी गई। 'राजस्थान' के द्वितीय खण्ड से उपकथा लेकर प्रमथनाथ वन्द्योपाध्याय ने 'उदय सिंह' नाटक की रचना १९१२ ई० मे की। वैसे उदय सिंह का नाम आते ही मेवाड़ के राणा उदय सिंह का स्मरण हो आता है, पर यह उदय सिंह राठौड़ वंशीय उदय सिंह है। राजस्थान में उदय नाम में एक महा-अहितकारी शक्ति देखी जाती है। आश्चर्य का विषय है कि जो कोई उदय नाम धारण कर जिस किसी सिंहासन पर बैठा उसके ही द्वारा उस राज्य का सर्वनाश हुआ। राणा प्रताप के पिता उदय सिंह के द्वारा मेवाड़ की श्री हत् हुई और चित्तौड़ अकबर की अधीनता में गया। इस शिशोदिया उदय सिंह की कायरता मेवाड़ के इतिहास में वर्णित है, जिसकी बचपन में पन्ना धाय ने बनवीर से रक्षा की थी। राठौड़ों के लिए भी उदय सिंह का शासन हितकर नहीं हुआ। सहिष्णुता और तेजस्विता यही राजपूतों के श्रेष्ठ गुण हैं, जिनका राठौड़ उदय सिंह में नितान्त अभाव था। मुगल साम्राज्य या यूँ कहें अकबर का कृपापात्र बनकर उदय सिंह सुख-समृद्धि चाहता था। अगर वह स्वाधीनता प्रेमी प्रताप से मिल जाता तो राजपूताने का इतिहास कुछ और हो होता। मुगल सम्राट अकबर का कृपापात्र बनने के लिए उसने जातीय गौरव तक की तिलांजलि दे दी।

'उदय सिंह' नाटक में कल्पना का सहारा लेकर चन्द्रसेन को मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र बताया गया है और उदयसिंह को छोटा पुत्र। चन्द्रसेन की राज्य प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा थी। कदाचित इसी कारण मालदेव ने उदयसिंह को राठौड़ राज्य की रक्षा के लिए अकबर के पास भेजा था, पर नियति का खेल देखिए कि अकबर उदय सिंह का बहनोई बन गया।

उदय सिंह कामुक था और 'मोटा राजा' के नाम से विख्यात था। वह इतना

मोटा था कि घोड़े पर मुश्किल से चढ़ पाता था और घोड़े को भी उसके वहन में कष्ट होता था। उसकी २७ रानियों का टॉड ने उल्लेख किया है। उस कामातुर की एक सुन्दरी ब्राह्मण कन्या पर कुदृष्टि पड़ी और उसने उससे काम पिपासा शान्त करने की बलपूर्वक कोशिश की। इसी कन्या के शाप से उसका और उसके कुल का नाश हुआ। उसकी करुणापूर्ण मृत्यु का नाटक में बड़ा ही कारुणिक वर्णन हुआ है। टॉड ने उदय सिंह को ही मालदेव का बड़ा पुत्र बताया है। इस नाटक में कई नाटकीय घटनाओ के रहते हुए भी प्रमथनाथ बन्दोपाध्याय ने उनका सही मूल्यांकन नहीं किया और नाटक एक साधारण कोटि का होकर रह गया।

ज्योतिषचन्द्र लाहिड़ी द्वारा विरचित 'चित्तौड़ कुमार' नाटक १९१५ ई० मे प्रकाशित हुआ। यह नाटक अमित्राक्षर छन्द मे वर्णित है तथा पाँच अंकों में विभाजित है। नाटक की भूमिका में जलधर सेन ने लिखा है—'नवीन लेखक ने जिस घटना का अवलम्बन लेकर इस नाटक की रचना की है, वह घटना अति सुन्दर और वैचित्र्यपूर्ण है। यद्यपि यह लेखक की प्रथम रचना है, फिर भी रचनाकार ने कही पर भी सौन्दर्य नष्ट नहीं होने दिया है। बल्कि मूल घटना के साथ अपनी काल्पनिक शक्ति का मणिकांचन योग कर कृति को पठनीय बना दिया है।'

यह घटना लाखा या लक्ष राजा के पुत्र चण्ड को लेकर घटी है जिसने राठौड राव रणमल की पुत्री के विवाह-नारियल को इस कारण अस्वीकार कर दिया था कि विवाह के लिए राणा लाखा ने कौतुकवश अपनी विवाह-इच्छा प्रकट की थी। चूँकि इस कहानी का उल्लेख हमने गिरीशचन्द्र के 'चण्ड' नाटक मे पूरी तरह कर दिया है। अत: उसका फिर से उल्लेख अभीष्ट नहीं है। नाटककार ने रणमल की कूटनीति और हिंसावृत्ति का खुल कर वर्णन किया है और चण्ड मे धीरोदत्त नायक के सभी गुण दर्शाये हैं। रणमल चण्ड द्वारा सगाई के नारियल का अपमान करने पर कहता है कि मैंने अपनी प्रिय पुत्री का विवाह चण्ड से करने के लिए नारियल भेजा था और उसका अनादर कर चण्ड ने मेरा अपमान किया है और वह प्रतिहिंसा की आग में जलने लगता है। देखिए—

दिये छिनु समर्पिते हृदयेर हार,
स्नेहेर अमियधार बालारे आमार !
एइ प्रति उपकार ? एइ तार फल ?
प्राणान्त गरल दिलिरे हृदये ढालि !

('चित्तौड़ कुमार' नाटक, प्रथम अंक, प्रथम दृश्य, पृ० २-३)

रणमल अपनी कूटनीति से चित्तौड़ के साथ विवाह-सम्बन्ध कर मेवाड़ का राज्य अधिग्रहण करना चाहता था। यही उसकी मनोकामना थी। उसी के शब्दों में देखिए—

आशा छिलो मने, दुहिता रतने
हेरिया चित्तौरासने जुड़ाबो हृदय।
सेई सूत्र धरि, हरि चित्तौर केतन,
दलिबो चरण तले। परे भुजबले,
राठौरेर सने, बांधि शिशोदी-सन्ताने
नव-शक्ति करिबो रचना। (वही, पृ० ३)

अत्याचारी और कामातुर रणमल ने अपनी कन्या की एक सुन्दरी दासी का बलपूर्वक सतीत्व नष्ट किया था और उसी बाला ने प्रतिहिंसा में उसे पलंग से बांध दिया था, जिससे चण्ड के सरदारों से उसकी पाशविक मृत्यु हुई। किन्तु नाटक में इतिहास मे हटकर कल्पना की गई है कि चित्तौड़ के मध्यम राजकुमार रघुदेव की एक प्रेयसी जाह्नवी कुमारी के साथ रणमल ने यह नारकीय काम किया था और उसे मृत्यु के रूप में इसका फल मिला। नाटक में टॉड का अनुसरण कर मुकुल की माता की सखी कमला को भी रणमल की प्रेयसी के रूप में दिखाया गया है और ब्रह्मदेव की कन्या जाह्नवी के प्रति रणमल की आसक्ति का उल्लेख किया गया है।

बालक राणा मुकुल के प्रति चण्ड का वात्सल्य और रक्षक के रूप में राज्य संचालन आदि का यथोचित वर्णन है। चण्ड के आत्मत्याग, वीरता और साहसिकता का भरपूर वर्णन किया गया है। और सही अर्थों में नाटककार ने उसे 'चित्तौड़ का राजकुमार' नाटक में दर्शाया है। चण्ड हमें महाभारत के भीष्म चरित्र की याद दिला देता है। नाटक में कई गीत हैं, जिन पर रामप्रसाद और द्विजेन्द्रलाल राय के संगीत का प्रभाव है।

हरिपद चट्टोपाध्याय का 'पद्मिनी' नाटक १९१६ ई० में प्रकाश में आया। इस नाटक की रचना यात्रा नाटक के लिए की गई थी। इसमें संगीत का प्राचुर्य होने से इसे बाद में नाट्य-काव्य की भी संज्ञा मिली। इसमें सम्राट अलाउद्दीन का चरित्र काफी निम्न कोटि का दिखाया गया है। पद्मिनी के अविश्रुत सौन्दर्य के मोहपाश में पड़कर उसकी उन्मत्त की सी स्थिति दिखाई गई है। यहाँ तक कि वह अपनी बांदी का पैर पकड़ कर कहता है—

बांदी! बांदी! पाये धरि तोर
सत्य कि भुवने तेमन रानी नई?
बोलो भाई····

१९१६ ई० में ही निशिकान्त बसु का ऐतिहासिक नाटक 'बाँप्पा रावल' प्रकाश में आया। देशवासियों में देशात्मबोध का प्रचार करने के लिए ही नाटककार

ने इसकी रचना की थी। लेखक ने स्वयं स्वीकार किया है 'बप्पा रावल के प्रणयन में महात्मा टॉड का 'राजस्थान' ही मेरा प्रधान अवलम्ब रहा है।'

टॉड के 'राजस्थान' में यह जनश्रुति प्रचलित है कि गोरखनाथ ने बप्पा को एक दुधारी तलवार प्रदान की थी, जिसे प्राप्त कर वह बड़ा वीर योद्धा बन गया था। ऐसे ही वीर बप्पा रावल की वीरता और शौर्य का बखान नाटक में किया गया है। झूलन पूर्णिमा के दिन सोलकी राजकुमारी के साथ क्रीड़ा में बप्पा ने विवाह किया था और फिर उसने राजा के समक्ष उपस्थित होकर इसकी स्वीकारोक्ति की थी। दोबारा राजकन्या के साथ विवाह में हुए विघ्न का वर्णन नाटककार की कल्पना है। सलीम सोलकी राजकुमारी से विवाह करने के लिए आतुर था, किन्तु राजकुमारी ने इसे अस्वीकार किया और फलस्वरूप सलीम ने वीरनगर पर आक्रमण किया। राजा वीरसिंह की मृत्यु और बप्पा द्वारा सलीम से राजकुमारी की रक्षा आदि घटनाओं का जहाँ वर्णन है, वहीं नाटक में सलीम की पराजय और उसकी पुत्री का बप्पा की शरण मे जाना दिखाया गया है। इस आश्रयदान के कारण याजिद यवन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। बप्पा ने याजिद के साथ द्वन्द्व-युद्ध किया। याजिद के आक्रमण का बप्पा पर कोई असर नहीं हुआ क्योकि उसे गुरु गोरखनाथ का आशीर्वाद प्राप्त था, पर बप्पा के खड्ग प्रहार से याजिद की मृत्यु हो गई। बप्पा ने बाद मे सलीम की पुत्री नौसेरा के साथ विवाह किया। इन तमाम ऐतिहासिक तथा काल्पनिक घटनाओं का 'बप्पा रावल' नाटक मे वर्णन है।

मानसिंह बप्पा को भोजन मे विष देकर उसकी हत्या करना चाहता था। उसने सुख की निद्रा मे सोये बप्पा पर आघात किया, फिर भी बप्पा जीवित बचा। नाटक मे दिखाया गया है कि चित्तौड के राजा मानसिंह के साथ बप्पा का युद्ध हुआ और इसमे मानसिंह की पराजय हुई और बप्पा रावल चित्तौड़ की गद्दी पर सिसोदिया बप्पा रावल के वंशधरों का लम्बी अवधि तक अधिकार रहा। मानसिंह और बप्पा के बीच वैमनस्य की कथा का वर्णन नाटककार ने अपनी कल्पना से किया है। 'राजस्थान' ग्रन्थ मे इस बात का उल्लेख नहीं है कि राजा मानसिंह विष देकर बप्पा की हत्या करना चाहता था, बल्कि वह बप्पा की वीरता से हत् बुद्धि था और संत्रस्त था। बप्पा की इस कहानी का वर्णन हिन्दी के साहित्यकार रुद्रनारायण ने 'आदर्श भूमि अथवा चित्तौड़' नामक कहानी संग्रह मे किया है, जिसका प्रकाशन १९२५ ई० में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ था।

नारायणचन्द्र बसु कृत 'हामिर' नाटक की रचना १९१६ ई० में हुई। यह नाटक महाकवि गिरीशचन्द्र घोष को उत्सर्ग किया गया है। लेखक ने नाटक की कथावस्तु टॉड के 'राजस्थान' से ली है। जयसिंह के बड़े भाई अरिसिंह के विवाह की

कहानी, अजय सिंह द्वारा अपने भाई के बेटे हम्मीर को मेवाड़ के सिंहासन का उत्तराधिकारी मनोनीत करना, हम्मीर द्वारा मुँज डकैत की हत्या, हम्मीर द्वारा मालदेव की विधवा पुत्री के साथ पाणिग्रहण, अजय सिंह के ज्येष्ठ पुत्र अजीम सिंह की कैलवार में मृत्यु, मालदेव की अनुपस्थिति में हम्मीर द्वार। चित्तौड़ विजय आदि सभी घटनाओं का वर्णन टॉड के इतिहास से मेल खाता है। हाँ, इतना जरूर है, स्थान-स्थान पर नाटककार ने कल्पना-शक्ति के द्वारा अपनी प्रतिभा का परिचय देकर नाटक को घटना-बहुल बना दिया है।

नाटक में यत्र-तत्र उन घटनाओं को विशेष रूप से चित्रित किया गया है, जिनमें समसामयिक सामाजिक समस्याओं का जिक्र किया गया है। इन समस्याओं के लिए समाज-संस्कार-आन्दोलन चल रहा था। समाज-सुधार की दिशा में तथा विधवा-विवाह के पक्ष में विद्यासागर अपना आन्दोलन चला रहे थे। पुराणपंथी कट्टर हिन्दू विधवा-विवाह का विरोध कर रहे थे। युग-बोध और युगीन समस्याओं से रचनाकार प्रभावित होता है। मालदेव की विधवा पुत्री के साथ हम्मीर का प्राणिग्रहण एक ऐसी घटना है, जिसको बड़ी कुशलता से नाटक का प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है।

मालदेव ने अपनी स्वार्थसिद्धि के अभिप्राय से विवाह की रात में ही वैधव्य प्राप्त अपनी कन्या का विवाह हम्मीर से करने में अपनी स्वीकृति प्रदान की, किन्तु उसके कर्मचारी जाल मेहता ने विधवा-विवाह को अनीतिपूर्ण और शास्त्र-विमुख बताया। उसने इस विषय में अपना लम्बा तर्क इन शब्दों में पेश किया—'सामान्य वस्त्र और अन्न ग्रहण कर त्याग का जीवन बिताकर हिन्दू विधवाओं ने भारतीय समाज की, धर्म की और संस्कृति की रक्षा की है। उनका यह त्याग स्तुत्य और स्पृहणीय है तब महाराज! आप अपनी कन्या का फिर से विवाह कर किस धर्म का आचरण कर रहे हैं? (तृतीय अंक, पृष्ठ ६८)

कहना नहीं होगा कि विद्यासागर के विधवा-विवाह आन्दोलन के प्रतिरोध में यह उक्ति है। उस समय धर्म-संस्कार, समाज-संस्कार का यह आन्दोलन सम्पूर्ण भारतवर्ष में चल रहा था। हिन्दी साहित्य के द्विवेदी-काल में, जो 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन काल अर्थात् १९०३ ई० से माना जाता है, छायावाद के आरम्भ अर्थात् १९२० ई० तक चलता रहा। इस काल-खण्ड में समाज-सुधार विषय पर द्विवेदी-काल में कई रचनाओं का हिन्दी-साहित्य में प्रणयन हुआ। यहाँ तक कि कवि नाटककार जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' (१९३९ ई०) में विधवा-विवाह के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाण देकर रामगुप्त की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त से ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह कराया है।

'हामिर' नाटक के संलाप अत्यन्त दुरूह भाषा में लिखे गए हैं और काफी लम्बे हैं, जिनसे नाटक में रस-सृष्टि नहीं हो पाती है। यह बात हमें प्रसादजी के नाटकों में भी मिलती है।

'हामीर' नाम से ही एक ही समय में अर्थात् १९१६ ई० में प्रमथनाथ रायचौधरी का नाटक भी प्रकाश में आया। किन्तु रायचौधरी का यह द्वितीय ऐतिहासिक नाटक है। नारायणचन्द्र के 'हामिर' नाटक में अजय सिंह के ज्येष्ठ पुत्र ने चित्तोड़ सिंहासन की प्राप्ति के लिए अजीम सिंह की अकाल मृत्यु का वर्णन है तथा राज्यलाभ के लिए किसी प्रतिहिंसा की बात नहीं कही है। इस नाटक में मालदेव की विधवा पुत्री के विवाह का प्रसग भी साधारण घटना के रूप में वर्णित हुआ है। पाँच सौ सैनिकों को लेकर हम्मीर दुल्हे के वेष में उपस्थित होता है, जिसका उल्लेख 'राजस्थान' ग्रन्थ में है किन्तु अकस्मात वह चित्तोड़ पर आक्रमण करता है। यह नाटककार की अपनी कल्पना है। अन्त में हम्मीर विजयी होता है और चित्तौड़ उसके अधिकार में आ जाता है।

प्रमथनाथ ने नाटक के परिचय में अपना वक्तव्य उपस्थित किया है और अपनी बात को इन शब्दों में रखा है—'नाटक की सार्थकता इस बात में है कि वह मानव चरित्र को सम्यक रूप से उद्घाटित कर रस-संचार करे। केवल लोम-हर्षक घटनाओं का वर्णन, कवित्व छटा का प्रदर्शन और सामयिक उत्तेजना की सृष्टि करना ही नाट्य-धर्म नहीं है। वही नाटक कालजयी हो सकता है जो युगीन समस्याओं का समाधान ऐतिहासिक घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में ढूंढ़ने की ईमानदारी से चेष्टा करता है।'

नाटक के कई स्थानों में नाटककार की यह बात उभर कर प्रकट हुई है। प्रेम की महिमा, हिन्दू-मुसलमान एकय की प्रचेष्टा, नारी का आदर्श आदि विषय विशेष रूप से सामने आये हैं। इस नाटक में रानी अवन्ती पर फ्लोरेंस नाइटेंगल की छाया देखी जा सकती है, पर संलाप में एक आमात्य के द्वारा अल्लाउद्दीन को 'साहब' के नाम से सम्बोधन करना देश-काल-पात्र की दृष्टि से श्रवण कटु लगता है। इससे ऐतिहासिकता की रक्षा नहीं हो पाई है। 'साहब' शब्द का सम्बोधन पाँचवें अंक में पृष्ठ १४२-१४३ पर हुआ है। वैसे नाटक की भाषा मुहावरेदार है।

१९१७ ई० में 'राणा सांगा' नाटक की रचना धुर्जटी अधिकारी ने की। असल में यह नाटक द्विजेन्द्रलाल के 'ताराबाई' नाटक का पूरक इस दृष्टि से कहा जा सकता है क्योंकि 'ताराबाई' में राणा सांगा द्वारा चित्तौड़ प्राप्ति के पूर्व जो घटनाएं घटी हैं, उनका विस्तार से वर्णन है। 'राणा सांगा' नाटक में सांगा के राज्यारोहण के

बाद की घटनाएँ हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है 'राणा सांगा' नाटक टॉड के राजस्थान' का काफी अंशों में निर्वाह करता है।

प्रियकुमार चट्टोपाध्याय ने अपना ऐतिहासिक नाटक 'अरि सिंह' १९१७ ई० में लिखा। अरिसिंह के राजत्वकाल में चित्तौड़ की डांवाडोल राजनीतिक स्थिति का जैसा वर्णन टॉड ने किया है, उसका पूर्ण समर्थन हमें 'अरिसिंह' नाटक में मिलता है। अरिसिंह के काल में राजविद्रोह हुआ और प्रजा की एकता नष्ट हुई। यह ऐतिहासिक तथ्य है। अरिसिंह दुर्बल चित्त का शासक था, जो चित्तौड़ की गद्दी के लिए सर्वथा अयोग्य था। 'राजस्थान' ग्रन्थ में अरिसिंह को एक ऐसे सरदार के रूप में दिखाया गया है, जिसके राज्य की आय तीस हजार रुपए की थी और वह एक सरदार मात्र था। बिलासी, आलसी और स्त्रैण, अरिसिंह के विरुद्ध प्रजा का होना स्वाभाविक था। इसी का चित्रण नाटक में हुआ है। कहा जाता है कि अरिसिंह ने अपने भाई राजसिंह की हत्या करके राज्यलाभ किया था। उसकी इस घटना से अन्य सरदार उससे कुपित थे।

'राणा संग्राम सिंह' नाटक की रचना मनीन्द्रनाथ मजुमदार ने १९१८ ई० में की। यह नाटक द्विजेन्द्रलाल राय को उत्सर्ग किया गया है। नाटक में स्त्री चरित्रों का काल्पनिक चित्रण किया गया है, पर पुरुष पात्र ऐतिहासिक है, जैसे—बाबर, हुमायूँ, आलम खाँ, संग्राम सिंह, रत्न सिंह आदि।

इस नाटक में फतेहपुर सीकरी के युद्ध का वृत्तान्त है। जिस समय पानीपत की लड़ाई में इब्राहिम लोदी को मार कर बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठा उस समय आर्यावर्त में राणा सांगा प्रबल पराक्रमी राजा समझा जाता था। इसी कारण बाबर राणा सांगा को पराजित कर मुगल शासन की नींव मजबूत करना चाहता था। राणा सांगा के साथ बाबर के दो युद्ध हुए। पहले युद्ध में बाबर सम्पूर्ण रूप से पराजित हुआ, वार्षिक कर देकर सन्धि करने पर मजबूर हुआ, किन्तु दूसरे युद्ध में शिलाईदी की विश्वासघातकता से राणा सांगा पराजित हुआ। आमेर या अमरपति बुहारमल ने बाबर के साथ मित्रता कर ली थी और सम्राट के अधीन वह पाँच हजारी मनसबदार बन गया था। राजकुमार रत्नसिंह के साथ अम्बर की राजकुमारी की प्रणय कहानी का उल्लेख नाटक में विशेष रूचि के साथ हुआ है। लेखक ने नाटक की भूमिका में लिखा है कि मैने संग्राम सिंह की मृत्यु के बारे में मतमतान्तर रहने के बावजूद टॉड का ही अवलम्बन किया है।

सम्वत् १५६५ (१५०९ ई०) में राणा संग्राम सिंह चित्तौड़ के सिंहासन पर बिराजमान हुए। इनके शासनकाल में मेवाड़ राज्य की उन्नति ऊँचे शिखर पर पहुँच गई। भट्ट लोगों ने उनका वर्णन एक रूपक छन्द मे इस प्रकार किया है कि 'महाराणा

सांगा गौरव-चोटि के सबसे ऊँचे कलश हैं, पर बहुत दिनों तक मेवाड़ का यह गौरव अक्षुण्ण नहीं रह सका और राणा सांगा की मृत्यु के बाद वह पुनः नीचे गिर कर चकनाचूर हो गया।'

जिस शिलाईदी की विश्वासघातकता से बाबर के समक्ष राणा संग्राम सिंह की पराजय हुई थी, वह राणा का बड़ा विश्वासी था। इस शिलाईदी को टॉड ने 'शिलादित्य' नाम से उल्लिखित किया है। यह एक तुवर राजपूत था और राइसिन का हाकिम था। सन्धि के समय इससे राणा ने परामर्श लिया था और धोखा खाया था।

निवारनचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा लिखित नाटक 'मेवाड़ गौरव' १९१८ ई० में स्टार थियेटर के मंच पर प्रथम बार मंचित हुआ। किन्तु इस नाटक का प्रकाशन १९२२ ई० में हुआ। इस नाटक मे भी राणा संग्राम सिंह या राणा सांगा का जीवन-वृत्त है। नाटक में वर्णित है कि संग्राम सिंह की रानी ने छल-बल से अपने लड़के को मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाने की कोशिश की और मुगलो से सहायता की याचना की। इस घटना का वर्णन हमे टॉड के 'राजस्थान' में इस प्रकार मिलता है—

'बहु-विवाह भी अत्यन्त बुरा होता है। इस कुप्रथा के कारण राजवंशों में अमंगल हो जाते हैं। पुत्रवती होने से सब रानियों की इच्छा यही होती है कि हमारा पुत्र सिंहासन पर बैठे, इस इच्छा को पूर्ण करने में उनको हिताहित का ज्ञान नहीं रहता। राणा संग्राम सिंह के परलोकवासी होने पर उनकी रानियाँ परस्पर कलह करने लगीं। सबने अपने-अपने पुत्र को राज्य-सिंहासन पर बिठलाने की चेष्टा की। एक रानी तो अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाने के लिए यहाँ तक उत्कंठित हुई कि दूसरा कोई उपाय न देखकर बाबर से मेल कर लिया। उसकी लालसा यही थी कि बाबर उचित उत्तराधिकारी को वंचित कर उसके पुत्र को चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा देगा। इस रानी ने अपना मनोगत कार्य पूर्ण करने के लिए बाबर को रणथम्भौर का किला और फतह किए हुए मालवा राज्य का ताज भी घूस में दे दिया।' ('राजस्थान का इतिहास', अनुवादक—पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृष्ठ २२९)।

पाँच अंकों में लिखित 'राणा कुम्भ' नाटक १९२३ ई० मे प्रकाश में आया, जिसके रचयिता हैं भोलानाथ मुखोपाध्याय। लेखक ने इस नाटक की कथा टॉड के 'राजस्थान' से ली है, जिसका उल्लेख नाटक में किया गया है। लेखक ने टॉड के अतिरिक्त फरिश्ता एवं लेनपुल के 'मिडिएवल इण्डिया' ग्रन्थ से भी सहायता ली है। किन्तु ज्यादा चरित्रों तथा घटनाओं का वर्णन 'राजस्थान' ग्रन्थ पर आधारित है। यह

नाटक चित्तौड़ के वीर पुत्रों तथा स्वाधीनता संग्रामी भारतीयों को उत्सर्ग किया गया है। श्रद्धा के साथ महात्मा कर्नल जेम्स टॉड का उत्सर्ग में उल्लेख किया गया है। नाटक में प्रधान चरित्र हैं राणा कुम्भ, उनकी पत्नी मीराबाई, कुम्भ का ज्येष्ठ पुत्र ऊदो या उदय सिंह, छोटा पुत्र रायमल आदि। कुम्भा की बहन लालबाई, खींची सरदार, चाचा और अन्य चरित्रों का वर्णन 'राजस्थान' के अनुसार है। इस नाटक में विद्यापति के पदों का खुल कर प्रयोग किया गया है। मीराबाई को चित्रित करने के लिए ही शायद नाटककार ने ऐसा किया है, किन्तु महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने मीराबाई को कुम्भा की पत्नी नहीं स्वीकारा है। उनका मत है—'महाराणा सांगा का ज्येष्ठ पुत्र भोजराज था, जिसका विवाह मेड़ते के राव वीरमदेव के छोटे भाई रत्न सिंह की पुत्री मीराबाई के साथ वि० स० १५७३ (१५१६ ई०) में हुआ था। परन्तु कुछ वर्षों बाद महाराणा की जीवित दशा में ही भोजराज का देहान्त हो गया, जिससे उसका छोटा भाई रत्न सिंह युवराज हुआ। कर्नल टॉड ने जनश्रुति के आधार पर मीराबाई को राणा कुम्भा की रानी लिखा है और उसी के अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओं के ग्रन्थों में भी वैसा ही लिखा जाने से लोग उसको महाराणा कुम्भा की रानी मानने लग गए हैं, जो भ्रम ही है।' (उदयपुर राज्य का इतिहास—महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पृष्ठ ३५८-५९)

टॉड के 'राजस्थान' का हिन्दी में अनुवाद करनेवाले पं० बलदेव प्रसाद मिश्र ने भी ग्रन्थ की पाद टिप्पणी में इस बात का उल्लेख किया है—'बाबू देवीप्रसाद मुंसिफ (जोधपुर) ने अपने बनाए हुए 'मीराबाई जीवन चरित्र' में लिखा है कि कर्नल टॉड ने सुनी सुनाई और अटकल पच्चू बातों पर भरोसा करके मीराबाई को राणा कुम्भाजी की रानी लिखकर गलती की है।····मीराबाई जोधपुर के राठौर खानदान से थी और उदयपुर के शिशोदिया खानदान में राणा सांगाजी के पुत्र कुमार भोज के साथ व्याही गई थीं। इनका विवाह संवत् १५७३ में हुआ था। मीराबाई कृष्ण भक्त थीं और मेड़तिया राठौर रतन सिंह की बेटी थी।' (राजस्थान का इतिहास—प्रथम खण्ड, लेखक कर्नल जेम्स टॉड, अनुवादक पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, सम्पादक—पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, पृष्ठ सं० १९३)

अघोरचन्द्र काव्यतीर्थ रचित 'मिवार कुमारी' नाटक १९२४ ई० में लिखा गया। नाटककार ने साहित्य सम्राट बंकिमचन्द्र की स्मृति के उद्देश्य से उसको यह उत्सर्ग किया है। नाटक की भूमिका में लेखक ने कहा है कि यह एक ऐतिहासिक

नाटक है और मैंने यथासाध्य इतिहास की रक्षा करने की चेष्टा की है, किन्तु इतिहास तो इतिहास है नाटक नहीं। नाटक की अपनी विशेषता होती है। इस नाटक में यत्र-तत्र कुछ फेरबदल भी हुआ है। किन्तु नाटक का विषय टॉड के ग्रन्थ से ही लिया गया है।

उल्लेखनीय है कि इसी कथानक को लेकर माइकेल मधुसूदन दत्त ने 'कृष्णकुमारी' नाम से बंगला का प्रथम विषादान्त नाटक लिखा था, जिस पर हम विस्तार से पहले ही चर्चा कर चुके हैं। यह नाटक १८६१ ई० में लिखा गया था और तिरसठ वर्ष बाद इसी कथानक को लेकर अघोरचन्द्र ने 'मिवार कुमारी' नाटक की रचना की।

इसे हम इत्तफाक कहें या विचित्र संयोग कि बंगला नाटक के आदि युग मे टॉड के 'राजस्थान का जो सूत्रपात बंगला-साहित्य मे आरम्भ हुआ, उसकी एक लम्बी परम्परा आधुनिक युग तक चलती रही। याने १८५७ ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से टॉड के 'राजस्थान' का जो सिलसिला बगला-साहित्य मे आरम्भ हुआ, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति तक बराबर चलता रहा। एक ग्रन्थ का इतना बड़ा प्रभाव और वह भी बंगला के समृद्ध साहित्य पर, एक सुखद आश्चर्य ही कहा जायगा। किन्तु तिरसठ वर्ष के बाद भी 'मिवार कुमारी' माइकेल की 'कृष्णकुमारी' की गुणवत्ता, श्रेष्ठता और नाट्य शैली को छू तक नहीं सकी। माइकेल मधुसूदन दत्त की प्रतिभा का इसी से पता चलता है और तभी उन्हे बंगला का अप्रतिम कवि और नाटककार माना जाता है।

'मिवार कुमारी' नाटक के पात्र यथा भीम सिह, जयपुर अधिपति जगत सिंह, मानसिंह और सर्वोपरि कृष्णकुमारी का चरित्र-चित्रण टॉड के अनुसार हुआ है। नाटक मे कृष्णा द्वारा अग्नि-कुण्ड मे आत्मविसर्जन की बात है, जो 'राजस्थान' ग्रन्थ में नही है। माइकेल ने कृष्णा की हत्या खड्ग के आघात से दिखाई है, पर प्रेमीजी के 'विष-पान' नाटक में टॉड के अनुरूप उसकी दर्दनाक मृत्यु विषपान से प्रदर्शित की गई है।

शैलेन्द्रनाथ घोष द्वारा विरचित 'पन्ना' नाटक १९२५ ई० में लिखा गया। इस नाटक की कथा टॉड के 'राजस्थान' से ली गई है। नाटक में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

पन्ना धाय ने किस प्रकार उदय सिंह की जीवन रक्षा की और उसे कमलमीर दुर्ग में पहुँचाया। इन बातों का उल्लेख नाटक में है। पन्ना के आत्मत्याग की कथा वीरोचित भाषा में गाई गई है और उस कारुणिक दृश्य को बड़े ही करुणापूर्ण ढंग से दिखाया गया है, जिसमें पन्ना अपने पुत्र की बलि देकर उदय सिंह की बनवीर से रक्षा

करती है। यद्यपि बनवीर की कन्या का टॉड के 'राजस्थान' में उल्लेख नहीं है, पर नाटककार ने अपनी कल्पना के द्वारा उसका महत्व दर्शाया है। नाटक में उसकी प्रधान भूमिका है।

महिला नाटककारों में प्रफुल्ल मई देवी ने पन्ना के चरित्र को लेकर १९२६ ई० में 'धात्री पन्ना' नाटक की रचना की। इस छोटे से नाटक में लेखिका ने पन्ना के अपूर्व त्याग का वृत्तान्त कारुणिक परिवेश में किया है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी-साहित्य के यशस्वी कवि और नाटककार डॉ० रामकुमार वर्मा ने पन्ना के चरित्र को लेकर 'दीपदान' नाम से एक प्रभावशाली एकांकी लिखा है। इसकी चर्चा इसी अध्याय में आगे विस्तार से की गई है।

मौलवी मुहम्मद अब्दुल मुनीम ने 'मेवार मिलन' नाटक १९३३ ई० में लिखा। यह नाटक पाँच अंकों में है। इस नाटक में राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह और अकबर के पुत्र सलीम के युद्ध का वर्णन है। लगता है द्विजेन्द्रलाल राय के 'मेवाड़ पतन' में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जिस प्रकार बल दिया गया है, इस नाटक में भी साम्प्रदायिक एकता प्रदर्शन की उत्कट अभिलाषा नाटककार ने दर्शायी है।

इस प्रकार हम देखते हैं एक विदेशी इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड के रोमांटिक इतिहास ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' का बंगला-साहित्य पर और परवर्ती काल में हिन्दी तथा अन्य साहित्यों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। हमने अपने सीमित अध्ययन में बंगला-साहित्य के सर्वाधिक चर्चित और अल्प चर्चित नाटक-कारों की कृतियों की इस अध्याय में महज एक झलक दी है। और भी कई ऐसे मेधावी नाटककार होंगे, जिनकी नाट्य कृतियाँ टॉड के 'राजस्थान' से प्रभावित हुई होंगी। बाद में सम्भव हुआ तो उनका अध्ययन परवर्ती संस्करण में प्रस्तुत किया जायेगा।

हिन्दी में राजस्थान पर नाट्य रचनाएँ

हमने पूर्व मे लिखा है कि टॉड के 'राजस्थान' का सबसे पहले बंगला-साहित्य पर प्रभाव पड़ा और उसके पश्चात यह प्रभाव हिन्दी-राजस्थानी के अतिरिक्त देश की आधुनिक सभी भाषाओं के साहित्य पर पड़ा। टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर बंगला भाषा के साहित्यकारों ने राजस्थान के वीर-चरित्रों पर काव्य, नाटक, उपन्यास आदि साहित्यिक विधाओ पर कलम चलाई। बंगला रचनाओं का आरम्भ मे हिन्दी-राजस्थानी मे अनुवाद हुआ और बाद मे स्वतन्त्र रूप से मूल रचनाएँ प्रणीत होने लगीं। हमने यथासाध्य बंगला रचनाओ के अनुवाद को प्रसंगानुसार उपस्थित करने की चेष्टा की है एव साथ ही बंगला-रचनाओं के कथानकों पर प्रणोत होने वाले काव्य और नाटको को भी प्रस्तुत किया है।

अब हम बंगला-नाट्य कृतियो की भाँति हिन्दी-राजस्थानी मे लिखी गई रचनाओं पर विचार करेंगे। वस्तुतः हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के भारतेन्दु-युग मे अर्थात् १९वीं शताब्दी के काल-खण्ड मे पाश्चात ढंग पर नाटक लिखने की परम्परा आरम्भ हो गई थी। स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई मौलिक नाटक लिखे थे और कुछ बंगला नाटको का अनुवाद प्रस्तुत किया था। उन्हीं के सहयोगी हिन्दी के साहित्यकारो ने बंगला नाटको का आरम्भ मे अनुवाद किया और पुन मौलिक नाटक लिखे। इनमे कई नाटक टॉड के 'राजस्थान की उप-कथाओ पर आधारित है। जैसे—राधाकृष्ण दास ने सर्वप्रथम 'राजस्थान केसरी या महाराणा प्रताप सिंह' नाटक लिखा, उसी प्रकार हरिकृष्ण 'प्रेमी', आचार्य चतुरसेन शास्त्री, डॉ० रामकुमार वर्मा, गोविन्द वल्लभ पंत आदि नाटककारों ने 'राजस्थान' से कथानक लेकर नाटक लिखे। हिन्दी के नाटककारों मे सबसे अधिक नाटक प्रेमीजी के है। हम अब आगे के पृष्ठों मे हिन्दी-नाट्य-कृतियो पर चर्चा करेंगे। विषयगत एकरूपता को अक्षुण्ण बनाने के उद्देश्य से प्रसंगानुसार हमने नाटक-उपन्यासों के साथ काव्य-रचनाओं पर चर्चा की है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'रक्षा-बन्धन' नाटक

गाँधी-युग के भावबोध से अनुप्रेरित होकर नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने १९३३ ई० मे 'रक्षा बन्धन' ऐतिहासिक नाटक की रचना की, जिसका प्रकाशन हिन्दी-भवन, जालन्धर से १९३४ ई० मे हुआ। इस नाटक में मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह की रानी कर्मवती तथा दूसरी रानी जवाहर बाई की वीरता का चित्रण किया गया है। महारानी कर्मवती ने गुजरात के बादशाह बहादुर शाह के चित्तौड़ आक्रमण के समय

हुमायूं को राखी भेजकर बहन का रिश्ता जोड़ा था और हुमायूं ने बहन के इस स्नेह-निमन्त्रण को स्वीकार किया था। यद्यपि हुमायूँ समय पर चित्तौड़ नहीं पहुँच सका क्योंकि उस समय वह शेरशाह से बिहार और बंगाल में युद्ध कर रहा था। हुमायूं ने एक हिन्दू बहन की सम्मान-रक्षा में बहादुर शाह के विरुद्ध सहायता की थी, यह इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। गाँधी-युग में जब देश में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास चल रहे थे, उस काल-खण्ड में प्रेमीजी के 'रक्षा बन्धन' नाटक की विशेष चर्चा रही और यह नाटक न केवल हिन्दी क्षेत्र में, अपितु देश के अन्य भागों में भी चर्चित हुआ।

गाँधी-युग का प्रभाव

१९१५ ई० के बाद जब गाँधीजी कांग्रेस के स्वातन्त्र्य-संग्राम के मंच पर अवतीर्ण हुए तो उन्होंने सत्य, प्रेम और अहिंसा का महामन्त्र दिया। वे हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार और देश की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध अहिंसा का कवच पहन कर डट गए। हिन्दी-साहित्य में उस समय द्विवेदी-युग की राष्ट्रवादी धारा प्रबल थी। द्विवेदी-युग के बाद हिन्दी-साहित्य में छायावाद-युग आया। इस युग में भी जहाँ हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार छायावाद-रहस्यवाद की रचना-प्रक्रिया में जुटे थे, वहीं उनमें से कुछ कवि, उपन्यासकार, नाटककार, राष्ट्र की अस्मिता को जगाने मे लगे थे। प्रेमचन्द उपन्यासों के माध्यम से भारतीय किसानों और अंग्रेजी राज्य में बढ़ते आर्थिक-संकट, बणिक-सभ्यता का विरोध कर रहे थे, उसी के परिप्रेक्ष्य में नाटककार और अन्य कवि हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्नशील थे। हिन्दी के यशस्वी कवि-नाटककार डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसी समय अर्थात् १९२७ ई० में 'चित्तौड़ की चिता' नामक खण्ड-काव्य लिखा. प्रेमीजी ने "रक्षा बन्धन" नाटक तथा पं० रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' ने "राखी" काव्य की रचना की। हिन्दी नाटककारों में प्रेमीजी तथा उनके "रक्षा बन्धन" नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

"रक्षा बन्धन" नाटक में रानी कर्मवती के कथन को देखा परखा जा सकता है, जिसमें नाटककार अपने युग की वाणी को नया स्वर दे रहा है—

कर्मवती—मुझे एक उपाय सूझा है।

बाघसिह—क्या ?

कर्मवती—मैं हुमायूँ को राखी भेजूँगी।

जवाहर बाई—हुमायूँ को ? एक मुसलमान को भाई बनाओगी ?

कर्मवती—चौंकती क्यों हो, जवाहर बाई ! मुसलमान भी इनसान हैं। उनके

भी बहनें होती हैं। सोचो तो बहन, क्या वे मनुष्य नहीं हैं। क्या उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते हैं, मन्दिर में न जाकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिए?

बाघसिंह—किन्तु और भी बाधाएँ हैं। क्या हुमायूँ पुराना वैर भूल सकेगा? सीकरी के युद्ध के जख्मों के निशान क्या आसानी से मिट सकेंगे?

कर्मवती—हमारी राखी वह शीतल लेप है, जो घाव भर देता है, वह वरदान है, जो सारे वैर-भावों को जलाकर भस्म कर देता है। राखी पाने के बाद भी क्या कोई वैर-विरोध याद रख सकता है?

जवाहर बाई—किन्तु, क्या शत्रु से सहायता की याचना करना मेवाड़ के अनुकूल है?

कर्मवती—हमारा शत्रु स्वयं हमारा अभिमान है। समझदार शत्रु को सदा शत्रु बनाये रखना ही तो मनुष्यता नहीं है। हुमायूँ वीर है, वीर पुत्र है। विग्रह और सन्धि दोनों में वह मेवाड़ियों के लिए योग्य प्रतिपक्षी है। उसे भाई बनना आता है। ऐसे वीर की बहन बनने में किसी भी क्षत्राणी को गर्व होना चाहिए।

जवाहर बाई—मुसलमान भारत के शत्रु हैं।

कर्मवती—ऐसा न कहो। उन्हें भी तो भारत में जीना मरना है। हमारी तरह भारत उनकी भी जन्मभूमि हो चुकी है। अब उन्हें काफिले में लाद कर अरब नहीं भेजा जा सकता। उन्हें यहाँ रहना पड़ेगा और हमें उन्हें रखना पड़ेगा। वे हमें भाई समझें और हम उन्हें। यही स्वाभाविक है, यही उचित है। इस विकट अवसर पर मेवाड़ की रक्षा का और उपाय ही क्या है?

('रक्षा-बन्धन'—पहला अंक, पाँचवाँ दृश्य, पृ० ३५-३६)

संग्राम सिंह की वीरता

राणा संग्राम सिंह सम्वत १५६५ (सन् १५०६ ई०) में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठे। उनके शासनकाल में मेवाड़ राज्य की सीमा बहुत दूर तक फैल गई, उत्तर में बीना (आगरे से दक्षिण की तरफ पाँच मील की दूरी पर बीना बसा हुआ है) इस क्षेत्र

में बहनेवाली पीलखाल, पूर्व में सिन्ध नदी, दक्षिण में मालवा और पश्चिम में मेवाड़ की दुर्गम शैलमाला उसकी सीमा बन गई थी। मेवाड़ राज्य की यह उन्नति राणा संग्राम सिंह की योग्यता, गम्भीरता और दूरदर्शिता का परिचय देती है। राणा सांगा (संग्राम सिंह) के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व जिन शत्रुओं ने चित्तौड़ पर अधिकार करने के लिए आँखें गड़ा रखी थीं, राणा संग्राम सिंह के बाद उनका हौसला पस्त हो गया और उन्होंने उनके जीते जी उस ओर कदम बढ़ाने का साहस नहीं किया। इसका सबसे बड़ा कारण था कि राणा संग्राम सिंह उस समय मेवाड़ का परम पराक्रमी और बहादुर राणा था, जिसने इब्राहिम लोदी और बाबर को कई बार परास्त किया। १५२८ ई० में राणा संग्राम सिंह और बाबर की सेना का कनवा (सीकरी और बियाना के बीच) नामक स्थान पर युद्ध हुआ। मेवाड़ी सेना विजयी हुई। बाबर पीछे हट गया, उसने सन्धि का प्रस्ताव भेजा। शिलादित्य नाम का एक तोंवर राजपूत, जो राइसिन का सरदार था और मेवाड़ राज्य का सामन्त था; उसने सन्धि प्रस्ताव की मध्यस्तता की, लेकिन प्रस्ताव असफल रहा। राइसिन के सामन्त ने धोखा दिया। पुनः १६ मार्च १५२८ ई० को बाबर और सांगा की सेना में युद्ध हुआ। 'बाबरनामा' नामक ग्रन्थ में इस युद्ध का समय १६ मार्च, १५२७ ई० लिखा गया है। इस युद्ध में राणा संग्राम सिंह की हार हुई।

केशव कुमार ठाकुर द्वारा अनुदित 'टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास' मे पृष्ठ १७७ पर लिखा गया है—"बाबर की सैनिक निर्बलता का राणा संग्राम सिंह ने कोई लाभ नहीं उठाया। नहीं तो उसने तातारी सेना का सर्वनाश करके बादशाह बाबर को आसानी के साथ भारत से बाहर निकाल दिया होता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। बाबर ने कनवा युद्ध की पराजय के बाद युद्ध बन्द कर दिया और राजपूतों को जीतने के लिए बहुत सी बातें सोचने लगा।"

दूसरा साका

राणा संग्राम सिंह की मृत्यु से सम्पूर्ण राजस्थान में शोक छा गया। सम्वत १५८६ (१५३० ई०) में राणा रत्न सिंह सिंहासन पर बैठा और पाँच वर्ष तक राज्य किया। रत्न सिंह की अकाल मृत्यु के बाद राणा संग्राम सिंह का पुत्र विक्रमादित्य १५३५ ई० में चित्तौड़ के सिंहासन पर बैठा। राणा संग्राम सिंह में जितने गुण थे, विक्रमादित्य में उतने ही अवगुण थे। उसकी अयोग्यता और अदूरदर्शिता के कारण तथा मेवाड़ राज्य की निर्बलता को देखकर गुजरात के बादशाह बहादुर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। बहादुर शाह पुराना बदला लेना चाहता था। सिसोदिया वंश के राजकुमार और राणा संग्राम सिंह के भाई पृथ्वीराज ने गुजरात के बादशाह मुजफ्फर को पराजित किया था और उसे कैद करके चित्तौड़ में रखा था। इसी अपमान का बदला बहादुर शाह लेना चाहता था। फलतः चित्तौड़ के बाहर भयंकर युद्ध हुआ। राजपूतों ने चित्तौड़

को बचाने के लिए वीरता का परिचय दिया, पर बहादुर शाह की फौज रुकी नहीं। चित्तौड़ के सामने भयानक संकट था। फलतः चित्तौड़गढ़ मे जौहर व्रत की तैयारी होने लगे। राणा संग्राम सिंह की पत्नी जवाहर बाई ने हाथ में तलवार लेकर युद्ध किया। अन्त मे वह वीरांगना वीरगति को प्राप्त हो गई और दूसरी रानी कर्णवती (कर्मवती) ने तेरह हजार राजपूत बालाओं के साथ 'जौहर व्रत' किया। यह युद्ध इतिहास में मेवाड़ के 'दूसरा साका' के नाम से जाना जाता है।

टॉड का कथन

टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ में पृष्ठ १८१ पर लिखा है—"जिस समय बादशाह बहादुर की फौज से युद्ध करते हुए चित्तौड़ की रानी जवाहर बाई मारी गई थी, रानी कर्णवती को चित्तौड़ के बचने की कोई आशा न रही। वह किसी प्रकार अपने छोटे बालक (उदय सिंह) की रक्षा करना चाहती थी। इसलिए बहुत सोच समझकर उसने दिल्लो के बादशाह बाबर के लड़के हुमायूं से सहायता लेने का विचार किया। इन्हीं दिनों रक्षा-बन्धन का त्यौहार था। राजस्थान में यह त्यौहार बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है। हिन्दू स्त्रियाँ अपने भाइयों के हाथों मे राखियाँ बाँधकर इस त्यौहार की खुशियाँ मनाती हैं। रानी कर्णवती ने दिल्ली में हुमायूं के पास रक्षा-बन्धन के त्यौहार पर अपनी राखी भेजी। हुमायूं ने उस राखी के बदले में बादशाह बहादुर से चित्तौड़ की रक्षा करके रानी कर्णवती को सहायता करने का निश्चय किया। उन दिनों हुमायूं दिल्ली मे नहीं था, वह बिहार-बंगाल में शेरशाह से लड रहा था। अत· कर्णवती का दूत वहीं राखी लेकर गया। हुमायूं अपनी बहन की रक्षा के लिए एक बड़ी फौज लेकर दिल्ली से चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ और जैसे ही वह चित्तौड़ के करीब पहुँचा, बादशाह बहादुर भयभीत होकर चित्तौड छोड कर चला गया।" (टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास, अनुवादक —केशव कुमार ठाकुर, पृ० १८१)

मुसलमान भाई को हिन्दू बहन की राखी

हुमायूं ने आने मे देर कर दी और रानी कर्मवती अपनी सखी वीरांगनाओं के साथ जौहर की आग में शहीद हो गई। इसी मार्मिक कथा का प्रेमीजी के 'रक्षा-बन्धन' नाटक में बड़ी हो ओजस्वी भाषा में वर्णन है। हमने गाँधी-युग की मानसिकता को ऊपर रानी कर्मवती के शब्दों में दिखाने की कोशिश की है, अब देखिए हुमायूं के मुख से हिन्दू-मुस्लिम एकता के युगबोध की वाणी क्या कहती है—

(बिहार में गंगा तट पर हुमायूं का फौजी डेरा। अपने खास तम्बू में हुमायूँ और उसके सेनापति हिन्दूबेग और तातार खाँ बैठे हैं)

हिन्दूबेग—जहाँपनाह! शेर खाँ हार कर बंगाल को तरफ भाग तो गया, पर

वह चोट खाया हुआ काला नाग चुप न बैठ सकेगा।

हुमायूँ—एक बात जरूर है। शेर खाँ बड़ा दिलेर और बड़ा बहादुर है, ठीक अब्बाजान की तरह।

× × ×

(एक पहरेदार का प्रवेश)

पहरेदार—(अभिवादन करके) जहाँपनाह !

हुमायूँ—क्या है ?

पहरेदार—खिदमत में मेवाड़ से दूत आया है।

हुमायूँ—मेवाड़ से ? अच्छा यहीं भेज दो।

(पहरेदार का प्रस्थान)

हुमायूँ—मेवाड़ से दूत ? मेवाड़ लफ्ज में ही जादू है। बयाना और सीकरी की लड़ाई में मैं भी अब्बाजान के साथ था। राजपूतों से हमारी फौज कैसा खौफ खाती थी। राणा सांगा ! उन्हें तो खुदा ने फौलाद से बनाया था। उनकी तिरछी नजर कयामत का पैगाम थी। मेवाड़ पर आजकल बहादुरशाह ने चढ़ाई कर रखी है न ?

(दूत का प्रवेश)

हुमायूँ—आओ, मेवाड़ के बहादुर !

दूत—(अभिनन्दन करके) स्वर्गीय महाराणा संग्राम सिंहजी की पत्नी महारानी कर्मवती जी ने आपको यह सौगात भेजी है।

(राखी और पत्र देता है)

हुमायूँ—(हाथ बढ़ाकर) मेरी किस्मत ! हिन्दूबेग ! तुम जानते हो मैं मेवाड़ की बहुत इज्जत करता हूँ और हर एक बहादुर आदमी को करनी चाहिए। वहाँ की खाक भी सर पर लगाने की चीज है, वहाँ के जर्रे-जर्रे में बहिश्त है।

तातारखाँ—दुश्मन की तारीफ करने में जहाँपनाह से बढ़कर····

हुमायूँ—दुश्मन ! हः हः हः ! दुश्मन ! आँखों से तअस्सुब का चश्मा हटाकर देखो। जिन्हें हम दुश्मन कहते हैं, वे सब हमारे भाई हैं। हम सब

एक ही खुदा के बेटे हैं। हाँ, देखूं तो इसमें क्या है? (पत्र पढ़ते-पढ़ते विचारमग्न हो जाता है)

हिन्दूवेग—क्या सपना देखने लगे जहाँपनाह! महारानी कर्मवती ने क्या जादू का पिटारा भेजा है?

हुमायूं—सचमुच हिन्दूवेग, उन्होंने जादू का पिटारा भेजा है। मेरे सूने आसमान में उन्होंने मुहब्बत का चाँद चमकाया है। उन्होंने मुझे राखी भेजी है, मुझे अपना भाई बनाया है। (दूत से) बहन कर्मवती से कहना हुमायूँ तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न हुआ तो क्या, वह तुम्हारे सगे भाई से बढ़कर है। कह देना, मेवाड़ की इज्जत मेरी इज्जत है। जाओ।

(दूत का अभिवादन करके प्रस्थान)

('रक्षा-बन्धन', दूसरा अंक, दूसरा दृश्य, पृ० ४२-४६)

प्रेमी और द्विजेन्द्रलाल

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षा बन्धन' नाटक का उन दिनो जगह-जगह मंचन हुआ और इसके कई संस्करण प्रकाशित हुए। प्रेमीजी और द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको की समान-धर्मिता तथा तुलनात्मक अध्ययन कर हम बखूबी देख सकते हैं। द्विजेन्द्रलाल के नाटक 'राणा प्रताप' की इरा, अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा, 'दुर्गादास' नाटक का दिलेर खाँ और 'मेवाड़ पतन' नाटक की मानसी की वाणी को हम 'रक्षा-बन्धन' मे अनुगुंजित होता हुआ पाते हैं। प्रेमीजी और द्विजेन्द्रलाल मूलतः कवि थे और समय की आवश्यकता ने उन्हें नाटककार बना दिया। द्विजेन्द्रलाल राय के राष्ट्रीय गीतो तथा अन्य कविताओं से बगला-साहित्य महिमा मण्डित है। वस्तुतः वे रवीन्द्र की भांति बड़े संवेदनशील और ओजस्वी कवि थे। उनके गीत राग-रागनियों से भरे पड़े है। प्रेमीजी भी हिन्दी के छायावादी युग मे राष्ट्रीय भावनाओं को प्रेरणा दे रहे थे और आजादी के शंख को निनादित कर रहे थे। उनके नाटकों में आये गीत हिन्दी काव्य की सुन्दर रचनाएँ हैं। यहाँ हम उनका उल्लेख करना चाहेंगे। 'रक्षा-बन्धन' के पहले अंक के पाँचवें दृश्य मे रानी कर्मदेवी देशात्मबोध गीत गाने के लिए चारणी से कहती है। चारणी गाती है—

जय-जय-जय मेवाड़ महान!
तेरे कण-कण में जीवन है,
मूर्तिमान तू नवयौवन है,

प्रलय भरी तेरी चितवन है,
तू आंधी है, तू तूफान।
जय-जय-जय मेवाड़ महान
तेरी उन्नत रक्त निशानी,
वज्रघोष है तेरी वाणी,
तेरी तलवारों का पानी,
तृप्त कर रहा रण के प्राण।
जय-जय-जय मेवाड़ महान।
तेरी गौरवमयी कहानी,
प्राणों में भर रही जवानी,
बलि-पथ पर बन कर दीवानी,
गाती है तेरी संतान।
जय-जय-जय मेवाड़ महान!

('रक्षा-बन्धन', पृ० ३१-३२)

१९वीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण का आरम्भ बंगाल में हुआ और उसका प्रभाव सारे देश में फैला। पश्चिमी साहित्य और विचारों का आरम्भ प्रथम बंगाल में हुआ और तदुपरान्त हिन्दी के क्षेत्रों में प्रसारित हुआ। इसे हमने कई स्थानों पर दिखाया है। बंगला-साहित्य की कृतियों का पहले हिन्दी-राजस्थानी में अनुवाद हुआ और फिर मौलिक रचनाएँ लिखी जाने लगीं। १९१३ ई० में जब विश्वकवि रवीन्द्रनाथ को "गीतांजलि" काव्य पर नोबेल पुरस्कार मिला तो हिन्दी के छायावादी कवि और लेखक रवीन्द्र के प्रति आकर्षित हुए—प्रसाद, पंत और निराला की कविताओं पर रवीन्द्र का प्रभाव देखा जा सकता है। (देखिए बंगला भाषा के त्रैमासिक पत्र 'समीपेषु' में प्रकाशित मेरा लेख—'विश्वकवि उ हिन्दी साहित्य'—लेखक अध्यापक शिवकुमार शर्मा। 'समीपेषु' का यह विशेषांक १९६२ ई० में रवीन्द्र शताब्दी पर प्रकाशित हुआ था, जिसके सम्पादक थे बंगला के प्रसिद्ध कथाकार और कलकत्ता विश्वविद्यालय के बंगला विभाग के प्रोफेसर नारायण गंगोपाध्याय) प्रेमीजी भी बंगला भाषा और साहित्य से अछूते नहीं रहे। उनके नाटकों में यह प्रभाव देखा जा सकता है। हमने इसी अध्याय में रवीन्द्रनाथ के अग्रज ज्योतिरिन्द्रनाथ के नाटक 'सरोजिनी' पर चर्चा की है, 'सरोजिनी' नाटक के अन्तिम दृश्य में चित्तौड़ के जौहर की जलती चिता को दिखाया गया है। राजपूत रमणियाँ आत्माहुति देने के पूर्व जिस गीत को बार-बार गाती हैं वह इस प्रकार है—

जल्-जल् चिता, द्विगुन द्विगुन,
पराण सौंपिबे विधवा बाला।
जलूक जलूक चितार आगुन,
जुड़ाबे एखनि प्राणेर ज्वाला।
शोन् रे यवन—शोन् रे तोरा,
जे ज्वाला हृदये ज्वालाली सबे
साक्षी रलेन देवता तार
एर प्रतिफल भूगिते हबे॥

(ज्योतिरिन्द्रनाथ ग्रन्थावली, पंचम खण्ड, 'सरोजिनी' नाटक—षष्ठ अंक, पृ० २८५-२८७)

जौहर का गीत

नाट्यकार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने 'सरोजिनी' नाटक मे अपने अनुज विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "जल् जल् चिता, द्विगुन, द्विगुन" गीत को समाविष्ट किया है। जब 'सरोजिनी' नाटक बंगाल के रंगमंचो पर अभिनीत होता तो लोग इस गीत के भाव से आत्मविह्वल हो जाते और देशात्मबोध तथा स्वतन्त्रता के लिए आत्माहुति देने के लिए प्रस्तुत हो जाते। इस गीत मे राजपूत रमणियो ने जलती चिता मे अपने को समर्पित कर सतीत्व की रक्षा की, जौहर व्रत का पालन किया और राजपूत वीरों ने देश की स्वतन्त्रता के लिए केसरिया बाना पहन कर युद्ध मे लडते-लडते प्राणाहुति दी। ऐसा रोंगटे खडा करनेवाला इतिहास कहाँ मिलेगा ? राजस्थान की वीरांगना आग की लपटों मे राख होने को प्रस्तुत हैं, वे विदेशियो से अंग स्पर्श कराने की बजाय आग की लपटो मे समा जाने मे अपनी और देश की मर्यादा समझती है। घायल राजपूत आकाश और चाँद-सितारों को इस आहुति का साक्षी बनाते हैं। राजस्थान के वीर और वीरांगनाओं ने आग की लपटो मे स्वर्ण रंजित इतिहास लिख दिया, उन्होने देवताओ को भी इसका साक्षी बनाया। राजपूती ललनाएँ कहती हैं—हे आग ! हमे अपने पति, पुत्र और स्वजनों के पास ले चलो, हमारे आत्मदाह के बाद वीरों को घर का मोह नही रहेगा, वे केवल मृत्यु को ही स्मरण कर युद्ध करेंगे। यह है वीरांगनाओं की उदात्त भावना ! इन भावनाओं को हम प्रेमीजी के 'रक्षा-बन्धन' नाटक के तीसरे अंक के पाँचवें दृश्य में इस प्रकार पाते हैं—

स्थान—चित्तौड़ दुर्ग का भीतरी भाग

समय—प्रात:काल

(महारानी कर्मवती तथा अन्य राजपूत रमणियाँ शृङ्गार करके खड़ी हुई हैं)

कर्मवती—अग्नि की पुत्रियो ! क्या मैं विश्वास करूँ कि तुम्हें माँ की गोद में

बैठते हुए जरा भी भय न लगेगा? बोलो, वीरांगनाओ! क्या तुमने मरण को वरण करने का अन्तिम निश्चय कर लिया है? क्या तुम हँसते-हँसते अपनी आहुति देने को तैयार हो? मैं फिर कहती हूँ, जिसे प्राणों का मोह हो, जिसे संसार के सुख-दुःख की अभिलाषा हो, जिसकी आँखें इतनी बेशर्म हों कि मेवाड़ को परतंत्र अवस्था में देख सकें, वह अब भी लौट जायें।

एक वीरांगना—नहीं माँ! यह कैसे हो सकता है? मुर्दों की भांति कौन जीना पसन्द कर सकता है? स्वामी, पुत्र, बंधु, सभी जननी-जन्मभूमि की मान-रक्षा के लिए प्राण दे चुके हैं। जो बचे हैं वे हमारी ओर से निश्चिन्त होकर मर मिटना चाहते हैं। माँ, अब हमारा संसार रह ही कहाँ गया है? विश्वास रखिए, हम हँसते-हँसते जौहर की ज्वाला में प्रवेश कर सकेंगी।

× × ×

कर्मवती—प्यारी बहनो! हमारे अवशिष्ट वीर राज-बलि देने जा रहे हैं। उनके प्राणों में अपने कुटुम्बियों का मोह शेष न रह जाय, मौत के अतिरिक्त उनका कोई सम्बन्धी न बच रहे, वे निर्मोही होकर, पागल होकर, युद्ध कर सकें, इसलिए उनके युद्ध में जाने के पूर्व ही हमें अपने अस्तित्व को जौहर की ज्वाला में समाप्त कर देना है। राजस्थान की रेत! आज तू अभिमान से चमक रही है। मेवाड़ के सरोवर! आज तुझमें आनन्द की लहरें उठ रही हैं। आज उपवन में बसन्त छा रहा है। यही तो समय है गीत गाने का। आज हमारी सुहागरात आने वाली है। हाँ, गाओ, बहनो।

(सब गाती हैं)

सजनि, मरण को वरण करो री!
पुलकित अंबर और अवनि है,
आती आमंत्रण की ध्वनि है,
यह सुहाग की रात, सजनि है,

चिता-सेज पर शयन करो री !
सजनि, मरण को वरण करो री !
खड़ी पद्मिनी लेकर माला,
देखो नभ में हुआ उजाला,
हम पियें मरण का प्याला,
स्वर्ग मार्ग पर चरण धरो री !
सजनि, मरण को वरण करो री !
भली जली जौहर की ज्वाला,
लेने आया पीहर वाला,
यह लपटों का ओढ़ दुशाला,
अब उसका अनुसरण करो री !
सजनि, मरण को वरण करो री !

(नेपथ्य में हर-हर महादेव, जय एकलिंग की. जय कराल काली की, जय मेवाड़ भूमि की, आदि आवाजें आती हैं।)

('रक्षा-बन्धन' नाटक, पृ० ६५-६७)

साम्प्रदायिक एकता का प्रश्न

भाग्य की नियति देखिए कि 'बंगभंग' के आन्दोलन ने लार्ड कर्जन के बंगाल विभाजन के षड़यन्त्र को ध्वस्त कर दिया, पर अंग्रेजों की फूट डालने की नीति १९४७ ई० में भारत विभाजन से सफल हो गई। देश आजाद हुआ, पर खण्डित होकर। आज के परिप्रेक्ष्य में इतिहास हमें सचेत कर रहा है, भारत के और टुकड़े न हों। देश मे विघटनवाद, विछिन्नतावाद, आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, जातिवाद की विभीषिका फैली हुई है। ऐसे वक्त में हमारा जातीय इतिहास भारत की भावनात्मक एकता को सम्पुष्ट कर हमें अखण्ड भारत के लिए प्रोत्साहित करता है। साम्प्रदायिक सद्भाव से हो, सच्चा भारतीय बनने से ही देश की एकता, अखण्डता और आजादी कायम रह सकती है।

'अज्ञात' का 'राखी' काव्य

कवि-नाट्यकार हरिकृष्ण 'प्रेमी' के 'रक्षा-बन्धन' नाटक से अनुप्रेरित होकर उसी कालखण्ड में पं० रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' ने वीर-रस प्रधान खण्ड-काव्य 'राखी' की रचना की। "राखी" काव्य का प्रकाशन नवीन भारत पुस्तक माला

कार्यालय, इलाहाबाद से सं० १९९२ (१९३६ ई०) में हुआ। कवि 'अज्ञात' ने 'राखी' काव्य का समर्पण इन शब्दों में किया है—

लिया अपने कर में निर्व्याज—
जिन्होंने निज-रक्षा का भार।
राष्ट्र की उन बहनों को आज
समर्पित 'राखी' का उपहार ॥

'राखी' खण्ड-काव्य का आधार टॉड का 'राजस्थान' की कथा है। कवि ने 'काव्य के ऐतिहासिक आधार' में कहा है—'इतिहास प्रसिद्ध वीर-भूमि चित्तौड़ के महाराणा संग्राम सिंह (राणा सागा) की संदिग्ध मृत्यु से उनकी रानियाँ दुःखी हुई। वे वैधव्य भार को वहन करने के लिए जीवन-संग्राम में उतर पड़ीं। राज्य संचालन का भार राज-माता महारानी करुणावती (कर्मवती) ने अपने हाथ में ले लिया। महाराणा के शत्रुओं को यह अवसर अत्यन्त अनुकूल प्राप्त हुआ। उनके साथ पराजित शत्रु गुजरात के यवन सूबेदार बहादुरशाह ने अपना बदला लेने तथा चित्तौड़ से राजपूतों की सत्ता को मिटा देने के लिए प्रबल आक्रमण किया। ऐसी संकट की स्थिति में महारानी करुणावती ने बादशाह हुमायूँ के पास 'रक्षा-बन्धन' का उपहार भेजकर आक्रमणकारियों को पराजित करने में उनकी सहायता चाही।'

'राखी' काव्य चार सर्गों में विभाजित है, जिसमें कवि 'अज्ञात' ने ओजस्वी भाषा में राजस्थान के शौर्य-वीर्य को उजागर कर साम्प्रदायिक सद्भाव की प्रेरणा दी है। देश की राजनीति के इतिहास में यह काल स्वातन्त्र्य-संग्राम का है, गाँधी युग का है और है हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' की समाप्ति का काल। १९३६ ई० में हिन्दी उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने 'प्रगतिशील साहित्य संघ' की स्थापना कर दी थी और तब हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'छायावाद' के बाद 'प्रगतिवाद' का आरम्भ हुआ।

कवि कहता है कि राणा सांगा के अभाव में चित्तौड़ निर्बल हो गया था और शत्रु मेवाड़ पर चढ़ आये थे। गुजरात का बहादुरशाह चित्तौड़ को पराभूत करने के लिए सेना लेकर जब आ पहुँचा तो कवि प्रथम सर्ग में कहता है—

जन्मभूमि सग्राम सिंह को सूनी थी सरदार बिना।
तलवारें बेकार पड़ी थीं राणा की तलवार बिना ॥८५॥

× × ×

महानाश की भीषण झंझा घेर चतुर्दिक पुर का द्वार ।
उड़ा रही सदियों से सोई भस्म-चिता की पावन छार ॥१३॥
होकर अति निराश महिषी ने वृद्ध सचिव से कहा सुनो ।
क्यों विलम्ब है ? जाओ सुख से चन्दन-चर्चित चिता चुनो ॥१४॥
कह दो जिनको अब चलना है चलें स्वर्ग की ओर बढ़ें ।
मातृभूमि पर मरने वाले अरि सेना की ओर बढ़ें ॥१५॥
हिन्दू-मुसलमान सब मंदिर-मस्जिद छोड़ो चलो, चलो ।
मेरी आँखों के सम्मुख निज अभिलाषाएँ दलो, दलो ॥१८॥
('राखी' काव्य, प्रथम सर्ग, पृ० १५-१६)

कवि रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' हिन्दू-मुस्लिम एकता का 'राखी' काव्य में गीत गाते हैं। यही है गाँधी युग का साहित्य पर पड़नेवाला जबरदस्त प्रभाव। साहित्य-समाज का यही सम्बन्ध है। कभी साहित्य युग पुरुष को पैदा करता है और कभी युग पुरुष साहित्य को गति देकर नई दिशा देता है। अफ्रीका से लौटकर आने के बाद १९१५ ई० से देश में गाँधी की जो आँधी चली उसमें सारा देश बह गया, साहित्य तब अछूता कैसे रहता ? गाँधी ने अहिंसा के अमोघ अस्त्र से अंग्रेज-साम्राज्य के विरुद्ध एक अनोखी लड़ाई लड़ी और दुनिया को सत्य-प्रेम-अहिंसा का संदेश दिया।

प्रेमीजी के 'रक्षा-बन्धन नाटक की भांति 'राखी' खण्ड-काव्य मे भी रानी करुणावती ने मेवाड़ के एक विश्वसनीय मुसलमान वीर को हुमायूं के पास 'राखी' का उपहार देकर भेजा। गाँधी-युग का यह जबरदस्त प्रभाव है, जो साहित्य में अपना असर दिखा रहा था, देखिए कवि 'अज्ञात' की कल्पना—

मुसलमान सम्राट हुमायूं जिसका है नूतन दरबार ।
ज्ञात नहीं है यहाँ किसी को उनकी भाषा नियम प्रकार ॥५६॥

× × ×

बेटा मुसलमान कुल में है तुमने भी तो जन्म लिया ।
विधना ने भी बुद्धि और बल विद्या तुम्हें प्रदान किया ॥६२॥
और तुम्हें ही सचिवों ने भी हर प्रकार इस योग्य गुना ।
मैंने भी है, शक्ति तुम्हारी मन में विश्वसनीय गुना ॥६३॥
बेटा, क्या तुम राष्ट्र के लिए मेरी अन्तिम अभिलाषा ।
कर सकते हो पूर्ण, करें क्या हम तुमसे ऐसी आशा ॥६४॥

जो आज्ञा, माँ कौन भला जो कहला कर मेवाड़ी लाल।
पा केवल संकेत आपका धरे न बलिवेदी पर भाल ॥६५॥
(वही, पृ० ३२-३५)

'राखी' काव्य की रानी करुणावती हुमायूं के पास राखी का उपहार भेजती हुई कहती हैं—

स्वस्तीवाद, यह राखी लो अब शीघ्र करो बेटा प्रस्थान।
और सींचने हम जाती हैं शोणित से रण का मैदान ॥६६॥
('राखी' काव्य, प्रथम सर्ग, पृ० ३६)

कवि अज्ञात ने लिखा है—"राजमाता ने मेवाड़ के सैनिकों और सामन्तों को चित्तौड़ दुर्ग में आमंत्रित करके युद्ध संचालन का भार अपने ऊपर ले लिया। रानी करुणावती और छोटी रानी जवाहर बाई अश्वारूढ़ होकर युद्ध की तैयारी में जुट गईं। हुमायूँ के आने में बिलम्ब हो रहा था। दुर्ग के एक छोर की प्राचीर को आक्रमणकारी बहादुरशाह की तोप के गोलों ने तोड़ दिया था। उस मोर्चे की रक्षिका, महाराणा की छोटी रानी जवाहर बाई को लड़ते-लड़ते अपना प्राण त्यागना पड़ा" हुमायूं के आने में बिलम्ब के कारण महारानी करुणावती ने आत्मरक्षा का अन्तिम उपाय किया जौहर-व्रत—

ज्यों-ज्यों बिलम्ब हुआ क्षीण हो गई हृदय की आशा।
और अन्त में उन्हें दिखाई देने लगी निराशा ॥२८॥
जब उनको अपने बल की किञ्चित भी रही न आशा।
और न तब भी रणचण्डी की हुई शान्त पिपाशा ॥२९॥
मंदिर-मस्जिद समझ उन्होंने अग्नि-शिखा अपनाया।
उनके ही पद-चिह्नों पर चल लाखों ने प्राण गंवाया ॥३१॥
हरा शत्रु को भी तुम बल से शाह हुमायूं हारे?
विजयश्री मिलने पर भी खोये सब रत्न तुम्हारे ॥३२॥
जय तो प्राप्त हुई पर विजयी भुज में बंधी न 'राखी'।
होनी होकर रही, हुई कुछ नहीं तुम्हारी भाखी ॥३३॥
('राखी' काव्य, चतुर्थ सर्ग, पृ० १४४-१४६)

कवि रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' ने भूमिका में लिखा है—"इस जौहर व्रत में महारानी करुणावती के साथ तेरह हजार राजपूत बालाओं ने जौहर व्रत का पालन कर अग्नि में आत्माहुति दी। इस युद्ध में बत्तीस हजार सैनिकों ने अपने प्राण गंवाए। यह

हृदय विदारक घटना सं० १५६१ वि० की जेष्ठ कृष्ण द्वादशी को हुई थी। स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्म की रक्षा के लिए इस प्रकार के बलिदान संसार में अद्वितीय होते हुए भी चित्तौड़ लिए सामान्य हैं। पीछे हुमायूँ आया किन्तु समय पर न पहुँच सकने का पश्चाताप उसे जीवन भर बना रहा। उसने बहादुरशाह को चित्तौड़ से ही क्या, गुजरात से भी भगा कर दम लिया। चित्तौड़ के सिंहासन पर महारानी करुणावती के बालक-पुत्र उदय सिंह को उसके चाचा विक्रमादित्य के संरक्षण मे बिठाया गया। इस घटना का विस्तृत विवरण कर्नल टॉड लिखित 'राजस्थान के इतिहास' मे पाया जाता है।"

उदय सिंह को राणा बनाया गया, इसी उदय सिंह के पुत्र थे मेवाड केसरो राणा प्रताप—

चिरजीवी यह 'उदय' उन्हीं की थाती पास हमारे।
फिर कैसे चित्तौड़ निवासी सब कुछ खोकर हारे ॥४७॥
चलो चलो दुख दूर करो उसका अभिषेक मनाकर।
फिर चित्तौड़ विभव से भर दो राणा इसे बनाकर ॥४७॥
है देश प्रेम स्तुत्य जहाँ का वहाँ असम्भव क्या है?
हिन्दू-मुसलमान दोनों में ऐसा ऐक्य जहाँ है। ४८॥

('राखी' काव्य, चतुर्थ सग, पृ० १५०-१५१)

(उल्लेखनीय है कि प्रेमीजी के 'रक्षा-बन्धन' नाटक मे विक्रमादित्य को राणा सांगा ना पुत्र बताया गया है और रानी जवाहर बाई को उसकी माँ दर्शाया गया है, पर कवि अज्ञात ने उसे उदय सिह का चाचा बताया है।)

वर्माजी का 'चित्तौड़ की चिता' काव्य

डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'चित्तौड़ की चिता' खण्ड-काव्य की रचना मई १९२७ ई० मे नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश) मे की और इसका प्रकाशन 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद से दिसम्बर १९२९ ई० को हुआ। उन दिनों वर्माजी अपने नाम के साथ 'कुमार' उपनाम जोड़ा करते थे। वे एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद प्रोफेसर हो गए थे। आपने 'चित्तौड़ की चिता' काव्य मे मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह की वीरता, उनकी रानी कर्मवती या करुणा के द्वारा हुमायू को भेजी गई 'राखी' तथा 'जौहर' का वर्णन किया है।

कवि रामकुमार वर्मा ने पुस्तक के 'परिचय' में लिखा है—'चित्तौड़ की कथा इतिहास के पृष्ठों पर अंगारे की भांति रखी गई है, उसके विश्व-व्यापी सत्य में

कल्पना का अस्तित्व व्यर्थ सा है। किन्तु एक बात है, जिस प्रकार चन्द्र का सौंदर्य बादलों में घिरे रहने पर और भी अधिक बढ़ जाता है, उसी प्रकार कल्पना के बीच में सत्य का सौंदर्य और भी मर्मस्पर्शी तथा हृदय-द्रावक हो जाता है।' ('चित्तौड़ की चिता' काव्य, पृ० २)

रामकुमार जी हिन्दी के छायावादी-युग के कवि हैं। उनकी काव्यमयी भाषा में कल्पना की उड़ान पूर्ण रूप से दीख पड़ती है। आपने आगे लिखा है—'आज मैं चित्तौड़ की कहानी लिखने बैठा हूँ। उसी चित्तौड़ की, जो हमारी भारतीय ललनाओं के रक्त से लाल है। वहीं सुकुमार ललनाओं ने अपने कोमल हाथों से अपने ही लिए चिता सजाई थी।····किन्तु यह अगर सत्य है कि इस बलिदान का रक्त भारतीय सभ्यता को उस प्रचण्ड शब्दों में घोषित करता रहेगा, जिसके बल पर वह विश्व सभ्यता को पैरों तले कुचल देगा ? विश्व-संस्कृति में यह आत्म-बलिदान कुछ कम महत्व नहीं रखता। उस बलिदान में क्रान्ति और गौरव की वे चिनगारियाँ भरी हैं, जो स्वार्थी संसार के कोने-कोने में आग लगा सकती हैं। चित्तौड़ प्रदेश ने भारत को वह गौरव दिया है, जो अभी तक किसी देश को अपने प्रदेश से नहीं मिला। चित्तौड़ की चिता की ज्वालाएँ अब भी जब इतिहास के पृष्ठों पर चमकती हैं, तो भाव मूक हो जाते हैं, लेखनी काँप उठती है और आँखों से आँसुओं में भीगी हुई चिनगारियाँ निकलने लगती हैं।' (वही, पृ० २-३)

इतिहासकार लेनपुल का मत

'चित्तौड़ की चिता' में मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह की वीरता तथा उनके बाबर और इब्राहिम लोदी के साथ हुए युद्धों का वर्णन है। इस इतिहास को टॉड के 'राजस्थान' में विस्तार से देखा जा सकता है। बाबर और संग्राम सिंह के युद्ध का वर्णन करते हुए इतिहासकार लेनपुल इस प्रकार कहता है—

"The great Rana (Sangram Singh) of Chitore, the revered head of all the Rajput PrInces, commanded a vast army one hundred and twenty chieftains of rank with 80,000 horses and 500 war elephants followed him to the field. The Lords of Marwar and Amber, Gwalior, Ajmer, Chanderi and many more brought their retainers to this standards."

अर्थात राजपूत राजाओं के सुसम्मानित अधिपति चित्तौड़ के महाराणा (संग्राम सिंह) ने एक बहुत बड़ी सेना का संचालन किया। अस्सी हजार घोड़ो, पाँच सौ रण-गजो के सहित १२० सरदारों ने समरभूमि मे पदार्पण किया। मारवाड़ और अम्बर, ग्वालियर, अजमेर, चन्देरी के महाराणाओ तथा अन्य राणाओ ने भी अपनी-अपनी सेनाएँ उनकी (संग्राम सिंह) रण-ध्वजा के समीप खड़ो की। (वही, पृष्ठ ५-६)

बाबर और संग्राम सिंह का युद्ध

बाबर और संग्राम सिंह की सेना मे घमासान युद्ध हुआ, बाबर पराजित होकर पीछे हट गया और पुनः छलबल से युद्ध किया। राणा संग्राम सिंह घायल होकर रणभूमि से बाहर निकल गए। 'महाराणा यशप्रकाश' ग्रन्थ से ज्ञात होता है तथा टॉड ने भी इसका समर्थन किया है कि महाराणा अरावली के पहाडो मे चले गए। उन्होने प्रतिज्ञा की थी 'जब तक बाबर को युद्ध में पराजित न करूँगा, मैं चित्तौड़ नहीं लौटूँगा।' लेनपुल ने लिखा है कि युद्ध मे घायल होने के बाद राणा की मृत्यु हो गई, किन्तु अन्य इतिहासकार कहते है कि राणा युद्ध से अन्यत्र चले गए। बताया जाता है कि जब वे पुनः युद्ध मे जा रहे थे तो शरीर अस्वस्थ होने के कारण जनवरी १५२८ ई० मे उनकी मृत्यु हो गई। राणा के शरीर मे अस्सी घाव थे, एक आँख और एक पैर नही था, फिर भी वे देश को आजादी के लिए जोवन पर्यन्त लड़ते रहे।

महाराणा संग्राम सिंह ने कुल २८ विवाह किए थे, पर करुणा (कर्मवती) उनकी सबसे प्यारी रानी थी। महाराणा के ७ पुत्र हुए। मुहणोत नैणसी ने लिखा है कि महाराणा के करेमती (कर्मवती) से दो पुत्र हुए—विक्रमादित्य तथा उदय सिंह।

प्रस्तुत काव्य कृति 'चित्तौड़ की चिता' कवि की आरम्भ की रचना है। इसे कवि ने 'बाल्यकाल की रचना' कह कर स्वीकार किया है। इस खण्डकाव्य मे द्वादश सर्ग है। आरम्भ मे प्रस्तावना तथा अन्त मे उपसंहार है।

प्रस्तावना की २४ पक्तियो मे कवि ने कहा है—

अरे, भारत-भू के इतिहास !
अचल विद्युत-रेखा अनुरूप
दिखा गौरव प्राचीन अनूप
हृदय-मम उज्ज्वल करे स-हास। ('चित्तौड़ की चिता' पृ० १)

चित्तौड़ की दशा पर कवि को दुख है, वह कहता है—

हाय गौरव-गर्वित चित्तौर, हो गया दिव्य कान्ति से हीन।
हुए थे कैसे पुरुष प्रवीन, बने थे जो जग के सिरमौर।
('चित्तौड़ की चिता', प्रथम सर्ग, पृ० ५)

रानी करुणा हुमायूं के पास राखी भेजती है। वह दूत को समझा कर कहती है—

'शीघ्र ही दिल्ली-पति के पास,
अभी जाकर तुम करो प्रणाम····
\+ + +
इस तरह रक्षा का लो वचन,
बांधना यह रक्षा-बन्धन,
भगिनि-प्रेषित यह प्यारा धन,
बांधना इससे उनका मन।

(वही, नवम सर्ग, पृ० ७३)

रानी करुणा और उसकी सखियाँ जौहर-व्रत का पालन करती हैं और राजपूत केसरिया बाना पहन कर बहादुरशाह की सेना से जीवन-मरण का युद्ध करते हैं—

आज हम करतीं स्वर्ग-प्रयाण,
चिता-ज्वाला पर चढ़ सविनोद,
मातृ-भू की रक्षित हो गोद,
उसी का हो सदैव कल्याण।

(वही, द्वादश सर्ग, पृ० ११२)

कुँवर उदय को बूंदी भेज दिया गया और रानी करुणा अग्नि में जल कर भस्म हो गई। हुमायूँ समय पर नहीं पहुँचा, उसे पश्चाताप हुआ देर से पहुँचने पर—

वाम विधि का था उपहार, हुमायूं रोया बारम्बार····

(वही, उपसंहार, पृ० १३२)

कवि 'चित्तौड़ की चिता' काव्य के अन्त में कहता है—

चिता का जला हुआ कण शेष,
कहेगा मौन भाव के साथ,
आर्य-ललनाओं की शुभ गाथ,
करेगा गौरव-गर्वित देश।

('चित्तौड़ की चिता', द्वादश सर्ग, पृ० १२६)

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'स्वप्न-भंग' नाटक

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के ऐतिहासिक नाटकों में 'स्वप्न-भंग' का स्थान बड़ा

है। इस ऐतिहासिक नाटक में मुगलकाल की उस लोमहर्षक घटना का विस्तार से वर्णन किया गया है, जिसके द्वारा औरंगजेब ने बूढ़े पिता शाहजहाँ को बन्दी बना कर तथा अपने भाइयों की हत्या कर दिल्ली का मुगलिया तख्त अपने कब्जे में किया था। 'स्वप्न-भंग' नाटक की रचना १९४० ई० में हुई। इसका द्वितीय संस्करण १९४९ ई० में आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ।

दारा का मानवीय चरित्र

'स्वप्न-भंग' नाटक में दारा के मानवीय चरित्र का बड़ी सहृदयता से वर्णन किया गया है। दारा बादशाह शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र था और तख्त का उत्तराधिकारी युवराज था। वह अकबर की भांति हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थक था। उसके ऊपर उपनिषदों का बड़ा प्रभाव था। उसने ५० उपनिषदों का तथा 'गीता' का फारसी में अनुवाद किया था। वह भारतीय संस्कृति-सभ्यता की श्रेष्ठता का कायल था और तलवार की अपेक्षा प्रेम के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता का पक्षपाती था। उसकी इस नीति से कुछ मुल्ला और इस्लाम के कट्टरपन्थी असन्तुष्ट थे। औरंगजेब तलवार के बल पर हिन्दुओं के मन्दिरों को ध्वस्त कर भारत में इस्लाम का प्रचार करना चाहता था। उसको इस कट्टरता में, भाइयों मे विद्वेष की भावना को भड़काने में तथा दिल्ली के तख्त को गृह-कलह के द्वारा हथियाने मे शाहजहाँ की छोटी पुत्री शाहजादी रोशनआरा का बड़ा हाथ था। शाहजहाँ की बड़ी बेटी शाहजादी जहांनारा और दारा के विचारों मे बड़ी समानता थी। यही कारण है कि दारा और जहांनारा में भाई-बहन का प्रगाढ़ प्रम था। दूसरी ओर रोशनआरा और औरंगजेब में वैचारिक एकरूपता थी। जब बादशाह शाहजहाँ की बीमारी का समाचार औरंगजेब को मिला तो उसने औरंगाबाद से विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया और तख्त प्राप्ति के लिए उसने आगरे के लिए कूच किया। औरंगजेब ने सल्तनत प्राप्ति के इस अभियान में अपने भाई मुराद को भी साथ ले लिया। मुगल सल्तनत की इस अस्थिर स्थिति में बंगाल से शाहजहाँ के पुत्र शूजा ने भी अपने भाग्य को आजमाने के लिए कूच किया। औरंगजेब और मुराद की विद्रोही सेना का मुकाबला करने के लिए शाहजहाँ और युवराज दारा ने हिन्दू-सेनापतियों को इस विद्रोह को दबाने के लिए शाही सेना के साथ भेजा। उज्जैन के पास शिप्रा नदी के तट पर घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मेवाड़ के महाराणा जसवन्त सिंह ने दारा की ओर से युद्ध किया। रोशनआरा के षड़यन्त्र से तथा कासिम खाँ के धोखा देने से जसवन्त सिंह पराजित हुए और युद्ध से विरत होकर जोधपुर लौट गए। जसवन्त सिंह ने युद्ध में बड़ी वीरता का परिचय दिया, किन्तु षड़यन्त्र के कारण उन्हें युद्ध-क्षेत्र से अपने राज्य में लौटना पड़ा। इस घटना से उनकी महारानी महामाया ने युद्ध से भागे हुए अपने पति को जोधपुर के गढ़ में प्रवेश नहीं करने दिया। क्षत्रिय रमणी अपने पति को

युद्ध में हँसते हुए विदा करती है और पति के वीरगति प्राप्त करने पर स्वयं सती होती है, पर युद्ध से पलायन करनेवाले पति का वह मुंह तक नहीं देखना चाहती। ऐसे ही महत् गुण से महारानी महामाया अनुप्राणित थी।

'माधवी कंकण' और 'स्वप्न-भंग'

शाहजहाँ के बेटों के गृह-युद्ध और महाराज जसवन्त सिंह की घटना का टॉड के 'राजस्थान' में बड़ी ओजस्वी भाषा में वर्णन है। इन ऐतिहासिक घटनाओं पर बंगला-साहित्य के कई रचनाकारों ने अमर कृतियों की रचना की है। **रमेशचन्द्र दत्त** के **'माधवी कंकण'** उपन्यास में इस ऐतिहासिक घटना का विस्तार से वर्णन है। **रमेशचन्द्र दत्त** ने **'माधवी कंकण'** उपन्यास १८७७ ई० में लिखा था और हरिकृष्ण 'प्रेमी' की रचना बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक की है। उस काल-खण्ड में गाँधीजी के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तथा गाँधीजी के द्वारा हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास किया जा रहा था। प्रेमीजी गांधीजी के विचारों से प्रभावित थे। यही कारण है कि उनके अधिकांश नाटकों में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर काफी जोर दिया गया है। प्रेमीजी का 'रक्षा-बन्धन' नाटक हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए ही लिखा गया है। प्रेमीजी ने अपने नाटक 'स्वप्न भंग' को प्रसिद्ध साहित्यिक तथा गांधीवादी श्री हरिभाऊ उपाध्याय को समर्पित किया है। हरिभाऊजी भी गांधीजी की भांति हिन्दू-मुस्लिम एकता के हिमायती थे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

प्रेमीजी की इस मानसिकता को समझने के लिए यहाँ 'स्वप्न-भंग' नाटक की भूमिका के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं। नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'कुछ बातें' शीर्षक भूमिका में लिखा है—'भारतीय इतिहास के मुस्लिम-काल में दारा के समान वैभव और शक्ति की चरम सीमा तथा कंगाली और कष्ट की पराकाष्ठा तक पहुँचनेवाला पात्र दूसरा कोई नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उस महापुरुष ने अपने जीवन की बलि दे दी। उस समय दारा का जो स्वप्न-भंग हुआ वह आज तक भंग ही पड़ा है। मैंने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता के भाव पैदा करने का यत्न किया है।'

प्रेमी ने आगे लिखा है—'मेरा यह छठा नाटक है। मेरे पिछले 'स्वर्ण-विहान', 'पाताल विजय', 'रक्षा-बन्धन' 'शिवा-साधना' और 'प्रतिशोध' नामक नाटकों का हिन्दी जगत ने स्वागत कर प्रोत्साहित किया है।'

'स्वप्न-भंग' नाटक में पात्रों की संख्या कम है। दारा, औरंगजेब, शाहजहाँ,

छत्रसाल हाड़ा, जहांनारा, रोशनआरा, नादिरा आदि पात्रों का वर्णन किया गया है। ये ऐतिहासिक पात्र हैं। काल्पनिक पात्र प्रकाश और बीणा की नाटक में महत्वपूर्ण भूमिका है। शूजा, मुराद, महाराज जयसिंह, महाराज जसवन्त सिंह और महारानी महामाया का कथोपकथनों के माध्यम से वर्णन किया गया है। यह नाटककार की अपनी सूझ है। यद्यपि इतिहास के ये पात्र रंगमंच पर नहीं आते हैं, पर पूरे कथानक में छाये रहते हैं और उनके चरित्रों का पात्रों के सम्वादों के माध्यम से पूरी तरह चित्रांकन किया गया है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने द्वितीय संस्करण (१९४९ ई०) की ''स्वप्न-भंग' नाटक की भूमिका में लिखा है—'सुदीर्घ प्रतीक्षा के पश्चात 'स्वप्न-भंग' का द्वितीय संस्करण पाठकों के सम्मुख आ रहा है। इस बीच मेरे देश का मानचित्र और रूप-रंग बदल गया, आज यह पराधीनता-पाश से मुक्त है. किन्तु अनेक कुत्सित-संस्कार अब भी इसके प्राणों में बसे हुए हैं। इन कुत्सित-संस्कारों में से एक है साम्प्रदायिक-विद्वेष, जिसे दूर करने के प्रयत्न में महात्मा गांधी जैसे महामानव को प्राणों की आहुति देनी पड़ी। दारा का जो स्वप्न था, वही कुछ परिष्कृत रूप में महात्मा गाँधी का भी था और मेरे छोटे से प्राणों में भी वही स्वप्न है।'

तुष्टीकरण की राजनीति

साम्प्रदायिक एकता के लिए गाँधीजी ने प्रयास किए, किन्तु फिर भी देश का विभाजन हुआ। आजादी के बाद इस धार्मिक सहिष्णुता को धर्मनिरपेक्षता का जामा पहना कर उसे राजनीति का हथियार बनाया गया और आज भी सत्ता का धुरा इसी साम्प्रदायिकता के केन्द्र के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है। तुष्टीकरण और 'वोट की राजनीति' मे अपने हित-साधन के लिए साम्प्रदायिकता के हौवे को ढाल और कवच बनाया गया है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि मुसलमानों ने जब इस देश को अपना समझा और धर्म की संकीर्णता से ऊपर उठकर शासन किया तो उनकी प्रशंसा हुई और जिसने धर्म को तलवार के बल पर स्थापित करने की चेष्टा की उसकी निन्दा हुई। हुमायूं, अकबर, जहांगीर और शाहजहां तक के काल में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए जमीन पुख्ता की गई और औरगजेब ने उसे खत्म कर दिया। तभी उसे इतिहास मे मुगल सल्तनत का विध्वंशक कहा जाता है। आज भी जब तक देशप्रेम की भावना का लोगों में बीजारोपण नहीं होगा, जब तक मुसलमान भारत की माटी को अपनी माटी, अपनी मातृभूमि नहीं मानेंगे तब तक साम्प्रदायिक एक्य और

धर्म-निरपेक्षता का फतवा केवल फतवा ही बना रहेगा, यथार्थ प्रेम-भावना, एकता और देश-प्रेम प्रस्फुटित नहीं होगा। देश की माटी से जुड़ना ही सच्चा देश-प्रेम है। प्रेमीजी ने भी इस भावना को 'स्वप्न-भंग' में दिखाने की कोशिश की है।

'स्वप्न-भंग' नाटक के पहले अंक के छठे दृश्य में हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जो विचार व्यक्त किए गए हैं वे इस प्रकार हैं—

स्थान—आगरा का दीवानेखास

(तख्तेताऊस पर शाहजहां बैठा है। दाहिनी ओर बैठा हुआ है दारा शाहजहां को सहारा दिए हुए। उसके बाद छत्रसाल हाड़ा तथा अन्य राजपूत राजा और सरदार बैठे हैं। बाईं ओर दिलेर खाँ, खलीलुल्लाह खाँ आदि मुसलमान सरदार बैठे हैं।)

खलीलुल्लाह—शहंशाह !

शाहजहां—बोलो, खलीलुल्लाह खाँ, रुक क्यों गए ?

खलीलु—रुक इसलिए गया कि मेरी बात आपको अच्छी नहीं लगेगी।

शाहजहां—मुगल-शासन में अपने विचार प्रकट करने का अधिकार सबको है। आप तो साम्राज्य के स्तम्भ हैं।

खलीलु—साम्राज्य के स्तम्भ ! नहीं सम्राट, इन स्तम्भों की सम्राट को अब आवश्यकता नहीं रही। आवश्यकता थी बादशाह बाबर को, जिनके साथ हमारे बुजुर्ग मध्य एशिया से लेकर हिन्दुस्तान तक मारे-मारे घूमे थे। जबकि घोड़ों की पीठ ही हमारे और आपके पूर्वजों की समान रूप से सुख-सेज थी। अब वक्त बदल गया है····अब साम्राज्य को हमारी क्या जरूरत है ?

शाहजहां—यह तुम क्या कहते हो, खलीलुल्लाह खाँ !

खलीलु—मैं सच कहता हूँ, जहांपनाह ! कौन कहता है कि आज मुगल हिन्दुस्तान के शासक हैं। आज हम हिन्दुओं के आश्रित होकर जी रहे हैं, उनके हाथ की कठपुतली बने हुए हैं···आज हर बात में हम हिन्दुओं का मुँह ताकते हैं। हम पराधीन हैं।

शाहजहाँ—पराधीन ! प्रेम से मनुष्य को जीत लेना क्या पराधीनता है ? तलवार से साम्राज्य जीते जाते हैं लेकिन प्रेम से स्थिर रहते हैं। हिन्दुस्त न

के बादशाह को हिन्दू बन कर रहना होगा, न कि मुसलमान। उसे मुसलमान बन कर रहना होगा? (दिलेर खाँ की ओर देखते हुए) आप क्या कहते हैं दिलेर खाँ!

दिलेर खाँ—आप ठीक कहते हैं शहंशाह! महाप्राण अकबर ने हिन्दुओं और मुसलमानों की सम्मिलित शक्ति से सारे संसार में हिन्दुस्तान की विजय-पताका फहराने का जो स्वप्न देखा था वह कुछ अबोध मुसलमान सरदारों के संकुचित विचारों के कारण नष्ट हुआ जा रहा है।

दारा—और मुझे इस बात का खेद है कि यह विष का बीज औरंगजेब द्वारा मुसलमान सरदारों के दिलों में बोया गया है। जिस दिन पहली बार उसने बुन्देलखण्ड के कुछ मंदिरों को तुड़वाया था मुझे उसी दिन जान पड़ा था कि कोई मुगल-साम्राज्य की नींव के पत्थर उखाड़ रहा है।

('स्वप्न-भंग' नाटक, पृ० ३७-३८)

ऐसे ही कई उद्धरणों से 'स्वप्न-भंग' नाटक भरा पड़ा है, जिसमें दारा, जहांनारा हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास करते हैं और रोशनआरा तथा औरंगजेब विद्वेष की आग को प्रज्ज्वलित कर साम्प्रदायिकता का उन्माद फैलाते हैं। हमने इस अंश को यहाँ उधृत करने की आवश्यकता इसलिए महसूस की कि आज देश की वर्तमान स्थिति की प्रासंगिकता में शाहजहां और दारा का कथन बड़ा मौजू है। वस्तुतः हिन्दुस्तान हिन्दुओं का स्थान है और यहाँ हर नागरिक पहले हिन्दी याने भारतीय है, इसके बाद कुछ और। जब यह मानसिकता देशवासियों में पनपेगी तब सच्चा देश-भक्ति का सूर्योदय होगा और देश की एकता सुदृढ़ होगी। यहाँ हिन्दू का अर्थ धर्म विशेष से न लगा कर भारतीयता से लगाने की आवश्यकता है।

दारा के कथन को आगे बढ़ा कर उसी अंक और उसी दृश्य में शाहजहां कहता है—

'तुम ठीक कहते हो, दारा! गुण किस जाति में नहीं हैं, फिर हिन्दुओं की संस्कृति तो संसार की सबसे प्राचीन संस्कृति है। इस सुसंस्कृत देश पर हम मुसलमान बन कर राज्य नहीं कर सकते।

दिलेर खाँ—और उनकी संस्कृति न केवल पुरानी है बल्कि सबसे श्रेष्ठ भी। भरत और राम का प्रेम हमलोगों में कहाँ है? सम्राट की बीमारी

का समाचार पाते ही शुजा बंगाल से, औरंगजेब और मुराद दक्षिण से विद्रोह का झण्डा खड़ा कर चल पड़े हैं।

(वही, पृ० ३६)

प्रेमीजी ने दिखाया है कि दारा का स्वप्न था हिन्दू-मुस्लिम एकता की आधार-शिला पर मुगल-सल्तनत को स्थायित्व किया जाय और यूरोपियनों की मदद लेकर मुगल सल्तनत को नष्ट करने वाले औरंगजेब को सही रास्ते पर लाया जाये। उल्लेखनीय है कि शाहजहां के शासनकाल में यूरोप की कई जातियाँ भारत में व्यापार करने के लिए आ गई थीं और मुगल साम्राज्य की फूट का फायदा उठा कर सत्ता हथियाने की योजना में थी। शाहजहां के पुत्रों की पारस्परिक कलह में यूरोपियनों ने तोपों की मदद की और औरंगजेब के हाथों मुगल शासन हरहरा कर गिड़ पड़ा और अंग्रेज-शासन कालान्तर में स्थापित हो गया।

औरंगजेब की निर्ममता

औरंगजेब ने किस निर्ममता से अपने बड़े भाई दारा को काफिर करार देकर उसे कत्ल करवाया इसका कारुणिक दृश्य 'स्वप्न-भंग' नाटक में लेखक ने प्रस्तुत किया है। चूँकि दारा उपनिषदों का भक्त था, भारतीय संस्कृति का पृष्ठपोषक था और था हिन्दू-मुस्लिम एकता का जबरदस्त हिमायती। औरंगजेब ने कुरान शरीफ के खिलाफ बताकर उसे काफिर करार दिया और बेरहमी से कत्ल कराया। हुमायूँ के मकबरे के पास दारा को दफनाया गया। वहां जहांनारा खड़ी है और प्रकाश उसे सांत्वना देते हुए कहता है—

'आज एक महान स्वप्न-भंग हो गया। क्या राष्ट्रीय एकता के लिए एक महात्मा का बलिदान व्यर्थ जायगा? क्या दारा का स्वप्न सदा स्वप्न ही बना रहेगा? इस मकबरे में सोने वाली दो महान आत्माएँ पुकार-पुकार कर क्या कह रही हैं? हिन्दुस्तान क्या तू इस आवाज को सुनेगा? सुनकर कुछ करेगा?'

(जहांनारा सम्भलती है। प्रकाश उसे सहारा देकर उठाता है। जहांनारा खड़ी हो जाती है। तब प्रकाश उसे दारा की उन पाण्डुलिपियों का बण्डल देता है, जिनमें दारा के द्वारा फारसी में किया गया गीता और ५० उपनिषदों का अनुवाद था)

(पटाक्षेप)

('स्वप्न-भंग' नाटक, तीसरा अंक, सातवां दृश्य, पृ० १२७-१२८)

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'स्वप्न-भंग' नाटक को अरबी-फारसी से युक्त भाषा में न लिखकर खड़ी बोली हिन्दी में लिखा है। इससे नाटक मुगलकालीन वातावरण से थोड़ा

अछूता रह जाता है, क्योंकि नाटक मे वातावरण का विशेष महत्व होता है और खासकर ऐतिहासिक नाटकों में तो वातावरण का सर्वाधिक महत्व है। प्रेमीजी ने भूमिका मे अपनी सफाई इन शब्दों में दी है—'मैंने अन्य नाटकों में यह नियम रखा है कि हिन्दू पात्रों की भाषा हिन्दी तथा मुस्लिम पात्रों की भाषा उर्दू रखी जाये। यह नाटक उसका अपवाद है। इसके लगभग सभी पात्र मुसलमान हैं, उनकी भाषा उर्दू रखने से नाटक हिन्दी-भाषियों के काम का न रहता। उर्दू का मैं पंडित भी नहीं, इसलिए उस स्थिति में भूलें भी रह जातीं।' इस साफगोई के बाद 'स्वप्न-भंग' नाटक की भाषा के बारे मे और कुछ कहने की आवश्यकता नही, किन्तु नाटक का कथ्य आज भी प्रासंगिक है। इसी कारण हमने इस पर विस्तार से चर्चा की है।

प्रेमीजी का 'शिवा-साधना' नाटक

नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'शिवा-साधना' नाटक १९३७ ई० मे लिखा गया और हिन्दी भवन, लाहौर से उसका प्रकाशन हुआ। इस नाटक मे प्रेमीजी न महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी की देश-प्रेम और स्वातन्त्र्य-साधना का इतिहास के तथ्यो के आधार पर सुन्दर ढग से चित्रांकन किया है। 'शिवा-साधना' नाटक की प्रमुख घटनाएँ इतिहास के प्रकाश मे चमकती प्रतीत होती हैं। अफजल खाँ का शिवाजो द्वारा बंघनखे से मारा जाना, पूना पर बारात सजा कर शिवाजी का आक्रमण, शाइस्ता खाँ का खिड़की के रास्ते से भागना, आमेर के राजा जयसिह द्वारा शिवाजी को आश्वस्त कर सम्मान सहित औरंगजेब के दरबार मे लाया जाना और औरंगजेब द्वारा शिवाजी को अपमानित कर बन्दी बनाना, शिवाजी द्वारा मिठाई की टोकरी मे बेठ कर मुगल-बन्दी-गृह से निकल भागना आदि इतिहास की जानी-पहचानी घटनाएँ है, जिनका सम्यक रूप से नाटक मे वर्णन हुआ है। इनके अतिरिक्त नाटक मे अन्य इतिहास की घटनाएँ है यथा सिहगढ की विजय के समय तानाजी मालसुरे का आत्मोत्सर्ग। महाराष्ट्र मे इस वीर पुँगव की शहादत में आज भी यह प्रवाद है—'सिह गेला गढ़ आला।' समर्थ गुरु रामदास और माता जीजाबाई के चरित्र महाराष्ट्र की प्रेरणा रहे हैं और शिवाजी के लिए प्रकाश-पुँज। नाटक मे शिवाजी की शासन-व्यवस्था भी इतिहास-सम्मत है।

आलोचना

वैसे इतिहास और कल्पना के संयोजन से ऐतिहासिक नाटकों की रचना होती है। प्रेमीजी इसके अपवाद नहीं हैं। आपने भी इतिहास और कल्पना का अपने नाटको में भरपूर प्रयोग किया है। इतिहास की नीरस घटनाओं को कल्पना की तूलिका से

शतरंगी रंगों से भर कर नाटककार उसे सामाजिकों के आनन्द और प्रेरणा की वस्तु बनाता है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपनी नई उद्भावनाओं से ऐसे दृश्यों का अंकन किया है, जो इतिहास की छाया में अतिरंजित नहीं लगते। प्रसिद्ध आलोचक प्रो० जयनाथ 'नलिन' ने 'हिन्दी नाटककार' पुस्तक के पृष्ठ १२६ पर 'शिवा-साधना' नाटक की समीक्षा में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—'शिवा-साधना में प्रेमीजी की कल्पना सम्भवतः इतिहास का अधिकार छीनने के लिए मचल पड़ी है। इसमें नाटककार ने काल्पनिक घटनाओं का भी निर्माण कर लिया है। अफजल खाँ अपनी पत्नियों का बध करके शिवाजी से भेंट करने गया, यह घटना हमने इतिहास में नहीं पढ़ी। अफजल खाँ अपने समय का बहुत बड़ा वीर और तलवार का खिलाड़ी था। उसने अनेक युद्ध जीते थे, पर वह इतना जालिम और मूर्ख भी था, यह लेखक की कल्पना ही जान पड़ती है। शिवाजी के पिता शाहजी का बीजापुर के बादशाह द्वारा दीवार में चुनवाया जाना भी ऐसी ही कल्पित घटना है। शिवाजी के प्रति जेबुन्निसा (औरंगजेब की बेटी) का प्रेम पराजित मनोवृत्ति की तुष्टि मात्र ही है।'

आलोचना

प्रो० नलिन का कथन काफी हद तक सही है, पर हमे ऐसा लगता है कि जहाँ प्रेमीजी ने राजपूत चरित्रों को युद्ध में जाने के पूर्व अपनी पत्नियों और स्त्रियों को जौहर-व्रत में अर्पित कर अपनी वीरता दिखाई है, उसी भांति मुसलमान योद्धाओं ने स्वयं अपनी बेगमों का बध करने के उपरान्त जीवन-मरण के युद्ध मे भाग लिया है, जैसे राजपूत वीरांगनाओं का अग्नि-प्रवेश इस भावना को व्यंजित करता है कि पराजय की स्थिति मे राजपूत नारियों के अंग को विदेशी यवन स्पर्श नहीं कर सकें, कदाचित इसी भावना से प्रेरित होकर मुसलमान वीरों ने स्वयं अपनी बेगमों का बध कर युद्ध मे भाग लिया है। वे भी चाहते थे कि युद्ध में मृत्यु के बाद उनकी बेगमें विजेता के अधिकार में न चली जायें। जेबुन्निसा का प्रेम शिवाजी के प्रति था, या शिवाजी उसके प्रति आकर्षित थे, यह घटना हिन्दी के पाठकों के लिए अवश्य ही एक आश्चर्य में डालने वाली घटना है, किन्तु इसका सर्वप्रथम उल्लेख हमें बंगला के उपन्यासकार भूदेव मुखर्जी के 'अंगूरीय विनिमये' उपन्यास मे मिलता है। औपन्यासिक भूदेव मुखोपाध्याय ने अपने उपन्यास की रचना इतिहासकार केन्ट की पुस्तक 'रोमांस ऑफ हिस्ट्री' से प्रेरित होकर की थी। इसी घटना का उल्लेख हमें बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में मिलता है। 'अंगूरीय विनिमये' तथा 'महाराष्ट्र

जीवन-प्रभात' उपन्यास बंगला भाषा के उन्नीसवीं शताब्दी में रचित चर्चित उपन्यास हैं। प्रेमीजी ने बगला नाटकों मे प्रभावित होकर हिन्दी के गाँधी-युग में अपने नाटकों की रचना की है। उनपर गाँधीजी की हिन्दू-मुस्लिम एकता की मानसिकता का जबर-दस्त प्रभाव है। इसी वजह से प्रेमीजी ने जेबुन्निसा की प्रेम-कहानी का संकेत मात्र दिया है। जेबुन्निसा और शिवाजी की आसक्ति की इस घटना पर हम ने थोड़े विस्तार से 'अंगूरीय विनिमये' उपन्यास में चर्चा की है, जिसे 'बंगला उपन्यासों मे राजस्थान' अध्याय में देखा जा सकता है।

इतिहास और कल्पना का संयोजन

हरिकृष्ण 'प्रेमी' इतिहास के प्रति सजग थे और इतिहास की अनदेखी नहीं करना चाहते थे। इसे समझने के लिए 'शिवा-साधना' नाटक की भूमिका के 'ख' पृष्ठ पर लिखित उनके विचार यहाँ प्रस्तुत हैं—"शिवा-साधना' ऐतिहासिक नाटक है। नाटक में इतिहास की अक्षरशः रक्षा करना कठिन कार्य है, फिर भी सभी मूल घटनाएँ मैंने अक्षरशः इतिहास के अनुरूप अंकित को हैं, अपितु इतना भी कह सकता हूँ कि ऐतिहासिक घटनाओं के क्रम आदि का जितना ध्यान इस नाटक में रखा गया है शायद अब तक किसी ऐतिहासिक नाटक में न रखा गया होगा।"

आपने आगे लिखा है—'इस नाटक में औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा के शिवाजी के प्रति आकर्षित होने की घटना ही ऐसी है जिस पर ऐतिहासिक महानुभाव त्योरियाँ चढ़ा सकते हैं....।'

अपनी बात को पुरजोर बनाने के लिए प्रेमीजी ने भूमिका में श्री एन० एस० तकाखव (N. S. Takakhav) की 'The life of Shivaji Maharaj' पुस्तक से उद्धरण प्रस्तुत किया है। यह उद्धरण मराठा इतिहासकार श्री ए० केलुसकर की मूल मराठी पुस्तक में है—

श्री तकाखव (N. S. Takakhav) का अंग्रेजी वक्तव्य इस प्रकार है—

A more romantic incident is interwoven by certain writers in their virsion of Agra episode. It is related that on the occasion when Shivaji was invited to Darbar the ladies of the imperial Harem out of a natural curiosity to see with their own eyes one of whose romantic escapades they had heard so much, were seated behind the curtain. Among these ladies was an unmarried daughter of Aurangzeb, known as Zebunnisa Begum. The princes was twenty-

seven years of age. It is said that the Begum fell in love with Shivaji, though it was not perhaps merely a case of love at first sight. Already had she heard so much of his romantic account and his valour and efforts for the advancement of his country's liberties ...It is said she vowed a firm resolve that she would either wed Shivaji or remain a virgin for life"

प्रेमीजी ने 'शिवा-साधना' में इसी से प्रेरित होकर जेबुन्निसा के शिवाजी-प्रेम को अंकित किया है। जब शिवाजी को मुगल दरबार में पहली बार जेबुन्निसा देखती है तो उनके अद्भुत शौर्य और व्यक्तित्व से वह विमुग्ध होकर मूर्छित हो जाती है। इस घटना का उल्लेख तथा जेबुन्निसा की मानसिक स्थिति का वर्णन 'शिवा-साधना' के तीसरे अंक के आठवें दृश्य में तथा चौथे अंक के पहले दृश्य एवं चौथे दृश्य में उल्लिखित है।

बंगला का प्रभाव

बंगला के नाटककारों तथा उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में इतिहास के बहिर्भूत ऐसी काल्पनिक घटनाओं का वर्णन किया है, जिनका इतिहास से मेल नहीं खाता। रवीन्द्रनाथ के अग्रज ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने 'अश्रुमति' नाटक में राणा प्रताप की पुत्री अश्रुमति का अकबर के पुत्र सलीम से प्रेम दिखाया है। इसकी कटु आलोचना हिन्दी प्रदेशों में ही नहीं, बंगाल में भी हुई। हमने अपनी प्रतिक्रिया 'अश्रुमति' नाटक की आलोचना के प्रसंग में की है। इसी प्रकार नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय ने 'महाराणा प्रताप सिंह' नाटक में अकबर की बहन दौलतउन्निसा एवं उसकी पुत्री मेहर-उ-न्निसा का प्रताप के भाई शक्ति सिंह के प्रति प्रणय दिखाया है। दौलतउन्निसा तो शक्ति सिंह के साथ विवाह कर लेती है पर मेहर-उ-न्निसा अपने गुप्त प्रेम को हृदय मे छिपाये राणा प्रताप के अरण्य-शिविर में आती है। राणा प्रताप की पुत्री इरा के साथ वहाँ काफी दिन रहती है। प्रताप उसे बेटी का स्नेह देते हैं। चूंकि हिन्दी में टॉड के 'राजस्थान का प्रभाव बंगला-रचनाकारों के माध्यम से आया। इसलिए स्वाभाविक है कि हिन्दी की रचनाओं में भी जाने-अनजाने उन घटनाओं का समावेश हो गया, जो बंगला की कृतियों में था।

हम यहाँ अपनी बात की पुष्टि में नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' को उद्धृत करना चाहेंगे। प्रेजीजी ने 'शिवा-साधना' की भूमिका के पृष्ठ 'ग' पर अपना तर्क देते हुए जेबुन्निसा-शिवाजी प्रेम-प्रसंग में लिखा है—'श्री तकाखव के कथन से पाठक यह जान सकेंगे कि यह घटना केवल मेरे ही मस्तिष्क की कल्पना नहीं है और फिर नाटकों में तो दो-एक पात्रों का चरित्र सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता

है। द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटकों में ऐसा अनेक जगह किया है और उन्होंने इतिहास के प्रति अपने इस अपराध के लिए कभी सफाई पेश नहीं की।' जाहिर है प्रेमीजी भी जेबुन्निसा प्रेम-प्रसंग के प्रति आकर्षित हुए तो आश्चर्य क्या ? इतिहास के रोमांस में ऐसे प्रेम-प्रसंग नाटक को रोचक तो बना ही देते हैं।

साम्प्रदायिकता का आरोप

कुछ इतिहासकारों ने राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी के चरित्रों में साम्प्रदायिकता की बू भरने की चेष्टा की है, किन्तु 'बंगभंग' की मानसिकता के बाद हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को दर्शाने के लिए बंगला-भाषा के रचनाकारों ने इस दिशा में पहल की और ऐसी घटनाओं को दिखाया, जिससे दोनों सम्प्रदायों में कटुता के स्थान पर प्रेम-सौहार्द्र बढ़े। हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना हमे गाँधी-युग में मिलती है। द्विजेन्द्रलाल राय 'बंग-भंग' की मानसिकता में रचना-प्रक्रिया कर रहे थे और हरिकृष्ण 'प्रेमी' गाँधी-युग की मानसिकता में। स्वाभाविक है कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को देशवासियों में पुख्ता करने के लिए 'रक्षा-बन्धन', 'स्वप्न-भंग', 'आहुति' और 'शिवा-साधना' ऐतिहासिक नाटकों की रचना की। आपने शिवाजी के उदार व्यक्तित्व को 'शिवा-साधना' में चर्चित किया है, जिसमें मुसलमानों के प्रति उनका विद्वेष नहीं है, वे तो धार्मिक सहिष्णुता के पृष्ठ-पोषक थे। उन्होंने मस्जिदों को कभी कोई क्षति नहीं पहुंचाई। जहाँ कहीं भी उन्हें कुरान-शरीफ की पुस्तक मिली, उसे उन्होंने आदर के साथ किसी मौलवी या काजी के पास भिजवा दिया। प्रेमीजी ने 'शिवा-साधना' की भूमिका में पृष्ठ 'क' पर लिखा है—'शिवाजी के चरित्र को साहित्यकारों ने जिस रूप में अंकित किया है उससे हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदय दूर होते हैं। इसके विपरीत मैंने इस नाटक में बताया है कि शिवाजी केवल महाराष्ट्र में नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष में 'जनता का स्वराज्य' स्थापित करना चाहते थे। उनके हृदय में मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष न था। मेरी इस धारणा की इतिहास पुष्टि करता है। आधुनिक इतिहासकारों ने भी इस बात को एक स्वर से माना है कि शिवाजी ने किसी व्यक्ति को केवल इसलिए दण्ड नहीं दिया कि वह मुसलमान है। ...उनकी सेना में मुसलमान भी थे।'

प्रेमीजी ने 'शिवा-साधना' नाटक के प्रथम अंक के चौथे दृश्य में शिवाजी की राष्ट्रीय उच्च भावना को इस प्रकार चित्रित किया है—

(रायगढ़ में शिवाजी और मोरेपंत पिंगले परामर्श कर रहे हैं)

मोरेपंत पिंगले—बीजापुर की पठान सेना के ७०० पदच्युत सिपाही आपकी सेवा में नौकरी करने आये हैं। उनकी किस्मत का फैसला हो जाना चाहिए।

शिवाजी—मोरेपंत, आप तलवार के धनी तो हैं ही, कलम के भी शूर हैं। बुद्धि और बल दोनों में सम्पन्न समझ कर ही मैंने आपको पेशवा बनाया है। आपकी राय में उनके सम्बन्ध में क्या करना चाहिए ?

मोरेपंत—पठान शूर-वीर होते हैं, विश्वास-पात्र भी होते हैं, किन्तु उनकी कट्टरता उन्हें किसी दिन कहाँ बहा ले जाए, इसका क्या ठिकाना ?

शिवाजी—किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायेगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली की बादशाहत की जड़ उखाड़ना चाहता हूँ, वह इसलिए नहीं कि वे मुस्लिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक-तन्त्र हैं, लोकतन्त्र को कुचल कर चलने के आदी हैं।

मोरेपंत—तो आपकी राय में इन पठानों को अपनी सेना में भरती कर लेना चाहिए ?

शिवाजी—क्यों नहीं ? यदि हम केवल हिन्दुओं का संग्रह करेंगे तो स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा। सबको समान शान्ति और सुख देनेवाला शासन संस्थापित न हो सकेगा। जिसे स्वराज्य प्राप्त करना है उसे चाहिए कि वह वर्णों और सभी जातियों के लोगों को अपने-अपने धर्म के अनुसार चलने की स्वतंत्रता देकर उनका संग्रह करे। आप जानते हैं, मैंने कभी किसी मस्जिद की एक ईंट को भी आँच नहीं आने दी। जहाँ मुझे कुरान मिला है, मैंने उसे आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहुँचा दिया है। सर्व-साधारण की स्वतंत्रता की साधना करने वाले के हृदय में धार्मिक असहिष्णुता क्यों ?

मोरेपंत—वास्तव में आप ठीक कहते हैं। आपके विचारों की उदारता हमारी स्वराज्य-साधना का सर्वोच्च शिखर है।

('शिवा-साधना' नाटक, प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य, पृ० १२-१३)

शिवाजी की राष्ट्रीयता

शिवाजी की साधना को नाटककार ने युग-बोध से जोड़ कर उसे गाँधीजी की स्वराज्य-साधना से मिला दिया है। उक्त कथोपकथन से ऐसा प्रतीत होता है कि १७वीं १८वीं सदी के शिवाजी की वाणी में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक को गाँधीजी की आवाज अनुगुँजित है। 'स्वराज्य' शब्द और 'क्रान्ति' शब्द गाँधी-युग की देन हैं। इसी काल-खण्ड में प्रेमीजी अपने ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर रहे थे। जैसे राणा प्रताप की सेना मे पठान मुसलमान थे, तोपची थे, वैसे ही शिवाजी की सेना मे भी पठान-मुसलमान थे। तब राणा प्रताप और अकबर के युद्ध को या शिवाजी-औरगजेब के युद्ध को साम्प्रदायिक-युद्ध से कैसे संज्ञायित किया जा सकता है ?

प्रथम अक के चौथे दृश्य मे ही शिवाजी के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत करने के लिए एक मुसलमान सुन्दरी को शिवाजी के समक्ष पेश किया जाता है, जिसे चरित्र के धनी शिवाजी 'माँ' कह कर सम्बोधित करते हैं और उसे उसी प्रकार सम्मान सहित निरापद स्थान मे पहुँचवाने की व्यवस्था करते हैं जैसे जयशंकर प्रसाद के 'महाराणा के महत्व' काव्य मे राणा प्रताप अब्दुर रहमान की बेगमो को सम्मान सहित खानखाना के हरम मे पहुँचवाते है। वे अपने पुत्र अमर सिंह को नारी जाति का सम्मान करने की शिक्षा देते हैं। यहाँ प्रस्तुत है 'शिवा-साधना' नाटक की घटना—

(आवाजी सोनदेव कल्याण के शासक मौलाना अहमद एवं उसकी सुन्दरी पुत्र-वधू को बन्दी अवस्था में लेकर आता है। सिपाही कैदियो को रस्सो से बांधे हुए है।)

सोनदेव—(झुक कर नमस्कार करके) महाराज आपके दास सोनदेव ने कल्याण प्रदेश को जीत लिया है। ये वहाँ के शासक मौलाना अहमद हैं और यह है इनकी पुत्र-वधू। इन्हें आपकी सेवा में ···

शिवाजी—मौलाना अहमद को कारागार में ले जाओ।

(सिपाही मौलाना अहमद को ले जाते हैं।)

सोनदेव—और महाराज, यह पृथ्वी का चाँद, इसे आप अपनी सेवा में····

शिवाजी—यह क्या कहते हो सोनदेव ! (कुछ सोचकर) अच्छा इसका घूँघट खोल दो।

(सोनदेव युवती का घूँघट खोल देता है। युवती के रूप से सभी विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं।)

सोनदेव—यह आपकी····

युवती—(भयभीत होकर काँपते स्वर में) मैं नहीं जानती थी कि शिवाजी के

दरबार में....

शिवाजी—डरो मत, माँ! डरो मत! शिवाजी विलासी कुत्ता नहीं है। तुम्हें देख कर मेरे हृदय में केवल यह भाव उठ रहा है कि यदि तुम मेरी माँ होती तो क्या विधाता ने मुझे सौंदर्य की दौलत देने में इतनी कंजूसी की होती! तुम्हारे रूप की चकाचौंध से मेरी आँखों ने नया प्रकाश पाया है। कितना भव्य, कितना दिव्य! यह सौंदर्य तो पूजने की वस्तु है. माँ! सोनदेव! मैं तुमसे बहुत असंतुष्ट हूँ। तुम हृदय में इतना कलुष लेकर एक कुल-वधू को मेरे पास लाए हो। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि....

(जीजाबाई और सईबाई (शिवाजी की प्रथम पत्नी) का प्रवेश)

जीजाबाई – ठहरो बेटा, उसे दण्ड न दो। इसमें उसका नहीं, तुम्हारी मां का अपराध है। मैंने ही इसे भेजकर तुम्हारी परीक्षा ली है। जो स्वराज्य-साधना का नेतृत्व करता है, कांटों का ताज सिर पर रखता है, वह यदि पर-नारी का मान करना नहीं जानता, तो उससे अधम कौन हो सकता है। मैंने तुम्हारे बाहु-बल को खूब परख कर देखा था। हृदय के शील की कठिन परीक्षा और लेनी थी, वह भी आज ले ली। अब मुझे विश्वास है, संसार की कोई शक्ति तुम्हें पदच्युत न कर सकेगी। जो ऐसे सौंदर्य को ठुकरा सकता है, वह स्वर्ग को भी लात मार सकता है। धन्य हो बेटा! आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है।

शिवाजी—मोरेपंत, इस युवती को उत्तम वस्त्र, आभूषण देकर अत्यन्त आदर-पूर्वक विदा करो। इसको यहां आने में जो आत्म-ग्लानि हुई, जो कष्ट उठाना पड़ा, उसके प्रतिफलस्वरूप इसके श्वसुर को भी बन्धन-मुक्त कर दो।

(युवती को लेकर मोरेपंत व सोनदेव का प्रस्थान।)

(वही, पृ० १३-१५)

शिवाजी का भगवा-ध्वज

असल में माता जीजाबाई और समर्थ गुरु रामदास के द्वारा ही शिवाजी के उच्च

कोटि के चरित्र का निर्माण हुआ। दोनों ने शिवाजी के हृदय में देश-प्रेम और आजादी की ज्वाला प्रज्ज्वलित की। शिवाजी ने गुरु रामदास के प्रति अपनी असीम गुरु-भक्ति का परिचय देते हुए अपने राज्य को उनकी सेवा में अर्पित कर दिया, किन्तु वीतरागी, संन्यासी और सच्चे गुरु रामदास को इस सांसारिक मायामोह के प्रति कोई लगाव नहीं था। उन्होंने शिवाजी के राज्य को उन्हें वापस लौटा दिया। शिवाजी ने गुरु से उनकी पादुकाएँ ले लीं और कहा कि वे संन्यासी गुरु रामदास की पादुकाओं को शासनकर्त्ता का प्रतीक मानकर राज्य-संचालन करेंगे। यही कारण है कि शिवाजी का ध्वज भगवा-हो गया, गेरुये संन्यासी समर्थ गुरु रामदास की निष्काम-कर्मयोग की साधना का प्रतीक है भगवा-ध्वज।

रामदास—शिव ! शिव ! मुझ जैसा संन्यासी राज्य और सम्पत्ति लेकर क्या करेगा ? भगवान की भक्ति ही संन्यासी को सम्पत्ति है और जन-सेवा ही उसका राज्य। तुम्हारा राज्य और तुम्हारी सम्पत्ति तुम्हीं को सम्भालनी चाहिए।

शिवाजी—नहीं गुरुदेव, मैं आपकी यह बात नहीं मानूंगा। यदि आप स्वयं अपने हाथ में शासन-सूत्र न लेना चाहें तो मुझे अपनी पादुकाएँ दे दीजिए। जिस भांति भरत ने राम की अनुपस्थिति में उनकी पादुकाओं को सिंहासन पर रख कर उनकी ओर से राज्य किया था, उसी भाति मैं भी आपके संन्यास की रक्षा करते हुए लोक-सेवा का यत्न करूँगा। आज से महाराष्ट्र का झण्डा भी भगवे रंग का होगा, क्योंकि अब यह राज्य राजा शिवाजी का नहीं भगवे वस्त्र धारण करने वाले संन्यासी रामदास का है।

('शिवा-साधना' नाटक, तीसरा अक, चौथा दृश्य, पृ० ७०)

कहा जाता है कि शिवाजी भी मेवाड के सिसोदिया वंश के थे। उन्होने अपने इस परिचय को नाटक मे कई स्थान पर दोहराया है। जिस प्रकार राणा प्रताप अपने को एकलिंग का दीवान कहते थे और राज्य-प्रशासन करते थे, वैसे ही शिवाजी ने भी संन्यासी रामदास गुरु का शिष्य बनकर निष्काम भाव से महाराष्ट्र-राज्य की सेवा की और उसकी आजादी के लिए त्याग-बलिदान स्वीकार किया। शिवाजी के बाल सखा तानाजी मालुसुरे ने प्राणो का बलिदान दे कर सिंहगढ़ पर विजय हासिल की। सिंहगढ़ पर मुगलो का झण्डा फहरा रहा था, विजय के बाद वहाँ जीजाबाई ने महाराष्ट्र का भगवा ध्वज फहराया। झण्डोत्तोलन के साथ सभी ने समवेत स्वर में राष्ट्रगीत गाया और

तानाजी की मृतात्मा के लिए शोक प्रकट किया गया। राष्ट्रगीत इस प्रकार है—

भगवा झण्डा जग से न्यारा ! है हमको प्राणों से प्यारा !
इसे प्राण देकर पाया है, हृदय-रक्त से रंगवाया है,
यह अमरत्व लिए आया है, राष्ट्र-गगन का यह है तारा,
भगवा झण्डा जग से न्यारा !
इसे देख होते मतवाले, पीते हैं साहस के प्याले,
माँ पर शीश चढ़ानेवाले, यह है नव-जीवन की धारा,
भगवा झण्डा जग से न्यारा !
तन मन-प्राण भले लुट जावें, इसका मान न जाने पावे,
अखिल विश्व में यह फहरावे ! यह भारत-वंश का उजियारा !
भगवा झण्डा जग से न्यारा !

('शिवा-साधना' नाटक, चौथा अंक, सातवाँ दृश्य, पृ० १२५)

भगवा-ध्वज और रवीन्द्र की 'प्रतिनिधि' कविता

शिवाजी को भगवा-ध्वज अपने गुरु रामदास से मिला था। इसका उल्लेख अकवार्ड साहब ने 'मराठा इतिहास' से उपकथा लेकर 'भगवा-ध्वज' अंग्रेजी कविता में किया है। उसीका बंगानुवाद विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने 'प्रतिनिधि' कविता में किया। रवीन्द्र की 'प्रतिनिधि' कविता 'रवीन्द्र रचनावली' के सप्तम खण्ड में है, जिसमें उनकी काव्य पुस्तक 'कथा उ काहिनी' की कविताएँ संकलित हैं। 'प्रतिनिधि' कविता की रचना कवि ने १६०४ बंगाब्द में की थी।

शिवाजी को अपने गुरु रामदास से 'भगवा-ध्वज' कैसे प्राप्त हुआ इसका वर्णन रवीन्द्र ने 'प्रतिनिधि' कविता में इस प्रकार किया है—

बसिया प्रभातकाले सेतारार दुर्गभाले
शिवाजी हेरिला एक दिन
रामदास गुरु तांर भिक्षा मागि द्वार-द्वार
फिरि छेन जेन अन्नहीन।
भाविला, एकी—ए काण्ड ! गुरुजिर भिक्षाभाण्ड !
घरे जांर नाई दैन्यलेश !
सब जांर हस्तगत राजेश्वर पादानत,
तांरो नाई बासनार शेष ! ('प्रतिनिधि' कविता, पृ० ४०२)

शिवाजी समर्थ गुरु रामदास को भिक्षाटन करते हुए सतारा दुर्ग से जब देखते हैं तो उनके मन में अनुशोचन होता है, वे सोचते हैं—'गुरुजी व्यर्थ में फूटे हुए पात्र के जल से प्यास बुझाना चाहते हैं।' फिर सोचते हैं 'देखें उनको झोली में कितना कुछ देने से वह भरेगी।' तभी उन्होंने लेखनी उठाई और पता नहीं पत्र में क्या लिखा। उस पत्र को शिवाजी ने अपने विश्वस्त बालाजी को बुला कर दिया और कहा—'गुरुजी जब दुर्ग के पास भिक्षा मांगने आयें तो यह पत्र उनके चरणों में रख देना।'

गुरुजी अपनी धुन में भजन गाते घूम रहे थे। रास्ते में कितने ही पथिक थे, अश्वारोही थे, पर गुरु रामदास जी गा रहे थे—'हे जगदीश! हे शकर! तुमने सबको घर-गृहस्थी दी है और मुझे केवल रास्ते का पथ दिया है जहाँ मैं तुम्हारा गुण-गान करता फिर रहा हूँ। अन्नपूर्णा माँ! तुम तो शिव की शक्ति हो, तुम्हारी कृपा से सारा चराचर सुखी है। मुझे तुमने भिखारी बनाया है, मुझे माँ से भीख मागनी पड़ रही है।' इस प्रकार अलियों-गलियों में, रास्ते-घाटों मे भजन गाते हुए स्वामी रामदास ने मध्याह्न में स्नान किया और दुर्ग के पास आए।

तभी बालाजी ने दुर्ग के फाटक से बाहर आकर गुरुजी के चरणों में शिवाजी का पत्र रख दिया। रामदासजी ने कौतूहलवश पत्र को पढा, पत्र में लिखा था—'शिवाजी गुरुजी के चरण-कमलों में अपना राज्य-राजधानी-धन-सम्पत्ति अर्पित करते हैं।'

समापन करि गान सारिया मध्याह्न-स्नान
दुर्ग द्वारे आसिया जखन—
बालाजी नामिया तांरे दांडाइलो एक धारे
पदमूले राखिया लिखन।
गुरु कौतुहल भरे तूलिया लइला करे,
पड़िया देखिला पत्रखानी। (वही, पृ० ४०२)

दूसरे दिन गुरु रामदास महाराज शिवाजी के पास आये। उन्होंने शिवाजी से कहा—'तुमने मुझे राज्य अर्पण किया है, पर वह मेरे लिए किस काम का? मुझे तो इससे कोई बड़ी वस्तु चाहिए।' शिवाजी ने विनम्रता से कहा 'आपके चरणों में मैं सहर्ष प्राणोत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हूँ।' गुरुजी बोले—'अगर ऐसा संकल्प है तो यह झोली लो और मेरे साथ भिक्षाटन में चलो।'

'राज्य यदि मोरे देवे की काजे लागिबे एरे—

कोन् गुण आछे तव गुनी ?'
'तोमारि दासत्वे प्राण आनन्दे करिबो दान'
शिवाजी कहिला नमि तारे ।
गुरु कहे—'एई झूलि लहो तबे स्कन्धे तूलि,
चलो आजि भिक्षा करिवारे ।' (वही, पृ० ४०३)

शिवाजी गुरु रामदास के साथ भिक्षा-पात्र लेकर निकल पड़े। महाराज शिवाजी को भिखारी के वेश में देख कर बच्चे ही नहीं बूढ़े भी चकित रह गए। लोगों ने सहज-भाव से कांपते हाथों से अपने राजा को भिक्षा-दान दिया। लोग सोचते थे—'जिसके पास इतना ऐश्वर्य है, हमारे उस राजा को भी दान पाने की भूख है।' कुछ ने कहा—'यह महत लोगों की महती लीला है।'

इस प्रकार गुरु और शिष्य ने भिक्षाटन किया और अपराह्न में एक स्थान में आकर नदी में संध्या-स्नान किया और भिक्षा में मिले अन्न से भोजन पकाकर प्रसाद ग्रहण किया, शिष्य को भी गुरुजी ने प्रसाद दिया।

अवशेषे दिवसान्ते नगरेर एक प्रान्ते
नदी कूले संध्या-स्नान सारि—
भिक्षा अन्न रांधि सुखे गुरु किछु दिला मुखे
प्रसाद् पाइलो शिष्य तारि (वही, पृ० ४०३)

प्रसाद ग्रहण करने के बाद शिवाजी ने गुरु से कहा—'आपने मेरे गरूर (अहं) का नाश कर दिया, मुझे भिखारी बना दिया। अब आपका क्या आदेश है ? मैं आपके प्रत्येक दुःख को अपना दुःख बनाना चाहता हूँ, जिससे आपको मानसिक शान्ति मिले।'

गुरु रामदास ने हर्षित नेत्रों से कहा—'अगर तुम्हारे हृदय में यह भाव जग गया है तो प्रतिज्ञा करो। मैं अपना राज्य तुम्हें लौटाता हूँ। अब तुम मुझ भिखारी के प्रतिनिधि' होकर राज्य करो। तुमको राजाधिराज होते हुए भी राज-सुख से वीतरागी होना होगा, दीन और उदासीन होना होगा। तुम केवल राज-धर्म का पालन करोगे। राज्य पाकर भी राज्यहीन रहोगे।' फिर रुककर गुरुजी ने कहा—'वत्स अब तुम मेरे आशीर्वाद के रूप में मेरा गेरुआ उत्तरीय ग्रहण करो! मुझ संन्यासी-बैरागी के उत्तरीय को राज्य की पताका बनाओ। यही पताका निष्काम-वीतरागी-कर्मवीर राजा शिवा के राज्य का चिह्न होगा। राज्य का सुख-भोग प्रजाहित, देश-हित में होगा, तुम केवल

'प्रतिनिधि' के रूप में अहर्निश सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय का यज्ञानुष्ठान करोगे।'

शिवाजी की गैरिक पताका (भगवा ध्वज) का यही गूढ़ार्थ है, यही रहस्य है, जो उन्हें अपने गुरु रामदास से भिक्षा के रूप में मिला—

राजा तबे कहे हासि, नृपतिर गर्व नाशि
करियाछो पथेर भिक्षुक—
प्रस्तुत रयेछे दास आरो किबा अभिलाष,
गुरु काछे लोबो गुरु दुख।'

× × ×

गुरु कहे 'तबे शोन् करिलि कठिन पण
अनुरूप निते होबे भार—
एई आमि दिनू कये मोर नामे मोर होये
राज्य तुमि लहो पुनर्बार।
तोमारे करिलो विधि भिक्षुकेर प्रतिनिधि
राजेश्वर दीन उदासीन।
पालिबे जे राजधर्म जेनो ताहा मोर कर्म,
राज्य लये रबे राज्यहीन।

× × ×

'वत्स तबे एई लहो मोर आशीर्वाद सह
आमार गेरुया गात्रबास
वैरागीर उत्तरीय पताका करिया नियो
कहिले गुरु रामदास।

(रवीन्द्र की 'प्रतिनिधि' कविता, पृ० ४०४)

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटक में शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास द्वारा भगवा ध्वज देने और रवीन्द्रनाथ की उक्त 'प्रतिनिधि' कविता में काफी समानता है। इस प्रकार प्रेमीजी ने 'शिवा-साधना' नाटक में छत्रपति शिवाजी की सभी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किया है। यह नाटक पाँच अंकों में लिखा गया है। प्रेमीजी के नाटकों में पात्रों की संख्या सीमित ही रहती है, पर 'शिवा-साधना' नाटक में पात्रों की भरमार है। ३४ पुरुष पात्र हैं तथा ६ स्त्री पात्र हैं। लेखक ने पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग

किया है। मुसलमान पात्रों ने सम्वादों में अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू का प्रयोग किया है। नाटक के अन्त में शब्दार्थ देकर आपने विद्यार्थियों और आप पाठकों के लिए इसे सुगम बना दिया है। हिन्दी नाटककारों में केवल प्रसादजी ही एक मात्र ऐसे नाटककार हैं, जिनके नाटकों में उर्दू भाषा के शब्दों का इस्तेमाल नहीं हुआ है, किन्तु यह भी एक तथ्य है कि प्रसादजी ने अपने नाटक हिन्दू-काल के कथानकों पर लिखे हैं जबकि प्रेमीजी के सभी ऐतिहासिक नाटक राजपूत-मुसलमान काल की कथाओं पर आधारित हैं।

प्रेमीजी ने पात्रों के सम्बन्ध में नाटक की भूमिका के पृष्ठ 'घ' पर लिखा है—'शिवा-साधना' नाटक में पात्र-सूची पर्याप्त लम्बी हो गई है, लेकिन इससे नाटक के गठन में कोई शिथिलता नहीं आई, क्योंकि अनेक पात्र ऐसे हैं, जो एक-एक या दो-दो दृश्यों में आते हैं। मुख्य पात्र शिवाजी, जीजाबाई, रामदास और औरंगजेब हैं, जिनका अस्तित्व पहले अंक से अन्तिम अंक तक बना रहता है। इन्हीं पात्रों के कारण नाटक के दृश्य अन्त तक एक सूत्र में बंधे हुए हैं।'

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'प्रतिशोध' नाटक

श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'प्रतिशोध' नाटक की रचना १९३७ ई० में की। यह नाटक हिन्दी के राष्ट्रीय कवि माखनलाल चतुर्वेदी को समर्पित किया गया है। हरिकृष्ण 'प्रेमी' का जन्म गुना (ग्वालियर), बुन्देलखण्ड और मालवा की सन्धि-सीमा पर है। प्रेमीजी ने बुन्देलखण्ड के वीर छत्रसाल के जीवन पर 'प्रतिशोध' नाटक लिखा है, जिसमें छत्रसाल की वीरता, धीरता और देश-प्रेम का वर्णन है। औरंगजेब से छत्रसाल के पिता चम्पतराय और छत्रसाल ने युद्ध करके किस प्रकार बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता की रक्षा की, इसका ऐतिहासिक वर्णन है।

कथानक

असल मे औरंगजेब की कट्टर इस्लामिक नीति से शनैः शनैः सारे देश में मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठ खड़ा हुआ था। राजस्थान में मेवाड़ के राणा राजसिंह, मारवाड़ में राणा यशवन्त सिंह की रानी महामाया देवी, वीर दुर्गादास आजादी के लिए संघर्षरत थे तो बुन्देलखण्ड में छत्रसाल स्वतन्त्रता की रणभेरी बजा रहा था। महाराष्ट्र में शिवाजी औरंगजेब से भयकर युद्ध कर रहे थे और सम्पूर्ण भारत की स्वतन्त्रता का अलख जगा रहे थे। जैसे शिवाजी के गुरू रामदास से उन्हें देश-प्रेम की शिक्षा मिली, उसी प्रकार प्राणनाथ प्रभु से छत्रशाल को मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने का महामन्त्र मिला। प्राणनाथ गुजरात से विन्ध्याचल पहाड़ पर स्थित विन्ध्यवासिनी देवी की सेवा-अर्चना में इसी उद्देश्य से आये थे कि वे बुन्देलखण्ड में आजादी का दीप प्रज्वलित

करें। उन्हें योग्य शिष्य के रूप में वीर छत्रसाल मिल गया। छत्रसाल ने प्राण-पण से मुगलों से बुन्देलखण्ड की स्वतन्त्रता की रक्षा की।

दो छत्रसाल

उल्लेखनीय है कि इतिहास में जिस प्रकार दो हम्मीर हो गए हैं, एक मेवाड़ का वीर हम्मीर, जिसने चित्तौड़ का उद्धार किया और दूसरा रणथम्भौर का हम्मीर, जिसने मुसलमान मीर को शरण देकर अलाउद्दीन से युद्ध किया और शरणागत की रक्षा में प्राणाहुति दी, वैसे ही इतिहास में एक छत्रसाल है बूंदी-नरेश छत्रसाल हाड़ा और दूसरा है बुन्देलखण्ड का वीरव्रती छत्रसाल। छत्रसाल हाड़ा ने बादशाह शाहजहाँ के तख्ते ताऊस के लिए होनेवाले युद्ध में शहजादा दारा का सहयोग दिया और प्राणाहुति दी। उस वीर ने मित्र दारा के लिए औरंगजेब से भयंकर युद्ध किया और वीरगति को प्राप्त हुआ। उसी प्रकार दूसरा ऐतिहासिक वीर है बुन्देलखण्ड का छत्रसाल। हिन्दी के महाकवि भूषण ने शिवाजी पर 'शिवाबावनी' काव्य लिखा है और छत्रसाल पर 'छत्रसाल शतक' काव्य।

ऐसे वीर छत्रसाल के जीवन की प्रमुख घटनाओं का हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'प्रतिशोध' नाटक में वर्णन किया है। आपने हिन्दी के लाल कवि कृत 'छत्र-प्रकाश' से उपकथा के अंश लिए हैं। आपने बाबू रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुदित एक मराठी उपन्यास की अनैतिहासिक घटनाओं की आलोचना की है और उन्हें बेबुनियाद सिद्ध किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमीजी ने यथासाध्य इतिहास से तथ्य संकलित कर 'प्रतिशोध' नाटक की रचना की है। यह नाटक तीन अंकों में विभाजित है। 'प्रतिशोध' नाटक के तीसरे अंक, आठवें दृश्य में बादशाह औरंगजेब को अहमदनगर के राजमहल में रोग-शैया पर दिखाया गया है जहाँ वह जीवन के अन्तिम क्षण बिता रहा है। उसकी शैया के पास उसकी बेटी जेबुन्निसा बैठी है।

जेबुन्निसा—(पंखा झलना बन्द करके, एक बोतल से गिलास में दवा डालती है।) अब्बा, लो यह दवा पी लो।

औरंगजेब—अब दवा का क्या होगा, बेटी। यह मेरा आखिरी वक्त है। ज्यों-ज्यों आँखें बन्द होने का वक्त करीब आता जाता है, आँखें खुलती जाती हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे सारी जिन्दगी अंधेरे रास्ते का सफर करते हुए बिताई है। तुमने और जहांनारा ने कितनी मर्तबा रोशनी दिखाने की कोशिश की, लेकिन सब बेसूद, सब फिजूल। जो सल्तनत बाबर ने अपना खून बहाकर हासिल की और जिसे

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने दयानतदारी बहादुरी और मुहब्बत से बढ़ाया और मजबूत किया उसे मैंने तअस्सुब, घमंड और पागलपन से टुकड़े-टुकड़े कर डाला। मेरे बाद....क्या होगा.... या अल्लाह !

('प्रतिशोध' नाटक, तीसरा अंक, आठवां दृश्य, पृ० १४३ १४४)

जीवन की सन्ध्या बेला में औरंगजेब अपने किए पर अनुशोचन करता है। उसने अपने भाइयों की हत्या कर तथा पिता बादशाह शाहजहाँ को बन्दी बनाकर मुगल तख्त हासिल किया था। उसकी कट्टरता से सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में विद्रोह की आग भड़क उठी और उसी आग में वह अनुशोचन करते हुए दुनिया से विदा हो गया। इसका मार्मिक चित्रण नाटक में हुआ है। वह तलवार के बल पर हिन्दुस्तान में इस्लाम धर्म फैलाना चाहता था और इसीलिए हिन्दुओं के मन्दिर को तोड़कर बुतपरस्ती को खत्म करना चाहता था, उसने जजिया कर पुनः लागू करने की हिमाकत की। नतीजा हुआ कि मुगल सल्तनत हरहरा कर टूटने लगी। उसने धर्म के उन्माद में नाट्यकारिता, संगीत आदि का विरोध किया था। वह स्वयं अपनी बेटी जेबुन्निसा को गाना नहीं गाने देता था, पर जीवन की अन्तिम बेला में वह उससे एक गीत सुनाने की गुजारिश करता है और गीत सुनने के बाद कहता है—'इस गीत में कितना आत्मिक सुख है ! जिन्दगी भर नमाज पढ़ने से दिल को इतनी राहत हासिल नहीं हुई थी, जितनी उसे तुम्हारे इस एक प्यारे गीत ने बख्श दी....।' (वही, पृ० १४७)

प्रेमीजी का 'आहुति' नाटक

हिन्दी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' का नाटक 'आहुति' रणथम्भोर के हठी वीर हम्मीर चौहान के जीवन-चरित्र को लेकर १६४० ई० में लिखा गया। नाटक में हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल पक्ष है। राष्ट्रीय विचारों को प्रस्तुत करने और साम्प्रदायिक एकता की स्थापना में प्रेमीजी के नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। 'आहुति' में राजस्थान के रणथम्भोर और दिल्ली का इतिहास पूरी तरह से उभर कर आया है। दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन रणथम्भोर गढ़ पर आक्रमण करता है और चौहान वंश का वीर केसरी शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राणों की 'आहुति' देता है। शरणागत की रक्षा करना भारतीय संस्कृति की परम्परा ही नहीं, प्रत्युत् मानवधर्म भी है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक का विक्रमादित्य चांद खाँ को मेवाड़ मे शरण देता है और 'आहुति' का हम्मीर मीरमहिम को अपना भाई समझ कर उसकी रक्षा करना अपना धर्म समझता है।

दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन मीरमहिम से कुपित होकर उसे निकाल देता

है। हम्मीर उसे आश्रय देता है। इसी मीरमहिम के कारण अलाउद्दीन का रणथम्भौर पर आक्रमण होता है। प्रथम अंक मे हम्मीर जब मीरमहिम से कहता है कि तुम रणथम्भौर चलो तो मीरमहिम अपने को मुसलमान कह कर हटना चाहता है, किन्तु हम्मीर इन्सानियत को प्यार करता है, जातीयता को नहीं। इसलिए कहता है—'इन्सान तो होगा, इन्सान होने से काम चल जायगा। आज से तुम मेरे भाई हुए।' हम्मीर आगे कहता है—'क्षत्रिय शरणागत को देवता मानता है। आपको मौत के पंजे में जाने दूं तो मेरा महादेव मुझसे नहीं मेरे देश से भी रूठ जायगा···· हम्मीर जब तक जीवित है मीरमहिम की जिन्दगी पर आँच नहीं आ सकती।' ('आहुति' नाटक, प्रथम अंक)

'आहुति' नाटक का कथानक तीन अको मे गुंथित है। प्रथम अक ३३ पृष्ठो मे, द्वितीय अक भी ३३ पृष्ठों मे और तृतीय अक ३६ पृष्ठो मे समाप्त होता है। चूंकि 'आहुति' नाटक के प्रतिपाद्य विषय पर हमने प्रथम खण्ड मे 'वीरगाथाओं में हठी हम्मीर का चरित्र' शीर्षक से (पृ० २७४ से पृ० २८६) मे विस्तार से चर्चा की है तथा इस खण्ड मे भी इस घटना का उल्लेख आगे के पृष्ठों मे है। अत हम प्रेमीजी के 'आहुति' नाटक पर अधिक चर्चा करने से विरत हैं।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'उद्धार' नाटक

नाट्यकार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने १६४६ ई० मे 'उद्धार' नाटक की रचना की, जिसका प्रकाशन आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से हुआ। 'उद्धार' नाटक मे मेवाड के परम वीर हम्मीर के जोवन की साहसिक घटनाओ का वर्णन है, जिसमे दिखाया गया है कि किस प्रकार उस वीर ने अपनी कुशल बुद्धि और पराक्रम से चित्तौड का उद्धार कर स्वतन्त्रता का शंख फूका।

भारत विभाजन की पीड़ा

असल मे हरिकृष्ण 'प्रेमी' स्वतन्त्रता के पूर्व पजाब मे रह कर साहित्य-साधना कर रहे थे। वही से आपके कई ऐतिहासिक नाटक प्रकाशित हुए, जिनकी हिन्दी जगत मे धूम मच गई। किन्तु आजादी के साथ ही देश को भारत विभाजन की मार्मिक यन्त्रणा सहनी पडी। इस विभाजन के कारण भारत माता के अंग विच्छेद हो गए। जाहिर है उस समय साम्प्रदायिक हिंसा ने अमानवीय रूप धारण कर लिया। लाखों की संख्या मे पश्चिमी पाकिस्तान से तथा पूर्वी पाकिस्तान (बाद में 'बंगलादेश') से शरणार्थी भारत आये। इन्हीं शरणार्थियों में हरिकृष्ण 'प्रेमी' भी थे। यह 'प्रेमी' के जीवन की त्रासदी है कि वे गाँधीजी के अनुयायी होकर अपने नाटकों में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए

अथक परिश्रम कर रहे थे। गाँधीजी ने कहा था—'भारत का विभाजन मेरी लाश पर होगा'। नियति की क्रूर बिडम्बना देखिए कि महात्मा गाँधी के जीते जी भारत विभाजन हुआ और उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम भाइयों को हिंसा की होली में रक्त-स्नान करते देखा। लाखों माताओं की मांग और गोद सूनी हुई और कितनी ही ललनाओं के सतीत्व का अपहरण हुआ। मानवीय इतिहास में ऐसी घटनाएँ संसार में कम घटी हैं। स्वयं गाँधीजी को पूर्वी पाकिस्तान के नोआखाली में शान्ति स्थापनार्थ जाना पड़ा और कलकत्ता में उन्होंने अनशन तक किया। पश्चिम बगाल के तत्कालीन मुख्य मन्त्री (तब प्रधान मन्त्री) सुहरावर्दी ने उनका साथ दिया। बंगाल में साम्प्रदायिक हिंसा की शुरुआत प्रत्यक्ष-दिवस (डायरेक्ट डे) अर्थात १५ अक्टूबर, १९४६ ई० से ही शुरू हुई थी। यह हिंसा आजादी मिलने के बाद अर्थात १५ अगस्त, १९४७ ई० के कालखण्ड के पश्चात भी अनवरत चलती रही और शरणार्थियों का काफिला पद्मा नदी के उस पार से तथा पंजाब से इधर आता रहा।

तुष्टीकरण : 'वोट-बैंक'

गाँधीजी को हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रचेष्टा की उसी दिन भ्रूण-हत्या हो गई, जिस दिन देश का विभाजन घोषित हुआ। अन्ततः इसी की बलिवेदी पर उन्हें शहीद होना पड़ा ३० जनवरी १९४८ ई० को। प्रेमीजी ही नहीं, देश के उन लाखों-करोड़ों लोगों को वर्षों से गाँधीजी द्वारा चलाये जा रहे साम्प्रदायिक एकता के यथार्थ का कटु अनुभव हुआ। यह अहसास आज भी देशवासियों को साल रहा है कि किस प्रकार सत्ताधारियों ने गाँधीजी के नाम को भुना कर धर्मनिरपेक्षता के तहत तुष्टीकरण की नीति अपनाई और 'वोट-बैंक' बनाया तथा सत्ता-सुख भोगा और भोग रहे हैं।

कदाचित यही कारण है कि एक लम्बे अन्तराल के बाद हरिकृष्ण प्रेमी' का एक ऐसा नाटक भारत विभाजन के पश्चात १९४९ ई० में प्रकाश में आया, जिसमें हमीर ने अपनी छिनी हुई मातृभूमि चित्तौड़ का उद्धार किया। पता नहीं नाटककार 'उद्धार' के द्वारा अंगुली उठा कर किस दिशा-निर्देश का संकेत दे रहा था।

नाटककार प्रेमीजी ने 'सरस्वती के मन्दिर में' शीर्षक से 'उद्धार' नाटक के आरम्भ में एक वक्तव्य प्रकाशित किया है जो बड़ा सारगर्भित है—'एक सुदीर्घ विछोह के पश्चात फिर 'प्रेमी' एक पुष्प लेकर सरस्वती के मन्दिर में आया है। पंजाब की खूनी तूफानी घड़ियों में मुझे भी अपने कार्यक्षेत्र पंजाब को छोड़ना पड़ा और मेरी सबसे

मूल्यवान सम्पत्ति अप्रकाशित पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ भी वहीं रह गईं। मेरा कवि और लेखक तब से मूर्च्छित पड़ा हुआ था। सूखी हुई हृदय-वाटिका को फिर से 'नयन-नीर' से सींच कर हरा किया है। इसका पहला पुष्प यह 'उद्धार' है।'

कथानक

'उद्धार' ऐतिहासिक नाटक है। मनुष्य की लम्पटता और स्वार्थपरता ने (अलाउद्दीन की पाप-लिप्सा ने) चित्तौड़ दुर्ग का विध्वंस किया। अपनी आन-रक्षा के लिए राजपूत वीरों ने केसरिया बाना पहन कर रण-भूमि में प्राण दिए और वीरांगना पद्मिनी ने अन्य वीरांगनाओं सहित जौहर की ज्वाला में प्रवेश किया। इस अमर साका में सिसोदिया-राजवंश के सभी वीर काम आ गए, शेष रहे महाराणा लक्ष्मण सिंह के द्वितीय पुत्र अजय सिंह, जिन्हें मेवाड़ का पुनः उद्धार करने के लिए जीवित रहने दिया गया था और युवराज अरिसिंह का नवजात शिशु 'हमीर', जो एक झोंपड़ी में अपनी माँ की गोद में पल रहा था। यही 'हमीर' 'उद्धार' नाटक का नायक है। किस प्रकार हमीर ने जन-नायक बन कर मेवाड़ को स्वाधीन किया यही इस नाटक का विषय है। मजेदार बात है कि प्रेमीजी ने अपने समय की पीड़ा को भोग कर पुनः युग-संदेश दिया। वस्तुतः देश-विभाजन के पश्चात लिखे गए उनके सभी नाटक यथा 'कीर्ति-स्तम्भ', 'उद्धार', 'प्रकाश-स्तम्भ' आदि इस भावना से प्रेरित हैं। इन नाटकों में देश की आजादी को सुरक्षित रखने पर जितना जोर दिया गया है उतना गाँधीजी की विचारधारा पर नहीं। सम्भवतः कवि-नाटककार का मोह भंग हो गया था, भावुकता ने यथार्थ का साक्षात कर लिया था।

राजस्थान के इतिहास में दो 'हमीर' या 'हम्मीर' प्रसिद्ध हुए हैं। एक है रणथम्भोर का हम्मीर, जिसके हठ के बारे मे प्रसिद्ध है—'तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजो बार'। दूसरा है मेवाड़ का उद्धारक 'हमीर'। प्रेमीजी ने इन दोनों चरित्रों पर कलम चलाई है। रणथम्भोर के हम्मीर पर उनका नाटक है 'आहुति' (१९४० ई०) और मेवाड़ के हमीर पर है आलोच्य नाटक 'उद्धार' (१९४९ ई०) दोनों की रचना मे नौ-दस वर्ष का अन्तर है। इस अवधि में देश एक भयंकर ऐतिहासिक परिवर्तन से गुजरा और स्वाभाविक है कि नाटककार को भी युग-बोध के यथार्थ का ज्ञान हुआ।

चूंकि 'उद्धार' नाटक जिस कथानक पर आधारित है उस पर हमने पुस्तक के प्रथम खण्ड में तथा दूसरे खण्ड में काफी चर्चा की है। 'उद्धार' का नाटककार ऐतिहासिक घटनाओं के सन्दर्भ में आधुनिक समस्याओं का समाधान ढूंढने की कोशिश कर रहा है। इस दृष्टि से आज के परिप्रेक्ष्य में 'उद्धार' नाटक की प्रासंगिकता अनायास प्रमाणित हो जाती है। विदेशी ताकतों के छल-बल से अपहृत मातृभूमि (चित्तौड़) का

हमीर जन-जागृति पैदा कर उद्धार करता है। यूँ टॉड के 'राजस्थान' में उल्लिखित सभी ऐतिहासिक घटनाओं का 'उद्धार' नाटक में वर्णन है—लेकिन स्थान-स्थान पर नाटककार प्रेमी ने युग-बोध और युग की वाणी को नया तेवर और अंदाज दिया है। देशोद्धार के लिए जहां समाज-सुधार आवश्यक है, वहीं जातिगत एक्य जरूरी है। यह जातिगत एकता आसमुद्र हिमालय तक हो तभी देशोद्धार हो सकता है। 'उद्धार' नाटक में यह प्रचेष्टा हमीर, उसकी माता सुधीरा और भील युवक दलपति करते हैं तथा दक्षिण में इस एकता के प्रयास में हमीर का चचेरा भाई सुजान सिंह सक्रिय है। हमीर के जीवन में प्रेरणा जुटाने के लिए मालदेव की विधवा पुत्री कमला जीवन संगिनी ही नहीं बनती वह देशात्मबोध और वीरता की साक्षात प्रतिमूर्ति बनती है। इन भावनाओं के प्रमाण स्वरूप यहाँ 'उद्धार' नाटक के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

स्थान—पठार

समय—प्रभात

(दलपति तथा अनेक युवक तीर कमानों से सुसज्जित हैं। उनकी कमर में तलवारें बंधी हुई हैं। भील-वीरांगना और दलपति की माँ दुर्गा आती है।)

दुर्गा—तुम सब लोग प्रस्तुत हो।

दलपति—हाँ, माँ, स्वाधीनता-संग्राम के महायज्ञ में आहुति देने को हम सब युवक प्रस्तुत हैं।

दूसरा—विदेशियों को मेवाड़ से निर्वासित करने के शुभ कार्य के लिए हमें स्मरण किया गया है। यह तो हमारे लिए सौभाग्य की बात है।

दुर्गा—स्वाधीनता-संग्राम के लिए किसी आमंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। स्वाधीनता प्रत्येक व्यक्ति का जन्म-सिद्ध अधिकार है और उसे प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के लिए युद्ध करने का प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

× × ×

दुर्गा—निश्चय ही। जिस शासन में जनता की आवाज नहीं सुनी जाती उसके नियमों को भंग करना जनता का कर्त्तव्य हो जाता है। तुम्हें यही बात प्रत्येक मेवाड़ी को समझा देनी है। हमारा पहला मोर्चा जन-जागृति का है। शत्रु हमारे बीच जाति-भेद, धर्म-भेद और वर्ग-भेद

खड़े करके हमें परस्पर लड़ाकर हमारी शक्ति क्षीण करेगा और फिर अपना फौलादी पंजा इस देश पर दृढ़तापूर्वक फैलायेगा।

× × ×

(हमीर की माँ सुधीरा का प्रवेश)

सुधीरा—यह तो तुम लोगों के सहयोग और साहस पर निर्भर है। तुमलोग जन-जागृति का शंख फूँक कर प्रत्येक मेवाड़ी को स्वाधीनता-संग्राम का सैनिक बनाओ। सबको एक अनुशासन, एक संगठन में लाओ।

दलपति—हाँ, राजमाता जी, हम सब एक हैं और सारे मेवाड़ को हम एक झंडे के नीचे लायेंगे।

सुधीरा—तब तो पराधीनता की बेड़ियां एक क्षण भी जननी जन्म-भूमि के पैरों में नहीं रह सकेंगी। हाँ, तो बच्चों, अपना नित्य का गीत गाओ फिर नित्य के अनुसार शस्त्र-संचालन का अभ्यास करो।

(सब गीत गाते हैं)

हर जुबाँ पर एक नारा
है हमारा देश प्यारा।
आग की संतान हम, डरते नहीं,
जान देते हैं, मगर मरते नहीं,
हम गुलामी से सुलह करते नहीं
हम कदम हँस-हँस बढ़ाते
मृत्यु का पाकर इशारा····

('उद्धार' नाटक, अंक दो, दृश्य पाँच, पृ० ६२-६६)

स्वाधीन-भारत में लिखे गए 'उद्धार' नाटक में प्रेमीजी ने युग की पीड़ा को उजागर कर देशोद्धार के प्रति अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। स्वाधीनता के लिए त्याग-बलिदान करना पड़ता है। देश-भक्त स्वतन्त्रता-यज्ञ मे मातृभूमि की सेवा करते हुए प्राणाहुति देते हैं। वे इसकी चिन्ता नहीं करते कि उनके बलिदान से मिली आजादी के फल को कौन भोगेगा, वे तो बस मातृभूमि की सच्ची निष्ठा से सेवा कर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। 'उद्धार' के नायक हमीर की माता सुधीरा ऐसे ही देशभक्ति पूर्ण विचारों की संवाहिका हैं। तभी तो उसकी कोख से देशोद्धार करने वाले युवक हमीर का जन्म हुआ। इन भावनाओं के लिए प्रस्तुत है 'उद्धार' नाटक का यह अंश—

स्थान—सुधीरा की झोंपड़ी के आगे का प्रांगण।

समय—प्रभात

(सुधीरा एक आम का पौधा रोप रही है। दलपति का प्रवेश।)

दलपति—आप भी खूब हैं, माताजी ! व्यर्थ के काम करती हैं। आज यह आम का पौधा आपने रोपा है। अब नित्य पानी सींचेंगी। वर्षों रखवाली करेंगी और जब फल आयेंगे तब न जाने आप इस संसार में रहेंगी या नहीं।

सुधीरा—ऐसी ही तो है स्वाधीनता-प्राप्ति की साधना भी। पहले देशवासियों के हृदय में स्वाधीनता-प्राप्ति की इच्छा का बीज डालना पड़ता है, फिर देश के दीवाने सेवक अपना खून देकर उसे सींचते हैं, उसे अंकुरित और पल्लवित करने के लिए रक्त-दान करना पड़ता है और जो लोग इस साधना में जीवन की बलि देते हैं वे स्वाधीनता-विटप के फल खाने के लिए शायद ही जीवित रहते हैं। (वही, पृ० ७३)

यह है देश-प्रेम और आजादी के दीवानों के उद्गार, जिन्हें प्रेमीजी ने युगबोध के प्रकाश में भाष्वर किया है।

मालदेव की विधवा पुत्री कमला के साथ जब हमीर का विवाह होता है तो वह नव-वधू को लेकर अपनी माँ सुधीरा की झोंपड़ी में आता है। सुधीरा उसे झोंपड़ी और राजमहल के सम्बन्ध को बताकर कहती है—

सुधीरा—....तुम्हारे नए जीवन का पहला दिन राजमहल में नहीं झोंपड़ी में व्यतीत हो रहा है इसका भी एक महत्व है बेटी ! चाहे राजा हो चाहे रंक, उसे याद रखना चाहिए कि झोंपड़ी का गौरव राजमहल से कम नहीं। झोंपड़ी के आशीर्वाद से ही राजमहल स्थिर है, जो राजमहल मदान्ध होकर झोंपड़ी का अपमान करते हैं उन्हें धराशायी होना पड़ता है।

(हमीर आकर सुधीरा के चरण छूता है)

सुधीरा—तुम दोनों चिरायु रहो और मेवाड़ की कीर्ति को चार चांद लगाओ।

('उद्धार' नाटक, अंक २, दृश्य ६, पृ० ८४-८५)

विधवा-विवाह पर जहाँ लोगों में आलोचना-प्रत्यालोचना हुई, वहाँ हमीर की माँ (सुधीरा) ने इस समाज-सुधार के कार्य का स्वागत किया। इसी अंक और इसी

दृश्य में हमीर अपनी पत्नी कमला को आश्वस्त करने के लिए विधवा-विवाह के समर्थन में तर्क देता है—

हमीर—समाज की मर्यादा ! दुध-मुँही बच्चियों का विवाह कर देना और उनके विधवा हो जाने पर उन्हें जीवन के सभी सुखों से वंचित रखना, इसे तुम समाज की मर्यादा कहती हो ? नहीं कमला यह घोर अत्याचार है। हमें समाज के पाखण्डों के विरुद्ध विद्रोह करना है। (वही, पृ० ८७)

विधवा-विवाह के प्रसंग में नाटककार ने हमीर के चचेरे भाई सुजान सिंह के मुख से अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए हैं—

सुजान—मेरे ख्याल से हमीर ने धर्म-विरुद्ध तो कोई काम नहीं किया। आपके शब्दों में जो नीच जाति वाले हैं, वे हमारी अपेक्षा मनुष्यता के अधिक निकट हैं, क्योंकि वे विधवाओं के प्रति उच्च जाति वालों की भांति निर्दय नहीं हैं। वे उन्हें आग में जल जाने को विवश नहीं करते, न जीवन-भर अभाव और अनादर का जीवन व्यतीत करने की हठ-धर्मी करते हैं। पुरुष यदि दूसरा विवाह कर सकता है तो नारी भी।

गम्भीर सिंह—छिः आपका भी मस्तिष्क फिर गया है।

सुजान—मैं चाहता हूँ आपका भी दिमाग फिर जाये। आप भी मुझे बताइए, हमलोग एक, दो, तीन यहाँ तक कि कौड़ियों पत्नियों, रखेलियों और प्रेमिकाओं को अंगीकार कर सकते हैं और चाहते हैं कि स्त्री बेचारी पति के मर जाने पर जीवन-भर तपस्या करती रहे। मैं तो हमीर के इस कार्य से प्रसन्न हूँ।

('उद्धार' नाटक, अंक ३, दृश्य १, पृ० ९२)

'उद्धार' का सपना

'उद्धार' नाटक के अन्त में नाटककार प्रेमीजी ने अपने उद्देश्य को बखूबी दर्शाने की कोशिश की है। प्रेमीजी का सपना अखण्ड भारत का सपना है। इस सपने को पूर्णता तभी प्राप्त हो सकती है जब कश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक और अटक से लेकर कटक तक भारत एक सूत्र में बन्धे। इस एकता के लिए जातिगत सीमाओं को तोड़ कर भारतीयता की मानसिकता पैदा करनी होगी, देश-प्रेम की भावना भरनी होगी और त्याग-बलिदान का व्रत लेना होगा। चित्तौड़ के उद्धार के बाद सुजान सिंह ने अपने

कर्त्तव्य का पालन किया और मातृभूमि के स्वतन्त्र होने पर वह हमीर से विदा लेता है—

सुजान—तुम्हारा सुख-स्वप्न तो चरितार्थ हो गया, किन्तु मेरा स्वप्न अभी अंधकार की ओट में छिपा हुआ है। उसे प्रकाश में लाने के लिए मुझे साधना करनी होगी, अब मुझे विदा दो, भैया !

हमीर—क्या है तुम्हारा वह स्वप्न भैया ?

सुजान—मेरा स्वप्न है जातियों की सीमाओं को तोड़कर मानवता का निर्माण, प्रान्तीयता की दीवारों को गिराकर राष्ट्रीयता की स्थापना। आज मेवाड़ स्वतंत्र हो गया, किन्तु उसे याद रखना चाहिए कि वह सम्पूर्ण भारत का अंश है और जब तक भारत के एक भी कोने पर विदेशियों का अस्तित्व है उसकी स्वाधीनता अधूरी है।

+ + +

सुजान—तो भैया मुझे अब विदा दो—

हमीर—भैया ! तुम मेवाड़ को छोड़ जाओगे ?

सुजान—हाँ, मुझे जाना होगा। मैंने दक्षिण के पार्वत्य प्रदेश में साधना का दीपक जलाया है, वह बुझ न जाय इसलिए मुझे जाना ही होगा। वैसे मेरा शरीर मेवाड़ की मिट्टी से बना है और मेवाड़ के संकट में वह सदा प्रस्तुत रहेगा।

(पटाक्षेप)

('उद्धार' नाटक, अंक ३, दृश्य ७, पृ० १२८-१३०)

सत्ता-सुख की राजनीति

आजादी के बाद राजनीतिक नेताओं को जब सत्ता-सुख और भ्रष्टाचार में आकंठ डूबते हुए नाटककार प्रेमीजी ने देखा तो उन्हें अत्यधिक पीड़ा हुई। उनका सपना शायद उनके 'स्वप्न-भंग' नाटक की तरह चकनाचूर हो गया। जैसे खोये हुए चित्तौड़ के उद्धार के लिए एक जन-नायक की जरूरत थी, उसी कल्पना में प्रेमीजी ने 'उद्धार' नाटक रच डाला। पता नहीं प्रेमी का सपना किस जन-नायक द्वारा पूरा होगा और 'उद्धार' नाटक का दिशा-निर्देश साकार होगा। जब तक सच्ची राष्ट्रीयता का विकास नहीं होता है तब तक देशोद्धार की कल्पना मात्र कल्पना ही है। सभी राजनीतिक दल और नेता जब क्षुद्र स्वार्थ और निजी सुख संचय में लिप्त हो तब 'उद्धार' नाटक की सार्थकता संदिग्ध है।

आलोचना

कवि-नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' हिन्दी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्य रचयिता हैं। आपने जितने नाटक लिखे हैं शायद ही किसी हिन्दी के लेखक ने इतने नाटक लिखे हों। प्रेमीजी के नाटक सोद्देश्य हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास का और विशेषकर राजस्थान-इतिहास एवं मुगलकालीन इतिहास का बारीकी से अध्ययन कर अपने नाटकों की रचना की है। हमने भी इसी वजह से उनके नाटकों को यथा स्थान अर्थात प्रसंगानुसार अपने अध्ययन में समाविष्ट किया है। इतिहास के पण्डित प्रेमीजी से भी कहीं-कहीं ऐतिहासिक गलतियाँ हुई है। सम्भव है कल्पना के ताने-बाने मे उन्होने इतिहास को अपने लक्ष्य की ओर मोड़ा है। ऐसा सभी नाटककारों को करना पड़ता है। बंगला के प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय इस अपवाद से अछूते नहीं रहे। किन्तु आलोच्य नाटक 'उद्धार' में एक बड़ी ऐतिहासिक त्रुटि हमे मिलती है। यह त्रुटि है कि प्रेमीजी ने 'उद्धार' नाटक की भूमिका मे (सरस्वती के मन्दिर में) अजय सिंह को मेवाड के महाराणा लाखा का द्वितीय पुत्र और युवराज अरिसिंह (हमीर के पिता) को उत्तराधिकारी बताया है। यह उल्लेख सिर्फ भूमिका में ही रहता तो बात जुदा थी, इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख नाटक में कई स्थानों पर हुआ है। 'उद्धार' नाटक के प्रथम अंक के सातवें दृश्य में एक सम्वाद में महाराणा अजय सिंह से कहा गया है—'शान्ति, महाराणाजी (अजय सिंह) आप क्या कह रहे हैं। महाराणा लाखाजी के वीर पुत्र के मुख से शान्ति शब्द शोभा नहीं देता। मेवाड़ में जब तक एक भी आततायी विदेशी का अस्तित्व है तब तक मेवाड़ियों को शान्ति कहाँ है।' ('उद्धार' नाटक, पृ० ३६)

जबकि वास्तविकता यह है कि अजय सिंह और अरिसिंह मेवाड़ के महाराणा लक्ष्मण सिंह के ग्यारह पुत्रों मे से थे। महाराणा लक्ष्मण सिंह के चाचा भीम सिंह या रत्न सिंह महारानी पद्मिनी के पति थे। इसी परम सुन्दरी पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। यह घटना १२७५ ई० की है। महाराणा लक्ष्मण सिंह की चौथी पीढ़ी में महाराणा लाखा या लाक्ष्य मेवाड़ की गद्दी पर बैठा है। हमने अपने अध्ययन मे बंगला काव्य 'पद्मिनी उपाख्यान' के प्रसंग में इस ऐतिहासिक प्रसंग पर काफी प्रकाश डाला है तथा गिरीश घोष के नाटक 'चण्ड' के अध्ययन में महाराणा लाखा पर विस्तार से चर्चा की है।

'उद्धार' नाटक में पृष्ठ ३४ पर ऐसी ही एक भूल हमें मिली है। जब भील युवकों को हमीर के वंश-गोत्र का पता लगता है तो हमीर का सखा दलपति अपने साथियों से कहता है—'लो, बोलो, तुम्हें विश्वास ही नहीं होता। आज ही यह

रहस्य ज्ञात हुआ है कि यह (हमीर) सिसौदिया वंश-गौरव स्वर्गीय अभय सिंहजी के पुत्र हैं और महाराणा अजय सिंह आज ही इन्हें अपना उत्तराधिकारी बना कर गए हैं।' ('उद्धार' नाटक, अंक १, दृश्य ६, पृ० ३४)

असल में अरिसिंह हमीर के पिता थे, जिन्होंने एक वीर बाला (सुधीरा) से उसके वीरत्व पर मुग्ध होकर विवाह किया था। अरिसिंह मेवाड़ के पहले साके अर्थात 'पद्मिनी के जौहर व्रत' की लड़ाई में वीरगति को प्राप्त हो गए थे। वैसे इस बात का तथा अरिसिंह ही हमीर के पिता थे इसका उल्लेख नाटक में अन्य कई स्थानों पर है। पृ० ३४ पर या तो सम्पादन में भूल हुई है या प्रूफ में। अस्तु, अब हम इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं। ऐसी सामान्य त्रुटियों के बावजूद 'उद्धार' एक सफल नाटक है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' का 'प्रकाश-स्तम्भ' नाटक

नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने 'प्रकाश-स्तम्भ' नाटक की रचना अक्टूबर, १९५४ ई० में की, जिसका प्रकाशन हिन्दी-भवन, इलाहाबाद से हुआ है। आपने इस नाटक में बप्पा रावल के आरम्भिक जीवन की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है।

मेवाड़ का राजवंश आदि-पुरुष बप्पा रावल पर गर्व करता है। इतिहासकारों ने तथा टॉड ने बप्पा को मेवाड़-राज्य का संस्थापक बताया है। इस कथानक पर साहित्य कृतियाँ थोड़ी ही लिखी गई हैं। इतिहास मूलक पुस्तकों में तथा कहानियों में अवश्य ही बप्पा की जीवनी पर कई लेखकों ने प्रकाश डालने की कोशिश की है। बप्पा के व्यक्तित्व के साथ जनश्रुतियों में अनेक दैवी-चमत्कार और किम्वदन्तियाँ जुड़ गई हैं। नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने बप्पा को मानवेतर बनाने से बचने की कोशिश की है, किन्तु एक विशेष आदर्श को दृष्टि में रख कर उन्होंने इस नाटक की रचना की है। जैसे द्विजेन्द्रलाल राय ने 'मेवाड़-पतन नाटक को एक खास मकसद से लिखा था और विश्व-मानवता के स्वर को अनुगुंजित किया था, उसी ढंग से प्रेमीजी ने भी 'प्रकाश-स्तम्भ नाटक में बप्पा के चरित्र को निरुपित किया है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने नाटक की भूमिका का शीर्षक दिया है 'संकेत', जिसके पृष्ठ 'क' पर आपने लिखा है—'इस नाटक में प्रतिपादित विचारों में से कुछ पर हमारे देश के विचारक सम्भवतः सहमत न भी हों, किन्तु मेरा इतिहास के अध्ययन से जो मत बना है, उसे मैंने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। हमें जहाँ अपने देश की वर्तमान समस्याओं पर विचार करना चाहिए, वहीं अपने अतीत में वर्तमान समस्याओं के कारण खोजने चाहिए, वहीं से हमें उनका निदान प्राप्त होगा।'

हिन्दी-भवन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'हमारा राजस्थान' ग्रन्थ में उल्लेख है—'चित्तौड़ पर हुए एक अरब-आक्रमण में मानमोरी ने राज्य की रक्षा करने में कमजोरी दिखाई, जिस पर उसके सरदार नागदा के गुहिल पुत्र बप्पा (कालभोज) ने ७२८ ई० के करीब चित्तौड़ का दुर्ग उससे छीना। सिन्ध पर अरबों का अधिकार हो जाने पर राजस्थान के राज्यों का अरबों से सीधा संसर्ग पड़ने लगा, पर राजस्थान के छोटे-छोटे राज्य उस बाढ़ को रोकने में असमर्थ साबित हुए। तब राजस्थानी जनता को अपने नए नेता तलाश करने पड़े। मेवाड़ में कालभोज या बप्पा रावल और गुजरात में प्रतिहार नागभट इन्हीं राज्य-क्रान्तियों के फलस्वरूप सामने आए।'

प्रेमीजी ने भूमिका के पृष्ठ 'ग' पर कहा है—'बप्पा स्वयं राजा नहीं था, लेकिन उसे दुर्बल राजा से राज्य छीनना पड़ा। बप्पा का विवाह आक्रमणकारी अरबों के एक सेनापति की कन्या से हुआ था। यह घटना मेरे मस्तिष्क की कल्पना नहीं है। टॉड ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है, जिसका मैंने 'प्रकाश-स्तम्भ' मे उपयोग किया है।'

'प्रकाश स्तम्भ' नाटक में बप्पा के जीवन की उन सारी घटनाओं का उल्लेख है, जिसमे उसने नागदा के सोलंकी राजा की लड़की से खेल ही खेल में झूलनोत्सव पर विवाह किया था। साथ ही हारित ऋषि से उसे वर प्राप्त हुआ था। ये घटनाएँ टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित हैं। बंगला के चित्रकार और कथा-शिल्पी श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी अपनी 'राजकाहिनी' कहानी-संग्रह मे इन घटनाओं का उल्लेख किया है। प्रेमीजी का 'प्रकाश-स्तम्भ' नाटक घटना-प्रधान न होकर विवरणात्मक हो गया है, जिसमे नाटक की अपेक्षा उपन्यास-रस का अधिक आनन्द मिलता है। तीन अंकों के इस नाटक में नाट्य विधा की नई तकनीक का प्रयोग किया गया है। इसलिए अंक बदलने पर भी दृश्य एक ही रहता है, केवल पात्र बदल जाते हैं। नाटक के कथोपकथन लम्बे और अस्वाभाविक हो गए हैं, जिन्हें पढ़ने से लगता है मानो नाटककार कोई कहानी कथोपकथनों के माध्यम से कह रहा है और पात्रों के मुख से अपनी बात कहलवा रहा है।

गोस्वामी का 'पृथ्वीराज' नाटक

बंगला भाषा के यशस्वी नाटककार श्री मनमोहन गोस्वामी के 'पृथ्वीराज' नाटक का अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय ने सं० १९७५ मे किया। इस अनुवाद का प्रकाशन गाँधी हिन्दी-साहित्य भण्डार, बम्बई से हुआ। 'पृथ्वीराज' नाटक मे दिखाया गया है कि मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज ने आठ बार परास्त किया, किन्तु तराई के युद्ध में छल-प्रपंच के कारण उसकी पराजय हुई। कन्नौज के राजा जयचन्द ने गोरी की सहायता की और इस प्रकार घर की कलह से भारत का सूर्य तराई के मैदान में अस्त हो गया। पृथ्वीराज गोरी के द्वारा बन्दी हुआ।

चन्द्रबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज को बन्दी बना कर गजनी भेजने की बात कही गई है तथा शब्द-वेधी वाण से पृथ्वीराज द्वारा मुहम्मद गोरी को मारने की बात का उल्लेख है, किन्तु श्री गोस्वामी के नाटक में ऐसा नहीं दिखाया गया है। नाटक के पाँचवें अंक के पाँचवें दृश्य में दिखाया गया है—

स्थान—छावनी में गोरी का दरबार

(मुहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन, बख्तियार, जयचन्द और चोपदार लोग)

गोरी—अब लड़ाई खत्म हो गई। इतने दिनों से दिल में जो ख्वाहिश थी, जिसके लिए मुझे बार-बार नाकामयाब होकर लौटना पड़ा, वही दिल की मुराद आज पूरी हो गई। हिन्दुस्तान की सल्तनत आज मेरे पैरों के नीचे है। लेकिन राजा साहब तुम्हारी ही इनायत से आज मैंने जंग में फतह पाई है। तुम्हारी ही चालाकी से आज़ मुहम्मद गोरी हिन्दुस्तान पर दखल किए हुए है। ('पृथ्वीराज' नाटक, पृ० १२६)

इस प्रकार नाटककार ने जयचन्द की गद्दारी से भारत के भाग्य सूर्य को अस्त होते हुए दिखाया है।

इसी दृश्य में पृथ्वीराज को बन्दी अवस्था में गोरी के सामने पेश किया जाता है। उससे माफी मांगने और आत्म-समर्पण के लिए कहा जाता है, पर वीर पृथ्वीराज यवन को फटकार सुना कर उसकी भर्त्सना करता है। जल्लाद के द्वारा पृथ्वीराज का सिर काटा जाता और जयचन्द अपने दामाद पृथ्वीराज के मृत्यु-दण्ड को देखता है। तब जयचन्द मुहम्मद गोरी से कहता है—'वह दुष्ट हम दोनों का शत्रु था। वीरवर! युद्ध समाप्त हो गया, अब अपना वादा पूरा करो।'

गोरी—क्या वादा राजा साहब !

जयचन्द—क्या वादा ! सुल्तान ! यह दिल्लगी का समय नहीं है। तुमने युद्ध समाप्त होने पर दिल्ली का सिंहासन मुझे देने के लिए कहा था। वह प्रतिज्ञा क्या भूल गए सुल्तान ?

× × ×

गोरी—जो बदला लेने की धुन में अपने दामाद को मरवा डालता है, जो एक गैर-मजहब परदेशी को अपने घर में बुला कर अपने हाथ से, अपनी चालाकी से, अपने वतन से, अपनी जन्मभूमि एक परदेसी को सौंप देता है, उससे भी बढ़कर क्या मैं दगाबाज-बेईमान हूँ।

(वही, पृ० १२६-३०)

जयचन्द की तब आँखें खुलती हैं और वह पश्चाताप करता है। तभी पृथ्वीराज का कटा हुआ सिर जल्लाद लेकर आता है। इसी समय संयुक्ता और उसकी सहेली यमुना वीर बेश में छावनी में आती हैं।

यमुना—यवन सुलतान ! तुम जानते हो, हम कौन हैं और क्यों आई हैं ?

गोरी—काफिर औरतें जान पड़ती हो। जान पड़ता है, मैदाने-जंग में तुम को कहीं पर देखा है।

(नाटक में युद्ध भूमि में संयुक्ता को युद्ध करते दिखाया गया है और यमुना को भी)

यमुना—जिस वीर के तेज से भारत थर-थर कांपता था, जिस सिंह के आगे बार-बार हार कर दाँतों में तिनका दबा कर तुमने प्राणों की भीख मागी थी, जिस महापुरुष को धोखा देकर दगा से तुमने कैद किया, जिस महात्मा को कायरों की तरह तुमने पशु की सी मृत्यु दी है, उन्हीं प्रातःस्मरणीय दिल्ली के महाराज पृथ्वीराज की महारानी यह तुम्हारे सामने खड़ी हैं।

(जयचन्द के सिवा सब उठ खड़े होते है।)

संयुक्ता अपने पति के कटे सिर को उठा कर गोद में लेती है और यमुना कटार निकाल कर गोरी पर आक्रमण करती है। गोरी दोनों (यमुना और संयुक्ता) को पकड़ने का हुक्म देता है। संयुक्ता—'ठहर जाओ, स्त्री के शरीर को छूकर अपमान मत करना। यह कौन ? पिता ? जन्मदाता ? तुम्हें धन्यवाद देती हूँ, मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना।

सिपाही आगे बढ़ते हैं और यमुना तथा संयुक्ता दोनों अँगूठी चूस कर वहीं ढेर हो जाती हैं, अंगूठो में जहर था।

('पृथ्वीराज' नाटक, पंचम अंक, पंचम दृश्य, पृ० १३०-१३६)

नाटककार श्री गोस्वामी ने अपनी सूझ-बूझ से देशद्रोही जयचन्द के चरित्र का कुत्सित रूप दर्शकों-पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। आपने यमुना और संयुक्ता की वीरता का भी अनोखा स्वरूप दिखाया है। ये दोनों ही घटनाएँ नाटककार की कल्पना-शक्ति की सूचक हैं, जिससे 'पृथ्वीराज' नाटक हृदय-स्पर्शी बन गया है। पाण्डेयजी का हिन्दी अनुवाद सुन्दर है।

गोविन्द बल्लभ पंत का 'राजमुकुट' नाटक

हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार पं० गोविन्दबल्लभ पंत ने पन्ना धाय के त्याग और बलिदान की कथा को उजागर करने के लिए १६३५ ई० में 'राजमुकुट' ऐतिहासिक नाटक की रचना की, जिसका प्रकाशन गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से हुआ। यह नाटक अपने समय में काफी प्रसिद्ध हुआ। 'राजमुकुट' नाटक के सम्पादक हैं 'सुधा'—सम्पादक श्री दुलारेलाल भार्गव। आपने भूमिका में लिखा है—'राजमुकुट' राजपूताने की एक प्राचीन गौरव-गाथा है। वीरांगना पन्ना का नाम किसने नहीं सुना? वही धाय पन्ना, जिसने स्वामी-भक्ति की वेदी पर अपने दुधमुंहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड़ की वंश-बेलि को नष्ट होने से बचाया। वही क्षत्राणी पन्ना, जिसका अनुपम त्याग, जिसकी अपूर्व देश-भक्ति राजस्थान की महिलाओं के आदर्श की जीती-जागती कहानी है। 'राजमुकुट' उसीकी एक उज्ज्वल स्मृति है।"

कथानक

'राजमुकुट' नाटक के अतिरिक्त पंतजी ने कई नाटकों की रचना की है, जिनमें प्रसिद्ध हैं—'वरमाला', 'संध्या प्रदीप', 'प्रतिभा', 'अंगूर की बेटी', 'अंतःपुर का छिद्र' आदि। 'राजमुकुट' नाटक तीन अंकों में लिखा गया है। यह नाट्य-कृति श्री गोविन्दबल्लभ पंत की सुन्दर रचना है। इसमें इतिहास के कई अछूते प्रश्नों पर नई रोशनी पड़ती है। नाटककार ने मेवाड़ के इतिहास और टॉड के 'राजस्थान' से कथा के सूत्र लिए हैं, पर यत्र-तत्र आपने अपनी मौलिक कल्पना का चमत्कार दिखाया है। 'राजमुकुट' में विक्रम सिंह, उदय सिंह, बनवीर, चन्दन, आशा शाह, पन्ना आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। बहादुर सिंह और शीतल सेनी नाटककार की कल्पना के पात्र हैं। बहादुर सिंह पन्ना धाय का पति है, जो राणा संग्राम सिंह के साथ युद्ध में घायल हुआ था और उसका एक हाथ कट गया था। बाद में वह पन्ना और अपने नवजात शिशु चन्दन को छोड़कर तांत्रिक बन गया था। इसी प्रकार शीतल सेनी बनवीर की माँ है। वह संग्राम सिंह के छोटे भाई पृथ्वीराज की पत्नी है और है बनवीर की माँ। वह दासी थी और पृथ्वीराज की उप-पत्नी थी। उसके षड़यन्त्र से ही बनवीर ने राणा विक्रम सिंह की हत्या की और राणा सांगा के छोटे पुत्र उदय सिंह की हत्या करने का प्रयत्न किया। किन्तु पन्ना ने अपने बेटे चन्दन की बलि देकर उदय की रक्षा की।

षड़यन्त्र के मूल में

पंतजी ने दिखाया है कि बनवीर स्वयं क्रूर और हत्यारा नहीं था। शीतल सेनी राजमाता बनना चाहती थी और उसीके षड़यन्त्र से बनवीर पर हत्या का भूत सवार हुआ और राजमुकुट के लिए लालसा बढ़ी। इतिहास से बनवीर का यह चरित्र मेल नहीं

खाता। फिर भी नाटककार ने इसे बखूबी दिखाने की कोशिश की है। 'राजमुकुट' में राणा विक्रम सिंह को ऐय्याशी दिखाया गया है। वह अयोग्य और निकम्मा था। नाटक में उसे अत्यधिक मद्यप के रूप में चित्रित किया गया है। वह अकाल से पीड़ित प्रजा की सेवा करने से भी इन्कार करता है और अपने सरदारों को अपने आचरण से रुष्ट करता है।

बनवीर स्वयं न तो राणा विक्रम सिंह की हत्या करना चाहता है और न कुमार उदय की। इसे प्रथम अंक के चतुर्थ दृश्य में नाटककार पंत ने इस भांति दिखाया है—

शीतलसेनी—नहीं, अभी तीन सीढ़ियाँ चढ़ने को और शेष हैं।

बनवीर—वे कौन सी हैं, माँ!

शीतलसेनी—समय आने पर तुम्हें स्वयं ज्ञात होंगी। तुम्हारे मित्र कम हो गए हैं, बनवीर! तुमने शत्रुओं को कम करने का विचार नहीं किया?

बनवीर—जिसे सरदारों के अनुरोध ने बंदी किया है, उसीका तुम्हारे अनुरोध से, कहती हो....

शीतलसेनी—हाँ, हाँ, बध करो। परमेश्वर के अतिरिक्त तुम्हारा विचार करने वाला कोई नहीं है। उसको उत्तर मेरा अपमान देगा। उस अग्नि में मैं पल-पल जल रही हूँ, बनवीर! तुम उस पीड़ा का अनुभव नहीं कर पाते।

बनवीर—विक्रम का वध, तुम न जाने कितने दिनों से यही कह रही हो। क्या हम दोनों एक साथ नहीं बढ़े हैं। तुमने विक्रम को भी दूध पिलाया है, माँ! वह मेरे ताऊजी का लड़का है। उसकी हत्या न हो सकेगी।'

('राजमुकुट' नाटक, प्रथम अंक, चतुर्थ दृश्य, पृ० ४४-४५)

इतना ही नहीं शीतलसेनी राजकुमार उदय सिंह की हत्या के लिए भी बनवीर को उकसाती है। वह कहती है कि मेवाड़ के एकछत्र राणा बनने के लिए उदय सिंह की हत्या जरूरी है।

शीतलसेनी—वही (बन्दी विक्रम सिंह) अब फिर न जाने किस समय तुम्हारे बध की चेष्टा करे। मुझे यही चिन्ता नोच रही है। कौरव क्या पाण्डवों के भाई नहीं थे? न्याय और नाते का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। विक्रम का बध करो और रक्त सूखने के पहले ही उसी कटार से उदय....

बनवीर—(बाधा देकर) चुप-चुप, यह क्या कहती हो ? उदय की मां मर गई, उसके बाद कई दिन तक तुमने उसे अपनी छाती से लगाया। राज-नीति के परदे में विक्रम को दण्ड दिया भी जाये, तो इस अबोध बालक उदय का क्या अपराध है ! (वही, पृ० ४५-४६)

यह नाटककार पंत की अपनी कल्पना है कि इतिहास में प्रसिद्ध क्रूर-हिंसक बनवीर को दूसरे ही रूप में चित्रित किया है। वह अपनी माँ के कारण विक्रम सिंह की हत्या कर उदय को मारने जाता है, पर उदय के धोखे में चन्दन को मार देता है।

इसी कथानक पर डॉ० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी में 'दीप-दान' एकांकी लिखा है। 'राजमुकुट' नाटक के उस दृश्य में, जिसमें बनवीर उदय सिंह की हत्या करने जाता है, 'दीप-दान' में काफी समानता है। किन्तु 'राजमुकुट' से 'दीप-दान' एकांकी अधिक सशक्त रचना है और उसका काफी प्रचार-प्रसार हुआ है।

'राजमुकुट' में राजकुमार उदय की पन्ना के द्वारा रक्षा ही नहीं दिखाई गई है। कमलमीर के राजा आशा शाह तथा मेवाड़ के अन्य सरदारों की मदद से उदय सिंह को मेवाड़ के राणा का 'राजमुकुट' पहना कर नाटक का पटाक्षेप होता है। श्री गोविन्द वल्लभ पंत का 'राजमुकुट' नाटक काफी प्रसिद्ध हुआ और १९३५ ई० से १९४३ ई० तक उसके दस संस्करण प्रकाशित हुए। यह 'राजमुकुट' की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

रामकुमार वर्मा का 'दीप-दान' एकांकी

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और एकांकीकार हैं। आपने कई काव्य कृतियों का प्रणयन किया, जिनका उल्लेख हमने काव्य अध्याय में किया है। १९३५ ई० में प्रो० रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आंखें' एकांकी संग्रह गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इस एकांकी संग्रह में ६ एकांकी हैं। महाकवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' के 'छियासठ समयों' में पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर मुहम्मद गोरी अपने वतन गजनी ले गया। 'सड़सठ समयो' में (बान बेध-समयो) में पृथ्वीराज की शब्दबेधी बाण-विद्या का वर्णन है। पृथ्वीराज के शब्दबेधी बाण से शहाबुद्दीन गोरी का बध होता दिखाया गया है। इसी कथानक पर डॉ० वर्मा ने 'पृथ्वीराज की आंखें' शीर्षक एकांकी लिखा है। रामकुमार वर्मा का दूसरा एकांकी संग्रह 'दीप-दान' १९५३ ई० में प्रकाशित हुआ, जिसमें पन्ना धाय पर 'दीप-दान' एकांकी की रचना हुई है। 'दीप-दान' वर्माजी का प्रसिद्ध एकांकी है। इसमें राणा सांगा के पुत्र उदय सिंह की रक्षा पन्ना अपने पुत्र चन्दन का बलिदान देकर करती है। पन्ना धाय के इस त्याग से राजस्थान गौरवान्वित है। इस वीर रमणी पर बंगला और हिन्दी में कई नाटक और कहानियाँ लिखी गई हैं।

राजपूतों की वीरता

डॉ० रामकुमार वर्मा का 'दीप-दान' एकांकी एक गीत से आरम्भ होता है। इस राजस्थानी गीत में मृत्यु-पर्व को एक उत्सव के रूप मे बताया गया है। राजस्थान मे धर्म की रक्षा के लिए, नारी के सतीत्व के लिए तथा देश की स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु को खुशी-खुशी वरण किया जाता है। गीत इस प्रकार है—

कंकण बंधन रण चढ़ण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिहाड़ा त्याग रा, कांई रंक कांई राव ।।
घर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़ंता ताव।
ए तीनहु दिन मरण रा, कांई रंक कांई राव ।।

('दीप-दान' एकांकी, पृ० ४)

विवाह, युद्ध-गमन और पुत्रोत्पन्न तो उत्सव हैं ही, किन्तु राजस्थान में देश की स्वतन्त्रता के लिए, धर्म की रक्षा के लिए और नारी-जाति की मान-मर्यादा के लिए भी मरण-उत्सव का पालन राजा और प्रजा दोनों की ओर से होता है। राजस्थान का हर नागरिक चाहे वह गरीब हो या अमीर मरण-उत्सव में सानन्द भाग लेता है।

पन्ना की यह उक्ति इस बात का प्रमाण है, वह बालक उदय सिंह से कहती है— 'तलवार से डर ? चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर ! जैसे लता में फूल खिलते हैं न वैसे ही यहां वीरों के हाथों में तलवार खिलती है ·· तलवार चमकती है।' ('दीप-दान' एकांकी, पृ० ६)

'दीप-दान' एकांकी के पृ० १० पर पन्ना सोना से कहती है—'तुम्हारे इस नृत्य त्योहार से चित्तौड़ परिचित नहीं है। यहाँ का त्योहार आत्म-बलिदान है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वन्दना का गीत है। उसे सुनो और समझो !'

दुष्ट बनवीर ने राणा सांगा के पुत्र उदय सिंह को मारने के लिए उत्सव का षड़यन्त्र किया था और रावल सामन्त की बेटी सोना को पन्ना के पास उदय सिंह को बुलाने भेजा था। धाय पन्ना बनवीर की इस कूटनीति को भली प्रकार जानती थी। जब बनवीर ने महाराणा विक्रमादित्य की हत्या कर दी और उदय सिंह को मारने के लिए आने लगा तो पन्ना ने उदय सिंह के स्थान पर अपने पुत्र चन्दन को सुला दिया और कीरत बारी (नाई) की मदद से उदय सिंह को जूठी पत्तलो की टोकरी मे रख कर सुरक्षित स्थान पर भेज दिया।

कुल-दीपक का बलिदान

पन्ना अपने कलेजे पर पत्थर रख कर अपने पुत्र को उदय सिंह की शैया पर

सुलाती हुई एक गीत गाती है—

> उड़ जा पँखेरुआ सांझ पड़ी ।
> चार पहर बाटडली जोही
> मेड्याँ खड़ी ए खड़ी ।
> डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा
> लग रही झड़ी ए झड़ी । (वही, पृ० २७)

पन्ना जानती है कि बनवीर उदय सिंह की हत्या करने आ रहा है । तब वह इस गीत को गाती है, अपने पुत्र चन्दन को सदा के लिए सुला देने के लिए । बनवीर तलवार लेकर आता है, वह पन्ना को तरह-तरह के प्रलोभन देता है, जिससे पन्ना उदय सिंह को उसके सुपुर्द कर दे । बनवीर उदय सिंह की हत्या करने के बाद मेवाड़ का शासक बनना चाहता है । वह उदय सिंह का संरक्षक था, पर राज्य-लोभ से हिंसक पशु बन गया था । पन्ना उदय सिंह की अपने प्राण प्यारे की बलि देकर रक्षा करती है । बनवीर उदय सिंह के धोखे में चन्दन को तलवार से मार देता है और इस प्रकार मेवाड़ के कुल का दीपक तो बच जाता है, पर पन्ना का कुल-दीपक बुझ जाता है ।

ऐसे आत्म-त्याग की दास्तान संसार में दीपक लेकर खोजने पर भी शायद ही मिले । पन्ना के इस उदात्त चरित्र का चित्रण डॉ० वर्मा ने 'दीप-दान' एकांकी में किया है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक नाटक

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य चतुरसेन शास्त्री हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास तथा कथा-साहित्य लिखने के प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार माने जाते हैं । आपने कई ऐतिहासिक उपन्यास और नाटक लिखे हैं तथा सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं । 'सोमनाथ', 'वैशाली की नगर-वधू' तथा 'वयं रक्षामः' आपके ऐतिहासिक उपन्यास हैं । 'वयं रक्षामः' का प्रथम प्रकाशन भागलपुर के शारदा प्रकाशन से १९६० ई० में हुआ । उन दिनों मैं भागलपुर के मारवाड़ी कॉलेज में प्राध्यापक था । शारदा प्रकाशन के सत्वाधिकारी श्री भगवती प्रसाद डोलिया के अनुरोध पर मैंने 'वयं रक्षामः' का सम्पादन किया । चूंकि शारदा प्रकाशन से चतुरसेन शास्त्री की ४० पुस्तकें प्रकाशित करने का अनुबन्ध हुआ था । अतः मुझे शास्त्रीजी से मिलने दिल्ली भी जाना पड़ा, चतुरसेन शास्त्री के शाहदरा स्थित निवास में उनसे ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ और मुझे कई ऐतिहासिक जानकारियाँ मिलीं । शास्त्रीजी का जन्म राजस्थान में सन् १८९१ ई० में हुआ था । मूलतः आप वैद्य थे, किन्तु साहित्य

की ओर झुकाव होने के कारण साहित्य-सृजन करने लगे। आपमें लिखने की अद्‌भुत क्षमता थी। आपने सौ से अधिक महत्वपूर्ण मौलिक कृतियों का सृजन किया है।

'उत्सर्ग' नाटक

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'उत्सर्ग' नाटक १९३६ ई० में गंगा पुस्तक-माला, लखनऊ से प्रकाशित हुआ। इस नाटक में चित्तौड़ के वीर जयमल तथा उसकी वीर रानी की अद्‌भुत वीरता का वर्णन है। इसमें चित्तौड़ के तीसरे साके का बड़ा ही वीरतापूर्ण चित्रण है। जयमल की वीर पत्नी और पत्ता की वीरता को देखकर अकबर कहता है—'ये शेर सिपाही अगर मुझे मिल जायें तो मैं तमाम दुनिया को फतह कर सकता हूँ।' ऐसी वीरांगना का तेज देख कर भारत की क्षत्राणियों का गौरव आँखों के सामने नाचने लगता है।

चतुरसेन का 'छत्रसाल' नाटक

आचार्य चतुरसेन ने १९६६ ई० में 'छत्रसाल' नाटक की रचना की, जिसका प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। महाराष्ट्र के यशस्वी लेखक आनन्दचन्द शाह, वकील ने मराठी भाषा में एक उपन्यास लिखा था। 'छत्रसाल' नाटक का कथानक उसी के आधार पर है। नाटक में मुगलों के प्रतापी बादशाह आलमगीर (औरंगजेब) के लड़खड़ाते मुगल-साम्राज्य के विरुद्ध बुन्देले वीर चम्पत राय और उनके वीर पुत्र छत्रसाल के साहस और आत्म-त्याग का कथानक है।

चतुरसेन का 'अमर राठौर' नाटक

पारसी थियेट्रीकल कम्पनियों की भांति ग्रामीण अंचलों में नौटंकियों के माध्यम से भी नाटक मंचित होते थे और लोग इनका आनन्द उठाते थे। सामाजिक एव ऐतिहासिक विषयों पर कई नाटक नौटंकियों के मंच पर अभिनीत होते। यहाँ ऐसे ही एक नाटक 'अमर राठौर' का उल्लेख हम करना चाहेंगे। इस नाटक की रचना हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने सितम्बर, १९३३ ई० में की, जिसका प्रकाशन श्री ऋषभचरण जैन ने साहित्य-मण्डल, दिल्ली से किया है।

कथानक

'अमर राठौर' नाटक में एक ऐसी सामान्य घटना का वर्णन किया गया है, जिसने भयंकर युद्ध का रूप धारण कर लिया। यह घटना सं० १७०० की है। उस समय राठौरों की एक गद्दी नागौर में थी। अमर सिंह के पिता महारज गज सिंह जोधपुर के महाप्रतापी वीर थे। उन्होंने बादशाह जहाँगीर के लिए ५२ युद्ध किए

थे। गजसिंह दिल्ली दरबार में पाँच हजारी मनसबदार थे। जोधपुर के राजा गजसिंह कवियों और गुणियों का आदर करते थे। गजसिंह के तीन पुत्र हुए। बड़ा पुत्र अमर सिंह था, दूसरा अचलदास बाल्यावस्था में ही मर गया था। तीसरा सबसे छोटा पुत्र था यशवन्त सिंह। यशवन्त सिंह प्रबल प्रतापी था, जिसकी तलवार का लोहा औरंगजेब के समय काबुल तक माना जाता था।

अमर सिंह अत्यन्त उद्धत स्वभाव का था। वह हठी था, पर बात का धनी और क्रोधी स्वभाव का था। उसके उद्धत स्वभाव के कारण एक बार गजसिंह ने उसे सं० १६६० में देश-त्याग का हुक्म दे दिया। इससे अमर सिंह बादशाह शाहजहाँ के दरबार में आकर रहने लगा।

'मतीरा' बना युद्ध का कारण

अमर सिंह राठौर की जागीर (नागौर) और बीकानेर राज्य की सीमाएं आपस में मिली हुई थीं। अमर सिंह ज्यादातर आगरे के शाही दरबार में ही रहता था। बीकानेर के राजा कर्णसिंह भी बड़े वीर, कवि और प्रतापी थे। दुर्भाग्य से एक घटना ऐसी घटी कि एक मतीरे (तरबूज) की बेल, जो नागौर की हद (सीमा) में उगी थी और बीकानेर की सरहद में चली गई थी। उस बेल का फल (मतीरा) बीकानेर की सीमा में लगा था। इस मतीरे के कारण नागौर और बीकानेर के लोगों में झगड़ा हो गया, जिसने भयंकर युद्ध का रूप धारण कर लिया। नागौर वाले कहते थे, यह मतीरा हमारा है क्योंकि इसकी बेल हमारी हद में उपजी है, परन्तु बीकानेर के लोगों का कहना था कि वह मतीरा हमारा है, हमारी हद मे पैदा हुआ है। नतीजा यह हुआ कि दोनों राज्यों की सेनाएँ आकर डट गई। युद्ध मे बीकानेर की विजय हुई और बीकानेर वाले विजय का धौंसा बजाते हुए मतीरा अपने साथ ले गए। राजा अमर सिंह ने जब आगरे में अपनी सेना की हार का सन्देश सुना तो क्रोध से भभक उठा। उसने तत्काल नई सेना देकर युद्ध के लिए भेज दी। उसने आज्ञा दी कि मुमकिन हो तो मतीरा छीन लाना। इससे बात आगे बढ़ी और महाराज कर्णसिंह ने बख्शी सलाबत खाँ के द्वारा बादशाह को अर्जी भेजी कि वे ही इस मामले में मध्यस्थता कर फैसला करें। बख्शी सलावत खाँ बादशाह का मित्र था। उसकी चेष्टा से बादशाह ने अब्दुल अजीज नामक एक न्यायनिष्ट व्यक्ति को अमीन बना कर सरहद पर भिजवाया। साथ ही दोनों राजाओं को अपनी-अपनी सेना वापस बुलाने की आज्ञा दी, परन्तु अमर सिंह ने इसे मानने से इन्कार कर दिया।

इसी समय एक घटना और घट गई। शाही दरबार में एक नियम था कि प्रत्येक दरबारी-उमराव को बारी-बारी से बादशाह की ड्योढ़ियों पर पहरा देना पड़ता था। बड़े-बड़े राजा और सरदारों को अपनी छावनी डाल कर ड्योढ़ियों पर पहरा देना पड़ता

था। जब अमर सिंह की पारी आई और उसे पहरा देने की आज्ञा हुई तो उन्होंने क्रोध-पूर्वक साफ इन्कार कर दिया। इन सब बातों से बादशाह शाहजहाँ अप्रसन्न हो गया और अमर सिंह पर सात लाख रुपए का तावान कर दिया।

अमर सिंह की वीरता

दूसरे दिन जब अमर सिंह दरबार मे हाजिर हुआ तो बख्शी सलावत खाँ ने उन्हे शाही दण्ड (तावान) का भुगतान करने के लिए भरे दरबार मे कहा। बातों मे बात बढ गई और उन्होंने क्रोध मे आकर कटार सलावत खाँ के पेट मे भोक दी तथा बादशाह पर भी वार किया। बादशाह शाहजहाँ बच गया, कटार खम्भे से जा टकराई। अमर सिंह शाही फौज मे लडते-लडते बुर्ज पर चढ गए और वहाँ से आम-खास के मैदान मे घोडे सहित कूद पडे। घोडा तो वही मर गया, पर वे पैदल अपने निवास (नोमहले) मे पहुँच गए। उनके साले अर्जुन गौड ने उन्हे धोखे से मार डाला। बादशाह ने उनकी लाश को बुर्ज पर डलवा दिया। जब अमर सिंह की रानी ने सती होना चाहा तो महाराज अमर सिंह के शव को लाने की चिन्ता हुई। यह कार्य महाराज अमर सिंह के प्रधान भाऊजी कम्पावत ने बल्लूजी को सौंपा, जो वहीं रहते थे। बल्लूजी ने अपनी वीरता और बुद्धिमानी से इस कार्य को सम्पन्न किया। लाश लाते समय बल्लू सिंह की सेना का युद्ध बुखारा फाटक पर हुआ था। यह घटना सम्वत १७०१ की है। उसी दिन से यह फाटक शाही हुक्म से बन्द कर दिया गया। जिस बुर्ज मे घोडा कुदाया गया था, उसे आगरे मे 'अश्व बुर्ज' अब भी कहा जाता है। कहते हैं कि बुखारा फाटक को जब-जब किसी ने खोलना चाहा एक विषधर सर्प ने उसकी चूल से निकल कर उसे डस लिया। बहुत दिन तक लोग उस फाटक के पास जाने से भय खाते थे। अन्त मे सन् १८०८ ई० में अंग्रेज कप्तान मि० स्टील ने उस फाटक को खोला और वह सर्प वहाँ से निकल कर अन्यत्र चला गया।

नागौर मे अमर सिंह की छतरी बनी है। इनके पुत्र का नाम रामसिंह था, जिसने औरंगजेब के राज्य-काल मे अपनी वीरता का परिचय दिया था। इन्हीं रामसिंह के पुत्र इन्द्र सिंह से जोधपुर के महाराज अजीत सिंह ने नागौर छीन लिया था। अजीत सिंह महाराज यशवंत सिंह का पुत्र था और इन्द्र सिंह महाराज अमर सिंह का पौत्र था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना

उल्लेखनीय है कि आगरे के किले की बुर्ज से अमर सिंह की लाश लाने में अमर सिंह के एक पगड़ी बदल मुसल्मान पठान भाई शहबाज खाँ ने बड़ी मदद की थी। अमर सिंह ने शहबाज खाँ की जान एक बार बचाई थी, तभी से वह अपने हिन्दू दोस्त के ऋण से उऋण होने का इन्तजार कर रहा था। जब अमर सिंह की रानी ने सती होने

के लिए पति की लाश लाने का उससे अनुरोध किया तो शहबाज खाँ पठान सिपाहियों की सेना लेकर बुर्ज के पास चला गया और बल्लूजी आदि वीर लाश को लाने में कामयाब हुए। इस रोचक घटना का 'अमर सिंह' नाटक मे सहृदयता से वर्णन हुआ है—

(स्थान—शहबाज खाँ का डेरा। वह अपने पुत्र नबीरसूल के साथ बैठा तलवारें साफ कर रहा है। घोड़े बन्धे हैं। दो-चार पठान पास बैठे है। एक खंजरी बजा कर कुछ गा रहा है। पत्रवाहक का प्रवेश)

पत्रवाहक—क्या यहीं शहबाज खाँ का डेरा है ?

शहबाज खाँ—(खड़े होकर) यही गुलाम शहबाज खाँ पठान है। आप कहाँ से आये हैं मेहरबान ?

पत्रवाहक—नौमहले (अमर सिंह का आगरा स्थित महल) से आ रहा हूँ। (खत देता है।)

शहबाज खाँ—(प्रसन्न होकर) मेरे मेहरबान दोस्त महाराज अमर सिंह का नियाजनामा लाये हो ? (पत्र को चूम कर और आँखों से लगा कर) खुदा उस बहादुर पर बरकत दे, जिसने एक दिन यह जान बचाई थी। उसी के काम यह जान आवे। (सिपाही से) महाराज अच्छे तो हैं ?

पत्रवाहक—आपको सब हकीकत इस खत में मिलेगी।

शहबाज खाँ—(खत पढ़ता है। खत हाथ से छूट जाता है।) आह! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ? महाराज, मेरे मेहरबान महाराज मारे गए ? (दोनो हाथों से आँखें बन्द कर लेता है।) जिसके बराबर शेर दिल, जवांमर्द पैदा नहीं हुआ। (पुत्र से) बेटा नबीरसूल! अभी कबीले के सभी लोगों को इकट्ठा करो।

('अमर राठौर' नाटक, तीसरा अंक, आठवाँ दृश्य, पृ० १२५-१२६)

इस प्रकार चतुरसेनजी ने दिखाया है कि शहबाज खाँ पठान सेना लेकर बुर्ज पर जाता है और प्राणों की बलि देकर अमर सिंह की लाश का उद्धार करता है और रानी लाश के साथ सती होती है।

'अमर राठौर' के इसी तीसरे अंक और आठवें दृश्य में पठान एक गीत गाते हैं, देखिए,—

हम तन-मन वारेंगे, होंगे कुर्बान ।
मुसाफिर हैं एक राह के दुनिया के सब इन्सान ।
बन्दे-खुदा सभी हैं, हिन्दू और मुसलमान ।।
काबे में क्या धरा है जो मन्दिर में नहीं है ।
दिल में रमा वही है तो कुछ भी नहीं है ।।

(वही, पृ० १२६)

यह थी तत्कालीन हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना, जो १६३३ ई० के काल-खण्ड में प्रबल थी। चतुरसेन का 'अमर राठौर' नाटक इसी काल की रचना है।

इसी ऐतिहासिक कथानक पर आचार्य चतुरसेन ने 'अमर राठौर' नाटक की रचना की है। अमर सिंह की कथा नौटंकियों में अत्यधिक प्रसिद्ध है और लोग इसे बडे चाव से नाटक के रूप में देखते हैं। नाटककार ने इस नाटक में इतिहास और कल्पना का भरपूर सहारा लिया है।

'राजसिंह' नाटक

शास्त्रीजी का 'राजसिंह' नाटक १६४६ ई० मे दिल्ली से प्रकाशित हुआ। यह नाटक विद्यार्थियों में उत्सर्ग और त्याग को भरने के उद्देश्य से लिखा गया है। लेखक ने भूमिका में कोई दस पृष्ठों मे राजसिंह के समय का पूरा इतिहास दर्शाया है। चतुरसेन लिखते हैं—'महाराणा राजसिंह राजपूताने के प्रकाशमान नक्षत्र थे। उन्होंने समस्त राजपूत शक्ति के निस्तेज होने पर भी अपनी आत्म-शक्ति और साधारण सत्ता से प्रबल प्रतापी मुगल बादशाह औरंगजेब का बड़ी मुस्तैदी और योग्यता से मुकाबला किया। उनमें विलक्षण सेना-नायकत्व था। वे रण-पंडित थे और थे दूरदर्शी। जजिया कर के विरोध में औरंगजेब को लिखा उनका पत्र इतिहास का अमूल्य दस्तावेज है। महाराणा राजसिंह की १८ रानियाँ थीं, जिनसे ६ पुत्र और एक पुत्री हुई।' (पृ० १-१०)

बंकिम का प्रभाव

आचार्य चतुरसेन के 'राजसिंह' नाटक मे कई नई उद्भावनाएँ हैं, किन्तु इस नाटक पर बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास की छाया दीख पड़ती है। 'राजसिंह' नाटक और 'राजसिंह' उपन्यास में कई घटनाओं का साम्य है। जैसे तस्वीर बेचनेवाली का रूपनगर आना, चारुमती (चंचल कुमारी) का आलमगीर (औरंगजेब) की तस्वीर पर लात मारना आदि। राजकुमारी चारुमती की सखी का भी वही नाम है, निर्मल

कुमारी, जो बंकिम के उपन्यास में हैं। टॉड ने रूपनगर की राजकुमारी का कोई नाम 'राजस्थान' ग्रन्थ में नहीं दिया है। बंकिम ने उसका नाम चंचल कुमारी दिया है, कुछ रचनाकारों ने उसका नाम चारुमती बताया है। किन्तु निर्मल कुमारी तो शुद्ध रूप से एक काल्पनिक चरित्र है। बंकिम ने यह नाम अपने उपन्यास में दिया है, जिसका अनुकरण चतुरसेनजी के नाटक में हुआ है। हाँ, चतुरसेनजी ने नाटक में हाड़ा रानी का विवाह चूड़ावत सरदार से नहीं दिखाया है, वह केवल सरदार की वाग्दत्ता थी, फिर भी उसने अपना सिर काट कर जिस वीरता का परिचय दिया है, वह अनोखी और महान त्याग की बात है।

'राजसिंह' नाटक के पंचम अंक, १२वें दृश्य में औरंगजेब की बेगम और पुत्री जेबुन्निसा को राजसिंह की महारानी चारुमती के सामने बन्दी दशा में पेश किया जाता है तथा बेगम को चिलम में तम्बाकू भरने का आदेश होता है। इसी उदीपुरी बेगम ने प्रतिज्ञा की थी कि वह चारुमती को औरंगजेब की बेगम नहीं, अपनी दासी बनायेगी और उससे हुक्का भरवायेगी। जेबुन्निसा के साथ महारानी अच्छा बर्ताव करती है। शाहजादी इससे प्रसन्न होती है और कहती है—

शाहजादी जेबुन्निसा—आपकी शराफत मैं नहीं भूलूँगी। कहिए आपको कुछ खिदमत भी बजा ला सकती हूँ।

रानी चारुमती—बहुत कुछ! यदि आप शहंशाह को यह समझा दें कि शहंशाह अपने मुल्क का माँ-बाप होता है और उसकी रियाया उसकी औलाद। चाहे वे हिन्दू हों या मुसल्मान, उन्हें एक ही नजर से देखना उनका धर्म है।

शाहजादी—महारानी, सल्तनत की पेचीदगी और उलझनें बादशाहों से बहुत से ऐसे काम करा देती हैं जिन्हें सब लोग नहीं समझ पाते। मैं आपके खयालात की दाद देती हूँ।'

('राजसिंह' नाटक, पृ० २२५)

चारुमती और शाहजादी के कथोपकथन में युग की वाणी ध्वनित होती दीखती है।

जोशी 'निर्भीक' की राजस्थानी नाट्यकृति : 'सैनाणी'

राजस्थान (बीकानेर) के प्रख्यात कवि, लेखक, पत्रकार एवं नाटककार श्री मथुरा प्रसाद जोशी 'निर्भीक' की 'सैनाणी' नाट्यकृति की रचना १९६३ ई० में हुई, किन्तु इसका प्रकाशन राजस्थान कला केन्द्र, कलकत्ता द्वारा १९८३ ई० में हुआ।

'सैनाणी' नाटक में एक ऐसी राजस्थानी वीरांगना के आत्मत्याग की कहानी का उल्लेख है, जिसमें उस वीर बाला ने अपनी एक सजातीय कुल ललना के सतीत्व की रक्षा मे खुशी-खुशी अपने वीर पति चूडावत को औरंगजेब की विशाल सेना का मुकाबला करने के लिए भेजा। प्रेम-मोह के वशीभूत सरदार चूडावत को उत्साहित करने के लिए उस हाड़ी रानी ने 'सैनाणी' (प्रिय पहचान) के रूप में अपना सिर काट कर दे दिया।

सैनाणी का यह कथानक राजस्थान के लोक गीतों में आज भी बड़ी तन्मयता से गाया जाता है। इस कथानक पर राजस्थानी कवि मेघराज 'मुकुल' की 'सैनाणी' कविता, कवि सौरभ का 'सती हाड़ी रानी' प्रबन्ध काव्य और शिवपूजन सहाय की 'मुण्डमाल' कहानी हिन्दी-राजस्थानी की अमर रचनाएँ हैं।

कथानक

राजस्थानी गीतों के अमर लोक गायक भोपा-भोपी (नट-नटी या सूत्रधार) के मधुर स्वरों के माध्यम से राजस्थानी संस्कृति और साहित्य के कालजयी गीत युगो से गाये जाते रहे हैं। राजस्थान के सामन्ती जीवन के अविस्मरणीय जीवन-वृत्त जिनमे प्रणय निवेदन, मनुहार, सुहागरात, विरह और युद्ध प्रमुख हैं, चारण कथाओ और भोपा-भोपी के स्वरों द्वारा विश्व के समक्ष जब प्रस्तुत किए गए तो दुनिया के लोग आश्चर्य-चकित हो गए। राजस्थान के रेतीले धोरों के गर्भ से फूटकर निकली इस रस-धारा का पानकर वे आत्म-विस्मृत से हो गए।

प्रस्तुत कथा मुगल बादशाह औरंगजेब के द्वारा राजस्थानी राजाओ व सामंतो के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करने से उभरती है। उदयपुर के महाराणा राजसिह रूपनगर की राजकुमारी को मुगलो के आतंक से बचाने हेतु युद्ध घोषणा करते है तब उनके असंख्य सरदारो में शिरोमणि एक सरदार चूडावत भी अपने महाराजा के आदेश पर युद्ध का बाना पहनते हैं। प्रस्तुत कथा का मार्मिक क्षण यहीं से आरम्भ होता है क्योंकि सरदार चूडावत अपनी सद्य परिणीता युवा पत्नी हाड़ी रानी के साथ रस-रास में निमग्न हैं कि महाराणा का सन्देश पहुँचता है।

सरदार इधर पत्नी-प्रेम मे व्याकुल उधर कर्त्तव्य की पुकार। चाहकर भी रानी को छोड़ नहीं पाते। कर्त्तव्यनिष्ठ रानी उन्हें युद्ध के वेष में सजा कर युद्ध क्षेत्र की ओर प्रस्थान भी कराती हैं, पर वे मोहवश फिर लौट आते है और रानी से उसकी यादगार स्वरूप कोई प्रिय वस्तु मांगते हैं। अमर राजस्थान की वीरांगना अपने मोहासक्त पति को धिक्कारती हुई तलवार निकालकर अपना सिर 'सैनाणी' के रूप में अपने पति को भेंट कर देती है।

'सैनाणी' नाटक के दिखावो ७ (सातवें दृश्य) मे सरदार चूड़ावत को उस समय महाराणा राजसिंह का युद्ध में कूच करने के लिए हुकमनामा मिलता है, जब वे

अपनी नवोढ़ा पत्नी के साथ प्रेम-रस में निमग्न है। वीर चूड़ावत परवाना लाने वाले को कहते हैं कि 'जाओ सिरदार, महाराणा नै अर्ज कर द्यो कै चूड़ावत विजय सिंह काल पौ फाटणै के साथ ही रूपनगर रै साथ कूच कर रैया है।' ('सेनाणी' नाटक, पृ० १३)

जब हाड़ी रानी (चन्द्रमुखी) युद्ध में जाने का कारण पूछती है तो सरदार चूड़ावत इसी दृश्य में कहते हैं कि रूपनगर के सोलंकी वंश की राजकुमारी चंचल से बादशाह औरंगजेब जबरदस्ती विवाह करना चाहता है और राजकुमारी अपने नारीत्व की और हिन्दुत्व की रक्षा के लिए महाराणा को वर चुकी है। बादशाह औरंगजेब का सेनापति मुबारक खाँ रूपनगर की राजकुमारी का अपहरण करने के लिए आ रहा है। मुझे उसकी सेना को रास्ते में रोकना है, जिससे महाराणा राजसिंह राजकुमारी से विवाह कर सकुशल उदयपुर लौट सकें।

चूड़ावत—तो सुणौ राणीजी····म्हे आज रूपनगर की राजकुमारी चंचल की लाज बचाणै कै ताँई दिल्ली कै बादशाह औरंगजेब को मुकाबलो करणै जार्‍या हाँ।

चन्द्रमुखी—सत्य अर न्याय नै निभाणै रै ताँई, बालक अर नारी की रक्षा कै तांई बलिदान हो ज्याणै अर सुहागरात अर रंग महल को जगाँ युद्ध कै मोरचै पर मरणैवालौ ही साँचौ राजपूत हुया करै है—सिरदार। (वही, पृ० १४)

चूड़ावत सरदार घोड़े पर सवार होकर युद्ध भूमि के लिए प्रस्थान करता है, किन्तु पुनः प्रेमवश लौट आता है तब हाड़ी रानी अपनी दासी से महल का दरवाजा बन्द करने को कहती है। वह वीरांगना युद्ध से विमुख पति को देखने में हेठी समझती है। चूड़ावत बन्द दरवाजा के बाहर से राणी की परीक्षा का प्रमाण चाहता है—

चन्द्रमुखी—चकवी (दासी), सिरदार नै पूछ्यौ जावै कै युद्ध कै नगाड़ै रै सागै जाण हालै चूड़ावत सिरदार नै अन्तःपुर में आणै री काँई जरूरत होगी?

चूड़ावत—राणीजी, ईं चाँद सै मुखड़ै नै म्हारै कानी करके पूछो तो सही कै म्हारै आणै रौ कांई कारण है?

चन्द्रमुखी—सही कारण जाण्याँ बिना राजपूत ललना युद्ध सूँ पाछो आयोड़ै मर्द सूँ बात करणै मैं आपरौ अपमान समझै है। रजपूतों रै नाम पर कलंक समझै है।

चूड़ावत—तो जातां जातां थारी आशा अर अटल विश्वास री, म्हारै संतोष रै तांई थारी कोई सैनाणी तो द्यौ राणीजी !

चन्द्रमुखी— आत्म विह्वल होकर) ठहरो सिरदार, आज म्हे थानै म्हारी प्यारो सैनाणी दे रह्या हाँ जीसूँ थारी वीरता अमर हो जांसो अर इतिहास थारो गुण गासो।

('सैनाणी' नाटक, पृ० १६-१८)

हाड़ी रानी तलवार से अपना सिर काट कर चूड़ावत को सैनाणी देती है और नाटक के अन्त में भोपी कहती है—

फिर कट्यौ सीस गल बांधलियौ चूड़ावत ले ली सैनाणी
कर सिंहनाद हर हर महादेव, बोल्यौ जय जय क्षत्राणी
आ अमर रै वै ली सैनाणी, मरुधर री रजवण सैनाणी।....

(वही, पृ० १८)

आलोचना

जोशी 'निर्भीक' के राजस्थानी 'सैनाणी' नाटक में प्रेम-रस का जैसा परिपाक हुआ है उतना वीर-रस का नहीं। इसका कारण है लेखक ने हाड़ी रानी के मुकलावे (द्विरागमन) का प्रसंग अपनी रचना में जोड़ा है। चूड़ावत ससुराल जाते हैं, सालियाँ मनुहार करती हैं, पहेलियाँ पूछती हैं। आश्चर्य है द्विरागमन के बाद सुहागरात की बात लेखक ने क्यों लिखी है, जबकि अन्य रचनाकारों ने नवोढा हाड़ी रानी का वर्णन किया है, जिसके विवाह का कंगन खुला नहीं, हाथ की मेंहदी सूखी नहीं और उसे अपने पति को युद्ध के लिए विदा करना पड़ा। मेघराज मुकुल की 'सैनाणो' कविता और शिवपूजन सहाय की 'मुण्डमाल' कहानी में ऐसा ही वर्णन है, केवल चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'राजसिंह' नाटक में हाड़ी रानी को वाग्दत्ता बताया है। 'निर्भीक' जोशी के 'सैनाणो' नाटक पर पूर्व की इन रचनाओं का प्रभाव है। सर्वोपरि बंगला के उपन्यासकार बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास की नाटक पर छाया है। बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास का कथानक टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित है। 'सैनाणो' के पात्र लगता है राजसिंह उपन्यास को मूर्त्त रूप दे रहे हैं और सम्वाद शिवपूजनसहाय की 'मुण्डमाल' कहानी के भावों को राजस्थानी भाषा में अभिव्यक्त कर रहे हैं। किन्तु जोशीजी ने 'सैनाणी' नाटक में चूड़ावत सरदार का नाम 'विजय सिंह' तथा हाड़ी रानी का नाम 'चन्द्रमुखी' दिया है, यह उनकी विशेषता है।

श्री मथुरा प्रसाद जोशी 'निर्भीक' ने राजस्थानी-हिन्दी में नाट्य रचनाएँ की

हैं। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'जय जंगलधर बादशाह', 'सावण री तीज', 'सेजांरा सिणगार', 'हल्दीघाटी', 'दुर्गादास' आदि। आपके नाटक कलकत्ता के आर्ट सेंटर, मिनर्वा थियेटर आदि रंगमंचों पर समादृत हुए हैं। प्रस्तुत नाटक 'सैनाणी' उनकी अच्छी राजस्थानी कृति है। जैसे मुकुल की 'सैनाणी' के रेकार्ड लाखों की संख्या में बिके, वैसे ही निर्भीकजी के 'सैनाणी' नाटक का 'लाँग प्ले रेकार्ड' 'हिज मास्टर वॉयस' (H. M. V.) से प्रचारित हुआ। 'लाँग प्ले रेकार्ड' नाटक के अन्त में भोपा-भोपी गाते हैं—

"जब तक खड्यो हिमालय रैसी अर गंगा में पाणी
आभौ-धरती कण-कण गासी मरुरी आ सैनाणी"

सचमुच जब तक हिमालय रहेगा और गंगा-जमुना रहेगी तब तक आकाश और धरती मरुधरा के वीरों और वीरांगनाओं की यशोगाथा को गायेंगे। निर्भीकजी ने 'सैनाणी' नाटक की रचना कर इस यशोगाथा की माला में एक फूल और पिरोया है।

कवि 'सौरभ' का 'सती हाड़ी रानी' प्रबन्ध-काव्य

टॉड के 'राजस्थान' से रूपनगर की रूपकुमारी (चंचल कुमारी) की कथा को लेकर बंगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने १८८२ ई० में अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'राजसिंह' लिखा और उसकी हाड़ीरानी की उपकथा को लेकर राजस्थानी भाषा के कवि मेघराज मुकुल ने 'सैनाणी' काव्य की रचना १९४४ ई० में की। बंकिम के उपन्यास के सम्पूर्ण कथानक पर १९४८ ई० में चिउरापुर (काशी) निवासी ठाकुर शुकदेव सिंह 'सौरभ' ने 'सती हाड़ी रानी' प्रबन्ध काव्य बीस सर्गों में लिखा। इस काव्य-ग्रन्थ का प्रकाशन काशी में हुआ, जिसकी भूमिका काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के प्रो० करुणापति त्रिपाठी ने लिखी है। प्रो० त्रिपाठी ने भूमिका के पृ० ५-६ पर लिखा है—'हिन्दी के द्विवेदी युग में स्वतंत्रता के लिए कवि राष्ट्रीय कविताएँ लिख रहे थे। इस युग में गुप्त जी, नवीन जी, भारतीय हृदय जी आदि ने इस ओर प्रयास किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्राणों की आहुति देने को मचल-मचल कर आगे बढ़ने वाले वीरों की भावना की पूजा करने और उसके द्वारा राष्ट्र की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए इन राष्ट्र-प्रेमी कवियों की काव्य-वाणा झंकृत होकर बजने लगी। भारत के वीर-पुरुषों की ऐतिहासिक कहानियों के आधार पर, हिन्दी में छायावाद काव्य-धारा के प्रवर्त्तक प्रसाद, निराला आदि ने लघु-प्रबन्ध-काव्यों की रचना की। अभिव्यंजना शैली उनकी भले ही छायावादी रही हो, पर उनके भाव में

सांस्कृतिक संदेश की रागिनी स्पष्ट सुनाई पड़ती है।' फलतः 'विकट भट', 'महाराणा का महत्व', 'शिवाजी का पत्र', 'हल्दीघाटी', 'जौहर' आदि प्रबन्ध-काव्य हमारे सामने आये। हिन्दी के प्रगतिवाद में भी ऐतिहासिक वीरों पर प्रबन्ध-काव्य लिखे गए! कवि सौरभ का प्रबन्ध-काव्य 'सती हाड़ी रानी' प्रगतिवाद के उत्तरार्द्धकाल में लिखी रचना है।'

'सती हाड़ीरानी' बीस सर्गों में विभक्त प्रबन्ध-काव्य है। इसकी ऐतिहासिक घटना टॉड के 'राजस्थान' तथा बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास से ली गई है। बंकिम ने ही रूपनगर की राजकुमारी का नाम 'चंचल कुमारी' दिया है। अन्य इतिहास ग्रन्थों में उसका नाम रूपकुमारी, रूपवती, चारुमती मिलता है।

ठाकुर शुकदेव सिंह 'सौरभ' ने 'सती हाड़ीरानी' काव्य में इतिहास की चित्रपटी पर कला की तूलिका में कल्पना का रंग भर कर सुन्दर काव्य चित्र उपस्थित किया है। इस काव्य में मूल कथा के आरम्भ होने के पूर्व एकलिंग, सिसौदिया वंश, मेवाड़, उदयपुर, पेशोला झील, अरावली और हल्दीघाटी का प्रशस्ति-गान किया है। इसके बाद मुगल सम्राट औरंगजेब की दुर्वासना से त्रस्त रूपनगर की राजकुमारी चंचल कुमारी द्वारा मेवाड़ के राणा राजसिंह को भेजे गए पत्र का मार्मिक वर्णन किया है। तदन्तर वीर बाला हाड़ारानी और अमर वीर चूड़ावत के आदर्श प्रेम, अद्भुत शौर्य और अनुपम बलिदान की गौरव-गाथा कही गई है। नारी की लाज और स्वदेश के मान की रक्षा के लिए वीरांगना 'हाड़ी रानी' अपने पति चूड़ावत को वीर वेष में सुसज्जित करती है और उनके युद्ध में किंचितमात्र विरत होने की आशंका से पति को युद्ध के लिए उत्साहित करने के लिए शीश-दान करती है। पुस्तक के 'अन्त दर्शन' मे पृष्ठ १४ पर लिखा गया है—'निःसंदेह विश्व के इतिहास में यह एक बेजोड़ घटना है, जिसकी पुनीत स्मृति अनन्तकाल तक देशभक्त वीरों के लिए आदर्श और कवियों के लिए प्रेरक-शक्ति का काम करेगी। वीर-रत्न चूड़ावत अपनी पत्नी के कटे शीश की माला पहन कर प्रलयंकर शंकर बन जाता है और यवन सेना को पराजित करता है। शरणागत औरंगजेब को प्राणदान करनेवाला मुण्डमाली चूड़ावत, अन्त में, मुण्डमाली की ही भांति समाधिस्थ हो जाता है। ऐसे वीर पुंगव के लिए रानी चंचलकुमारी और राणा राजसिंह आंसू बहाते और उनके अमर त्याग की प्रशंसा करते हैं।'

कवि 'सौरभ' ने 'वीर बाला' शीर्षक में हाड़ीरानी के प्रति इन शब्दों में अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं—

शिर काट दिया स्वामी को जिसने तलवार उठा कर,
जीवन की लाली रख ली, जीवन की भेंट चढ़ा कर;
जो सिसौदिया वीरों की तलवारों पर, वारों पर
पानी बन ढली हुई थी पतली पैनी धारों धारों पर,
आ महामृत्यु भी डूबी जिसके सुहाग के कण में
क्रीड़ा करते हैं शिशु-से सत्-युग जिसके लघु क्षण में,
जिसकी समाधि पर रोकर हँस देती विश्व विश्व-व्यथा है,
यह उसी वीर-बाला के जौहर की अमर कथा है।

('सती हाड़ी रानी' काव्य, पृ० २१)

'उदयपुर' शीर्षक में कवि ने मेवाड़ी वीरों के शिरोमणि स्वतन्त्रता प्रेमी राणा प्रताप के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन इन शब्दों में चढ़ाये हैं— ·

बूंदीवाले भी बिला गए, अम्बर ने अम्बर छोड़ दिया !
भारत के सभी सपूतों ने जननी से नाता तोड़ दिया !
रण में राणा का भाई भी राणा से ही रण करता था !
पर वीर केसरी हाथ उठा लाखों में यह प्रण करता था—
'शिव एकलिंग को छोड़ कहीं मैं शीश न कभी झुकाऊँगा !
जननी भी रूठी है मुझसे पर उसे स्वतंत्र बनाऊँगा।'

(वही, पृ० ३३)

टॉड के शब्दों में मेवाड़ की भूमि तो थर्मोपोली है। कवि भी इसी भावना को इन शब्दों में कहता है—

इसका अदम्य वीरत्व देख वीरता सभी पड़ती पीली !
हल्दीघाटी की रज-रज में है खेल रही थर्मोपोली !

(वही, पृ० ३४)

द्वितीय सर्ग में जब औरंगजेब की सेना रूपनगर की राजकुमारी चंचलकुमारी का अपहरण करने के लिए कूच करती है और जब राजकुमारी को इसका समाचार मिलता है तो वह मेवाड़ के राणा को अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पत्र लिखती है और उनको पति वरती है। कवि 'सौरभ' ने लिखा है—

शाही फरमान रवाना कर हाथी पर चढ़ सुल्तान चला।
फर-फर फहराता अम्बर में सेना का तुमुल निशान चला।

जाना उस अबला ने निश्चय—'यह चीर हरण की बेला है।
मेवाड़ केसरी ही केवल मेरे जीवन का मेला है।'

('सती हाड़ी रानी' काव्य, द्वितीय सर्ग, पृ० ५८)

और उसने राणा को वंशीधारी कृष्ण के रूप में पत्र लिख कर चीर-हरण की कथा का स्मरण कराया और रुक्मिणी हरण की बात भी कही। बंकिम के उपन्यास 'राजसिंह' में भी चंचल के पत्र में हम ऐसी ही भाषा पाते हैं।

राजकुमारी ने राणा को सम्बोधित करके लिखा—

हे आर्य पुत्र ! यह आर्य भूमि है पराधीनता के मुख में !!
वीरों के वंशज वीर-विरद हँस रहे दासता के सुख में !!

(वही, पृ० ६०)

चंचल कुमारी का पत्र पाकर राणा राजसिंह बारात लेकर रूपनगर जाते हैं तथा चूड़ावत सरदार औरंगजेब की सेना को मार्ग मे रोकने के लिए युद्ध में जाने को प्रस्तुत होता है। 'सती हाड़ी रानी' के दशम सर्ग में हाड़ी रानी चूड़ावत को युद्ध के लिए सजाती है और उत्साहपूर्ण वाणी से चूड़ावत का मनोबल बढ़ाती है, चूड़ावत की माँ वीर बेटे की आरती उतारती हैं—

वह राजपूत रमणी थी क्षत्राणी हाड़ी रानी
जिसके जौहर में हँसता मेवाड़ देश का पानी।
चूड़ावत वीरव्रती को वह कवच रही पहनाती,
बर्छी, बन्दूक, कटारी, कर में करताल सजाती।
जननी-मुख-लाली में रंग, पी विश्व-प्रेम का प्याला
थी विजय भावना भरती, वह विश्वमोहिनी बाला।

'निज कीर्ति अचल कर जाता जो राजपूत रणबाँका
है वही सपूत कहलाता अंचल-धन अपनी माँ का।
कायर कपूत की पत्नी है सदा अभागिन विधवा।
पर शूर-वीर-विधवा भी है सदा सुहागिन सधवा।'

जिस निर्झर का जल पीकर रण-ताण्डव-नृत्य किया था
'राणा प्रताप ने भीषण प्रलयंकर समर किया था—
लो, उसका ही जल पीलो, इस अवसर पर मत चूको।

रणभेरी स्वतंत्रता की जननी कानों में फूंको।
फिर एक बार केसरिया झण्डा फर-फर फहरा दो।
हे राजपूत रण-बांके! मेरा सुहाग लहरा दो।

फिर चूड़ावत की जननी आरती सजा कर आई,
दम्पति ने अपने सिर में चरणों की धूल लगाई।

('सती हाड़ी रानी', दशम सर्ग, पृ० १२६-१३३)

चूड़ावत सरदार अपनी प्राण प्यारी हाड़ी रानी से मिल कर युद्ध के लिए चल पड़ा। युद्ध का धौंसा बज उठा, रणभेरी गूँजने लगी। चूड़ावत घोड़े पर सवार होकर रवाना होने को उद्यत हुआ, उधर झरोखे में उसने अपनी नवपरिणिता हाड़ी रानी के लावण्य को देखा। उस रूप सुषमा को देखकर चूड़ावत का मन डोल गया, मन शंकित हो गया उस रूप के सागर को देखकर। मन की शंका चेहरे पर उभर आई।

जब उधर बजी रणभेरी, आई प्रयाण की बेला,
नीरव-सा लगा हुआ था उन मर्मों का मेला—
झांकती झरोखे से थी रानी ललकित आँखों से
उसकी उदीप्त मुखाभा थी आज अलख लाखों से।
सचकित मेवाड़-चमूपति चूड़ावत वीरव्रती को
अपलक दृग देख रही थी प्रलयंकर रुद्र यती को।
सेनानी की आँखों ने मधुकर आँखों को।
उस रूप-विभा पर उसने कुर्बान किया लाखों को।
पर इस अभिनय में सहसा कुछ हो आई आशंका।
विस्मित हो मन में बोला वह वीरव्रती रण-बंका।

(वही, द्वादश सर्ग, पृ० १४८-१५०)

चूड़ावत सरदार ने अपने कुल पुरोहित के पुत्र को तब अपनी रानी के पास प्रिय सैनाणी मांगने का सन्देश भेजा—

निज पूत-पुरोहित से तब बोला वह प्रेम जताकर—
'मेरी रानी से द्विजवर! संदेह कहो यह जाकर—
'इस समर-त्रिवेणी में जो मैं विमल वीरगति पाऊँ।
तुम रति की बिरति-कहानी सुन सती सदृश्य सुख पाऊँ।

(वही, पृ० १५३)

पुरोहित-पूत से पति का सन्देश सुनकर हाड़ी रानी ने दो पत्र लिखे और पति को विश्वास की निशानी देने के लिए अपना शीश तलवार से काट कर भेंट कर दिया—

सौभाग्यवती ने सुख से पावन वैराग्य-विभा-सी
प्रमुदित प्रशांत मुद्रा में शुचि प्रेम-प्रसून-प्रभासी
प्रियतम में तन्मय होकर निज तन से सिर को फाँका !!!
गौरव असीम गौरव का अनुरागमई ने आँका !!!
सिर नाच उठा भूतल पर !! सतियों का जौहर नाचा !!
सागर का अन्तस्तल भी, गोलकमय अंबर नाचा !!

(वही, पृ० १६२-६३)

पुरोहित पुत्र रानी का कटा शीश लेकर त्वरित गति से दौडा। चूडावत ने जब रानी का कटा शीश देखा तो भाव-विह्वल हो गए और उन्होने उसके सुकेशों की दो बेणियों से शीश को गले मे धारण कर लिया। अब वे रुण्डमुण्डधारी शंकर बन गए और जल्दी से प्रिया से मिलने के लिए युद्ध स्थल मे पहुँचे। जहाँ उन्होने यवन सेना मे भीषण युद्ध किया और औरंगजेब की सेना को अर्गला बन कर रोके रहे। अन्त मे वे वीरगति को पा स्वर्ग मे हाडीरानी से जा मिले।

उस शीश-सुमन को सादर ले पूत-पुरोहित आए,
मानो वसंत मारुत के अन्तिम झोंके झुक आए।

× × ×

प्यारो के प्रेम-पुरस्कृत उस मुण्डमाल को पल मे,
अलकों से वीरव्रती ने पहना निज वक्षस्थल में।

(वही, चतुर्दश सर्ग, पृ० १८८-८६)

इस प्रकार ठाकुर शुकदेव सिंह 'सौरभ' ने अपने प्रबन्ध-काव्य 'सती हाड़ी रानी' मे राजस्थान के एक मार्मिक और नारी-त्याग के आख्यान को बडी ही काव्यमयी भाषा मे प्रस्तुत किया है—सौरभजी की भाषा-शैली पर जयशंकर प्रसाद की पूरी छाप मिलती है और कहानी कहने का उनका ढग बंकिमचन्द्र चटर्जी से मिलता है। लेकिन सौरभजी ने कई नवीन उद्‌भावनाओ का अपने काव्य मे उल्लेख किया है--जैसे हाड़ी रानी और चूडावत का पूजा करना, रानी का चूडावत को युद्ध के लिए सजाना, शीश काटने के पूर्व हाड़ी का दो पत्र लिखना, चंचलकुमारी और राणा राजसिंह का हाडी के पत्र को पढ़ना और उनके बलिदान पर आंसू बहाना आदि।

असल मे जब बंगला के उपन्यास सम्राट बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपना उपन्यास

'राजसिंह' लिखा था तब कर्नल टॉड के 'राजस्थान' के अतिरिक्त इतिहास जानने का दूसरा कोई साधन नहीं था, किन्तु समय बीतने पर इस सम्बन्ध में नई-नई खोज हुई। बंगला पुस्तकों का अनुवाद हुआ और हिन्दी क्षेत्रों में तथा राजस्थान के अंचलों में नए स्रोत खोजे गए। आजादी की लड़ाई में इनकी आवश्यकता थी। गाँधी-युग का प्रभाव साहित्य पर पड़ रहा था। १९४२ ई० की क्रान्ति से देश आजादी के लिए मचल रहा था। ऐसे समय में राष्ट्रीयता के वीर-रस में सौरभजी ने अपनी कृति का प्रणयन किया। उनके कुछ दिन पहले अर्थात १९४४ ई० में मुकुल की "सैनाणी" बाजार में आ चुकी थी। यद्यपि यह रचना राजस्थानी में थी पर इसके रेकार्ड हिन्दी क्षेत्रों में बड़ी तन्मयता से बजते थे। जाहिर है इन सबका प्रभाव भी अनजाने में सौरभजी के कवि पर पड़ा हो। दूसरी ओर श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दीघाटी', 'जौहर' और राजस्थानी कवि कन्हैयालाल सेठिया की प्रसिद्ध रचना 'पातल अर पीथल' भी आजादी का नया तराना गुनगुना रही थी।

कवि 'मुकुल' की 'सैनाणी' कविता

राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कवि श्री मेघराज 'मुकुल' ने हाड़ा रानी की कथा को लेकर अपनी प्रसिद्ध कविता 'सैनाणी' की १९४४ ई० में रचना की। 'सैनाणी' कविता मुकुलजी के 'उमंग' काव्य-संग्रह में संकलित है। 'उमंग' काव्य-संग्रह का प्रकाशन १९५४ ई० में दत्त ब्रदर्स, अजमेर से हुआ है। यह कविता राजस्थान ही नहीं सम्पूर्ण देश में बड़ी प्रसिद्ध हुई और इसका रेकार्ड लाखों की संख्या में बिका। वस्तुतः कवि 'मुकुल' ने इसे जिस लयबद्धता से गाया है वह सुर बड़ा ही कर्णप्रिय और कारुणिक है। 'सैनाणी' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

> सैनाण पड्यो हथलेवे रो, हिंगळू माथै मैं दमकै ही।
> रखड़ी फेरां री आण लिया, जगमगाट करती गमकै ही॥
> कांगण-डोरा पौंचै मांही, चुड़लो सुहाग ले सुघराई।
> चूंदड़ली रो रंग न छूट्यो हो, था बंध्या रह्या बिछिया थांई॥
>
> ('उमंग' काव्य, पृ० ९६)

हाड़ा रानी नवोढा थी, जिसके हाथों की मेंहदी का रंग अभी फीका नहीं पड़ा था। नवोढ़ा रानी के सारे लक्षण उसके शरीर पर शोभा पा रहे थे और इसी बीच चूड़ावत को एक वीर बाला का सतीत्व बचाने के लिए युद्ध में जाना था। चूड़ावत रानी के रूपलावण्य पर ठिठक गया और उदास हो गया, पर वीर हाड़ा रानी ने अपने पति को सहर्ष युद्ध में जाने के लिए उत्साहित किया। सरदार विदा होकर चल पड़े, पर स्मृति-चिह्न के रूप में 'सैनाणी' लेने के लिए उन्होंने रानी के पास दूत भेजा। रानी ने समझा

कि जब तक चूड़ावत मेरे मोह में रहेंगे, तब तक कृत कार्य नहीं होंगे। अतः उसने दूत को अपना सिर काट कर सैनाणी के रूप में दे दिया—

फिर कह्यो, 'ठहर, ले सैनाणी', कह झपट खड्ग खोंच्यो भारी।
सिर कट्यो हाथ में उछल पड्यो, सेवक ले भाज्यो सैनाणी॥
(वही, पृ० ९६)

चूड़ावत सरदार रानी के कटे सिर को देखकर अभिभूत हो गया। उसका क्षात्र-धर्म उसे ललकारने लगा। वह रानी का गुणानुवाद कर बोल उठा—

तू सुभ सैनाणी दी राणी! है धन्य-धन्य तू छत्राणी।
हूँ भूल चुक्यो हो रण-पथ नै, तू भलो पाठ दीन्यो राणी।'
(वही, पृ० ९८)

और चूड़ावत ने हाड़ारानी के कटे सिर के केशों को दो हिस्सों में कर उसे गले में धारण कर लिया। उस समय सरदार साक्षात 'मुण्ड-मालाधारी शंकर' बन गया और उसने दूने जोश से औरंगजेब की सेना पर धावा किया—

फिर कट्यो सीस गळ में धार्यो, बेणी री दो लट बाँट बळी।
उन्मत बणयो पुणि करद धार, असपन फौज ने खूब दळी॥
(वही, पृ० ९८)

'सैनाणो' कविता से कवि मेघराज 'मुकुल' की ख्याति में चार-चाँद लगा गए।

कवि मनोहरजी की 'सहनाणी'

हिन्दी-राजस्थानी के प्रसिद्ध कवि डॉ० मनोहर शर्मा ने 'धोरां रो संगीत' (राजस्थानी भाषा के गीतात्मक प्रेमाख्यान) पुस्तक में 'चारुमती' कविता में 'सैनाणो' की कथा का काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया है। डॉ० शर्मा की काव्य-कृति 'धोरां रो संगीत' का प्रकाशन श्री अग्रसेन स्मृति भवन, कलकत्ता से सं० २०३५ में हुआ है।

'चारुमती' कविता की कथा में दिखाया गया है कि रूपनगर की राजकुमारी चारुमती को बलपूर्वक बादशाह औरंगजेब विवाह करने के लिए आता है। उस वीर बाला चारुमती से मेवाड़ के महाराणा राजसिंह विवाह करने रूपनगर आते हैं और चूड़ावत सरदार को मुगल सेना का रास्ता रोकने के लिए युद्ध में जाने का आदेश होता है। चूड़ावत का कुछ दिन पूर्व ही हाड़ी रानी से विवाह हुआ था। वे रानी के मोह के कारण युद्ध में जाने में ढील कर रहे थे। इस मोह की जड़ को काटने के लिए हाड़ी रानी ने 'सहनाणी' के रूप में अपना सिर काट कर अपने पति के पास भिजवा दिया। हाड़ी रानी का यह त्याग राजस्थान-इतिहास में अमर है।

इस प्रसंग पर कवि मनोहर शर्मा ने लिखा है कि जब राणा राजसिंह रूपनगर बारात लेकर चले तो सरदार चूड़ावत ने भी औरंगजेब की सेना का रास्ता रोकने के लिए रण-यात्रा की—

राज सिधार्‌या रूपनगर रजपूतां रा साज।
चुंडावत भुज भार समायो, सारूंसत रो काज ॥२१॥
मारू बाजा बाजण लाग्या, सेन सजी बजराक।
तन में मन में तेज ओज री, चालण लागी चाक ॥२२।

('धोरां रो संगीत' काव्य, पृ० १०५)

युद्ध के नगाड़े बजने लगे, सेना कूच के लिए प्रस्तुत हो गई। चूड़ावत घोड़े पर सवार होकर युद्धवेश में चल पड़ा—

सीख मांग चाल्यो चुंडावत, अंतर गूढ़ विचार।
दोलाचल चित चैन लुटायो, रण खेती रो सार॥
निरखै म्हैल अटारी
नैणां में चिमकै मुखड़ो चाँद सो
पग डगमग डोलै ॥२७॥ (वही, पृ० १०६)

सरदार चूड़ावत ने हाड़ी रानी से अपनी प्रिय सैनाणी देने के लिए कहा। रानी चिन्ता में पड़ गई—

सहनाणी सहनाणी भेजो, गूंजण लागी पून।
राजमहल में छत्राणी रै, हिरदै व्यापी सून ॥२६॥
संग सखी हंस बोल सुणायो, यो सुख रूप अपार
रण सूं पिव पग पूठा म्होडै, जग पावै धिरकार ॥३१॥

(वही, पृ० १०६-१०७)

छत्राणी का पति युद्ध से वापस मुड़े इससे बढ़ कर संसार में उसके लिए दूसरा बड़ा अपमान नहीं। अतः पति को युद्ध की प्रेरणा देने के लिए हाड़ी रानी ने सोने के थाल में अपना सिर काट कर रख दिया और 'सहनाणी' भेज दी—

सुबरण थाल सजायो
भेजी सहनाणी न्यारी लोक सूं
थिर कीरत थापी ॥३३॥

चूंडावत सुख थाल उघाड्यो, चिमक्यो अन्तर देस ।
अम्मरफल हाड़ी रो मुलकै, सत रो निरमल भेस ।।
काया में झल जागी
माला गल मेली मूरत काल री
कर एक सुमेरू ।।३४।।

('धोरां री संगीत' काव्य, पृ० १०७)

वोर चड़ावत राणी के मुण्ड को गले में पहन कर साक्षात शंकर बन गए और रणभूमि में रणचण्डी का प्रलय नृत्य होने लगा। चूडावत की वीरता से मुगल सेना के छक्के छूट गए। उसे तीन दिन तक सरदार चूड़ावत की सेना ने रोके रखा, इस बीच राणा राजसिंह चारुमती से विवाह कर उदयपुर लौट गए। युद्ध मे चूड़ावत वीरगति को प्राप्त हुए।

डॉ० मनोहर शर्मा ने अपनी रचना 'चारुमती' मे 'चूड़ावत' को 'चुंडावत' और 'सैनाणी' को 'सहनाणी' लिखा है। चुंडावत राजपूतो की एक जाति है और चूड़ावत इसी राजपूत वंश मे थे। राजस्थानी मे 'सैनाणी' और 'सहनाणी' पर्यायवाची शब्द है, जिनका अर्थ है पहचान की निशानी।

हिन्दी-राजस्थानी का अन्य नाट्य-रचनाएँ

हमने अपनी सीमित जानकारी के अनुसार हिन्दी के चर्चित नाटककारो और उनकी कृतियों का एक सामान्य परिचय इन पृष्ठों में दिया है। अब हम अन्य हिन्दी-राजस्थानी नाट्य-रचनाओं की विहगम झाँकी प्रस्तुत कर रहे हैं। सम्भव है हमारी इस प्रचेष्टा में कुछ सुन्दर कृतियाँ और कृतिकार छूट गए हों। हमारी कोशिश रहेगी कि अगले संस्करण में इस कमी को दूर किया जाये।

पारसी नाटक कम्पनियों ने नाट्य-विधा को पाश्चात ढंग पर ढालने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनके रंगमंचों पर पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक मंचित होते थे। पारसी कम्पनियों के लिए जिन नाटककारों ने नाटक लिखे उनमें आगाहश्र काश्मीरी, नारायण राव 'बेताब', राधेश्याम कथावाचक और पं० गणेशदत्त 'इन्द्र' का नाम प्रसिद्ध है। पं० गणेशदत्त 'इन्द्र' का लिखा हुआ नाटक 'महाराणा संग्राम सिंह' ऐतिहासिक नाटक है। इस काल-खण्ड में जितने नाटक लिखे गए उनमें खड़ी बोली के साथ अरबी-फारसी के शब्दों का मिश्रण होता था। कथोपकथन पद्य में या शेरो-शायरी में लिखे जाते थे। गद्य मे बीच-बीच में शेर या दोहे होते थे, दर्शक बीच-बीच में ताली बजाते और नाटक जम जाता था।

'महाराणा संग्राम सिंह' नाटक में बाबर और संग्राम सिंह की मित्रता और युद्ध का वर्णन है। पं० 'इन्द्र' का यह नाटक सं० १९७८ में उपन्यास बहार आफिस, काशी से पहली बार प्रकाशित हुआ। नाटक में संग्राम सिंह के काल की सामाजिक-धार्मिक स्थिति का वर्णन किया गया है। स्वामी वल्लभाचार्य जी उस समय ब्रज में कृष्ण-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। संग्राम सिंह वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे। वे अक्सर स्वामी वल्लभाचार्य से मिलते और उनके उपदेश से हिन्दू-धर्म की रक्षार्थ संग्राम करते।

१९२३ ई० में 'वीरांगना' एकांकी-संग्रह का प्रकाशन लाहौर से हुआ। इन एकांकियों के लेखक हैं श्री ब्रिजलाल शास्त्री। इस एकांकी-संग्रह में पद्मिनी, तीन क्षत्राणियाँ, तारा, कोड़मदे, किरण देवी आदि पर सुन्दर एकांकी हैं। तीन क्षत्राणियों में जयमल की पत्नी; फत्ता की पत्नी और फत्ता की बहन पर एकांकी है। टॉड के 'राजस्थान' तथा डी० एल० राय के 'दुर्गादास' नाटक से प्रेरणा लेकर लाला छोटेलाल 'लघु' ने 'वीर दुर्गादास' नाटक की रचना सं० १९८४ में की, जिसका प्रकाशन दिल्ली से हुआ। १९२१ ई० में बम्बई से द्विजेन्द्रलाल राय का 'राणा प्रताप' नाटक श्री रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनुदित होकर प्रकाशित हुआ। द्विजेन्द्रलाल राय के 'राणा प्रताप' नाटक के बंगला गीतों का अनुवाद हिन्दी के यशस्वी कवि जयशंकर प्रसाद ने किया है। 'राणा प्रताप' नाटक के चतुर्थ अंक, आठवें दृश्य में पृष्ठ १७४ पर कवि पृथ्वीराज और राजपूत एक गीत गाते हैं—

धंस पड़ूँ समर में शत्रु सामने आता,
रक्षा करना है, पीड़ित भारत माता।
अब कौन करेगा निज प्राणों की माया,
आपत्ति बीच है जब जननी और जाया।

× × ×

तलवार तुपक या तीर चले कि भुसुण्डी,
बस अट्टहास कर नाच उठे रणचंडी,
हम चले, कौन है साथ हमारे आता,
रक्षा करना है, पीड़ित भारत माता।

('राणा प्रताप' नाटक, पृ० १७४)

१९१५ ई० में काशी से ही बाबू हरिनारायणदास भार्गव द्वारा रचित 'संयोगिता हरण' या 'पृथ्वीराज' नाटक प्रकाशित हुआ। हरिनारायण बाबू की अन्य कृतियाँ हैं—'राजपूतों की बहादुरी', 'मेवाड़ का उद्धारकर्त्ता', 'राणा सांगा और बाबर', 'हल्दीघाटी की लड़ाई', 'राणा प्रताप', 'भारत की क्षत्राणी' आदि।

१९३९ ई० में श्री मायादत्त नैथानी का 'संयोगिता' नाटक बम्बई से प्रकाशित हुआ।

'चाँद' मासिक के भूतपूर्व सम्पादक डा० धनीराम 'प्रेम' का नाटक 'वीरांगना पन्ना' चाँद प्रेस लि०, इलाहाबाद से मई १९३४ ई० में प्रकाशित हुआ। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि कर्नल टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर उन्होंने 'वीरांगना पन्ना' की रचना की है। 'वीरांगना पन्ना' नाटक की भूमिका 'चाँद' मासिक के सम्पादक नवजादिकलाल श्रीवास्तव ने लिखी है। डाक्टर धनीराम 'प्रेम' सफल कहानीकार रहे हैं। आपने वर्षों यूरोप के विभिन्न देशों में भ्रमण कर नाट्य-विधा और सिनेमा की टेकनिक का अध्ययन किया था, जिसका सुफल है 'वीरांगना पन्ना' नाटक।

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने 'तीन ऐतिहासिक नाटिकाएँ' लिखी, जिनका प्रकाशन १९६२ ई० में भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से हुआ। सेठ गोविन्द दास ने 'शेरशाह' नाटक लिखा, जिसका प्रथम प्रकाशन प्रगति प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। पातीराम भट्ट ने 'महाराणा अमर सिंह' नाटक का अनुवाद हिन्दी मे किया, जिसका प्रकाशन साहित्य निकेतन, कानपुर से १९४९ में हुआ। 'महाराज राजसिंह' नाटक के लेखक हैं पं० रामप्रसाद मिश्र, जिसका प्रकाशन नाट्य-संग्रह ग्रन्थ प्रसारण मण्डल, कानपुर से १९७४ विक्रम में हुआ।

'महाराणा राजसिंह' की भूमिका मे तथ्यपूर्ण बात कही गई है—'वैसे तो हिन्दी में नाटक-ग्रन्थों का अभाव है ही, परन्तु सामयिक और अपने आदर्शों को लिए हुए नाटकों की तो बेहद कमी है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रताप नारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवास दास, पं० किशोरीलाल गोस्वामी, पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० माधव शुक्ल और पं० बद्रीनाथ भट्ट आदि महोदयों के इने-गिने नाटक ही मंच पर खेलने योग्य हैं। शेष की पूर्ति पारसी कम्पनियों के उर्दू नाटक कर रहे हैं। इसे दुर्भाग्य कहें या सौभाग्य ? इसी कमी को दूर करने के लिए इस नाटक की रचना हुई है। इसमें महाराणा राजसिंह का पराक्रम, चंचल कुमारी का दृढ़ प्रतिज्ञापन, निर्मल और माणिक्य की देश-भक्ति, जेबुन्निसा और मुबारक का उत्कट प्रेम, औरंगजेब की दांभिकता तथा हिन्दू जनता की राज भक्ति आदि का वर्णन है।'

लेखक ने जिस साहस की बात अपनी भूमिका में कही है, तदनुरूप 'महाराज

राजसिंह' नाटक मंचित होने योग्य नहीं बन पड़ा है। असल में यह नाटक बंगला के उपन्यास-सम्राट बंकिम के 'राजसिंह उपन्यास का नाट्य रूपान्तरण है। नाटक के सभी पात्र बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास के कथ्यों को उद्‌घोषित करते हैं, फिर भी नाटक में नाट्य-रस का परिपाक नहीं हो सका है।

श्री तारानाथ रावल ने १९३६ ई० में 'राजपूतों के जौहर' नाटक की रचना की। इस नाटक का प्रकाशन नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर से हुआ है। टॉड के 'राजस्थान' से कथानक संकलित कर लेखक ने राजस्थान के प्रसिद्ध जौहरों का वर्णन किया है।

गहमर निवासी बाबू गोपाल राम ने १९१३ ई० में 'बनवीर' नाटक गाजीपुर से प्रकाशित किया। इस नाटक में बनवीर के दुष्ट चरित्र का चित्रण है, जिसने बालक उदय की हत्या के लिए अमानवीय कार्य किया और पन्ना ने अपने पुत्र की बलि देकर उदय की रक्षा की। नाटक के 'निवेदन' में लिखा गया है कि बंगला नाटककार राजकृष्ण राय के नाटक से प्रेरित होकर यह नाटक लिखा गया है।

'अफजल बध' नाटक—इसके रचयिता पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी' हैं। इस नाटक का प्रकाशन १९५० ई० में साहित्य सरोज प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ। वियोगी जी ने इस नाटक में मुगलकालीन कथानक पर अपनी कलम चलाई है। आपने डॉ० यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित 'शिवाजी' पुस्तक के आधार पर नाटक की रचना की है। इसमें दिखाया गया है कि अफजल खाँ किस भांति धोखा देकर शिवाजी का बध करना चाहता था और किस प्रकार शिवाजी के हाथों उसका बध हो गया।

'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक के लेखक हैं हिन्दी के प्रख्यात नाटककार उदयशंकर भट्ट। इस नाटक का प्रकाशन १९३३ ई० में मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर से हुआ है। इस नाटक में दिखाया गया है कि सिन्ध के राजा दाहर के राजत्व-काल में अर्थात् ७१२ ई० मे मुहम्मद बिनकासिम का सिन्ध पर भयंकर हमला हुआ, जिसमें सिन्ध का विध्वंस हो गया।

कवि-नाटककार श्री बद्रीनाथ भट्ट ने 'दुर्गावती' नाटक की रचना १९८६ सं० में की और इसे गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ से प्रकाशित किया गया। इस नाटक की भूमिका में श्री दयाशंकर दुबे ने पृ० ७ पर लिखा है—'हिन्दी में मौलिक नाटक बहुत ही कम हैं, इतने कम कि उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। अभी हमारे यहाँ अन्य भाषाओं विशेषकर बंगला के अनुदित नाटकों का ही अधिक प्रकाशन और पठन-पाठन है।' इस नाटक में गढ़ा मण्डले (जब्बलपुर के निकट) की वीर रानी दुर्गावती की वीरता का वर्णन है।

मेवाड़ के वीर महाराणा प्रताप के जीवन-चरित्र पर श्री राजबहादुर 'शरर' ने 'देशभक्त' नाटक की रचना सं० २००० में की, जिसका प्रकाशन नेशनल बुक डिपो, दिल्ली से हुआ। यह नाटक मुख्य रूप से टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर लिखा गया है। इस नाटक मे महाराणा प्रताप और अमर सिंह तथा अकबर और जहाँगीर के जीवन की भी घटनाएँ हैं। नाटक के मुख्य पृष्ठ पर एक शेर है तथा पृ० ७ पर एक गीत है—

गर दिल से चाहते हो भारत का बोलबाला।
सच्ची उपासना को, लो देश भक्त माला।

× × ×

रण में बढ़ के न कदम पीछे हटाना प्यारे,
देश को अपने कलंकित न बनाना प्यारे।

('देशभक्त' नाटक, पृ० ७)

'रण-बांकुरा चौहान' नाटक के रचयिता है मनसुख लाल सोजातिया। इस नाटक का प्रकाशन १९२५ ई० मे इन्दौर से हुआ। इसमे दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्ध का वर्णन है।

श्री सुदर्शन का ऐतिहासिक नाटक 'सिकन्दर' १९४७ ई० मे बम्बई से प्रकाशित हुआ। श्री सुदर्शन फिल्मो से भी जुडे थे। अत: आपने यह नाटक प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता सोहराब मोदी को समर्पित किया है। इसीके आधार पर 'सिकन्दर' चलचित्र बना, जिसमे सोहराब मोदी की पुरु की और पृथ्वीराज को सिकन्दर की भूमिका काफी सराही गई।

बगला भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्री हरनाथ बसु की 'वीर-पूजा' नाट्य-कृति का यह हिन्दी अनुवाद पं० रूपनारायण पाण्डेय ने प्रस्तुत किया है, जिसका प्रकाशन १९१९ ई० मे भारत गौरव ग्रन्थमाला, कलकत्ता से हुआ। इस नाटक मे महाराष्ट्र के वीर राजाराम और औरंगजेब के जीवन की घटनाएँ हैं।

'वीर नारी' नाटक के मूल लेखक है श्री द्वारिकानाथ गागुली। हिन्दी अनुवादक हैं रामकृष्ण वर्मा। इसका प्रकाशन भारत जीवन, बनारस से १९०२ ई० मे हुआ। इस नाटक मे दिखाया गया है ७१७ ई० मे मुहम्मद कासिम की सेना ने सिन्ध के राजा दाहर पर आक्रमण किया। युद्ध में दाहर मारा गया। उसके बाद उसकी रानी और वीर बधू ने किस प्रकार देश की आन-बान के लिए प्राणाहुति दी, इसी का वर्णन है।

'सिंहनाद' नाटक 'महाराष्ट्र वीर' नामक मराठी नाटक के आधार पर सरयू

प्रसाद 'विन्दु' ने लिखा है। इसका प्रकाशन १९२५ ई० में बजरंग परिषद, कलकत्ता से हुआ। 'सिंहनाद' नाटक में शिवाजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। यह नाटक बजरंग परिषद् के कार्यकर्त्ताओं द्वारा कलकत्ता में मंचित हुआ।

'वीर कुमार छत्रसाल' नाटक के लेखक हैं श्री भँवरलाल सोना। इस नाटक का प्रकाशन साहित्य निकेतन कार्यालय, इन्दौर से १९२३ ई० में हुआ। इस नाटक में बुन्देलखण्ड के प्रतापी वीर छत्रसाल की वीरता का ओजस्वी भाषा में वर्णन किया गया है। लेखक ने अपनी भूमिका में पृ० ५ पर लिखा है, "फ्रांस में नेपोलियन को, इंगलैण्ड में क्रामवेल को, अमेरिका में जार्ज वाशिंगटन को, इटली में गेरीबाल्दी को, राजस्थान मे प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप को और महाराष्ट्र में जो सम्मान छत्रपति शिवाजी को प्राप्त है, बुन्देलखण्ड में वही सम्मान आज वीर छत्रसाल का है।"

हिन्दी नाटक और आचार्य शुक्ल

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में अर्थात् भारतेन्दु युग में बंगला के अनुकरण पर टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर नाटक लिखे गए, बंगला नाटकों का अनुवाद हुआ, इसका उल्लेख हमने पूर्व में किया है। पर नाटक लिखने में शिथिलता आ गई। शायद इसका कारण उपन्यासों की ओर रुझान भी हो सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ४३३ पर लिखा है—'खेद के साथ कहना पड़ता है भारतेन्दु के समय में धूम से चली हुई नाटकों की यह परम्परा आगे चलकर बहुत शिथिल पड़ गई। बाबू रामकृष्ण वर्मा बंगला भाषा के नाटकों का—जैसे 'वीर नारी', 'पद्मावती', 'कृष्णकुमारी' आदि का अनुवाद करके नाटकों का सिलसिला कुछ चलाते रहे। इस उदासीनता का कारण उपन्यासों की ओर दिन-दिन बढ़ती हुई रुचि के अतिरिक्त अभिनय-शालाओं का अभाव भी कहा जा सकता है। अभिनय द्वारा नाटकों की ओर रुचि बढ़ती है और उनका अच्छा प्रचार होता है। नाटक दृश्य-काव्य हैं। उनका बहुत कुछ आकर्षण अभिनय पर अवलम्बित रहता है। उस समय नाटक खेलने वाली जो व्यवसायी पारसी कम्पनियाँ थीं वे उर्दू छोड़ किसी हिन्दी नाटक को खेलने को तैयार न थीं। ऐसी दशा में नाटकों की ओर हिन्दी प्रेमियों का उत्साह कैसे रह सकता था?'

आज हिन्दी नाटकों की दशा और भी खराब है। इसका सबसे बड़ा कारण है चलचित्रों और टी० वी० सीरियलों का जबरदस्त प्रभाव। सच पूछा जाय तो सिनेमा

ने हिन्दी नाटकों का चर्वण कर लिया और टी० वी० आधुनिक जीवन का अंग बन गया है। कलकत्ता में हिन्दी रंगमंच नहीं हैं। एक समय था जब यहाँ मिनर्वा थियेटर और मूनलाइट के रंगमंच पर नाटक मंचित होते थे। इसके पूर्व कॉलेज स्ट्रीट स्थित 'ऑपेरा हाउस' (जहाँ आज 'ग्रेस' सिनेमा घर है) में पारसी थियेटर कम्पनियों द्वारा नाटक अभिनीत होते थे। बंगला भाषा के कलकत्ता में स्थायी रंगमच अभी भी कार्यरत हैं तथा जात्रा कम्पनियाँ भी काफी सक्रिय हैं। हिन्दी रंगमंच के नाम पर कला-मन्दिर में शौखिया संस्थाओं के द्वारा, जिनमें अनामिका, अनामिका कला संगम आदि हैं, अच्छे हिन्दी के नाटक मंचित होते हैं। इन संस्थाओं के द्वारा ज्यादातर अंग्रेजी और बंगला के अनुदित नाटक ही अभिनीत हुए हैं। मौलिक नाटकों का अभाव रहा है। यही कारण है कि आज जिस संख्या में उपन्यास लिखे जा रहे हैं, नाटक नहीं। एक सीमा तक जब रेडियो नाटक चर्चित थे तो हिन्दी में एकांकी नाटक लिखे जा रहे थे। अब तो रेडियो नाटकों के स्थान पर दूरदर्शन का क्रेज बढ़ गया है और दूरदर्शन सीरियल दर्शकों पर छा गए हैं। 'रामायण', महाभारत' टी० वी० सीरियलों के बाद पौराणिक कथानकों की ओर लोगों की अभिरुचि बढ़ रही है।

हिन्दी रंगमंच : बंगीय भूमिका

डॉ० प्रतिभा अग्रवाल ने 'हिन्दी रगमंच : बंगीय भूमिका' निबन्ध की रचना की है, जिसमें आपने कलकत्ता के हिन्दी-रगमंच पर अच्छा प्रकाश डाला है। आपका यह निबन्ध डॉ० कृष्णबिहारी मिश्र एवं रामव्यास पाण्डेय द्वारा सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य : बंगीय भूमिका' (मणिमय प्रकाशन, कलकत्ता, १९८५ ई०) में प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के पृष्ठ ३२५ पर डॉ० प्रतिभा अग्रवाल ने लिखा है—'स्वतंत्रता प्राप्ति के ठीक पहले के २०-२५ वर्ष रंगमंच के विकास की दृष्टि से अनुर्वर वर्ष थे। देश स्वाधीनता-संग्राम में संलग्न था। यद्यपि १९४३ ई० में 'जातीय गण नाट्य संघ' द्वारा प्रस्तुत 'नवान्न' नाटक ने बंगला रगमंच के नव-जन्म की सूचना दी, तथापि हिन्दी रंगमंच इस बीच निष्क्रिय सा था, १९४८ ई० में 'अभिनय संस्कृति परिषद्' द्वारा प्रस्तुत एकांकियों का मंचन उल्लेखनीय है। यह पहला अवसर था जब मध्यम-वर्ग के स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूप से अभिनय करने रंगमंच पर उतरे थे। अगले वर्ष (१९४९) 'तरुण संघ' ने इसी प्रकार मध्यम-वर्ग के स्त्री-पुरुषों को लेकर एकांकी प्रस्तुत किए। इसी परम्परा में आगे जुड़ी अनामिका, सहयोगी हुए संगीत कला मंदिर, अदाकार, हिन्दी आर्ट थियेटर, रंगकर्मी, पदातिक, सर्जना, अनामिका कला संगम आदि।'

प्रतिभाजी ने अपने निबन्ध में आधुनिक ढंग के नाटकों की परम्परा पर प्रकाश डाला है, जिनकी टेकनिक पूरी तरह पश्चिम की बैसाखी पर टिकी है। ऐसी बात नहीं है कि आजादी के काल-खण्ड में हिन्दी रंगमंच एक बारगी शून्य था। शौकिया तथा व्यवसायिक कम्पनियों द्वारा नाटक मंचित होते थे। 'हिन्दी नाट्य परिषद', 'हिन्दी नाट्य समिति', 'बिड़ला क्लब' 'बजरंग परिषद, 'श्रीकृष्ण परिषद' 'भारत-भारती' आदि नाट्य संस्थाएँ हिन्दी नाटकों के मंचन में सक्रिय थीं और 'मिनर्वा थियेटर', 'मूनलाइट' के रंगमंचों पर पं० माधव शुक्ल, रणधीर साहित्यालंकार, मदनलाल अग्रवाल, सीताराम शर्मा, 'निर्भीक' जोशी आदि के नाटक मंचित हो रहे थे। अब तो व्यवसायिक रंगमंच रहे ही नहीं, जबकि बंगला के रंगमंच सक्रिय हैं। युग का प्रभाव बंगला रंगमंच पर भी पड़ा है। अब केवल जात्रा नाटक ही बंगला रंगमंच के आधार रह गए हैं, जिनमें बम्बइया चल-चित्रों की भाँति 'सेक्स' का भोंडा प्रदर्शन अपरिहार्य बन गया है। जात्रा नाटकों की बंगला रंगमंच पर बाढ़ आ गई है और अच्छे मौलिक नाटको का सर्वथा अभाव है।

हिन्दी रंगमंच

यद्यपि हमारा अध्ययन टॉड के 'राजस्थान' से प्रभावित बंगला, हिन्दी और राजस्थानी के ऐतिहासिक नाटकों तक सीमित रहा है। किन्तु जब हमने हिन्दी नाट्य-विधा और हिन्दी रंगमंच पर भी प्रसंगवश चर्चा की है तो जाहिर है समकालीन रंग-चेतना और हिन्दी नाटको की वर्तमान स्थिति पर भी सुधि विद्वानों के विचार यहाँ उपस्थित किए हैं। इससे हमारे अध्ययन की प्रासंगिकता आज के सन्दर्भ में सहायक सिद्ध हो सकती है।

लोक-चेतना के विकास और लोक-रुचि के परिमार्जन में नाटकों की अहम् भूमिका रही है। सामाजिक परिवर्तन में नाटकों का विशेष महत्व समझा जाता है। यही वजह है कि प्रगतिशील विचारधारा से पुष्ट 'भारतीय जन-नाट्य संघ' (इप्टा) की स्थापना आजादी मिलने के कुछ वर्ष पूर्व हुई। 'इप्टा' की ओर से देश के विभिन्न भागों में जन-जागृति के लिए नाटक खेले गए। लेकिन इनमें विशेष मतवाद हावी था। अब नुक्कड़ नाटकों की देश के कई भागों में चर्चा है। ये नाटक सत्ता के विरुद्ध जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं।

पौराणिक-ऐतिहासिक नाटकों की यात्रा से नाट्य-विधा की जो परम्परा आरम्भ हुई वह नुक्कड़ नाटकों तक कैसे पहुँची यह विचारणीय विषय है। इसके मूल में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कारण हैं। इस प्रसंग में प्रस्तुत हैं आचार्य श्रीनिवास शर्मा के विचार। उनकी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य : समकालीन परिदृश्य' का प्रकाशन नवागत, कलकत्ता की ओर से १६८८ ई० में हुआ है। श्रीनिवास शर्मा

ने पुस्तक के 'समकालीन रंगमंच और नुक्कड़ नाटक' अध्याय में पृष्ठ १३० पर लिखा है—'आजादी के बाद देश की समस्याओं ने राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर जो उग्र रूप ले लिया है उससे जनता को मुक्ति दिलाने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी रंगमंच की ओर से व्यापक सांस्कृतिक अभियान छेड़ा जाय। आज देश में सर्वत्र विघटनकारी शक्तियाँ हावी हैं। भाषावाद, क्षेत्रीयता, प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता और धर्मान्धता का राक्षस पूरे देश को अपनी चपेट में लेने के लिए तत्पर है। देश राजनैतिक और सांस्कृतिक विघटन के कगार पर खड़ा है। अप-संस्कृति के विकृत-मूल्य देश की महान (जनवादी और प्रगतिशील) परम्परा को धूमिल और नष्ट करने पर आमादा हैं। भ्रष्ट राज-नेताओं की भ्रष्ट राजनीति के फलस्वरूप देश की युवा पीढ़ी दिशाहारा और पथ-भ्रष्ट हो रही है। अनुशासनहीनता, चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार अनैतिकता, राजनीतिक अवसरवादिता और पाखण्ड का चतुर्दिक वर्चस्व हो गया है। मूल्यहीनता और सांस्कृतिक क्षयग्रस्तता की यह स्थिति पूरे देश के सामने एक गहरी और भयावह चुनौती के रूप में उपस्थित है, हिन्दी के घटिया चलचित्र, सेक्स-कुण्ठा की पुस्तकें, वी० डी० ओ० फिल्म्स और ब्लू फिल्मों से बाजार भरा पड़ा है। सांस्कृतिक क्षय-ग्रस्तता के मच्छड़ मनुष्य की स्वस्थ सांस्कृतिक चेतना पर भनभना रहे हैं। सारा देश एक भयावह सांस्कृतिक मूल्यहीनता के ऐतिहासिक संकट से गुजर रहा है। ऐसी स्थिति में स्वस्थ नाटकों का दूर-दराज के इलाकों में मंचन, उनका व्यापक प्रचार सांस्कृतिक वातावरण के प्रदूषण को दूर कर सकता है। नुक्कड़ नाटकों का अभ्युदय इन्हीं उद्देश्यों के तहत हुआ है।'

मजेदार बात है कि लोग जीवन की आपाधापी में इतने व्यस्त हैं और भोगवादी संस्कृति उनपर बेहद रूप से हावी है। दूसरी ओर यूरोप के पूर्वी देशों में मार्क्स के साम्यवाद को ७० वर्षों में ट्रेजेडिक परिणति हुई है, उमसे भी लोगों का मोह भंग हो गया है। फलतः नुक्कड़ नाटकों से ज्यादा उन्हें रामानन्द सागर की 'रामायण' और बी० आर० चोपड़ा के 'महाभारत' दूरदर्शन सीरियलों में आनन्द और चिन्तन की अधिक खुराक मिलती है। भारतीय नाट्य-विधा का बंगला-हिन्दी-राजस्थानी में पौराणिक नाटकों से आरम्भ हुआ था और पुनः ऐतिहासिक, सामाजिक, समस्या प्रधान, राजनीतिक नाटकों के परिवर्तन की सीढ़ियों से गुजर कर भारतीय जन-मानस पौराणिक

कथाओं में शान्ति खोज रहा है। आज का दमघोटू वातावरण, गिरते मूल्य, बढ़ती हिंसा और सर्वोपरि हाइपरटेनशन से बचने के लिए शायद पौराणिक-घूँटी कुछ सहायक हो सके। जब-जब ऐसा संक्रमण काल आया है मनुष्य ने ईश्वरीय सत्ता को स्मरण किया है। हिन्दी का ही नहीं भारतीय साहित्य का मध्यकाल सन्तों, भक्तों और सूफियों की रचनाओं से भरा पड़ा है।

निष्कर्ष

हमने इस अध्याय में यह दिखाने की चेष्टा की है कि किस प्रकार बंगला के नाट्यकार पश्चिमी विचारधारा और वहाँ के नाटकों से प्रभावित हुए और उन्होंने नाटकों की रचना की। हिन्दी-राजस्थानी तथा अन्य भाषाओं के नाटकों पर बंगला-मराठी नाटकों का प्रभाव पड़ा। प्रकारान्तर से हिन्दी में यह पाश्चात प्रभाव बंगला भाषा की रचनाओं के माध्यम से आया। बंगला नाटककारों ने जिस निष्ठा और लगन से पश्चिम के विचारों को पचा कर नए ढंग के नाटक लिखे। इसका हिन्दी-राजस्थानी में अभाव रहा।

चतुर्थ अध्याय

बंगला-उपन्यासों में राजस्थान

All historical books which contain no lies are extremely tedious. —*Anatole France*

भूमिका

अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हमारे देश में जिस नई साहित्य-विधा का जन्म हुआ उसमें प्रमुख है उपन्यास। वस्तुतः आज जिस साहित्य-कृति को उपन्यास से संज्ञायित किया जाता है वह हमारे प्राचीन साहित्य वाङ्मय में उपलब्ध नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं संसार की किसी भाषा के प्राचीन साहित्य में उपन्यास-विधा को खोजना मुश्किल है। स्वयं अंग्रेजी साहित्य में भी इस विधा का सूत्रपात बहुत समय बाद में हुआ। इसका प्रधान कारण है कि उपन्यास रचना के लिए गद्य का विकास पहली शर्त है। विश्व की सभी भाषाओं का प्राचीन साहित्य पद्य में ही मिलता है। चूंकि पहले भाषा का जन्म हुआ और लिपि का प्रचलन बहुत बाद में हुआ। अतः पद्य रचना होने लगी। पद्य आसानी से कंठस्थ हो जाता है, उसमें गेयता और सुर रहता है। इसलिए पद्य में रचा साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी चिरन्तन और अक्षुण्ण रहता है। हमारे वेद इसीलिए श्रुति-स्मृति से संज्ञायित हैं। हाँ, इतना जरूर है कि देश-काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने के बाद या उच्चारण भेद के कारण उस पद्य में रूपान्तर हो गया है, पाठ-भेद हो गया है और क्षेपक लगे हुए हैं। इसी वजह से पुराने समय के एक ही रचनाकार की पोथी में पाठ-भेद मिलता है।

उपन्यास का प्रजातंत्रीय रूप

टंकण और मुद्रण की व्यवस्था होने के बाद तथा गद्य का विकास होने के साथ-साथ उपन्यास की समधर्मी कई गद्य-विधाओं का प्रणयन आरम्भ हुआ। संस्कृत और अंग्रेजी के प्राचीन नाटक पद्य मे लिखे जाते थे। रामायण-महाभारत या इलियड-ओडेसी आदि संस्कृत और ग्रीक के महाकाव्यों को हम पद्य में ही पाते हैं। वैदिक ऋचाओं का सस्वर पाठ इस बात का पुष्ट प्रमाण है। व्यतिक्रम केवल एक ही स्थान पर मिलता है। मध्य पूर्व में जब इस्लाम का आविर्भाव हुआ और कुस्तुनतुनिया के ग्रन्थागार को बर्षों अग्नि में स्वाहा किया गया तो वहाँ बाद में जो साहित्य रचा गया वह पद्य की बजाय गद्य में था। क्योंकि पुराना पद्यात्मक-साहित्य धार्मिक हिंसा की

आग में जल कर खाक हो चुका था। (देखिए—प्रथम खण्ड में टॉड के 'राजस्थान' की भूमिका)

उल्लेखनीय है कि जैसे-जैसे मनुष्य जाति के विकास-क्रम में राज-सत्ता से सामंती प्रथा का सूत्रपात हुआ और परवर्ती काल में प्रजातंत्र का जन्म हुआ, ठीक उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में गणतंत्र की भावनाओं से सम्पुष्ट होकर उपन्यास-विधा का प्रचलन हुआ। उपन्यासों में देवी-देवताओं या अति मानवीय घटनाओं का वर्णन न होकर साधारण मनुष्य की दैनंदिन घटनाओं और क्रिया-कलापों का वर्णन रहता है। उसमें श्रेष्ठी-वर्ग या आभिजात्य-वर्ग के ही नायक-नायिका का वर्णन नहीं होता, निम्न श्रेणी के व्यक्ति को भी नायक का दर्जा दिया जाता है और मनुष्य के समस्याओं से जूझते आम जीवन का आंकलन होता है। पूर्व मे जहाँ साहित्य एक परिधि या सीमा मे कुछ काव्यादर्शों की रूढ़ियों में बन्धा था, उन सीमाओ को तोड़ कर साहित्य यथार्थ की भूमिका पर उतरा और उसमें कथा-साहित्य या उपन्यास-कहानियों ने अपना महत्वपूर्ण रोल अदा किया। इससे उपन्यास का प्रजातन्त्रीय स्वरूप अपने आप स्पष्ट हो जाता है। वैसे उपन्यास या कथा-साहित्य मे कल्पना लोक में विचरण करने की पूरी छूट रहती है।

संस्कृत आख्यायिकाएँ

उपन्यास के लिए जहाँ गद्य के विकास की अनिवार्यता स्वीकार की गई है, वहाँ यह भी एक तथ्य है कि संस्कृत में गद्य का पूर्ण विकास हो गया था, फिर भी उपन्यास के दर्शन नहीं होते। इतना अवश्य है कि संस्कृत साहित्य की रचनाओं मे आख्यायिका और इतिहास के अंकुर हमको मिल जाते हैं। रामायण-महाभारत की कहानियो मे कथा के सूत्र मिलते हैं और समाज का भी यत्किंचित चित्रण मिलता है, पर अलौकिक घटनाओं के गड्ड-मड्ड में उनको खोजकर बाहर निकालना एक हद तक कठिन कार्य है। फिर भी इतना तो कहना होगा कि संस्कृत के गद्य-साहित्य में कुछ ऐसी कृतियाँ हैं, जिनमें हम कथा-साहित्य या उपन्यास के छिपे बीज को देख सकते हैं यथा 'कथासरित-सागर', 'वेताल पंचविंशति', 'दशकुमार चरित', 'कादम्बरी' आदि। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' में इतिहास के सूत्र भी यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। पुराणों को इतिहास की आख्या दी गई है, पर हकीकत यह है कि पुराण इतिहास नहीं हैं। और तो और कल्हण के ग्रन्थों के बारे में भी इतिहास के पण्डितों ने शंका उठाई है। बौद्ध-जातक कथाओं में अपेक्षाकृत कथा-साहित्य के लक्षण कुछ स्पष्ट दिखाई देते हैं। उसका कारण है कि बौद्ध-धर्म कर्मकाण्ड के विरोध में आया था और उसको निम्न

और उच्च दोनों वर्गों का समर्थन प्राप्त था ! इसी कारण बौद्ध-जातक कथाओं में संस्कृत रचनाओं की तुलना में यथार्थ ज्यादा परिमाण में उभर कर आया है। साधारण रूप से देखने पर बौद्ध-जातक कथाओं में तथा 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' में सुर समान-धर्मी मिलता है। बौद्ध-धर्म की महिमा के प्रचारार्थ एवं बुद्ध की अलौकिक घटनाओं को चित्रित करना ही इन कथाओं का उद्देश्य रहा है। ईसा और 'बायबिल' की कहानियों में भी यही बात है। 'पंचतंत्र' में जैसे पशु-पक्षियों के माध्यम से नीति-कथाएँ कही गई हैं वैसे ही ईसाई कहानियों में यह सादृश्यता देखी जा सकती है। इस तरह हम उपन्यास और कहानी के बीच प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों और पाली-प्राकृत ग्रन्थों में समानता खोज सकते हैं।

संस्कृत का उत्तराधिकार

चूंकि हिन्दी, बंगला तथा अन्य आधुनिक आर्य भाषाएँ संस्कृत की उत्तराधिकारिणी हैं। इसलिए अनायास ही इनको संस्कृत के आख्यान और आख्यायिकाएँ पैतृक उत्तराधिकार के रूप में मिल गईं। इसीलिए १८वीं-१९वीं शताब्दी में संस्कृत के धर्म-शास्त्रों, पुराणों और प्राचीन कथाओं को लेकर रचनाएँ लिखी जाने लगीं। साथ ही लौकिक कथाओं और राजा-रानियों की परिकथाओं से कथानक लेकर कुछ कृतियाँ लिखी गईं। यह स्थिति बंगला भाषा और हिन्दी भाषा में समधर्मी थी और उसमें तबतक कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ जब तक ये भाषाएँ अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य के सम्पर्क में नहीं आईं। वैसे अंग्रेजी साहित्य के संस्पर्श में आने के पूर्व हिन्दी और बंगला को और एक विदेशी साहित्य के सम्पर्क में आना पड़ा था। मुस्लिम साम्राज्य के भारत में प्रतिष्ठित होने के साथ-साथ अरबी और फारसी की रूमानी और प्रेम कहानियों के सम्पर्क में हमारी भाषा और साहित्य को आना पड़ा। लैला-मजनू और गुल-बकावली की कहानियों के अतिरिक्त अरेबियन नाइट्स और सूफी-धार्मिक कहानियों ने भी इस संयोजन में अपना कमाल दिखाया। इनमें 'अरबी उपन्यास', 'हातिमताई', 'लैला-मजनू', 'चार दर्वेश', 'गुलबकावली' आदि मुख्य हैं।

बंगला-साहित्य में अराकान की राज्य-सभा में वर्णित मुसलमान गाथा-साहित्य का १७वीं शताब्दी में ही सूत्रपात हो गया था। इनमें सूफी कवि अलाउल ने मल्लिक मुहम्मद जायसी के हिन्दी 'पद्मावत' का बंगला में अनुवाद किया था। कहने का तात्पर्य जैसे हिन्दी में जायसी, कुतबन और मझन ने देशी कथाओं को देशी भाषा के माध्यम से सूफी मत में ढालने की प्रक्रिया आरम्भ की थी वैसे ही बंगला-साहित्य में अराकान के राज-दरबारी मुसलमान कवियों ने इन सूफी कथाओं का रूपान्तरण आरम्भ किया था।

अंग्रेजी उपन्यास-विधा के सम्पर्क में आने के पूर्व बंगला-साहित्य और हिन्दी-साहित्य किस हद तक प्रस्तुत थे यह हमने ऊपर दिखाने की कोशिश की है। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक अंग्रेजी शिक्षा और संस्कृति के प्रति भारतीयों का रुझान आरम्भ हो गया था। १७५७ ई० में पलासी के युद्ध के बाद जब अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल की दीवानी मिल गई तब राजनीतिक दृष्टि से अंग्रेजी शिक्षा के लिए दरवाजे खुल गए और प्रशासन की सुव्यवस्था के लिए अंग्रेजी शिक्षा की जरूरत महसूस की जाने लगी। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा के प्रति सबसे पहले अपनी अभिरुचि दिखाई।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार में फोर्ट विलियम कॉलेज (४ मई, १८०० ई०), हिन्दू कॉलेज (१८१७ ई०) और एशियाटिक सोसाइटी (१७८४ ई०) का बड़ा महत्व है। फोर्ट विलियम कॉलेज में पाठ्य-पुस्तकों का प्रणयन होने लगा। बगला और हिन्दी में पुस्तकें लिखी गई और इस तरह बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा और साहित्य का प्रचार शुरू हुआ। श्रीरामपुर में ईसाई मिशनरियों की ओर से सर्वप्रथम छापेखाने की स्थापना हुई और समाचार-पत्रों का प्रकाशन भी १८१८ ई० से आरम्भ हो गया। इस तरह गद्य साहित्य के विकास और छापेखाने की शुरूआत से तथा समाचार-पत्रों के प्रकाशन से उपन्यास-विधा के लिए एक अच्छी खासी भूमिका बन गई।

इतिहास बनाम उपन्यास

हमने इसके पूर्व यह दिखाने की चेष्टा की है कि संस्कृत साहित्य में उपन्यास के बीज थे, पर वे अनुकूल बातावरण या तत्वों के अभाव में विकसित नहीं हुए तथा इतिहास की रचना-प्रक्रिया भी पूरी नहीं हुई। उदाहरण के तौर पर कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक में उपन्यास के अंकुर को हम स्पष्ट देख सकते हैं। शकुन्तला ने जब अपना आत्म-परिचय दिया तो दुष्यन्त ने प्रश्न किया—'किम् इदम् उपन्यस्तम्' ? अर्थात क्या तुम कल्पित कहानी कह रही हो ? यहाँ यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपन्यास का अर्थ है कल्पित कहानी। आज भी उपन्यास से हमारा तात्पर्य कल्पित कहानी से ही माना जाता है। अंग्रेजी के नॉवेल और फिक्सन को हम इसी अर्थ में उपन्यास समझते हैं। मराठी में तो 'कादम्बरी' शब्द ही उपन्यास का पर्याय बन गया है और गुजराती में कहानी को 'नवलिका' से जाना जाता है। 'नवलिका' या 'नॉवेल' से नयापन झलकता है।

इसी तरह आजकल हम इतिहास शब्द को जिस अर्थ में लेते हैं बंगला और हिन्दी में उस समय इतिहास शब्द उस अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। काल्पनिक कहानी या ऐतिहासिक कहानी समानार्थी समझे जाते थे। फोर्ट विलियम कॉलेज के विलियम केरी की 'इतिहास माला' पुस्तक का नाम है—"A collection of stories in Bengali Language, collected from various sources." पर उसे कहा जाता है—'इतिहास माला'। इसी तरह तोता-परी की कहानी को कहा जाने लगा 'तोता इतिहास' और "Persian Tales" का अनुवाद हुआ 'फारस का इतिहास' तथा "Arabian Nights" का अनुवाद हुआ 'अरब का इतिहास'। जबकि वास्तविकता यह है कि ये सब कहानियाँ हैं।

टॉड के राजस्थान का प्रभाव

बंगाल में जब ऐसी मानसिकता थी और बंगला भाषा में कोई इतिहास नहीं था तभी दो प्रसिद्ध पुस्तकें बंगाली शिक्षित समाज के सामने आईं। ये दो पुस्तकें हैं—जेम्स टॉड कृत "Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. I & II. और दूसरी है केन्ट कृत—"Romance of History—India", Vol. I II. कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ का प्रथम खण्ड १८२९ ई० में लंदन से प्रकाशित हुआ और द्वितीय खण्ड १८३२ ई० मे। इस ग्रन्थ की बंगाल में धूम मच गई। उत्साहित होकर टॉड ने ऐसी ही एक और पुस्तक लिखी—

"Travels in Western India embracing a visit to the sacred mounts of the Jains and most celebrated shrines of Hindu faith between Rajpootana and India; with an account of the ancient city of Neherwalled."

यह पुस्तक "Travels in Western India" नाम से १८३९ ई० में प्रकाशित हुई। यहाँ ध्यान देने की बात है कि Sacred mounts & celebrated shrines of Hindu faith शब्दो से ही कदाचित टॉड भारतवर्ष के लोगों के श्रद्धा-पात्र बन गए।

टॉड के जीवनीकार ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है—

"The enthusiasm of the author, who is rhe historian of some remarkable events in recent Rajpoot history of which he was an eye-witness and in some of them an agent, has moreover, infused into the narrative a portion of his own feeling, and incorporated with it many of the adventures of his own life."

इस कथन में feeling तथा adventures दो ऐसे शब्द थे, जिनसे

बंगला-साहित्य के उपन्यासकार अत्यधिक प्रभावित हुए और अनजाने ही उन्हें जैसे किसी अज्ञात लोक का खजाना मिल गया। फिर क्या था बंगला में उपन्यास, नाटक, काव्य, कहानियाँ टॉड के 'राजस्थान' को उपजीव्य बनाकर लिखी जाने लगीं। टॉड के 'राजस्थान' का बंगला में अनुवाद धड़ल्ले से हुआ, जिस पर हमने प्रथम खण्ड मे विचार किया है।

इतिहास और रोमांस

रोमांस का इतिहास के साथ गहरा सम्बन्ध है। जब बंगाल के नव शिक्षित समाज ने इस यथार्थ का अनुभव किया तो वह सम्भवत: टॉड के 'राजस्थान' की ओर आकर्षित हुआ। इसे प्रसिद्ध इतिहासकार और साहित्यकार अर्पणा प्रसाद सेनगुप्त ने अपनी पुस्तक 'बांग्ला ऐतिहासिक उपन्यास' के पृष्ठ २९ पर इन शब्दों मे व्यक्त किया है—

'टॉड के राजस्थान' के प्रकाशन के बाद शिक्षित बंगभाषियों का इतिहास के प्रति अनुराग विशेष रूप से जागृत हुआ। अंग्रेजी शिक्षा उनमें क्रमशः इस बात पर जोर देने लगी कि वे भी अपने देश के गौरव के इतिहास को गौरवोज्ज्वल करें, अनुसंधान करें। ग्रीक और रोम के प्राचीन इतिहास को पढ़ने से देश के शिक्षित समाज में यह भावना जगी। वे इस खोज में लग गए कि क्या हमारे देश के इतिहास में भी गर्व करने लायक कहानी या उपकथा हैं या ऐसे वीर पुरुष हैं, जिन्होंने स्वदेश की स्वाधीनता के रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग किया हो। उस समय तक प्राचीन भारत का इतिहास सही रूप में लिखा नहीं गया था और मध्ययुगीन भारत का इतिहास पराधीनता का इतिहास था। केवल राजस्थान के राजपूतों ने उस कालखण्ड में हिन्दुत्व, स्वाधीनता और आत्म-गौरव के निमित्त अपना सर्वस्व बलिदान किया था। राजपूतों का इतिहास ही कुण्ठित भावना को गौरवोज्ज्वल प्रदान कर सकता था। टॉड के ग्रन्थ ने नव-शिक्षित समाज के समक्ष गौरव-कीर्ति-गाथा का द्वार उन्मुक्त कर दिया और लोग परम आग्रह तथा विदग्ध भावना से टॉड के 'राजस्थान' को पढ़ने लगे।'

आपने आगे लिखा है—

'साहित्य में 'राजस्थान' का प्रत्यक्ष प्रभाव देखा जाने लगा। कवि

रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने १८५८ ई० में 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य ग्रन्थ की रचना की। आधुनिक बंगला-साहित्य का यही काव्य है, जिसकी कथा टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित है। 'पद्मिनी उपाख्यान' काव्य-रसिकों में ही नहीं सम्पूर्ण समाज में समादरित हुआ। इसमें प्रतिध्वनित होनेवाली स्वदेश-प्रेम की अनुगूंज युवकों में उत्साह वर्द्धन करने लगी। टॉड के ग्रन्थ से 'पद्मिमी उपाख्यान' ही नहीं बंगला-साहित्य में काव्य, नाटक और उपन्यास लिखे गए। स्वाभाविक है कि साहित्य में यश की आकांक्षा रखने वाले बंकिम के युवा मानस में टॉड के 'राजस्थान' के प्रति रुझान पैदा हुई और वे उपन्यासों के माध्यम से इतिहास का दोहन करने लगे।'

इतिहास की कसौटी पर

लेकिन टॉड के 'राजस्थान' को विशुद्ध रूप से इतिहास कहना भी भूल होगी। क्योंकि उन्होंने किम्वदन्तियों के आधार पर तथा चारण-भाटों से आख्यान सुनकर एवं चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' से तथ्य संकलन कर अपना ग्रन्थ लिखा था। इसीलिए पुस्तक में प्रत्येक राजपूत जाति के उत्स में पौराणिक कहानियों का उल्लेख किया गया है। टॉड के जीवनीकार ने लिखा है—

"The interest in this mass of genuine original history, many parts of which possess the fascinations of an elaborate fiction."

टॉड ने स्वयं भी इस बात को स्वीकारा है—

"It never was his intention to treat the sabject in the severe style of history."

किन्तु इसके बावजूद बंगला-साहित्य महात्मा टॉड के प्रति ऋणी है, जिसके ग्रन्थ की उपकथाओं से बंगला भाषा में प्रचुर साहित्य रचा गया। इस तरह टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ का कोई एक सदी तक बंगला-साहित्य पर प्रभाव रहा। बंगला के कृति साहित्यकारों ने इस ग्रन्थ के आधार पर अमर कालजयी साहित्य की रचना की। आज भी इन रचनाओं को कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा अन्य विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता है।

बंगला के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० विजित कुमार दत्त ने 'बांग्ला साहित्येर ऐतिहासिक उपन्यास' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ ६ पर लिखा है—'बंगला साहित्य कई दृष्टियों से टॉड के प्रति ऋणी है। भले ही टॉड के ग्रन्थ में यथार्थ इतिहास नहीं मिला फिर भी दुःख करने की कोई बात नहीं है। 'राजस्थान' ग्रन्थ ने

ही बंगला के कवियों, औपन्यासिकों, नाटककारों और कथा-शिल्पियों के सामने इतिहास का एक बड़ा गवाक्ष खोल कर रख दिया। पुनर्जागरण के साथ-साथ वीरत्व और देश-प्रेम की जो बाढ़ आई थी, टॉड के 'राजस्थान' ने उसमें अव्वल भूमिका निभाई। देश-प्रेम, सतीत्व-गौरव, वीरत्व और रोमान्स इस ग्रन्थ में प्रभूत परिमाण में उपलब्ध था। फलतः कवि और उपन्यासकार इसके प्रति आकर्षित हो गए। इसीलिए बंगला-साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों का अध्ययन करने के लिए टॉड के 'राजस्थान' का बड़ा महत्व है।'

विभाजन रेखा

साहित्य के संदर्भ में विभाजन रेखा खींचना सम्भव नहीं। किसी साहित्यिक धारा या नवीन प्रवृत्ति का प्रस्फुटन या उद्‌भव और विकास किस युग या किस तिथि से हुआ इसका निर्णय मुश्किल है। इस प्रसंग में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि किसी साहित्यिक प्रवृत्ति का विकास अकस्मात नहीं हो जाता है और उसका समापन भी अचानक नहीं होता है। प्राचीन प्रवृत्तियों के मध्य ही नवीन प्रवृत्तियों का अंकुरण होता है और पर्याप्त समय तथा अनुकूल अवसर पाकर उन प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण होता है और समय पाकर प्राचीन प्रवृत्तियाँ म्रियमाण हो जाती हैं। यही बात उपन्यास-विधा के साथ लागू होती है।

बंगला और हिन्दी का प्रथम उपन्यास

१९वीं शताब्दी के मध्यभाग मे प्यारीचन्द मित्रा उर्फ टेकचन्द ठाकुर ने बंगला मे प्रथम उपन्यास 'आलालेर घेरेर दुलाल' (१८५७ ई०) लिखा। यद्यपि यह उपन्यास सामाजिक है, पर बाद की आधी सदी तक जो उपन्यास बंगला भाषा मे लिखे गए, उनकी घटनाएँ ऐतिहासिक रही हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार श्रद्धाराम फुल्लोरी ने हिन्दी में 'भाग्यवती' उपन्यास १८५७ ई० मे लिखा, किन्तु यह उपलब्ध नहीं हो सका। अतः शुक्लजी ने पुनः लिखा—'अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास पहले-पहले हिन्दी में लाला श्रीनिवास लाल का 'परीक्षा गुरु' है। बंगला में अंग्रेजी के उपन्यासकार स्कॉट का अनुसरण कर १८५९ ई० मे भूदेव मुखोपाध्याय ने 'ऐतिहासिक उपन्यास' की रचना की। इसके कोई आठ वर्ष बाद बंकिमचन्द्र का प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनंदिनी' १८६५ ई० मे प्रकाशित हुआ।

रामबगान के दत्त-परिवार के शशिचन्द्र दत्त (१८२४ ई०—१८६१ ई०) ने टॉड के 'राजस्थान' तथा अन्य इतिहास से उपकथाएँ लेकर अंग्रेजी में २४ कहानियों के एक संकलन की रचना The Times of Yors या Tales from Indian History नाम से १८४५ ई० में की। इन कहानियों का बंगला अनुवाद १८७७ ई० में 'ऐतिहासिक कहानी संकलन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। संकलन की भूमिका में लिखा गया है कि ३२ वर्ष पूर्व The Times of Yors ग्रन्थ लिखा गया था। शशिचन्द्र की आरम्भिक रचनाओं से विदित होता है कि सम्भवतः अंग्रेजी में इसका प्रकाशन १८६४ ई० में हुआ था। शशिचन्द्र हिन्दू कॉलेज के छात्र थे। बंगला के ऐतिहासिक उपन्यासकार रमेशचन्द्र दत्त के पिता ईशानचन्द्र दत्त और चाचा शशिचन्द्र दत्त दोनों ही रिचार्डसन के शिष्य थे। शशिचन्द्र की कहानियों पर हम कहानी अध्याय में चर्चा करेंगे। शशिचन्द्र ने ऐतिहासिक कहानियों को विषय बना कर अंग्रेजी मे १५ कविताएँ भी लिखी थीं। इस कविता के संकलन का नाम है—'Indian Ballads" बंगला की ऐतिहासिक कविताओं में इनके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार बंगला ऐतिहासिक उपन्यासों के क्रम-विकास का अध्ययन करने के लिए भी शशिचन्द्र की रचनाओं का बड़ा महत्व है।

भूदेव मुखोपाध्याय ने केन्ट की पुस्तक—'रोमान्स ऑफ हिस्ट्री—इण्डिया' से दो उपाख्यान लेकर 'ऐतिहासिक उपन्यास' की रचना की। प्रथम उपन्यास का शीर्षक है—'सफल स्वप्न' और दूसरे का शीर्षक है—'अगूरीय विनिमये'। प्रथम उपन्यास को हम उपन्यास न कह कर कहानी कहेंगे, क्योंकि यह कुल १६ पृष्ठों में लिखा गया है। दूसरा उपन्यास 'अंगूरीय विनिमये' ७३ पृष्ठों में लिखा गया है। इसकी कहानी मराठा वीर शिवाजी के सम्बन्ध में है, किन्तु इसका थोड़ा कथानक टॉड के 'राजस्थान' में भी मिलता है।

ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता

ऐतिहासिक उपन्यासों की चर्चा करने के पूर्व यह प्रश्न स्वतः ही सामने आता है कि ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता क्या है ? इसकी प्रयोजनीयता क्या है ?

इस प्रश्न पर जब हम विचार करते हैं तब सवाल उठता है आखिर इतिहास-ज्ञान क्यों आवश्यक है ? दरअसल इतिहास मानव-सभ्यता के क्रमिक विकास की एक चिरंतन कहानी है, जिसमें मनुष्य-जाति के उत्थान-पतन, सुख-दुःख, हास-विलास, आनन्द-शोक, जीत-हार, शौर्य-पराक्रम के साथ तत्कालीन समय के मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक स्थिति को जान सकते हैं। जैसे इतिहास से मनुष्य की अग्रगति का सम्यक आभास मिलता है, वैसे ही स्वदेश

के इतिहास से स्वजाति की अग्रगति का परिचय मिलता है। व्यष्ठि की कहानी परिवार की कहानी को उद्‌घाटित करती है वैसे ही समष्ठिगत रूप से किसी जाति और देश का स्वरूप सामने आता है। यही उस जाति या देश का इतिहास है जो उसे अन्य देश या जाति से पृथक धरातल पर संस्थापित करता है और बताता है कि कब किस व्यक्ति या घटना के कारण देश का पतन हुआ, उसे पराधीन होना पड़ा। इतिहास के अध्ययन की यह बड़ी सार्थकता है कि अतीत का इतिहास हमे भविष्य के लिए अंगुली-निर्देश का काम करता है। किसी भी जाति या देश का मनोबल ऊँचा करने के लिए या चरित्र-गठन के लिए इतिहास और ऐतिहासिक चरित्रों का महत्व है। यही ऐतिहासिक उपन्यास की सार्थकता और प्रयोजनीयता है।

मनुष्य अपने सुख-दुःख की कहानी को पढ़ने-सुनने में जितना आनन्द पाता है, उतना अन्य किसी में नहीं। इसलिए अन्य पुस्तकों की तुलना में उपन्यास और कहानी पुस्तकों की संख्या सर्वाधिक है। यही कारण है कि ऐतिहासिक उपन्यास और ऐतिहासिक कहानी का प्रचार इतिहास-पुस्तक की अपेक्षा अधिक होता है। इसकी शायद एक वजह यह भी है कि इतिहास-पुष्ट या समर्थित होने से उस घटना या चरित्र की विश्वसनीयता बढ जाती है। उदाहरण के तौर पर जैसे आज सच्ची कहानियों और इन्भेस्टोगेटिव जर्नलिज्म की एक बाढ-सो पत्र-पत्रिकाओं मे आई हुई है। यह दीगर है कि उसमे कितनी अतिरंजना है और कितना वाग्जाल। यह तथ्य ऐतिहासिक उपन्यासों पर भी लागू हो सकता है कि लेखक ने इतिहास और कल्पना का कितना मिश्रण किया है। जो उपन्यासकार तटस्थ होकर ईमानदारी से इतिहास को आधार मानकर एक सीमा तक कल्पना का सहारा लेगा, वह उतना ही रचना-प्रक्रिया में सफल होगा और कृति सार्थक बन पड़ेगी।

इतिहास रोचक विषय होने के साथ-साथ एक रूखा विषय भी है। नाम और तिथि रटते-रटते विद्यार्थी ही इतिहास से मुख नहीं मोड लेता है, वरन सामान्य पाठक भी उदासीन हो जाता है। सच्चा इतिहासकार एक सफल साहित्यकार होता है और अच्छा ऐतिहासिक उपन्यासकार कलाकार होने के साथ इतिहासवेत्ता भी होता है। वह रूखे विषय को रोचक और सरस बना देता है, चटपटा और जायकेदार बना देता है। यह चटखारापन इतिहास का रोमान्स है, जिसे लेखक मनोमुग्धकारी बनाता है।

ऐतिहासिक उपन्यासों का महत्व आम लोगों तक किसी घटना या चरित्र को

पहुँचाने का एक ऐसा जरिया है, जिससे घटना और चरित्र स्वतः ही सारे देश में प्रचारित हो जाते हैं। पौराणिक कहानियाँ लोगों की जुबान पर छा जाती हैं, सर पर चढ़ कर बोलनेवाले जादू की तरह। पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये कहानियाँ इस प्रकार प्रचारित होती हैं कि वे मिथक बन जाती हैं। पौराणिक कहानियों को आध्यात्मिक उत्थान के लिए जिस रूप में महत्वपूर्ण समझा जाता है तदनुरूप ऐतिहासिक उपन्यासों का महत्व है। लेकिन दोनों में एक मौलिक आधारभूत अन्तर है। पौराणिक कहानियाँ देवी-देवताओं, अति-मानवीय या अपौरुषेय घटनाओं से गुम्फित होती हैं, वहीं ऐतिहासिक कहानियाँ या उपन्यास मानवीय जीवन्तता का कच्चा चिट्ठा होते हैं। इन्हें मनुष्य अपनी कहानी समझकर अधिक रूचि लेता है। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यास सारे देश को आलोड़ित कर देते हैं, उद्‌बुद्ध कर देते हैं। बंकिम के 'आनन्दमठ' उपन्यास और 'बन्देमातरम्' गीत को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।

भूदेव का 'अंगूरीय विनिमये' उपन्यास

भूदेव मुखोपाध्याय (१८२५—१८९८ ई०) आजीवन शिक्षक रहे। उनके मन में प्राचीन भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार करने की प्रवल कामना थी। उन्होंने महसूस किया कि विदेशी शिक्षा की आबोहवा देश में फैल रही है। वे इसके परिपार्श्व मे आर्य-संस्कृति के विशुद्ध रूप को रखना चाहते थे। इसलिए इतिहास के प्रति उनका विशेष अनुराग था।

बिहार में श्री भूदेव मुखोपाध्याय विद्यालयों के परिदर्शक नियुक्त हुए तो आपने राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए बड़ा कार्य किया। आपने कोर्ट-कचहरी में अंग्रेजी भाषा की अपेक्षा हिन्दी पर जोर दिया। आप पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने देश की एकता के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया। वस्तुतः भूदेव बाबू देशी भाषाओं के पृष्ठ पोषक थे। आपने असमिया भाषा को भी कचहरियों की भाषा बनाने की वकालत की।

भूदेव मुखोपाध्याय पर डॉ० आशलता राय ने शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत किया है—'चिन्ता नायक भूदेव मुखोपाध्याय। यह पुस्तक १९८४ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुई है। गवेषणात्मक पुस्तक में भूदेव मुखोपाध्याय के कृतित्व और व्यक्तित्व पर कई नई सूचनाएँ हैं। इस पुस्तक की भूमिका लिखी है रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० रवीन्द्र गुप्त ने। आपने लिखा है कि बंगाल के नवजागरण में भूदेव बाबू का महत्वपूर्ण योगदान था।

भूदेव केवल ऐतिहासिक उपन्यास लिखनेवाले बंगला के प्रथम लेखक ही नहीं थे, बल्कि वे बंगला उपन्यास के लेखकों में भी प्रथम थे। उनके 'ऐतिहासिक उपन्यास' में

'सफल स्वप्न' एक साधारण कोटि की रचना है, किन्तु 'अंगूरीय विनिमये' में उपन्यास के लक्षण पूरी मात्रा में मिलते हैं।

कथानक

'अंगूरीय विनिमये' की कहानी इस प्रकार है—

मराठा वीर शिवाजी पर्वतीय क्षेत्रों में पूरी तरह संगठित हो गए थे। उन्होंने पहाड़ी सेना का एक ऐसा संगठन बनाया जिसकी तुलना उस समय कोई दूसरी सेना नहीं कर सकती थी।

औरंगजेब शिवाजी को परास्त करने में बुरी तरह असफल हुआ। शिवाजी ने अपने कौशल से औरंगजेब की कन्या रोशनआरा को बन्दी बना लिया और उसे अपने शिविर में ले आये। उपन्यास की कहानी यहीं से आरम्भ होती है। रोशनआरा यवन कन्या थी। उसे विश्वास था कि शिवाजी के दुर्ग में उसके साथ अशोभन बर्ताव किया जायगा, किन्तु वहाँ उसे हिन्दू राजा के सेवक-सेविकाओं का सद्व्यवहार मिला। इससे उसकी पूर्व धारणा बदल गई। वैसे वह वन्दिनी थी, पर इस स्थिति में भी शिवाजी के प्रति अब उसके मन में कोई विरोध की धारणा नहीं थी। शिवाजी ने रोशनआरा से कहा कि उससे विवाह करने के उद्देश्य से ही उन्होंने उसका अपहरण किया है। यवन कन्या इसके लिए राजी नहीं हुई। इसी बीच मुगल और मराठों के बीच पुनः युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

तभी एक घटना घट गई। शिवाजी का एक सैनिक रोशनआरा के प्रति आसक्त हो गया। इससे शिवाजी उस सैनिक पर कुपित हो गए। शिवाजी का सैनिक के साथ द्वन्द्व-युद्ध हुआ। सैनिक पराजित हुआ और मृत समझ कर उन्होंने उसे दुर्ग के बाहर फिंकवा दिया। इस लड़ाई में शिवाजी भी घायल हुए थे। घायल शिवाजी की सेवा-सुश्रुषा में रोशनआरा ने अपने को लगा दिया। दोनों का यह सान्निध्य प्रेम मे रूपान्तरित हो गया। बादशाह औरंगजेब की पुत्री के मन मे प्रतिहिंसा की गाँठ निकल गई और उसने अपने को शिवाजी के प्रति समर्पित कर दिया।

दूसरी ओर घायल सैनिक मुगल दरबार में पहुँचा और उसने औरंगजेब को शिवाजी के विरुद्ध भड़काया। वह शिवाजी के दुर्ग के सभी गुप्त रास्तों को जानता था। चूंकि शिवाजी का वह बड़ा सेनापति था, इसलिए उसे उनकी सैन्य-शक्ति का पूरा अन्दाज था। फलतः उसी के निर्देशन में मुगल सेना ने अकस्मात शिवाजी के दुर्ग पर आक्रमण किया और उस पर अपना कब्जा कर लिया। शिवाजी ने पलायन कर आत्म-रक्षा की। रोशनआरा बन्दी दशा से मुक्त होकर दिल्ली चली गई।

पुनः शिवाजी ने सेना संगठित कर युद्ध किया और दुर्ग पर अपना अधिकार कायम

कर लिया। विश्वासघातक सैनिक मुगलों के द्वारा बहिष्कृत हो गया तो उसने फिर शिवाजी की शरण में आकर क्षमा याचना की। लेखक की दृष्टि में शिवाजी भवानी के वरद पुत्र थे। इसी भवानी को बाद में भारत माता के रूप में अन्य लेखकों ने चित्रित किया है। उस सैनिक ने शिवाजी को बताया कि स्वप्न में उसे भवानी के दर्शन हुए और देवी ने कहा—'अरे नराधम ! तुमने मेरे वरदपुत्र शिवाजी के विरुद्ध घोर पापाचरण किया है। तुमने अपनी मातृभूमि का अपमान किया है और उसे विधर्मियों के हाथ सौंपा है। तुमको जानना चाहिए कि गर्भधारिणी माता, तपस्विनी गऊ और अन्न-प्रसविनी जन्मभूमि में तीनों ही समान हैं। जो जन्मभूमि का अपमान कर सकता है वह गोबध भी कर सकता है और माता की हत्या भी कर सकता है।'

इसी समय गुरु रामदास स्वामी आ गए और उन्होने शिवाजी को आशीर्वाद दिया। पुनः युद्ध की तैयारी शुरू हुई। उसी विश्वासघातक सेनापति ने फिर से अपने को मातृभूमि पर न्यौछावर करने के लिए भयंकर युद्ध किया। इस बार औरंगजेब ने शिवाजी को परास्त करने के लिए जयपुर के राजा जयसिंह को भेजा। शिवाजी ने जयसिंह से अपना अभिप्राय प्रकट किया और कहा कि उनका उद्देश्य भारत से विदेशी शासन को समाप्त करना है। उनकी बातों से जयसिंह के हृदय में भी स्वदेश के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। अतः युद्ध में विजयी होने पर भी जयसिंह के साथ उन्होंने सन्धि कर ली और मुगल दरबार मे गए। उन्हें आशा थी कि औरंगजेब उनकी वीरता पर मुग्ध होगा और सम्भवतः रोशनआरा भी मिल जायेगी, लेकिन हुआ उल्टा, उन्हें वहाँ बन्दी दशा में रहना पड़ा।

दिल्ली लौटने के बाद रोशनआरा शाहजहाँ की सेवा मे लग गई और एक दिन उसने दादाजी (शाहजहाँ) से अपने मन को बात कही। वृद्ध शाहजहाँ पोती की प्रेम-कहानी से प्रभावित हुआ। शिवाजी के दिल्ली आने पर रोशनआरा के हृदय में प्रेम की बाती फिर जल उठी। एक दिन छद्म-वेशी गुरु रामदास से शिवाजी की भेंट हुई और बन्दीगृह से पलायन की भूमिका बनी। औरंगजेब बन्दी शिवाजी को पूरी तरह पराभूत कर देना चाहता था। वह चाहता था कि राजा जयसिंह के आने के पूर्व ही यह सब हो जाये। विषपान से जयसिंह की हत्या कराई गई। पलायन के पूर्व हरम की एक दासी के द्वारा रोशनआरा के पास यह खबर भिजवाई गई कि अगर वह शिवाजी के साथ जाना चाहती है तो तैयार हो जाय। रोशनआरा ने अपने प्रेम की प्रतीक अंगूठी शिवाजी के पास भिजवा दी। शिवाजी के सामने धर्म-संकट उपस्थित हो गया। "एक तरफ उनका व्यक्तिगत प्रेम और दूसरी तरफ देश-प्रेम। इस द्वन्द्व के बीच ही लेखक ने उपन्यास को

समाप्त कर दिया। बंगला में अगूठी को अंगूरी कहते हैं। इसी कारण उपन्यास का नामकरण हुआ है— अंगूरीय विनिमये'।

भूदेव मुखोपाध्याय ने अपने उपन्यास में मराठा और राजपूत चरित्रों की वीरता का जो बीज बपन किया, परवर्ती काल में हम बंगला-साहित्य की रचनाओं में उसको भरपूर रूप से देखते हैं। उनके 'अंगूरीय विनिमये' उपन्यास से बंकिम भी प्रभावित हुए और रमेशचन्द्र दत्त ने तो जयसिंह-शिवाजी वृतान्त को अपने 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास में ज्यों का त्यों ले लिया है।

विदेशी महिला का बंगला उपन्यास

साधारणत: बगला साहित्य में उपन्यासो का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के छठे दशक से माना जाता है। इस तिथि के बारे मे विभिन्न इतिहासकारों मे मतभेद है। पहले यह समझा जाता था कि प्यारीचन्द का उपन्यास 'आलालेर घरेर दुलाल' ही बंगला का पहला उपन्यास है, लेकिन जबसे मिसेज हेनाकेथरिन मैलेन्स का उपन्यास 'फूलमणि उ करुणा' १८५२ ई०) प्रकाश में आया है, तब से विवाद शुरू हो गया है। 'फूलमणि और करुणा' का इस दृष्टि से बड़ा महत्व है कि यह उपन्यास एक विदेशी महिला द्वारा लिखा गया बंगला का प्रथम उपन्यास है। इसे भारतीय भाषाओं में लिखा गया पहला उपन्यास भी कहा जा सकता है। फूलमणि नाम की एक ईसाई धर्म में नव-दीक्षित बंगाली गृहणी को कथा का केन्द्र विन्दु बनाया गया है। आत्म-कथन या संस्करणात्मक शैली में यह रचना लिखी गई है। डॉ० ओमप्रकाश ने इस उपन्यास का हिन्दी में अनुवाद किया है (दैनिक विश्वमित्र, 'बंगाल के प्रथम उपन्यास की विदेशिनी लेखिका', १३ जुलाई, १९८६)।

कुछ इतिहासकार 'फूलमणि उ करुणा' को प्रथम उपन्यास की संज्ञा देना चाहते हैं और कुछ 'आलालेर घरेर दुलाल' को, पर वास्तविकता यह है कि दोनों ही रचनाएँ उपन्यास की कोटि में नहीं आतीं। हाँ, इतना जरूरी है कि बंगला उपन्यास की विकास-धारा में इनका महत्व है। इन दोनों रचनाओं की अपेक्षा भूदेव मुखोपाध्याय के अंगूरीय विनिमये' में उपन्यास का थोड़ा स्वरूप अवश्य मिलता हैं। यूं अभी तक उपन्यास की कोई सर्वमान्य परिभाषा नही बन पाई है। इसलिए उस कसौटी पर परखने का कोई मापदण्ड हमारे पास नहीं है। आरम्भ में जो उपन्यास हमें देखने को मिले, उनमें ईस्वी सन् हैं और लगता है कि हम कोई इतिहास की पुस्तक पढ़ रहे हैं। बीच-बीच में लेखक पाठकों से बातचीत करता है। इस प्रकार की परिपाटी न केवल भूदेव, रमेशचन्द्र दत्त, स्वर्ण कुमारी देवी के उपन्यासों में मिलती है, अपितु उपन्यास सम्राट बंकिम चट्टोपाध्याय के उपन्यासों में भी यह सब मिलता है। असल में संवत् और

नाम गिनाने से ही कोई रचना इतिहास नहीं बनती और उनको हटाकर कहानी कहने से कोई कृति उपन्यास की संज्ञा नहीं पा सकती। उपन्यास में इतिहास की घटनाएँ तो रहती हैं, पर उनमें कल्पना की उड़ान भरपूर लगाई जाती है। इसी काल्पनिक उड़ान को इतिहास का रोमांस कहते हैं। लेखक उस काल में नहीं रहता, पर उसका वर्णन और चित्रण इस भांति करता है कि पाठक उस कालखण्ड के परिवेश में पहुँच कर अपने को भूल जायें और कथा-रस में गोता लगाने लगें।

पुनरुक्ति की विवशता

हमने बंगला-साहित्य में टॉड के 'राजस्थान' के प्रभाव को दर्शाने की चेष्टा की है। यह प्रभाव किस प्रकार आया और उसमें किन-किन घटनाओ ने अपना पार्ट अदा किया। इसे बिना समझे हम यथार्थ की ओर अग्रसर नहीं हो सकते। साथ ही बंगला-साहित्य के क्रमिक विकास का सम्यक अध्ययन किए बिना हम टॉड के ऐति-हासिक महत्व को नहीं समझ सकेंगे। टॉड के 'राजस्थान' का जबरदस्त प्रभाव बंगला-साहित्य की सभी विधाओं पर पड़ा। यह प्रभाव कालान्तर में बंगला से होता हुआ हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी पहुँचा। इस तथ्य को जानने के लिए तथा बंगला-साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों से परिचित होने के लिए कहीं-कहीं हमें विस्तार से अपनी बात कहनी पड़ी है। पाठकों को हमारे इस प्रयास में पुनरुक्ति मिल सकती है। पुनरुक्ति इस बात में मिल सकती कि एक ही प्रसंग को हमने बार-बार उपस्थित किया है। किन्तु हमारी यह विवशता है। क्योंकि 'राजस्थान' ग्रन्थ की कुछ कहानियाँ इतनी प्रभावोत्पादक हैं कि उन्हीं विशिष्ट कथाओं को उपजीव्य बनाकर बंगला के मनीषी साहित्यकारों ने कविता, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। अगर एक ही उपकथा पर कई नाटक विभिन्न समय में विभिन्न नाटककारों द्वारा लिखे गए हैं या उपन्यास और कविताएँ लिखी गई हैं, तो उन पर विचार न करना, रचनाकार के प्रति अन्याय होगा। सभी रचनाकारों की अपनी दृष्टि, अपना नजरिया है और कहने का ढंग भी अपना है। लेखक ने किस नए अंदाज से किस पात्र और घटना को देखा-परखा है. उस पर अगर विचार न किया जाय तो जाहिर है बात अधूरी और एकांगी रह जाती है. यति-भंग का खतरा भी है। इस कारण पुस्तक में बार-बार एक ही कहानी की पुनरुक्ति हुई है। यह दोष न होकर हमारी मजबूरी है। उदाहरण के तौर पर हमने 'अंगूरीय विनिमये'

में शिवाजी की जिस कहानी का उल्लेख किया है, आगे चलकर हमें रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में उसे दोहराना पड़ेगा। 'अंगूरीय विनिमये' में केवल जयपुर के राजा जयसिंह का जिक्र आया है, पर रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यास में हम राठौर राजा यशवन्त सिंह को भी प्रमुख रूप से देखते हैं। ऐसे ही अन्य कई प्रसंग हैं। राणा प्रताप और पद्मिनी पर तो प्रचुर परिमाण में लिखा गया है। ये दो चरित्र विशेष आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। सभी रचनाकारों ने इनका चित्रण करने में अपनी कोई न कोई नई उद्भावना का संयोजन किया है।

इतिहास की खोज

सम्भव है 'राजस्थान' की कुछ कहानियाँ इतिहास की कसौटी पर खरी नहीं उतरतीं। इसका कारण है कि जब बंगला-साहित्य में उपन्यास, नाटक और काव्य लिखने की परम्परा आरम्भ हुई, उस समय तक कोई प्रामाणिक इतिहास रचनाकारों के सामने उपस्थित नहीं था। इस अभाव का सामना केवल १८वीं और १९वीं शताब्दी के साहित्यकारों को नहीं करना पड़ा, बल्कि आज भी यह समस्या बरकरार है। बंकिम का कहना था—'जिस राष्ट्र का अपना इतिहास न हो, उसके कष्टों का कभी अन्त नहीं हो सकता।' उन्हें इस बात पर बहुत खेद था कि भारत में इतिहास लिखने की परम्परा का अभाव रहा है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार राखालदास बन्दोपाध्याय के शब्दों में बंकिम पर की गई उनकी टिप्पणी यहाँ द्रष्टव्य है—'बंकिम ने इतिहास के अध्ययन के लिए निष्ठा पूर्वक वैज्ञानिक पद्धति अपनाई और सही अर्थों में ऐतिहासिक अनुसंधान की आधारशिला रखी। उनकी कालजयी रचनाएँ इसका पुष्ट प्रमाण हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं से जनमानस को झकझोर कर उद्वेलित किया और नई दिशा प्रदान की। पश्चिमी सभ्यता की अंधी-दौड़ में अतीत को पुनर्जीवित करने की इच्छा कितनी ही प्रबल क्यों न हो, पश्चिम को पूरी तरह खारिज करना असम्भव था, क्योंकि पश्चिमी संस्कृति तथा युक्तिवाद (तर्कवाद) की प्रभावशाली भावना शिक्षित समाज पर पूरी तरह से हावी हो चुकी थी। ऐसी मानसिकता में बंकिम की कृतियों ने पूर्व और पश्चिम के बीच मैत्री-सेतु की भूमिका निभाई। उन्हें अगर पुनर्जागरण का मसीहा कहा जाय तो शायद कोई अत्युक्ति नहीं होगी।'

बंकिम ने इतिहास को पुनरुज्जीवित करने के लिए ही उपन्यास लिखे। हिन्दी में जयशंकर प्रसाद ने इतिहास का पुनरुद्धार करने के लिए नाटक लिखे। धीरे-धीरे इतिहास की खोज हो रही है, आज भी यह प्रयास अनवरत जारी है और नए-नए तथ्य

सामने आ रहे हैं। अस्तु, अब हम बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय के कृतित्व और व्यक्तित्व पर विचार करेंगे।

ऋषि बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

माइकेल मधुसूदन दत्त ने जिस प्रकार आरम्भ में अंग्रेजी कविताएँ लिखी थीं और यशोलाभ से बंचित होकर पुनः बंगला भाषा में साहित्य साधना की थी, ठीक उसी तरह बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३८ ई० से १८९४ ई०) ने भी अपनी आरम्भिक रचना अंग्रेजी में लिखी। उनका प्रथम उपन्यास राजमोहन्स वाइफ (Raj-mohan's wife) अंग्रेजी में १८३४ ई० में लिखा गया। इस उपन्यास का प्रकाशन इण्डियन फील्ड Indian field) नामक पत्रिका में इसी वर्ष हुआ। लेकिन बंकिम को भी जब अंग्रेजी में उपन्यास लिखने पर प्रसिद्धि नहीं मिली तो वे बंगला भाषा में उपन्यास लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। असल में माइकेल और बंकिम दोनों ही अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार थे और आंग्ल साहित्य से प्रभावित थे। अतः दोनों ने सबसे पहले अंग्रेजी में ही कलम चलाई। चूँकि दोनों अंग्रेजी से बंगला में लिखने लगे इस कारण आरम्भ में बंगला भाषा में थोड़ी कठिनाई हुई। यह भी एक तथ्य है कि बंकिम ने बंगला भाषा को मांज-संवार कर गद्य के उपयुक्त ही नहीं बनाया, वरन् बंगला भाषा के सौष्ठव में एक युगान्तकारी प्रांजलता और चमत्कार पैदा कर दिया। बंगला-साहित्य और भाषा इनकी ऋणी है। जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने खड़ी बोली हिन्दी को पुष्ट और बलशाली बनाया, वही काम बंकिम ने किया। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को इसी कारण 'भारतेन्दु युग' के नाम से पुकारा जाता है और बंगला-साहित्य के इस काल को 'बंकिम युग' के नाम से जाना जाता है। यद्यपि बंकिम, रमेशचन्द्र दत्त और भूदेव समसामयिक थे, पर बंकिम की बात ही जुदा थी।

बंकिम के उपन्यास

बंकिमचन्द्र ने कुल चौदह छोटे-बड़े उपन्यास लिखे। उनमें 'युगली गुरीय' और 'राधारानी' बड़ी कहानियाँ हैं। बाकी बारह उपन्यासों में से नौ उपन्यास ऐतिहासिक माने जाते हैं। किन्तु उनके अपने मत से टॉड के 'राजस्थान' पर आधारित उनका उपन्यास 'राजसिंह' ही सही अर्थों में ऐतिहासिक उपन्यास है। उन्होंने जब यूरोप के इतिहास को पढ़ा तो उनके मन में हुआ कि अपने देश का भी कोई इतिहास लिखा जाये। इसके लिए उन्होंने पूरी कोशिश की और कदाचित इतिहास की रचना-प्रक्रिया में ही उन्होंने ढेर सारे उपन्यास रच डाले। बंकिम के बारे में महापण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है—"At college Bankim Chandra was a

voracious reader of history, and he always longed to be a distinguished historian." (शचीचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित 'बंकिम जीवनी')।

बंकिम और रमेशचन्द्र दत्त समसामयिक थे। बंकिम का प्रथम उपन्यास है, 'दुर्गेशनंदिनी'। ऐतिहासिक दृष्टि से रमेशचन्द्र के उपन्यास ऐतिहासिकता की कसौटी पर खरे उतरते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से बंकिम के ऐतिहासिक उपन्यास अपेक्षाकृत जटिल और मिश्र प्रकृति के हैं। इनके उपन्यासो में इतिहास काफी हद तक कल्पना रंजित हो गया है। डॉ० श्रीकुमार बनर्जी ने अपने वृहद् ग्रन्थ 'बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा' के पृष्ठ ४२ पर लिखा है—'बंकिम का आदर्शवाद, देश-जाति के बारे में उनकी आशा आकाक्षा, उनकी देशभक्ति इतिहास पर हावी हो गई है। इसी कारण उनके उपन्यासों में कहीं महाकाव्य की विशालता और कहीं गीतिकाव्य की उन्मादना आ गई है। इतिहास को सत्य रूप में ग्रहण किया है, इसका आभास नहीं मिलता। 'आनन्द मठ' में सन्यासी-विद्रोह को उन्होंने देशोद्धार के रूप में चित्रित किया है। 'दुर्गेशनंदिनी', 'राजसिंह' और 'चन्द्रशेखर' को छोड़कर उनके अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में यही बात लागू होती है।'

'दुर्गेशनंदिनी' और 'राजसिंह' ये दो उपन्यास ही ऐतिहासिकता की रक्षा करते हैं। ऐतिहासिक व्यक्ति ही इनके नायक हैं और उनका भाग्य निर्णय ही उपन्यासों का कथ्य है। लेकिन ऐसी बात नही है कि केवल ऐतिहासिक व्यक्तियो के नायक बनने मात्र से ही कोई रचना ऐतिहासिक हो जाती है। कभी-कभी अनैतिहासिक व्यक्ति भी ऐतिहासिक घटनाओं का नायक बन जाता है और रचना सफल हो जाती है। स्कॉट ने ऐसे उपन्यास लिखे हैं। रमेशचन्द्र के 'बंग विजेता' उपन्यास मे राजा टोडरमल की खास भूमिका है, फिर भी उसमें काल्पनिक पात्र को उपन्यास का नायक बनाया गया है।

बंकिम का 'राजसिंह' उपन्यास

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'राजसिंह' उपन्यास का प्रथम प्रकाशन १८८२ ई० में हुआ। उस समय यह एक छोटे आकार में मात्र उन्नीस परिच्छेदों में लिखा गया था। जब 'बंगदर्शन' पत्रिका में इसका धारावाहिक प्रकाशन हुआ तो कुछ लोगों ने इसके एक पात्र माणिकलाल को लेकर आपत्ति उठाई। माणिकलाल एक डकैत था, जो बाद में राणा राजसिंह का कृपापात्र बन गया था। बंकिम ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है—'कुछ लोगों को यह शिकायत है कि मेरे द्वारा चित्रित चरित्र से आजकल के युवकों का चरित्र भ्रष्ट हो रहा है। इसलिए अब डकैत माणिकलाल के चरित्र का अंकन करने की अभिलाषा नहीं है।'

बाद में मित्रों के आग्रह से बंकिम ने 'राजसिंह' उपन्यास को पूर्ण किया। इस उपन्यास के तीन संस्करण छोटे आकार में प्रकाशित हुए और १८९३ ई० में चौथा संस्करण पूर्ण उपन्यास के वृहदाकार रूप में प्रकाशित हुआ। यही बंकिम का सबसे बड़ा और शेष उपन्यास है। इसके बाद दूसरे वर्ष में अर्थात् ८ अप्रैल, १८९४ ई० को बंकिम स्वर्ग सिधार गए। उल्लेखनीय है कि बंकिम का राजसिंह' उपन्यास ही सही मायने में बंगला-साहित्य का श्रेष्ठ उपन्यास है। इसे लेखक ने भी स्वीकार किया है तथा बंगला-साहित्य के इतिहासकारों-आलोचकों ने भी एक स्वर से अंगीकार किया है। डॉ० श्रीकुमार बनर्जी ने अपने 'बंग साहित्ये उपन्यासेर धारा' ग्रन्थ के पृष्ठ ४५ पर लिखा है—'राजसिंह' उपन्यास में ऐतिहासिक उपन्यास के आदर्शों की काफी अंशों में रक्षा हुई है। इस उपन्यास में एक सही ऐतिहासिक घटना का सम्यक चित्रण हुआ है।'

डॉ० सुकुमार सेन ने अपने 'बांग्ला साहित्येर इतिहास' ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के २३६ पृष्ठ पर अपनी राय इन शब्दों में अभिव्यक्त की है—राजसिंह' उपन्यास में ऐतिहासिक वातावरण का सुन्दर ढंग से वर्णन हुआ है। वैसे कुछ ऐतिहासिक चरित्र अपनी मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाये हैं। चंचल कुमारी को सहचरी निर्मल कुमारी का काल्पनिक चित्रण जहाँ अस्वाभाविक हुआ है, वहीं मुबारक की भूमिका लगता है, 'दुर्गेशनंदिनी' के उस्मान का विकसित चरित्र है। जेबुन्निसा का चरित्र स्वाभाविक बन पड़ा है। उदीपुरी बेगम की

भूमिका को नीचे धरातल पर चित्रित किया गया है, अस्तु, चरित्रांकन में थोड़ी त्रुटि रहने पर भी कुल मिला कर उपन्यास-रस के परिपाक में 'राजसिंह' बंकिम के उपन्यासों में विशिष्ट स्थान रखता है।'

'राजस्थान' से उपकथा

बंकिमचन्द्र ने उपन्यास की कथावस्तु टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ से ली है। बंकिम ने उपन्यास की भूमिका मे लिखा है कि इतिहास लिखने और ऐतिहासिक उपन्यास की रचना मे बड़ी बाधाएँ हैं। उनका कथन है—'मुसलमान इतिहास लेखक अत्यधिक रूप से स्वजाति के प्रति पक्षपात दिखाते हैं। उन्होंने हिन्दुओं की वीरता का बखान करने में कार्पण्य दर्शाया है। खास कर राजपूत वीरों के बारे में उन्होंने तथ्यों को दबा दिया है। इसी प्रकार राजपूत इतिहास पर भी पूरी तरह भरोसा नहीं किया जा सकता है। पक्षपात की बात उनमें नहीं है, सो ठीक नहीं है। मानूची नाम के एक फ्रांसिसी चिकित्सक ने कुछ ऐतिहासिक बातें लिखी है। वह मुसलमान काल में भारत में था। इन तीन प्रकार के इतिहासों में भी परस्पर असंगति देखने को मिलती है।'

शायद इन्हीं उलझनों से बचने के लिए बंकिम को टॉड के 'राजस्थान' पर विशेष निर्भर रहना पड़ा। अब इस इतिहास पर नए तथ्यों के उद्घाटित होने से एक नई रोशनी पड़ी है। इन नवीनताओं मे औरंगजेब के कुछ पत्र हैं। महाराणा राजसिंह और औरंगजेब के बीच फारसी भाषा में जिन पत्रों का आदान-प्रदान हुआ था, उनका प्रकाशन कविराज श्यामलदास ने हिन्दी 'वीर-विनोद' मे किया है। ये पत्र 'वीर-विनोद' के द्वितीय खण्ड में हैं। पुरानी राजस्थानी (हिन्दी) या डिंगल में महाराणा राजसिंह की प्रशस्ति का प्रकाशन हो गया है। राज-समुद्र नद (नहर) के किनारे पाँच बड़े शिला लेख हैं, जिनमें संस्कृत में 'राज प्रशस्ति महाकाव्य' अंकित है। इन शिला-लेखों मे महाराणा राजसिंह की कीर्ति का बखान है। इसी राज-समुद्र का वर्णन 'राजसिंह' मे हुआ है। उपन्यास के पंचम खण्ड के द्वितीय परिच्छेद मे चंचल कुमारी राजसिंह को कहती है—'अगर आप मेरा परित्याग करेंगे तो मैं राजसमुद्र में डूब कर प्राण दे दूँगी।' ('राजसिंह' उपन्यास, पृ० ८८)

राजसिंह' की कथा

'राजसिंह' उपन्यास की मूल कहानी चंचल कुमारी को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। यह घटना ऐतिहासिक है। चंचल कुमारी राजस्थान के पर्वत-प्रदेश में स्थित

रूपनगर के राजा विक्रम सिंह सोलंकी की रूपवती कन्या थी। औरंगज़ेब उसे अपनी बेगम बनाना चाहता था। चचल कुमारी ने चित्तौड़ के राणा राजसिंह से रक्षा की याचना की। मुगल सेना जब रूपनगर पहुँची तो राजसिंह ने आक्रमण कर राजकुमारी का अपहरण कर लिया और उसे चित्तौड़ ले गए। बाद में औरंगजेब और राजपूतों की सेना में घमासान युद्ध हुआ और दिल्ली के बादशाह को पराजित होकर राणा से संधि करनी पड़ी।

रूपनगर की राजकन्या चचल कुमारी को केन्द्र कर राणा राजसिंह और औरंगजेब के बीच जिस युद्ध-विग्रह का सूत्रपात हुआ उसका उल्लेख टॉड के 'राजस्थान' में है और उसी ऐतिहासिक घटना को आधार बना कर 'राजसिंह' उपन्यास की कहानी का ताना-बाना बुना गया है। उपन्यास की कथा-वस्तु के सम्बन्ध में बंकिम ने लिखा है—

'स्थूल घटनाओं को अर्थात युद्ध आदि का फल जो इतिहास में वर्णित है, मैंने ठीक उसी प्रकार अपने उपन्यास में रखा है। युद्ध और उसके परिणाम की कल्पना मैंने अलग से नहीं की है, लेकिन युद्ध के प्रकरण की जो कथा इतिहास में नहीं है, उसको कल्पना के आधार पर मैंने संयोजित किया है। औरंगजेब, राजसिंह, उदीपुरी बेगम, जेबुन्निसा आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। इनका चरित्र इतिहास के अनुरूप ही रखा गया है। लेकिन उनके चरित्रों को उभारने या उनके प्रकटीकरण के लिए काल्पनिक घटनाओं और पात्रों का सृजन किया गया है। इतिहास की कथा को रस-बोध से परिपूर्ण करने के लिए कई उपकथाओं की कल्पना की गई है। वैसे उपन्यास की सारी घटनाएँ ऐतिहासिक हों, इसकी जरूरत नहीं। जब वह उपन्यास न होकर कोरा शुष्क इतिहास हो जायेगा।'

टॉड के 'राजस्थान' के प्रथम खण्ड के पृष्ठ ३०१ पर रूपनगर की राजकुमारी की घटना का वर्णन इस प्रकार है—

"The Mogul demanded the hand of the princess of Roopnagurh, a junior branch of the Marwar house and sent with the demand a cortege of two thousand horse to escort the fair to court. But the naughty Rajpootni, either indignant at such precipitation or charmed with the gallantry of the Rana (Raj Sing), who had evinced his devotion to the fair by measuring his sword with the head of her house, rejected with disdain the proffered alliance and justified by briliant precedents in the romantic history of her nation,

she entrusted her cause to the arm of the Chief of the Rajpoot race offering herself as the reward of protection. The family priest deemed his office honoured by being the messenger of her wishes and the billet he conveyed is incorporated in the memorial of this reign. "Is the swan to be the mate of the stork : a Rajpootni, a pure in blood, to be wife to the monkey faced barbarian," concluding with a threat of self-destruction if not saved from dishonour. This appeal with other powerful motives was, seized on with avidity by the Rana as a pretext to throw away the scabbard, in order to illustrate the opening of a warfare, in which he determined to put all to the hazard in defence of his country and his faith. The issue was an omen of success to his warlike and superstitious vassalage. With a choosan band he rapidly passed the foot of the Aravulli and appeared before Roopnagurh, cut up the imperial guards and bore off the prize to his capital. The daring act was applauded by all who bore the name of Rajpoot, and his chiefs with joy gathered their retainers around the 'red standard' to protect the queen so gallantly achieved" ('Annals and Antiquities of Rajasthan', By James Tod, Vol. I, Chapter-XIII, Page 301).

उपन्यास का आरम्भ

इस उपाख्यान को बंकिम ने बड़ी रोचकता के साथ अपने उपन्यास 'राजसिंह' मे दर्शाया है। उपन्यास का आरम्भ इस प्रकार होता है—'राजस्थान के पार्वत्य प्रदेश मे रूपनगर नाम का एक छोटा राज्य था। राजा चाहे छोटा हो या बड़ा उसका एक राज्य रहेगा ही। रूपनगर मे भी राजा था—उनका नाम था विक्रम सिंह सोलंकी। उसी विक्रम सिंह को रूपवती राजकन्या की कहानी से उपन्यास की कथा शुरू होती है। एक तस्वीर बेचने वाली रूपनगर के अंत:पुर में चित्र बेचने आती है। उसके पास राजपूत वीरों, मुगल बादशाहो और शाहजादों के चित्र थे। चंचल कुमारी ने राणा राजसिंह के चित्र को पसन्द किया और औरंगजेब के चित्र को पैरों की ठोकर से अपमानित कर भंग कर दिया। इससे उसकी सखियाँ भयभीत हुईं। राजकुमारी की एक सखी निर्मल कुमारी ने तस्वीर बेचने वाली मुसलमान महिला को एक अशर्फी देकर कहा कि इस बात का जिक्र कहीं मत करना, पर वह चित्र बेचने वाली आगरा की रहने वाली थी और उसका लड़का दिल्ली में चित्र बेचने का काम करता था। घूम फिर कर बात औरंगजेब के अन्त:पुर में पहुँच गई। इससे कुपित होकर औरंगजेब की उदीपुरी बेगम ने कहा कि जब तक रूपनगर की राजकुमारी उसकी सेवा में आकर दासी नहीं बनेगी तब तक उसे चैन नहीं। दूसरी ओर जोधपुरी रानी ने जब बात सुनी तो उसने अपनी एक दासी रूपनगर

भेज कर चंचल कुमारी को सावधान किया। चंचल कुमारी को प्राप्त करने के लिए औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा के प्रिय मुबारक को दो हजार सेना देकर रूपनगर भेजा गया।

चंचल कुमारी राणा राजसिंह की वीरता पर मुग्ध थी और उन्हें वरना चाहती थी। औरंगजेब की बेगम बनना उसे कतई पसन्द नहीं था। उसकी इस भावना को हम उपन्यास के प्रथम खण्ड के तृतीय परिच्छेद में इस प्रकार पाते हैं—

चंचल जब एकान्त में राजसिंह के चित्र को देख रही थी तभी उसकी सखी निर्मल वहाँ आ गई। उसने चित्र को देख कर कहा—इस राणा की उम्र ज्यादा है और चेहरा भी कोई वैसा सुन्दर नहीं है। तब चंचल ने इन शब्दों में उत्तर दिया—

गौरी समझे भसमभार, पियारी समझे काला।
शची समझे सहस्रलोचन, वीर समझे वीर बाला॥
गंगा गर्जन शंभु जट पर, धरणी जैठत वासुकी फण में।
पवन होयत आगुन-सखा, वीर भजत युवती मन में॥

('राजसिंह' उपन्यास, पृ० ८)

बंकिम ने हिन्दी के इस छन्द को चंचल के मुँह से कहलवाया है, जिसका भाव इस प्रकार है—शंकर के शरीर में शोभित भस्मी को गौरी पार्वती ही समझ सकती है। इन्द्राणी शचि ही सहस्र लोचन वाले इन्द्र के मर्म को जान सकती है। उसी तरह वीर नारी ही वीर-श्रेष्ठ के मर्म को जान सकती है। महादेव शंकर की जटा में गंगा गर्जन करती हैं, वासुकी के फण के ऊपर पृथ्वी अवस्थान करती है, हवा आग की सखी है, वैसे ही सच्चे वीर पुरुष का स्थान युवती नारी के हृदय में होता है।

इन तर्कों ने निर्मल को निरुत्तर कर दिया, किन्तु जब राजकुमारी को लेने के लिए मुगल सेना के आने का समाचार मिला तो चंचल उद्विग्न हो गई और उसने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए कुल पुरोहित के हाथ राणा राजसिंह को पत्र भेजा।

टॉड के वर्णन के अनुसार बंकिम ने भी 'राजसिंह' उपन्यास में उस बात का जिक्र किया है जिसमें चंचल कुमारी ने अपनी सखी से कहा था—'हँसनी क्या बक की सेवा कर सकती है? बंदरमुंहे औरंगजेब को वह कभी पसंद नहीं कर सकती।' इस प्रसंग को उपन्यास के तृतीय खण्ड के प्रथम परिच्छेद के पृ० ३८ पर पर देखा जा सकता है। परिच्छेद का शीर्षक भी है 'बक उ हँसीर कथा।'

राजपुरोहित की मार्फत चंचल कुमारी ने जो पत्र राणा के पास भेजा था, वह बड़ा ही कारुणिक और वीरोत्तेजक था। उस लम्बे पत्र में लिखा था कि अम्बर, जोधपुर ने अपनी कन्याओं का विवाह मुगलों से किया, पर मेवाड़ ऐसे घृणित कार्य

से मुक्त रहा, उसी वंश के आप श्रेष्ठ वीर हैं। इस गौरवशाली घराने में राणा प्रताप, संग्राम सिंह हुए हैं, जिन्होंने मुगलों को पराभूत किया और विजय वैजयन्ती फहराई। मैं एक छोटे से राजा की कन्या हूँ। मुझे जबरन दिल्ली ले जाने के लिए मुगल सेना आने वाली है। मैं औरंगजेब की बेगम बनने में अपनी हेठी समझती हूँ। इससे अच्छा है कि मैं आत्म-हत्या कर लूँ। आप ही बताइए क्या एक हँसनी बगुले की दासी बन सकती है? क्या हिमालय की गंगा कीचड़ में पंकिल हो सकती है? युद्ध में स्त्री-लाभ वीरों का धर्म है। समस्त क्षत्रिय कुलों से युद्ध करके पाण्डवों ने द्रौपदी को प्राप्त किया काशी राज्य में अपना शौर्य प्रदर्शन कर भीष्म ने राजकन्याओं का अपहरण किया। हे राजन! रुक्मिणी के अपहरण की बात से आप पूर्ण परिचित हैं। मैं समझती हूँ आप इस पृथ्वी पर आज भी अद्वितीय हैं—क्या आप अपने वीर-धर्म का पालन नहीं करेंगे?

मजेदार बात है कि जब राणा राजसिंह ने अकस्मात रूपनगर पर आक्रमण कर मुगल सेना को तितर-बितर कर दिया और राजकुमारी चंचल का अपहरण कर लिया तब वह इस घटना को समझ नहीं सकी। वह पालकी मे बैठी राजसिंह के बारे मे सोच रही थी। राणा का सेना नायक माणिकलाल घोड़े पर सवार था और पालकी के साथ-साथ चल रहा था। उपन्यास के चतुर्थ खण्ड के प्रथम परिच्छेद में इस घटना का उल्लेख है। प्रभात की वायु मे अश्वारोहीगण पालकी के साथ चल रहे थे। शिविका में बैठी चंचल कुमारी उद्विग्न थी। तभी पास के अश्वारोही ने गाना शुरू किया—

शरम भरम से प्यारी, सुमिरत बंशीधारी
झरत लोचन वारी।
न समझे गोप कुमारी, सेहि्न् बैठत मुरारी
निहारत राह तुम्हारी!

('राजसिंह' उपन्यास, चतुर्थ खण्ड, प्रथम परिच्छेद, पृ० ६५-६६)

अर्थात रुक्मिणी बंशीधारी को स्मरण कर रही है, आँखों से अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। वह समझती है कि अभी तक यदुपति उसका उद्धार करते नहीं आये, पर उसे क्या पता कि पास ही मुरारी बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस प्रकार बड़े कौशल से राजसिंह ने आक्रमण कर चंचल कुमारी का अपहरण किया और उसे सकुशल चित्तौड़ भेज दिया। इस युद्ध में माणिकलाल ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया।

रूपनगर कहाँ है ?

राणा राजसिंह ने चंचल कुमारी का अपहरण कर उससे विवाह किया, यह इतिहास से समर्थित घटना है, किन्तु रूपनगर और चंचल कुमारी के नामों की कल्पना बंकिम ने अपनी ओर से की है। प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने 'शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में लिखा है—'जयपुर राज्य के पूर्व में और जोधपुर राज्य के पश्चिम में तथा अजमेर के दक्षिण में स्थित एक छोटा सा राजपूती राज्य है, उसका नाम कृष्णगढ़ (किसनगढ़) है। रूपनगर की राजकुमारी की जिस घटना का उल्लेख हुआ है, वह कृष्णगढ़ की राजकुमारी चारुमती है। इस राज्य के राजा रूपसिंह राठौर ने दारा शिकोह के पक्ष में तथा औरंगजेब के विरोध में सामूगढ़ में युद्ध किया था और वीरगति को प्राप्त हुए थे। युद्ध में विजयी औरंगजेब ने रूपसिंह की विधवा कन्या चारुमती से विवाह करने का दावा किया। चूंकि इस विवाह से कुल-मर्यादा नष्ट होगी, इसलिए कुल-पुरोहित के द्वारा राणा राजसिंह के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा गया। राजसिंह सदलबल बारात लेकर किसनगढ़ आये और उन्होंने चारुमति का पाणिग्रहण किया। औरंगजेब ने विरोध का मन में दमन कर लिया, किन्तु महाराणा के दो परगनों को कब्जे में कर लिया और हरिसिंह देवलिया को उनका अधिपति बना दिया। इसके विरुद्ध राजसिंह ने बादशाह के पास पत्र भेजा।'

इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि किशनगढ़ ही रूपनगर है। असल में किसनगढ़ के पास एक नगर है, जिसका नाम 'रूपनगढ़' है। इन पंक्तियों का लेखक जब संत दादूदयाल के नरायणा आश्रम से किशनगढ़ गया तो उसने किसनगढ़ और रूपनगढ़ दोनों का भ्रमण किया। बंकिम ने शायद इसी रूपनगढ़ को रूपनगर बताया है। असल में किशनगढ़ से उदयपुर का फासला काफी लम्बा है। इसके मध्य अजमेर (पुष्कर), डीडवाणा, चित्तौड़ आदि पड़ते हैं। इन सभी स्थानों के भ्रमण से हमें लगा कि जिस रूपनगर की बात कही गई है वह सम्भवतः मेवाड़ के निकट का स्थान होना चाहिए। कहानी में रूपनगर का स्थान मेवाड़ के पास दिखाया गया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि रूपनगढ़ ही रूपनगर है।

एटा (उ० प्र०) से प्रकाशित हुई है। श्री मिश्र ने लिखा है कि किशनगढ़ के उत्तर में जोधपुर राज्य है, पूर्व में जयपुर राज्य, दक्षिण-पश्चिम में अजमेर तथा दक्षिण-उत्तर में मेवाड़ से इसकी सीमा लगती है। इसी किशनगढ़ की शाखा में रूपनसिंह राजा था। उन्होंने ही रूपनगढ़ बसाया होगा। राजकुमारी चारुमती (उपनाम चंचल कुमारी) इनकी रूपवती कन्या थी। राजा रूपनसिंह से आरम्भ से ही औरंगजेब नाराज था। क्योंकि रूपनसिंह ने सत्ता-संघर्ष में दारा का साथ दिया था। कहा जाता है कि राजा रूपनसिंह की मृत्यु सं० १७१५ में हुई थी। उसके बाद औरंगजेब ने रूपनसिंह से बदला लेने के लिए चंचल कुमारी से विवाह करने के लिए रूपनगढ़ पर सं० १७१६ में आक्रमण किया। मेवाड़ के राणा राजसिंह के सरदार चूड़ावत और मुगल सेना के बीच किशनगढ़-रूपनगढ़ मार्ग पर किशनगढ़ से ६ मील दूर खातौली (खेत+होली) ग्राम के पास भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में सरदार चूड़ावत के सेनापतित्व में मेवाड़ी राजपूत सेना ने बड़ी बहादुरी दिखाई। ('किशनगढ़ और महाराजा सुमेर सिंह', पृ० २८)

श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र की पुस्तक से हमारी बात स्पष्ट होती है कि बंकिम ने 'राजसिंह' उपन्यास में जिस रूपनगर की बात कही है वह किशनगढ़ के पास स्थित रूपनगढ़ है। लेखक ने रूपनगढ़ की राजकुमारी का नाम चारुमती (उपनाम चंचल कुमारी) दिया है। शायद उन्होंने इतिहासकार यदुनाथ सरकार का इतिहास पढ़ा होगा और बंकिम के उपन्यास को भी देखा होगा, जिसमे रूपनगर की राजकुमारी का नाम चंचल कुमारी दिया गया है। यदुनाथ सरकार ने राजकुमारी का नाम चारुमती बताया है। श्री मिश्र ने अपनी पुस्तक में न तो इतिहासकार सरकार का और न बंकिम के 'राजसिंह' का उल्लेख किया है। हाँ, उन्होंने हाड़ारानी और चूड़ावत की कहानी को जरूर दिखाया है, जिसमें हाड़ारानी ने अपना मस्तक काट कर सरदार चूड़ावत को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार एक भारतीय ललना ने दूसरी राजपूत कुमारी के के सतीत्व की रक्षा में अपना बलिदान किया।

अस्तु, राजसिंह ने औरंगजेब के पास जो पत्र भेजा, उसका इतिहास में बड़ा महत्व है। इसमें राणा ने रूपनगर की राजकुमारी के अपहरण की बात को युक्ति देकर सही प्रमाणित किया था और औरंगजेब द्वारा लगाये गए जजिया कर की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। इसके पश्चात राणा राजसिंह और औरंगजेब में भयकर युद्ध हुआ। इसमें बादशाह को धन-बल की क्षति उठानी पड़ी और राजसिंह से सन्धि करने पर बाध्य होना पड़ा। पराजय के बाद औरंगजेब दक्षिणात्य में चला गया, जहाँ शिवाजी के विरुद्ध अर्थात मराठा-शक्ति से वह लड़ता रहा और १७०७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

टॉड के अंग्रेजी में लिखित 'राजस्थान' में रूपनगर के राजा के बारे में इतना ही परिचय है—"The Mogul demanded the hand of the princess

of Roopnagurh, a junior branch of the Marwar house...." लेकिन 'राजस्थान' ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद में रूपनगर की राजकुमारी का नाम प्रभावती बताया गया है, जो परम सुन्दरी थी। वह रूपनगर के राठोड़ राजा की कन्या थी। टॉड ने उसे विधवा नहीं बताया है।

रूपनगर की राजकुमारी का पत्र जब राणा राजसिंह को मिला तो उन्होंने इस विषय में अपने सामंतों से मंत्रणा की। उन सामंतों में एक चूड़ावत सरदार था। वह बड़ा वीर और पराक्रमी था। थोड़े ही दिन पूर्व उसने हाड़ा रानी से विवाह किया था। राणा राजसिंह और रूपनगर की राजकुमारी के लिए उसने बलिदान किया और हाड़ा रानी ने जिस वीरता का परिचय दिया, वह एक रोमांचकारी कहानी है। इस कहानी पर कवि 'मुकुल' ने राजस्थानी भाषा मे 'सैनाणी' काव्य लिखा है, जो काफी प्रसिद्ध है। इसी कहानी को 'मुण्डमाल' शीर्षक से प्रसिद्ध साहित्यकार शिवपूजन सहाय ने हिन्दी में लिखा है। राणा द्वारा रूपनगर की राजकन्या के उद्धार की कहानी में चूड़ावत सरदार की कहानी को 'मेवाड़ का इतिहास' नामक ग्रन्थ में कुमार हनुवंत सिंह तथा पूर्ण सिंह ने सविस्तार लिखा है।

'मेवाड़ का इतिहास' पुस्तक का तीसरा संस्करण आगरा से १९१९ ई० में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक के पृष्ठ २५८ से २७४ पृष्ठों में राजकुमारी रूपवती की कहानी का वर्णन है। 'टॉड कृत राजस्थान का इतिहास' ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के पृष्ठ ४३१ से पृ० ४४२ तक अविकल रूप से 'मेवाड़ का इतिहास' पुस्तक में वर्णित कहानी को उद्धृत किया गया है। 'टॉड कृत राजस्थान का इतिहास ग्रन्थ के अनुवादक है श्री बलदेव प्रसाद मिश्र और सम्पादक हैं श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र। यह ग्रन्थ दो खण्डों में बम्बई के खेमराज श्री कृष्णदास के श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस से १९०७ ई० में प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के अनुवादक ने पृ० ४३१ पर लिखा है—प्रभावती के उद्धार का विस्तृत वृत्तान्त 'मेवाड़ का इतिहास' नामक ग्रन्थ में है, जो कुमार हनुवंत सिंह तथा पूर्ण सिंहजी लिखित है। उसे हम यहाँ उपस्थित कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि 'टॉड कृत राजस्थान का इतिहास' ग्रन्थ का बम्बई से १९०७ ई० में प्रकाशन हुआ और 'मेवाड़ का इतिहास' का तीसरा संस्करण अजमेर से १९१९ ई० में हुआ। इससे पता चलता है कि 'मेवाड़ का इतिहास' अवश्य ही 'टॉड कृत राजस्थान का इतिहास' ग्रन्थ के पूर्व अर्थात १९०७ ई० पहले प्रकाशित हुआ होगा, जिसमें रूपनगर की राजकुमारी की कहानी है तथा हाड़ा रानी के बलिदान की मर्मस्पर्शी दास्तान है। अस्तु, यहाँ उस कहानी को हम उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

हाड़ा रानी का त्याग

राजकुमारी रूपवती राजमहल से अलग एकान्त मे भगवत भक्ति और पूजा पाठ किया करती थी। ईश्वर भक्ति में राजकुमारी की इतनी दृढ़ आस्था थी कि विवाह का स्वप्न में भी उसे ध्यान नहीं आता था। राजकुमारी अपने नाम के अनुरूप अत्यन्त मैनवती थी। इसलिए औरंगजेब उससे विवाह करना चाहता था। इस बात की चर्चा सर्वत्र फैल गई कि औरंगजेब की सेना राजकुमारी को लेने आ रही है। एक दिन कुएँ पर जल भरते समय राजकुमारी की दासी से राजमहल की अन्य दासियों ने कहा—'अरी बहन! क्या तू भी बाई के साथ दिल्ली जायेगी?' यह सुनकर दासी चुप रही, पर उसने राजकुमारी से यह बात बताई। इससे राजकुमारी चिन्तित हुई। उसने सोचा पन्द्रह दिन में बादशाह यहाँ आ खड़ा होगा और बलात मुझे ले जायेगा। अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? जिन तुर्कों से मैं घृणा करती हूँ, अब मुझे उससे विवाह करना पड़ेगा। मेरे जीवन को धिक्कार है। इससे तो मर जाना बेहतर है। उसे एकमात्र अपने ईश्वर पर ही इस संकट से बचने का सहारा था। उसने निश्चय किया कि जीते जी वह बादशाह से विवाह नहीं करेगी। उसने अपने दृढ़ निश्चय की बात अपने काका से कही। काका ने कहा—'हमारे पास थोड़ी सेना है और मुगल बादशाह की अपार सेना का हम मुकाबला कैसे कर सकते हैं? हम लड़ेंगे और सतीत्व की रक्षा में प्राण देंगे, लेकिन उसके बाद भी तुम्हें आत्मघात ही करना होगा। दूसरा एक उपाय है कि तुम्हारा विवाह हिन्दूपति महाराणा उदयपुर के साथ कर दिया जाये। अगर महाराणा राजी हो जायें तो यह संकट टल सकता है। उदयपुर के महाराणा ही इस समय श्रेष्ठ वीर हैं और शरणागत की रक्षा करने में पराक्रमी हैं। अगर तुम कहो तो आज ही सांड़नी (ऊंट) सवार द्वारा महाराणा को पत्र भेजा जाये।'

राजकुमारी ने राणा राजसिंह की वीरता की कहानी सुनी थी। वह तुरंत तैयार हो गई। उसने कहा—'यह मेरा सौभाग्य होगा कि महाराणा से मेरा विवाह हो। आप भी एक पत्र लिखिए और मैं भी एक पत्र महाराणा के नाम से लिखती हूँ।'

इस प्रकार राजकुमारी और उसके काका के पत्र को लेकर दूत महाराणा राजसिंह के दरबार में पहुँचा। राणाजी अपने जागीरदार चूड़ावत, शक्तावत, राणावत, दूदावत, झाला, परमार, हाड़ा, राठोड़ इत्यादि सरदारों के साथ दरबार में बैठे हुए थे। उन्होंने दोनों पत्र पढे और चिन्ता में डूब गए। तब चूड़ावत ने इसका कारण पूछा। राणाजी

ने दोनों पत्र चूड़ावत सरदार के हाथ में दे दिए। पत्रों को पढ़ कर चूड़ावत बोले— 'महाराज ! इसमें विचार करने की क्या बात है ? एक बेचारी अबला ने आपको वर लिया है। अगर आप उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो क्या म्लेच्छों के साथ उसका विवाह होने देंगे ? जो कन्या आपको वर चुकी है, उसे क्या तुर्क ब्याह ले जायेगा ? इससे क्या हिन्दूपति की प्रतिष्ठा बढ़ेगी ? मेवाड़ के राणाओं ने मान-मर्यादा के लिए प्राण दिए हैं—तब क्या महाराणा शरण में आई एक अबला को प्राणघात करने देंगे ? क्या पृथ्वी से क्षत्रियत्व उठ गया ? क्या क्षत्राणियों ने अब वीर पुत्र जनना बन्द कर दिया ? क्या मेवाड़पति बादशाह से डरेगा ? महाराजा यह शरीर तो नाशवान है, मनुष्य मात्र को मरना है। रणक्षेत्र में मरना ही श्रेष्ठ है, ऐसे मरना तो कुत्ते की मौत मरना है।'

राणाजी ने कहा—'वीर चूड़ावत ! इतना उतावला होने की जरूरत नहीं है। मैं राठौड़ कुमारी से विवाह करने से इन्कार नहीं कर रहा हूँ। मैं भी राणा हम्मीर, राणा सांगा, राणा कुंभा, राणा प्रताप की तरह अमर नाम अर्जित करना चाहता हूँ। हम दोनों युवक हैं ! कहीं ऐसा न हो कि लड़कपन में कुछ अहित हो जाय। इसलिए बड़े-बुजुर्गों की राय ले लेना श्रेयष्कर है।'

फलस्वरूप राजकवियों और दरबारियों की सम्मति ली गई और उन्होंने भी ओजस्वी भाषा में राणा को अबला की रक्षा करने के लिए अपनी सहर्ष स्वीकृति दी।

राणाजी बारात लेकर जाने के लिए तैयार हो गए, लेकिन उन्होंने चूड़ावत सरदार से कहा—'हम सेना लेकर राठौड़ राजकुमारी को ब्याहने तो जा रहे हैं, पर जब बादशाह की सेना वहाँ पहुँचेगी तो घमासान युद्ध होगा। मुगल सेना से हम लड़ेंगे, हम खप जायेंगे इसकी चिन्ता नहीं है, किन्तु तब भी तो राजकुमारी को आत्मघात करना ही पड़ेगा। ऐसी हालत में हमारा मनोरथ कैसे सिद्ध होगा ?'

इस पर चूड़ावत ने उपाय सुझाते हुए कहा—'आप थोड़े से सैनिकों को लेकर राठौर राजकुमारी को ब्याहने के लिए रूपनगर जायें और मैं समस्त सिसोदिया सेना-दल को लेकर बादशाह की सेना का मार्ग रोकने के लिए रूपनगर से आगे जाता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक आप ब्याह करके उदयपुर नहीं लौटेंगे तब तक मैं बादशाह की सेना को अर्गला बन कर रोके

रहूँगा और उसे रूपनगर का तोरण-द्वार नहीं देखने दूँगा।'

राणा इस प्रस्ताव से प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'प्रिय शूरवीर! तुम्हारी वीरता और बुद्धिमता को धन्य है। तुम्हारा सुझाव ठीक है, फिर जो एकलिंग की मर्जी होगी, वही होगा।'

सभी सरदार चूड़ावत की सराहना करने लगे और मुगल सेना का रास्ता रोकने की तैयारी करने लगे। दूसरे दिन चूड़ावत सरदार जब युद्ध में जाने के लिए घोड़े पर सवार हो रहे थे तो उन्होंने झरोखे से झाँकती अपनी नवोढ़ा हाड़ा रानी को देखा। चूड़ावत कुछ दिन पूर्व ही विवाह कर उसे लाये थे। चूड़ावत अठारह वर्ष के वीर युवक थे और रानी भी सोलह वर्ष की युवती थी। अभी उसके हाथ का कंगन भी नहीं खुला था और हाथ की मेंहदी भी फीकी नहीं पड़ी थी। चूड़ावत ने ज्यों ही चौक में आकर दृष्टि झरोखे की ओर उठाई तो रानी का मुख ऐसा जान पड़ा मानो बादलों में चन्द्रमा चमकता हो। हाड़ी रानी को देखते ही चूड़ावत की युद्ध-उमंग मन्द पड़ गई। वे घोड़े से उतरे और महल में गए। चतुर रानी ने समझ लिया कि उसके स्वामी के मुख पर वह तेज नहीं है, कहीं कोई चिन्ता समाई हुई है। उसने कहा—'स्वामी! यह क्या हुआ? क्या कोई अशुभ समाचार सुना कि आपके मुख की कान्ति विलीन हो गई? लड़ाई का धौंसा आपने जिस उत्साह से बजवाया था, वह क्यों मंद पड़ गया? युद्ध का डंका सुनकर वीरों में जोश आता है, क्षत्रियों की शूरता बढ़ती है, फिर क्या कारण है कि आप शिथिल हो रहे हैं? आपको मेरी शपथ है, आप सत्य-सत्य कहिए।'

चूड़ावत ने उत्तर दिया—'रूपनगर के राठौड़ वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात् ब्याहने आ रहा है और उस राजकुमारी ने मन-वचन से हमारे राणाजी को वर लिया है। प्रातःकाल ही राणाजी उसे ब्याहने के लिए प्रस्थान करेंगे और बादशाह औरंगजेब का मार्ग रोकने के लिए समस्त मेवाड़ी सेना को लेकर मैं युद्ध में जाऊँगा। वहाँ घोर संग्राम होगा और हमें वहाँ से लौटने की आशा नहीं है, क्योंकि मुगल सेना के सामने हमारी सेना बहुत थोड़ी है। मुझे मरने का तो कोई डर नहीं है। मनुष्य मात्र को मरना है जो मरने से डरूंगा तो मेरी माता की कोख को कलंक लगे। इसलिए मैं मरने से नहीं डरता, मुझे केवल तुम्हारी चिन्ता है। तुम अभी ब्याही आई हो, तुमने विवाह के जीवन का कोई सुख नहीं भोगा और आज मुझे मरने के लिए

जाना पड़ रहा है। मुझे तुम्हारी ही चिन्ता व्याकुल कर रही है।'

हाड़ी रानी ने कहा—'महाराज ! यह आप क्या कह रहे हैं ? अगर आप रणक्षेत्र में विजय प्राप्त करेंगे तो इससे बढ़ कर मेरे लिए इस जगत में दूसरा कौन सा सुख है ? मृत्यु तो कहीं भी आ सकती है, घर में, बाहर, चलते-चलते, उठते-बैठते और तब भी मनुष्य को अपना सुख छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिए युद्ध में जाते समय किसी का मोह करना या सांसारिक सुखों की वासना मन में लाना क्षत्रिय धर्म नहीं है। आप सुख पूर्वक युद्ध के लिए पधारिए और राणा जी का कार्य निर्विघ्न सम्पन्न कराइए। अगर आप युद्ध में विजयी हुए तो हम संसार का सुख भोगेंगे और युद्ध में काम आ गए तो मैं क्षत्राणी का कर्त्तव्य-पालन करूंगी। इससे मुझे सुख मिलेगा कि हमने एक राजकुमारी के सतीत्व की यवनों से रक्षा की। अतः आप युद्ध में खुशी-खुशी जाइए और विजयी होकर आइए। अगर वीरता पूर्वक लड़ते लड़ते काम आ गए तो हम दोनों की भेंट स्वर्ग में होगी। क्षत्राणी को अपना धर्म कैसे पालन करना चाहिए, यह मुझे विदित है। मैं अपने धर्म-पालन में जरा भी विलम्ब नहीं करूंगी।'

इस प्रकार हाड़ी रानी और चूड़ावत में बात-चीत जब सन्तोषप्रद हो गई तो चूड़ावत ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। घोड़े को एड़ लगाई, पर मन की शंका पुनः सामने आ खड़ी हुई। तब उन्होंने रानी के पास एक सेवक को भेजा और विश्वास की 'सेनाणी' (चिह्न) देने को कहा। सेवक जब रानी के पास पहुँचा तो रानी ने सोचा—'जब तक स्वामी का मन मेरे प्रति शंकित रहेगा तब तक वे युद्ध में कृतकार्य नहीं होंगे।' यह सोच कर उसने तत्काल तलवार से अपना सिर काट कर सेवक को दे दिया।

हाड़ी रानी का कटा सिर देखकर चूड़ावत उत्तेजित हो गए और उन्होंने रानी के सिर के केशों को दो भागों में विभक्त करके सिर को गले में डाल लिया और साक्षात रुण्डमुण्ड धारी शंकर बन गए। अब उनको घर की चिन्ता नहीं रही, बल्कि यह चिन्ता बढ़ गई कि किस प्रकार जल्द से जल्द युद्ध में वीरगति प्राप्त कर स्वर्ग मे अपनी प्यारी रानी से मिलें। इस तरह चूड़ावत दृढ़ निश्चय कर रुद्र की भांति क्रोधित होकर रणक्षेत्र में बादशाह की सेना को रोकने के लिए चल पड़े। उन्होंने तीन दिन तक भयंकर रूप से मुगल सेना का सामना किया। तीन दिन में वह तिथि पूर्ण हो गई, जिस शुभ लग्न में राणाजी का रूपकुमारी से विवाह होना तय था। वे मर गए पर उन्होंने युद्ध में मर कर बादशाह औरंगजेब की सेना को रोकने की प्रतिज्ञा पूरी कर दिखाई।

इधर राणाजी ठीक पूर्णिमा के दिन रूपनगर पहुँच गए थे और राजकुमारी रूपवती को ब्याह कर बैसाख प्रतिपदा को रूपनगर से बिदा होकर कुशलता पूर्वक उदयपुर लौट आये। उदयपुर लौटने पर राणा को चूड़ावत वीर के युद्ध-पराक्रम की बात का पता लगा और वे उस वीर के लिए तथा उसकी प्रतिज्ञा के लिए अतिशय आनन्दित हुए और गौरव का अनुभव किया।

एक राजपूतनी की सतीत्व रक्षा के लिए दूसरी नवोढ़ा बाला ने प्राणाहुति दी और स्त्री-गौरव को बढ़ाया, ऐसे दृष्टान्त विश्व-इतिहास में विरल हैं। राजपूतों ने नारी के सतीत्व के लिए हँसते-हँसते एक बार नहीं अनेक बार प्राणोत्सर्ग किया है। यहाँ भी रूपनगर की राजकुमारी के लिए हाड़ी रानी और चूड़ावत ने ही बलिदान नहीं किया, अपितु औरंगजेब की सेना का मार्ग अवरुद्ध करने के लिए चूड़ावत के नेतृत्व में हजारों राजपूत सैनिकों ने प्राणों की बलि दी।

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री शिवपूजन सहाय ने 'मुण्डमाल' कहानी में हाड़ी रानी की वीरता का वर्णन ओजस्वी भाषा में किया है। उल्लेखनीय है कि कुमार हनुवन्त सिंह एवं पूर्ण सिंह की भाषा में तथा श्री सहाय की भाषा में बड़ा सादृश्य है। आचार्य शिवपूजन सहाय की 'मुण्डमाल' कहानी हिन्दी की सशक्त कथा-रचना है।

बंकिम की भावना

राजपूतों को इस वीर भावना को उद्‌घाटित करने के लिए बंकिमचन्द्र ने 'राजसिंह' उपन्यास की रचना की। हिन्दुओं के बाहुबल में ह्रास होने और विशेषकर अंग्रेजी राज्य में भारतीयों की पराधीन दशा को देखकर बंकिम को दुःख होता था। वे भारतीय जनता को अपने पूर्व गौरव से परिचित कराना चाहते थे। इस मानसिकता को उपन्यास की भूमिका में रेखांकित किया जा सकता है—

'भारत के अतःपतन का कारण हिन्दुओं में बाहुबल का अभाव रहा है, सो बात नहीं है। हाँ, उन्नीसवीं शताब्दी में इसमें अभाव देखा जाता है और उसका कारण है देश की पराधीनता। अंग्रेजी शासन में हिन्दुओं के बाहुबल में गिरावट आई, लेकिन इतिहास साक्षी है, पहले ऐसी बात नहीं थी।'

इस तरह हिन्दुओं के बाहुबल को प्रदर्शित करना ही 'राजसिंह' के उपन्यासकार का लक्ष्य रहा है। शायद अपने इसी उद्देश्य को प्रतिपादित करने के लिए उन्होंने राजसिंह के वीर चरित्र के कथानक का चयन किया है। राजसिंह ऐतिहासिक पुरुष हैं। वे सिसोदिया राजवंश के अन्यतम वीर ही नहीं मेवाड़ के सुविख्यात नायक हैं। जैसे उनमें युद्ध का शौर्य था, वैसी ही उनकी रणनीति भी थी।'

राजसिंह का शौर्य-पराक्रम

बंकिम ने राजसिंह की तुलना इतिहास विश्रुत लियोनिदास, थेरिमस्टोक्लेस एवं पानियास के साथ की है। राणा राजसिंह ने अत्यन्त अल्प सैनिकों को लेकर उसी प्रकार औरंगजेब की विशाल सेना का डटकर सामना किया, जिस प्रकार ग्रीस-इतिहास में जेरक्सेस (Xerxes) की पचास लाख सेना का मुकाबला किया गया था। बंकिम ने लिखा है—'भारतवर्ष के इतिहास में जितने रण-पंडितों और वीरों की कहानियाँ हैं, उनमें राजसिंह जरा भी न्यून नहीं है। यूरोप में भी ऐसे रणबांकुरे बहुत कम ही पैदा हुए हैं। थोड़ी-सी सेना लेकर इतना बड़ा युद्ध वीर मुकाथा विलियम के बाद शायद ही पृथ्वी पर किसी ने किया है।'

बंकिम-चिन्तन

इस भांति भारत सम्राट औरंगजेब के साथ युद्ध में जिस पराक्रम, साहसिकता और शौर्य का प्रदर्शन राणा राजसिंह ने दिखाया, उसी का प्रदर्शन बंकिम ने अपने उपन्यास में किया है। वस्तुतः राजसिंह के चरित्र ने लेखक को जबरदस्त प्रभावित किया था। उन्होंने अनुभव किया था कि ऐसे इतिहास का पुनरुद्धार आवश्यक है और खासकर विदेशी पराधीनता की मुक्ति के लिए। बंकिम को इस बात का खेद था कि गर्वित जाति का इतिहास होता है, पर भारतवर्ष का इतिहास नहीं है। भारतीयों को जड़-प्रकृति और देशभक्ति ने उन्हें इतिहास रचना के लिए प्रेरित नहीं किया। उन्होंने केवल पुराण-इतिहास लिख कर देवताओं का कीर्तन-गुणगान किया है। जहाँ मनुष्य के शौर्य का वर्णन हुआ है, उस पर भी देवत्व आरोपित कर दिया गया है। बंकिम का विचार है—

'जिस किसी कारण से हो, संसार के सारे कार्य देव अनुकम्पा से साधित होते हैं—यही भारतवासियों का विश्वास है। इस लोक में जो अमंगलकारी घटनाएँ घटती हैं उनका कारण देवताओं की अप्रसन्नता है, यह उनकी मान्यता है। इसलिए शुभ का नाम 'देव' और अशुभ का नाम 'दुर्दैव' हो गया। इस मानसिकता की जड़ें इतनी गहरी हो गईं कि भारतीय अत्यन्त विनीत हो गए और कर्म का कर्त्ता अपने को न मानकर अदृष्ट को, देवता को मानने लगे। देवताओं पर निर्भर होकर वे अक्षम हो गए और गाने लगे— 'होइ है सोई जो राम रचि राखा' अर्थात हमें कुछ नहीं करना है, हाथ पर

हाथ धरे बैठे रहना है।'

इस मानसिकता में परिवर्तन की जरूरत थी। इसी कारण बंकिम ने इतिहास का पुनरुद्धार कर वीर चरित्रों को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। बंगला के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० विजित कुमार दत्त ने अपने ग्रन्थ 'बांग्ला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास' के पृष्ठ ६८ पर अपने विचार इस प्रकार रखे हैं—

'वस्तुतः बंकिमचन्द्र के युग में बंगाली समाज स्वाधीनता-हीनता की कुंठा से ग्रसित था। उस समय बंगाली वीरों की खोज हो रही थी, पर प्रकृत दृष्टि से कोई ऐतिहासिक वीर पुरुष नहीं मिल रहा था। 'दुर्गेशनंदिनी', 'कपालकुण्डला', 'मृणालिनी', 'चन्द्रशेखर'. 'आनन्दमठ', 'देवी चौधरानी', एवं 'सीताराम' आदि ऐतिहासिक उपन्यासों में बंगाली वीर-पुरुषों की कहानी नाना रूपों में व्यक्त हुई है, लेकिन वीरत्व की झांकी दिखाने पर भी इनसे सार्थक वीर-चरित्र का अंकन नहीं हो सका। इस बात का बंकिम के मन में मलाल था। उन्होंने वीरेन्द्र सिंह, हेमचन्द्र, प्रतापचन्द्र, सत्यानन्द, भवानन्द, सीताराम आदि औपन्यासिक पात्रों के चरित्र की व्यर्थता का उल्लेख किया है। अस्तु, इस तथ्य से यही प्रमाणित होता है कि बंकिम बंगाल के इतिहास में जिस वीरत्व को खोजना चाहते थे, उसमें वे सफल नहीं हुए। अतएव बंगाल के बाहर राजपूत जाति के इतिहास से श्रेष्ठ वीर की उपकथा लेकर उन्होंने अपनी मन-पिपासा को शान्त किया।'

जाहिर है बंकिम ने अपनी मन-पिपासा को ही नहीं बुझाया, अपितु सम्पूर्ण भारतीय समाज के समक्ष टॉड के 'राजस्थान' से वीर-चरित्र लेकर 'राजसिंह' उपन्यास ऐसी अमरकृति की रचना की। उल्लेखनीय है कि बंकिम के सभी ऐतिहासिक उपन्यासों का ताना-बाना बंगाल की धरती या बंगीय परिवेश में बुना गया है। उनके 'दुर्गेशनंदिनी' उपन्यास में यद्यपि राजा मानसिंह या उसके पुत्र जगत सिंह का उल्लेख हुआ है। जगत सिंह 'दुर्गेशनंदिनी' का नायक है। अन्य उपन्यासों में अकबर, जहाँगीर और मुगलकाल की कुछ घटनाओं का वर्णन है, पर 'राजसिंह' की पूरी कथा बंगाल की सीमा के बाहर राजस्थान की मरुधरा से सम्बन्धित है। उसका सारा कथानक राजस्थान की ऐतिहासिक घटना से जुड़ा है। 'राजसिंह' में सही अर्थों में सांगोपांग रूप से इतिहास उद्घाटित हुआ है और लेखक ने यथार्थ में राजसिंह के रूप में एक धर्मनिष्ठ वीर राजपूत का सफल चित्रण किया है। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने 'राजसिंह' उपन्यास को ही ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी है, जो वस्तुतः उचित है।

इतिहास में घटनाओं का वर्णन रहता है, पर वे एक दूसरी घटना से दबी हुई रहती हैं। उनमें से कुछ को लेकर तथा कुछ में कल्पना का मिश्रण कर उपन्यास की रचना की जाती है। बंकिम ने भी ऐतिहासिक घटनाओं का कल्पना के साथ मिश्रण कर मणिकांचन योग किया है। इतिहास किसी युग या युग के नायक को लक्ष्य में रखकर सत्य का उद्‌घाटन करता है और साहित्य उस सत्य को रोमांटिक रूप देकर अमरत्व देता है, कालजयी रचना में परिनिष्ठित कर देता है। 'राजसिंह' में ऐसा ही कुछ हुआ है। कदाचित् यही वजह है कि बंकिम का 'राजसिंह' आज भी पश्चिम बंगाल के विश्वविद्यालयों की एम० ए०, बी० ए० और ऑनर्स की कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रचलित है।

बंकिम का उद्देश्य

अरिस्टोटल ने भी साहित्य को इतिहास से अधिक गौरव प्रदान किया है और उसके महत्व को प्रतिपादित किया है। उपन्यास के उपसंहार में बंकिम ने विस्तार से अपने उद्देश्य को प्रस्तुत किया है। कुछ लोगों ने लेखक की इस भावना की आलोचना की है, लेकिन बंकिम के मन में कोई साम्प्रदायिक भावना नहीं थी। उन्होंने उपन्यास के उपसंहार में लिखा है—'पाठक यह न समझें कि हिन्दू-मुसलमान में छोटा-बड़ा दर्शाने का उद्देश्य इस ग्रन्थ का रहा है।'

लेखक ने आगे लिखा है—

'हिन्दू होने से ही अच्छा होगा और मुसलमान होने से खराब होगा या हिन्दू होने से ही खराब होगा और मुसलमान होने से अच्छा होगा, ऐसी बात नहीं है। सत् और असत् गुण सब में होते हैं। यह भी मानना पड़ता है कि जब मुसलमानों का राज्य था तब समसामयिक हिन्दू राजाओं से उनमें कुछ गुण अच्छे थे, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी मुसलमान राजा सभी हिन्दू राजाओं से श्रेष्ठ थे। कुछ अंशों में यह बात जरूर थी। कई हिन्दू राजा ऐसे थे जो मुसलमान राजाओं से श्रेष्ठ थे। असल में गुण की दृष्टि से जिसमें धर्म है, वही श्रेष्ठ है, चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान। औरंगजेब धर्म शून्य था—इसीलिए उसके शासनकाल में मुगलिया सल्तनत का पतन शुरू हो गया। राजसिंह में धर्म था, इसलिए वह छोटे राज्य का अधिपति होने पर भी महान साम्राज्य के बादशाह को पराजित करने में सफल हुआ। यही मैंने

इस ग्रन्थ में दिखाया है। जैसा राजा होता है तदनुरूप प्रजा होती है और राज्य के कर्मचारी भी वैसे ही होते हैं। उदीपुरी-चंचल कुमारी, जेबुन्निसा-निर्मल कुमारी और माणिकलाल-मुबारक के चरित्रों का तुलनात्मक विश्लेषण कर हम इसे समझ सकते हैं।' ('राजसिंह' उपन्यास, उपसंहार, पृ० १७६)

राणा राजसिंह की महानता

औरंगजेब की तुलना स्पेन के द्वितीय फिलिप से की जा सकती है। दोनों ही प्रकाण्ड साम्राज्य के अधिपति थे, ऐश्वर्यशाली और बड़ी सेना के सेनाध्यक्ष थे। दोनों में ही श्रमशीलता, सतर्कता आदि राजकीय गुण थे। लेकिन यह भी सच है कि दोनों निष्ठुर, क्रूर, दांभिक, स्वार्थी और प्रजा-पीड़क थे। इसीलिए दोनों ही अपने-अपने साम्राज्य के पतन के कारण बने। दोनों ही साधारण शत्रुओं से बुरी तरह पराजित हुए। फिलिप अंग्रेज जाति (तब छोटी सामान्य जाति थी) से पराजित हुआ हालैण्ड के विलियम से हारा और औरंगजेब भी मराठा और राजपूतों से पराजित हुआ। मराठा वीर शिवाजी की तुलना इंगलैण्ड की तत्कालीन एलिजाबेथ से कर सकते हैं, लेकिन उससे भी अधिक श्रेष्ठ हम पाते हैं राजसिंह को जो विलियम से कहीं ज्यादा श्रेष्ठ था। इन दोनो की कीर्ति इतिहास में अमर है। विलियम यूरोप में और राजसिंह भारत में। विलियम की ख्याति यूरोप मे धर्मात्मा वीर-पुरुषों से की जाती है, लेकिन भारत में इतिहास का अभाव है, इसलिए राजसिंह की कीर्ति को कोई नहीं जानता।' (वही, पृ० १७६)

कहने की आवश्यकता नहीं कि बंकिम ने राणा राजसिंह के सत्-गुणों और उनकी वीरता को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित कर देशवासियों के सामने उपस्थित करने के लिए ही 'राजसिंह' उपन्यास की रचना की है।

उपन्यास की उप-कथाएँ

'राजसिंह' उपन्यास की मूल कहानी के साथ दरिया-मुबारक और जेबुन्निसा की एक उपकहानी है। दरिया सम्वाद बेचने वाली एक गरीब युवती है। मुबारक ने उससे विवाह कर उसे छोड़ दिया था और औरंगजेब की पुत्री शहजादी जेबुन्निसा के प्रति अनुरक्त था। जेबुन्निसा भी मुबारक से केवल अपनी काम-वासना तृप्त करना चाहती थी। बंकिम ने उपन्यास में दिखाया है कि मुगल शासकों के हरम में व्यभिचार चलता था। शहजादी किसी साधारण पुरुष से विवाह नहीं कर सकती थी, वैसे उसके सम्बन्ध कई दरबारियों से रहते थे। शहजादियों की इस त्रासदी को बखूबी उपन्यास में देखा जा सकता है। बादशाह अपनी बेटी की शादी किसी साधारण व्यक्ति से नहीं कर सकता था। क्योंकि तब दामाद प्रशासन में दखल देनेवाला बन सकता है या सल्तनत का

दावेदार बन सकता है। जेबुन्निसा के विवाह की यह सबसे बड़ी बाधा थी। वह मुबारक को चाहती थी, पर उससे विवाह नहीं कर सकती थी। किन्तु जब वह युद्ध-क्षेत्र में उदीपुरी बेगम के साथ बन्दिनी होकर चंचल कुमारी के पास राजसिंह के अंतःपुर में जाती है तो उसमें मानवीय परिवर्तन होता है। उस वक्त वह शहजादी न होकर एक साधारण बन्दिनी है। उसे मुबारक याद आता है। उसका झूठा अहम्, उसका उच्च कुल का दम्भ चूर-चूर हो जाता है।

चंचल उदीपुरी के साथ शिष्ट व्यवहार करती है, पर बेगम अपने गरूर के शरूर में है। उसे यह गुमान सताता है कि वह भारत सम्राट की चहेती बीवी है। औरंगजेब उसके इशारों पर नाचता था। कट्टर मुसलमान होकर भी उदीपुरी के सुरापान पर आपत्ति नहीं करता था। इस्लाम धर्म में शराब वर्जित है। भाग्य की यह क्रूर नियति ही थी कि मजहब की कट्टरता आड़े नहीं आती थी, बेबश औरंगजेब को यह सब सहन करना पड़ता था। उसकी इन चारित्रिक कमजोरियों को उपन्यास में भली प्रकार दिखाया गया है। उदीपुरी की कामना थी चंचल को हरम में अपनी दासी बनाने की पर भाग्य की विडम्बना देखिए कि वह स्वयं चंचल की दासी बन गई। राजसिंह की महिषी चंचल कुमारी की सेवा में बन्दी के रूप में उसे और जबुन्निसा को प्रस्तुत किया गया। चंचल की सखी निर्मल कुमारी ने एक ज्योतिषी से सुना था कि जब बादशाह की बेगम चंचल कुमारी की दासी बन जायेगी तो उसका विवाह राजसिंह से हो जायेगा। इसे सत्य प्रमाणित करने के लिए उदीपुरी को मजबूरन चंचल की दासी का काम करना पड़ता है और जेबुन्निसा में मानवीय स्तर पर रूपान्तरण होता है। यहाँ इतिहास बाधक नहीं बनता, वह उपन्यास की गति में अपने को प्रवाहित करता है। यही लेखक की मौलिक उद्भावना है।

इस उप-कहानी के माध्यम से बंकिम ने नए रस की सृष्टि की है और कथा को रोचक बनाया है। उपन्यास में एक अन्य लघु कथा भी है। यह कथा निर्मल कुमारी और माणिकलाल की प्रेम-कहानी से जुड़ी है। जब चचल कुमारी शिविकारूढ़ होकर रूपनगर से विदा होती है तो निर्मल कुमारी दुःखी हृदय लेकर रूपनगर में रह जाती है। उसकी भेंट माणिकलाल से होती है। वह राजसिंह का विश्वासपात्र सैनिक है। पहले वह डाकू था। दोनों में प्रेम होता है और अन्त में वे विवाह-बन्धन मे बंध जाते हैं। डाकू का वीर पुरुष में रूपान्तरण भी एक नाटकीय घटना है।

खबरों का बिकना

बंकिम ने मुगल हरम की आन्तरिक दास्तान का उद्घाटन किया है और यह दिखाया है कि दिल्ली में किस प्रकार खबरें बिकती थीं और गुप्तचरी के कार्य होते थे। दरिया बीबी खबर बेचने का काम करती थी। चंचल कुमारी ने तस्वीरवाली से औरंगजेब

का चित्र लेकर उसे पददलित कर दिया था। यह खबर रूपनगर से आगरा होती हुई दिल्ली आई और औरंगजेब के हरम में पहुँची, जिसे सुनकर उदीपुरी बेगम ने कसम खाई कि जब तक चंचल कुमारी को पकड़ कर नहीं लाया जायेगा और वह उसकी दासी नहीं बनेगी तब तक उसे चैन नहीं। बादशाह चहेती बेगम की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए रूपनगर सेना भेजता है और उपन्यास की रोचक कहानी शुरू होती है। औरंगजेब पारिवारिक घटनाओं तथा छिन्न-भिन्न होते राज्य की स्थिति से इतना व्यथित हो गया था कि दक्षिणात्य में उसे प्राण-विसर्जन करना पड़ा। इस व्यथा-कथा को लेखक ने सुन्दर ढंग से दिखाया है।

रवीन्द्र का मत

बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास की इन द्रुत घटनाओं से अभिभूत होकर तथा उसकी रोचकता से मुग्ध होकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने उपन्यास की भूयसी प्रशंसा की है। विश्वकवि ने 'राजसिंह' के संक्षिप्त संस्करण को नहीं पढ़ा था। १८९४ ई० में जब उसका चतुर्थ संस्करण 'साधना' पत्रिका में प्रकाशित हुआ तो उसे पढ़कर वे गद्‌गद् हो गए। उन्होंने साहित्य रूपी कुरुक्षेत्र में बंकिम की उपमा अर्जुन से की। जिस प्रकार अर्जुन बाण चलाने में सिद्धहस्त था वैसे ही बंकिम को भी लेखनी का कमाल दिखाने में वे उन्हें अर्जुन के समान मानते थे। बंकिम के विद्युत गामी शर एक साथ वैसे ही छूटते थे और पाठक को विदग्ध करते थे। रवीन्द्रनाथ की मूल उक्ति का सारांश इस प्रकार है—

'पर्वतों से झरने जब कूदते-फांदते निकलते हैं तब उनकी उद्दाम गति को देखकर लगता है वे किसी कौतुक के लिए निकल पड़े हैं। उनका उद्देश्य समझ में नहीं आता है। धरती पर भी वे अपना कोई गहरा चिह्न अंकित नहीं कर पाते हैं। लेकिन जब हम उनके पीछे-पीछे चलते हैं तब देखते हैं कि वे नदी के रूप में परिवर्तित हो गए हैं और उनका आकार-प्रकार ही लम्बा-चौड़ा नहीं हो गया है, बल्कि नदी की गम्भीरता और गहराई भी बढ़ गई है। विशाल नदी जब सर्पीली गति से धरती के वक्ष को चीर कर आगे बढ़ती है तो उसकी गुरु गम्भीरता का पता चलता है। जब तक वह महासमुद्र में पर्यवसित नहीं हो जाती है तब तक उसको विश्राम नहीं, वह निरन्तर अग्रगति की ओर दुर्दान्त अग्रसर होती है।'

'राजसिंह' उपन्यास की गति भी उसी के सदृश्य है। उसका एक-एक

परिच्छेद झरने की भांति फूटता नजर आता है। शुरू में केवल जल प्रपात की चमक दिखाई देती है, किन्तु षष्ठ खण्ड तक पहुँचते-पहुँचते उसका आकार एक बड़ी नदी का हो जाता है, जहाँ कल-कल की ध्वनि है, उत्ताल तरंगे हैं और है जल की गम्भीरता। सप्तम खण्ड में उसकी विशालता को देखकर आश्चर्य में डूब जाना पड़ता है। उसका रुद्र रूप, उसकी गर्जना, उसकी शीतलता से मन अचंभित हो जाता है। उपन्यास की घटनाएँ इस स्थल पर लगता है जैसे एक युग के सारे इतिहास को लेकर खड़ी हो गई हैं। इतिहास के एक कालखण्ड को उपन्यास के रस में सराबोर कर देना, यह बंकिम के लिए सम्भव था। निःसंदेह वे कलम के धनी थे और थे अमर रचना के शिल्पी।'

औरंगजेब की कूटनीति

औरंगजेब को अत्याचार करने का तब तक अवसर नहीं मिला जब तक दो राजपूत जिन्दा थे। ये थे मारवाड़ के राजा यशवंत सिंह और अम्बर (जयपुर) के राजा जयसिंह। दोनों को कूटनीति और छल से अत्याचारी बादशाह ने जहर देकर मरवाया था। इन ऐतिहासिक घटनाओं का साक्ष्य हमें 'राजसिंह' उपन्यास में मिलता है। ये घटनाएँ टॉड के 'राजस्थान' के पृष्ठ ३०२ से ली गई हैं—

"It was not, however till the death of those two powerful princes, Jeswunt Sing of Marwar and Jey Sing of Amber, both poisoned by the command of the Tyrant, the one at his distant government of Cabul, the other in the Dekhan, that he deemed himself free to put forth the full extent of his long concealed design, the imposition of the jezeya or capital tax, on the whole Hindu race. But he miscalculated his measures, and the murder of those princes, far from advancing his aim, recoiled with vengeance on his head. Foiled in his plot to entrap the infant sons of the Rathore by the self devotion of his vassals, the compound treachery evinced that their only hope lay in deadly resistance. The mother of Ajit, the infant heir of Marwar, a woman of the most determined character, was a princess of Marwar, and she threw herself upon the Rana (Raj Sing) as the natural guardian of his rights, for sanctuary during the dangers of his minority." (Ibid, Page 302).

यशवन्त सिंह की रानी और नवजात अजित को बचाने में वीर दुर्गादास ने बड़ी वीरता दिखाई थी। उस वीर ने अपने प्राणों को संकट में डाल कर अपनी देशभक्ति का

परिचय दिया था। राणा राजसिंह के साथ जब औरंगजेब का युद्ध हुआ तब भी उसने अपने पराक्रम और शूर-वीरता का प्रमाण दिया था। इस वीर के आख्यान को लेकर परवर्ती काल में बंकिम की भांति नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय ने 'दुर्गादास' नाटक लिखा जो देश में काफी चर्चित हुआ। हमने इस पर 'नाटक अध्याय' में विस्तार से चर्चा की है।

ऐतिहासिक पत्र

औरंगजेब ने जजिया कर लगाया था। 'राजसिंह' उपन्यास में राणा के उस ऐतिहासिक पत्र का उल्लेख है, जिसे उन्होंने इसके प्रतिवाद में बादशाह को लिखा था। इस पत्र का पूरा विवरण इतिहासकार अर्म (Orme) ने अपने इतिहास में दिया है, उसी को कर्नल टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ में उद्धृत किया है—

"On the promulgation of that barbarous edict, the jezeya, the Rana remonstrated by letter, in the name of the nation of which he was the head, in a style of such uncompromising dignity, such lofty yet temperate resolve, so much of soul-stirring rebuke mingled with a boundless and tolerating benevolence, such elevated ideas of the Divinity with such pure philanthropy, that it may challenge competition with any epistolary production of any age, clime, or condition. (Ibid, Page 302).

यह पत्र तथा उक्त अंग्रेजी उद्धरण 'राजसिंह' उपन्यास के पंचम खण्ड के षष्ठ परिच्छेद में पृ० ६६ पर अविकल रूप से हमें मिलता है। द्रष्टव्य है कि राणा राजसिंह के पत्र को अर्म ने सबसे पहले यूरोप में प्रकाशित किया था, किन्तु उसने भूल से इसको मारवाड़ (जोधपुर) के राजा यशवन्त सिंह का बताया। महात्मा टॉड ने कहा है कि यह पत्र किसी भी प्रकार से यशवन्त सिंह का नहीं हो सकता है, कारण कि इसमें जिस जजिया कर का वृत्तान्त है, वह उनके जीवन-काल में प्रचलित नहीं हुआ था। टॉड के मुँशी को पत्र की प्रतिलिपि उदयपुर में मिली थी। उस फारसी पत्र को गुजरात के ईश्वरदास नागर ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है।

इस पत्र से राणा की दृढ़ता, स्पष्टवादिता और विश्व-प्रेम के दर्शन होते हैं। उनकी भाषा मर्यादित और संयत है तथा विचार स्पष्ट हैं। पत्र महत्वपूर्ण है। अतः यहाँ प्रस्तुत है—

'सर्व प्रकार की स्तुति, सर्वशक्तिमान जगदीश्वर को उचित है और आपकी महिमा भी स्तुति करने योग्य है। आपकी उदारता और समदृष्टि चन्द्र और सूर्य की भांति चमकती है। यद्यपि मैंने आजकल अपने को आपके हाथ से

अलग कर लिया है, किन्तु आपकी जो सेवा हो सके उसको मैं सदा मन से करने को प्रस्तुत हूँ। मेरी सदा यह इच्छा रहती है कि हिन्दुस्तान के बादशाह, रईस, मिर्जा, राजा और राय तथा ईरान, तूरान, रोम और श्याम के सरदार लोग और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब मेरी सेवा से उपकार लाभ करें।

मेरी इस इच्छा में आप कोई दोष शायद नहीं पायेंगे। मेरे पूर्वजों ने पूर्वकाल में जो कुछ आपकी सेवा की है, उस पर दृष्टिपात करके मुझको उचित जान पड़ता है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आपका ध्यान दिलाऊँ, जिसमें राजा और प्रजा दोनों की भलाई है। मुझको समाचार मिला है कि आपने मुझ शुभचिन्तक के विरुद्ध एक सेना नियत की है और मैंने यह भी सुना है कि ऐसी सेनाओं के नियत होने से आपका खजाना खाली हुआ है, जिसे पूरा करने के लिए आपने नाना प्रकार के कर भी लगाए हैं।

आपके परदादा जलालुद्दीन अकबर ने, जिनका सिंहासन अब स्वर्ग में है, इस बड़े राज्य को बावन वर्ष तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सभी जाति के लोगों ने उमसे सुख आनन्द उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाऊदी, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक सबने राज्य में समान भाग से राज्य का न्याय और राज्य का सुख भोग किया और यही कारण है कि सब लोगों ने एक स्वर में उनको जगत-गुरु की पदवी दी थी।

शहंशाह मुहम्मद नुरुद्दीन जहाँगीर ने, जो अब नन्दन-वन में विहार करते हैं, भी उसी प्रकार बाईस वर्ष राज्य किया और अपनी सुरक्षा से प्रजा को शीतल रखा और अपने आश्रित या सीमा स्थित राजन्य-वर्ग को भी प्रसन्न रखा और अपने बाहुबल से शत्रुओं का दमन किया।

वैसे ही उनके शाहजादे और आपके परम प्रतापी पिता शाहजहाँ ने बत्तीस वर्ष राज्य करके अपना शुभ नाम अपने शुद्ध गुणों से विख्यात किया।

आपके पूर्व पुरुषों की यह कीर्ति है। उनके विचार ऐसे उदार और महान थे कि जहाँ उन्होंने चरण रखा, वहाँ विजयलक्ष्मी को हाथ जोड़े अपने सामने पाया और बहुत से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया। किन्तु

आपके राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं, उनसे निश्चय होता है कि दिन-ब-दिन राज्य का क्षय ही होगा। आपकी प्रजा अत्याचार से अति दुःखी है और सब दुर्बल पड़ गए हैं। चारों ओर से बस्तियों के उजड़ जाने की और अनेक प्रकार के दुःख ही की बातें सुनने में आती हैं। राजमहल में दरिद्रता छाई हुई है। जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है तब और रईसों की कौन कहे? शूरता तो केवल जिह्वा में आ रही है, व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं, हिन्दू महा दुःखी हैं, यहाँ तक कि प्रजा को संध्याकाल के समय खाने को भी नहीं मिलता और दिन में सब दुःख के मारे अपना सिर पीटा करते हैं।

क्या ऐसे बादशाह का दिन स्थिर रह सकता है, जिसने भारी कर से अपनी प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है? पूर्व से पश्चिम तक लोग यही कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह रंक, ब्राह्मण, योगी, वैरागी और संन्यासी पर भी कर लगाता है और अपने उत्तम तैमूर वंश को गरीबों, दीन-दुःखियों पर अत्याचार ढाह कर, दुःख देकर कलंकित करता है। अगर आपको उस किताब पर विश्वास है, जिसको आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं, तो उसमें देखिए कि ईश्वर को मनुष्यमात्र का स्वामी लिखा, केवल मुसलमानों का नहीं। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों समान हैं। मनुष्य मात्र को उसी ने जीवन-दान दिया है। नाना रंग और वर्ण के इन्सान उसने ही अपनी इच्छा से बनाये हैं। आपकी मस्जिद में उस परमात्मा का नाम लेकर अजान दी जाती है और हिन्दुओं के यहाँ देव-मन्दिरों में उसी के निमित्त घड़ी-घंटाल बजते हैं। सभी उसी ईश्वर को स्मरण करते हैं। इस कारण किसी जाति को दुःख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है। हम जब कोई चित्र देखते हैं, उसके चितेरे को स्मरण करते हैं। अगर हम उस चित्र को बिगाड़ें तो जरूर चितेरे को अप्रसन्नता होगी और कवि की सूक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूंघते हैं, तब उसके बनाने वाले का ध्यान करते हैं। उसको बिगाड़ना उचित नहीं।

सिद्धान्त यह है कि हिन्दुओं पर आपने जो जजिया कर लगाना चाहा है, वह न्याय के परम विरुद्ध है, राज्य के प्रबन्ध को नाश करने वाला है।

ऐसा करना अच्छे राज्याधीश्वरों का लक्षण नहीं है तथा बल को शिथिल करने वाला है। यह कर हिन्दुस्तान की रीति नीति के विरुद्ध है। यदि आपको अपने मत का इतना आग्रह हो और आप इससे बाज न आयें तो पहले रामसिंह से, जो हिन्दुस्तान में मुख्य हैं, यह कर लीजिए और फिर अपने इस शुभचिन्तक को बुलाइए। किन्तु यों प्रजा पीड़न, रणयुद्ध और वीर-धर्म तथा उदार चित के विरुद्ध है। बड़ आश्चर्य की बात है कि आपके मंत्रियों ने आपको ऐसे हानि-कारक विषय में कोई उत्तम मंत्रणा नहीं दी। (गुजराती प्रेस, बम्बई से प्रकाशित 'औरंगजेब' लेखक—ईश्वरदास नागर, पुस्तक के पृष्ठ १६३-१६५ से)।

पत्र में जिस रामसिंह का उल्लेख हुआ है, वे राजा यशवन्त सिंह के समय में हुए तथा वही महाराजा जयसिंह के उत्तराधिकारी थे। मारवाड़ के राजा के मरने के उपरान्त एक वर्ष पीछे वे अपने पिता के सिंहासन पर बैठे थे। कदाच्वित इतिहासकार अर्म को इस नाम के कारण भ्रम हुआ और उन्होंने पत्र राजा यशवन्त सिंह का लिखा बताया, पर टॉड साहब ने इस भ्रान्ति का निवारण कर दिया और उसे राणा राजसिंह का प्रमाणित किया है। इस सत्यता का उल्लेख हमें बंकिम के 'राजसिह' उपन्यास में मिलता है।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने 'पत्रावली' काव्य-संग्रह में महाराणा राजसिंह के उस पत्र को काव्य में रूपान्तरण करने की कोशिश की है, जो उन्होंने मुगल सम्राट औरंगजेब को जजिया कर लगाने के विरोध में लिखा था। कवि गुप्त की 'पत्रा-वली' का प्रकाशन संवत १९७६ में साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) से हुआ था।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'पत्रावली' के पृ० १२ पर राजसिंह के पत्र को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है। साथ ही आपने टिप्पणी में लिखा है—यह पत्र महाराणा राजसिह ने 'जजिया' नाम का कर लगाने के विरुद्ध औरंगजेब को लिखा था। पत्र इस प्रकार है—

मेरे पीछे नियत करके दीर्घ सेना सरोष,
खाली हैं जो अब तक किए आप ने द्रव्य-कोष
तत्पूर्त्यर्थ प्रचुर कर जो हैं प्रजा-प्राणहारी,
ऐसी हूँ मैं खबर सुनता, हैं किए हाल जारी ॥४॥
पूछूँ मैं क्या ग्रहण करके आपने यों कुरीति,
सोचो है क्या तनिक अपने पूर्वजों की सुनीति ?
थे क्या ऐसा न कर सकते वे महाशक्तिशाली,
किंवा थी क्या अविदित राजसत्ता-प्रणाली ? ५॥

हिन्दू-द्वेषी बन कर हुई आपकी कौन वृद्धि ?

× × ×

होता जाता दिन दिन न क्या आपका तेज धीमा ?
धीरे धीरे कट-छँट रही आपकी राज्य सीमा।
जो ऐसी ही हलचल रही और आगे विशेष
तो जावेंगे निकल कर से दूसरे भी प्रदेश ॥१०॥

('पत्रावली' काव्य, पृ० १४-१५)

औरंगजेब की हिन्दू-द्वेष और जजिया कर लगाने की नीति का फल हुआ कि उसके शासन-काल में ही मुगल साम्राज्य लड़खड़ा कर धराशाही होने लगा। गुप्तजी ने इन भावनाओं को अपनी कविता में व्यक्त किया है।

गुप्तजी ने इस पत्र के साथ ही औरंगजेब के एक पत्र का भी 'पत्रावली' में पृष्ठ १६ पर प्रकाशन किया है। आपने टिप्पणी में लिखा है अन्त समय आने पर औरंगजेब की आँखें खुलीं। उस समय उसे अपनी करतूतों पर बड़ा खेद और पश्चाताप था। इसी सम्बन्ध में उसने अपने पुत्रों के नाम कई पत्र लिखे थे। यह पत्र भी उन्हीं में से एक है—पत्र इस प्रकार है—

प्रिय सुत, अब मेरा आ गया काल-सा है,
इस समय तुम्हारी भेंट की लालसा है।
तनु शिथिल हुआ है, क्षीणता छा गई है।
अति जटिल जरा की जीर्णता आ गई है ॥१॥

जिस तरह अकेला था न आया वहाँ से,
इस समय अकेला जा रहा हूँ यहाँ से।
अवनि पर रहा मैं अज्ञ-पात्रो सरीखा,
शुभ-पथ मुझ स्वार्थी अंध को था न दीखा ॥२॥

× × ×

अवनि पर किसी की की न मैंने भलाई,
अविरत मनमानी मूढ़-मत्ता चलाई।
अहित-सहित आना पाप को भी न मैंने,
पल भर पहचाना आपको भी न मैंने ॥४॥

जिस तनु-हित मैंने भोग कोई न छोड़ा,
बस मुँह उसने भी अन्त में आज मोड़ा।
यह प्रतिफल मैंने ठीक ही आज पाया,
सब कुछ करवाती धन्य तू मोह माया ॥१६॥

× × ×

तनय तुम किसी को व्यर्थ पीड़ा न देना,
फल कुछ करने के पूर्व ही सोच लेना।
पथ-विगलित हो के पा रहा ताप ही मैं,
कु-फल चख रहा हूँ पाप का आप ही मैं ॥१७॥

पढ़ कर यह मेरा पत्र हे पुत्र ! प्यारे,
सतत सजगता से कीजियो काम सारे।
मत तुम यह मेरा भूल जाना कलाम,
बस अब चलता हूँ, आखिरी है, सलाम ॥२१॥

('पत्रावली' काव्य, पृ० १६-२४)

औरगजेब की मृत्यु बड़ी दर्दनाक स्थिति में हुई। अन्त समय उसके सारे पापकर्म सामने आ गए—"अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत" की भांति वह अनुशोचन करता हुआ दुनिया से अलविदा हो गया। ऐसे कारुणिक जीवन के यथार्थ को कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'औरंगजेब का पत्र पुत्र के नाप' कविता में दर्शाया है।

महासमर की तैयारी

राजसिंह के पत्र को पाकर औरंगजेब आग बबूला हो गया और विशाल सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ आया। उसे इस बात से भी क्रोध था कि राणा ने मारवाड़ के यशवन्त सिंह की विधवा पत्नी और उसके पुत्र अजीत को संरक्षण दिया था। अतः बादशाह ने अपने सभी पुत्रों को इस बड़ी लड़ाई में शरीक करने के लिए बुला लिया था। उसने बंगाल से अकबर को, काबुल से अजीम को और युवराज मुअज्जम (शाह आलम) को दक्षिण से ताकि वह राजसिंह के साथ एक विशाल सेना लेकर जीवन का अन्तिम बड़ा युद्ध लड़ सके। इसीलिए इस युद्ध का विशद वर्णन बंकिम ने उपन्यास में किया है। बंकिम ने लिखा है जिस प्रकार प्राचीन समय में शेर जेरक्स (Xerxes) ने बड़ी सेना लेकर ग्रीस के एक छोटे भूमिखण्ड पर आक्रमण किया था और थर्मोपली में लियोनिदास ने, साल्मिस में थेमिस्टोल्क एवं पलानिया में पाउसानियस ने शेर जेरक्स का मुकाबला किया

था और उसे मार भगाया था। वैसे ही राणा ने औरंगजेब की विशाल सेना को धूल चटाई और पराभूत किया। ऐसी पराजय का मुख औरंगजेब को कभी नहीं देखना पड़ा था और न ही इतना बड़ा युद्ध करना पड़ा था। राजसिंह यूरोप के महाबली मुकाथा विलियम से किसी भी भांति कम नहीं था।

श्री विश्वनाथ शर्मा ने 'थर्मोपली के वीर' शीर्षक पुस्तक में जर्कसोज (Xerxes) की इस लड़ाई का रोमांचकारी वृत्तान्त प्रस्तुत किया है, जिसमें युनानी वीर लिओनिदास ने अपनी छोटी-सी सेना से फारस के बादशाह की विशाल सेना का थर्मोपली में सामना किया था। 'थर्मोपली के वीर' पुस्तक का प्रकाशन इण्डियन प्रेस, प्रयाग की ओर से १९०९ ई० में हुआ। सम्भव है बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास के प्रचारित होने के बाद थर्मोपली का महत्व बढ़ गया था। टॉड ने भी अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में लिखा है कि मेवाड़ का चप्पा-चप्पा यूरोप की थर्मोपली बना हुआ था। यहाँ के वीरों ने यूरोप के वीरों के समान विदेशियों का मुकाबला किया।

कहा जाता है कि थर्मोपली के जिस स्थान पर फारस के बादशाह जर्कसीज (Xerxes) का यूनानियों से युद्ध हुआ था और जहाँ स्पार्टा का वीर लियोनिदास तथा उसके साथी शहीद हुए थे वहाँ यूनानियों ने एक सिंह की मूर्ति और एक संगमर्मर की शिला स्थापित कर दी, जिस पर यह पंक्ति उद्धृत है—

श्रवणोत्सुक जो मिले स्पार्टन कहना उन्हें विदेशी नर।
देश धर्म के आज्ञाकारी सभी गिरे हैं हम यहाँ पर॥
...Go stranger and to listning spartans tell,
That here obedient to their laws we fell.

('थर्मोपली के वीर', पृ० १२२)

'महाभारत' का कुरुक्षेत्र

उपन्यास के सप्तम खण्ड के प्रथम परिच्छेद का नाम द्वितीय Xerxes द्वितीय Plataea दिया गया है। ('राजसिंह' उपन्यास, पृ० १२०) लेखक ने उपन्यास में लिखा है—'भारत के विभिन्न स्थानों से सैन्य संग्रह करके औरंगजेब ने राणा राजसिंह के राज्य को ध्वंस करने के लिए सेना का कूच किया। इस भारी सैन्यदल का नेतृत्व स्वयं बादशाह ने किया और उसके तीन पुत्र सेनापति बने। बड़ा पुत्र शाह आलम दक्षिण से बड़ी सेना लेकर आया और उसने मेवाड़ पर आक्रमण किया। बंगाल और पूर्वी भारत की बड़ी सेना लेकर अकबर अरावली की उपत्यका में आकर उपस्थित हो गया। पश्चिम से काबुल, पंजाब और कश्मीर से सेना लेकर अजीम उपस्थित हुआ। दिल्ली से अपराजेय बड़ी सेना

का काफिला लेकर खुद आलमगीर (औरंगजेब) मेवाड़ में पहुँचा। शायद इतनी विशाल सेना की व्यूह-रचना 'महाभारत' के युद्ध के बाद मेवाड़ में ही हुई थी। आश्चर्य है जो विशाल सेना चीन या फारस को जय कर सकती है वह छोटे राज्य मेवाड़ को विध्वंस करने के लिए आई। अपनी अपूर्व साहसिकता और रणनैपुण्य के कारण राजसिंह ने मुगल सेना को छिन्न-भिन्न कर तितर-बितर कर दिया। औरंगजेब की सेना जब मेवाड़ में पहुँची तो राणा ने समतल भूमि का परित्याग कर दिया। उनका बड़ा पुत्र जयसिंह सेना लेकर अरावली पर्वत के शिखर पर चढ़ गया। दूसरा पुत्र भीमसिंह सेना लेकर पश्चिम में डंट गया। राजसिंह ने अपनी सेना को गिरि-पर्वतों में सजाया। शाह आलम की सेना मेवाड़ की पर्वत श्रेणी के नीचे चुपचाप खड़ी हो गई। पर्वत के ऊपर से उस पर गोला-बारूद बरसने लगा, पत्थरों-चट्टानों की वर्षा होने लगी। इस आकस्मिक आक्रमण से शाह आलम पर्वत घाटी को पार नहीं कर सका। उधर अकबर और औरंगजेब की सेना का मिलन हुआ। औरंगजेब ने पुत्र को दोबारी के गिरि-प्रदेश में सेना ले जाने का हुक्म दिया और स्वयं उसने उदयसागर के किनारे अपने शिविर की स्थापना की। शहजादा अकबर की सेना जब उदयपुर में पहुंची तो उसने देखा नगर जनशून्य है, वहाँ उसका प्रतिरोध करने के लिए कोई नहीं था। फलतः उसने अपना खेमा उदयपुर में गाड़ दिया। इसी बीच कुमार जयसिंह ने मुगल सेना पर अचानक हमला बोल दिया और उसे ध्वंस कर दिया। शाहजादा को गुजरात में भागकर प्राण बचाने पड़े। शाह आलम की सेना एक पवत प्रदेश में आकर रुक गई। उसके पीछे आ रही रसद को राजपूत सेना ने लूट लिया और खाद्यान्न के अभाव में बिना युद्ध के ही मुगल सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह राजसिंह के रणकौशल से दो बड़ी सेनाएँ पराभूत हुईं। बादशाह आलमगीर की सेना को खुद राजसिंह ने नाकों-चने चबाये और पराजित कर सन्धि के लिए बाध्य किया। इसी युद्ध में उदीपुरी बेगम और जेबुन्निसा बन्दी हुईं और दोनों को उदयपुर भेज दिया गया जहाँ चंचल कुमारी ने बेगम से अपमान का बदला लिया और शहजादी में मानवीय परिवर्तन हुआ।"

मेवाड़ का थर्मोपली

यूरोप में थर्मोपली एक संकीर्ण गिरिपर्वत घाटी है जहाँ से केवल ५०० सैनिक ही एक साथ प्रवेश कर सकते हैं। उसी गिरि-प्रदेश में लियोनिदास ने फारस के सम्राट की विशाल सेना को बन्दी बना कर पराभूत किया था और राजसिंह ने गिरि-प्रदेश में औरंगजेब की सेना को पराजित किया। जैसे फारस की ५० लाख सेना छोटे से स्थान में दब-कुचल कर ध्वंस हो गई वही गति मुगल सेना की हुई। युद्ध की रणनीति है—'सिर की बजाय पेट पर मारो—An army marches on its stomach और राणा ने भी मुगल सेना सहित बादशाह को भूख-प्यास से तड़पा कर आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया। इस पूरे युद्ध वर्णन को हम टॉड के 'राजस्थान' (अंग्रेजी) के पृष्ठ ३०३-३०४ पर पाते हैं।

राणा की प्रशस्ति

राणा राजसिंह की वीरता, कर्त्तव्यपरायणता, असीम साहसिकता, रणकौशल, आदर्शपरायणता आदि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा टॉड ने अपने ग्रन्थ में की है तथा इन्हीं गुणों का बखान बंकिम के उपन्यास में हुआ है। औरंगजेब और राजसिंह के चरित्रो में उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव का अन्तर था। एक क्रूर, मक्कार, धोखेबाज, कट्टर मुसलमान था जिसने भाइयों की हत्या करके पिता को बन्दी बना कर दिल्ली का तख्त हासिल किया था। राणा उदार, सहिष्णु और दयालु था। वह सच्चाई का पुजारी और राजपूती शान को निभाने वाला वीर पुरुष था। उसने एक ललना की सतीत्व रक्षा के लिए तथा एक बेवा के बच्चे की रक्षा के लिए इतने बड़े युद्ध को सहर्ष स्वीकारा तथा राणा सांगा, राणा प्रताप की परम्परा को अक्षुण्ण रखा। राणा राजसिह की प्रशंसा मे टॉड ने अपने ग्रन्थ में प्रशस्ति गाई है और औरंगजेब की भर्त्सना की है। इसे टॉड के अंग्रेजी में लिखे 'राजस्थान' के पृष्ठ ३०९-३१० पर देखा जा सकता है।

शहजादी का मानवीय परिवर्तन

मुगल सेना को दिग्भ्रमित करने में मुबारक की बेजोड़ भूमिका रही तथा उदोपुरी बेगम एवं जेबुन्निसा को युद्ध क्षेत्र में बन्दी बनाने में माणिकलाल और निर्मल कुमारी की व्युत्पन्नमति बुद्धि का बड़ा सहयोग रहा। उल्लेखनीय है कि उपन्यास की उप-कहानी का नायक मुबारक शहजादी जेबुन्निसा का प्रेमी था। औरंगजेब ने उसके सेनापतित्व में चंचल कुमारी को दिल्ली के हरम में लाने के लिए दो हजार सेना रूपनगर भेजी थी। मुबारक की पहली बीबी दरिया थी जिसे उसने छोड़ दिया था। इसके बावजूद दरिया मुबारक के प्रति आसक्त थी। जब मुबारक सेना लेकर रूपनगर आया था तो दरिया चतुराई से पुरुष भेष बना कर सेना के साथ रूपनगर चली आई थी। जिस वक्त चंचल

पालकी में सवार होकर दिल्ली ले जाई जा रही थी तो बीच रास्ते में राजसिंह ने आक्रमण कर उसका अपहरण कर लिया। मुगल सेना और राजपूत सेना में युद्ध हुआ। मुगल सैनिक मारे गये। मुबारक राजकुमारी को दिल्ली ले जाने में असफल हुआ और पश्चात घोड़े सहित एक कुएँ में गिर पड़ा। उप समय दरिया ने उसके प्राणों की रक्षा की। दो बिछुड़े प्रेमी पुनः मिल गए।

दिल्ली लौट कर मुबारक ने जेबुन्निसा से भेंट नहीं की। उसने कहला भेजा कि अब वह दरिया को लेकर सुखी है। इससे शहजादी कुपित हो गई। जब निर्मल कुमारी दिल्ली आई तो मालूम हुआ कि मुबारक जानबूझकर चंचल कुमारी को छोड़ आया है। इस घटना को बढ़ा-चढ़ा कर जेबुन्निसा ने अपने पिता के कान भरे और अपने प्रेमी को मृत्यु-दण्ड दिलाया। तत्कालीन प्रथा के अनुसार साँप से कटवाकर मुबारक को मृत्यु की सजा दी गई और उसके शव को दिल्ली के देहाती क्षेत्र में दफनाने के लिए भेजा गया। शहजादी ने प्रेमी के लिए मौत का परवाना तो तैयार किया, पर भीतर ही भीतर उसका मन रोने लगा। दरिया को जब इस क्रूर हत्या का पता लगा तो वह विक्षिप्त हो गई और तलवार लेकर जेबुन्निसा को मारने हरम में आई। जेबुन्निसा की आँखों में आँसू देखकर वह उन्मादिनी की भांति नाचने लगी।

माणिकलाल निर्मल कुमारी के लिए दिल्ली मे प्रतीक्षा कर रहा था। वह जब लौट रहा था तो उसने देखा कि कुछ लोग एक शव को दफना रहे है। उसने उनलोगो को चोर समझा और शोरगुल करने लगा। फलतः वे मुबारक का शव छोड़कर भाग गए। माणिकलाल ने शव को देखा और समझ गया कि इसे साँप ने काटा है। उसने मुबारक का उपचार कर उसकी प्राण रक्षा की। तबसे मुबारक राजपूत सेना के साथ हो गया। इसी मुबारक ने सौदागर के भेष में मुगल सेना को भ्रमित कर गिरि-संकट में प्रवेश का मार्ग दिखाया था, जहाँ सेना को संकट में फँसना पड़ा, अनाहार में भूखों मरना पड़ा, पराजय स्वीकारनी पड़ी। निर्मल कुमारी तभी से दिल्ली के मुगल-हरम में थी। अपने साहस और दृढ़ आचरण से उसने औरंगजेब के मन को मोह लिया था। वह भी 'इमली बेगम' के नाम से युद्ध में अन्य बेगमों के साथ मेवाड़ आई थी। उदीपुरी बेगम और जेबुन्निसा को बन्दी बनाने मे उसकी प्रमुख भूमिका थी। फारस के बादशाह को भी थर्मोपली के युद्ध में ऐसे ही एक सौदागर ने दिशा-भ्रमित किया था।

भाग्य की विडम्बना है उदीपुरी बेगम जहाँ चंचलकुमारी को दासी बनाकर मुगल हरम में रखना चाहती थी और उसी की प्ररोचना से राजकुमारी को लाने के लिए रूपनगर सेना भेजी गई थी, वही उदीपुरी बेगम उदयपुर के राजमहल में चंचल के सामने बन्दिनी थी। उसे राजमहिषी चंचल कुमारी की दासी का काम करना पड़ा। उदयपुर के अन्तःपुर में शहजादी जेबुन्निसा का मानवीकरण हुआ। वह बादशाह की बेटी के दम्भ के

प्रेम को गरीबों का खेल समझती थी। वहाँ उसे उसी प्रेम के लिए रात भर परेशानी में रहना पड़ा। वह उस यन्त्रणा में कामना करने लगी कि या तो साँप आकर उसका दंशन करे या मुबारक उसे मिल जाये। वह साँप से अपने को कटवा कर वैसे ही मरना चाहती थी जैसे उसने अपने प्रेमी को मरवाया था। उसे पता नहीं था कि माणिकलाल के द्वारा मुबारक का पुनर्जन्म हो चुका था और वह उस समय उदयपुर में ही था। वह मुबारक के लिए बुरी तरह व्याकुल थी, उसे वह मिल गया और उसी रात एक मस्जिद में दोनों का निकाह हुआ।

बाद में जब उदीपुरी और जेबुन्निसा को बादशाह के शिविर में राणा ने सम्मान सहित पहुँचाया तो उसे बेटी की शादी का पता चला। वह एक सामान्य सेना नायक के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने में अपमान का बोध करता था। अतः उसने आदेश दिया कि शादी की बात गुप्त रहेगी। औरंगजेब ने अपने दामाद को मार डालने का षड्यन्त्र किया। उसने मुबारक को दिलेर खाँ के साथ युद्ध में भेजा और पत्र लिख भेजा कि या तो मुबारक युद्ध में मारा जाये या उसे मार दिया जाये। दिलेर खाँ के साथ गोपीनाथ राठौर, विक्रम सोलंकी और माणिकलाल की सेना का युद्ध हुआ। युद्ध में दिलेर खाँ पूर्णतः पराजित हुआ। उसके थोड़े से सैनिक जब बच गए तो माणिकलाल ने राजपूत सेना को उन्हें छोड़ देने का आदेश दिया। मुगल सैनिकों में मुबारक भी था। उसने माणिकलाल से कहा—'दोस्त ! मुझे युद्ध में मर जाने दो।' माणिक ने उत्तर दिया—'तब जेबुन्निसा से विवाह क्यों किया था ?' ('राजसिंह' उपन्यास, पृ० ११३)

इसी समय दूर से एक बन्दूक की गोली छूटी और मुबारक के भेजे को चीर कर निकल गई। गोली चलाने वाली दरिया थी। जेबुन्निसा को मुबारक की मृत्यु का समाचार मिला तो वह उदयसागर के पत्थरों पर रुदन करती हुई पछाड़ खाकर गिर पड़ी—

वसुधालिंगन धूसरस्तनी
विललाप विकीर्णमूर्धजा। (वही पृ० ११३)

बंकिमचन्द्र ने ऐतिहासिक कहानी में कुछ काल्पनिक पात्रों का संयोजन कर मूल कथा को रोचक बनाया है। मूल कहानी के साथ मुबारक-जेबुन्निसा और दरिया तथा माणिकलाल-निर्मल कुमारी की रोमांटिक उपकथाएँ जोड़ दी गई हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार को इस बात की पूरी छूट रहती है कि वह मूल ऐतिहासिक घटना को ज्यों का त्यों रखे और काल्पनिक पात्रों के द्वारा ऐतिहासिक चरित्रों का चित्रांकन करे। कभी-कभी ऐतिहासिक घटनाओं को सजीव और रूमानी बनाने के लिए भी उपन्यासकार को इस पद्धति का सहारा लेना पड़ता है। वस्तुतः उपन्यास तो इतिहास नहीं है, वह

इतिहास का रोमांस है। पाठक की उत्सुकता बनाये रखने के लिए तथा कहानी का सिलसिला जारी रखने के लिए ऐसी उपकथाएँ कमाल की होती हैं। कभी ऐसा होता है कि उपकथाओं के घटाटोप में मूल कहानी मन्द पड़ जाती है और काल्पनिक कहानी महत्वपूर्ण हो जाती है। मुबारक और माणिक की प्रेम-कहानियों के साथ ऐसा ही हुआ सा लगता है।

निर्मल कुमारी की बहादुरी

वैसे निर्मल कुमारी चंचल की महज एक दासी या सखी है, पर वह दिल्ली के हरम में पहुँच कर जिस साहसिकता और दिलेरी का प्रमाण देती है, उसे देखते हुए उसे गौण पात्र नहीं कहा जा सकता है। वह राजकुमारी का पत्र जोधपुरी बेगम तक पहुँचाती है। जोधपुरी औरंगजेब की हिन्दू बेगम है और उदीपुरी के चलते बादशाह पर उसका कोई प्रभाव नहीं है। उसे जब पता चलता है कि चंचल कुमारी को जबरन हरम में लाने का षड्यन्त्र शुरू हो गया है तो वह अपनी एक दासी को खतरा मोल लेकर चंचल के पास भेजती है। इतना ही नहीं निर्मल के दिल्ली प्रवास में उसकी पूरी मदद करती है। इसका एक कारण यह भी था कि वह सौत उदीपुरी बेगम से ईर्ष्या करती थी, जिसके रूप लावण्य से वशीभूत हो बादशाह उसके इशारों पर नाचता था।

अस्तु, औरंगजेब को मेवाड़ के युद्ध में बड़ी शिकस्त खानी पड़ी और राणा के साथ सन्धि करनी पड़ी। युद्ध से मुगलिया सल्तनत की अपार क्षति हुई। धन-जन की हानि के साथ उत्तर भारत में आलमगीर का प्रभाव क्षीण हो गया और अन्ततोगत्वा उसे दक्षिण में जाना पड़ा। औरंगजेब ने अपनी कट्टर नीति और हिन्दू-विद्वेष के कारण मुगल सम्राज्य की नींव को बुरी तरह कमजोर कर दिया। अकबर ने जिस मुगल ससल्तनत को पुख्ता किया उसे औरंगजेब ने ध्वंस कर दिया।

रवीन्द्र की उक्ति

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने 'ऐतिहासिक उपन्यास' नामक अपने निबन्ध में एक सूत्र दिया है, जिसे 'इतिहास-रस' कहा गया है। आपने कहा है कि कभी-कभी इतिहास और जनश्रुति को लेकर बड़ा विवाद छिड़ जाता है। दरअसल इतिहास और जनश्रुति दो अलग-अलग चीजें हैं। उपन्यास का लक्ष्य होता है रस की सृष्टि करना। इतिहास-रस की निष्पत्ति के लिए उपन्यासकार ऐतिहासिक कथ्य को आलम्बन बनाता है और रचना की सृष्टि करता है। रवी बाबू ने कहा है आज कोई नया इतिहासकार भारत के कृष्ण-बलराम की कहानी को नए अनुसन्धानों और गवेषणाओं से प्रस्तुत करे तब भी क्या वेदव्यास के महाभारत की विलुप्ति हो सकती है? कदापि नहीं। निःसन्देह इतिहासवेत्ता ऐतिहासिक तथ्यों को सर्वाधिक प्राथमिकता देगा। इतिहास की भूलों को

क्षमा नहीं किया जा सकता है, यह सत्य है। लेकिन जब कोई रचनाकार इतिहास के किसी आख्यान को लेकर या उसके किसी एक अंश को रचना-प्रक्रिया का माध्यम बनाता है। तब क्या हम उससे पूरे इतिहास की अपेक्षा करेंगे ? ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कहानी दोनों का शत्रु है। कहने का तात्पर्य अगर इतिहास लिखने की चेष्टा की जायेगी तो वह कृति उपन्यास न होकर इतिहास बन जायेगी और उपन्यास की रक्षा की जायेगी तो उसमें इतिहास को खोजना एक कष्ट-साध्य कार्य होगा। याने दोनों की रक्षा नहीं हो सकती।

इतिहासकार अर्म का मत

कुशल कलाकार की यही खूबी होती है कि वह इतिहास और जनश्रुतियों को इस भांति गुंफित करे कि रचना उच्च कोटि की तथा सर्व-ग्राह्य बन जाय। बंकिम ने 'राजसिंह' उपन्यास में अपनी लेखनी का ऐसा ही चमत्कार प्रस्तुत किया है। उन्होंने टॉड के आधार पर मेवाड़-युद्ध का वर्णन किया है, किन्तु युद्ध में औरंगजेब को पराजय के लिए घुटने टेकने पड़े, इस प्रसंग का वर्णन अर्म (Orme) से लिया है। अर्म ने महत्त्वपूर्ण इतिहास सामग्री को प्रस्तुत किया है। कई घटनाओं का वह चश्मदीद गवाह था। देखिए—

"In the meantime Aurangzebe was carrying on the war against the Rana Raj Sing of Cheetore, and the Raja of Marwar, who on the approach of his army at the end of the preceding year, 1678, had abandoned the accessible country, and drew their herds and inhavitants into the vallies, within the mountains, the army advanced amongst the defiles with incredible labour, and with so little intelligence, that the division which moved with Aurengzebe himself was unexpectedly stopped by insuperable defences and precipices in front, whilst the Rajpoots in one night closed the streights in his rear, by felling the overhanging trees, and from their stations above prevented all endeavours of the troops, either within or without from removing the obstacle. Udipuri, the favourits and Circassian wife of Aurengzebe, accompanied him in this arduous war, and with her retinue and escort was enclosed in another part of the mountains, her conductors, dreading to expose her person to danger or public view, surrendered. She was carried to the Rana, who received her with homage and every attention. (Quotted by Tod in the Annals of Mewar, Page 305).

असल में मवाड़ा के राजपूत अरावली के गिरि-पर्वतों में युद्ध करने के जितने

अभ्यस्त थे, मुगल सेना उस दृष्टि से पूर्णतः असफल थी। मुगल बदशाह इतने ऐय्याश हो गए थे कि वे युद्ध क्षेत्र में भी अपने हरम को साथ लेकर चलते थे, नाच-गाने और मौज-मस्ती का आलम साथ चलता था। इसका बड़ा सबूत है कि उदीपुरी बेगम का राणा द्वारा बन्दी होना तथा साथ में शहजादी का भी। ऐसी हालत में तथा खासतौर से औरंगजेब जब अजमेर की ओर पलायन कर गया तो राजपूतों के हौसले बुलन्द हो गए और उनमें असीम शक्ति आ गई, फिर तो मुगलों के लिए यह एकबारगी मुश्किल हो गया कि वे मेवाड़ के पार्वत्य क्षेत्र में प्रवेश करने का साहस भी जुटा पायें। उत्तर भारत में बादशाह ने राजस्थान के दो छोटे राज्यों को सबक सिखाने की गरज से महा-अभियान की शुरूआत की थी। चार वर्ष तक अपनी पूरी ताकत लगाकर भी वह अपना मनसूबा पूरा नहीं कर सका। उसे दक्षिण में मराठों से जूझने के लिए जाना पड़ा, जहाँ शिवाजी ने उसे सुख चैन से रहने नहीं दिया। राजपूत और मराठों से लड़ते-लड़ते अन्त में औरंगजेब दुनिया से उठ गया। हजारों मन्दिरों को तोड़ने और गैर-मुसलमानों पर जजिया कर थोपने के बावजूद उसकी भारत में इस्लामी-राज्य स्थापना करने की मंशा पूरी नहीं हुई। मथुरा, काशी और मेवाड़ के मन्दिरों को उसने तोड़ा और वहाँ की मूर्तियों को लाकर उसने दिल्ली की जामामस्जिद के तहखाने में रखा, लेकिन तब भी उस मूर्ति-भंजक का मनोरथ पूरा नहीं हुआ। उसने एक शताब्दी के बाद जजिया कर लगाने की हिमाकत की, जिसके प्रतिवाद मे हिन्दुस्तान से उसे मुगल-शासन को सदा-सदा के लिए खोना पड़ा।

यदुनाथ सरकार का मत

इन तथ्यों पर प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' में अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—

"The Rajpoots, fighting in their homeland, knew every nook of the ground and were helped by a friendly peasantry.

A marked increase of Rajpoot activity began with the Emperor's retirement to Ajmer [in March, 1680). They made raids, cut off supply trains and stragglers, and made the Mughal out-posts extremely unsafe. From Prince Akbar's letter we learn how affectively the Rajpoots succeeded in creating a terror of their prowess. The command of Mughal outposts went abegging captain after captain declining the dangerous honour and "offering excuse", the Mughal troops refused to enter any pass, "being overcome by vain fancies". detachments set down only a short distance from the base and refused to advance further. The bitter experience of Hasan Ali

Khan's troops when they were lost for a fortnight in the Hills West of Udaipur and the greatest alarm and anxiety which were felt in the imperial camp on their account, must have completely unnerved the Mughal army.

The Mughal army in Mewar was faced with starvention, and provisions had to be sent to it from Ajmer under strong escort. ('History of Aurangzib' by Sir Jadunath Sarkar, Vol. III, Chapter 36, Page 228-229).

संधि भंग का परिणाम

अन्त में बीकानेर के राजा श्याम सिंह की मध्यस्थता से राणा राजसिंह और औरंगजेब के बीच सन्धि हुई। राजा श्याम सिंह ने मुगल सेना में दिलेर खाँ के साथ युद्ध किया था। यह सन्धि १४ जून, १६८१ ई० को हुई थी। मुगल बादशाह को ऐसी शिक्षा, जो मेवाड़ में मिली, शायद ही कभी मिली थी। 'राजसिंह' उपन्यास के अष्टम खण्ड के षोडश परिच्छेद में बंकिम ने लिखा है—'युद्ध के अन्त में विजयश्री धारण कर रूपनगर का राजा विक्रम सोलंकी राणा के शिविर में लौट आया और उसने कहा—'मैं अब अपनी कन्या को मनसा-वाचा-कर्मणा से आपको समर्पित करना चाहता हूँ, क्या आप मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करेंगे ?' राणा राजसिंह ने सोलंकी से उदयपुर चलने का प्रस्ताव किया। उदयपुर पहुँचते ही उसी रात राणा और चंचल कुमारी का विधिवत विवाह हुआ। ('राजसिंह' उपन्यास, पृ० १७७)

औरंगजेब ने सन्धि भंग कर पुन: आक्रमण किया, परन्तु इस बार उसे जबरदस्त पराजय का सामना करना पड़ा। इस युद्ध में राठोर वीर दुर्गादास ने राणा राजसिंह के साथ अपनी बहादुरी का कमाल दिखाया। औरंगजेब अजीम के साथ भाग कर चित्तौड गया। वहाँ भी राजपूत सरदार सुबलदास से उसको मुंह की खानी पड़ी। वह खाँ रोहिल्ला को सुबलदास से लड़ने के लिए छोड़कर स्वयं अजमेर भाग गया। दूसरी ओर राणा के द्वितीय पुत्र भीमसिंह ने गुजरात तक अपनी विजय पताका फहरा दी और मुगलों को बेरहमी से पराभूत किया। उसने अनेक स्थानों को जीतकर सौराष्ट्र तक विजय दुन्दुभी बजायी, लेकिन जब प्रजा ने आकर राणा से प्राण भिक्षा मांगी तो दयालु राणा ने पुत्र को विजयी होने पर भी वापस बुला लिया, किन्तु राजमंत्री दयालशाह ने मुगलों के साथ सठे-साठ्यम् की नीति अपनाई। अन्त में पुन: सन्धि हुई और राणा राजसिंह ने जो चाहा औरंगजेब ने उसे स्वीकार किया।

औरंगजेब की राजपूत नीति

इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने औरंगजेब की राजनीति पर अपने विचार इस

प्रकार रखे हैं—

The loss caused to Auranzib by his Rajput policy cannot be measured solely by the men and money he poured on that desert soil. He had concentrated all the resources of the empire against two small states and had failed to achieve success. Damaging as this result was to imperial prestige, its material consequences were worss still. In the height of political unwisdom, he want only provoked rebellian in Rajputana With the two leading Rajput clans openly hostile to him, his army lost its finest and most loyal recruits. This was the harvest that Jalaluddin Akbar's great grandson reaped from sowing the whirt wind of religious percecution and supression of nationalities." (History of Auranzib—By Sir Jadunath Sarkar, Vol. III, Chapter 37, Page 247-248).

पात्रों का चरित्र चित्रण

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास की पूर्ण रक्षा की है तथा ऐतिहासिक पात्रों का कुशलतापूर्वक चरित्र चित्रण किया है। औरंगजेब, राजसिंह, उदीपुरी बेगम, जेबुन्निसा, चंचल कुमारी आदि ऐतिहासिक पात्रों का जहाँ उन्होंने बखूबी चित्रण किया है, वहीं मुबारक, दरिया, निर्मल कुमारी, माणिकलाल आदि काल्पनिक पात्रों को भी मनोयोग से उभारा है। यहाँ इन पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा।

औरंगजेब

टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ के बाद इतिहास के कई तथ्य सामने आए हैं और मुगल-राजपूत इतिहास पर काफी नई रोशनी पड़ी है। फिर भी बंकिम ने राजसिंह और औरंगजेब का जो चित्र अंकित किया है, वह इतिहास से पूरी तरह मेल खाता है। औरंगजेब की क्रूरता, कट्टरता और धर्मान्धता का जैसा इतिहास में वर्णन है, 'राजसिंह' उपन्यास में भी हमें मिलता है। उपन्यास के द्वितीय खण्ड के पंचम परिच्छेद में मुगल सल्तनत के पतन में औरंगजेब की भूमिका को दिखाते हुए लिखा गया है—'उसके ऐसा धूर्त, कपटाचारी, पापाचारी, स्वार्थपरायण, प्रजापीड़क बादशाह खोज पाना मुश्किल है। यद्यपि वह जितेन्द्रिय होने का पाखण्ड करता था, किन्तु उसके रंगमहल में असंख्य सुन्दरियाँ थीं, जहाँ सुरापान अबाध रूप से चलता था। बादशाह की प्रिय बेगम उदीपुरी जितनी अतुल सुन्दरी थी, उतनी ही सुरापान

में अतुलनीय थी। उसके हरम में पाप का आगार था और था ऐश्वर्य का नरक।' ('राजसिंह' उपन्यास, पृ० २५)

रूपनगर की राजकुमारी को पाने के लिए उसने मुगल सेना भेजी और जब चंचल कुमारी का राजसिंह ने अपहरण कर लिया तो औरंगजेब की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने जजिया कर की घोषणा की और अपार सेना लेकर मेवाड़ को उजाड़ करने का मनसूबा बनाया। ग्रीक देश को नष्ट करने के लिए जिस प्रकार शेर जेरक्सेज (Xerxes) ने आयोजन किया था, वैसा ही कुत्सित कार्य औरंगजेब ने मेवाड़ के विरुद्ध किया। उसने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया, पर राणा राजसिंह ने इस कर को देने से इन्कार कर दिया। फलतः हिन्दुस्तान में विरोध की ज्वाला भड़क उठी। मन्दिर गिराये जाने लगे, देव-मूर्तियाँ तोड़ी गईं और बलात लोगों को मुसलमान-धर्म क़बूल कराया जाने लगा।

हरम में शहजादी का बड़ा प्रभाव था। उसने औरंगजेब की बहन रौशनआरा के गर्व को खर्व कर अपनी धाक जमा ली थी। वह बादशाह की कृपापात्र बन गई थी। बादशाह बेटी की कुकीर्ति से पूरा वाकिफ था, चुप था। जेबुन्निसा के षड्यन्त्र से मुबारक के बध की आज्ञा दी गई, बिना किसी न्याय-विचार के। औरंगजेब के न्याय का यह महज एक नमूना था।

औरंगजेब के असत् चरित्र में जो खोखलापन था, जो शून्यता थी, उसका उद्घाटन लेखक ने निर्मल कुमारी के साथ औरंगजेब के व्यवहार में दिखाया है। जब रूपनगर की राजकुमारी का पत्र लेकर निर्मल कुमारी दिल्ली के मुगल हरम में जाती है तब लौटते समय उसकी भेंट अन्तःपुर में बादशाह से हो जाती है। बादशाह निर्मल को मारने, गोमांस खिलाने और जीभ काट लेने की धमकी देता है, पर वह अपने धर्म-ईमान पर दृढ़ रहती है। उसकी साहसिकता से बादशाह उसका दास ही नहीं बनता, प्रणयकांक्षी भी हो जाता है और कहता है कि ऐसी नारी के लिए उसका हृदय रिक्त था, पर निर्मल तो माणिकलाल की विवाहिता पत्नी थी। अतः औरंगजेब निर्मल से केवल बातचीत करके ही सन्तुष्ट रहता और उसे 'निर्मली बेगम' या 'इमली बेगम' के नाम से पुकारता। जब बादशाह मेवाड़ के पर्वतों में अनाहार से व्याकुल था तब उसने 'इमली बेगम' से सहायता की याचना की थी। वह कितना क्रूर और निर्दयी था इस बात का पता हमें तब अनायास लगता है जब वह अपने दामाद मुबारक को मार डालने का षड्यन्त्र रचता है।

राजसिंह

राजसिंह के चरित्र से प्रभावित होकर ही बंकिम ने इस उपन्यास की रचना की और उसका नामकरण भी उसी के नाम पर किया। औरंगजेब के विपरीत राणा

राजसिंह में सारे सद्गुण थे, जो एक नायक में होने चाहिए। ऐसे वीर चरित्र का चित्रण करने की प्रबल इच्छा से ही लेखक ने अपनी कलम चलाई। बंकिम ने उपन्यास के उप-संहार में लिखा है—'औरंगजेब धर्म-शून्य था। इसलिए उसके समय से ही मुगल-शासन का पतन आरम्भ हो गया। राजसिंह धार्मिक था। इसी कारण छोटे राज्य का अधिपति होते हुए भी उसने बादशाह को पराजित किया और अपने विशिष्ट चरित्र का वर्चस्व स्थापित किया।' (वही, पृ० १७६)

राजसिंह शूर-वीर, व्यवहार-कुशल, परधर्म के प्रति सहिष्णु था और आन-बान के लिए मर-मिटनेवाला था। वहीं औरंगजेब धर्मान्ध, कपटचारी, परधर्म के प्रति असहिष्णु था। प्रजापालन में भी इसी कपट नीति का अनुसरण करता था। औरंगजेब ने मेवाड़ के मन्दिर तुड़वाये, पर राणा ने मस्जिदों की रक्षा की। इसका प्रमाण है कि उदयपुर में मुबारक और जेबुन्निसा का निकाह मस्जिद में हुआ। राणा के राज्य में मुसलमान सौदागरी का काम करते थे। यही कारण है कि सौदागर के छद्मवेश में मुबारक ने मुगल सेना को पथभ्रान्त किया। राणा के शासन में चोर-डाकू तक भय खाते थे। इसका उदा-हरण हम डाकुओं के कथोपकथन में पाते हैं। रूपनगर की राजकुमारी का पत्र लेकर जब कुलपुरोहित मेवाड़ जा रहा था तो उसे रास्ते में दो डाकू मिल गए। वे राजपुरोहित को लूटना चाहते थे, वे परस्पर कह रहे थे—'आजकल राणा भेष बदल कर घूमा करता है, उसके शासन में डकैती करना आसान नहीं।' सचमुच उस समय राणा पहाड़ के ऊपरी हिस्से पर मौजूद थे। उन्होने डाकुओं द्वारा लूटे जाते हुए राजपुरोहित को देखा तो वहीं से तीर से एक डाकू का काम तमाम कर दिया। दूसरा डाकू माणिकलाल था। राणा के घटनास्थल पर पहुँचते ही वह प्राण भिक्षा मांगने लगा। उदार राणा ने उससे जीवन में पुनः ऐसा कुकर्म न करने की प्रतिज्ञा कराई। माणिकलाल ने ऐसा ही किया और राणा का कृपापात्र सैनिक बन गया।

राजसिंह ने चंचल कुमारी का पत्र पाकर जिस वीरता और साहस का परिचय दिया, उसकी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। राणा ने जोखिम उठा कर राजकुमारी का अपहरण किया, उससे विवाह किया और मुगल बादशाह का कोपभाजन बना। एक अबला विधर्मी के द्वारा बलात ले जायी जाय, यह एक वीर राजपूत के लिए भला बर्दाश्त की बात थी? नहीं। अतः राणा ने यह जानते हुए भी कि इसका मूल्य उसे चुकाना पड़ेगा, उसने राजकुमारी की सतीत्व-रक्षा के लिए प्राण-पण की बाजी लगा दी।

राणा राजसिंह जैसे राजनीति का पण्डित था वैसे ही युद्धनीति का भी कहे

अद्वितीय वीर था। उसने जैसी रणनीति अपनाई और कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया, उसकी मिसाल मिलनी कठिन है। तभी तो अरावली के पहाड़ों और संकरी घाटियों में औरंगजेब और उसकी विशाल सेना को आत्म-समर्पण कर घुटने टेकने पड़े।

बंकिम ने राजसिंह के ऐतिहासिक चरित्र का तो उद्घाटन किया पर उनके नायक पक्ष के उस चरित्र को उजागर नहीं कर पाये, जिससे उपन्यास में रोमांस का संचार होता है। उनका प्रेमी-हृदय ढंका ही रह गया। चंचल कुमारी ऐसी सुन्दरी से उनका संक्षिप्त वार्तालाप पाठक को तुष्ट नहीं करता।

जेबुन्निसा

सम्राट औरंगजेब की शहजादी जेबुन्निसा ने रोशनआरा (औरंगजेब की बहन) का खर्व चूर्ण कर अपने को साम्राज्य का 'नियामक नक्षत्र' बना लिया था। वैसे सम्राट तो औरंगजेब था, पर उसकी नकेल का एक सिरा जेबुन्निसा के हाथ में था और दूसरा उदीपुरी बेगम के। हरम में रहते हुए भी वह विभिन्न सूत्रों से साम्राज्य की छोटी-बड़ी खबरें संग्रह करती थी। इसके लिए उसने गुप्तचर और सम्वाद बेचने वाले मुकर्रर कर रखे थे। हरम में साधारणत: दो किस्म के लोग ही प्रवेश पा सकते थे। एक तो वह व्यक्ति जो उसका प्रणय-भाजन होता, दूसरा जो गुप्त खबरें लाता। शहजादी स्त्री होने पर भी चतुर राजनीतिज्ञ थी।

उसका विलास-गृह इन्द्र की अप्सराओं को मात देता था। अतर और तेल-फुलेल तथा सुरा की महक से उसका कक्ष केलि-निकेतन बना हुआ था। माणिक-मुक्ता और सोने-चाँदी की झालरें उसके अन्त:पुर की शोभा बढ़ाती थीं। गहने और जेवरों का उसके पास बेशुमार खजाना था। उसकी शैया के पास भांति-भांति के फूल, अतर और गुलाब शोभा पाते थे। प्रौढ़ा होने पर भी उसमें यौवन का उन्माद था। उसने शादी नहीं की थी, पर तितली की भांति वह पिता के सदृश्य तरह-तरह के फूलों का रस-पान करती थी। एक दफा रस-पान की प्रतिद्वन्द्विता में उसने अपनी बुआ रोशनआरा को भी शिकस्त दी थी। राजसिंह के साथ हुए युद्ध-विग्रह में उसका जबरदस्त हाथ था। उसे खबर मिली कि चंचल कुमारी ने औरंगजेब की तस्वीर पर पदाघात किया है तो उसने एक तीर से दो शिकार किए। उदीपुरी के कान भर कर प्रतिज्ञा कराई कि जब तक रूपनगर की राजकुमारी हरम में आकर उसकी दासी नहीं बनेगी, वह अनशन करेगी। इस षड्यन्त्र में जेबुन्निसा की कामना थी कि औरंगजेब जब चंचल कुमारी के समान परम-सुन्दरी युवती को पा जायेगा तो उदीपुरी से उसका मन उचट जायेगा और बेगम का रौब अपने आप खत्म हो जायेगा और नई बेगम चंचल जेबुन्निसा भी कृपा-पात्री बनी रहेगी। पर इस कुमंत्रणा का परिणाम मुगल शासन को भोगना पड़ा, जिसका साक्षी इतिहास है।

वह मुबारक से काम-वासना पूरी करती, विवाह की बात जब भी उठती तो कहती—'शहजादी किसी शहजादे से ही शादी कर सकती है। भला शहजादी एक साधारण मनसबदार (मुबारक) से कैसे शादी कर सकती है ?' उसके लिए प्रेम एक क्षणिक शारीरिक सुख का उपकरण मात्र था, जिसे वह अनायास पूरा कर लेती थी। लेकिन वह खुद की आग में जलने लगी, जब उसने मुबारक को सर्प-दंशन कराने का षड्यन्त्र किया। बाद में पश्चाताप के आँसुओं से उसकी लाल-लाल आँखें आर्द्र हो आईं और जब सचमुच मुबारक दरिया की प्रतिहिंसा का शिकार हो मारा गया तो वह उदय-सागर के पत्थर से सिर पीटने लगी।

बंकिम ने ऐतिहासिक पात्र की मानसिकता का बारीकी से मनोवैज्ञानिक धरातल पर चित्रण कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। जेबुन्निसा ऐसी पाषाणी का मानवीय दृष्टि से रूपान्तर कुशल सिद्धहस्त लेखनी का बेजोड़ नमूना है। रवीन्द्रनाथ ने बंकिम की इस सूझ की दाद दी है। उन्होंने 'राजसिंह' उपन्यास पर अपनी प्रतिक्रिया मे कहा है—'जेबुन्निसा का मानवी कन्या के रूप में नवजन्म उपन्यास की प्रभावशाली घटना है।'

मुबारक

मुबारक का एक अंश इतिहास से जुड़ा हुआ है और दूसरा अंश उपन्यास की उप-कथा से। इतिहास में उसका उल्लेख दो सौ सवारों के मनसबदार के रूप में है और उपन्यास में वह शहजादी का प्रेमी है। वह जेबुन्निसा के कक्ष में आने-जाने वाला व्यक्ति है, जिसका स्वागत अतर-गुलाब से होता है, ताम्बूल से उसकी अभ्यर्थना होती है। वह वीर, योद्धा, धर्मपरायण है। ईश्वर में उसकी असीम आस्था है, लेकिन प्रेम के सामने वह अपने पुरुषार्थ को भूल जाता है। शायद शहजादी का आकर्षण उसे ऐसा करने पर विवश कर देता है।

सौदागर के भेष में वह मुगल सेना को भ्रमित कर गिरि-गुहा में प्रवेश कराता है। इस कारगुजारी के लिए राणा राजसिंह जब उसे पुरस्कृत करना चाहता है तो वह कहता है—'मैंने मुगल होकर मुगल-राज्य को नष्ट करने का कुकर्म किया। मैंने मुसलमान होकर हिन्दू-राज्य स्थापन में मदद दी। मैंने बादशाह का नमक खाकर नमकहरामी की। इससे मैं मृत्यु-यंत्रणा का कष्ट पा रहा हूँ।'

इस कथन से मुबारक का सच्चा मुसलमान होना ध्वनित होता है। वह सर्प-दंशन के अन्याय की बात भूल जाता है और अपने कर्म के लिए पश्चात्ताप करता है। उसमें मानवीय कमजोरी है। वह दरिया बीबी को छोड़ता है। वह उसके लिए अपने प्राणों को संकट में डालकर युद्ध-शिविर में जाती है, कुएँ में पड़े मुबारक की प्राण रक्षा

करती है। इस उपकार के लिए वह उसे पुनः स्वीकार कर लेता है। जब मुबारक को बादशाह के हुक्म से साँप से कटाया जाता है तो वह उन्मादिनी होकर जेबुन्निसा का वध करने हरम में आती है। शहजादी की आँखों में आँसू देखकर वह शान्त हो जाती है, पर उद्भ्रान्त होकर अट्टहास करती हुई नाचने लगती है। जेबुन्निसा के साथ मुबारक के शादी कर लेने पर वह अपने क्रोध को शमित नहीं कर पाती है और गोली मार कर मुबारक की हत्या कर देती है, फिर उसका कोई अता-पता नहीं मिलता। यह नारी का वह रूप है, जिसे सौत की ईर्ष्या की आग ने उसे प्रतिहिंसक के रूप में पहुँचा दिया है। मुबारक का यह कमजोर पक्ष और दरिया की प्रतिहिंसा ये दो ऐसे मानवीय दृष्टान्त हैं जो 'राजसिंह' उपन्यास की उपकथा को यथार्थ की बुनियाद पर अधिष्ठित करते हैं। इस उपकथा ने उपन्यास को रोचकता प्रदान की है। बंकिम की लेखनी से मुबारक ऐसे सच्चे मुसलमान का सृजन हुआ है।

उदीपुरी बेगम

इतिहास में उदीपुरी बेगम असामान्य रूपसी, भोगासक्ता और इन्द्रियपरायण बेगम के रूप में विख्यात है। बादशाह औरंगजेब उसके रूप सौन्दर्य पर मुग्ध था। उदीपुरी सम्राट की प्रेयसी महिषी थी। वह रूस के जर्जिया नामक क्षेत्र में पैदा हुई थी। दारा ने उसे खरीदा था और उसके रूप-लावण्य पर फिदा था। दारा के मारे जाने के बाद तख्त और उदीपुरी दोनों औरंगजेब को मिल गए। उदीपुरी नाम से उसका उदयपुर से जरा भी लगाव नहीं था। वह भयंकर रूप से शराब का सेवन करती थी। यही कारण है कि हरम में सुरा का बेहद इस्तेमाल होता था। कट्टर मुसलमान होते हुए भी औरंगजेब उदीपुरी की शराबखोरी पर मौन था। जब बादशाह हरम में आता तो देखता बेगम शराब के नशे में बेसुध होकर निरवसना की भांति पलंग पर बेखबर पड़ी है—जैसे कोई माधवी लता पेड़ से च्युत होकर धरती पर अस्त-व्यस्त पड़ी हो।

बन्दिनी होने के बाद वह महारानी चंचल कुमारी के सामने दीन और कातर हो गई। उसके साथ सौजन्यतापूर्ण सद्-आचरण किया गया। पर सद्-व्यवहार को उदीपुरी ने उल्टा समझा। उसे लगा महारानी डर कर ऐसा कर रही है। उसने अपने कठोर वाक्य और दुराग्रह से चंचल के क्रोध को भड़का दिया। फलतः महारानी ने उसे दासी के रूप में ताम्बूल का बीड़ा सजाने का आदेश दिया। बेगम मजबूर होकर उठी और अपमान की यन्त्रणा से थककर खाकर पत्थर के फर्श पर गिर पड़ी। यह नियति की विडम्बना थी। उसने यह कार्य चंचल कुमारी से कराने और हुक्का भरने की तमन्ना दिल में संजो रखी थी, पर हाय रे दुर्दैव! गिरि-संकट में औरंगजेब के बन्दी होने और राणा राजसिंह के साथ सन्धि करने के लिए बाध्य होने पर उदीपुरी और जेबुन्निसा को

बादशाह के पास राणा ने ससम्मान पहुँचाने का आदेश दिया।

उदीपुरी का पुत्र कामबक्स था। द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक 'दुर्गादास' में दिखाया गया है कि उदीपुरी दुर्गादास की वीरता और सुपुरुष के प्रति आसक्त थी। जब दुर्गादास बन्दी बना कर मुगल जेल में लाया गया तो वह उससे प्रणय याचना करने गई। उसने इसके प्रतिदान में दुर्गादास को मुक्त करने को कहा, लेकिन वीर शिरोमणि दुर्गादास ने यवन बेगम पर थू किया। इस दृश्य को देख कर कामबक्स ने अपनी माता की काम-पिपासा पर हाथ तक उठाया। यदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"Udipuri Mahal, the mother of Kam Bukhsh was the youngest and best loved concubine of Aurangzeb. She was a Georgian slave gire of Dara Shukoh's Harem, who on the down-fall of her first master, became the concubine of his victorious rival. She seems to have been a very young woman at the time, as she first became a mother in 1667 when Aurangzeb was going on fifty. She retained her youth and influence over the Emperor till his death, and was the darling of his old age Under the spell of her beauty he pardoned the many faults of Kam Bukhsh and overlooked her freaks of drunkenness which must have shocked so pious a Muslim." (History of Aurangzeb—By Jadunath Sarkar, Vol. I, Chapter 4, Page—34-35)

चंचल कुमारी

रूपनगर के राजा विक्रम सिंह सोलंकी की चंचल कुमारी एक मात्र कन्या थी। उसने तस्वीर बेचनेवाली एक मुसलमान महिला से राजसिंह का चित्र खरीदा था और औरंगजेब के चित्र को पैरों से कुचला था। यह बात औरंगजेब तक पहुँची और उसे बेगम बनाने के लिए तथा उदीपुरी की दासी बनाने के लिए रूपनगर सेना भेजी गई। राणा राजसिंह को चंचल ने अपनी रक्षा के लिए पत्र भेजा। राणा ने आक्रमण कर राजकुमारी का अपहरण किया जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण कर पाणिग्रहण किया था। इस घटना से राणा राजसिंह और औरंगजेब के बीच भयकर युद्ध हुआ, जिसका भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है।

चंचल कुमारी वीर रमणी, परमा सुन्दरी और कठोर प्रतिज्ञा करनेवाली युवती थी। वह यवन-हरम में जाने की अपेक्षा प्राण-त्याग श्रेष्ठ समझती थी। इसीलिए उसने वीर-श्रेष्ठ राणा की शरण की याचना की और उन्हें अपना पति वरा। राणा ने भी राजकुमारी को ग्रहण करने के लिए प्राण-पण की बाजी लगा कर उसे महारानी बनाया।

निष्कर्ष

अस्तु अब हम बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास की चर्चा के उपसंहार के रूप में कहेंगे कि उनका यह उपन्यास न केवल बंगला-साहित्य की एक अमर रचना है, अपितु बंकिम का एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें एक साथ ही हमें बंगला उपन्यास के आरम्भिक युग की पूरी झलक मिलती है तथा राजपूत-मुगल इतिहास का पूरा चित्र हमारे सामने उभर कर आ जाता है। बंगला के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'राजसिंह' का विशिष्ट स्थान है और बंगला-साहित्य में बंकिम की बेजोड़ भूमिका है। इसका प्रमाण है कि बंगला-साहित्य का एक युग ही 'बंकिम युग' से जाना जाता है। बंकिम ने अपनी प्रतिभा के आलोक से बंगला-साहित्य के कई उपन्यासकार पैदा किए, जिनसे आज भी बंगला-साहित्य धनी और गौरवान्वित है।

'बंगला ऐतिहासिक उपन्यास' पुस्तक के लेखक-आलोचक अर्पणा प्रसाद सेनगुप्त ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३२ पर लिखा है—'उन्नीसवीं शताब्दी के सप्तम दशक में बंकिमचन्द्र ने बंगला उपन्यास की नींव रखी। उन्होंने उपन्यास विधा की बंगला-साहित्य में शुरूआत ही नहीं की वरंच भविष्य के उपन्यासकारों के लिए एक सहज, सुगम राजपथ का निर्माण कर दिया।'

आपने आगे पृष्ठ ५६ पर लिखा है—'राजसिंह' उपन्यास की मूल-कथा राजपूत-मुगल इतिहास को लेकर लिखी गई है। भारतीय इतिहास का यह अंश बड़े महत्व का है। बंगला-साहित्य में इस इतिहास को लेकर जितने भी उपन्यास लिखे गए हैं, उनमें 'राजसिंह' श्रेष्ठ कृति है। इसमें इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग हुआ है, इसे खोज कर बाहर करना बड़ा दुष्कर कार्य है।'

'राजसिंह' उपन्यास के आलोचक डॉ० भवानी गोपाल सन्याल ने अपनी पुस्तक (बंकिम रचनावली, 'राजसिंह' उपन्यास, प्रकाशक—माडर्न बुक एजेन्सी, कलकत्ता, १९५७ ई०) के पृष्ठ १७ पर आचार्य यदुनाथ सरकार का उद्धरण प्रस्तुत किया है—'बंकिम ने कल्पना के वशीभूत होकर ऐतिहासिक सत्य का अतिक्रमण नहीं किया है, बल्कि सत्य को जीवन्त आलोक में उद्भासित किया है।'

बंकिम का व्यक्तित्व और कृतित्व

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय अपने मिशन में पूर्ण सफल हुए हैं। हिन्दुओं के बाहुबल को प्रतिपादित करना और देश के लुप्त इतिहास को उजागर करना उनका संक-

उद्देश्य था। इस कार्य को वे पूरी निष्ठा और ईमानदारी से पूरा कर पाये हैं। उनपर साम्प्रदायिकता का दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। क्योंकि उन्होंने 'राजसिंह' उपन्यास के उपसंहार में इस बात की पूरी सफाई दे दी है। उन्होंने उपन्यास की भूमिका में लिखा है—'भारत कलंक' नामक निबन्ध में मैंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि आखिर भारतवर्ष के अतःपतन का क्या कारण है? हिन्दुओं में बाहुबल की कमी नहीं थी, किन्तु १९वीं शताब्दी में इसका अभाव देखा जा रहा है, खासकर अंग्रेजी साम्राज्य काल में। हिन्दुओं का बल कभी इतना लुप्त नहीं हुआ था। उनके बाहुबल को दिखाना ही इस उपन्यास के माध्यम से मेरा प्रकृत उद्देश्य रहा है। इसी दृष्टि से मैंने राजसिंह के चरित्र का चयन किया है।'

एच० बटरफिल्ड ने ऐतिहासिक उपन्यास को युग का महाकाव्य कहा है। बंकिम ने जिस महायुद्ध का वर्णन किया है उससे उन्होंने 'राजसिंह' उपन्यास के माध्यम से महाकाव्यमय उपन्यास की रचना की है। हिन्दू और मुसलमान जातियों के सम्बन्ध में बंकिम की दृष्टि समभावापन्न थी। उन्होंने अकबर बादशाह की प्रशंसा की है तथा उपन्यास में मुबारक के मुसलमानी चरित्र के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाई है। उल्लेखनीय है कि बंकिम ने 'राजसिंह' उपन्यास के बृहत् चतुर्थ संस्करण की रचना कृष्ण चरित्र को पूर्ण विकसित करने के बाद की। यद्यपि उन्होंने इस बात का खुलासा नहीं किया है, पर उनके उपन्यास से ध्वनित होता है कि वे कृष्ण की भांति राजसिंह को भी देशोद्धारक और त्राणकर्त्ता स्वीकार करते हैं। राणा की वीरता और न्यायप्रियता के जरिए उन्होंने गीता के कृष्ण चरित्र को उद्घाटित किया है। श्रीकृष्ण की भांति राजसिंह ने भी कन्याहरण किया और निराश्रय को आश्रय दिया। राजसिंह की तुलना लेखक ने इंगलैण्ड के तृतीय विलियम के साथ की है। तृतीय विलियम ने फ्रांस के १४वें लुई की भारी सेना को परास्त किया था। विलियम और राजसिंह में धर्म के प्रति समदर्शी भाव था। यह साम्य ही दोनों को एक पराक्रमी योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित करता है। चूंकि विलियम के कार्य से यूरोप और अन्य देशों के लोग परिचित हैं, राजसिंह के कार्यों से नहीं। अतः राजसिंह की वीरता, धर्मप्रियता और असाधारण प्रतिभा को ऋषि बंकिम ने अपने उपन्यास में उजागर कर भारतीय इतिहास में एक युगान्तरकारी कार्य किया है। बंकिम के पश्चात रवीन्द्रनाथ ने भी अपने 'राजर्षि' उपन्यास में एक आदर्श राज्य की स्थापना का प्रयास किया है।

भविष्यद्रष्टा बंकिम

वस्तुतः देशप्रेम की भावना को व्यंजित करने के लिए युगद्रष्टा साहित्यकार को प्राचीन गौरव से ऊर्जा लेकर वर्तमान की मनीषा को जागरित करना पड़ता है, जिससे

भविष्य महिमामण्डित हो। इस यथार्थ दृष्टि से भविष्यद्रष्टा बंकिमचन्द्र ने पराधीनता की पीड़ा को जितनी गहराई से अनुभव किया, कदाचित अन्य साहित्यकारो ने नहीं। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना १८८५ ई० मे हुई और उस समय इस महान संस्था को स्थापित करने वालों के मानस मे देश की आजादी के प्रति कोई स्पष्ट चित्र नहीं था। अर्जी और अनुनय-विनय से आरम्भ मे कुछ अधिकार पाने की लालसा से कांग्रेस की स्थापना हुई थी। किन्तु साहित्य स्रष्टा तो केवल अपने युग की ही बात नही कहता, वह भविष्य के लिए सपना संजोता और उसे अमली जामा पहनाने की कोशिश करता है। इस परिप्रेक्ष्य मे जब हम बंकिम के कृतित्व और व्यक्तित्व पर विचार करेंगे तो पायेंगे कि वे कांग्रेस की स्थापना के पूर्व से ही इस दिशा मे अग्रवर्ती थे। उन्होन 'दुर्गेश-नन्दिनी' (१८६३-६४ ई०) उपन्यास मे देश-प्रेम का दीप प्रज्ज्वलित कर दिया था। बंकिम ने अपनी प्रज्ञा से जिस समिधा के लिए देश-प्रेम की हवन-सामग्री जुटाई, परवर्ती काल मे अर्थात् स्वाधीनता संग्राम के महायज्ञ मे वह अग्नि एक महाग्नि के रूप म प्रकट हुई और देशभक्त मातृभूमि पर 'वन्देमातरम्' के महामन्त्रोपचार से प्राणो की हवि देने लगे। इतना ही नही बाद मे बंगाल के क्रान्तिकारियो की 'अनुशीलन' और 'युगान्तर' पार्टी बनी, उनमे भी बकिम के 'आनन्दमठ' और संन्यासी विद्रोह की महान भूमिका रही। आज के वामपंथी और मार्क्सवादी क्रान्ति की जिस बात को कल्पना में सोच भी नहीं पाये थे, उसे बंकिम ने बहुत पहले से ही पूरी साफ-गोई और ईमानदारी से देशवासियों के सामने रख दिया था। अतः ऐति-हासिक पृष्ठभूमि में उन्होंने जिस देश भक्ति की धारा को प्रवाहित किया, समय पाकर सारा देश उसी में बहने लगा तथा अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति पाने के लिए छटपटाने लगा। एक साहित्यकार की रचनाओं की इससे बढ़ कर क्या उपलब्धि हो सकती है? तभी ऋषि बंकिम आज भी भारतीयों के हृदय में श्रद्धा और आदर से विराजते हैं।

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जब भारतीय समाज पश्चिम का अन्धानुकरण कर रहा था और अपने को धन्य मान रहा था बंकिम ने राष्ट्रीय भावना के जागरण म महत्वपूर्ण योगदान दिया। पराधीनता के कालखण्ड मे पतनशील और निर्जीव हो रहा जनमानस बंकिम के देश-भक्ति से ओतप्रोत ओजस्वी गीत 'वन्देमातरम्' से एक बार पुनः जीवन्त हो उठा।

ऋषि अरविन्द ने अपने क्रान्तिकारो जीवन के आरम्भ मे 'वन्देमातरम्' नाम से पत्र प्रकाशित किया। इस मन्त्र की शंख-ध्वनि ने क्रान्तिकारियों को जितना प्रभावित किया उतना ही राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वतन्त्रता-संग्राम को।

वीरत्व के स्रष्टा

१६वीं सदी के बंगाली समाज के सामने हिन्दुओं की वीरता का बखान सोद्देश्यपूर्ण था। इसे डॉ० विजित कुमार दत्त ने 'बंग्ला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास' में १४४ पृष्ठ पर इन शब्दों में स्वीकार किया है—'इस शताब्दी में बंगला साहित्यकारों ने वीरत्व के आदर्श की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की। स्वदेशी-आन्दोलन में इसकी विशेष जरूरत थी। बंकिम ने बंगाली समाज की वीरत्व की पिपासा को तुष्ट करने के लिए 'राजसिंह' उपन्यास की रचना की।'

हिन्दी में बंकिम

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की सभी रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में हुआ है और उनके उपन्यास बड़ी तन्मयता से हिन्दी पाठकों ने पढे हैं।. 'बंकिम ग्रन्थमाला के नाम से हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, काशी से बंकिम की रचनाओं का प्रकाशन १६वीं शताब्दी के आरम्भ में ही हो गया था। 'बंकिम ग्रन्थमाला' के कई खण्ड निकले, जिनमें उनके सभी उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद है। अनुवादक हैं ठाकुर रामाशीष सिंह। हिन्दी प्रचारक, काशी से 'बंकिम संगम' नाम से एक ही खण्ड में १६८६ ई० में बंकिम के सभी उपन्यासों को प्रकाशित किया गया है। इसके सम्पादक हैं हिन्दी-साहित्यकार श्री विश्वानाथ मुखर्जी। श्री रमेश दीक्षित ने १६८० में बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण 'सन्मार्ग प्रकाशन' दिल्ली से प्रकाशित किया है। कलकत्ता से श्री रामलाल वर्मा ने सम्वत १६८० में बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यास का प्रकाशन किया था, जिसके अनुवादक हैं श्री रामानन्द द्विवेदी।

चूँकि बंकिमचन्द्र बंगला-साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार और उपन्यासकार हैं तथा उनके 'आनन्दमठ' का 'वन्देमातरम्' गीत आज भी देशवासियों का कण्ठहार बना हुआ है। ऐसे ऋषि बंकिम ने 'राजसिंह' उपन्यास के द्वारा देशात्म-बोध को उद्दीप्त करने में कौन-सी भूमिका निभाई, इसे दर्शाने के लिए ही हमने उपन्यास पर विस्तार से चर्चा की है। ऐसे कृति साहित्यकार से हिन्दी भाषा-भाषियों का सम्यक परिचय कराना भी इस ग्रन्थ के माध्यम से हमारा अभीष्ट रहा है। हमारे इस विनीत प्रयास से बंगाल और राजस्थान की सांस्कृतिक एकता का थोड़ा भी मार्ग प्रशस्त होगा तो हम अपने श्रम को सार्थक समझेंगे। देश की भावात्मक एकता के लिए ऐसे प्रयास होने चाहिए। अस्तु, अब हम बंगला-साहित्य के अन्य साहित्यकारों के माध्यम से 'राजस्थान' को देखने का प्रयास करेंगे। किन्तु इसके पूर्व बंकिम की कृति 'दुर्गेश-नन्दिनी' उपन्यास पर थोड़ी चर्चा कर लेना जरूरी होगा। क्योंकि जैसे स्वयं बंकिम भूदेव आदि उपन्यासकारों से प्रभावित हुए, उसी प्रकार अन्य उपन्यासकार बंकिम से

प्रवाहित हुए। इसे हृदयंगम करने हेतु आवश्यक है कि यहाँ 'दुर्गेशनन्दिनी' पर थोड़ा विचार किया जाय।

बंकिम का 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास

अंग्रेजी साहित्य में वाल्टर स्कॉट ऐतिहासिक उपन्यासकार माने जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि यूरोपीय साहित्य में स्कॉट के पूर्व ऐसी रचनाएँ नहीं थीं। यह कथन बंकिम के सन्दर्भ में भी प्रयोज्य है। उनके पूर्व भूदेव मुखोपाध्याय ने १८५७ ई० में 'ऐतिहासिक उपन्यास' का प्रकाशन किया। इसके कोई आठ वर्ष बाद अर्थात् १८६५ ई० में बंकिम का प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' प्रकाश में आया। भूदेव औपन्यासिक के रूप में प्रथम कृतिकार होने के बावजूद सही अर्थों में बंकिम ही बगला-साहित्य के उपन्यास स्रष्टा माने जाते हैं। भले ही उन्होंने इस बात से इन्कार किया है कि वे स्कॉट के 'आइवानहो' उपन्यास से प्रभावित नहीं हैं, पर वे स्कॉट से प्रभावित थे, इसे नकारा नहीं जा सकता है।

'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रथम संस्करण में बंकिम ने इसे इतिवृत्तमूलक उपन्यास या ऐतिहासिक उपन्यास की आख्या दी है। आचार्य यदुनाथ सरकार ने भी बंगीय साहित्य परिषद द्वारा 'बंकिम शताब्दी समारोह' पर प्रकाशित ग्रन्थ में इसे ऐतिहासिक उपन्यास की मान्यता प्रदान की है।

कथानक

'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास की कहानी मुगल सम्राट अकबर द्वारा बंग-विजय से सम्बन्धित घटना से है। अकबर ने पठानों को पराजित करने के लिए बंगाल में राजा मानसिंह को भेजा था। दाऊद खाँ की मृत्यु के बाद कतलू खाँ लोहानी उस समय स्वाधीन रूप से उड़ीसा में शासन करता था। मुगल सेना के प्रतिनिधि के रूप में राजा मानसिंह ने आकर पठानों से उड़ीसा को मुक्त कराने की योजना बनाई। उसे खबर मिली कि पठान सेना उसके शिविर के पास आ गई है। अतः उसने अपने पुत्र जगत सिंह को, जो एक हजारी मनसबदार था, मुकाबले के लिए भेजा। पठान सेना के नजदीक होने पर भी वह सतर्क नहीं हुआ। फलतः उसे परास्त होकर घायल अवस्था में पलायन करना पड़ा। बिष्टुपुर के जमीन्दार वीर हम्मीर ने उसे अपने दुर्ग में आश्रय दिया। इसी समय कतलू खाँ की मृत्यु हुई और दोनों पक्षों में सन्धि स्थापित हुई। कुछ दिनों बाद पुनः युद्ध आरम्भ हुआ और मुगलों की सहायता करने के अपराध में बिष्टुपुर के जमीन्दार पर पठानों का आक्रमण हुआ। इस युद्ध में जगत सिंह और उसके भाई दुर्जन सिंह ने बड़ी बहादुरी दिखाई।

जगत सिंह के वीर चरित्र से बंगला भाषा के परवर्ती उपन्यासकार प्रभावित हुए

और उन्होंने इस चरित्र को बड़ा सम्मान दिया। बंकिम ने भी 'दुर्गेशनन्दिनी' में जगत सिंह के वीरोचित गुणों का बखान किया है और उसे सेनापति के रूप में शैलेश्वर के मन्दिर में उपस्थित किया है। उपन्यास के द्वितीय परिच्छेद में रोमांटिक घटना घटती है और तिलोत्तमा तथा जगत सिंह एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं। जगत सिंह की वीरता और साहस को देखकर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जा सकता। इसी कारण डा० विजित कुमार दत्त ने 'बांग्ला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास' पुस्तक के पृष्ठ ७४ पर लिखा है—'ऐसा लगता है कि राजपूत वीर की इस गौरवपूर्ण वीरता का प्रसंग बंकिम ने टॉड के 'राजस्थान' से लिया है। टॉड ने अपने ग्रन्थ में अनेक राजपूत वीरों का वर्णन किया है। बंकिम ने इस कथा को वीर प्रसविनी राजस्थान की धरती से लिया है।' इस तरह बंकिम का प्रथम उपन्यास और अन्तिम उपन्यास राजस्थान की माटी से जुड़ा है।

मुगल-पठान सन्धि

जगत सिंह ने पठानों को परास्त करने में वीरता का परिचय दिया, किन्तु तिलोत्तमा की माँ (विमला) के कारण उसे गढ़-मन्दारण में पठान सेनापति उस्मान के हाथों बन्दी होना पड़ा। जगत सिंह ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। वह पठान सेना से अकेला लड़ता रहा। अन्त में घायल होकर बेहोश हो गया और उसे पठान अपने गढ़ में ले गए। तिलोत्तमा और विमला भी बन्दी हुईं। तिलोत्तमा के पिता वीरेन्द्र सिंह भी बन्दी हुए। पठान कतलू खाँ ने उन्हें प्राण दण्ड दिया। कतलू खाँ की पुत्री आयशा ने घायल जगत सिंह की बड़ी तन्मयता से सेवा की। पठान सेनापति जगत सिंह को स्वस्थ कर मुगलों से सन्धि करना चाहता था। वह इसीलिए जगत सिंह के स्वस्थ होने की प्रतीक्षा करता रहा। जगत सिंह के प्रति आयशा सेवा-कार्य करते-करते अनुरक्त हो गई। उस्मान पठान कतलू खाँ का भतीजा था और वह स्वयं आयशा से विवाह करना चाहता था। इसी बीच विमला ने नर्तकी का वेष बना कर कतलू खाँ को शराब के नशे में धुत्त कर दिया और उसे छुरी से मार दिया। मुगलों और पठानों में कतलू खाँ के मरने के बाद सन्धि हो गई।

आलोचना

चौबीस वर्ष की आयु में लिखा गया 'दुर्गेशनन्दिनी' बंकिम का युगान्तकारी उपन्यास है। यद्यपि इसमें उनकी भाषा मजी हुई नहीं है। उस समय वे विद्यासागर द्वारा प्रवर्तित गद्य का अनुसरण कर रहे थे, किन्तु बाद में उन्होंने बंगला भाषा को गद्य को जो आकार आकृति दी, वह आज अपने चरम विकास पर है। बंकिम इस क्षेत्र के

अप्रतिम अधिकारी हैं। यद्यपि बंकिम ने ऐतिहासिक तथ्यों को 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास में यथोचित स्थान दिया है। किन्तु उन्होंने राजा मानसिंह को अकबर के पुत्र सलीम का साला बताया है। यह बात इतिहास से मेल नहीं खाती। कुछ इतिहासकारों और लेखकों ने अकबर को मानसिंह का बहनोई और कुछेक ने फूफा बताया है। 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास के तृतीय परिच्छेद में पृष्ठ ९ पर लिखा है कि अकबर अपने पूर्ववर्ती सम्राटों से सर्वापेक्षा भिन्न प्रकृति का था। वह यह महसूस करता था कि इस देश के राजकार्यों के लिए इस देश के लोग ही अधिक पटु हैं। युद्ध में तथा राज्य-शासन में राजपूत विदेशियों की अपेक्षा अधिक दक्ष हैं। कहानी के वर्णित काल में जितने भी राजपूत उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे उनमें राजा मानसिंह प्रधान थे। वे अकबर के पुत्र सलीम के साले थे। जब आजिम खाँ और शाहबाज खाँ उड़ीसा जीतने में असफल रहे तो अकबर ने मानसिंह को बंगाल और बिहार का शासनकर्त्ता बना कर भेजा। ('दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास, पृ० ८-९)।

खुलना में सरकारी पद पर जब बंकिम कार्यरत थे तभी उन्होंने 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास की रचना की। डॉ० सुकुमार सेन ने 'बाग्ला साहित्येर इतिहास' के द्वितीय खण्ड के दशम् परिच्छेद के पृष्ठ २२६ पर लिखा है—'बंकिम के प्रथम उपन्यास अंग्रेजी रोमांस के ढांचे पर लिखे गए लेकिन उन पर इनका प्रभाव नहीं है। वे स्वदेशी रंग में पुष्ट हैं। 'दुर्गेशनन्दिनी' पर स्कॉट के 'आइवानहो' (Ivanho of Scott) की छाप हो या न हो, पर भूदेव मुखोपाध्याय के 'अंगूरीय विनिमये' का प्रत्यक्ष प्रभाव है। 'अंगूरीय विनिमये' की शहजादी रोशनआरा नवाबजादी आयशा है, जगत सिंह शिवाजी के रूप में हैं और रामदास स्वामी ही अभिराम स्वामी हैं। तिलोत्तमा के अपरूप से उपन्यास रोमांस की अपूर्व कथा बन गया है।'

बंकिम के आलोच्य उपन्यास में पठान-राजपूत और बंगाली वीरों की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। राजपूत वीर जगत सिंह, पठान वीर उस्मान और बंग-वीर बीरेन्द्र सिंह को उपन्यास में मनोयोग से चित्रित किया गया है। स्त्री-पात्रों में विमला, तिलोत्तमा, आयशा का सुन्दर चित्रांकन हुआ है। अभिराम स्वामी जब बीरेन्द्र को मुगलों के पक्ष में होने के लिए सुझाव देता है तो बंगवीर बीरेन्द्र सिंह उस प्रस्ताव को ठुकरा देता है और कहता है—'मानसिंह अकबर का दास है। फलतः जो राजपूत अपनी स्वतंत्रता को बेचकर दासत्व ग्रहण करता है, बीरेन्द्र सिंह उसका समर्थन नहीं

कर सकता है।' उल्लेखनीय है कि बंगला के कई उपन्यासकारों ने मानसिंह के चरित्र को आदर की दृष्टि से नहीं देखा है। हाँ, हरिमोहन मुखोपाध्याय ने 'कमला देवी' उपन्यास में राजा मानसिंह की भूयसी प्रशंसा की है।

'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास में आयशा का चरित्र सबसे अधिक आकर्षक है। वह निश्चल भाव से जगत सिंह के प्रति समर्पित है। उसकी सेवा परायणता को देखकर लगता है जैसे लेखक ने उसे मानवीय नहीं, देवी के रूप में चित्रित किया है। वह जगत सिंह और तिलोत्तमा के विवाह के अवसर पर उपहार लेकर जाती है और अपने प्रिय के जीवन के सुख-मंगल की कामना करती है। यह है आयशा के त्याग और सच्चे प्रेम की कहानी।

जगत सिंह की ऐतिहासिकता

'अकबरनामा' के तीसरे खण्ड, पृ० ५८० पर तथा रेभरिज कृत 'अकबर-नामा' के अंग्रेजी अनुवाद के पृ० ८८६ पर लिखा गया है—

राजा मानसिंह ने बिहार प्रदेश के विद्रोहियों का पिछले वर्ष ही दमन कर दिया था। इसके बाद वे ९९८ हिजरी सन (९९७ बंगाब्द) में झारखण्ड के रास्ते से उड़ीसा जय करने के लिए रवाना हुए। भागलपुर तथा वर्द्धमान होते हुए उन्होंने जहाँनाबाद पहुँच कर अपना शिविर स्थापित किया। उन्होंने जहाँनाबाद में इसलिए शिविर बनाया था कि वर्षाकाल के पश्चात् बंगाल के जमीन्दारगण अपनी सेना लेकर उनका साथ देंगे। युद्ध की कामना लेकर कुतलू उड़ीसा से धरपुर आया। यह स्थान राजा मानसिंह के शिविर से कोई २५ कोस पर था। वहां से कुतलू ने अपने सेनापति कूभ को बड़ी सेना लेकर रायपुर भेजा। राजा मानसिंह ने अपने कुमार जगत सिंह को एक सैन्य दल देकर भेजा। कुतलू के सेनापति ने एक दुर्ग में छिप कर कुमार जगत सिंह को चक्कर में डाला। इस दुष्टतापूर्ण कार्यवाही से उसने जगत सिंह को धोखे में डाल दिया तथा कुतलू से और सेना मंगाई। २१ मई १५९० ई० को जब जगत सिंह शराब के नशे में बेसुध सोया था तभी कुतलू की सेना ने आक्रमण कर जगत सिंह को परास्त कर दिया। जमीन्दार हमीर ने राजकुमार को सतर्क रहने का परामर्श दिया था और कुतलू की पठान सेना का कूटनीति से सामना करने का सुझाव दिया था। कुमार ने हमीर की बात पर ध्यान नहीं दिया तथा और भी निश्फिक्र हो कर रहने लगा।'

कुतलू खाँ की मृत्यु

"दैवयोग से मुगल बादशाह के लिए एक शुभ घटना घट गई। दस दिन के बाद कुतलू पठान की मृत्यु हो गई। वह बीमार हुआ और मर गया। ख्वाजा ईसा (कुतलू

का दीवान और उस्मान का पिता) ने राजा मानसिंह से सन्धि का प्रस्ताव किया। मुगल सेना अतिवृष्टि के कारण तथा मौसम की गड़बड़ी से परेशान थी। फलतः राजा मानसिंह ने सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पठानों ने मुगल बादशाह को अपना सम्राट स्वीकार कर लिया। उन्होंने अकबर बादशाह के नाम खुतबा पढ़ना स्वीकार कर लिया तथा अकबर के चित्र से अंकित मुद्रा प्रचलन पर राजी हो गए। पठानों ने पुरी के जगन्नाथ मन्दिर और उसके आसपास की जमीन मुगल बादशाह को देनी स्वीकार कर ली। १५ अगस्त को ख्वाजा ईसा कुतलू के पुत्र (ज्येष्ठ पुत्र नसीर) को राजा मान के सामने उपस्थित किया। कुतलू के पुत्र ने १५० हाथी तथा अन्य उपहार राजा मान को भेंट स्वरूप दिये। इस सफलता के पश्चात राजा मानसिंह पुनः बिहार लौट गए।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अत्यधिक मद्यपान करने के कारण जगत सिंह की ६ अक्टूबर १५९९ ई० को आगरा के पास अकाल मृत्यु हो गई। मानसिंह के अन्य दो पुत्रों यथा हिम्मत सिंह एवं दुर्जन सिंह ने बंग-विजय के लिए अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। दुर्जन सिंह की कामायू के साथ हुए युद्ध में मृत्यु हो गई।"

बंकिम ने 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास में बिमला के द्वारा कुतलू खाँ की मृत्यु कटार भोंक कर कराई है। इससे उपन्यास रोचक हो गया है। जगत सिंह शराब का इतना शौकीन था इसका उपन्यास में जिक्र नहीं है।

बंकिमचन्द्र के जीवनकाल में 'दुर्गेशनन्दिनी' के तेरह संस्करण प्रकाशित हुए १८९३ ई० में 'दुर्गेशनन्दिनी' का तेरहवां संस्करण प्रकाशित हुआ। उसी को आधार मान कर 'बंगीय साहित्य परिषद्', कलकत्ता की ओर से श्री ब्रजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय एवं श्री सजनीकान्त दास के सम्पादन में १३४५ बंगाब्द में 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास प्रकाशित हुआ। २० दिसम्बर, १८७३ ई० को 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का नाट्य रूप बंगाल थियेटर में मंचित हुआ। साथ ही रोमन अक्षरों में 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास को जे० एफ० ब्राउन एवं श्री हरप्रसाद शास्त्री ने कलकत्ता की थेकर स्पिंक एण्ड कम्पनी से १८८१ ई० में प्रकाशित किया। ऐसा सौभाग्य बंकिम के अतिरिक्त उस युग में किसी को प्राप्त नहीं हुआ। अपनी न्यूनाधिक खामियों के बावजूद इस उपन्यास ने बंगला रोमांटिक उपन्यासों के लिए द्वार उद्घाटित कर दिया। इसी का अनुसरण परवर्ती काल में सर्वाधिक हुआ।

१८६३-६४ ई० में बंकिमचन्द्र ने 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास की रचना की एवं १८८३ ई० में 'राजसिंह' उपन्यास का परिवर्द्धित रूप समाप्त कर १८८४ ई० में उनका स्वर्गवास हो गया। बंकिम की साहित्य साधना के ये ३०-३१ वर्ष बंगभारती की कण्ठमाला के शतदल हैं, जिससे बंगला-साहित्य महिमान्वित है। उनके तिरोभाव पर कहा गया है—'बंकिम ने भगीरथ की तरह अपनी साधना-शक्ति से टेम्स का

टूबूडेर नहीं साक्षात् मंदाकिनी गंगा को ही उतार दिया है, जिसमें अवगाहन कर केवल बंगाल का समाज ही नहीं अपितु भारत का जनमानस अपने को धन्य मानता है। उन्होंने पश्चिम की नकल करने का परामर्श न देकर 'घर को लौट चलो अब भैया' की बात कही थी। इस बात को कौन अस्वीकार करेगा कि जब उपन्यास नाम की कोई विधा नहीं थी, उस समय उन्होंने रेगिस्तान में पुष्पवाटिका खिलाने का साहस जुटाया था।

'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से बाबू गदाधर सिंह कृत 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का प्रकाशन दो खण्डों में १८८२ ई० में हुआ।

'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर १९५६ ई० में श्रीमती प्रकाश अग्रवाल ने किया, जिसका प्रकाशन सुरेन्द्र एण्ड कं० इलाहाबाद से हुआ। अनुवाद सुन्दर है।

बंकिम के 'दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद कई लेखकों ने किया है, किन्तु सबसे सुन्दर अनुवाद डॉ० रमानाथ त्रिपाठी का है। यह हिन्दी अनुवाद इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली से १९७५ ई० में प्रकाशित हुआ है। अनुवाद की भाषा सुन्दर है। कुछ ऐतिहासिक अशुद्धियाँ देखने को मिलती है, जैसे—९९६ सन् में मानसिंह ने पटना नगर पहुँच कर पहले अन्य उपद्रवियों का दमन किया।' ('दुर्गेशनन्दिनी' उपन्यास, तृतीय परिच्छेद, पृ० १८) असल में यह ९९६ सन् नहीं हिजरी सन होना चाहिए।

बंकिम के सभी उपन्यासों का नाट्य रूपान्तर हुआ और 'राजसिंह' आदि नाटक कलकत्ता के 'कोरंथियन' और 'अल्फ्रेड' थियेटरों में खेले गए। बंकिम के उपन्यासों पर फिल्में बनी हैं।

बंकिम का प्रभाव

बंकिम के समसामयिक लेखकों पर उनकी रचनाशैली का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। कुछ ऐसे उपन्यासकार भी थे, जिन्होंने स्वतन्त्र रूप से अपनी लेखनी चलाई। इनमें प्रतापचन्द्र घोष का नाम उल्लेखनीय है। इनके 'बंगाधिप विजय' उपन्यास (प्रथम खण्ड १८६९ एवं द्वितीय खण्ड १८८४ ई०) का बड़ा महत्व है। 'बंगाधिप विजय' उपन्यास में प्रतापादित्य की कहानी है। यह कहानी उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रचलित और चर्चित थी। १८०१ ई० में रामराम बसु ने 'राजा प्रतापादित्य चरित' का प्रकाशन किया। इसके पूर्व भारतचन्द्र ने प्रतापादित्य की

कहानी के आधार पर 'मानसिंह उपाख्यान' का प्रणयन किया था। 'बंगाधिप विजय' उपन्यास का प्रभाव हमें रवीन्द्रनाथ के 'बहु ठाकुरानीर हाट' उपन्यास में भी देखने को मिलता है। बंकिम काल में कालीकृष्ण लाहिड़ी ने १८६६ ई० में भूदेव के 'अंगूरीय बिनिमये' के अनुकरण पर 'रोशनारा' उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में ऐतिहासिक वृत्तान्त अपेक्षाकृत सुन्दर बन पड़ा है।

प्रतापचन्द्र घोष का 'बंगाधिप विजय' उपन्यास

प्रतापचन्द्र घोष एशियाटिक सोसाइटी के सहायक सचिव और पुस्तकाध्यक्ष थे। इस कारण ऐतिहासिक तथ्य संकलन की उन्हें यथेष्ट सुविधा थी। इसी वजह से उन्होंने अपना वृहद उपन्यास 'बंगाधिप विजय' लिखा और अपने समय में वह काफी चर्चा का विषय रहा। इस उपन्यास पर स्कॉट के 'आइवनहो' का प्रभाव स्पष्ट है।

कहा जाता है कि अकबर बादशाह के राजत्वकाल के शेष भाग में प्रतापादित्य ने यशोहर में अपने पिता की जमीन्दारी प्राप्त करने के बाद एक बड़े राज्य की स्थापना की। कहा यहाँ तक जाता है कि उसका प्रभाव बंगाल, बिहार, उड़ीसा के अतिरिक्त असम में भी था। अपनी इस बड़ी क्षमता के कारण उसने मुगल सम्राट अकबर को कर देना बन्द कर दिया और अपने को स्वतन्त्र घोषित कर लिया। कई बार अकबर ने उसे परास्त करने के लिए सेना भेजी। इब्राहिम खाँ के सेनापतित्व में मुगल सेना को मात्तला दुर्ग के पास पराजय का मुख देखना पड़ा। कई बार मुगल सेना के परास्त होने के बाद राजा मानसिंह को अकबर ने भेजा और मानसिंह से पराजित होकर प्रतापादित्य को बन्दी होना पड़ा। उसे एक लौह-पिंजर में बन्दी बनाकर दिल्ली भेजा गया, किन्तु रास्ते में वाराणसी में उसकी मृत्यु हो गई।

प्रतापादित्य के बारे मे लोकापवाद है कि वह क्रूर, अत्याचारी और चरित्र भ्रष्ट था। उसने अपने चचेरे भाई बसंत राय को मारकर रायगढ़ के दुर्ग को प्राप्त किया था। बसंत राय के पुत्र भी उसके हाथों मारे गए थे, पर उसका छोटा पुत्र एक परिचारिका के कारण जीवन रक्षा पा सका था। इसका नाम था कोचू राय।

'बंगाधिप विजय' उपन्यास की रचना इसी आधार पर हुई है। प्रतापादित्य ने उड़ीसा जाने के मार्ग में रायगढ़ के पास यमुना पार कर अपनी सेना की छावनी बनाई। यहाँ उसके योद्धाओं में मल्लयुद्ध का आयोजन हुआ, जिसमें सूर्यकुमार विजयी घोषित हुआ। सूर्यकुमार असम के जयन्ती राज्य का राजकुमार था, जिसका पालन-पोषण प्रतापादित्य ने किया था। रायगढ़ दुर्ग बसन्त राय का था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र कोचू राय लापता था। दुर्ग में बसन्त राय की दो विधवा पत्नी कमला और विमला थीं। विमला के पास इन्दुमती नाम की एक परम सुन्दरी पालिता कन्या थी।

प्रतापादित्य ने इन्दुमती को प्राप्त करने के लिए दुर्ग पर डाकुओं के द्वारा आक्रमण कराया। उसके पठान सेनापति हुजूरमल्ल एवं एक पुर्तगाली दुर्धर्ष डाकू गजालिस ने रात के अंधेरे में दुर्ग पर आक्रमण किया। सूर्यकुमार और उसके साथी मालिकराज को इस बात का पता लग गया। फलतः इन दोनों वीरा ने छद्मवेषी कोचू राय के साथ मिल कर इन्दुमती को बचाने की चेष्टा की, लेकिन डाकू इन्दुमती और उसके साथ कुछ अन्य परिवार के लोगों को लेकर चम्पत हो गए।

कोचू राय ने मुगल सेनापति राजा मानसिंह के साथ मिलकर रायगढ़ दुर्ग पर पुनः अधिकार करने के लिए बजबज में सेना इकट्ठी की। कोचू राय, सूर्यकुमार एवं मालिकराज ने मानसिंह की सेना को लेकर गजालिस के दुर्ग गेमिज पर आक्रमण किया और इन्दुमती तथा अन्य बन्दियों को मुक्त किया। इसी बीच जब प्रतापादित्य को पता चला कि इन्दुमती का उद्धार हो गया है तो उसने रायगढ़ दुर्ग पर पुनः आक्रमण किया। रायगढ़ दुर्ग मे मानसिंह की सेना के साथ युद्ध हुआ और प्रतापादित्य पराजित होकर बन्दी हुआ। उपन्यास के प्रथम खण्ड की कहानी यहीं समाप्त होती है।

द्वितीय खण्ड में जयन्ती राज्य की कलह-कहानी, अराकान राज्य की कहानी एवं रायगढ दुर्ग मे परिवार की कहानी है। अन्त मे राजा मानसिंह द्वारा प्रतापादित्य को बन्दी बनाकर दिल्ली भेजने और वाराणसी में उसकी मृत्यु की बात का उल्लेख है।

भूदेव मुखोपाध्याय, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं रमेशचन्द्र दत्त बंगला-साहित्य के समसामयिक उपन्यास लेखक थे। रमेशचन्द्र भी आरम्भ में अंग्रेजी मे ही लिखा करते थे पर बंकिम के अनुरोध से उन्होंने बगला में लिखना आरम्भ किया।

रमेशचन्द्र दत्त

रमेशचन्द्र दत्त (१८४८-१९०९ ई०) का जन्म कलकत्ता के विख्यात राम-बगान के दत्त परिवार मे १३ अगस्त १८४८ ई० को हुआ था। इस परिवार में अंग्रेजी भाषा के कई ख्यातनामा कवि और लेखक पैदा हुए, जिनमें रमेशचन्द्र के चाचा शशिचन्द्र के बारे में हमने पहले ही उल्लेख किया है। शशिचन्द्र ने टॉड के 'राज-स्थान' को आधार मानकर The Times of Yors या Tales of Indian History नामक पुस्तक में २४ कहानियाँ लिखी थीं। शशिचन्द्र का रमेशचन्द्र दत्त पर काफी प्रभाव था।

१९वीं शताब्दी के श्रेष्ठ रचनाकारों में रमेशचन्द्र दत्त का नाम बड़े आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। वे प्रथम बंगभूमि पुत्र थे जिन्होंने विलायत में जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। असिस्टेन्ट मजिस्ट्रेट और कलेक्टर होने के साथ ही वे प्रथम भारतीय के रूप विभागीय कमिश्नर बने। सरकारी नौकरी से अवकाश ग्रहण

कर उन्होंने कुछ दिन लन्दन विश्वविद्यालय में इतिहास अध्यापक के रूप में कार्य किया था। बाद में बड़ौदा राज्य के राज्य-सचिव बने और प्रधान मंत्री भी बने। राजनीति में भी उनका प्रवेश था। १८९९ ई० में अनुष्ठित राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में रमेशचन्द्र सभापति चुने गए। बड़ौदा के प्रधानमंत्री के पद पर कार्य करते हुए ३० नवम्बर १९०९ ई० को इनकी मृत्यु हो गई।

इतिहास, पुराण एवं धर्मशास्त्रों में रमेशचन्द्र का अत्यधिक अनुराग था। उन्होंने इन्हीं विषयों पर अंग्रेजी में कई पुस्तकें लिखीं। उस समय औपन्यासिक बंकिम साहित्य में चर्चित थे। रमेशचन्द्र पर सर वाल्टर स्कॉट एवं बायरन का बड़ा प्रभाव था। स्कॉट से प्रभावित होकर उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास लिखे तथा बायरन से प्रेरित होकर देशभक्ति के गीत गाए और देश के अतीत इतिहास की गौरवगाथा को लिपिबद्ध किया।

रमेशचन्द्र दत्त की साहित्य प्रेरणा में बंकिम और उनके 'बंग-दर्शन' पत्र की बड़ी भूमिका है। डॉ० सुकुमार सेन ने अपने 'बांग्ला साहित्येर इतिहास' ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ २२० पर लिखा है—

'कर्म, ज्ञान और चिन्तन को जगाने के लिए बंकिमचन्द्र ने १२७९ बंगाब्द में 'बंगदर्शन' पत्रिका का प्रकाशन किया। देश के अतीत गौरव और प्राचीन साहित्य को शिक्षित समाज के समक्ष उपस्थित करने में इस पत्र ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई। देश की अखण्डता और एकता के बंकिम पक्षपाती थे। उन्हें पराधीनता की पीड़ा सताया करती थी।'

रमेशचन्द्र बंकिम बाबू से उस छापेखाने में अक्सर भेंट करते जिसमें 'बंगदर्शन छपता था। रमेशचन्द्र ने अबतक बंगला भाषा में कुछ नहीं लिखा था, इसका उन्हें बेहद मलाल था, पर बंकिम के उत्साहवर्द्धन से वे इस ओर प्रवृत्त हुए और बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में गिने जाने लगे। आश्चर्य है उनकी भाषा बंकिम की भाषा से भी अधिक प्रांजल और मधुर बन गई। रमेशचन्द्र की भाषा में बंगला का जो शब्द-भण्डार मिलता है, वह शायद ही किसी लेखक की भाषा में मिले।

रमेशचन्द्र ने कुल ६ उपन्यास लिखे, जिनमें 'बंग-विजेता', 'माधवी कंकण', 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' और 'राजपूत जीवन-संध्या' ऐतिहासिक उपन्यास हैं तथा संसार' और 'समाज' सामाजिक उपन्यास हैं। 'रमेश रचनावली' में उपन्यासकार रमेशचन्द्र दत्त के इन सभी उपन्यासों का संकलन है। 'रमेश रचनावली' का सम्पादन श्री योगेशचन्द्र बागल ने किया है तथा साहित्य संसद, कलकत्ता से १९६० ई० में इसका

प्रकाशन हुआ है। बंकिम की अपेक्षा रमेशचन्द्र के उपन्यासों में इतिहास अधिक सच्चाई के साथ उभरा है और कई नई सूचनाएँ हमें मिलती हैं। वे भी बंकिम की भांति इतिहास के रोमांस को लेकर आगे बढ़े, पर उनकी रचनाओं में इतिहास अधिक उभर कर आया। इसका कारण था कि एक तो वे स्वयं इतिहास के अच्छे ज्ञाता थे। साथ ही टॉड के 'राजस्थान' तथा मेजर स्टुअर्ड के 'हिस्ट्री ऑफ बेंगाल' को उन्होंने मनो-योग से पढ़ा था। इन इतिहासकारों का प्रभाव उनकी रचनाओं में हमें मिलता है। जहाँ उन्होंने बंगाल के इतिहास का वर्णन किया है वहाँ स्टुअर्ड के इतिहास का सहारा लिया है, किन्तु शिवाजी और राणा प्रताप के वर्णन में तथा राजपूत इतिहास को प्रस्तुत करने में उन्होंने टॉड को ही अपना आधार बनाया है।

रमेशचन्द्र का 'बंग-विजेता' उपन्यास

रमेशचन्द्र का प्रथम उपन्यास 'बंग-विजेता' १८७४ ई० में 'बंग-दर्शन' में प्रकाशित हुआ। 'बंग-विजेता' उपन्यास की कहानी का घटनास्थल बंग-देश है। यह कहानी १५८० ई० की ऐतिहासिक घटना है, जिसमें दिखाया गया है बंगाल में किस प्रकार पठानों के स्थान पर मुगलों का शासन आरम्भ हुआ। अकबर बादशाह की ओर से तीन बार राजा टोडरमल ने बंगाल पर आक्रमण किया और तीसरी बार पूरी तरह पठानों को पराभूत किया। तीसरी बार जब राजा टोडरमल ने बंगाल विजय के लिए मुंगेर में सेना की छावनी बनाई थी तब मुगल सेना में ही विद्रोह दीख पड़ा था। पराक्रमी और रणकुशल राजा टोडरमल ने किस प्रकार विद्रोह का दमन किया और बंगाल पर विजय हासिल की। इसी ताने-बाने को लेकर तथा अपनी कल्पना की उड़ान से रमेशचन्द्र दत्त ने 'बंग-विजेता' उपन्यास की रचना की है।

'बंग-विजेता' उपन्यास अपने समय में बहुत चर्चित हुआ। यहाँ तक कि इस उपन्यास का अनुवाद हिन्दी मे भी हुआ। 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (अमिताभ प्रकाशन, कलकत्ता, १९६८) पुस्तक में पृष्ठ २८६ पर डॉ० दयानन्द श्रीवास्तव ने लिखा है—'उपाध्याय पं० बदरी नारायण चौधुरी 'प्रेमधन' (१८५५-१९२२ ई०) ने १८८१ ई० में आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र में वे अपने समय के प्रकाशित विशेष ग्रन्थों पर आलोचनात्मक निबन्ध लिखते थे। इनके द्वारा लिखित आलोचनात्मक निबन्धों में गदाधर सिंह कृत 'बंग-विजेता' के अनुवाद की आलोचना विशेष प्रकार से उल्लेख करने योग्य है।' १९८६ ई० में 'बंग-विजेता' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद शारदा प्रकाशन, दिल्ली से हुआ। इसका हिन्दी अनुवाद डॉ० अमल सरकार ने किया है।

डॉ० अमल सरकार ने 'बंग-विजेता' उपन्यास की भूमिका में पृष्ठ ५ पर लिखा है—

'उन्नीसवीं सदी का काल बंगाल में नवजागरण का था। नवजागरण के इस काल में कलकत्ता के कई संभ्रान्त परिवारों का हाथ रहा है, जिनमें जोड़ासांकू के ठाकुर परिवार एवं रामबगान के दत्त-परिवार की भूमिका मुख्य थी। रामबगान के दत्त-परिवार में १३ अगस्त सन् १८४८ ई० को रमेशचन्द्र का जन्म हुआ। सन् १८६८ ई० में वे आई० सी० एस० की परीक्षा देने के

लिए अपने दो सहपाठी श्री बिहारीलाल गुप्त एवं श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ लंदन रवाना हो गए। उस समय ठाकुर-परिवार के श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर ही एकमात्र भारतीय आई० सी० एस० थे। १८६६ ई० की आई० सी० एस० की परीक्षा में रमेशचन्द्र ने तीसरा स्थान प्राप्त किया।'

'पहले रमेशचन्द्र अंग्रेजी में लिखते थे। कहा जाता है कि एक दिन बंगला-साहित्य पर उनसे बंकिमचन्द्र की बातें चल रही थी। रमेशचन्द्र ने बंकिम के उपन्यासों की तारीफ की। बंकिम ने कहा—'यदि बंगला पुस्तकों से इतना प्रेम है तो खुद ही बंगला में क्यों नहीं लिखते?' बंकिम की इन बातों का रमेशचन्द्र पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने बंगला में लिखना तय किया। 'बंग-विजेता' इसी प्रयास का पहला सार्थक फल है।'

'बंग-जिजेता में १५८० ई० की ऐतिहासिक घटना है। सम्राट अकबर अपना राज्य चारों ओर फैलाना चाहता था। अतः उसने राजा टोडरमल को बंगाल का शासक नियुक्त कर उन्हें बंगाल से पठानों की हुकूमत समाप्त करने के लिए भेजा। 'बंग-विजेता' उपन्यास में काल्पनिक सुरेन्द्रनाथ-सरला की प्रेम कहानी है। सुरेन्द्रनाथ उन्नीसवीं सदी में बंग-विजेता' उपन्यास में देश-प्रेम के आदर्श वीर हैं, जिनकी छाप बंकिम के 'कमलाकान्तेर दफ्तर' में, 'आनन्दमठ' के वन्देमातरम् के गीत में, बूढ़ी बालाम नदी के तीर के बाघा-जतीन में, कलघाट रणक्षेत्र में हमें देखने को मिलती है।'

'बंग-विजेता' में लेखक ने इतिहास की छाया में कल्पना का भरपूर सहारा लिया है। चूँकि यह लेखक का प्रथम मौलिक उपन्यास है। इसलिए इसमें कुछ त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक है। फिर भी उपन्यास में अनैतिहासिक पात्र को नायक बनाकर रमेशचन्द्र ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। ऐसी बात नहीं है कि ऐतिहासिक उपन्यास में अनैतिहासिक पात्र नायक नहीं हो सकता। स्कॉट ने अपने उपन्यासों में ऐसा दिखाया है। 'बंग-विजेता' का नायक सुरेन्द्रनाथ है। सुरेन्द्रनाथ और सरला की प्रेम कहानी पूरे उपन्यास में छाई हुई है। टोडरमल ऐतिहासिक पात्र है, पर उसका वर्णन उपन्यास में दो तीन बार होता है। मुंगेर में जब मुगल सेना का विद्रोह होता है तब हम राजा टोडरमल के ऐतिहासिक चरित्र को देख पाते हैं तथा उपन्यास के अन्त में जब बंग विजय के बाद राजा टोडरमल बंगाल में आते हैं तब उनके न्याय विचार को देखते हैं। उल्लेखनीय है कि 'दुर्गेशनंदिनी' की भाँति 'बंग-विजेता'

उपन्यास में भी बंग विजय की कहानी है। 'दुर्गेशनन्दिनी' के नायक जगत सिंह की छाया स्पष्ट रूप से हम सुरेन्द्रनाथ में देखते हैं, जिसे बंग-भूमि का योद्धा दिखाया गया है। इस उपन्यास में भी प्रेम का त्रिकोण अन्तर्द्वन्द्व है। सुरेन्द्रनाथ सरला के प्रति आकृष्ट है, पर सतीशचन्द्र की कन्या विमला मन ही मन सुरेन्द्र से प्रेम करती है और 'दुर्गेश-नंदिनी' की आयशा की भांति प्रेम-वंचिता होकर अन्त में सन्यासिनी हो जाती है।

बंग-विजेता की कहानी

'बंग-विजेता' उपन्यास की कहानी इस प्रकार है—

जब तीसरी बार राजा टोडरमल १५८० ई० में अकबर बादशाह की ओर से सेनापति होकर बंग विजय के लिए आये उस समय पठानों का शासन तो प्रायः समाप्त हो गया था, पर मुगल सेना और छोटे-छोटे जागीरदारों ने विद्रोह की घोषणा कर दी थी। प्रथम बार जब टोडरमल १५७३ ई० मे तथा दूसरी बार १५७४ ई० में बग विजय के लिए आये तो रुद्रपुर (कुशदह) के हिन्दू जमीन्दार काशीनाथ राय ने बंगाल के पठान शासक दाउद खाँ के विरुद्ध मुगल सेना का साथ दिया था। बहादुरी के कारण बादशाह अकबर की ओर से उन्हें राजा समर सिंह की उपाधि मिली थी। सतीशचन्द्र नामक एक गरीब ब्राह्मण को समर सिंह ने सहायता देकर अपने यहाँ आश्रय दिया था। उसने टोडरमल के दिल्ली लौटने पर दाउद खाँ से गुप्त सन्धि करने का आरोप लगाकर राजा समर सिंह की हत्या करा दी और स्वयं रुद्रपुर का जमीन्दार बन बैठा। समर सिंह की विधवा रानी महाश्वेता अपनी कन्या सरला को लेकर गुप्त रूप से एक गाँव में रहने लगी और पति-हन्ता सतीश को दण्ड देने के लिए शिव की पूजा करने लगी। समर सिंह के मित्र और इच्छापुर के जमीन्दार नगेन्द्रनाथ चौधरी ने महाश्वेता की सहायता करनी चाही, पर स्वाभिमानिनी रानी ने उसे अस्वीकार कर दिया। वह राजा टोडरमल के तीसरी बार बंगाल आने पर अपने पति की हत्या का न्याय-विचार पाने की चेष्टा में थी, जिससे दुष्ट सतीश को उसके पाप का दण्ड मिले। नगेन्द्रनाथ के दो पुत्र थे उपेन्द्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ। उपेन्द्रनाथ कमला से विवाह करके नदी में डूब गया था। असल में वह बच गया था और कमला अपने को विधवा बालिका समझकर चन्द्रशेखर के आश्रम में रहने लगी थी। पिता नगेन्द्रनाथ ने जब अपने दूसरे पुत्र सुरेन्द्रनाथ का विवाह एक जमी-न्दार की कन्या से करना चाहा तो उसने विवाह से इन्कार कर दिया और घर से निकल गया। वह सरला से प्रेम करता था और उसे ही जीवन संगिनी बनाना चाहता था। उसने सरला के पिता समर सिंह की हत्या का न्याय पाने के उद्देश्य से मुंगेर की यात्रा की, जहाँ राजा टोडरमल सेना लेकर उपस्थित थे। टोडरमल से भेंट कर सुरेन्द्रनाथ सैनिक बन गया और अपनी बहादुरी से राजा टोडरमल का प्रिय पात्र बन गया।

सतीशचन्द्र की एक युवती कन्या थी, जिसका नाम विमला था। सतीश राजा समर सिंह की हत्या कराने के अपराध से भयभीत था। उसे इस बात का भय था कि राजा टोडरमल से अगर कोई शिकायत कर देगा तो उसे प्राणदण्ड मिल सकता है। असल में समर सिंह की हत्या के षड़यंत्र में सतीश का अनुचर शकुनी मुख्य था। उसे सतीश ने आश्रय दिया था। शकुनी अपने नाम के अनुकूल शकुनी ही था, जिसने अपने जाल में सतीश को ही नहीं फंसा रखा था बल्कि उसकी कन्या विमला को भी अपनी वासना का लक्ष्य बनाना चाहता था। सतीशचन्द्र ने राजा टोडरमल से मिलकर अपने को निरपराध साबित करने के लिए मुंगेर के लिए प्रस्थान किया। विमला अकेली चतुर्वेष्ठित दुर्ग में रही। शकुनी भी यह कह करके कि वह पीछे से लोगों का मुँह बन्द रखेगा और महाश्वेता तथा उसकी कन्या को बन्दी बनाकर रखेगा, रुद्रपुर में ही रह गया। पीछे से उसने विमला से जबरन विवाह करने की कोशिश की और महाश्वेता तथा सरला को बन्दी बनाने का जाल रचा। महाश्वेता को इसकी सूचना विश्वेश्वरी पगली से मिल गई थी। इसलिए वह सुरेन्द्रनाथ की सहायता से सरला को लेकर चन्द्रशेखर के आश्रम में चली गई थी। चन्द्रशेखर के आश्रम स्थित शिव मंदिर में सुरेन्द्र और विमला की भेंट हुई और दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। जब विमला को पता चला कि वह राजा समर सिंह के हत्यारे को दण्ड दिलाने के लिए मुँगेर जा रहा है तो उसने अपने पिता सतीश की प्राण रक्षा की भीख मांगी।

मुँगेर में जब एक बार सुरेन्द्रनाथ एक विद्रोही से घायल होकर गंगा में फेंक दिया गया तो विमला ने उसकी प्राण-रक्षा की तथा पुनः जब वह बन्दी होकर विद्रोहियों के शिविर में था तब भी विमला ने अपनी चतुराई से उसका उद्धार किया। इसके बाद सुरेन्द्र ने अपने पाँच सौ सैनिकों से विद्रोहियों की दो हजार सेना पर आक्रमण किया और राजा टोडरमल की पूरी तरह विजय हुई।

इसी बीच शकुनी ने अपने गुप्तचरों से पता लगा कर महाश्वेता और सरला को बन्दी बना लिया और सतीश की हत्या करने के लिए एक गुप्तचर को भेजा। गुप्तचर ने मुंगेर में सतीश पर छुरे से वार किया, जो विष बुझा था। फलतः कुछ दिन बाद सतीश की मृत्यु हो गई और उसे अपने कुकर्म का फल मिल गया।

बंग विजय के बाद राजा टोडरमल बंगाल आये और रुद्रपुर भी गए जहाँ उन्होंने समर सिंह की हत्या के षड़यंत्र के अपराध में शकुनी को प्राणदण्ड की आज्ञा दी। शकुनी ने ब्राह्मण होने के नाते अपने को अवध्य बताया, पर पगली विश्वेश्वरी ने सारा राज खोल दिया। शकुनी एक ब्राह्मिन विधवा का पुत्र था। राज खुलने पर शकुनी ने अपनी छुरी से आत्महत्या कर ली।

'रुद्रपुर की जमींदारी पुनः महाश्वेता की पुत्री सरला को मिल गई। सुरेन्द्र

और सरला का विवाह हो गया और प्रकारान्तर से सुरेन्द्रनाथ ही रुद्रपुर का जमींदार हो गया। इच्छापुर के जमींदार नगेन्द्रनाथ को उसके दोनों बिछुड़े बेटे उपेन्द्रनाथ और सुरेन्द्रनाथ मिल गए और उपेन्द्रनाथ की पत्नी कमला और सुरेन्द्रनाथ की पत्नी सरला के रूप में दो पुत्र-वधुएँ मिल गईं। कुछ दिन बाद महाश्वेता का स्वर्गवास हो गया और प्रेम वंचिता विमला सन्यासिनी हो गई।

कथा के बीज

'वंग-विजेता' में रमेशचन्द्र ने उपन्यास के कुछ ऐसे बीज बपन किए हैं, जिनका अंकुरन उनके दूसरे उपन्यास 'माधवी कंकण' में होता है तथा जो हमें उनके परवर्ती उपन्यासों ('महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' और 'राजपूत जीवन-संध्या') में देखने को मिलते हैं। इन ऐतिहासिक बीजों को हम सुरेन्द्रनाथ और राजा टोडरमल के कथोपकथन में पाते हैं।

मुंगेर में टोडरमल की सेना की छावनी थी और भागलपुर में विद्रोहियों ने अपना संगठन बना रखा था। जब विद्रोहियों ने टोडरमल के दुर्ग पर आक्रमण किया तो उस युद्ध में सुरेन्द्रनाथ ने बड़ी बहादुरी का परिचय दिया। सायंकाल युद्ध की समाप्ति के बाद सुरेन्द्रनाथ ने राजा टोडरमल से भेंट की। उस समय वे अकेले थे। सुरेन्द्र को देखते ही उन्होंने उसकी वीरता और युद्ध कौशल पर बधाई दी। बातचीत के सिलसिले में राजा टोडरमल को बारह वर्ष पूर्व अपने एक मित्र की बहादुरी का स्मरण हो आया, जिसने मातृभूमि की रक्षा के लिए लड़ते-लड़ते प्राण दिए थे। सुरेन्द्र को यह जानकर बड़ा कौतूहल हुआ कि वह वीर अकबर के विरुद्ध चित्तौड़ की रक्षा में वीरगति को प्राप्त हुआ था और राजा टोडरमल उसकी प्रशंसा कर रहे थे। वह वीर सूर्यमल दुर्ग का रक्षक तिलक सिंह था।

टोडरमल ने कहा—'दिल्ली के बादशाह अकबर के सेनापति के मुख से शत्रु की प्रशंसा सुनकर शायद् तुम आश्चर्यचकित हो रहे हो, किन्तु कभी तुम दिल्ली जाओ तो स्वयं अकबर के मुंह से उनके परम शत्रु राणा प्रताप की प्रशंसा सुनोगे और आश्चर्य करोगे। ····असल में साहसिकता, देश-प्रेम और वीरत्व को देखकर शत्रु और मित्र सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रताप जिस प्रकार देश की स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं और अरावली की पहाड़ियों में कष्ट का जीवन बिता रहे हैं, उसे देखकर अकबर भी प्रताप की वीरता पर मुग्ध है। आज से चार वर्ष पूर्व राणा ने हल्दीघाटी के युद्ध में बहुत से वीरों को खोया है, उसके दुर्ग और चित्तौड़ पर अकबर का आधिपत्य है, फिर भी

आजादी का दीवाना किस प्रकार दुःख-कष्ट सह कर स्वतंत्रता का शंख फूँक रहा है, उसके असीम मनोबल, कष्ट-सहिष्णुता, साहस और वीरता से देश-प्रेम का पता लगता है। पर्वत-गुहा में परिवार को लेकर वह अकबर की सेना से जूझ रहा है और जीवन पर्यन्त जूझेगा। ऐसे शत्रु की प्रशंसा करने में भी एक आनन्द है, आत्म-तृप्ति है, वीरत्व का अभिनन्दन है। आज सारे भारत में केवल राणा प्रताप हैं, जो देश की स्वतंत्रता की पताका को अरावली शिखर से भी अधिक उन्नत किए हुए हैं।' ('बंग-विजेता' उपन्यास, चतुर्दश परिच्छेद, पृ० ३८)

राणा प्रताप की इस प्रशस्ति के बीज को हम 'माधवी-कंकण' में चारण के गीत में अंकुरित होता हुआ देख सकते हैं और उसको पल्लवित पुष्पित अवस्था में 'राजपूत जीवन-संध्या' में विस्तार से देखा जा सकता है।

वीरता की प्रशंसा

इतना ही नहीं जिस तिलक सिंह के बारे में राजा टोडरमल दुःख प्रकट कर रहे थे, वह उनका बाल-बन्धु था। एक बार उस वीर ने राजा टोडरमल की एक बराह से रक्षा की थी। तब से दोनों में गहरी मित्रता हो गई थी। बड़ा होने पर टोडरमल मुगल सेना में सम्मिलित हो गया और उन्होंने अपने मित्र तिलक सिंह को भी मुगलिया सेना में सम्मिलित होने का आह्वान किया, पर वीर पुँगव ने साफ शब्दों में कहा—'मेरे पिता, पितामह और परपितामह ने राणा की सेवा में, मेवाड़ की सेवा में जीवन दिया है, मैं भी वही करूंगा और मेरी सन्तान भी। दिल्ली का बादशाह मेवाड़ का चिर-शत्रु है—उसके साथ हमारी दोस्ती कभी नहीं हो सकती। वह हमारी स्वतंत्रता का अपहरण करना चाहता है, हम प्राण देकर भी उसकी रक्षा करेंगे। सुना है, अकबर ने चित्तौड़ पर अधिकार करने की योजना बनाई है, अगर मुगल सेना यहां आई तो हम ईंट-से-ईंट बजा कर चित्तौड़ की रक्षा करेंगे।'

'उस वीर ने जो कहा, उसे प्राण देकर दिखाया। उसकी असीम वीरता की खुद अकबर ने प्रशंसा की।' टोडरमल ने अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए कहा—'प्रताप अकबर से अभी युद्ध कर रहा है और सुना है कि तिलक सिंह का पुत्र तेज सिंह प्रताप के साथ अपने पिता की तरह देश की आजादी के लिए

संघर्षरत है। शत्रु में भी अगर गुण हो तो उसकी प्रशंसा का निषेध नहीं है, इसलिए शत्रु-मित्र के लिए आँसू बहाना निषिद्ध नहीं है।', (वही पृ० ३१)

रमेशचन्द्र ने 'बंग-विजेता' उपन्यास की पाद-टीका में वीर तेज सिंह के बारे में लिखा है—'जो पाठक तेज सिंह की वीरता के बारे में जानना चाहते हैं, उन्हें 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास का पाठ करना चाहिए।'

'बंग-विजेता' उपन्यास की छाया हमें रमेशचन्द्र के दूसरे उपन्यास 'माधवी-कंकण' में भी मिलती है। जैसे बंकिम के 'दुर्गेशनंदिनी' उपन्यास की आयशा की छाप हम 'बंग-विजेता' की विमला में देखते हैं, वैसे ही विमला का परिवर्द्धित संस्करण हमें रमेशचन्द्र दत्त के 'माधवी-कंकण' की जुलेखा में देखने को मिलता है। विमला के चरित्र की रचना लेखक ने यूरोपीय आदर्श को दृष्टि में रखकर की है। सुरेन्द्रनाथ पर भी विदेशी उपन्यास के नाइट की छाया देखने को मिलती है। जब वह अपनी मुक्ति के बाद पाँच सौ घुड़सवार सैनिकों को लेकर विद्रोहियों के शिविर पर आक्रमण करता है और बन्दी-गृह से मुक्ति दिलानेवाली विमला को जेल से मुक्त करता है, घोड़े की पीठ पर उसे पीछे बैठा कर भागता है। उसे सुरक्षित स्थान में अर्थात मुँगेर के दुर्ग में पहुँचा कर वह पुनः युद्ध में लिप्त होता है और विजयी होता है।

रमेशचन्द्र ने 'बंग-विजेता' में पाप और पुण्य का विचार कराकर पापी को दण्ड दिलवाया है और न्याय की विजय दिखलाई है। यह लेखक का आदर्शवाद है। सच पूछा जाय तो रमेशचन्द्र ने इतिहास की छाया में उपन्यास लिखा है। उनके दूसरे उपन्यास 'माधवी-कंकण' में भी यद्यपि अनैतिहासिक पात्र नरेन्द्रनाथ ही नायक है, पर उस उपन्यास में इतिहास अधिक मुखरित होकर प्रकट हुआ है।

रमेशचन्द्र का 'माधवी-कंकण' उपन्यास

'बंग-विजेता' के कोई तीन वर्ष बाद अर्थात १८७७ ई० में रमेशचन्द्र दत्त का दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'माधवी-कंकण' प्रकाशित हुआ। इस बीच उनका सामाजिक उपन्यास 'संसार' प्रकाशित हो चुका था, जिसमे उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया है। इस तरह रचना की दृष्टि से 'माधवी-कंकण' उनका तीसरा उपन्यास है।

शाहजहाँ के अन्तिम काल मे उसके पुत्रों का दिल्ली की सल्तनत के लिए युद्ध करना और एक दूसरे के खून के प्यासे होना, इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इस भ्रातृ-युद्ध में किस प्रकार औरंगजेब अपने भाई मुराद, दारा और सूजा को मारकर बादशाहत हासिल करता है, इसका पूरा चित्रण 'माधवी-कंकण' में मिलता है। शाहजहाँ के बेटों के युद्ध में मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह, जयपुर के राजा जयसिंह की भूमिका का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वर्णन किया गया है। ये सारे तथ्य टॉड के 'राजस्थान' से लिए गए हैं। यद्यपि यह उपन्यास शाहजहाँ के काल की घटनाओं से सम्बन्धित है, किन्तु इसका असली आकर्षण हेमलता और नरेन्द्रनाथ की प्रेम-कहानी है। इतिहास के इतने बड़े फलक पर निर्मित इस उपन्यास का नायक नरेन्द्रनाथ है, जो राष्ट्र-विप्लव की घटना में बेसहारा होकर घूमता है। वह इतिहास के प्रबल वेग मे बहता हुआ बंगाल से वाराणसी होते हुए दिल्ली, आगरा, चित्तौड़, उदयपुर, जोधपुर तक की यात्रा करता है और इतिहास की बड़ी घटना का साक्षी बनता है। इस प्रवाह में भी हेमलता और नरेन्द्र की प्रेम-कहानी का क्षीण सूत्र विद्यमान रहता है और बीच में नरेन्द्र की प्रेयसी यवन रमणी जुलेखा की कहानी संयोजित हो जाती है। जुलेखा के सान्निध्य मे नरेन्द्र को मुगल हरम का ऐयाशपूर्ण दृश्य देखने को मिलता है, जहाँ धन-दौलत, शानो-शौकत की बन्या बहती है। दिल्ली में नौरोज के मेले का सजीव दृश्य देखने को मिलता है और औरंगजेब की कूटनीति, पाखण्ड, अत्याचार का पर्दाफाश होता दीख पड़ता है। इतना ही नहीं उपन्यास में राजपूत-वीरता का उज्ज्वल पक्ष भी दिखाया गया है। मेवाड़ और मारवाड़ के वीरो की यशोगाथा का जायजा मिलता है और सर्वोपरि चारण के मुख से राणा प्रताप की स्वतंत्रता के लिए की गई कुर्बानी का यशोगान भी सुनने को मिलता है। यशवन्त सिंह की रानी ने अपने पति को युद्ध से पलायन करने पर जिस प्रकार फटकारा था और दुर्ग के फाटक बन्द करा दिए थे—यह इतिहास की एक अनोखी घटना है। इस घटना का उपन्यास में बड़ा ही सजीव और विस्मयकारी वर्णन किया गया है।

इतिहास और कल्पना

असल में रमेशचन्द्र के चार ऐतिहासिक उपन्यासों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें 'बंग-विजेता' और 'माधवी-कंकण' इतिहास की छाया में लिखे गए विशुद्ध रूप से रोमांटिक उपन्यास हैं तथा 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' और 'राजपूत जीवन-संध्या' पूर्णत: ऐतिहासिक उपन्यास हैं। सच पूछा जाय तो रमेशचन्द्र के उपन्यासों में इतिहास को जिस ईमानदारी से चित्रित किया गया है, वैसा बंकिम के उपन्यासों में भी नहीं मिलता। इतिहास और कल्पना का मणिकांचन योग रमेशचन्द्र के उपन्यासों में देखने को मिलता है। शायद इस दृष्टि से भी कि जो ऐतिहासिक पात्र हैं तथा घटनाएँ हैं, उनसे लोग अच्छी तरह परिचित रहते हैं और उनमें थोड़ा भी परिवर्तन करना खतरे से खाली नहीं, लेकिन काल्पनिक पात्रों के विषय में लेखक को पूरी स्वतंत्रता रहती है। वह अपनी रुचि के अनुसार चरित्रों और घटनाओं का संयोजन करता है। और इसी कारण रमेशचन्द्र ने अपने आरम्भिक उपन्यासों में इतिहास की अपेक्षा कल्पना का ज्यादा सहारा लिया, किन्तु उत्तरोत्तर उनका मानस इतिहास में रमता गया और वे कल्पना का आश्रय छोड़ कर सच्चे इतिहासकार के रूप में सामने आये। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'बंग-विजेता' में जहाँ इतिहास की थोड़ी आड़ी-टेढ़ी रेखाएँ हैं वहीं 'माधवी-कंकण' में पूरा इतिहास उभर कर चित्रित हो गया है। 'माधवी-कंकण' में कल्पनाशील लेखक की रुचि पूरी तरह नहीं बदल पाई है। उसमें अनैतिहासिक पात्र और तत्कालीन समाज जीवन पर राष्ट्र-विप्लव का कितना प्रभाव पड़ा, इसे बड़े कौशल से दिखाया गया है। नरेन्द्रनाथ और उसका सम्पूर्ण जीवन इतिहास की बड़ी घटना के थपेड़ों में डूबता-उतराता है और उसकी अनुपस्थिति में हेमलता उसके जीवन से अनजाने खिसक जाती है, वह श्रीचन्द की पत्नी बन जाती है। परिस्थितिवश वह पत्नी तो बनती है, पर मन नरेन्द्र के लिए, उसे एक बार देखने के लिए छटपटाता रहता है। नरेन्द्र भी जिस हेमलता को पाने के लिए दूर देश की यात्रा करता है, सोते-उठते-जागते उसे भूल नहीं पाता है। जब दोनों का मिलन होता है तो हेमलता का जीवन बदला हुआ है। हेमलता पातिव्रत-धर्म को निबाहने के लिए प्रस्तुत है और नरेन्द्र भी उसे अपने धर्म पालन के लिए कहता है। लेकिन नरेन्द्र सन्यासी हो जाता है। यह असफल प्रेम 'माधवी-कंकण' के नायक की त्रासदी है, चरम ट्रेजेडी है। उल्लेखनीय है कि 'बंग-विजेता' सुखान्त में शेष होता है, विमला को सन्यासिनी बनना पड़ता है, 'माधवी-कंकण' में भी उपन्यास का अन्त तो सुखान्त ही होता है, पर पाठक के मन पर नरेन्द्र की त्रासदी पूरी तरह छाई रहती है।

'माधवी-कंकण' उपन्यास की कहानी

रमेशचन्द्र दत्त की औपन्यासिकता को पूरी तरह समझने के लिए हम 'माधवी-

कंकण' उपन्यास की कहानी यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं—

नरेन्द्रनाथ के पिता वीरेन्द्रनाथ एक धनाढ्य और प्रभावशाली जमींदार थे। उन्होंने अपने ग्राम का नाम 'वीरनगर' रखा और एक प्रकाण्ड अट्टालिका बनाई। वीरेन्द्रनाथ का एक बाल-बन्धु नवकुमार था। वह गरीब था। उसे वीरेन्द्रनाथ ने अपना दीवान बना लिया। जब नरेन्द्र बालक था तभी वीरेन्द्रनाथ की मृत्यु हो गई। उसने मरते समय अपने पुत्र और जमींदारी का भार नवकुमार को सौंप दिया। नवकुमार की एक कन्या थी, जिसका नाम हेमलता था। नरेन्द्र और हेमलता में बचपन से ही प्रेम था। नवकुमार ने सोचा कि कन्या का विवाह नरेन्द्रनाथ के साथ कर देगा और इस तरह जमींदारी उसी के हाथ में रहेगी, पर बाद में उसने सूबेदार से सांठ-गांठ करके जमींदारी को अपने नाम से कर लिया। जमींदार बनने के बाद उसने नरेन्द्र की उपेक्षा करनी शुरू की और कुछ दिन बाद ग्राम के एक गोकुलनाथ की मृत्यु होने से उसके पुत्र श्रीशचन्द्र को अपने घर ले आया। श्रीशचन्द्र की एक विधुवा बहन शैवालिनी थी। वह पाँच वर्ष की अवस्था में विधवा हो गई थी और ससुराल में ही रहती थी पर बीच-बीच में भाई से मिलने नवकुमार के यहाँ आ जाती थी। श्रीशचन्द्र के आ जाने से नरेन्द्र का अपमान होने लगा और एक दिन वीरेन्द्र से झगड़ कर वह घर से निकल गया। उसने बंगाल के सूबेदार और दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के पुत्र सूजा के दरबार में अपनी जमींदारी पाने के लिए अर्जी दी, पर उसे जमींदारी नहीं मिली, लेकिन उसे सूजा की सेना में भर्ती कर लिया गया।

इस घटना के तीन वर्ष बाद अर्थात १६५७ ई० में खबर फैली कि दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ की मृत्यु हो गई है। यद्यपि यह झूठी खबर थी, लेकिन शाहजहाँ के चारों पुत्र दिल्ली की गद्दी पाने के लिए राजधानी में पहुँच गए। दारा शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र था और बादशाह की बीमारी में उसने सत्ता पर अपना पूरा कब्जा जमा लिया था। इससे असंतुष्ट हो कर बादशाह के पुत्रों में राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध शुरू हो गया।

१६५७ ई० के अन्त में शाहजहाँ के पुत्रों में वाराणसी में युद्ध हुआ। इस युद्ध में बंगाल से सूजा अपनी सेना लेकर गया था, जिसमें नरेन्द्र भी गया था। औरंगजेब की सेना से पराजित होकर सूजा को भागना पड़ा। युद्ध में घायल नरेन्द्रनाथ की भेंट मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह के सैनिक गजपति सिंह से हो गई। गजपति उस युद्ध में महाराज जयसिंह की ओर से युद्ध में आया था। फलतः गजपति ने सुश्रुषा के लिए नरेन्द्र को जयसिंह के शिविर में पहुँचा दिया। शाहजहाँ की ज्येष्ठ पुत्री जहाँनारा बेगम की परिचारिका जुलेखा नरेन्द्र के सुपुरुष व्यक्तित्व पर मुग्ध हो गई और उसे वहाँ से हरम में ले गई, मुगल बादशाहों के हरम में पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था। जब जहाँनारा को परिचारिका के प्रेम का पता चला तो वह कुपित हुई और उसने नरेन्द्र को हरम से बाहर

कर दिल्ली भिजवा दिया। दिल्ली में नरेन्द्र की भेंट गजपति से हुई। गजपति उस समय उज्जयनी जा रहा था जहाँ राजा यशवन्त सिंह और औरंगजेब की सेना के बीच युद्ध होने को था। नरेन्द्र भी उज्जयिनी जाने की तैयारी करने लगा। गजपति और नरेन्द्र जब दिल्ली का परिदर्शन कर रहे थे तो ज्योतिषी के पुरुष वेष में जुलेखा को उनसे भेंट हो गई। नरेन्द्र पुरुष वेष में जुलेखा को नहीं पहचान सका और जुलेखा भी दिवाना के रूप में उसके साथ उज्जयिनी चल पड़ी।

उज्जयनी के पास नर्मदा नदी के किनारे राजा यशवन्त सिंह और औरंगजेब की सेना मे १६५८ ई० में घमासान युद्ध हुआ। राजपूतों ने वीरता दिखाई पर औरंगजेब की छल बुद्धि के समक्ष उन्हें पराजित होना पड़ा। तेज सिंह के पुत्र गजपति और नरेन्द्र ने युद्ध में अपनी बहादुरी दिखाई। युद्ध में गजपति वीरगति को प्राप्त हुआ। मरने के पहले गजपति ने अपने गले का वह हार निकाल कर नरेन्द्र को दिया, जो उसे राजा यशवन्त सिंह से उसकी बहादुरी के लिए पुरस्कार स्वरूप मिला था। गजपति ने कहा कि महाराज को यह हार देना और कहना कि वे उसके दो बच्चों की परवरिश करें।

औरंगजेब ने मुराद के साथ मिलकर सूजा और दारा को पराजित किया। दारा बन्दी बनाया गया और उसकी हत्या की गई। सूजा भागकर बंगाल गया और अराकान में उसकी हत्या हुई। मुराद भी बाद मे बन्दी हुआ और मारा गया। इस प्रकार औरंगजेब अपने भाइयों को मारकर दिल्ली का बादशाह बना। उसने अपने पिता शाहजहाँ को बन्दी बना लिया।

राजा यशवन्त सिंह सात हजार राजपूत वीरों को खपा कर केवल पाँच सौ सैनिकों को लेकर मेवाड़ की ओर लौटे। नरेन्द्र सेना में साथ रहा। वह मेवाड़ के ऐतिहासिक स्थानों को देखता हुआ राजा यशवन्त सिंह के साथ मारवाड़ पहुँचा। जोधपुर के निकट यशवन्त सिंह ने अपना शिविर लगाया। वे जब अकेले बैठे थे तो नरेन्द्र ने राजा के समक्ष अपने मित्र गजपति का हार पेश किया और उसके बच्चों की देखभाल का अनुरोध किया। राजा यशवन्त सिंह ने नरेन्द्र से कहा—'अभी हमारे जोधपुर पहुँचने की खबर मेरी रानी को नहीं है। दूत भेजा जायगा, तुम भी उसके साथ जाकर वीर गजसिंह के बच्चों की बात कहना। वे वात्सल्य के साथ उनका लालन-पालन करेंगी।' ('माधवी-कंकण' उपन्यास, पृ० ११८)

नरेन्द्र दूत के साथ जब जोधपुर के गढ़ में महारानी के पास पहुँचा तो यह जान कर कि उनका पति युद्ध से पलायन कर आया है, दुखी हुई। उन्होंने कहा—'मेवाड़ का दामाद बनने वाले राजा यशवन्त सिंह को मेवाड़ के वीरों की वीरता का स्मरण होना चाहिए था। राजपूत या तो युद्ध में विजयी होता है या मर कर

वीर गति पाता है। मैं ऐसे पति का मुख देखना नहीं चाहती।' (वही पृ० ११८)

यशवन्त सिंह की रानी मेवाड़ की कन्या थी। उन्होंने गढ़ के फाटक बन्द करा दिए। बाद में उदयपुर से रानी की माँ ने आकर उन्हें संतोष दिलाया तब राजा यशवन्त सिंह जोधपुर गढ़ में प्रवेश कर सके। उन्होंने पुनः औरंगजेब से युद्ध किया। यशवन्त सिंह और औरंगजेब की सेना का आगरा के पास युद्ध हुआ और फिर दोनों में मित्रता हो गई। युद्ध में नरेन्द्र आगरा लौट आया। वहाँ नौरोज के मेले में उसने हेमलता को देखा। हेमलता तीर्थाटन के लिए मथुरा आई हुई थी। जुलेखा ने पत्र द्वारा नरेन्द्र को अपनी प्रणय कहानी बताई और हेमलता के आगमन की सूचना दी।

मथुरा के गोलकनाथ मंदिर में हेमलता की नरेन्द्र से भेंट हुई। हेमलता ने अब नरेन्द्र का दिया हुआ माधवी-कंकण लौटा दिया। उसने कहा—'अब मैं श्रीशचन्द्र की पत्नी हूँ और इस प्रेम-प्रतीक को नहीं रख सकती।' (वही, पृ० १४६)

नरेन्द्र ने हेमलता को दाम्पत्य-जीवन बिताने का और सुखी रहने का आशीर्वाद दिया। श्रीशचन्द्र ने नरेन्द्र को अपनी जमींदारी देने को कहा, पर वह सन्यासी हो गया। दस वर्ष बाद उसकी पुनः हेमलता से सन्यासी के रूप में भेंट हुई और उसके बाद फिर नरेंद्र का कोई पता नहीं चला। जुलेखा ने आगरा में नरेन्द्र को पत्र देने के बाद ही विफल प्रेम के कारण आत्म-हत्या कर ली।

राजपूत बाला की अनोखी घटना

'माधवी-कंकण' में रमेशचन्द्र ने जहाँ मुगल इतिहास को उरेहा है, वहीं उन्होंने राजपूत जाति के सद्गुणों को भी बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है। मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह की वीरता, स्वदेशानुराग, साहस और युद्ध निपुणता का सुन्दर वर्णन किया गया है। उपन्यास में गजपति सिंह का एक सामान्य चरित्र है, लेकिन वह अपनी वीरता और साहसिकता के लिए पाठकों के मन पर छा जाता है।

इसी तरह यशवन्त सिंह की रानी और मेवाड़ की पुत्री का वीर चरित्र पाठकों के सामने आता है, सच्ची क्षत्राणी के रूप में पाठक उनके प्रति श्रद्धानत हो जाते हैं। जब वे सुनती हैं कि उनका पति युद्ध से पीठ दिखा कर लौटा है तो वे दासियों से चिता बनाने को कहती हैं। वह कहती हैं कि जिसका पति युद्ध विमुख हो जाये उसे मृत समझना चाहिए। वे सती बनने को उद्यत होती हैं। इस वीर रमणी के वाक्यों से जो तेजस्विता की ध्वनि निकलती है, वह सम्पूर्ण राजपूत जाति की यशोगाथा को चरितार्थ करने में समर्थ है। रमेशचन्द्र के चाचा शशिचन्द्र ने यशवन्त सिंह की रानी की इस अनोखी घटना को लेकर एक कविता अंग्रेजी में लिखी थी। सम्भव है उसकी छाया

रमेशचन्द्र के हृदय-पटल पर रही हो और उन्होंने भी उपन्यास में इस घटना को प्रभावोत्पादक बना दिया।

'नरेन्द्र और यशवन्त सिंह के दूत जब जोधपुर दुर्ग में पहुँचे तो उन्होंने देखा यशवन्त सिंह की महारानी सिंहासन पर विराजमान हैं और उनके परिपार्श्व में दासियाँ सेवा में तत्पर हैं। दूत ने अभिवादन कर सारा वृतान्त कह सुनाया। महारानी की आँखें क्रोध से तमतमा आईं। उन्होंने गर्जन किया—'पामरो! उस नर्मदा नदी की धारा में तुम क्या अपना रक्त नहीं बहा सकते थे? मेरी नजरों से दूर होओ और अपने स्वामी से कहना कि उन्होंने युद्ध से पलायन कर अपने को कलंकित किया है। वे अब मेरे पवित्र दुर्ग में प्रवेश नहीं कर सकते।' कहते-कहते क्षत्राणी बेहोश हो गई।

दासियों ने बड़े कष्ट से उन्हे चैतन्य किया। वे पुनः क्रोधानल बरसाने लगीं। उनकी आँखों से प्रलय की लपटें निकल रही थीं। 'क्या कहा? उन्होंने युद्ध में पीठ दिखाई है, पलायन किया है? जिन्होंने पलायन किया है, वे क्षत्री नहीं हैं, मेरे पति नहीं है, ये आँखें अब राजा यशवन्त सिंह को नहीं देख सकती हैं। मैं मेवाड़ के राणा की बेटी हूँ। राणा प्रताप के कुल में जिन्होंने विवाह किया, वे कापुरुष कैसे हो गए? अगर युद्ध में विजयी नहीं हो सके तो क्यों नहीं सम्मुखरण में उन्होंने मृत्यु को वरण किया? दूत! तुम अभी भी यहाँ खड़े हो। मेरे सैनिको! तुम कहाँ हो? इन दूतों को पर्वत की चोटी से नीचे फेंक दो और दुर्ग के फाटक बन्द कर दो।'

महारानी काँप रही थीं। उनके लाल नेत्रों से आग बरस रही थी। तब नरेन्द्र ने आगे बढ़ कर विनीत स्वर में धीरे-धीरे कहा—'महारानी! आपने हमारी मृत्यु का आदेश दिया है। हम मृत्यु से भयभीत नहीं होते, लेकिन दया करके महाराज यशवन्त सिंह को आप कायर न कहें। मैंने अपनी आँखों से उस महाबली को भयंकर युद्ध करते देखा है। जब तक जिऊँगा, उनके पराक्रम को नहीं भूल सकता। मैंने ऐसा अद्वितीय वीर जीवन में नहीं देखा।'

महारानी ने एक क्षण के लिए शान्त भाव से नरेन्द्र को देखा। फिर बोलीं—'क्या सचमुच राजा यशवन्त सिंह ने सम्मुख-युद्ध किया था? तुम दूर देश से आये हो, तुम्हारे प्राणों को कोई भय नहीं, तुम सारी बातें विस्तार से कहो।'

नरेन्द्र ने युद्ध का पूरा विवरण सुनाया। राजपूत सेना ने और राजा यशवन्त सिंह ने जिस वीरत्व का प्रदर्शन किया था, उसे बताया। उसने कहा कि जब मुगल सेना ने चारों ओर से हमारी सेना को घेर लिया और अंधकार तथा धुंआ फैल गया तो इसी समय कायर कायम खान ने गद्दारी की। वह औरंगजेब से मिल गया। तब भी महाराज यशवन्त सिंह जरा भी विचलित नहीं हुए और दूने जोश से युद्ध करते रहे। औरंगजेब और मुराद की बड़ी सेना ने आक्रमण किया तो राजपूत सेना ने महाराज के सेनापतित्व में अपना कमाल दिखाया। युद्ध में दोनों ओर से वीर मरने लगे। खून की नदी बह चली। एक तरफ नर्मदा नदी और दूसरी तरफ खून की नदी, दोनों ने मिल कर लाल नदी का रूप धारण कर लिया। आठ हजार राजपूतों में से आठ सौ भी नहीं बचे। उधर मुगलों की अपार जन-क्षति हुई। महाराज ने युद्ध भूमि नहीं छोड़ी। नर्मदा नदी और विंध्याचल पर्वत इस बात के साक्षी हैं।'

महारानी कुछ शान्त हुईं। उन्होंने पुनः पूछा—'फिर क्या हुआ?'

नरेन्द्र ने कहा— मनुष्य का जो कार्य है, राजपूत का जो कार्य होता है, वही राजा यशवन्त सिंह ने किया। जब केवल पाँच सौ सैनिक बच रहे तब महाराज ने युद्ध स्थल का परित्याग किया।'

महारानी—'पलायन किया? हे भगवान! राणा के जामाता ने पलायन किया?' और रानी ने अपनी छाती में जोर से मुक्का मारा, वे पुनः बेहोश हो गईं।

दासियों ने रानी के मुँह पर पानी के छींटे दिए। वे होश में आईं और करुण स्वर में बोलीं—'दासियो! मेरी चिता बनाओ, मेरे पति युद्ध में मारे गए हैं, वे स्वर्ग में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, मैं भी वहीं जाऊँगी। राजा यशवन्त सिंह के रूप में जो आया है, वह प्रवंचक है। और दूत! तुम अपने साथियों सहित तत्काल मारवाड़ से चले जाओ, नहीं तो तुम लोगों को प्राणदण्ड दिया जायगा।'

नरेन्द्र और दूतगण दुर्ग से बाहर हुए और महारानी की आज्ञा से दुर्ग के द्वार बन्द हो गए। जब दूत बाहर निकले तो जोधपुर के महामंत्री ने उन्हें एक पत्र दिया और कहा—'महाराज यशवन्त सिंह के पास अब तुम लोगों को जाने की जरूरत नहीं है। इस पत्र को लेकर मेवाड़ की राजधानी उदयपुर जाओ। वहाँ राणा

राजसिंह को यह पत्र देना। महारानी की माता वहाँ हैं। पत्र पाते ही वे जोधपुर आयेंगी, उनके बिना इस संकट से परित्राण मुश्किल है।

लेखक ने लिखा है—'इतिहासकारों का कहना है कि जोधपुर की महारानी इसी प्रकार आठ-नौ दिन उन्माद की स्थिति में रहीं और पश्चात उनकी माता उदयपुर से आईं और महारानी को शान्ति मिली। माँ की बातों से आश्वस्त होने पर ही महारानी ने महाराज यशवन्त सिंह से भेंट की और यशवन्त सिंह ने भी शीघ्र ही सेना लेकर औरंगजेब से युद्ध करने की प्रतिज्ञा की।

('माधवी-कंकण' १६वाँ परिच्छेद, पृष्ठ सं० ११८-११९) टॉड के 'राजस्थान' में इस घटना का वर्णन निम्न प्रकार है :—

"In the civil war for empire amongst the sons of Shah Jahan, when Aurangzeb opened his career by the deposal of his father and the murder of his brothers, the Rajpoot faithful to the emperor determined to oppose him. Under the intrepid Rathore Jeswant Singh, thirty thousand Rajpoots, chiefly of that clan, advanced to the Nerbudda, and with a magnanimity amounting to imprudence, they permitted the junction of Morad with Aurungzeb, who, under cover of artillery served by Franchmen, crossed the river almost unopposed. Next morning the action commenced, which continued throughout the day. The Rajpoots behaved with their usual bravery, but were surrounded on all sides, and by sunset left ten thousand dead on the field. The Maharaja retreated to his own country, but his wife, a daughter of Rana of Oodipoor, disdained (says Farishta) to receive her lord, and shut the gates of the Castle." (Tod's Rajashthan, Vol. I, Chapter XXIII, Page 494).

टॉड ने बर्नियर और मुगल इतिहासकारों के वृतान्तों का उल्लेख किया है। बर्नियर उस युद्ध में स्वयं उपस्थित था। 'फरिश्ता' ग्रन्थ में भी इसका समर्थन मिलता है।

"Bornier, who was present, says, "I cannot forbear to relate the fierce reception with the daughter of the Rana gave to her husband Jeswunt Sing, after his defeat and flight. When she heard he was nigh and bad understood what had passed in the battle, that he had faught with all possible courage, that he had but four or five hundred men left, and at last, no longer able to resist the enemy had been forced to retreat, instead of sending some one to condole him in his misfortunes, she commanded in a dry mood to

shut the gates of the castle and not to let this infamous man enter, that he was not her husband, that the son-in-law of the great Rana could not have so mean a soul that he was to remember, that being grafted into so illustroius a house, he was to imitate its virtue, in a word, he was to vanquish, or to die. A moment after, she was of another humour, she commands a pile of wood to be laid, that she might burn herself, that they abused her, that her husband must needs be dead, that if could not be otherwise. And a little while after, she was seen to change counternance, to fall into a passion, and break into a thousand repraches against him. In short, she remained thus transported eight or nine days, without being able to resolve to see her husband, till at last her mother coming, brought her in time to herself, composed by assuring her that as soon as the Raja had but refreshed himself he would raise another army to fight Aurungzeb, and repair his honour.

By which story one may see says Bernir "a pattern of the courage of the women in that country" and he adds this philosophical corollary on this and the custom of suttees, which he had witnessed. (Ibid, Page 494-95)

महारानी सिसोदिनी का पत्र

महाराज यसवन्त सिंह की पत्नी ने अपने पति को युद्ध से विरत होने पर पत्र लिखा था। इस पत्र को कविता में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य-ग्रन्थ 'पत्रावली' में उल्लिखित किया है। 'पत्रावली' का प्रकाशन सम्वत १९७६ में साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से हुआ है।

कवि श्री मैथिलीशरण ने पत्र के आरम्भ में लिखा है—"राज्य प्राप्ति के लिए औरंगजेब और दारा का जो युद्ध हुआ था उसमें जोधपुर के महाराज ने दारा का साथ दिया था। पर अनेक कारणों से औरंगजेब की जीत हुई। महाराज यसवन्त सिंह युद्ध से विरत होकर जोधपुर गए। परन्तु उनकी महारानी ने उनके हार कर लौटने पर बड़ा क्रोध किया। सुनते हैं, उसने किले का फाटक बन्द करा दिया था। इसी सम्बन्ध में यह पत्र है—

हे ना—नहीं, नाथ नहीं कहूँगी, अनाथिनी होकर ही रहूँगी।
होते कहीं जो तुम नाथ मेरे, तो भागते क्या फिर पीठ फेरे?
यथार्थ ही क्या मुँह को छिपाये, संग्राम से हो तुम भाग आये?

धिक्कार है हा ! अब क्या करूँ मैं, रक्खी कहाँ मौत कि मरूँ मैं ।।

('पत्रावली' काव्य, पृ० २५)

यसवन्त सिंह की रानी अपने पति के युद्ध से पलायन करने पर अनुशोचन करती है—

परन्तु मैं होकर वीर-बाला, जो लोक में करती उजाला ।
देखूँ तुम्हारा मुँह आज कैसे ? सहूँ कहो तो यह लाज कैसे ?
आये यहाँ क्या छिपने घरों में ? या रानियों के घन-घाघरों में ?
परन्तु भागे तुम भीरु ज्यों ही, हुए कहो क्या हत वे न त्यों ही ?
जो मृत्यु की थी इस भाँति भीति, जो मेटनी थी निज रीति-नीति ?
तो जन्म क्यों सत्कुल में लिया था ? क्यों ब्याह राना कुल में किया था ?

(वही, पृ० २६)

महारानी ने पति को फटकारते हुए कहा है कि तुम घर में भाग कर घाघरों में छिपने चले आये । अगर ऐसी ही मृत्यु से भीति थी तो क्षत्रिय-वंश में जन्म क्यों लिया था और मेवाड़ के वीर घराने में क्यों विवाह किया था ? उल्लेखनीय है कि यशवन्त सिंह की रानी मेवाड़ के राणा कुल की वीरबाला थी, जिस वंश में राणा सांगा, राणा प्रताप ऐसे वीर शिरोमणी पैदा हुए हैं । वह आगे कहती है—

राठौर ! क्या लाज तुम्हें न आई, जो कीर्ति दोनों कुल की मिटाई ।
क्या देह से है यश हाय ! छोटा, या मृत्यु से है अमरत्व खोटा ?
संग्राम में जो तुम काम आते, तो लोक में निश्चल नाम पाते ।
मैं भी सती होकर धन्य होती, न क्षत्रिया होकर आज रोती ।।

(वही, पृ० २७)

राजस्थान की वीर नारियाँ अपने पति और पुत्रों को देश रक्षार्थ रण में भेजती थीं और उनके मरने पर रोती नहीं, हँसती हुई सती होतीं और पुत्र के मर जाने पर अपनी कोख को शुभ कहतीं । ऐसी वीर रमणियों से मरुधरा का इतिहास भरा पड़ा है । यसवन्त सिंह की रानी के पत्र में भी ऐसी ही वीरतापूर्ण बातें हैं, जिन्हें कवि मैथिली शरण गुप्त ने 'पत्रावली' काव्य में उपस्थित किया है । कवि ने रानी के लम्बे पत्र को २१ छन्दों में प्रस्तुत किया है । 'पत्रावली' में रानी का यह लम्बा पत्र (पृष्ठ २५ से पृष्ठ ३० तक में) देखा जा सकता है ।

राणा प्रताप की वीरता

'माधवी-कंकण' उपन्यास में रमेशचन्द्र दत्त ने ऐसे ही कई रोमांचक प्रसंगों का

उल्लेख कर राजपूत जाति के प्रति और उसकी देश-भक्ति, वीरता और साहस के प्रति भावपूर्ण श्रद्धा व्यक्त की है। सम्भव है, वे महाराणा प्रताप के प्रति अधिक आकर्षित थे। वे उनके आजादी के प्रेम से अत्यधिक प्रभावित थे। यही कारण है कि 'बंग-बिजेता' उपन्यास में रमेशचन्द्र ने राजा टोडरमल के मुख से राणा प्रताप की भूरि-भूरि प्रशंसा कराई है और इस आजादी के दीवाने के लिए 'माधवी-कंकण' में एक चारण के मुख से प्रशस्ति गीत गवाया है। यह गीत नरेन्द्र को इतना प्रिय लगा कि वह राजपूत जाति की गरिमा के प्रति नतमस्तक हो गया और अपने को धन्य मानने लगा कि वह ऐसी वीर प्रसविनी मरुधरा में आया है।

चारण गीत

'नर्मदा युद्ध के बाद जब राजा यशवन्त सिंह जोधपुर लौट रहे थे तो नरेन्द्र भी सेना में था। जब सेना मेवाड़ के क्षेत्र को पार कर रही थी तो रास्ते मे नरेन्द्र को कई दुर्ग देखने को मिले। नरेन्द्र ने चित्तौड़ दुर्ग मे विजय-स्तम्भ, पद्मिनी का राजमहल और उस सरोवर को देखा, जिसके मुख्य द्वार पर राजपूतो ने देश के लिए कितनी बार खून बहाया है। तभी वहाँ एक चारण आ गया। नरेन्द्र और उसके साथी सैनिक चारण को घेर कर बैठ गए और उसने राणा प्रताप की यशोगाथा एक गीत में प्रस्तुत की। गीत का भाव इस प्रकार है—

'राजपूतगण ! यह मेरा गीत नहीं है—यह अरावली पर्वत की चोटियों का गीत है, यह अरावली के जल-प्रपातों का गीत है।

देखो अकबर के भीषण प्रताप से सम्पूर्ण भारत कम्पायमान हो रहा है, लेकिन प्रताप अकम्पित है।

चित्तौड़ अब प्रताप का नहीं है, राणा के पिता के जीवितकाल में ही अकबर ने उस पर अधिकार कर लिया है।

दुर्ग की रक्षा में जयमल ने जीवन दिया, पत्ता की माता और बहन ने स्वयं युद्ध करके आत्म-बलिदान किया।

राणा प्रताप जब गद्दी पर बैठे तो उनके पास न चित्तौड़ था, न सेना थी; न अर्थ था, लेकिन था असीम आत्मबल।

देश-मातृका के लिए मर मिटने की तमन्ना थी।

आमेर के भगवानदास और मारवाड़ के मालदेव ने अपनी कन्याओं को दिल्ली सम्राट को दिया था, उससे अपनी बेटियों की शादी की। प्रताप ने म्लेच्छ यवनों से रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं किया।

प्रताप ने, मेवाड़ के राणा ने अपने गौरवशाली वंश को कलंकित नहीं किया, देश को स्वतंत्रता के लिए वह जिया और मरा।

राजपूतगण ! प्रताप की वीरता के गीत गाओ। उन्होंने पच्चीस वर्ष तक मुगल सेना का डट कर मुकाबला किया, पहाड़ और कन्दराओं की खाक छानी, पर मुगलों की पराधीनता स्वीकार नहीं की।'

('माधवी-कंकण' उपन्यास, १८वाँ परिच्छेद, पृ० ११४)

चारण के गीत को सुनकर सभी स्तम्भित हो गए। उनमें मातृभूमि के लिए श्रद्धा के भाव उमड़ आये और वे सभी एक अनोखी आभा से दीप्त हो गए।

अनुताप की ज्वाला

नरेन्द्र सोचने लगा—'भारतवर्ष में जब इतने प्रतापी वीर राजा हैं तब सुन्दर बंगदेश की यह दुर्दशा क्यों है ? युद्ध ही राजपूत जाति का पेशा है। मरुभूमि के बालक, वृद्ध और युवकों ने तथा रमणियों ने देश के लिए त्याग-बलिदान स्वीकार किया है, धन, सुख, जीवन दिया है। यवनों ने मेवाड़ वासियों के घर जला दिए, खेती नष्ट कर दी, दुर्ग छीन लिए, फिर भी उन्होंने अपने देशाभिमान से मस्तक उन्नत रखा, नत नहीं किया। ऐसी वीर जाति पर किसे गर्व नहीं होगा ? वीरव्रती राणा प्रताप के गीत आज भी अरावली की उपकथाओं में अनुगुँजित है। और बंगदेश में—वेगवती गंगा नदी उसके गौरव गीत नहीं गाती। वहाँ के राजा और प्रजा सुख से सोते हैं। संसार में उनका नाम नहीं, वीरों की श्रेणी में उनका स्थान नहीं।' (माधवी-कंकण' उपन्यास, अष्टादश परिच्छेद, पृ० ११४-११५)

रमेशचन्द्र दत्त ने राणा प्रताप की वीरता का गीत गा कर देशवासियों को उद्बुद्ध करने का यत्न किया और इसी कारण उसने नरेन्द्र के मुख से ऐसी बात कहलवाई, जिससे १९वीं सदी के देशवासी पराधीनता के विरुद्ध हुंकार करें।

मेवाड़ और मारवाड़ की धरती में बड़ा फर्क है। मेवाड़ की हरियाली और खेत

वहाँ जीवन को आन्दोलित करते हैं, पर मारवाड़ पूरी तरह रेगिस्तान है, जहाँ दूर-दूर तक केवल बालू के टीले ही दिखाई देते हैं, वृक्षों के दर्शन यत्र-तत्र ही होते हैं। जब मारवाड़ी सेना मेवाड़ से गुजर रही थी तब व्यंग्य विद्रूप में लोग कहते थे—

आक रा झोपड़ा, फाक रा बार
बाजरा री रोटी, मोठ री दार
देखो हो राजा, तेरा मारवार....

मारवाड़ी सेना ने सगर्व प्रत्युत्तर दिया—'हमारी धरती उर्वरा नहीं, पर वीर प्रसविनी है। मारवाड़ी वीर तलवार और जौहर के धनी है। (वही, १६वाँ परिच्छेद, पृ० ११७)

टॉड ने अपने राजस्थान पर्यटन के विवरण में इस उक्ति को इस प्रकार रखा है—

Ak Ra Jhopra, Phog Ra Bar
Bajra Ri Roti, Moth Ri Dal
Dekho Ho Raja, Teri Marwar
(Ibid, Vol. I, Ch. XXVI, Page 552)

अतीत वर्तमान में

रमेशचन्द्र ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों मे अतीत को वर्तमान के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक उपन्यास की यही खूबी होती है कि पाठक अपनी आँखों के सामने अतीत को जीता-जागता देखते हैं और स्नेह-रोमांच से उद्बुद्ध होते हैं। 'माधवी-कंकण' की विशेषता है कि उसमें इतिहास की छोटी-छोटी घटनाओं को बड़े मनोयोग से प्रस्तुत किया गया है।

'बांगला ऐतिहासिक उपन्यास' ग्रन्थ के लेखक अपर्णा प्रसाद सेनगुप्त ने पृष्ठ ७६ पर लिखा है—'रमेशचन्द्र के उपन्यासों में 'माधवी-कंकण' श्रेष्ठ कृति है। इसमें कहानी और इतिहास का सुन्दर ढंग से मिश्रण गूँथा गया है। इस दृष्टि से इसे बंगला-साहित्य का श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है।'

हमने पूर्व में ही कहा है कि रमेशचन्द्र दत्त ने अपने प्रथम उपन्यास 'बंग-विजेता' में जिन बीजों का वपन किया था वे विशाल वट वृक्ष के रूप में अंकुरित होकर

उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रकट हुए हैं। 'माधवी-कंकण' में राजपूत इतिहास का वर्णन कर रमेशचन्द्र को संतुष्टि नहीं हुई। वे भारत के वीरों की कहानी के माध्यम से गुलाम देशवासियों में देश-प्रेम का भाव भरना चाहते थे। इसलिए उन्होंने भारत की दो श्रेष्ठ जातियों के दो महावीरों का चयन किया। ये हैं राजपूत गौरव के प्रतीक राणा प्रताप और मराठा श्रेष्ठ वीर शिवाजी। यद्यपि रमेशचन्द्र के पूर्व भूदेव मुखोपाध्याय ने शिवाजी के चरित्र को लेकर 'अंगूरीय विनिमय' उपन्यास लिखा था, पर उसमें शिवाजी और रोशनआरा के उपाख्यान को अधिक महत्व देने से शिवाजी का ऐतिहासिक पक्ष उद्घाटित नहीं हुआ। इस कारण तथा अपने उद्देश्य को सफलता मण्डित करने के लिए रमेशचन्द्र ने 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में शिवाजी के रूप में एक ऐसे वीर को देखा जो देश के खोये गौरव की पुनर्स्थापना करने के लिए कटिबद्ध था।

रमेशचन्द्र दत्त का 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास

'माधवी-कंकण' के एक वर्ष बाद अर्थात १८७८ ई० में 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' का प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास में रमेशचन्द्र ने शिवाजी के चरित्र तथा उनकी जीवनी का उल्लेख इतिहासकार ग्रान्ट डफ (Grant Duff) के History of Mahrathas के आधार पर किया है तथा उपन्यास में राजा यशवन्त सिंह एवं राजा जय सिंह की घटनाओं का वर्णन टॉड के आधार पर किया है। उपन्यास के उन्नीसवें परिच्छेद में ईशानी देवी का वर्णन करते हुए लेखक ने भारत के प्राचीन धर्म-ग्रन्थों का वर्णन किया है और दिखाया है कि हजारों वर्षों से ये ग्रन्थ देश की धर्मप्राण जनता को प्रेरणा का स्रोत जुटाते आये हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर समर सिंह, संग्राम सिंह राणा प्रताप आदि ने धर्म की रक्षा के लिए अपना खून बहाया है और देश की अस्मिता की रक्षा की है। रामायण, महाभारत में वर्णित पुराण कथाओं ने हजारों वर्षों से कश्मीर से कुमारी अंतरीप तक और बंगाल से महाराष्ट्र तक अपने गीत सुनाए हैं और देशवासियों को प्रेरित किया है।

रमेशचन्द्र उपन्यास के 'उन्नीसवें' परिच्छेद में पृष्ठ २०३ पर अपनी बात इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

पाठको ! मैं आपके सामने आधुनिक और प्राचीन वीरों के वीरत्व की गाथा गाऊँगा। केवल इसी उद्देश्य से मैंने लेखनी उठाई है। यदि देश-वासियों के हृदय में इन वीरों के प्रति जरा भी प्रीति दर्शा सका, उन्हें देश-प्रेम के लिए प्रेरित कर सका तो अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।'

('महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास, १९वाँ परिच्छेद, पृ० २०३)

कहना नहीं होगा कि इसी कारण लेखक ने शिवाजी और प्रताप के चरित्रों का चयन किया और 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' तथा 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यासों की रचना की।

'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास मे मराठा वीर शिवाजी की जीवनी, औरंगजेब की मुगल सेना के साथ उनका युद्ध, राजा यशवन्त सिंह की सहायता, राजा जयसिंह के साथ युद्ध और बाद में मित्रता, शिवाजी का दिल्ली में बन्दी होना और पलायन करना

तथा अफजल खाँ को बघनखे से मारना, शायस्ता खाँ का पूना से घायल होकर पलायन आदि ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है।

'शतवर्ष' की चार पीढ़ियाँ

उपन्यास को रोचक तथा रूमानी बनाने के लिए लेखक ने शिवाजी के सहयोगी एक वीर का वर्णन किया है। यह वीर राजपूत वीर तिलक सिंह का प्रपौत्र रघुनाथ सिंह है। उल्लेखनीय है कि रमेशचन्द्र के चारों उपन्यासों में कोई एक सौ वर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। ये घटनाएँ अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के काल की हैं। राजपूत इतिहास में राणा प्रताप, राजा यशवन्त सिंह, राजा मान सिंह, राजा जय सिंह, राजा राम सिंह इन मुगल शासकों के समकालीन थे। तिलक सिंह ने चित्तौड़ की रक्षा के लिए अकबर की सेना का मुकाबला किया और देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणाहुति दी। उसी वीर तिलक सिंह का पुत्र तेज सिंह था, जिसने राणा प्रताप के साथ मातृभूमि की रक्षा में अपना जीवन बिताया। तेज सिंह का पुत्र गजपति सिंह था, जिसने राजा यशवन्त सिंह के साथ रहकर अपनी वीरता दिखाई। यशवन्त सिंह और औरंगजेब की सेनाओं के बीच जब नर्मदा नदी के किनारे युद्ध हुआ था तो उस युद्ध में गजपति की मृत्यु हुई। इस तरह तिलक सिंह की चार पीढ़ियों का तथा जयपुर के राजा भगवानदास की चार पीढ़ियों का वर्णन इन चार उपन्यासों में मिलता है। कदाचित इसी कारण इन चारों उपन्यासों का एक सम्मिलित संस्करण 'शतवर्ष' नाम से प्रकाशित हुआ था।

कथा-सार

'बंग-विजेता' में राजा टोडरमल के मुख से तिलक सिंह की वीरता का बखान सुनते हैं और 'माधवी-कंकण' में उसके पोते गजसिंह की बहादुरी देखते हैं। 'राजपूत जीवन-संध्या' में तिलक सिंह के पुत्र तेज सिंह का तेज हम देखेंगे। 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में गजसिंह के पुत्र रघुनाथ सिंह की बहादुरी का बड़ा ही प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है। उपन्यास की कहानी में दिखाया गया है कि गजसिंह का एक अनुचर मराठा था, जिसका नाम चन्द्रावर था। गजसिंह की मृत्यु के बाद वह उसके बेटे और बेटी को महाराष्ट्र में ले आया। बेटी का नाम लक्ष्मी बाई था। चन्द्रावर ने लक्ष्मी से जबरन विवाह कर लिया, किन्तु गजसिंह का बेटा रघुनाथ भाग गया। वह आठ वर्ष तक महाराष्ट्र में घूमता-भटकता रहा और जब १८ वर्ष का युवक हुआ तो शिवाजी की

यशोगाथा सुनकर उनकी सेना में भर्ती हो गया। उसने शिवाजी की सेना में अपनी अपूर्व वीरता का कमाल दिखाया, किन्तु चन्द्रावर भी शिवाजी की सेना में प्रधान था। उसे रघुनाथ के यश से ईर्ष्या हो गई। उसने रुद्रमण्डल दुर्ग के युद्ध में रघुनाथ पर शत्रु सेना से मिलने का अभियोग लगाया। फलतः शिवाजी ने उसे सेना से निकाल दिया। असल में रघुनाथ सिंह रुद्रमण्डल दुर्ग के युद्ध में जाने के पूर्व अपनी प्रणयिनी सरयू बाला से विदा लेने गया था, पर उसके युद्ध में बिलम्ब से आने की बात को तिल का ताड़ बना दिया गया और उस पर अभियोग लगाया गया। वास्तविकता तो यह थी कि चन्द्रावर दुश्मन रहमत खाँ से मिल गया था। सरयूबाला ईशानी देवी के पुजारी जनार्दन की पालिता कन्या थी। शिवाजी ने जयपुर से जनार्दन पुजारी को ईशानी देवी के मन्दिर में पूजा करने के लिए बुलाया था। ईशानी मंदिर की पुष्प वाटिका में सरयू और रघुनाथ की प्रथम भेंट हुई थी और दोनों एक-दूसरे के प्रति आसक्त हो गए थे।

रघुनाथ सिंह पर जब कलंक का अभियोग लगा तो वह कुछ दिन उदास रहा और फिर कलंक को धोने के लिए तथा मिथ्या अपयश से मुक्ति पाने के लिए उसने सीतापति गोस्वामी का भेष धारण कर लिया। इसी भेष में उसने शिवाजी को दिल्ली के बंदीगृह से मुक्त कराया और अपनी बहादुरी, बुद्धिमत्ता और साहसिकता का परिचय दिया। बाद में जब शिवाजी को पता चला कि सीतापति गोस्वामी ही रघुनाथ है, तो उन्हें बड़ा पछतावा हुआ कि उन्होंने बिना किसी पुष्ट प्रमाण के उसे दोषी मान लिया था। असली दोषी चन्द्रावर को मृत्यु दण्ड मिला। १६८० ई० तक रघुनाथ शिवाजी के साथ उनके युद्ध अभियान में रहा। इस बीच जब राजा यशवन्त सिंह को पता चला कि वह उनके प्रिय अनुचर गजपति सिंह का पुत्र है तो उन्होंने उसे राजस्थान लौटने के लिए कहा, पर शिवाजी ने उसे अपने पास ही रखा। सरयू के साथ रघुनाथ सिंह दाम्पत्य जीवन में बंध गया और १६८० में जब शिवाजी की मृत्यु हो गई तब वह अपनी पत्नी सरयू और जनार्दन पुजारी को लेकर राजस्थान लौट गया। लक्ष्मी बाई अपने पति चन्द्रावर के मृत शरीर के साथ सती हो गई।

शिवाजी का सपना

उपन्यास में रघुनाथ सिंह और उसकी प्रेम कहानी तथा उसकी वीरता का विशद वर्णन लेखक की अपनी कल्पना-शीलता है।

मराठा वीर शिवाजी का एक सपना था देश में हिन्दू राज्य की स्थापना। बचपन से वे इस सपने को संजोते आ रहे थे। उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि पृथ्वीराज के बाद दिल्ली पर यवनों का राज्य स्थापित हो गया। उन्होंने देश-प्रेम और देश की स्वतंत्रता की भावना राजपूतों से ग्रहण

की और भवानी (ईशान देवी) से वर प्राप्त कर वे सपने को साकार करने में लग गए। उन्होंने मराठा जाति को संगठित किया और एक बड़ी सेना बनाई। एक के बाद वे दुर्ग जीतने लगे। जब मराठा शक्ति औरंगजेब के लिए प्रतिस्पर्धा का विषय बन गई तो दिल्ली के बादशाह ने शायस्ता खाँ और राजा यशवन्त सिंह को शिवाजी से लड़ने के लिए भेजा। शिवाजी रणकुशल और चतुर थे। वे यवनों का मुकाबला करना खूब जानते थे। इसके पूर्व १६५९ ई० में उन्होंने विजयगढ़ के सुल्तान के सेनापति अफजल खाँ को बघनखे से यमलोक पहुँचा दिया। शिवाजी ने राजा यशवन्त सिंह से भेंट कर उन्हें अपने उद्देश्य से अवगत कराया और उन्हें तटस्थ रखा तथा बारातियों के भेष में पूना में प्रवेश कर शायस्ता खाँ को और उसकी सेना को पराजित किया। यह घटना १६६३ ई० में घटी थी। १६६४ ई० में शिवाजी के पिता शाहजी की मृत्यु हुई और वे राजा की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपने नाम के सिक्के प्रचलित किए।

यशवन्त सिंह से बातचीत

उपन्यासकार ने शिवाजी की वाक्चातुरी, वीर-परायणता और असीम साहसिकता का वर्णन किया है। मुगल सेनापति भी शिवाजी की तीक्ष्ण बुद्धि और कुशलता के सामने अपने को भयभीत समझते थे और 'पहाड़ी चूहा' कह कर व्यंग्य करते थे। शिवाजी का हिन्दू-राज्य स्थापन करने का जो सपना था, यहाँ हम उन्हीं के शब्दों में उपन्यास से उधृत करते हैं। शिवाजी ने भेष बदल कर याने महादेवजी न्यायशास्त्री के रूप में राजा यशवन्त सिंह से भेंट कर अपने उद्देश्य को इन शब्दों में रखा—

महादेवजी न्यायशास्त्री—'आप राजपूत हैं और मराठा भी राजपूत-पुत्र हैं। पिता-पुत्र में युद्ध उचित नहीं, स्वयं भवानी ने ऐसे युद्ध का निषेध किया है। आप आज्ञा कीजिए, हम उसका पालन करेंगे। राजपूत ही भारतवर्ष के एकमात्र गौरव हैं। राजपूतों की वीरता के गीत हमारे घरों में आज भी रमणियाँ गाती हैं। वीरों की कहानियाँ सुनकर हमारे बच्चे वीरता की प्रेरणा लेते हैं। क्षत्रिय कुल तिलक राजपूतों के रक्त से हमारी कृपाण रक्त-रंजित हो इससे तो अच्छा है हम उसका परित्याग कर हल जोतें और कृषि-कार्य करें।'

राजा यशवन्त सिंह ने तर्क दिया—'राजपूत वचन के पक्के होते हैं। हमने औरंगजेब को सहायता का वचन दिया है—उससे मुकर नहीं सकते।'

महादेवजी—'दिल्ली बादशाह ने हिन्दुओं को काफिर कह कर उन पर जज़िया कर लगाया है—क्या यह उचित है? हमारे देव मन्दिरों को तोड़ा जा

रहा है, उनकी इज्जत लुटी जा रही है—वह क्या उचित है ? काशी के मन्दिर को तोड़ कर वहाँ मस्जिद बनाई गई है—क्या यह उचित है ?'

यशवन्त—'द्विजवर ! बस···बस । अब आगे कुछ न बोलें। आज से शिवाजी हमारे मित्र हुए और हम उनके मित्र। आज से शिवाजी का उद्देश्य मेरा उद्देश्य हुआ और उनकी प्रतिज्ञा मेरी प्रतिज्ञा। इतने दिन से जो वीर शिवाजी दिल्लीश्वर से युद्ध कर रहा है—वह वीर पुँगव कहाँ है—मैं उससे मिलना चाहता हूँ।'

और तब महादेवजी न्यायशास्त्री भेषधारी शिवाजी ने अपना परिचय दिया। दोनों वीरों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया।

('महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास, सप्तम परिच्छेद, पृष्ठ सं० १६६-६७)

इस मित्रता का फल हुआ अफजल खाँ की पराजय। बाद में शायस्ता खाँ और राजा यशवन्त सिंह को अपसारित कर औरंगजेब ने शिवाजी की शक्ति को खर्व करने के लिए अपने पुत्र मुअज्जम को दक्षिणात्य में भेजा। शिवाजी से युद्ध के लिए इसके बाद राजा जयसिंह और दिलावर खाँ को भेजा।

जयसिंह का आशीर्वाद

शिवाजी ने राजा जयसिंह से भेंट की और उन्हें भी अपने उद्देश्य से परिचित कराया, राजा जयसिंह ने भी एक ही उत्तर दिया—'राजपूत औरंगजेब से वचनबद्ध हैं।' शिवाजी और राजा में काफी तर्क-वितर्क हुआ और अन्त में शिवाजी ने राजा जयसिंह के सामने अपने को समर्पित कर दिया। दोनों में मित्रता हो गई। राजा जयसिंह के परामर्श से शिवाजी औरंगजेब से मिलने के लिए दिल्ली में जाने के लिए तैयार हुए। जयसिंह ने उन्हें सुरक्षा का आश्वासन दिया, पर दिल्ली में शिवाजी का अपमान हुआ और वे बन्दी बना लिए गए। औरंगजेब ने चालाकी से राजा जयसिंह को बीजापुर और गोलकुण्डा विजय के लिए भेजा। जयसिंह ने जब सैनिक सहायता के लिए बादशाह को पत्र दिया तो उसकी उपेक्षा हुई। यहाँ तक कि जयसिंह के पुत्र रामसिंह के कहने पर भी औरंगजेब ने सेना नहीं भेजी। शिवाजी ने दिल्ली से मुक्त होकर राजा जयसिंह से भेंट की। अब राजा को औरंगजेब की कपटचारिता का पूरा पता चला और उन्होंने शिवाजी को यवन-राज्य ध्वंस कर हिन्दू-राज्य स्थापन का आशीर्वाद दिया। देखिए—

राजा जयसिंह ने मृत्यु-शैया पर कहा—'शिवाजी ! मैं देख रहा हूँ कि औरंगजेब की कपटचारिता के खिलाफ चारों तरफ आग सुलग रही है।

औरंगजेब इस आग को शान्त करने में असमर्थ है। मुगलों का सूर्य अस्त हो रहा है और मुझे मराठा सूर्य उदित होता दिखाई दे रहा है। हे वीर! तुम आगे बढ़ो और दिल्ली के सूने सिंहासन पर जा बैठो।' (वही, पृष्ठ २४२)

इस प्रकार रमेशचन्द्र ने 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में मराठा सूर्य को शिवाजी के रूप में उदित होते दिखाया है। उपन्यास में लगता है जैसे सारा इतिहास और शिवाजी का चरित्र उभर कर आ गया है।

डॉ० विजित कुमार दत्त ने 'बांगला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास' ग्रन्थ के पृष्ठ ११८ पर अपने विचार इन शब्दों में प्रस्तुत किए हैं—'रमेशचन्द्र ने राजा जयसिंह के आदर्श और उनके चरित्र का आधार टॉड के 'राजस्थान' को बनाया है। टॉड ने राजा का जैसा चरित्र अंकित किया है रमेशचन्द्र ने भी तदनुरूप उसे अपने 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में अंकित किया है।'

रमेशचन्द्र ने वीर चरित्रों का चित्रण करने के लिए जिस बात का उल्लेख 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में किया है और 'बंग-विजेता' में जिसका संकेत दिया है, उसे मूर्त करने के लिए उन्होंने 'राजपूत जीवन-संध्या' की रचना की और उसमें राणा प्रताप की वीरता और स्वाधीनता का बखान किया है। रमेशचन्द्र ने स्वतंत्रता के दो अप्रतिम वीरों का यथा शिवाजी और राणा प्रताप का बड़े मनोयोग से अपने उपन्यासों में वर्णन किया है।

रवीन्द्र की 'शिवाजी-उत्सव' कविता

छत्रपति शिवाजी और महाराणा प्रताप भारतीय स्वतंत्रता के दो सजग प्रहरी रहे हैं। इन दोनों चरित्रों ने देश की मनीषा को स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए उद्‌बुद्ध किया है। महाराष्ट्र के राष्ट्रीय नेता बाल गंगाधर तिलक ने 'शिवाजी-उत्सव' एवं 'गणेश पूजा' का आयोजन कर देशवासियों को स्वतंत्रता के प्रति एकबद्ध कर विदेशी दासता से मुक्ति पाने का उपाय सुझाया था। बंगाल में भी 'हिन्दू-मेला' और 'दुर्गा पूजा' का आयोजन इसी सत् उद्देश्य से किया गया था। कवीन्द्र रवीन्द्र को बंगाल में 'शिवाजी-उत्सव समिति' का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कवि ने अल्बर्ट हॉल (कलकत्ता का कॉलेज स्ट्रीट स्थित हॉल जहाँ आज एक तल्ले पर कॉफी हाउस है) में 'शिवाजी-उत्सव' पर अध्यक्ष पद से अपने विचार कविता में उपस्थित किए। उनकी यह कविता 'शिवाजी-उत्सव' शीर्षक से 'संचयिता' (रवीन्द्र का काव्य संकलन) के पृ० ४७५-४८१ पर संगृहीत है। 'संचयिता' का प्रकाशन 'रवीन्द्र-भारती' से १३३८ बंगाब्द में हुआ है। रवीन्द्र ने 'शिवाजी-उत्सव' कविता की रचना गिरिडीह में १३११ बंगाब्द में अर्थात १९०४ ई० में की थी।

कवि रवीन्द्र कहते हैं कि आज से तीन सौ वर्ष पूर्व शिवाजी ने स्वतंत्रता की जो मशाल जलाई थी वह अद्यतन प्रज्ज्वलित है और देशवासियों को स्वतंत्रता की प्रेरणा देती है। पता नहीं विगत दूर एक शताब्दी में कब एक पहाड़ी पर बैठ कर शिवाजी ने एक धर्म-राज्य का सपना सजाया था। उस समय बंगाल में यह आवाज नहीं गूँजी थी। तीन सौ वर्ष के बाद भी आज प्रतापी शिवा का सपना पूर्ण नहीं हुआ। हे बंगाल के लोगो! आज मराठा शक्ति के साथ सुर में सुर मिला कर बोलो 'जयतु शिवाजी'! कवि की भावनाएँ द्रष्टव्य हैं—

कोन् दूर शताब्देर कोन-एक अख्यात दिवसे
नाहि जानि आजि
माराठार कोन् शैले अरण्येर अंधकारे बोसे,
हे राजा शिवाजी
तव भाल उद्भासिया ए भावना तणित् प्रभावत्
एसे छिलो नामि—
'एक धर्मराज्यपाशे खण्ड छिन्न विक्षिप्त भारत बेंधे दिबो आमि।'
से दिन ए बंगदेशे उच्चकित जागे नि स्वप्ने, पाय नि संवाद—
बाहिरे आसे नि छूटे, उठे नाई ताहार प्रांगणे शुभ शंखनाद—

('संचयिता', काव्य संग्रह, 'शिवाजी-उत्सव' कविता, पृ० ४७५)

× × ×

सेईमत भावितेछि आमि कवि ए पूर्व भारते, कि अपूर्व हेरि,
बंगेर अंगनद्वारे केमन ध्वनिलो कोथा होते तव जयभेरि।
तिन शत वत्सरेर गाढ़तम तमिस्र विदारि प्रताप तोमार
ए प्राची दिगंते आजि नवतर की रश्मि प्रसारि
उदिलो आबार॥

(वही, पृ० ४७८)

× × ×

माराठार साथे आजि, हे बांगाली, एक कंठे बोलो ...
'जयतु शिवाजी!'

(वही, पृ० ४८०)

रमेशचन्द्र का 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास

'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' उपन्यास के एक वर्ष बाद अर्थात् १८७९ ई० में रमेशचन्द्र का 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास प्रकाशित हुआ। उपन्यास के अन्त में लेखक ने टॉड के 'राजस्थान' के उस अंश का अंग्रेजी में अक्षरशः उल्लेख किया है, जिसके आधार पर उन्होंने इसकी रचना की है और राणा प्रताप के जीवन पर अपना लम्बा-चौड़ा प्रशस्ति-पत्र लिखा है। अरावली पर्वत के चप्पे-चप्पे पर अंकित उस वीर श्रेष्ठ की गौरव गाथा और स्वातंत्र्य-संग्राम का उल्लेख किया है। टॉड ने हल्दीघाटी की तुलना थर्मोपली से की है। टॉड ने लिखा है—

"It is Worthy the attention of those who influence the destinies of states is more favoured clime, to estimate the intensity of feeling which could arm this prince to oppose the resources of a small principality against the then most powerful empire of the world, whose armies were more numerous and far more efficient than any ever led by the Persian against the liberties of Greece, Had Mewar possed her Thucydides or her Xenophon, neither the wars of the Peleponnesus nor the retreat of the 'ten thousand' would have yielded more diversified incidents for the historic muse, than the deads of the brilliant reign amid the many vicissitudes of Mewar. Undaunted heroism, inflexible fortitude, that which 'keeps honour bright', perserverance—with fidelity such as no nation can boast, were the materials opposed to a soaring ambition commanding talents, unlimited means, and the fervour of religious zeal, all, however, insufficient to contend with one unconquerable mind".

"There is not a pass in the Alpine Aravali that is nol sanctified by some deeds of Partap—some brilliant Victory or oftener more glorious defeat Huldighat is the Thermopylee of Mewar, the field of Deweir her Marathon." (Tod's Annals and Antiquities of Rajasthan, Vol. I, Chap. XI, Page—278)

उपन्यास में लेखक ने राणा प्रताप के समग्र जीवन का चित्रण किया है। राजा मानसिंह का प्रताप द्वारा अपमान, हल्दीघाटी की लड़ाई, झाला की वीरता, राणा प्रताप का चेतक पर सवार होकर भागना, शक्ति सिंह से मिलन आदि सभी घटनाएँ ऐतिहासिक

है। जहाँ अन्य नाटककारों ने जंगली बिलाव द्वारा रोटी ले भागने की बात कही है और उसी घटना से दुखी होकर तथा अपने बच्चों को रोटी के लिए बिलबिलाता देखकर राणा ने अकबर के पास संधि-पत्र लिखा था। रमेशचन्द्र ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है, अपितु दिखाया है कि मुगल सेना से त्राण पाने के लिए जब राणा का परिवार भीमगढ़ दुर्ग में था तब मुगल सेना ने उस पर आक्रमण किया। मुगल सेना राणा के परिवार की तलाश में थी। मुगल सेनापति राज-परिवार को बन्दी बना कर दिल्ली ले जाना चाहता था, जिससे बाध्य होकर राणा को आत्म-समर्पण करना पड़े। राणा के विश्वस्त सैनिक तेज सिंह को जब इस षड़यंत्र का पता चला तो वह दुर्ग में आया। उसने देखा राणा वहाँ नहीं हैं और दुर्गपति देवी सिंह भी राणा के साथ राठौर सेना लेकर युद्ध में गए हुए हैं। दुर्ग में देवी सिंह का युवक पुत्र चन्दन सिंह था और थोड़े से राजपूत वीर थे। तेजसिंह ने सारी बात चन्दन सिंह को समझाई और राणा के परिवार को अरावली के पहाड़ों में स्थानान्तरित किया। मुगल सेना ने आक्रमण किया। उस आक्रमण में देवी सिंह के परिवार का बलिदान देना पड़ा। स्त्रियों ने जौहर किया और राजपूतों ने केशरिया बाना पहन कर जौहर दिखाया। इस युद्ध में देवी सिंह का एक मात्र पुत्र चन्दन वीरता दिखाकर मारा गया। इस घटना से दुखी होकर राणा ने अकबर को पत्र लिखा। जब अकबर के पास पत्र पहुँचा तो बादशाह प्रसन्न हुआ और उसने मिठाई बँटवाई। जब बीकानेर के राजा पृथ्वीराज को यह खबर मिली तो उन्होंने पत्र को जाली बताया और कवि पृथ्वीराज ने राणा के पास एक लम्बी कविता लिखकर भेजी, जिसका आशय था कि राणा के कारण ही राजपूती शान टिकी हुई है, अगर वे ही आत्म-समर्पण कर देंगे तो देश का गौरव मिट्टी मे मिल जायगा। पत्र को पाते ही और कविता को पढ़ते ही राणा में दूना जोश आ गया और उन्होंने पुनः अकबर से मुकाबला करने की प्रतिज्ञा की।

नई उद्भावना

रमेशचन्द्र ने उपन्यास में पृथ्वीराज की कविता का सशक्त शब्दों मे उल्लेख किया है। हमने पृथ्वीराज की कविता का विस्तार से 'बंगला-नाटकों में राजस्थान' अध्याय में उल्लेख किया है। रमेशचन्द्र की यह अपनी सूझ है कि उन्होंने एक नई उद्भावना का वर्णन किया है। राणा ने अपने परिवार के कष्ट से ऊब कर

आत्म-समर्पण का विचार नहीं किया, अपितु अपने एक वीर सेवी सिंह के परिवार के नष्ट होने से दुखी होकर ऐसा किया। रमेशचन्द्र ने राणा की इस स्वाधीनता और वीर चरित्र का जिस प्रकार मानवीय दृष्टिकोण से उल्लेख किया है उसी प्रकार उन्होंने 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में शिवाजी के चरित्र को भी दिखाया है। शिवाजी जब दिल्ली में बन्दी थे तो रघुनाथ सिंह सीतापति गोस्वामी के भेष में उनसे मिलता है और उनको पलायन की बात कहता है। उसने पलायन की सारी व्यवस्था की थी, किन्तु वीर शिवाजी ने अपने साथियों को दिल्ली में असुरक्षित छोड़कर जाने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा जब तक हमारे सैनिक सुरक्षित नहीं होंगे, मैं अपने को यहीं रखूँगा। जब सारे मराठा सैनिक निरापद दिल्ली से निकल गए तभी शिवाजी ने दिल्ली से पलायन किया।

ऐसे वीरों के लिए ही राजपूत और मराठा अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए प्रस्तुत थे और आज भी लोग राणा प्रताप और शिवाजी की वीरतापूर्ण तथा देशमातृका की कहानियों को पढ़कर, सुनकर आत्म-गौरव का अनुभव करते हैं।

'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास में राणा प्रताप की ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ लेखक ने तेज सिंह की वीरता और तेजसिंह पुष्पकुमारी की प्रणय कथा को भी बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। तेज सिंह की वीरता के परिप्रेक्ष्य में लेखक ने राजपूतों के पारस्परिक वैमनस्य और आपसी फूट को भी दर्शाया है। शायद चन्दावत दुर्जन सिंह और राठौर तेज सिंह के आपसी द्वन्द्व को दर्शा कर लेखक ने राजपूतों की शक्ति के क्षय होने का एक सबल प्रमाण दिया है। आश्चर्य है दोनों वीर मुगल सेना से जूझने के लिए तथा राणा प्रताप को सहयोग देने के लिए प्राणों की बाजी लगाते हैं और यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि देश की स्वतन्त्रता की यवनों से रक्षा कैसे की जाय। दोनों वीर मातृभूमि की रक्षा के लिए पूरी तरह तत्पर हैं, पर आपसी वैमनस्य को नहीं भूलते हैं। राजपूतों ने या तो शौर्य प्रदर्शन के लिए या किसी रमणी के लिए कई बार परस्पर युद्ध कर अपनी शक्ति का अपव्यय किया। इस बात का सबूत दुर्जन सिंह और तेज सिंह हैं। दोनों महा पराक्रमी हैं। दोनों मुगल सेना से लड़ने में किसी से कम नहीं, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि एक दूसरे को नीचा दिखाने, एक दूसरे के दुर्ग का अपहरण करने के लिए मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं।

कदाचित् इसी कारण रमेशचन्द्र ने उपन्यास में लिखा है—'हाय! हाय! जाति विरोध से बढ़ कर कोई अन्याय का कार्य नहीं। इसी जाति विरोध के

कारण राजा मानसिंह राणा प्रताप का भयंकर शत्रु बन गया।' (वही, पृ० २६०)

भील-बाला की त्रासदी

'बंग-विजेता' उपन्यास में हमने राजा टोडरमल के मुख से सूर्यमहल दुर्ग के वीर तिलक सिंह की वीरता की बात लिखी है। तिलक सिंह ने चित्तौड़ दुर्ग की रक्षा में अपने प्राण गंवाये। तिलक सिंह की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पत्नी और बालक तेज सिंह सूर्यमहल दुर्ग में रहते थे। अनाथ विधवा से एक दिन चन्द्रावत दुर्जन सिंह ने सूर्य महल दुर्ग छीन लिया। इस युद्ध मे तिलक सिंह की पत्नी ने स्वयं युद्ध किया। वह वीरांगना लड़ते-लड़ते स्वर्ग सिधार गई, पर उसका दस वर्ष का बालक तेज सिंह किसी प्रकार बच कर भील सरदार भीमचन्द के पास आ गया। उसने तेज सिंह का आठ वर्ष तक पालन-पोषण किया। जब तेज सिंह युवक हुआ तो वह बड़ा वीर और पराक्रमी साबित हुआ। भील सरदार की एक बालिका थी। वह तेज सिंह के प्रति आसक्त थी। तेज सिंह की एक बाग्दत्ता पुष्प कुमारी थी। पुष्प कुमारी एक सरदार को बेटी थी। तिलक सिंह की जीवितावस्था में ही पुष्पकुमारी और तेज सिंह की सगाई पक्की हो गई थी। दुर्जन सिंह ने जब तिलक सिंह के परिवार को नष्ट कर दिया तो सूर्यमहल गढ़ ही नहीं जीता उसने जबरन पुष्प कुमारी से भी विवाह करने की कोशिश की, लेकिन पुष्प कुमारी किसी भी शर्त पर राजी नहीं हुई। ईशान देवी की वारुणी के कहने पर तेज सिंह तब तक अपने पैतृक दुर्ग को प्राप्त करने से विरत रहा जब तक मेवाड़ में मुगल सेना है और देश पर विदेशियों का खतरा है। भामाशाह की आर्थिक सहायता से जब राणा प्रताप ने पुनः बड़ी सेना एकत्र की और चित्तौड़ को छोड़कर अन्य दुर्गों को जीता तब युद्ध प्रायः शान्त हो गया। अब राठौर वीर तेज सिंह ने सूर्यमहल दुर्ग पर आक्रमण किया और दुर्जन सिंह को परास्त कर चन्द्रावतों से दुर्ग जीता। बाद में पुष्प कुमारी से विवाह किया। भील कुमारी अपने अव्यक्त प्रेम को हृदय में दबाकर पागल हो गई। यह भील-बाला की त्रासदी है, जिसके प्रति पाठक सहज ही संवेदनशील हो जाते हैं।

इस प्रकार 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास में लेखक ने जहाँ राणा प्रताप की वीरता का बखान किया है, वहीं परिपार्श्व में यह दिखाने की कोशिश की है कि राजपूत आपसी कलह में किस प्रकार अपनी शक्ति क्षय कर रहे थे।

टॉड ने राणा प्रताप की प्रशंसा में लिखा है कि थुसीडिडेस (Thucydides) ऐसे ऐतिहासिकारों के अभाव में राणा की वीरता की कहानी केवल एक इति-वृत्तात्मक कहानी मात्र बन कर रह गई। अगर सच्चा कोई इतिहासकार

होता तो अवश्य ही राणा प्रताप की देश-प्रेम की कहानी को संकीर्णता की चौहद्दी से निकाल कर विश्व-प्रांगण में रखता। टॉड की यह बात रमेशचन्द्र दत्त के हृदय में पैठ गई और इसी से प्रोत्साहित होकर उन्होंने 'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास की रचना की। उन्होंने खुद इस बात को उपन्यास के उपसंहार में पृष्ठ ३२४ पर स्वीकार किया है।

३ फरवरी, १९०० ई० को रमेशचन्द्र दत्त ने एक साहित्यिक सभा में भाषण करते हुए कहा था और बताया था कि 'मराठा जीवन-प्रभात' और 'राजपूत जीवन-संध्या' रचना की प्रेरणा उन्हें कहाँ से मिली। उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

"..When I read Grant Duff's inspiring work on the history of the Marhathas, and spent my nights in dreaming over a story of Sivaji. I remember the days when I travelled over Trippara and occasionally crossed over to Hill Trippera, with Tod's spirited History of Rajasthan in my knapsack, and when I ventured to compose a story of Pratap Singh".

राणा प्रताप के प्रताप को अकबर का प्रताप प्रतापित नहीं कर सका। इसे दिखाने के लिए रमेशचन्द्र ने लिखा है—'दिल्ली से बार-बार मुगल सेना भेजी गई। अकबर के प्रधान-प्रधान सेनापतियों ने सेना की कमान सम्भाली और मेवाड़ पर आक्रमण किया, किन्तु प्रताप को मुगलिया सेना पराजित नहीं कर सकी।'

'प्रताप अरावली की एक पर्वत चोटी से दूसरी पर चले जाते, परिवार दुःख कष्ट भोगता, पर स्वतंत्रता का विसर्जन किसी भी कीमत पर राणा करने को तैयार नहीं थे।'

'ऐसे वीर श्रेष्ठ राणा प्रताप की वीरता और कष्ट सहिष्णुता की कहानियाँ दिल्ली में प्रचारित होने लगी। अकबर राणा की बहादुरी से प्रभावित था। वह उनकी प्रशंसा करता। अकबर के दरबारी भी मुक्त कण्ठ से प्रताप की वीरता का बखान करते।' रहीम खानखाना ने एक दोहे में प्रताप की प्रशस्ति की है, जिसके भाव को उपन्यास में इन शब्दों में दिखाया गया है—'संसार में सब कुछ नश्वर है, क्षण-स्थायी है, भूमि और सम्पत्ति नष्ट होगी, किन्तु कीर्ति और यश नष्ट नहीं होगा। प्रताप ने भूमि और सम्पत्ति का विसर्जन किया पर माथा अवनत नहीं किया। भारतवर्ष के हिन्दू राजाओं में केवल प्रताप ने ही स्वजाति के मस्तक को गर्व से ऊँचा रखा।' ('राजपूत जीवन-संध्या', २०वां परिच्छेद, पृ० २१९)

भविष्य का संकेत

जिस प्रकार बंकिमचन्द्र ने 'आनन्द मठ' में मुगल शासन के बाद अंग्रेजी राज्य की सूचना का संकेत दिया है उसी प्रकार इते 'राजपूत जीवन-संध्या' में राणा प्रताप की महिषी और चारणी के कथोपकथन से ऐसा संकेत मिलता है—

रानी—'चारणी देवी ! हमने आपके ही मुख से सुना है कि कभी दिल्ली का सिंहासन और सारा भारतवर्ष हिन्दुओं का था, हिन्दू राजा शासन करते थे। पृथ्वीराज दिल्ली के अधीश्वर थे। पचास वर्ष पूर्व राणा संग्राम सिंह ने दिल्ली पर अधिकार करने के लिए बाबर से संग्राम किया था। क्या हम फिर दिल्ली पर अपना अधिकार नहीं कर सकते हैं ? भारत के भविष्य में क्या है—तुर्कों की विजय या शिशोदिया कुल की विजय ? आप अपनी दिव्य दृष्टि से आलोकपात करें।'

चारणी देवी कुछ देर ध्यान मग्न रहीं, फिर उनकी दृष्टि उन्मीलित हुई, भ्रू-भंगिमा टेढ़ी हुई। उन्होंने अपनी वृद्ध आँखों से दूर तक दृष्टिपात कर गम्भीर स्वर में कहा—'महारानी ! मेरी आँखें वृद्धावस्था के कारण काफी क्षीण हो गई हैं—मैं भविष्य को बहुत साफ तौर पर नहीं देख सकती हूँ। अकबर के बाद मुझे अंधेरा दीख पड़ता है। देख पा रही हूँ कई वर्ष राजपूत तुर्कों के साथ युद्ध कर रहे हैं फिर दक्षिणवासी राजपूतों के साथ मुगलों का युद्ध हो रहा है। उसके बाद महासमुद्र की उत्ताल तरंगें दिखाई दे रही हैं। सफेद तरंगों पर सफेद तरंगें उठती गिरती दीख रही हैं और लगता है कि वे सम्पूर्ण भारतवर्ष को लील रही हैं, मैं वृद्ध हूँ, ज्यादा कुछ नहीं देख पा रही हूँ।' (वही, पृ० ३००)

चूँकि रमेशचन्द्र ने १९वीं शताब्दी में अपने उपन्यासों की रचना की थी और उस समय अंग्रेजी राज्य आहिस्ता-आहिस्ता सारे हिन्दुस्तान में व्याप्त हो गया था। यह बात उन्हें कचोट रही थी। वे देशवासियों को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से लेखनी चला रहे थे। अपनी इसी भावना को उन्होंने 'राजपूत जीवन-संध्या' के उक्त उद्धरणों में व्यक्त किया है। अंग्रेज समुद्री मार्ग से हिन्दुस्तान में आये थे। रमेशचन्द्र ने इस उपन्यास का नामकरण किया है 'राजपूत जीवन-संध्या' अर्थात राणा प्रताप के बाद आजादी का ऐसा दीवाना फिर कोई महाबली नहीं हुआ। शिवाजी के रूप में उन्होंने 'महाराष्ट्र जीवन-

प्रभात' रखकर मराठा शक्ति के अभ्युदय की बात कही है। रमेशचन्द्र ने चारों उप-न्यासों में अपनी लेखनी को मांजा और संवारा है और धीरे-धीरे इतिहास को देशवासियों के सामने उद्घाटित किया है। इस रचना-प्रक्रिया में हम देखते हैं कि वे स्वयं भी पश्चिम के प्रभाव से अपने को मुक्त कर पूर्णतः भारतीय हो जाते हैं। क्योंकि 'बंग-विजेता' और 'माधवी-कंकण' में प्रत्येक परिच्छेद के आरम्भ में उन्होंने अंग्रेजी कवियों की कविताओं को उद्धृत किया है, किन्तु 'महाराष्ट्र जीवन-प्रभात' में बंग-भाषा के कवियों की कविताओं का उल्लेख करते हैं और 'राजपूत जीवन-संध्या' में संस्कृत कवियों को। यह लेखक के जीवन की कथा-यात्रा है, जिससे प्रतीत होता है कि वे अपने मानस को एकबारगी देश-प्रेम में डुबा रहे हैं। सम्भवतः इसी कारण उन्हें १८९९ ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में अध्यक्ष बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

'राजपूत जीवन-संध्या' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद श्री जनार्दन झा ने किया, जिसका दूसरा प्रकाशन इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग से १९२२ ई० में हुआ।

'राजपूत जीवन-संध्या' में राजपूत और भीलों में जिस भेद को हम पाते हैं उसी दबी भावना को बंगला-साहित्य में स्वर्ण कुमारी देवी के 'विद्रोह' उपन्यास में देखते हैं।

स्वर्ण कुमारी देवी के ऐतिहासिक उपन्यास

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर की चतुर्थ कन्या और रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्ण कुमारी देवी (१८५२-१९३२ ई०) बंगला-साहित्य की सर्वप्रथम ख्यातिलब्ध लेखिका हैं। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कविता, शिशु-साहित्य और कहानियों की रचना की है। स्वर्ण कुमारी ने चार ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, जिनके नाम हैं 'दीप-निर्वाण' (१८७६ ई०), 'मिवार राज' (१८८७ ई०), 'हुगलीर इमामबाड़ा' (१८८८ ई०) एवं 'विद्रोह' (१८९० ई०)।

महर्षि देवेन्द्रनाथ की कुल १४ सन्तान थीं, जिनमें चार लड़कियां थीं। स्वर्ण कुमारी महर्षि की चतुर्थ कन्या थीं। रवीन्द्र रचनावली के १७वें खण्ड के अन्तिम भाग में रवीन्द्रनाथ के ठाकुर-परिवार की वंशावली दी गई है, जिसमें दिखाया गया है कि स्वर्ण कुमारी देवी देवेन्द्रनाथ की पंचम कन्या और ११वीं सन्तान थीं। असल में प्रथम कन्या की १८३८ ई० में मृत्यु हो गई थी। इसलिए बाद में उन्हें चतुर्थ कन्या ही स्वीकार किया गया। रवीन्द्रनाथ देवेन्द्रनाथ के सबसे कनिष्ठ पुत्र थे। महर्षि देवेन्द्रनाथ की १४ सन्तानों में तीन का नाम साहित्य-जगत में प्रख्यात हुआ—ये हैं नाट्यकार ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर, स्वर्ण कुमारी देवी एवं रवीन्द्रनाथ। वैसे रवीन्द्रनाथ के बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ ने भी थोड़ा साहित्य रचा है।

सुलेखिका

१९वीं शताब्दी की बंगला-साहित्य की लेखिकाओं में स्वर्ण कुमारी देवी का विशिष्ट स्थान है। उनकी रचनाओं की उन दिनों देश-विदेशों में चर्चा हुई। उनके कुछ उपन्यास और कहानियों का यूरोप की भाषाओं में अनुवाद हुआ। स्वर्ण कुमारी ने साहित्य की सभी विधाओं पर कलम चलाई है और सशक्त रचनाओं का प्रकाशन किया है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'दीप निर्वाण' एवं 'हुगलीर इमामबाड़ा' का हिन्दी में अनुवाद हुआ। 'दीप निर्वाण' के हिन्दी में कई संस्करण प्रकाशित हुए। किन्तु आज ऐसा लगता है जैसे इस प्रतिभा सम्पन्न लेखिका का नाम बंगला-साहित्य में जैसे बिस्मृत हो गया है। इसका कारण शायद यह भी हो सकता है कि रवीन्द्र और बंकिम के सूर्य प्रकाश में स्वर्ण कुमारी का दीप निष्प्रभ हो गया। स्वर्ण कुमारी देवी की रचनाओं का प्रकाशन वसुमति साहित्य-मन्दिर से हुआ था, वहीं से बाद में स्वर्ण कुमारी देवी ग्रन्थावली के तीन-चार खण्ड प्रकाशित हुए, किन्तु उसके बाद उनकी कृतियों का प्रकाशन हमें नहीं मिला। बड़े कष्ट से उनकी पुरानी रचनाओं को हमें देखने और

अध्ययन करने का अवसर मिला। आश्चर्य है रवीन्द्र भारती (कलकत्ता) और विश्व-भारती (शान्ति निकेतन) की ओर से भी स्वर्ण कुमारी की रचनाओं के प्रकाशन में उदासीनता दिखाई गई। रवीन्द्र के अग्रज ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का भी इन इन संस्थाओं से प्रकाशन नहीं हुआ। अवश्य ही १९७१ ई० में विश्वभारती के बंगला विभाग के प्राध्यापक डॉ० पशुपति शशमल ने 'स्वर्ण कुमारी ड बांग्ला साहित्य शोध-ग्रन्थ की रचना कर एक बड़े अभाव की पूर्ति की। डॉ० शशमल पूर्व में हमारे कॉलेज (महाराज मणीन्द्रचन्द्र कॉलेज) में बंगला विभाग में प्राध्यापक थे। डॉ० शशमल ने अपने ग्रन्थ के निवेदन में पृष्ठ १८ पर लिखा है—'स्वर्ण कुमारी की विस्मृत स्मृति को पुनरुज्जीवित करने के उद्देश्य से ही मैंने अपने ग्रन्थ की रचना की है और इसमें यह दिखाने की कोशिश की है कि बंकिम से स्वर्ण कुमारी ने कितना कुछ लिया और रवीन्द्र को कितना कुछ दिया।'

डॉ० शशमल की इस शोध कृति का प्रकाशन विश्वभारती (शान्ति निकेतन) से १३७८ बंगाब्द अर्थात १९७१ ई० में हुआ है।

बंकिम और रमेशचन्द्र के बाद बंगला साहित्य में स्वर्ण कुमारी के उपन्यासों की बड़ी चर्चा है। यद्यपि इनके उपन्यासों पर बंकिम का प्रभाव है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से रमेशचन्द्र के उपन्यास इनके अधिक निकट पड़ते हैं, स्वर्ण कुमारी ने ऐतिहासिक घटनाओं के सन्दर्भ में उपन्यासों की रचना की है। उल्लेखनीय है कि रमेशचन्द्र ने जहाँ इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों को अपने उपन्यासों का केन्द्र बिन्दु बनाया वहाँ स्वर्ण कुमारी ने अपेक्षाकृत अल्प प्रसिद्ध इतिहास-पुरुषों को कथा का उपजीव्य बनाया। एक बात बड़ी मार्के की है कि यद्यपि उन्होंने 'दीप निर्वाण' उपन्यास में इतिहास प्रसिद्ध पृथ्वीराज-संयुक्ता की कहानी ली है, पर राजपूती शासन का 'दीप-निर्वाण' उन्होंने थानेश्वर में हुई पृथ्वीराज-मुहम्मद गोरी की लड़ाई को ही माना है। रमेशचन्द्र ने 'राजपूत जीवन-संध्या' की बात राणा प्रताप के तिरोभाव के पश्चात मानी है। दूसरी जो महत्वपूर्ण बात स्वर्ण कुमारी के उपन्यासों में देखने को मिलती है वह है राजपूत-भील अन्तर्द्वन्द्व। अन्य उपन्यासकारों ने राजपूत-मुगल इतिहास को ही उपन्यास-कथा का आधार माना है, पर 'मिवार राज' और 'विद्रोह' में हम राजपूतों और भीलों के बीच पलने वाले असंतोष को विद्रोह के रूप में देखते हैं। जिस समय स्वर्ण कुमारी ने लेखन आरम्भ किया उस समय बंगाल में टॉड का प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजस्थान' बड़ी चर्चा का विषय बना हुआ था। अतः स्वाभाविक है कि उन्होंने भी 'राजस्थान' ग्रन्थ को आधार मान कर अपने ऐतिहासिक उपन्यासों का सृजन किया। 'हुगलीर इमामबाड़ा' में राजा गणेश को लेकर बंगाल में पठान शासन का वर्णन किया है। इस प्रकार उनके उपन्यासों में बंगाल और राजस्थान का इतिहास देखा जा सकता है।

इस इतिहास में उन्होंने अपनी कल्पना और नई उद्भावनाओं का उल्लेख किया है।

स्वर्ण कुमारी 'भारती' पत्रिका से जुड़ी थीं। उन्होंने इस पत्रिका का कुशलता पूर्वक सम्पादन किया। यह पत्रिका हिन्दू-मेला से प्रभावित थी और इसी कारण देश के प्राचीन गौरव और देश-प्रेम को उजागर करना पत्रिका का लक्ष्य था। स्वर्ण कुमारी ने देश-प्रेम की सरिता को अपनी रचनाओं में प्रवाहित किया। ठाकुर-परिवार की जोड़ा-सांकू ठाकुरबाड़ी साहित्य, कला और संस्कृति के प्रति समर्पित थी। ठाकुर-परिवार के ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर ने ऐतिहासिक नाटक लिखे, जिन पर हमने 'बंगला के ऐतिहासिक नाटकों में राजस्थान' अध्याय में चर्चा की है। इसी परिवार के रवीन्द्रनाथ ने विश्व साहित्य में अपनी महिमामयी रचनाओं को प्रस्तुत कर देश का मुख उज्ज्वल किया। बचपन से ही स्वर्ण कुमारी ठाकुरबाड़ी में होने वाली साहित्यिक गोष्ठियों में भाग लेती थीं और अपने सुचिन्तित विचार रखा करती थीं। कहा जाता है उनकी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण शीघ्र ही परिवार के बड़े लोगों की गोष्ठी में उनका प्रमोशन हो गया और वे सब की प्रिय पात्र बन गईं।

'दीप निर्वाण' उपन्यास

स्वर्ण कुमारी का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में २७ वर्षीय श्री जानकीनाथ घोषाल के साथ ब्रह्म-समाज की रीति से हुआ था। श्री जानकीनाथ कृष्णनगर के जयरामपुर के निवासी थे। उन्होंने लन्दन जाकर कानून की पढ़ाई की थी। पति के विदेश प्रवास में स्वर्ण कुमारी अपने पिता के घर में अर्थात जोड़ासांकू ठाकुरबाड़ी में रहती थीं। उनपर ठाकुरबाड़ी के साहित्यिक वातावरण का गहरा प्रभाव था। फलतः उन्होंने 'दीप-निर्वाण' उपन्यास की रचना की।

स्वर्ण कुमारी का प्रथम उपन्यास 'दीप-निर्वाण' १४ दिसम्बर १८७६ ई० को 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। उस समय उनकी उम्र कुल २१ वर्ष की थी। अल्प वय में लिखे उपन्यास में सामान्य त्रुटियों के बावजूद यह उनकी काफी चर्चित कृति है। उनके हृदय में देश की पराधीनता के प्रति मार्मिक पीड़ा थी और वे देशोद्धार के स्वर देश की जनता में फूँकना चाहती थीं। इसीलिए उन्होंने उपन्यास को अपने बड़े भाई सत्येन्द्रनाथ को उत्सर्ग करते हुए लिखा है—

> आर्य अवनति-कथा, पढिये पाइबे व्यथा,
> बहिबे नयने तव शोक अश्रु धारा।
> केमने हासिते बलि, सकलि गियाछे चलि,
> ढेकेछे भारत-भानु घन मेघजाल—
> निभेछे सोनार दीप, भेंगेछे कपाल।

उपहार समर्पिनु सोहासे जतने
लह हासिमुखे निरखिब सुखे
से मधुर स्नेहहास्य सदा जागे मने।
× × ×
किन्तु बा केमने कहि हासिते आबार ?

अर्थात आर्य अवनति को कहानी को पढ़ कर तुमको व्यथा होगी और आँखों से अश्रुओं की जलधारा प्रवाहित होगी। अब मैं तुम्हें हँसने के लिए कैसे कहूँ जबकि सब कुछ विदेशियों ने लूट लिया है और भारत के भाग्य का सितारा काले-मेघों से आच्छादिय हो गया है, भारत का स्वर्ण-प्रदीप बुझ गया है—सौभाग्य अस्तगत हो गया है।

आर्य-अवनति की कहानी की रचना ही लेखिका का प्रमुख उद्देश्य था। देश की पराधीनता उन्हें सालती थी। इसलिए जिस दिन भारत का सूर्य मेघाच्छन्न हुआ और सोने का दीप बुझा उसी दिन से देश पराधीनता की बेड़ियों मे आबद्ध हुआ। तब से देश विदेशी दासता मे पदाक्रान्त है। इससे मुक्ति पाने के लिए देशवासियों के समक्ष देश के गौरवमय अतीत का उल्लेख आवश्यक था।

मुहम्मद गोरी से पृथ्वीराज का थानेस्वर के मैदान में युद्ध हुआ। इस युद्ध में चित्तौड़ के राणा समर सिंह ने अपनी वीरता दिखाई। समर सिंह पृथ्वीराज के बहनोई थे। लेखिका ने इस बात का उल्लेख उपन्यास में नहीं किया है। इसका उन्होंने कोई कारण भी नहीं बताया है, पर डॉ० विजित कुमार दत्त के मतानुसार यह बात कुछ अंशों मे सही प्रतीत होती है कि बहनोई होने के कारण अगर राणा समर सिंह युद्ध में पृथ्वीराज का साथ देते तो बात उतनी जमती नहीं। यह एक साधारण घटना मात्र रहती। देश-मातृका की सेवा में अपने को समर्पित करने के लिए विदेशी आक्रान्ता मुहम्मद गोरी के विरुद्ध समर सिंह ने पृथ्वीराज का साथ दिया था, शायद यह दिखाना स्वर्ण कुमारी का अभीष्ट था।

टॉड ने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में राजा समर सिंह और पृथ्वीराज के संयुक्त अभियान की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है—

Samarsi, prince of Cheetore, had married the sister of Pirthi Raj, and their personal characters, as well as this tie, bound them to each other through-out all these commotions, untill the last fatal battle on the Caggar. From these feuds Hindustan never was free." (Tod's Rajasthan, Page 208).

टॉड ने आगे लिखा है—

"What nation on earth would have maintained the semblance

of civilisation, the spirit or the customs of their forefathers, during so many centuries of overwhelming depression, but one of such singular character as the Rajpoot? Though ardent and reckless, he can, when required, subside into forbearance and apparent apathy, and reserve himself for the opportunity of revenrge. Rajasthan exhibits the sole example in the history of mankind, of a people withstanding every outrage barbarity can inflict or human nature sustain, from a foe whose religion commands annihilation and bent to the earth, yet rising buoyant from the pressure, and making calamity a whetstone to courage. (Ibid, Page 210).

टॉड के मतानुसार—'पृथ्वी पर ऐसी कौन सी जाति है, जो वीरता, धीरता, महानता, सहनशीलता में राजपूत कुल के समान हो सकती है ? और कौन सी जाति है जिसने सैकड़ों वर्षों तक दास भाव से रहकर तथा अनेक अत्याचारों को सहन करके अपने पूर्व पुरुषों की तेजस्विता, सभ्यता अथवा आचार-व्यवहार की बराबर रक्षा की है। यद्यपि राजपूत वीरों का स्वभाव प्रचण्ड और निडर है तथापि वे प्रयोजनानुसार सहनशीलता को ग्रहण करके अत्याचार को सहते हुए वैर-भावना का बदला लेने के लिए अवसर की तलाश किया करते हैं। जिन लोगों के धर्म-ग्रन्थ नरहत्या और संसार का संहार करने का विधान बताते हैं, इस प्रकार के पाषाण हृदय वाले असभ्य शत्रुओं के द्वारा जिस प्रकार के कठोर अत्याचार हो सकते हैं और रक्त-मांस के बने हुए मनुष्य का हृदय जहां तक उन अत्याचारों को सहन कर सकता है, संसार के इतिहास का अवलोकन करने से दिखाई देगा कि इस विशाल संसार में केवल एक राजस्थान ही उसका एक मात्र नमूना है। निर्दयी, निष्ठुर यवन लोगों के पैशाचिक अत्याचार से राजस्थान के कितने ही जनपद, कितने ही नगर और कितने ही गाँव सम्पूर्णतः श्मशान बन गए हैं। बहुत से राजपूत कुलों का नामोनिशान मिट गया है। परन्तु केवल राजपूतों के जातीय-जीवन ने इन सब का बहादुरी और दिलेरी से मुकाबला किया है। वस्तुतः विपत्तियों की समय-शिला पर उनके साहस और वीरता ने अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए अपने को और भी तीक्ष्ण और दुधारी बना लिया है। ऐसी वीर जाति पर किसे गर्व नहीं होगा ? कष्ट सहकर भी जो जीवित है और विदेशी यवनों का मुकाबला करने के लिए कटिबद्ध है।' (टॉड लिखित 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान', प्रथम खण्ड, पृ० २१०)

स्वाभाविक है कि महात्मा टॉड की इस प्रशंसा से बंगला साहित्य के रचनाकार राजस्थान की वीर-गाथाओं को लेकर रचना-प्रक्रिया में प्रवृत्त हो गए और स्वर्ण कुमारी ने भी 'दीप-निर्वाण' की रचना कर डाली। सचमुच एक विदेशी और वह भी अंग्रेज, के मुख से ऐसी प्रशस्ति सुनकर भारत के लेखकों का मानस एक बारगी आनन्द से झूम उठा। विशेष कर अंग्रेजों की दासता के काल-खण्ड में एक अंग्रेज की वाणी बंगला-साहित्य-

कारों के लिए वरदान सिद्ध हो गई। यही नवोदय वाले १९वीं सदी का रिनेसा है।

पृथ्वीराज की मीनार

स्वर्ण कुमारी ने अपने उपन्यास में कई नई बातों की स्थापना की है। उन्होंने उपन्यास की 'उपक्रमणिका' में बताया कि दिल्ली की कुतुबमीनार असल में पृथ्वीराज ने बनाई थी। वस्तुतः जिसे आज 'कुतुबमीनार' के नाम से जाना जाता है उसका नाम 'यमुना-स्तम्भ' था। पृथ्वीराज ने अपनी कन्या को सुबह-शाम यमुना का दर्शन कराने के लिए 'यमुना-स्तम्भ' का निर्माण किया था। इस स्तम्भ के ऊपरी हिस्से को कुतुबुद्दीन ने तुड़वा कर उसे मुसलमानी स्थापत्यकला के ढांचे में ढाल दिया। लेखिका ने उपन्यास में दिखाया है कि पृथ्वीराज के समय से ही हिन्दू युद्ध में तोपों का व्यवहार करते थे। अंग्रेज इतिहासकारों ने हीन भावना के कारण इस सत्य को छिपा लिया है जबकि हकीकत यह है कि यूरोप में १२३६ ई० के पूर्व तोपों का प्रचलन नहीं था।

'दीप-निर्वाण' उपन्यास की भूमिका (उपक्रमणिका) में स्वर्ण कुमारी देवी ने लिखा है कि मुसलमानों के शासन के पूर्व हिन्दू राजाओं में परस्पर वैमनस्य और राज्याधिकार की लिप्सा थी। ऐसी ही एक घटना को लेकर 'दीप-निर्वाण' उपन्यास की रचना की गई है।

दिल्ली की किल्ली

उपन्यास में दिल्ली ही प्रधान केन्द्र बिन्दु है। इस दिल्ली की स्थापना राजा दिलु ने की थी। तुषार वंशीय राजा अनंगपाल ने कई स्तम्भ, दुर्ग और अट्टालिकाओं का निर्माण कराकर दिल्ली को सुन्दर नगरी के रूप में परिणत किया था। दिल्ली के 'आयस स्तम्भ' के बारे में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि अनंगपाल के दरबारी ज्योतिषियों ने राजा से कहा था कि दिल्ली का सिंहासन टलमल कर रहा है और अब यह अधिक दिनों तक आपके वंशधरों के अधिकार में नहीं रहेगा। इस भविष्यवाणी से भयभीत होकर राजा अनगपाल ने ज्योतिषियों से उपाय सुझाने का अनुरोध किया। ज्योतिषियों ने कहा कि एक आयस स्तम्भ धरती के गर्भ में प्रेरित कर गाड़ दिया जाय और वासुकी की पूजा की जाय। अगर वासुकी प्रसन्न होकर इस स्तम्भ को अपने मस्तक पर धारण कर लेंगे तो दिल्ली का सिंहासन अटल हो जायगा। अस्तु, ऐसा किया गया।

पृथ्वीराज ने राज्य प्राप्ति के कुछ दिन बाद इस स्तम्भ को भूगर्भ से उत्थापित कराया यह देखने के लिए कि वह सचमुच वासुकी के मस्तक पर अवस्थित हुआ है या नहीं। इस बात का ब्राह्मणों ने निषेध किया, पर पृथ्वीराज अपने निर्णय पर अडिग रहे। फलतः स्तम्भ को उखाड़ा गया और देखा गया कि उसका मूल अंश शोणिताक्त

है। यह देखकर ब्राह्मणों ने दुःखी होकर कहा कि यह वासुकी के मस्तक का शोणित है और बोले 'दिल्ली की किल्ली ढिल्ली हो गई—राजा का राज जाता रहा।'

अनंगपाल की मृत्यु के बाद उसका नाती (दौहित्र) अजमेर के अधिपति सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। उसके शासनकाल में यद्यपि सभी हिन्दू राजा परास्त हो चुके थे, और गृह-कलह के कारण राज्य की शक्ति काफी हद तक नष्ट हो चुकी थी। यह गृह-कलह परवर्ती काल में अनर्थ का कारण बना और यवनों ने मौके का फायदा उठाकर भारत पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप चिर प्रज्ज्वलित दीपक का निर्वाण हो गया और इसी कथानक पर 'दीप-निर्वाण' उपन्यास की रचना स्वर्ण कुमारी ने की है।

'दीप-निर्वाण' उपन्यास का आधार

स्वर्ण कुमारी देवी के 'दीप-निर्वाण' उपन्यास का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उन्होंने टॉड के 'राजस्थान' के साथ-साथ चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' का भी सहारा लिया था। बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की ओर से सन् १८७३ ई० में चन्दवरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' प्रकाशित हो गया था। इस ग्रन्थ में जॉन बीम्स (John Beams) की टीका और आलोचना अंग्रेजी में है। यह महाकाव्य कई खण्डों में छपा है और सभी खण्डों की टीका अंग्रेजी में है। इससे अवश्य ही स्वर्ण कुमारी को 'पृथ्वीराज रासो' के अध्ययन में सहायता मिली होगी। आपने दिल्ली की किल्ली ढीली होने की कथा का जो विवरण उपन्यास की अनुक्रमणिका में दिया है वह 'पृथ्वीराज रासो' से थोड़ा भिन्न है। रासो में किल्ली को अनंगपाल उखड़वाता है, जिसे उसके पूर्वज कल्हण ने गड़वाया था—चूंकि लेखिका को राजपूती शासन के दीपक का निर्वाण पृथ्वीराज की पराजय से दिखाना था, इसलिए उन्होंने पृथ्वीराज द्वारा किल्ली को उखड़वाने की बात कही है। यहाँ हम 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित 'दिल्ली किल्ली कथा' को प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिसका उल्लेख स्वर्ण कुमारी ने 'दीप-निर्वाण' की भूमिका में किया है।

'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन चार भागों में १९५४ ई० में कविराज मोहन सिंह के सम्पादन में राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर से हुआ है। उसके तीसरे समय में 'दिल्ली किल्ली कथा' पृष्ठ ८१ पर इस प्रकार है—

> बालप्पन प्रथिराज नैं इस सुपनंतर चिन्ह।
> ले जुग्गिनि जुग्गिनि पुरह, तिलक हथ्य करि दिन्ह ॥२॥

बचपन में पृथ्वीराज ने स्वप्न में यह देखा कि एक योगिनी ने उसके ललाट पर स्वयं अपने हाथों से दिल्ली के राज्य का तिलक कर दिया है।

पृथ्वीराज ने स्वप्न की बात अपनी माता से कही। उसकी माँ दिल्लीपति अनंगपाल की पुत्री थी। उसने ज्योतिषियों से स्वप्न के बारे में पूछा। उन्होंने गणना कर बताया कि यह सत्य भविष्यवाणी है। तब पृथ्वीराज की माता (अनंगपाल की पुत्री) ने कहा कि हमारे पूर्व पुरुष राजा कल्हण, जहाँ दिल्ली बसी है, शिकार खेलने गए थे। उस समय उन्होंने एक शशक (खरगोश) के पीछे एक कुत्ते को दौड़ाया। कुछ दूर जाने पर खरगोश श्वान का सामना करने लगा, जिससे श्वान डर गया और भाग छूटा। यह दृश्य देख कर सबों को आश्चर्य हुआ। उस समय उनके साथ जग-ज्योति व्यास नामक एक ज्योतिषी था। उसने मुहूर्त शोधकर उस स्थान पर लोहे की एक कीली गाड़ दी और कहा कि यहीं शेषनाग का सिर है—

> च्यंति व्यास जग जोति तह, सद्धि महूरत ताव।
> दैव जोग सेसह सिरह किल किल्ली न सुभाव ॥१४॥

(वही, पृ० ८६)

उसी कल्हण राजा की कई पीढ़ियों मे अनंगपाल दिल्ली (पुराना नाम कल्हनपुर) का राजा हुआ। जब अनगपाल ने यह प्राचीन बात सुनी तो उसे आश्चर्य हुआ। पश्चात जब अनंगपाल को कोई पुत्र न हुआ तो उसे शंका होने लगी। उसने कुल पुरोहित (व्यास) को बुलाया। व्यास ने शुभ मुहूर्त देख कर उस किल्ली को फिर से गाड दिया। उसने अनंगपाल (तोमर) मे कहा—"महाराज! यह किल्ली ठीक शेषनाग के सिर पर गाड़ दी गई है जिससे आपका वंश ध्रुव तुल्य अचल रहेगा। इस समय वही मुहूर्त है जो कल्हण के समय कीली गाड़ने का था। अगर यह कीली पाँच घड़ी तक पृथ्वी के अन्दर अचल रही तो तंवर वंश का शासन भी दिल्ली पर अचल हो जायगा।' इस कथन से अनंगपाल को विश्वास नहीं हुआ, जो होना था सो हुआ और कीली को उखाड़ने से उस ज्योतिषी की बात सत्य सिद्ध हुई। अनंगपाल ने यह जानने के लिए कि कीली शेषनाग के सिर पर गड़ी है या नहीं, उसे मना करने पर भी उखड़वाया और शेषनाग की रक्तधारा धरती से फूट पड़ी। इस पर कुपित होकर व्यास ने यह कवित्त कहा—

> अनंगपाल छक्कवै बुद्धि जो इसी उकिल्लिय।
> हुय तोंअर मतिहीन, करि किल्लीय तैं ढिल्लीय ॥
> कहै व्यास जग जोति निगम आगम हौं जानों।
> तुंवर ते चौहान अन्त ह्वै है तुरकानों ॥२२॥ (वही, पृ० ८६)

हे अनंगपाल! तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। तुमने कीली को उखड़वा दिया। मैं आगमागम का जानकार हूँ, इसलिए कहता हूँ कि तेरे बाद चौहान (पृथ्वीराज) का

दिल्ली में राज्य होगा और फिर तुरकों का।

सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने माता से इस वृतान्त को सुनकर खुशी के बाजे बजवाये। किन्तु 'दीप-निर्वाण' में कीली पृथ्वीराज के द्वारा उखड़वाई गई और दिल्ली की किल्ली ढिल्ली होने की बात कही गई।

'दीप-निर्वाण' में स्वर्ण कुमारी ने यूरोप के पूर्व भारत में तोपों के प्रचलन की बात कही है। लेखिका ने लिखा है कि रामायण-महाभारत काल के अग्निवाणों को अंग्रेज-इतिहासकार स्वीकार नहीं करते, किन्तु असल में ये अग्निवाण तोपों या प्रक्षेप-शास्त्रों का काम करते थे, जिन्हें आज मिसाइल कहते हैं। आपने अनुक्रमणिका की पादटीका में अपने मत को पुष्ट करने के लिए इतिहासकार हालहेड की उक्ति को उद्धृत किया है—बहुत काल पूर्व से चीन और भारत में बारूद के प्रयोग को लोग जानते थे और उसका इस्तेमाल करते थे—

Halhead says—'Gunpowder has been known in China as well as Hindoostan far beyond all periods of investigation." Quoted by Elliot in his 'History of India'.

स्वर्ण कुमारी देवी ने चन्दवरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' के 'कन्नौज खण्ड' के एक छप्पय को उद्धृत कर अपनी बात पुष्ट की है और कहा है कि चन्दवरदाई के युद्ध वर्णन से यह प्रमाणित होता है कि उस समय युद्धों मे तोपों का व्यवहार धड़ल्ले से होता था—

नृप पंगन पर छूटे अराव।
कोटहि कगूर चढ़ि चढ़ि सिताब।
जम्बूर तोप छूटहि झनकि।
दस कोस जाय गोला भनकि।
सिरदार भार बाराह रोह।
लागीं अभङ्ग बरहनै कोह।

अर्थात्—सब ओर तोपों से ऐसी विकट ध्वनि और उसके गोलों से ऐसा भयानक शब्द होने लगा कि वह दस कोस तक सुना जाता था। कवि ने 'नौ लक्ष मुद्रा हार' में युद्ध वर्णन करते हुए लिखा है, भारी वजनवाली तोपें पंक्तिबद्ध रूप से सज्जित रहीं, तोपों से छूटनेवाले गोले तीन कोस की दूरी तक रास्ते में पड़े थे। हिन्दी के जानकार अंग्रेज लेखकों ने चन्दवरदाई के काव्य का अनुवाद करते समय एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' में तोपों का अंग्रेजी अनुवाद Cannon शब्द से किया है।

इस प्रकार अल्पवय में लिखा गया स्वर्ण कुमारी देवी का उपन्यास 'दीप-

निर्वाण' इतिहास के कई तथ्यों पर नई रोशनी डालता है। लेखिका इस सम्बन्ध में कितनी सचेतन और खोजी दृष्टि रखती थीं, इसका यह प्रमाण है। तभी तो न केवल बंगला भाषा में अपितु देश-विदेश की अन्य भाषाओं में 'दीप-निर्वाण' का अनुवाद हुआ और लेखिका की प्रशंसा की गई।

गाजीपुर वासी वकील मुंशी श्री उदितनारायण वर्मा ने 'दीप-निर्वाण' का हिन्दी अनुवाद किया और वह हाथों हाथ बिक गया।

गोरी और पृथ्वीराज का युद्ध

कन्नौज का राजा जयचन्द गृह-कलह का सबसे बड़ा कारण बना। नागौर में बहुत दिनों से भूगर्भ में छिपी सत्तर लाख स्वर्ण-मुद्राओं की खोज के लिए पृथ्वीराज ने चित्तौड़ के राजा समर सिंह से सहायता ली और स्वर्ण-मुद्राओं को प्राप्त किया। जयचन्द और पत्तन (पाटण) के राजा ने ईर्ष्या से कुपित होकर मुहम्मद शहाबुद्दीन गोरी को दिल्ली पर आक्रमण करने का न्योता दिया। ११९१ ई० में पृथ्वीराज और गोरी की सेनाओं में थानेश्वर के तराई के मैदान में घमासान युद्ध हुआ। इसमें गोरी की पराजय हुई, पृथ्वीराज और समर सिंह ने युद्ध में बड़ी वीरता और रण कौशल का परिचय दिया। पृथ्वीराज ने गोरी को बन्दी बनाया और फिर अपनी सौजन्यता के कारण उसे मुक्त कर दिया। चूंकि थानेश्वर के प्रथम युद्ध से उपन्यास का कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए जयचन्द का सिर्फ नामोल्लेख किया गया है।

पराजित होकर गोरी स्वदेश लौट गया और पुनः ११९३ ई० में उसने दिल्ली पर आक्रमण किया। इस युद्ध से जयचन्द और उसके साथी प्रसन्न हुए। तीन दिन तक जबरदस्त युद्ध हुआ। यवनों की धूर्तता और विश्वासघातकता के कारण पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसकी मृत्यु हुई। इसी समय से हिन्दू राज्य के दीपक बुझने की शुरूआत हुई। चित्तौड़ के राजा समर सिंह ने दोनों युद्धों में बहादुरी दिखाई। उपन्यास में दो स्थानों पर समर सिंह के बारे में स्वतन्त्र कल्पना की गई है—एक तो उसे चार वर्ष बड़ा दिखाया गया है दूसरे वह पृथ्वीराज का बहनोई था, इसका उल्लेख नहीं किया गया है। लेखिका ने जान-बूझकर ऐसा किया है। वैसे यह पुस्तक उपन्यास है, इतिहास नहीं, फिर भी कहानी में इतिहास के पात्रों और घटनाओं की यथासाध्य पूरी रक्षा की गई है।

चन्दबरदाई को लेखिका ने कविचन्द्र के नाम से अभिहित किया है। इंगलैण्ड के सर फिलिप सिडनी एवं सर वाल्टर राल की भांति कवि चन्दबरदाई भी काव्य और युद्ध-विद्या में बड़े निष्णात थे। उनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का बेजोड़ महाकाव्य है। इसे हिन्दी का प्रथम महाकाव्य कहा जाता है, जिसमें पुरानी राजस्थानी डिंगल को वीररस में ढाला गया है। इसमें शृंगार और वीररस

की प्रधानता है तथा पृथ्वीराज और संयुक्ता की प्रेम-कहानी का सुन्दर आख्यान है। लेकिन 'दीप-निर्वाण' में इस प्रेम कहानी का उल्लेख नहीं है। अन्य प्रेम-कहानियों का वर्णन कर लेखिका ने उसकी क्षतिपूर्ति कर दी है, जिनमें मुख्य हैं कल्याण-विजय-ऊषावली, किरण-शैलबाला एव चन्दबरदाई-प्रभावती की प्रेम-कहानियाँ। रमेशचन्द्र दत्त के 'बंग-विजेता' की सरला और अमला की भाँति शैलबाला और प्रभावती में सख्य-भाव देखा जा सकता है।

तीस परिच्छेदों में लिखा 'दीप-निर्वाण' उपन्यास चित्तौड़ की कहानी से आरम्भ होता है। उस दिन राजा समर सिंह के पुत्र-रत्न की प्राप्ति पर सारे नगर में खुशियाँ मनाई जा रही हैं। राजा समर सिंह की प्रथम पत्नी से तीन पुत्र थे। पहली रानी की मृत्यु होने से उन्होंने लक्ष्मी देवी से विवाह किया, पर जब उसके कोई सन्तान नहीं हुई तो उन्होंने पाटन के राजा की कमला देवी या कर्मादेवी से विवाह किया। इसी रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र-रत्न की खुशी मे चित्तौड़ में आनन्द मनाया गया। ज्योतिषियों ने राजा को बताया कि प्रथम पुत्र कल्याण की सिंहासन पर बैठने के पूर्व ही मृत्यु हो जायेगी तथा बाकी दोनों पुत्र राजा होने योग्य नहीं हैं। ज्योतिषी मंगलाचार्य ने बताया कि नए कुमार की तीन वर्ष तक पूरी चौकसी से रक्षा करनी पड़ेगी और तीन वर्ष बाद संकट टल जायगा। पगली बिन्दु दासी ने नए बच्चे को गोद में ले लिया और नदी की ओर भाग गई। असल में बिन्दु को ६ महीने के पूर्व बच्चा हुआ था, जिसकी मृत्यु से वह पगली हो गई थी। वह यह विश्वास करती थी कि राजा ही उसका पति है और नई सन्तान उसी की सन्तान है। नए बालक का नाम किरण रखा गया था। इस घटना से दुःखी होकर राजा समर सिंह ने चतुर्भुजा देवी के मन्दिर में जाकर मुकुट का परित्याग कर दिया और कमल के फूलों की माला पहन कर 'योगिन्द्र' हो गए। उपन्यास के तृतीय परिच्छेद के पृष्ठ १५ पर इस घटना का बड़ा रोचक वर्णन हुआ है। यह ऐतिहासिक घटना है, जिसका उल्लेख टॉड ने भी अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में किया है—

"The style of address and the apparel of Samarsi be token that he had not laid aside the office and ensigns of a 'Regent of Mahadeva'. A simple necklace of the seeds of the lotus adorned his neck, his hair was braided, and he is addressed as Jogindra or Chief of ascetcs". (Tod's Rajasthan, Vol. I, Page—208)

बिन्दु पगली की कहानी ऐतिहासिक घटना है। वह नदी में डूब कर मर गई, पर किरण सिंह बच गया। कर्मदेवी ने कुतुबुद्दीन को हराया। टॉड ने लिखा है—

"समर सिंह के युद्ध में मारे जाने पर उसकी रानी पृथा उसके साथ ही सती हो गई थी और उसका बेटा कर्णसिंह उस समय नाबालिग था। समर

सिंह के कई छोटे बेटे थे। लेकिन कर्णसिंह ही उसका उत्तराधिकारी था। उसके नाबालिग होने के कारण समर सिंह की दूसरी रानी कर्मदेवी ने, जो विधवा हो चुकी थी, राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। उसके शासन-काल में कुतुबुद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। रानी कर्मदेवी ने शत्रु का मुकाबला करने के लिए युद्ध की तैयारी की ओर स्वयं घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए गई। उसके साथ नौ राजा और ग्यारह शूरवीर सामंत अपनी सेनाओं के साथ कर्मदेवी की सहायता के लिए युद्ध करने के लिए गए। अम्बेर के पास दोनों ओर की सेनाओं का आमना-सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। उस संग्राम में कुतुबुद्दीन की पराजय हुई। वह घायल होकर भागा। रानी कर्मदेवी की विजयी सेना शत्रु को भगा कर लौट आई।" ('टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास' अनुवादक—केशव कुमार ठाकुर, 'मेवाड़ का इतिहास', पृ० १४७)

चूंकि कल्याण अपने पिता समर सिंह के साथ युद्ध में मारा गया था और दूसरा पुत्र कुम्भकरण दक्षिण में चला गया था, जहाँ उसने एक राज्य की स्थापना की। इसलिए रानी कर्मदेवी ने किरण सिंह की बाल्यावस्था में स्वयं कुतुबुद्दीन से युद्ध किया। राजकुमार कर्ण सिंह सन् ११९३ ई० में चित्तौड़ का राजा हुआ। कुतुबुद्दीन मुहम्मद गोरी का गुलाम था, जिसे दिल्ली का प्रशासन सौंप कर गोरी गजनी लौट गया था।

इस तरह स्वर्ण कुमारी देवी ने युग-धर्म के मुताबिक देश-प्रेम की सरिता प्रवाहित करने के उद्देश्य से 'दीप-निर्वाण' उपन्यास की रचना की और उन्हें इसमें सफलता मिली।

दीप-निर्वाण का हिन्दी अनुवाद

गाजीपुर निवासी वकील मुन्शी श्री उदितनारायण वर्मा ने 'दीप-निर्वाण' का हिन्दी में अनुवाद किया और वह हाथों हाथ बिक गया।

इसलिए स्वर्ण कुमारी के 'दीप-निर्वाण' का द्वितीय संस्करण १९०५ ई० में काशी के भारत जीवन प्रेस से हुआ। इसमें 'दीप-निर्वाण' की अनुक्रमणिका (भूमिका) सहित वर्माजी ने अनुवाद किया है।

पुनः १९३३ ई० में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा 'मुक्त' ने 'दीप-निर्वाण' का अनुवाद किया, जिसका प्रकाशन उत्थान ग्रन्थमाला कार्यालय, दिल्ली से हुआ। इसके मुख्य पृष्ठ पर लिखा गया है—'बंगला की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती

स्वर्ण कुमारी देवी का उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास।" श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' ने उपन्यास में लेखिका की अनुक्रमणिका का अनुवाद नहीं किया है। किन्तु इलाहाबाद से १०-१२-१९३२ ई० को लिखे अपने पूर्वाभास (भूमिका) में लिखा है—'दीप-निर्वाण' ऐतिहासिक उपन्यास है—कोरी ट्रेजेडी। यह भारतवर्ष के दुर्भाग्य की कहानी है, जिसे पढ़ कर वेदना के दो आँसू बरबस लुढ़क पड़ते हैं। आपस की फूट, राज्य का लोप और प्रेम की निराशा मनुष्य को कितना घातक, कितना हिंस्र बना देती है, यह इस उपन्यास में बड़ी अच्छी तरह दिखाया गया है। कथानक ऐतिहासिक है और उपन्यास की मूल लेखिका श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी ने घटनाओं की ऐतिहासिकता की रक्षा करने का पूरा प्रयत्न किया है, किन्तु जहाँ-तहाँ वे कुछ भौगोलिक गलतियाँ कर गई हैं। अनुवाद में उन गलतियों से बचने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास के बीच-बीच में प्रेम के जो वर्णनात्मक स्थल आये हैं, वे बड़े मधुर और मनोरंजक हैं। स्त्री पात्रों में शैल कुमारी का चित्र बड़ा मनोरम और कौतूहल से भरा हुआ है।"

कवि भगवती प्रसाद चौधरी का 'कर्मदेवी' काव्य

कलकत्ता के चर्चित कवि श्री भगवती प्रसाद चौधरी ने राजस्थानी भाषा में 'कर्मदेवी' काव्य की रचना की है। यह कृति अप्रकाशित है, किन्तु जैसे हमें कवि किशोर कल्पनाकान्त की हस्तलिखित काव्य कृति 'पद्मणी' मिल गई, वैसे ही श्री चौधरी की काव्य कृति 'कर्मदेवी' की हस्तलिखित पाण्डुलिपि मिल गई। कवि ने 'कर्मदेवी' काव्य की रचना १९८९ ई० में की है। श्री भगवती प्रसाद चौधरी हिन्दी-राजस्थानी के कवि और लेखक हैं। आपकी अन्य प्रकाशित रचनाएँ हैं—'दिशाओं के पार' (हिन्दी), 'सुणस्यांणी' (राजस्थानी व्यंग्य रचना), 'तुलसी चन्नण' (राजस्थानी दोहे), 'आकाश गंगा के किनारे' (हिन्दी), 'सुपना मोरे पंखी' (चेतन स्वामी कृत कवि की हिन्दी कविताओं का राजस्थानी अनुवाद) एवं 'सौ पलक्यां रा पावड़ा' (पलक पर रचित एक सौ राजस्थानी दोहे)। इन सभी रचनाओं का प्रकाशन रस-कलश प्रकाशन, कलकत्ता से हुआ है। सम्प्रति राजस्थान अकादमी द्वारा श्री भगवती प्रसाद चौधरी को उनकी राजस्थानी रचनाओं के लिए १९९० ई० में पुरस्कृत किया गया है।

'कर्मदेवी' काव्य में मेवाड़ के राणा समर सिंह की दूसरी रानी कर्मदेवी (करुणावती) की वीरता का ओजस्वी बखान है, जिसने कुतुबुद्दीन के आक्रमण का डटकर मुकाबला किया था। 'दीप-निर्वाण' उपन्यास में समर सिंह ने पृथ्वीराज के

साथ मुहम्मद गोरी से युद्ध किया था। उसकी मृत्यु के बाद समर सिंह की रानी पृथा तो पति की मृत्यु के पश्चात सती हो गई, किन्तु दूसरी रानी कर्मदेवी ने चित्तौड़ का राजकार्य सम्भाला और पृथा के पुत्र कर्ण सिंह का स्नेह से लालन-पालन किया। कर्मवती के शासनकाल में गुलाम वंश के प्रथम दिल्लीपति कुतुबुद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण किया। उसी युद्ध का 'कर्मदेवी' काव्य में वर्णन है—

थी कर्मदेवी देश में, मेवाड़ की सिंघण बठै।
दूजी बणी राणी जणा, देश में संकट अठै॥ १।
राणा समर सा वीर हा, प्रिय प्राण प्यारा साथ में।
भरती सदा राणी पृथा, निज भैण सी नित बांथ में॥ २॥
थो पूत छोटो एक ही, राणी पृथा री गोद में।
दोनू खिलाती चाव सैं, भरती सदा ही मोद में॥ ३॥
पण काल की गति है सदा, सिर माणखै कुण देख ले।
है लेख जो करमाँ लिख्या, कुण आय जग में लेख ले॥ ४॥
राणा गया सुरगाँ जणा, राणी पृथा सुत सूँप के।
होगी सती बड़ भागणी, सज साथ अपणै भूप के॥ ५॥

पृथ्वीराज-गोरी के युद्ध में राणा समर सिंह के वीरगति पाने पर तथा राणी पृथा के सती होने पर बालक कर्ण सिंह के लालन-पालन तथा राजकार्य का भार समर सिंह की दूसरी रानी कर्मदेवी के कन्धों पर आ गया। वह वीर रमणी थी। उसने अपने को चित्तौड़ की रक्षा में समर्पित कर दिया। मुहम्मद गोरी कुतुबुद्दीन को दिल्ली का शासन सौंप कर गजनी चला गया था। उसने कुतुबुद्दीन को आगाह कर दिया था कि मेवाड़ एक ऐसा राज्य है, जो कभी विदेशी दासता को स्वीकार नहीं करता। फलतः कुतुबुद्दीन ने राज्य विस्तार के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। उसने समझा था कि राणा समर सिंह की मृत्यु के बाद वह आनन-फानन में मेवाड़ को जीत लेगा।

'कर्मदेवी' का कवि कहता है—

गोरी जिसै जग नीच रो, सेनापति कुतुबुद्दीन हो।
कमजोर खातर काल तो, बलवाण आगै दीन हो॥१३॥
खोटी सदा थी भावना, निज राज रो विस्तार हो।
जग मांय कायर हो जिका, बलहीण लूटण त्यार हो॥१४॥
गोरी महम्मद नै कही, मेवाड़ है निबळो बठे।
करकै चढ़ाई जीत ल्यो, कुण है, जिका जूझै बठै॥१५॥

× × ×

गद्दो बठै मेवाड़ री, करुणावती सम्हालती ।
हो कर्ण भी छोटो घणो, थी साथ बीनै पालती ॥१७॥
था वीर सै चिन्ता भर्या, सुण फौज ले गोरी चढ़ै ।
राजा नहीं जद राज में, कुण साथ ले शूराँ बठै ॥१८॥

× × ×

सुण कर्मदेवी बात नै, तण राजमाता सिंहणी ।
राजा नहीं तो के हुयो, हूँ अठे सबरी धणी ॥२१॥
या बीर जाया मौन हैं, मेवाड़ माथो देश रो ।
कण-कण बसै है शूरमाँ, यो देश है रण भेष रो ॥२२॥

और रानी कर्मदेवी ने मेवाड़ी सेना को तैयार कर युद्ध के लिए कूच कर दिया। वह वीरबाला युद्ध की पोशाक में सज गई। घोड़े पर सवार होकर हाथ में तलवार लेकर उसने मेवाड़ी सेना का नेतृत्व किया। देखिए—

खुद राजमाता सज गई, सिर ताण, कर तलवार ही ।
मानो सजी रण भेष में, चण्डिका अब त्यार हो ॥३३॥
जद युद्ध का डंका बज्या, सज बीर सारा त्यार हो ।
ले हाथ में तलवार नै, कद काल रै सिर वार हो ॥३४॥

कुतुबुद्दीन और कर्मदेवी की सेना में भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में कुतुबुद्दीन की बुरी तरह पराजय हुई और वह भाग छूटा। सेनापति के पलायन से तुर्क सेना भी भाग खड़ी हुई। युद्ध का वर्णन देखिए—

तलवार चालै बीजली, था शीश कटता जार्या ।
थी धार लोही बह चली, खोडा सभी खड़का रह्या ॥३६॥
कट-कट पड़ै धड़ मुण्ड सै, करवाल ताण्डव कर रही ।
रण चण्डिका रण में सजी, सा फौज दुश्मन भर रही ॥४०॥
ले प्राण भाग्या तुर्कड़ा, तोबा करी मेवाड़ सै !
अल्लाह ! अब पिण्डो छुड़ा, म्हें धापग्या ई राड़ सै ॥४१॥

इस प्रकार कवि भगवती प्रसाद चौधरी ने राणी कर्मदेवी की वीरता का बखान किया है। कर्मदेवी ने अपने अदम्य साहस और वीरता से देश की स्वतन्त्रता की

रक्षा की। ऐसी वीर नारियों से मरुभूमि सदा उजागर रही है। कवि ने ५१ पदों में 'कर्मदेवी' काव्य की रचना की है।

मिवार राज

१८८७ ई० में स्वर्ण कुमारी का 'मिवारराज' उपन्यास प्रकाशित हुआ। पहले यह रचना 'कलंक' नाम से 'भारती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यद्यपि लेखिका ने इसे ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी है, पर यह एक बड़ी कहानी मात्र है। उपन्यास की जटिलता, घटनाओं को बहुलता और अन्तर्द्वन्द्व की सूक्ष्मता इसमे नहीं है। 'दीप-निर्वाण' में राजपूतों की कथा है और उसमे हिन्दू राज के 'दीप-निर्वाण' को दिखाया गया है। 'मिवारराज' मे राजपूतों के अभ्युदय को दिखाया गया है। इसमे भील और राजपूतो का सम्बन्ध चित्रित है। टॉड के 'राजस्थान' से लेखिका ने कथा वस्तु ली है। इसमें जिन ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है, वे टॉड के ग्रन्थ से ली गई हैं। बप्पा और गोह का अलग-अलग व्यक्तित्व है एवं मेवाड़ के प्रथम शासनकर्ता के रूप में गोह को लेखिका ने इतिहास का प्रमाण देकर उपस्थित किया है। राजपूतों के साथ ईरानियों का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसे रचना में दिखाया गया है।

जिस प्रकार लेखिका ने 'दीप-निर्वाण' अपने अग्रज सत्येन्द्रनाथ को उत्सर्ग किया है वैसे ही 'मिवार राज' उपन्यास को सत्येन्द्रनाथ की पुत्री इन्दिरा को भेंट किया है, देखिए—

> तुई स्नेहमयी, जेन वरषार फूल—
> कोमल माधुरी-माखा बिमल बकुला।....
> एनेछि ए शोकगीत, तोमार परश-प्रीति
> फूटावे विरागमाझे सुराग मुकुल।

भीलराज मण्डलीक की स्नेह-ममता से गोह का पालन-पोषण हुआ। गोह का आरम्भ में एक ब्राह्मण महिला के द्वारा पालन हुआ था। इसलिए गोह अपने को ब्राह्मण समझता था, पर बहन सत्यवती से उसे अपने परिचय का पूरा वृतान्त मालूम हुआ। मण्डलीक के पुत्रों को द्वन्द्व-युद्ध मे परास्त कर उसने अन्त में मण्डलीक की हत्या कर दी। यह उसको विश्वासघातकता का घृणित कार्य था। गोह के वंशधर 'गहिलोत' या 'गह्लोट' के नाम से पुकारे जाने लगे। यही उपन्यास की कहानी है, जिसमें भीलों की सरलता, कर्तव्य-परायणता, प्रभु-भक्ति आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है। राजपूत और भीलों के बीच जो विरोध था उसका भी उपन्यास में वर्णन है। लेखिका ने १६ परिच्छेदों में लिखे इस उपन्यास में भीलों की भाषा का कथोपकथन में प्रयोग किया है, पर

वह राजस्थान के भीलों की भाषा न होकर संथाल-परगना (बिहार) के आदिवासियों की भाषा हो गई है।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'राजकाहिनी' में गोह की कहानी को प्रांजल भाषा में लिखा है और स्वर्ण कुमारी ने भी भाषा को सुन्दर बनाने की कोशिश की है, पर अवनीन्द्रनाथ की भाषा का सा माधुर्य उसमें नहीं है। 'राजकाहिनी' पर हम 'कहानी अध्याय' में चर्चा करेंगे।

गोह के जन्म का वृतान्त टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित है। म्लेच्छ लोगों की विश्वासघातकता के कारण वल्लभीपुर के महाराजा शिलादित्य का निधन हुआ। उस समय उनकी रानी पुष्पावती गर्भवती थी। इसलिए अन्य रानियाँ तो पति के साथ सती हो गईं पर रानी पुष्पावती ने गर्भ-रक्षा के लिए अपने को बचाकर मालिया नामक शैल-माला की एक गुफा में रखा। वहाँ समय पाकर एक पुत्र हुआ। गुफा में जन्म होने के कारण उसका नाम गोह रखा गया। मालिया शैलमाला के निकट वीरनगर में कमलावती नामक एक ब्राह्मणी रहती थी। रानी पुष्पावती ने उस ब्राह्मण कुमारी के हाथ में अपने बालक कुमार गोह को समर्पण कर स्वामी का अनुगमन किया अर्थात सती हो गई।

धीरे-धीरे गोह जब बड़ा हुआ तो वह राजपूत कुमारों के साथ खेलने लगा। मेवाड़ के दक्षिण पार्श्व की घनी शैलमाला के भीतर ईडर नामक एक भील राज्य है, मंडलीक उस समय भीलों का राजा था। गोह भील बालकों के साथ जंगलों में घूमता और खेलता। एक दिन भील बालकों ने एक खेल खेला, जिसमें गोह को राजा बनाया गया। एक भील बालक ने अपनी उंगली काट कर रक्त से गोह को राजतिलक किया। वृद्ध भीलराज मंडलीक ने जब यह सुना तो प्रसन्न होकर उसने गोह को राज्यभार सौंप दिया। कहते हैं कि भीलों के जिस राजा ने अपने पुत्रों को सिंहासन न देकर गोह को सौंपा उसी गोह ने भीलराज का प्राण संहार किया। कृतघ्नता का यह कलंक गोह के मत्थे है।

गोह के वंशधरों के बारे में इतिहास में थोड़ा वृतान्त पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि गोह के बाद आठवीं पीढ़ी तक ईडर राज्य में गहिलोतों का राज्य रहा। आठ पीढ़ी तक बराबर स्वाधीनताप्रिय भील लोगों ने राजपूतों के चरणों में अपने स्वाधीनता-रत्न को बेचकर सुख-दुःख से विजातीय पराधीनता को सहन किया था, परन्तु वे स्वाधीनता के पुजारी थे। भील इस पराधीनता को सहन नहीं कर पा रहे थे। मंडलीक की हत्या के बाद से ही उनके मन में राजपूतों के प्रति विद्रोह की भावना थी। आठवीं पीढ़ी में गोह के वंश में नागादित्य नाम का राजा उत्पन्न हुआ। एक दिन नागादित्य शिकार के लिए वन में गया, उसी समय भील लोगों ने प्रचण्ड विक्रम के साथ राजा को घेर लिया और उसकी हत्या कर ईडर राज्य पर अपना अधिकार किया।

'मिवार राज' उपन्यास में स्वर्ण कुमारी ने बंकिम की भांति टॉड के 'राजस्थान' के अंग्रेजी संस्करण से कई लम्बे अंग्रेजी उद्धरण दिए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि स्वर्ण कुमारी ने अपनी रचनाओं का आधार टॉड के 'राजस्थान' को बनाया है।

'मिवार राज' उपन्यास का परिशिष्ट

स्कॉट और बंकिम की भांति स्वर्ण कुमारी ने भी उपन्यास के अन्त में परिशिष्ट में कई ऐतिहासिक तथ्यों का खुलासा किया है। इसमें लेखिका ने दिखाया है कि मेवाड़ के राजाओं का वंश ईरान-वंश से नहीं है, जैसा टॉड साहब ने दिखाने की कोशिश की है। साथ ही लेखिका ने यह भी दिखाया है कि गोह और बप्पा एक नहीं दो व्यक्ति थे। गुह या गोह शिलादित्य का पुत्र था और बप्पा नागादित्य का पुत्र। गुहा मेवाड़ देश का आदि पुरुष है, जिसके नाम से मेवाड़ के राणा 'गुहलोट' कहे जाते हैं। यह सच है कि गुहा ने सम्पूर्ण मेवाड़ राज्य की सीमा तक सूर्यवंश की पताका फहराई थी और पश्चात् नागादित्य के पुत्र बप्पा ने पूरे मेवाड़ राज्य में अपनी विजय पताका फहरा दी। इन तथ्यों से भी इस उपन्यास का नामकरण 'मिवार राज' समीचीन लगता है। लेखिका का मत है कि ईरानी लोग भी सूर्योपाशक हैं और मेवाड़ के राणा भी, लेकिन इस सादृश्यता के आधार पर ही उन्हें ईरान-वंश से जोड़ना तर्कसंगत और युक्तिपूर्ण नहीं है। टॉड साहब को इसका भ्रम हो गया था। स्वर्ण कुमारी देवी ने मागधी भाषा में रचित 'उपदेश प्रदान' से उद्धरण देकर बताया है कि मेवाड़ वंश का आदिपुरुष शिलादित्य भारतवर्ष के गुजरात प्रदेश का था और ब्राह्मण कन्या से सूर्य के द्वारा उसका जन्म हुआ था। इसका उल्लेख टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ में है। स्वर्ण कुमारी की भांति अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी 'राज-काहिनी' कहानी-संग्रह में गुहा और बप्पा की अलग-अलग कहानियाँ दी हैं और शिलादित्य का जन्म सूर्य देवता से दिखाया है।

जनजागरण में जोड़ासाकूँ ठाकुरबाड़ी का अवदान

१९वीं शताब्दी के नवजागरण काल में लेखिका श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना कर कई ऐतिहासिक तथ्यों पर नया प्रकाश डाला है। यह उनकी सजग चिन्तनशीलता और जोड़ासाँकू ठाकुर बाड़ी के परिवेश का प्रभाव है। जोड़ासाँकू ठाकुर बाड़ी (रवीन्द्र का जन्म

स्थान) देश के नवजागरण में वही महत्व है जो यूरोप के फेरेन्सटाइन मेदिसी-गोष्ठी का है। १६वीं शताब्दी के नवजागरण में रवीन्द्र के ठाकुर-परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है और स्वर्ण कुमारी उसी मानसिकता की उपज हैं। वे महर्षि देवेन्द्रनाथ की चतुर्थ कन्या और रवीन्द्र की बड़ी दीदी हैं।

'विद्रोह' उपन्यास

स्वर्ण कुमारी ने भीलों के असन्तोष को दिखाने के लिए 'विद्रोह' उपन्यास की रचना १८६० ई० में की। टॉड के 'राजस्थान' से भीलों के विद्रोह का आंशिक कथानक लेकर लेखिका ने अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा इस उपन्यास की रचना की है। कई आलोचकों की धारणा है कि 'विद्रोह' उपन्यास 'मिवार राज' का उत्तरार्द्ध है।

कथानक

'विद्रोह' उपन्यास के द्वितीय परिच्छेद में दिखाया गया है कि गोह या गुह ने छठी शताब्दी में ईडर का जो छोटा सा राज्य स्थापित किया था, वह आठवीं शताब्दी में मेवाड़ राज्य के अन्तरभाग तक फैल गया था। गुह के प्रपौत्र आशादित्य ने आहर पर्यन्त इसका विस्तार कर दिया था तथा आशापुर नगर बसाया था। आशादित्य का ही प्रपौत्र था नागादित्य, जो ईडर पर शासन करता था। नागादित्य की हत्या के बाद ईडर पर भीलों का अधिकार हुआ। टॉड ने 'राजस्थान' ग्रन्थ में लिखा है—"नागादित्य के बप्पा नामक तीन वर्ष का बालक था। उस बालक की रक्षा का कोई उपाय दिखाई नहीं देता था। इसलिए कि भीलों का आतंक लगातार बढ़ता जाता था। लेकिन उसकी रक्षा का उपाय निकला, वीरनगर की जिस कमलावती ब्राह्मणी ने शिशु गोह के जीवन की रक्षा की थी, उसी के वंशजों ने शिलादित्य के राज-वंश की रक्षा करने का काम किया।" (टॉड का 'राजस्थान', प्रथम खण्ड, पृ० १८१)

'विद्रोह' उपन्यास ६४ परिच्छेदों में विभक्त है। नागादित्य के विरुद्ध मण्डलीक का वंशधर जंगू था। जंगू ने राजपूतों के विरुद्ध जूमिया को भड़काया। जंगू का पुत्र जूमिया भील सरदार था, जो नागादित्य का प्रिय पात्र था। इससे राजा के दरबारी भी नाखुश थे। जूमिया की पालिता कन्या थी, जिसका नाम सुहारा था। यह कन्या जब युवती हुई तो नागादित्य की सुहारा के प्रति आसक्ति हो गई। उसने उससे विवाह करना चाहा। इसी विवाह प्रसंग को लेकर राजा के परिवार में भी असन्तोष पैदा हुआ। नागादित्य की रानी और राजपुरोहित ने राजा को बहुत समझाया, पर वह विवाह के लिए अड़ा रहा और भीलों का विद्रोह हुआ। फलतः नागादित्य की मृत्यु हुई और ईडर का राज्य भीलों को मिला। टॉड ने जहाँ शिकार के समय नागादित्य

की हत्या की बात का उल्लेख किया है, लेखिका ने अपनी कल्पना से सुहारा को केन्द्र बना कर भीलों का विद्रोह दिखाया है और नागादित्य को हत्या दिखाई है।

स्वर्ण कुमारी ने 'विद्रोह' उपन्यास में दिखाया है कि जिस सुराहा या सुहारा-मती के प्रकरण को लेकर भीलों का विद्रोह हुआ, वह असल में उसी कमलावती ब्राह्मणी के वंश की थी। बचपन से ही वह अपने माँ-बाप से बिछुड़ गई थी और भीलों द्वारा पालित हुई थी। भील सरदार जूमिया ने उसका पालन-पोषण किया था। पुरोहित हरिताचार्य के भाई की कन्या सुहरामती ने ही कमलावती की भाँति बप्पा का पालन-पोषण किया था। जैसे गुहा को उसके वंश का परिचय उसकी बहन सत्यवती से मालूम हुआ था। उस भाँति सुहारामती को उसका वंश परिचय नहीं दिया गया। इसी कारण 'विद्रोह' उपन्यास में जटिलता देखी जाती है। स्वर्ण कुमारी ने ब्राह्मण पुरोहित का नाम हरिताचार्य दिया है, जो हमें टॉड के 'राजस्थान' (अंग्रेजी) के प्रथम खण्ड के १८४ पृष्ठ पर फुटनोट में मिलता है।

इस प्रकार स्वर्ण कुमारी ने एक अछूते कथानक को लेकर 'विद्रोह' उपन्यास की रचना की। 'विद्रोह' उपन्यास में भी स्वर्ण कुमारी ने टॉड के 'राजस्थान से अंग्रेजी उद्धरण दिए हैं।

बंगला-साहित्य में राजस्थान पर अन्य उपन्यास

अब हम संक्षेप में बंगला-साहित्य के अन्य उपन्यासकारों और उनकी कृतियों पर चर्चा करेंगे।

दामोदर मुखोपाध्याय

दामोदर मुखोपाध्याय ने महाराणा प्रताप सिंह के जीवन-चरित्र को लेकर १८८४ ई० में 'प्रताप सिंह' उपन्यास की रचना की। लेखक ने टॉड के 'राजस्थान' से ऐतिहासिक उपकरण लेकर इस ग्रन्थ को प्रणीत किया है। लेखक ने लिखा है—'भारत हितैषी महात्मा टॉड द्वारा लिखित 'राजस्थान' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ से मैंने अजस्र सहयोग लिया है।'

यह उपन्यास दो खण्डों में विभक्त है—पहले खण्ड मे २१ परिच्छेद है तथा दूसरे में १२ परिच्छेद हैं। बंकिम की भाँति प्रत्येक परिच्छेद का अलग-अलग नामकरण किया गया है। दामोदर मुखोपाध्याय ने एक ओर जहाँ टॉड का अनुकरण किया है वहीं दूसरी ओर अपनी कल्पना-शक्ति का भी पूरा परिचय दिया है। राणा प्रताप के जीवन की सभी घटनाएँ 'राजस्थान' ग्रन्थ से संकलित हैं, किन्तु उपन्यास में कुमार अमर सिंह और राजा रघुवर राय की कन्या उर्मिला तथा कुमार रतन सिंह और देवलगढ़ के राजा की कन्या यमुना की रोमांटिक प्रेम-कहानी का उल्लेख कर लेखक ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।

हल्दीघाटी के युद्ध में उर्मिला की उपस्थिति तथा युद्ध में आहत अमर सिंह तथा रतन सिंह का अरावली पर्वत के तापस आश्रम में सेवा-सुश्रुषा के लिए स्थानान्तरण एवं वहाँ छद्मवेश में रतन की प्रेमिका यमुना और उसकी सहचरी कुसुम का मिलन, मुगलों से उर्मिला द्वारा अमर सिंह की रक्षा आदि घटनाएँ लेखक की अपनी कल्पना की उपज हैं। लेखक ने प्रताप के मंत्री भामाशाह को 'भवानी' नाम से अभिहित किया है। टॉड ने प्रताप की कन्या का नामोल्लेख नहीं किया है, पर उपन्यास में उसका नाम हेमन्त बताया गया है।

रोहिणी कुमार सेनगुप्त

रोहिणी कुमार सेनगुप्त ने १८८६ ई० में टॉड के 'राजस्थान' ग्रन्थ को अवलम्ब बनाकर 'चण्ड-विक्रम' उपन्यास लिखा। इसमें राणा लाखा के ज्येष्ठ पुत्र कुमार

चण्ड का अद्भुत प्रण और देश-प्रेम दिखाया है। उसके निर्लोभ चरित्र से प्रभावित होकर लेखक ने उपन्यास की रचना की है। उपन्यास में लेखक ने अपनी कल्पना का पूरा परिचय दिया है। चण्ड के भाई युवराज रघुदेव की हत्या का टॉड के 'राजस्थान' में वर्णन है, पर लेखक ने उसे नहीं दिखाया है अपितु हम रघुदेव की चित्तौड़ की रक्षा में कुमार चण्ड का सहभागी होते हुए देखते हैं। रणमल की हत्या उपन्यास में मुकुल की राजमाता की दासी के द्वारा न दिखाकर जैसलमेर के महाराज चन्दन सिंह की पत्नी के हाथों दिखाई गई है। ('चण्ड' के कथानक पर गिरीश घोष का नाटक प्रसिद्ध है—देखिए नाटक अध्याय।)

उपन्यास काफी बृहद है और इसमे ६० परिच्छेद हैं। बंकिम की भांति लेखक ने भी प्रत्येक परिच्छेद के आरम्भ मे रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों से सूक्तियो के उद्धरण दिए हैं।

हाराणचन्द्र रक्षित

हाराणचन्द्र रक्षित ने 'मंत्रेर साधन', 'ज्योतिर्मयी', 'बंगेर शेष वीर', 'प्रतिभा सुन्दरी' आदि कई उपन्यास लिखे। जहाँ एक ओर हाराणचन्द्र ने बगभूमि के प्रतापादित्य को लेकर 'बंगेर शेष वीर' उपन्यास लिखा वहीं टॉड के 'राजस्थान' से उपकरण लेकर राणा प्रताप पर १८९८ ई० मे 'मंत्रेर साधन' उपन्यास लिखा। लेखक ने भूमिका में लिखा है कि १८७९ ई० मे लिखे गये 'बंगेर शेष वीर' मे बगाल के प्रतापादित्य ने जैसे पाठकों का मन मोह लिया था, अब 'मंत्रेर साधन' मे 'भारत के प्रताप' अवश्य ही लोगो के हृदय पर छा जायेंगे। क्योंकि स्वाधीनता के प्रेमी, पुरुष सिंह, प्रातः स्मरणीय राणा प्रताप का जीवन चरित्र ऐसा ही है। लेखक ने लिखा है कि मनस्वी टॉड का 'राजस्थान' ही मेरे उपन्याम का स्रोत है।

इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद 'वीरव्रत पालन' नाम से ग्वालियर के राज-पण्डित बनवारीलाल तिवारी ने १९०३ ई० मे किया। 'मंत्रेर साधन' उपन्यास तीन खण्डों मे विभक्त है। प्रथम खण्ड का नाम है 'व्रत ग्रहण'। इसमे दस परिच्छेद हैं, दूसरे खण्ड का नाम है 'व्रत पालन', इसमे चौदह परिच्छेद हैं, तीसरे खण्ड का नाम है 'व्रत उद्घाटन' या 'अवसान', इसम केवल दो परिच्छेद हैं। भूमिका के रूप मे चार परिच्छेद हैं, जिनका नामकरण किया गया है 'उद्बोधन'।

'उद्बोधन' में राणा प्रताप के सिंहासन आरोहण एवं अहेरिया प्रसंग का उल्लेख है। इसमें राणा प्रताप और शक्ति सिंह के विवाद को बड़े ही नाटकीय ढंग से दिखाया गया है।

बंग-भंग की पूर्व पीठिका के रूप में बंगाल और राजस्थान के दो प्रतापों के

माध्यम से लेखक ने स्वदेश-प्रेम और देश की स्वाधीनता का गुणगान किया है। यही कारण है कि हाराणचन्द्र के ये दो उपन्यास उस काल-खण्ड में बड़े चर्चित हुए थे। 'बांगला ऐतिहासिक उपन्यास' के लेखक अर्पणा प्रसाद सेनगुप्त ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ १६० पर लिखा है—'मेवाड़ के प्रताप सिंह एवं यशोहर के प्रतापादित्य के जीवन-चरित्रों का बड़ा महत्व है। इतिहास में इन दोनों वीरों के कार्य और वाक्यों ने देश-प्रेम का जो मंत्र दिया है, उससे पराधीनता की नागपाश में आबद्ध भारतीय समाज को स्वतंत्रता की बड़ी प्रेरणा मिली है। अंग्रेजों की दासता के काल में स्वाभाविक है कि इन वीरों पर लिखे गए उपन्यास लोगों को प्रिय लगे।'

'व्रत-ग्रहण' खण्ड में दिखाया गया है कि राणा प्रताप ने मुगलों से चित्तौड़ का उद्धार करने के लिए कठोर प्रतिज्ञा की। उन्होंने राजसी वेश-भूषा का परित्याग कर कष्ट का जीवन स्वीकार किया। द्वितीय खण्ड में बीकानेर के राजा पृथ्वीराज की पत्नी जोत्सना और पृथ्वीराज को भगिनी यमुना का कथोपकथन बड़ा मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। 'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा' की उपाधि पाने वाले सम्राट अकबर का नौरोज के मेले में पृथ्वीराज की पत्नी के सामने आत्म-समर्पण एक ऐसी घटना है, जो पाठकों के हृदय को छू जाती है। कामांध होकर जब अकबर नौरोज के मेले मे पृथ्वीराज की पत्नी का हाथ पकड़ता है तो वह वीरांगना छुरी निकाल कर अकबर की छाती पर सवार हो जाती है। इस प्रसंग के बारे में लेखक का दृष्टिकोण देखिए—'जो अकबर हिन्दू और मुसलमानों के समक्ष श्रद्धा का पात्र था, वह कितना कामुक और पतित था, उसका प्रमाण नौरोज के मेले से लगता है, जहाँ शाह अपनी कुत्सित भावनाओं को पूरा करने के लिए जाया करता था ? पाठक ! मेरे इस कथन पर मुझे दोष न दें, बल्कि स्वयं अकबर की पाप कालिमा को देखें। यह अकबर के माथे पर बड़ा कलंक था।'

उपन्यास के तृतीय खण्ड मे राणा प्रताप के जिस स्वप्न-दृश्य को दिखाया गया है, वह बड़ा ही प्रासंगिक और मौजू है। राणा चित्तौड़ की स्वाधीनता के लिए व्यग्र हैं और देश अंग्रेजों की पराधीनता को बेड़ियों से मुक्ति पाने के लिए व्याकुल हैं। उपन्यास का एक दोष यह है कि लेखक कई जगह स्वयं वक्ता हो गया है और उससे रस-भंग की मात्रा अधिक हो जाती है। 'मन्त्रेर साधन' पर स्वर्ण कुमारी का प्रभाव स्पष्ट है।

हरिसाधन मुखोपाध्याय

हरिसाधन मुखोपाध्याय ने कई नाटक और उपन्यास लिखे हैं। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'नूरमल', 'लाल चिट्ठी', 'कंचन चोर' एवं 'शाहजादा खुशरू' आदि। 'शाहजादा खुशरू' उपन्यास मे अकबर बादशाह की मृत्यु के समय उसके पुत्र सलीम और खुशरू में सिंहासन के लिए प्रतिद्वन्द्विता हुई थी। इसमें राजा मानसिंह ने खुशरू का पक्ष लिया था। खुशरू मानसिंह का भांजा था और अकबर के मन्त्री खाँ आजम का दामाद था। मानसिंह और आजम का षड़यन्त्र विफल हुआ। सलीम ने सम्राट बनने के बाद खुशरू को अधा कर दिया। खुशरू के जीवन में किस प्रकार अंधकार के बादल छा गए, यही दिखाया गया है।

बंगला-साहित्य मे उस समय जासूसी उपन्यासो की कई सिरीज निकली थी उनमें 'रहस्य लहरी सिरीज', 'रहस्य रोमास सिरीज', 'कांचनजंघा सिरीज'। इसी परम्परा में हरिसाधन मुखोपाध्याय ने राजपूत मुगल इतिहास को लेकर 'रंगमहल सिरीज' की रचना की। इसी सिरीज मे 'शाहजादा खुशरू' उपन्यास संकलित है। उल्लेखनीय है कि हरिसाधन बाबू के इन उपन्यासों का धड़ल्ले से हिन्दी मे अनुवाद हुआ और कई संस्करण हाथो हाथ बिक गए।

गोपाल मजुमदार

गोपाल मजुमदार का 'रावमाला' उपन्यास राणा लाखा और उसके पुत्र चण्ड को लेकर लिखा गया है। चण्ड को लेकर गिरीश घोष ने 'चण्ड' नाटक लिखा और रोहिणी कुमार सेनगुप्त ने 'चण्ड-विक्रम' उपन्यास लिखा। इसके बाद इसी उपाख्यान को लेकर गोपाल मजुमदार ने 'रावमाला' उपन्यास लिखा। जब कुमार चण्ड के लिए विवाह का नारियल आया तो हँसी-हँसी में राणा लाखा ने उसे अपने लिए समझ लिया और अन्त मे बाध्य होकर राणा को विवाह करना पड़ा। इस विवाह से मुकुल का जन्म हुआ और वही राणा बना। कुमार चण्ड ने असीम त्याग और बलिदान दिखाया। यह वृतान्त टॉड के 'राजस्थान' से लेखक ने लिया है, लेकिन उपन्यास में एक काल्पनिक कहानी प्रधान हो गई है। अलेक्जेण्डर ड्यूमा के 'थ्री मस्केटियर्स' के अनुकरण पर यह कहानी है।

कहानी इस प्रकार है—'मन्दोर की तलवार प्रतियोगिता में बुद्धव नाम के एक युवक ने अपना कमाल दिखाया और वह श्रेष्ठ तलवार चालक घोषित हुआ। युवक की अभिलाषा थी मेवाड़ का सैनिक बनने की, श्रेष्ठ वीर घोषित होने पर सैनिक बनने मे तो कोई बाधा नहीं हुई, पर उसे अपनी प्रेयसी को पाने में बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। बुद्धव तिलांजलि से प्रेम करता था और उससे एक ऐसा व्यक्ति विवाह करना चाहता

था, जिसे युद्धव श्रद्धा करता था। उसका यह प्रतिद्वन्द्वी उसका पिता ही था। इस प्रकार एक काल्पनिक कहानी को भी चण्ड की कहानी के साथ लेखक ने जोड़ कर अपनी नई उद्भावना का परिचय दिया है।

सीतानाथ चक्रवर्ती

सीतानाथ चक्रवर्ती ने १९१२ ई० में 'सरोज सुन्दरी' उपन्यास की रचना की। लेखक ने भूमिका में लिखा है—'राजस्थान के पुरातन वृतान्त के आधार पर आर्यकीर्ति का प्रचार करना तथा जातीय गौरव को दिखाना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है।'

उपन्यास चार खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड में उदय सिंह के विवाह का वर्णन है। इस उपन्यास मे ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा अनैतिहासिक घटनाओं की ही प्रधानता है। टॉड के 'राजस्थान' में राणा उदय सिंह का विलासी जीवन दिखाया गया है। वह एक वेश्या के वश में था और उसी की प्रशासन में प्रधानता थी। 'सरोज सुन्दरी' उपन्यास में उस वेश्या का नाम अरुणा बताया गया है तथा सम्पूर्ण उपन्यास में उसका मुख्य रूप से चित्रांकन किया गया है। उपन्यास का नामकरण राणा उदय सिंह की विवाहिता पत्नी सरोज सुन्दरी के नाम पर किया गया है। वह शनिगुरु सरदार अखिल राव की कन्या थी, पर उपन्यास में उसकी कोई विशेष भूमिका नहीं है।

उपन्यास में अकबर द्वारा चित्तौड़ पर दो बार आक्रमण हुआ! इसका वर्णन 'राजस्थान' ग्रन्थ के आधार पर हुआ है। उपन्यास में राजपूत कलंक उदय सिंह के चरित्र को लेखक ने थोड़ा सहानुभूति से चित्रित किया है, पर पाठक उसके प्रति जरा भी श्रद्धा का भाव नहीं रख सकते हैं।

हरिमोहन मुखोपाध्याय

हरिमोहन मुखोपाध्याय ने भूदेव मुखर्जी की भांति कण्ट्रार के 'रोमांस ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' से उपाख्यान लेकर 'जयावती उपाख्यान' तथा 'कमला देवी' उपन्यास की रचना की। 'कमला देवी' १८८५ ई० में लिखा गया उपन्यास है, जिसमें राजा मानसिंह का वर्णन है। जिन राजपूतों ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उनमें राजा मानसिंह भी एक था। मानसिंह राजपूतों की नजर मे श्रद्धा का पात्र नहीं था। विशेषकर, स्वाधीनता-कामी राजपूतों में उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। रमेशचन्द्र दत्त ने 'राजपूत जीवन-संध्या' में राजा मानसिंह को प्रताप के द्वारा अपमानित कराकर गौरव से च्युत किया है, किन्तु हरिमोहन मुखोपाध्याय ने राजा मान सिंह के चरित्र का उज्ज्वल पक्ष उद्घाटित किया है। राजा मानसिंह के गुणों का बखान

कर लेखक ने भूमिका में लिखा है—

'राजा मानसिंह को हिन्दू जाति का कलंक कहना अनुचित होगा, अपितु उसके गुणों को देखकर उन्हें देवता तुल्य श्रद्धा का पात्र कहना अधिक समीचीन होगा।'

अकबर के पुत्र सलीम (जहांगीर) को केन्द्र कर मानसिंह ने षड़यन्त्र का बीज वपन किया। सलीम को हटाकर पुनः हिन्दू गौरव का पुनरुद्धार करना उसका अभीष्ट था। अकबर की रानी कमला देवी मानसिंह के इस कार्य में सहायक हुई पर अन्त में मानसिंह का षड़यन्त्र विफल हुआ। उपन्यास मे मानसिंह, कमला देवी, हेमलता (अजय सिंह की कन्या) के प्रणय प्रसंगों का भी उपन्यास में उल्लेख है। उपन्यास में इतिहास के अतिरिक्त कल्पना का विशेष योग है। इसीलिए मानसिंह के भाई का बहुरूपी चरित्र अतिरंजना की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। लेखक ने राजा मानसिंह के चरित्र को उज्ज्वल करने के लिए दिखाया है कि उसने अकबर के साम्राज्य को ध्वंस करने के लिए षड़यन्त्र किया तथा एक विशाल सेना का संगठन किया। वह भेष बदल कर अकबर के हरम में जाता है और अकबर की प्रियतमा रानी कमलावती से प्रेमालाप करता है तथा षड़यन्त्र की योजना बनाता है, पर एक अनुचर के विश्वासघात से उसकी योजना विफल होती है और उसका दुर्ग ध्वंस होता है।

किशोरी मोहन राय

किशोरी मोहन राय के 'हम्मीर' उपन्यास में राजपूत गौरव का पूरी मात्रा में उल्लेख किया गया है। इस उपन्यास की भूमिका में लेखक ने लिखा है—'इसके पूर्व राजपूत वीर हम्मीर के चरित्र पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा गया है। इसलिए इस अछूते जीवन-चरित्र पर मैंने उपन्यास को रचना की है।' किन्तु वास्तविकता यह है कि किशोरी मोहन राय का 'हम्मीर' उपन्यास १८९१ ई० में प्रकाशित हुआ और उसके पूर्व हरिश्चन्द्र हल्दार ने तथा सुरेन्द्रनाथ मजुमदार ने 'हम्मीर' नाम के दो नाटक १८८१ ई० में लिखे थे।

किशोरी मोहन राय ने लिखा है—"राणा हम्मीर की रानी क्षेत्रकुमारी की अद्भुत पति-भक्ति और हम्मीर की देश-भक्ति ने मिलकर सोने में सुहागे का काम किया। इन देवोपम भावनाओं के सम्मिश्रण से चित्तौड़ का उद्धार हुआ। पराधीन जाति के लिए ऐसे वीर पुरुषों की जीवनी उत्साहवर्द्धक होती है।"

'हम्मीर' उपन्यास टॉड के 'राजस्थान को आधार मानकर लिखा गया है। उपन्यास के मुख पृष्ठ पर टॉड की उक्ति का उद्धरण दिया गया है, जो राजस्थान के वीरों की विरुदावली का प्रशस्ति-पत्र है।

राणा हम्मीर की कहानी इस प्रकार है—"१३०१ ई० में वीर श्रेष्ठ हम्मीर का मेवाड़ के राज्य पर अभिषेक हुआ, पर उनके राज्य पर शत्रुओं का अधिकार था। अल्लाउद्दीन ने चित्तौड़ का अपहरण कर उसे जालौर के शौनगड़े वंशीय मालदेव नाम के एक सरदार को सौंप दिया था। राणा हम्मीर केलवाड़ा में रहते थे। चित्तौड़ के राजा मालदेव ने चतुराई से अपनी एक विधवा कन्या का विवाह करने के लिए तथा हम्मीर का अपमान करने के लिए सगाई का नारियल भेजा। यवनों से चल रहे संग्राम के समय मालदेव ने किस अभिप्राय से विवाह का प्रस्ताव किया था, यह हम्मीर और उसके सरदारों के लिए कौतुहल का विषय था। तो भी राणा हम्मीर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस बहाने वह अपने पुरखों के चित्तौड़गढ़ को देखने का लोभ संवरण नहीं कर सका। हम्मीर दुल्हा बनकर पाँच सौ घुड़सवारों को लेकर चित्तौड़ पहुँचा। मालदेव के पाँच पुत्रों ने बारात की अगवानी की पर नगर के सिंहद्वार पर विवाह-सूचक 'तोरण' न देखकर हम्मीर को कुछ शंका हुई। राजपूतों मे भाले की नोक से तोरण तोड़कर स्त्री-रत्न प्राप्त किया जाता है। तोरण समबाहु त्रिभुज के आकार में काठ के तीन डंडों पर बना होता है। कन्या की सहेलियाँ उस तोरण की रक्षा करने के लिए छत पर खड़ी रहती हैं। वर जिस समय घोड़े पर सवार होकर आता है तो भाले की नोक से तोरण तोड़ना चाहता है। तब स्त्रियाँ गीत गाती हैं और अबीर गुलाल फेंकर कर नकली लड़ाई लड़ती हैं। जब तोरण टूट जाता है तब सहेलियाँ भाग जाती हैं।

हम्मीर विवाह मण्डप मे पहुँचा तब भी वहाँ उसे विवाह की धूम-धाम देखने को नहीं मिली, लेकिन मालदेव ने शीघ्र ही अपनी कन्या को लाकर हम्मीर के हाथ में समर्पित कर दिया। केवल गठजोड़ हुआ और वर-कन्या का हाथ एक-दूसरे के हाथ पर रखा गया। हम्मीर को बड़ा आश्चर्य हुआ। तदन्तर वर और वधू को एकान्त गृह में लाया गया। हम्मीर चिन्ताकुल था। उसकी म्रियमाणदशा को देखकर नववधू ने पति के चरणों में गिर कर विनीत स्वर मे कहा—'स्वामी! दासी का इसमें कोई अपराध नहीं है। इस दासी को जिस गुप्त रीति से आपको समर्पित किया गया है, उस बात को मैं जानती हूँ। अगर आज्ञा हो तो निवेदन करूँ।'

हम्मीर ने उस बालिका के निश्छल मुख को देखकर उसे उठाया और हृदय से लगाया तथा गूढ़ वृतान्त को प्रकाश करने के लिए कहा।

'स्वामी! आप विस्मित न हों, मैं बाल-विधवा हूँ, परन्तु आप दासी से घृणा न करें। बचपन में भट्टवंशीय किसी राजकुमार के साथ मेरा विवाह हुआ था। उस समय मैं इतनी छोटी थी कि विवाह की कोई बात मुझे याद ही नहीं, यह भी स्मरण नहीं कि मेरे पति कैसे थे। विवाह के थोड़े दिन बाद

माता से सुना कि मेरे पति संग्राम में मारे गए। तब से मैं अभागिनी विधवा और अनाथ हूँ। आज आपको पाकर मेरा दुःख दूर हो गया।'

उस समय राजपूत लोग विधवा-विवाह को बुरा मानते थे और जिस समय यह उपन्यास लिखा गया उस समय विद्यासागर विधवा-विवाह का प्रचार कर रहे थे। युग-धर्म के अनुसार तथा सामाजिक सुधार के युग में लेखक ने ऐसे प्रकरण का विशेष रूप से उल्लेख किया है।

कुछ समय बाद मालदेव की कन्या क्षेत्र कुमारी के गर्भ से एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ। राज-ज्योतिषी ने बालक के ग्रह देखकर कहा—'इस लड़के पर चित्तौड़ के पुत्रक-देवता क्षेत्रपाल की कुदृष्टि है। जब तक इसका खण्डन नहीं किया जायगा, बालक का अमंगल होगा।'

हम्मीर की महारानी क्षेत्र कुमारी के लिए यह अमंगल सुमंगल हो गया। फलस्वरूप मालदेव को पत्र भेजा गया। मालदेव ने पत्र पाते ही अपनी पुत्री और दौहित्र को बुला भेजा। महारानी पुत्र को लेकर जब चित्तौड़ पहुँची तो मालदेव सरदारों को लेकर मीर लोगों का दमन करने बाहर गया हुआ था। मौका पाकर हम्मीर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी और महारानी क्षेत्र कुमारी की सहायता से राणा हम्मीर को पुनः चित्तौड़ मिल गया।

इसी कथानक का किशोरी मोहन राय ने 'हम्मीर' उपन्यास में वर्णन किया है और सामाजिक समस्या अर्थात् विधवा-विवाह की समस्या का उल्लेख कर स्वदेश-प्रेम की बात कही है। मालदेव ने दिल्ली में जाकर अल्लाउद्दीन के उत्तराधिकारी मुहम्मद खिलजी से हम्मीर की शिकायत की। खिलजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, पर राणा हम्मीर से उसे शिकस्त खानी पड़ी।

टॉड ने अपने ग्रन्थ में लिखा है—

"Hamir succeeded in A. D. 1301, and had sixtyfour years granted to him to redeem his country from the ruins of the past century, which period had elapsed since India ceased to own the paramont sway of her native princes".

x x x

"Hamir was the sole Hindu prince of power now left in India, all the ancient dynasties were crushed and the ancestors of the present princes of Marwar and Jeipoor brought, their levies, paid homage, and obeyed the summons of the prince of Cheetore,

as did the Chiefs of Boondi, Gwalior Chanderi, Raeseen, Sicri, Calpee, Aboo etc."

(Annals and Antiquities of Rajasthan, By James Tod, Vol. I, Chapter-VI, Page 217 and 221)

'पद्मिनी' उपन्यास

१८६४ ई० में 'पद्मिनी' नाम का एक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसमें हम्मीर के पूर्व की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। रानी पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य से मुग्ध होकर अल्लाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। उस समय राणा लक्ष्मण सिंह (११७५ ई०) चित्तौड़ के सिंहासन पर विराजमान थे। चूँकि लक्ष्मण सिंह छोटी उम्र में ही युवराज हुए थे। इसलिए जब तक वे समर्थ नहीं हुए तब तक उनके चाचा भीम सिंह (रतन सिंह) ही राज कार्य सम्भालते थे। राणा भीम सिंह की पत्नी पद्मिनी थी। पद्मिनी को पाने में जब अल्लाउद्दीन विफल हुआ तो दर्पण में उसका सुन्दर मुख देख कर ही सन्तोष करने पर राजी हुआ। चित्तौड़ के गढ़ में यह व्यवस्था की गई। अल्लाउद्दीन ने दर्पण में पद्मिनी का चेहरा देखा और जब भीम सिंह उसे किले के बाहर पहुँचाने गया तो उसने छल-कपट से भीम सिंह को बन्दी बना लिया। उसने कहला भेजा कि पद्मिनी को देकर भीम सिंह को छुड़ाया जा सकता है। राजपूतों ने बड़ी युक्ति से इस बात को स्वीकार किया और पद्मिनी को ७०० पालकियों के साथ भेजने की व्यवस्था हुई। असल में पद्मिनी के स्थान पर राजपूत वीर गए और पालकियों में भी सैनिक गए। इस प्रकार भीम सिंह का उद्धार किया गया। इस युद्ध में वीरवर गोरा और उसके भतीजे युवक वीर बादल ने बड़ी वीरता दिखाई।

पुनः अल्लाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण हुआ। राणा लक्ष्मण सिंह को स्वप्न में मेवाड़ की कुलदेवी ने दर्शन दिए और कहा कि 'मैं भूखी हूँ। युद्ध हो।' तब राणा लक्ष्मण सिंह के बारह पुत्रों में यह विवाद होने लगा कि पहले कौन कुमार देवी की आज्ञा का पालन कर युद्ध करे। सबसे पहले बड़े राजकुमार अरिसिंह को राज्य के सिंहासन पर आरूढ़ किया गया। फिर वे युद्ध में गए और वीरगति को प्राप्त हुए। इसी अरि सिंह की पत्नी से हम्मीर का जन्म हुआ था। अरि सिंह के बाद अजय सिंह ने अपने बड़े भाई का अनुसरण करने का निश्चय किया, परन्तु महाराणा लक्ष्मण सिंह अपने सभी पुत्रों में अजय सिंह से अधिक स्नेह करते थे। इस तरह ग्यारह राजकुमार तो युद्ध में काम आये पर अजय सिंह को मेवाड़ के शिशोदिया कुल की रक्षा के लिए केलवाड़ा दुर्ग में भेज दिया गया। पद्मिनी के साथ अन्य राजपूत बालाओं ने जौहर किया और राणा लक्ष्मण सिंह तथा भीम सिंह आदि राजपूत वीरों ने चित्तौड़ की रक्षा में प्राणाहुति दी। जब अल्लाउद्दीन श्मशान के रूप में परिणत चित्तौड़ दुर्ग में पहुँचा तो उसे कुछ भी हाथ नहीं लगा। उसकी इस मानसिकता को एक शायर ने इन शब्दों में कहा है—

आये थे गुल के वास्ते बस खार ले चले।
हिजरों का पद्मिनी के यह आजार ले चले॥
दिल की जो थी हविस वो न निकली हजार हैफ।
गो जेवरो-जवाहर बेशुमार ले चले॥

कुमार अरि सिंह की एक उपकथा में कहा गया है कि राणा के प्रथम पुत्र अरि सिंह एक दिन अन्दवा नामक वन में शिकार खेलने गए। वहाँ एक वराह को देख कर उन्होंने बाण चलाया। परन्तु निशाना चूक जाने से वराह भाग कर पास के एक ज्वार के खेत में घुस गया। अरि सिंह शिकार के पीछे-पीछे खेत में गए। उस खेत में एक टांड बना था, उस पर एक युवती खड़ी होकर खेत की रखवाली करती थी। वह टांड से नीचे उतरी और बोली—'कुमार! अब आपको परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं, मैं अभी वराह को लाये देती हूँ।' उस बाला ने जुवार के डंठल तोड़े और उन्हें नुकीला बना कर बड़े वेग से फेंका। उस भालेनुमा डंठल के लगते ही वराह मर गया। तब बाला वराह को लेकर कुमार के पास आई और अपने काम में लग गई। राजपूत बाला के इस पराक्रम को देखकर कुमार अरि सिंह भौंचक्के रह गए। राजकुमार और उसके साथी नदी के किनारे बैठ कर भोजन कर रहे थे और वीर बाला की बहादुरी पर बातें कर रहे थे कि ज्वार के खेत से एक मिट्टी का ढेला आकर राजकुमार के घोड़े को लगा और वह तुरंग जमीन पर गिर गया। उसकी टांग टूट गई। असल में वही युवती ढेला फेंक कर खेत को नष्ट करने वाले पक्षियों को उड़ा रही थी। जब उसे घोड़े के घायल होने का पता चला तो वह कुमार के पास क्षमा याचना करने आई। उसकी निडरता, सभ्यता और शील को देखकर राजकुमार प्रसन्न हुए।

जब कुमार अरि सिंह शिकार खेल कर राज भवन को जा रहे थे तो रास्ते में फिर वह युवती मिली। उस समय उस बाला के सिर पर दूध का एक बर्तन था और दोनों हाथों से भैंस के दो बच्चों को हाँक रही थी। अरि सिंह के साथियों को मजाक सूझा। उनमें से एक ने कौतुक से दूध के बर्तन को पृथ्वी पर गिराने के अभिप्राय से अपने घोड़े को युवती की ओर दौड़ाया। वह बाला इस बात को समझ गई और उसने भैंस के एक बच्चे को इतनी जोर से दौड़ाया कि घुड़सवार घोड़े सहित जमीन पर आ गिरा। सब लोग ठहाका मार कर हँसने लगे।

खोज करने पर पता चला कि चन्दाणी कुल (चौहान कुल की एक शाखा) के राजपूत की वह वीर बाला कन्या थी। दूसरे दिन कुमार अरि सिंह कन्या के पिता के पास उसके पाणिग्रहण के लिए गये। कन्या का पिता पहले तो तैयार नहीं हुआ, पर जब उसकी पत्नी ने अपनी स्वीकृति दे दी तो अरि सिंह के साथ उस वीर बाला का विवाह हो गया। उसी के गर्भ से हम्मीर का जन्म हुआ। राणा अजय सिंह ने अपने

दोनों पुत्रों को अयोग्य समझ कर काफी खोज पड़ताल कर हम्मीर को बुलाया और उसे सिंहासन पर बैठाया। खेद है 'पद्मिनी' उपन्यास के रचयिता का नाम हमें इस कृति में नहीं मिला। किन्तु इतना तो कहना होगा इस उपन्यास में राजस्थान की अपूर्व वीर गाथाओं का भण्डार है।

दयालचन्द्र घोष

दयालचन्द्र घोष ने भी किशोरी मोहन राय की भांति हम्मीर के जीवन चरित्र को लेकर दो खण्डों में 'हम्मीर' उपन्यास १६१५ ई० में लिखा। प्रथम खण्ड में बीस परिच्छेद हैं तथा द्वितीय खण्ड में उन्नीस परिच्छेद हैं। लेखक ने लिखा है कि उपन्यास इतिहास नहीं है। फिर भी दयालचन्द्र घोष ने इतिहास को थोड़ा-बना तोड़ा-मरोड़ा है। उसने टॉड के 'राजस्थान' में वर्णित सभी घटनाओं का उपयोग किया है। अरि सिंह का विवाह, अजय सिंह द्वारा अपने भतीजे हम्मीर को चित्तौड़ का उत्तराधिकारी मनोनीत करना, अजय सिंह के दोनों पुत्रों का दुखी होना, एक की मृत्यु तथा दूसरे के द्वारा दक्षिण में राज्य की स्थापना। इसी वंश में मराठा वीर शिवाजी का जन्म, हम्मीर द्वारा भील सरदार (डाकू) गुँज की हत्या आदि सभी बातें 'राजस्थान' ग्रन्थ से ली गई हैं।

मालदेव द्वारा अपनी कन्या का हम्मीर के साथ विवाह, हम्मीर का पाँच सौ घुड़सवारों को लेकर चित्तौड़ जाना, साधारण रीति से विवाह, यहाँ तक कि मालदेव के अनुरोध पर मुहम्मद खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण और हम्मीर द्वारा पराजित होना सभी घटनाएँ टॉड के 'राजस्थान' से ली गई हैं।

कुछ बातों में लेखक ने नई कल्पनाओं का सृजन किया है। टॉड के 'राजस्थान' में मालदेव की कन्या को बाल-विधवा बताया गया है, पर दयालचन्द्र ने इसमें एक नवीनता जोड़ी है। मालदेव की कन्या कहती है—'मेरे जन्म के पूर्व मेरी कई बहनों की अकाल-मृत्यु हो गई। इसलिए भिन्न कुल में वाग्दान करने से कन्या की रक्षा हो सकती है—इसलिए मेरे जन्म के एक वर्ष के बाद ही मेरा विवाह एक भट्ट वंशीय राजकुमार के साथ कर दिया गया।'

मालदेव की कन्या का नाम टॉड के 'राजस्थान' में नहीं है, पर उसका नाम जहाँ किशोरी मोहन राय ने क्षेत्र कुमारी नाम दिया है वहीं दयालचन्द्र ने उसका नाम शिवानी बताया है। शिवानी हम्मीर के प्रति पहले से ही अनुरक्त थी, इसे उपन्यास में बड़ी कुशलता से दिखाया गया है।

बरदाकान्त मजुमदार

१९२० ई० में बरदाकान्त मजुमदार ने 'कर्मदेवी' उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास तीन खण्डों में विभाजित है। कोडमदे या कर्मादेवी का उपाख्यान टॉड के 'राजस्थान' के द्वितीय खण्ड के जैसलमेर इतिहास से लिया गया है। कवि रंगलाल ने इसी उपकथा को लेकर बंगला में १८६२ ई० में 'कर्मदेवी' काव्य लिखा था, जिस पर हमने 'काव्य अध्याय' में विस्तार से चर्चा की है। अतः यहाँ उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक है। उल्लेखनीय है कि कर्मादेवी के पाणिग्रहण के लिए जिस प्रकार पूँगल के साधू और राठौर अरण्यकमल के बीच युद्ध हुआ वैसे ही कृष्ण कुमारी के लिए जयपुर के महाराज जगतसिंह और मारवाड़ के राजा मानसिंह में युद्ध हुआ था। माइकेल मधुसूदन दत्त ने बगला में 'कृष्ण कुमारी' नामक वियोगान्त नाटक लिखा है। हमने 'नाटक अध्याय' में इसका उल्लेख किया है।

मनमोहन राय

१९२२ ई० में मनमोहन राय ने 'सतीर मूल्य' नामक नाट्योपन्यास लिखा। यद्यपि यह रचना उपन्यास है, किन्तु इसमें बीच-बीच में लम्बे-लम्बे सम्वाद दिए गए हैं। यह उपन्यास समय के नामों पर अर्थात ऊषा, पूर्वान्ह, मध्यान्ह एवं निशा खण्डों में विभाजित है। इसमें अकबर और राणा प्रताप के विरोध को दिखाया गया है। स्वाभाविक है कि इसमें राणा प्रताप के शौर्य, वीर्य और पराक्रम की घटनाओं का उल्लेख हुआ है। लेखक ने बसुमती प्रकाशन संस्थान द्वारा बंगला में टॉड के 'राजस्थान' से कथानक लिया है, इस बात का विवरण पुस्तक की पादटीका में दिया गया है।

राणा प्रताप की शौर्य गाथा से युक्त उपन्यास का नामकरण 'सतीर मूल्य' कुछ अटपटा सा लगता है, किन्तु लेखक ने उपन्यास में इस बात का एक कविता में स्पष्टीकरण किया है। मनमोहन राय का कथन है कि हे वीर श्रेष्ठ राणा प्रताप! तुम्हीं ने हिन्दू रमणी के सतीत्व की रक्षा की है, बाकी राजपूतों ने तो अपनी बहन-बेटियों को यवनों को समर्पित कर दासत्व स्वीकार किया है। एक मात्र तुम्हीं राजपूतों की आन-बान और शान हो और तुम्हारा गर्वोन्नत मस्तक हिमालय की चोटियों के समान उन्नत है।'

> तुमि (प्रताप) ना राखिले के राखिबे
> हिन्दू रमणीर सतीत्व रतन ? ऐई
> देखो—अम्बरेर पति अम्लान बदने
> करिते छे तुर्की पद सेवा। बीकानीर

अधिपति राय सिंह मुण्डित अधरे
मृदु मन्द हासि, आकबरेर नौरोजाय
प्रेरिछे आपनार बनिताय अमूल्य
सतीर मूल्य क्रय करि अति तुच्छ
राजार प्रासाद। राणा : हेरो जोधपुर
हेरो मारवाड़—कलंक—कालिमा—लिप्त
सबार बदन। एक मात्र तुमी, राणा,
राजपूत—राजन्य—समाजे रहियाछो
उच्चसिर हिमगिरि शृंगेर मतन।

मनमोहन राय के इस उपन्यास पर 'जागरिता' की छाप है। जागरिता आद्योपान्त काव्य-संलाप युक्त रचना है, वहीं 'सतीर मूल्य' गद्य-संलाप कृति है।

अब यहाँ हम बंगला-साहित्य में 'राजस्थान' की विषय वस्तु को लेकर लिखे गए उपन्यासों का संक्षेप में परिचय देंगे। इस तालिका में सम्भव है कुछ अच्छी कृतियाँ छूट गई हों, इसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। इन उपन्यासों के रचना काल का भी काफी कोशिश करने पर हम कहीं-कहीं समय निर्धारण नहीं कर सके, किन्तु इतना निश्चित है कि बंगला-साहित्य में 'राजस्थान' का जो प्रभाव १८५० ई० से आरम्भ हुआ उसका सिलसिला हमें १९४७ ई० तक अर्थात देश की स्वाधीनता तक मिलता है।

नवोलाल वन्द्योपाध्याय ने 'अमृत पुलीन' नामक उपन्यास लिखा, जिसमें राणा प्रताप के द्वितीय पुत्र अजय सिंह और अकबर की एक कहानी है। उपन्यास में दिखाया गया है कि एक जंगली भैंसे को वश में करने के लिए अजय सिंह और बादशाह अकबर पूरी कोशिश करते हैं, पर कुमार अजय सफलता मण्डित होता है और बादशाह विफल होता है।

आशुतोष घोष ने १९१४ ई० में ९८ पृष्ठों का एक उपन्यास 'प्रभावती' लिखा, जिसमें राजस्थान के मेवाड़ और हारावती राज्य के इतिहास का कथानक लिया गया है। इसमें मेवाड़ के राणा रत्न सिंह और हारावती के सूर्यमल्ल की कहानी है।

अविनाश चन्द्र दत्त ने १८९३ ई० में 'बिजली' उपन्यास की रचना की, जिसमें औरंगजेब के साथ राजपूतों की वीरता का वर्णन किया गया है। यह उपन्यास विशेष चर्चित नहीं हुआ।

कालीवर भट्टाचार्य ने १८९९ ई० में 'अकाल कुसुम अथवा अजमेर की राजतनया' नामक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में उल्लेख है कि अजमेर की

गुहलोट वंशीय राजकुमारी इन्दुमती की एक जंगल में राठौर वंशीय अजय सिंह ने व्याघ्र से प्राण रक्षा की। फलतः राजकुमारी अजय सिंह के प्रति आसक्त हो गई। इससे उसके पिता के मन में क्रोध का संचार हुआ। अजय सिंह ने अजमेर पर आक्रमण किया और इन्दुमती के पिता की हत्या की। किन्तु पितृहन्ता अजय सिंह से इन्दुमती ने विवाह नहीं किया और आत्मदाह कर प्राण त्यागे।

उपेन्द्रनाथ मित्र ने १८७९ ई० में 'प्रताप संहार' उपन्यास का प्रणयन किया। ११६ पृष्ठों में लिखे गए इस उपन्यास में यशोराधिपति प्रतापादित्य और मुगल सेनापति राजा मानसिंह की कहानी है। बंगाल विजय के अभियान में मान सिंह ने प्रतापादित्य को पराजित किया और उसे बन्दी बनाया। उपेन्द्रनाथ ने 'पृथ्वीराज अथवा क्षत्रिय कुल भाग्य-शशि का राहु-ग्रास' नामक उपन्यास भी लिखा, जिसमें पृथ्वीराज, जयचन्द मुहम्मद गोरी की कहानी है।

प्रमथनाथ मित्र द्वारा रचित 'योगी' उपन्यास में राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह की कहानी है। यह उपन्यास १८८६ ई० में लिखा गया। इस उपन्यास में लेखक ने एक ऐसे बंगाली संन्यासी का वर्णन किया है, जो राजपूतों को मुगलों के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने का महामन्त्र देता है। चूंकि प्रमथ बाबू क्रान्तिकारी पार्टी 'अनुशीलन' के सदस्य थे। इसी कारण उन्होंने ऐसी कल्पना की है। वस्तुतः इस उपन्यास के द्वारा वे देशवासियों को देश-प्रेम और स्वाधीनता का सन्देश देना चाहते थे।

बसंत कुमारी मित्र ने 'रणोन्मादिनी' उपन्यास की रचना १८८४ ई० में की। लेखिका ने यह उपन्यास दो खण्डों में लिखा है, पर दूसरा खण्ड अप्राप्य है। उपन्यास में अकबर के चित्तौड़ आक्रमण का वर्णन है, जिसमें राणा उदय सिंह पराजित होकर बन्दी होते हैं। किन्तु लीला नाम की एक वीर रमणी राणा को बन्दी गृह से मुक्त करती है। वह अपने राजपूत वीरों को लेकर अकबर पर आक्रमण करती है और उसे पराजित करती है।

हेमचन्द्र बसु ने १८८२ ई० में 'मिलन कानन' उपन्यास लिखा। इसमें दिखाया गया है कि सम्राट जहाँगीर बूंदी की राजकुमारी के प्रति आसक्त था, किन्तु राजकुमारी एक राजपूत सेनापति से प्रेम करती थी। अन्ततः सम्राज्ञी नूरजहां के हस्तक्षेप से राजकुमारी और राजपूत सेनापति का विवाह हुआ और जहांगीर विरत रहा।

शचीशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंकिम का पथानुसरण कर ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम है—'बांगालीर बल', 'राजा गणेश', 'रानी व्रज सुन्दरी', 'देवपति' एवं 'वीरपूजा'। शचीशचन्द्र ने १९११ ई० में 'वीरपूजा' की रचना की। इसमें राजस्थान के पूर्व क्षेत्र में स्थित निषध राज्य की कहानी है। यहाँ कुशवाहा वंश के राजा भवानी प्रसाद थे। वे जब नाबालिक थे तब उनके मामा

अनन्तराम उनके अभिभावक थे और राज्य का कार्य चलाते थे। इस उपन्यास पर शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' नाटक का प्रभाव है। अनन्तराम ने भवानी प्रसाद को मार कर राज्य हड़प करने की योजना बनाई। किन्तु भवानी प्रसाद के रक्षक वीर जनार्दन के द्वारा षड़यन्त्र का भण्डाफोड़ हो गया। भवानी प्रसाद ने गुप्त भेष में अजमेर के राजा के यहाँ रहकर सैनिक प्रशिक्षण ग्रहण किया और अपनी वीरता दिखाई। इससे अजमेर के राजा प्रसन्न हुए। अन्त में अजमेर की राजकुमारी के साथ उसका विवाह हुआ तथा अनन्तराम से उसका राज्य उसे मिल गया।

राजपूतों में जाति-विद्वेष पूरी मात्रा में था। यही उनकी पराधीनता का कारण था। इस तथ्य को शचीशचन्द्र ने अपनी रचना में दिखाया है। लेखक ने टॉड के 'राजस्थान' से उपकरण लिए हैं, इसका उल्लेख उपन्यास की भूमिका में है।

आशालता प्रणेता ने १९०९ ई० में 'भ्रमर' उपन्यास की रचना की। इस उपन्यास में राजपूत और भीलों के परस्पर संघर्ष की कहानी है। स्वर्ण कुमारी का प्रभाव लेखिका पर स्पष्ट दीख पड़ता है। कथानक लेखिका ने टॉड के 'राजस्थान' से लिया है।

निखिलनाथ राय ने १९०८ ई० में 'राजपूत वीरांगना' एवं सत्यचरण चक्रवर्ती ने १९२० ई० में 'रानी दुर्गावती' एवं 'संयुक्ता' उपन्यास लिखे तथा १९१५ ई० में सुरेन्द्रनाथ राय ने 'पद्मिनी' उपन्यास लिखा।

वारिन्द्रनाथ दास ने मीरा के जीवन-चरित्र को लेकर 'मीरा मल्हार' उपन्यास लिखा है। इस उपन्यास का १९८६ ई० में हिन्दी के कथाकार श्री छेदीलाल गुप्त ने हिन्दी में अनुवाद किया है।

श्री शरविन्दु बन्दोपाध्याय का 'राजद्रोही' उपन्यास आधुनिक काल में चर्चित रहा, जिसमें राजपूत वीर के पराक्रम को दिखाया गया है। यह वीर काठियावाड़ में बसी राजपूत जाति का था। इसी भांति अवधूत ने 'मरुतीर्थे हिंगलाज' उपन्यास की रचना की, जिस पर फिल्म बनी है। इसमें धीरुमल और कुन्ती के चरित्रों में राजपूत जाति के मानवीय चरित्र को देखा जा सकता है। यह एक वियोगान्त उपन्यास है तथा यात्रा विवरण भी।

श्री विमल मित्र का 'राजपूतानी' भी अनूठा ग्रन्थ है। इसमें एक साधारण राजपूत बाला को नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमती ज्योत्स्ना गोयल ने 'समाज विकास' के मार्च, १९९२ ई० के अंक में लिखा है—'यह तो केवल संयोग की बात है कि ये साहित्यकार बंगाली थे और उनकी रचनाओं के नायक-नायिकाएँ राजस्थानी। उस समय शौर्य-त्याग दिखाना ही इन लेखकों का अभिप्राय था। धीरे-धीरे भारत में जागरण आने लगा। इतिहास स्वयं

इसका साक्षी है कि देश कैसे स्वाधीन हुआ और विश्व-स्वाधीनता का प्रहरी बना।'

बंगला-साहित्य में नाटकों की तुलना में उपन्यास कम लिखे गए, फिर भी जो उपन्यास बंगला में लिखे गए उनका हिन्दी में आरम्भ से ही अनुवाद होने लगा। बंकिम के 'राजसिंह' उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करने का प्रयास भारतेन्दु ने किया, किन्तु वे उसे पूरा नहीं कर सके। 'भारतेन्दु और भारतीय नव-जागरण' पुस्तक के निबन्ध 'भारतेन्दु का आधुनिक व्यक्तित्व : नए सांस्कृतिक स्रोत' में आचार्य कल्याणमल लोढ़ा ने लिखा है—ऋषि बंकिम भारतेन्दु के लेखन से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने सारे ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद का अधिकार भारतेन्दु को दे दिया था।' (पृ० २०८) चूंकि भारतेन्दु 'राजसिंह' का हिन्दी अनुवाद नहीं कर पाये इसलिए उनके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण दास ने 'राजसिंह' उपन्यास का अनुवाद किया। इसके बाद तो बंकिम के समस्त उपन्यासों के कई संस्करण हिन्दी में अनुदित होकर आये। कलकत्ता से हिन्दी पुस्तक एजेन्सी के सत्वाधिकारी श्री बैजनाथ केड़िया ने 'बंकिम ग्रन्थावली' में बंकिम के सभी उपन्यासों का हिन्दी में प्रकाशन किया। 'बंकिम ग्रन्थावली' का प्रकाशन १९४१ ई० में हुआ और इसके अनुवादक थे श्री रामाशीष सिंह। इसी प्रकार सं० १९८२ में श्री मुरारीदास अग्रवाल द्वारा अनुदित बंकिम के उपन्यासों का प्रकाशन बनारस से हुआ। बंकिम के बड़े भाई के पुत्र प्रेमवरनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा लिखित उपन्यास 'राजपूत कीर्ति' का श्यामसुन्दर वैद्य ने अनुवाद किया। हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी से 'बंकिम-समग्र' संकलन में बंकिम के सभी उपन्यासों का १९८६ ई० में प्रकाशन हुआ है, जिसमें "एकलिंग का दीवान" उपन्यास में बप्पा रावल के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। 'बंकिम-समग्र' का सम्पादन श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने किया है।

बंकिम के अतिरिक्त बंगला के जिन उपन्यासकारों की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ, उनमें हाराणचन्द्र रक्षित, चण्डीचरण सेन, चारुचन्द्र, शरत, रवीन्द्र, रमेशचन्द्र दत्त, स्वर्ण कुमारी आदि प्रसिद्ध हैं। रमेशचन्द्र के बंग-विजेता' का हिन्दी अनुवाद श्री गदाधर सिंह के अलावा श्री भगवानदीन पाठक ने भी किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ४३४ पर लिखा है—'नाटकों और निबन्धों की ओर विशेष झुकाव रहने पर भी बंगला भाषा की देखा-देखी नए ढंग के उपन्यासों की ओर भी ध्यान जा चुका था। हरिश्चन्द्र ने ही अपने पिछले जीवन में बंग भाषा के एक उपन्यास के अनुवाद में हाथ लगाया था, पर पूरा न कर सके थे। पर उनके समय में ही प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी ने कई उपन्यासों के अनुवाद किए। तदन्तर बाबू गदाधर सिंह ने 'बंग-विजेता' और

'दुर्गेश नन्दिनी' का अनुवाद किया। पीछे तो बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि ने बंगला के उपन्यासों के अनुवाद की जो परम्परा चलाई वह बहुत दिनों तक चलती रही।'

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी में बंगला के उपन्यासों के प्रकाशन के बाद मौलिक उपन्यास लिखने की परम्परा चली। किन्तु जिस परिमाण में नाटक लिखे गए उस अनुपात से उपन्यास नहीं लिखे गए। इसका कारण था कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिए जिस इतिहास ज्ञान की परिपक्वता आवश्यक है, उसका अभाव रहा।

आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ४३५ पर लिखा है—प्रथम उत्थान के अन्त होते-होते तो अनुदित उपन्यासों का तांता बंध गया। पर पिछले अनुवादकों का अपनी भाषा पर वैसा अधिकार न था। अधिकांश अनुवादक प्राय: भाषा को ठीक हिन्दी रूप देने में असमर्थ रहे। कहीं-कहीं तो बंगला के शब्द और मुहावरे तक ज्यों के त्यों रख दिए जाते थे—जैसे 'कांदना', 'सिहरना', 'धूँ-धूँ करके आग जलना', 'छलछल आँसू गिरना' इत्यादि। इन अनुवादों से बड़ा भारी काम यह हुआ कि नए ढंग के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के ढंग का अच्छा परिचय हो गया और स्वतन्त्र उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति और योग्यता उत्पन्न हो गई।

हिन्दी-राजस्थानी में राजस्थान पर औपन्यासिक कृतियाँ

अब हम टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर जो औपन्यासिक कृतियाँ हिन्दी-राजस्थानी में लिखी गईं उन पर विहंगम दृष्टि से विचार करेंगे।

'अनंगपाल' उपन्यास की रचना बाबू दुर्गा प्रसाद् खत्री ने की है। इसका प्रकाशन १९१८ ई० में लहरी प्रेस, बनारस से हुआ। लेखक ने अनंगपाल के जीवन की घटनाओं के आधार पर इस उपन्यास की रचना की है।

'अजय तारा' उपन्यास के लेखक हैं मराठी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री रा० रा० हरिनारायण आप्टे तथा हिन्दी अनुवादक हैं श्री पथिक। इस उपन्यास के तीसरे संस्करण का प्रकाशन चौधरी एण्ड सन्स, बनारस में १९५९ ई० में हुआ। वैसे यह मराठी भाषा का पुराना प्रसिद्ध उपन्यास है। इस उपन्यास में शिवाजी के एक विश्वस्त सैनिक अजय और उसकी वीर प्रेमिका तारा की प्रणय कहानी है। इसमें मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह और शाइस्ता खाँ की पूना पर चढ़ाई का रोमांचकारी वर्णन है, जिसमें शिवाजी के नेतृत्व में मराठा सैनिकों ने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध किया।

तारा को लेकर तोरण दुर्ग के स्वामी धीरसिंह और अजय में युद्ध हुआ और दोनों वीर मारे गए। तारा ने अपने प्रिय अजय के लिए प्राण दे दिए। उपन्यास में ऐतिहासिकता की अपेक्षा प्रणय कहानी पर लेखक का मन ज्यादा रमा है।

'छत्रसाल' उपन्यास के लेखक हैं मराठी भाषा के लेखक श्री बालचन्द मानचन्द शहाशील। इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है श्री रामचन्द्र वर्मा ने। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई से इसका प्रकाशन १९१९ ई० में हुआ। इसमें बुन्देलखण्ड के वीर छत्रसाल की वीरता का वर्णन है, जिसने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए औरंगजेब की मुगल सेना से भयंकर युद्ध किया।

'बप्पा रावल' या 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास के रचयिता श्री हनुमान प्रसाद् शर्मा हैं जो लेखन जगत में श्री मनु शर्मा के नाम से प्रख्यात हैं। आपने कई ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, जिनमें प्रसिद्ध हैं—'तीन प्रश्न', 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'के बोले मा तुमि अबले', 'एकलिंग का दीवान' तथा 'अभिशाप'। 'बप्पा रावल' उपन्यास का प्रकाशन परिमल प्रकाशन, वाराणसी से संवत २०१५ में हुआ और बप्पा के ही कथानक पर 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास का प्रकाशन सन् १९८२ में तीसरी बार हिन्दी प्रचारक संस्थान,

वाराणसी से हुआ। चूंकि दोनों का कथानक एक ही व्यक्ति से सम्बन्धित है और घटनाएँ भी एक ही हैं। अतः हम इन दोनों को एक ही उपन्यास के रूप में स्वीकार करेंगे।

'बप्पा रावल' और 'एकलिंग का दीवान' उपन्यासों की भूमिका में भी सादृश्यता है। 'बप्पा रावल' की भूमिका में लेखक का कथन इस प्रकार है—'बप्पा के समय का अब तक कोई शिलालेख या ताम्रपत्र प्राप्त नहीं हुआ है, जिसके आधार पर निश्चित कुछ कहा जाय। केवल अजमेर में एक स्वर्ण मुद्रा मिली है, जिसका भार ११५ ग्रेन है। इस पर 'श्री बप्पा' लिखा है।

इन्हीं तथ्यों पर आधारित भूमिका हमें 'एकलिंग का दीवान' उपन्यास में मिलती है।

लेखक ने 'बप्पा रावल' की भूमिका में आगे लिखा है—'बप्पा के नाम के बारे में बड़ा विवाद है। अधिकांश इतिहासकार कहते हैं कि बप्पा रावल का वास्तविक नाम 'कालभोज' था और वह महेन्द्र का पुत्र था। टॉड साहब कहते हैं कि बप्पा नागादित्य का पुत्र था। प्रश्न यह भी है कि कालभोज या बप्पा का काल क्या था? यह प्रश्न विवादास्पद है। महाराणा कुम्भा के द्वितीय पुत्र रायमल के समय में 'एकलिंग का महात्म्य' नाम की पुस्तक लिखी गई। उसमें लिखा है कि बप्पा संवत ८१० में अपने पुत्र को राज्य देकर सन्यास ग्रहण करने नागहृदे चला गया। जीवन के अन्त में बप्पा ने सन्यास ले लिया था। उसकी एक समाधी नागदा और दूसरी कश्मीर में है।

श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के 'राजपूताना का इतिहास', टॉड साहब के 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान', पृथ्वीसिंह मेहता कृत 'हमारा राजस्थान', आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के 'दिल्ली की सल्तनत', 'पंच-नामा' आदि पुस्तकों से लेखक ने सहायता लेकर 'बप्पा रावल' उपन्यास की रचना की है। इसे लेखक ने भूमिका में स्वीकार किया है।

इस प्रकार लेखक श्री मनु शर्मा ने 'बप्पा रावल' पर काफी ऐतिहासिक खोज कर 'एकलिंग का दीवान' या 'बप्पा रावल' उपन्यास की रचना की है। कथा कहने का लेखक का ढंग सुन्दर है, उपन्यास रोचक है।

'तलवार की छाया में' उपन्यास के लेखक हैं कुंअर माधव सिंह 'दीपक'। यह कृति धारामोदा, दिल्ली से प्रकाशित हुई है। 'तलवार की छाया में' उपन्यास के

लेखक श्री दीपक ने भूमिका में लिखा है—'इतिहास को उपन्यास बनाना कठिन है, किन्तु कोई सत्य कल्पना से भी मीठा होता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का अभाव है और जो हैं उनमें सत्य कम, कल्पना अधिक है। हमारे यहाँ इतिहासकार कम हुए हैं, क्योंकि इस देश में सत्य का ढोल पीट कर हम जीवन में सत्य को कम अपनाते हैं और फिर साहित्यकार तो कल्पना-जगत का प्राणी ठहरा। यथार्थ की चट्टान से टकराने का बहुत कम लोग साहस करते हैं। क्योंकि यथार्थ मानव को झिंझोड़ देता है और कभी-कभी प्रेत की तरह नग्न और वीभत्स रूप में हमारे सामने आ खड़ा होता है। प्राच्य की अपेक्षा पाश्चात्य के साहित्यकारों ने इस प्रेत का अधिक दृढ़ता से सामना किया है। जीवन की विषमताओं से भाग कर नहीं, बल्कि उन्हें परास्त करते हुए साहित्य निर्माण किया है।'

'कर्नल टॉड पहला व्यक्ति था, जिसने राजस्थान का क्रमबद्ध इतिहास लिखा। उसके महान कार्य से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए मैंने यह उपन्यास टॉड को भेंट किया है।'

महाराणा ज़ालिम सिंह (सन् १७४०-१८२१) अठारहवीं शताब्दी में एक वीर पुरुष हुए हैं। कर्नल टॉड ने उन्हें 'नेस्टर' और 'मेकियावेली' की संज्ञा दी है। नेस्टर एक यूनानी योद्धा था। ट्राय के युद्ध में हेलेन को जीतने के लिए वह बड़ी-बड़ी सेनाएँ सजाता है। मेकियावेलो यूरोप का एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हुआ है, जो सफलता के लिए कोई भी काम करना उचित समझता था।

लेखक का कोटा राज्य के प्रधान मन्त्री राज राणा जालिम सिंह झाला के वंश से परम्परागत सम्पर्क रहा है। लेखक ने अपने पूर्वजों से सुने हुए तथ्यों के आधार पर तथा टॉड के 'राजस्थान' से एवं डॉ० मथुरालाल शर्मा कृत 'कोटा राज्य का इतिहास' से सहायता लेकर इस उपन्यास की रचना की है। लेखक ने सूर्यमल मिश्रण के 'वंश भास्कर' से भी सामग्री ली है। उपन्यास में कई नए तथ्य सामने आये हैं।

'राजभक्ति' उपन्यास के रचयिता श्री दामोदर मुखोपाध्याय हैं। बंगाल के वीर बनवीर के जीवन की घटनाओं से यह उपन्यास सम्बन्धित है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह बंगला-कृति देवनागरी अक्षरों में प्रकाशित हुई है। १८२८ शकाब्द में बंगाल में एक लिपि विस्तार परिषद, कलकत्ता की ओर से देवनागरी लिपि के प्रचार का कार्य हो रहा था।

कलकत्ता की हिन्दी ट्रेन्सलेटी कम्पनी, बड़ाबजार से यह रचना १८२८ शकाब्द में प्रकाशित हुई।

लेखक दामोदर मुखोपाध्याय ने अपनी भूमिका (विज्ञापन) में लिखा है—'एक लिपि विस्तार परिषदेर उद्योगे बंगभाषाय रचित 'राजभक्ति' उपन्यास देवनागर अक्षरे मुद्रित ओ प्रचारित होइलो। अनेक विलक्षण ओ मनस्वी व्यक्ति अवधारणा करियाछेन जे देवनागर अक्षर भारतवर्षीय विभिन्न भाषा समूहे साधारण अक्षर रूपे परिगृहीत होइले देशेर प्रभूत कल्याण साधित होइबे। एई अभिप्राय संसिद्ध करिवार जन्येई एक लिपि विस्तार परिषद् प्रतिष्ठित होइया छे।'

उल्लेखनीय है कि देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उसके सरलीकरण से प्रभावित होकर बंगाल के कई मनीषियों ने इस लिपि को देश की सभी भाषाओं के लिए उपयुक्त बताया है। इनमें राजा राममोहन राय, जस्टिस शारदाचरण मित्र, भूदेव मुखोपाध्याय, वंकिम आदि को स्मरण किया जा सकता है। हमारे देश मे मराठी और नेपाली भाषा की लिपि देवनागरी ही है। मराठी का 'ल' अक्षर और 'भ' थोड़ा भिन्न है। अगर देश की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि (देवनागरी) का प्रचलन हो जाय तो लोग आसानी से अन्य भाषाओ की रचना तथा विचार अनायास ही हृदयंगम कर सकते हैं। इससे देश की भावनात्मक-सांस्कृतिक-एकता मजबूत हो सकती है। यूरोप की कई भाषाओं के लिए रोमन लिपि का ही प्रचलन है। इसी प्रकार फारसी, अरबी और उर्दू भाषा के लिए अरबी लिपि का प्रयोग होता है। हमारे देश में कभी संस्कृत सारे देश की भाषा थी और प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत में है तथा देवनागरी लिपि में मुद्रित हैं। बंगाली ही नहीं अन्य भाषा-भाषी भी जब संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं तो वे मूल संस्कृत के श्लोकों या विचारों को देवनागरी लिपि में ही पढ़ते हैं और उनकी टीका अपनी भाषाओं में करते हैं। जैसे संस्कृत से उत्तर भारत की सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ है वैसे ही ब्राह्मी लिपि से उत्तर भारत की सभी भाषाओं की लिपियों का विकास हुआ है। देवनागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा सम्पूर्ण देश में प्रचलित थी। अतः देवनागरी सभी लोग आसानी से पढ लेते हैं। अगर देश की भाषाओं के लिए एक लिपि अपना ली जाय तो हमारे विचार से राष्ट्रभाषा हिन्दी की आधी जय-यात्रा पूर्ण हो सकती है।

हमने इस प्रकार का एक प्रयास १९८५ ई० में कलकत्ता में हुए प्रथम हिन्दी-सम्मेलन की स्मारिका का सम्पादन करके किया था। स्मारिका में पश्चिम बंग नागरी लिपि आन्दोलन के प्रमुख बन्धुवर श्री विभूतिभूषण दासगुप्ता के

'जातीय (राष्ट्रीय) संहतिर जोन्ये एक लिपि प्रचलन' शीर्षक लेख को बंगला भाषा में तथा देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया था। हमारे इस प्रयास की लोगों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। इस पुस्तक में भी हमने कई स्थानों पर इस पद्धति का इस्तेमाल किया है।

'वीरांगना' उपन्यास के लेखक हैं फतेहपुर (सीकर) निवासी पं० रामनरेश त्रिपाठी। आपकी यह रचना फतेहपुर से १९११ ई० में प्रकाशित हुई। इस उपन्यास में राजस्थान की वीरांगना पद्मिनी के जौहर की कहानी ओजस्वी भाषा में है।

पद्मिनी के बाद सारे देश में रानी दुर्गावती की वीरता का प्रचार है। 'रानी दुर्गावती' उपन्यास की रचना मुरार (ग्वालियर) निवासी श्री श्यामलाल गुप्त ने की है। इसका प्रकाशन उपन्यास बहार ऑफिस, काशी से १९१७ ई० में हुआ है। इसमे रानी दुर्गावती की वीरता का वर्णन है।

'महाराष्ट्र वीर या वीर वनिता' उपन्यास की रचना संवत १९७५ में हुई। इसके लेखक हैं बाबू रामप्रताप गुप्त। इस उपन्यास का प्रकाशन रामलाल वर्मा द्वारा कलकत्ता से हुआ है, जिसमें महाराष्ट्र वीर शिवाजी के जीवन की घटनाओं का उल्लेख है।

'वीर रमणी' उपन्यास पंजाबी भाषा की गुरुमुखी लिपि में लिखा गया 'चंचल मूर्ति' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं—श्री रामसिंह वर्मा तथा श्री शिवयत्न सिंह। यह उपन्यास १९३९ ई० में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, काशी से प्रकाशित हुआ है, जिनमें मुगलों द्वारा पंजाब पर किए गए अत्याचारों का विशद वर्णन है।

उपन्यास के उपसंहार में पृ० १४७ पर लेखक ने इन पंक्तियों का उल्लेख किया है—

वीरता रणधीरता में सिंहनी थीं नारियाँ।
कार्य पटुता से सदा कौतुक दिखाती नारियाँ॥
भेजती थीं क्षेत्र में निज पुत्र-पति को नारियाँ।
समय आने पर सदा जाती थीं रण में नारियाँ॥

'रक्त चिह्न' उपन्यास मराठी भाषा की कृति है। इसका हिन्दी अनुवाद बेनी माधव दीक्षित ने प्रस्तुत किया, जिसमें वीर शिवाजी के जीवन का वर्णन है। इसका प्रकाशन पुस्तक भवन, बनारस से २००० विक्रम में हुआ है।

पं० चन्द्रशेखर पाठक ने 'भीम सिंह' उपन्यास की रचना १९२२ ई० में की। इसका प्रकाशन पाठक एण्ड कं०, कलकत्ता से हुआ है। इस उपन्यास में रानी पद्मिनी

के जौहर की कहानी है। लेखक ने भीमसिंह को पद्मिनी का पति बतलाया है और उसी नाम से उपन्यास की रचना की है।

'बुन्देला' उपन्यास के लेखक श्री शरण हैं। यह उपन्यास दिल्ली से प्रकाशित हुआ है, जिसमें बुन्देलखण्ड के वीर छत्रसाल के जीवन की घटनाएँ हैं।

'मराठा तलवार याने किलेदार की लड़की'—यह उपन्यास मराठी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री खाण्डेलकर की कृति है, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री यशपाल वर्मा ने प्रस्तुत किया है। इसमें मराठा वीरो की बहादुरी का वर्णन है, जिन्होंने मुगलों से देश की स्वतन्त्रता के लिए प्राणोत्सर्ग किया। इस कृति का प्रकाशन एम० एम० सोजातिया एण्ड कं०, इन्दौर से १९३० ई० में हुआ है।

'राष्ट्र पतन अथवा भारतीय स्वतंत्रता की संध्या' उपन्यास के लेखक हैं मराठी भाषा के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री हरिनारायण आप्टे तथा हिन्दी रूपान्तरकार हैं ठाकुर राजबहादुर सिंह। राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से यह उपन्यास प्रकाशित हुआ है। पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी की लड़ाई का इसमे वर्णन है। पृथ्वीराज की पराजय के बाद हिन्दू-राष्ट्र का सूर्य अस्त हो गया, इसी बात को लेखक ने दर्शाया है। बंगला भाषा की उपन्यास लेखिका श्रीमती स्वर्ण कुमारी देवी (कवि रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन) ने इसी कथानक पर १८७६ ई० में 'दीप निर्वाण' उपन्यास की रचना की है। चूंकि पुस्तक मे न तो इस बात का उल्लेख है कि श्री आप्टे ने 'राष्ट्र पतन' उपन्यास की रचना कब की और न ही हिन्दी रूपान्तर की तिथि का उल्लेख है। रचनाओं में तिथियों के न रहने से अनुसंधानकर्त्ता के लिए कठिनाई उपस्थित होती है। इसका उल्लेख हमने पूर्व में भी किया है। यह असंगति विशेषकर हिन्दी रचनाओं में ज्यादा देखने को मिलती है। 'दीप निर्वाण' और 'राष्ट्र पतन' उपन्यासों में से कौन सा पहले रचित हुआ, इसका निर्णय करने में हम असमर्थ हैं, किन्तु स्वर्ण कुमारी देवी ने बहुत पूर्व 'दीप निर्वाण' की रचना की थी, यह निर्विवाद है। हमने 'दीप निर्वाण' पर पूर्व मे विस्तार से चर्चा की है। हाँ, एक बात अवश्य ही ध्यान मे रखने की है कि बंगला भाषा तथा मराठी भाषा में औपन्यासिक कृतियों की रचना हिन्दी की रचनाओं से पूर्व हुई थी। यही कारण है कि आरम्भ में हिन्दी में हमें बंगला और मराठी रचनाओं का अनुवाद प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है।

'राजस्थानी रनिवास' उपन्यास के रचयिता हैं हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री राहुल सांकृत्यायन। इस कृति का प्रकाशन राहुल प्रकाशन, मसूरी से हुआ है। रचना की तिथि तथा प्रकाशन तिथि का उल्लेख पुस्तक मे नहीं है। उपन्यास के नाम से

जाहिर है कि इसमें राजस्थान के राजा-रजवाड़ों के रनिवास की रोचक कथाएँ हैं। इसी कथानक पर आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपना 'गोली' उपन्यास लिखा था, जो काफी चर्चित हुआ। चूँकि चतुरसेन जी वैद्य थे और इस पेशे के कारण उन्हें राजा-रजवाड़ों के अन्तःपुर में रोग-निदान और चिकित्सा के लिए जाना पड़ता था। अतः उन्होंने यथार्थ की पटभूमि पर 'गोली' उपन्यास की रचना की है। 'गोली' का अर्थ है दासी या बांदी। राजपूतों में यह प्रथा है कि जब किसी राजकुमारी का विवाह होता तो दहेज में उसके साथ 'गोला' और 'गोली' अर्थात दास-दासियाँ दी जाती थीं। इन गोलियों से जो सन्तान पैदा होतीं वे राजा की उप-पत्नी की सन्तान समझी जातीं। आज भी राजस्थान में इन गोलियों के परिवार मिलते हैं। जयपुर में ऐसे परिवारों को 'लाल जी' के नाम से जाना जाता है।

'जहाँगीर' उपन्यास की रचना श्रीराम शर्मा 'राम' ने की है, जिसका प्रकाशन सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली से १९६६ ई० में हुआ। यह उपन्यास मुगल बादशाह जहाँगीर के जीवन पर आधारित है।

'पूना से पानीपत' उपन्यास के लेखक हैं श्री देवेन्द्र प्रसाद शर्मा। इसका प्रकाशन भारती प्रकाशन, लखनऊ से संवत २०२२ में हुआ है। उपन्यास में पानीपत की तीसरी लड़ाई का वर्णन है जो मराठों के साथ हुई थी। इस रचना के नायक हैं मराठा वीर सदाशिव भाऊ। उपन्यास की भूमिका प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री गुरुदत्त ने लिखी है और 'परिचय' लिखा है कवि अज्ञेय ने। अज्ञेयजी की चार पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जो जिए, वे ध्वजा फहराते घर लौटे।

जो मरे वे खेत रहे।

जो खेत रहे थे, वे अंकुरित हुए—

इतिहासों की उर्वर मिट्टी में

कुसुमित, पल्लवित हुए—

स्वप्न-कल्पी लोक-मानस में।

'जय भवानी' उपन्यास के लेखक है श्री मनहर चौहान। आपने शिवाजी के जीवन पर इस उपन्यास की रचना की है, जिसका प्रकाशन उमेश प्रकाशन, दिल्ली से १९६२ ई० में हुआ है।

'चित्तौड़गढ़ की रानी उपन्यास की रचना श्री उमाशंकर ने की है, जिसका प्रकाशन उमेश प्रकाशन, दिल्ली से १९६५ ई० में हुआ। यह उपन्यास रानी पद्मिनी के जौहर की रोमांचकारी कहानी का सचक दस्तावेज है, जो टॉड के 'राजस्थान' पर रचित है।

'महाराणा उदय सिंह' उपन्यास की रचना गुजराती भाषा के लेखक श्री रमणलाल देसाई ने की है। हिन्दी अनुवादक हैं श्री श्यामलाल मेहु। महाराणा प्रताप के पिता राणा उदय सिंह के जीवन पर यह उपन्यास रचा गया है। इस कृति का प्रकाशन वोरा एण्ड कं० पब्लीशर्स प्रा० लि०, बम्बई से हुआ है।

'सह्याद्रि की चट्टानें' उपन्यास की रचना हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने की है। इसका प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से १९८५ ई० में हुआ है। यह उपन्यास शिवाजी के जीवन पर आधारित है।

'शतरंज के मोहरे' उपन्यास की रचना हिन्दी के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री अमृतलाल नागर ने की है। इसका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली से १९६८ ई० में हुआ है। अवध के नवाब के जीवन से सम्बंधित उपन्यास का कथानक है।

'साका' उपन्यास के लेखक हैं श्री जगदीश कुमार 'निर्मल'। इस कृति का प्रकाशन हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी से १९५९ ई० मे हुआ है।

इस उपन्यास में मालवा की चन्देरी नगरी पर बाबर के आक्रमण का वर्णन है। मालवा के वीरों ने बाबर के आक्रमण का बड़ी बहादुरी से सामना किया और देशभक्ति का परिचय दिया। इस उपन्यास की भूमिका श्री सूर्यनारायण व्यास ने लिखी है—आपने भूमिका में लिखा है—'मालवा की मनोरम भूमि पर चंदेरी नगरी अपना एक स्वतंत्र गौरवमय इतिहास रखती है। आज भी इसके दुर्ग और खण्डहर उस उज्ज्वल इतिवृत्त की गौरवगाथा को अपने रजकणों में छुपाए हुए प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं। जहाँ चंदेरी का अतीत पौराणिक महत्व की कथाओं से साहित्य-सौरभ विस्तारित करता है, वहीं मेदिनी राय के समय की बलिदान की रोमांचकारी घटना का साक्षी भी बना हुआ है। बाबर की विशाल सेना से यहाँ के मुट्ठी भर वीर राजपूतों ने और राजपूत रमणियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए भीषण युद्ध किया। कहते हैं कि चंदेरी का एक वीर सरदार हिम्मत सिंह अगर बाबर की जासूस नर्तकी हमीदा उर्फ हेमा के रूप-जाल में न फँसा होता तो युद्ध का परिणाम ही उल्टा होता। मेवाड़ के साके से चंदेरी की वीर राजपूत रमणियों का साका किसी प्रकार से कम महत्वपूर्ण नहीं है।'

'सिंहगढ़' उपन्यास के मूल लेखक हैं मराठी भाषा के उपन्यासकार श्री हरिनारायण आप्टे। हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है श्री उग्र साहित्यरत्न ने। इसका प्रकाशन सुबोध प्रकाशन, दिल्ली से १९५७ ई० में हुआ है।

इस उपन्यास में मेवाड़ के एक वीर सैनिक की कन्या और राणा राजसिंह के वीर सरदार की कहानी है। औरंगजेब के साथ युद्ध करते हुए राजसिंह का वीर सैनिक मारा गया और उसकी वीर पत्नी विधवा हो गई। वह सती नहीं हो सकी और उसे मेवाड़ के एक दास-पुत्र राजपूत ने, जो धर्मान्तरित होकर मुसलमान हो गया था जबर-दस्ती उठाकर ले गया। घटनाचक्र के कारण कमल कुमारी सती नहीं हो सकी, किन्तु जब औरंगजेब का युद्ध शिवाजी से हुआ और धर्मान्तरित उदयभानु उसमें मारा गया तो कमल कुमारी सती हुई।

'जय सोमनाथ' उपन्यास के लेखक हैं प्रसिद्ध साहित्यकार श्री के० एम० मुंशी। इसका हिन्दी रूपान्तर किया है श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से १९४८ ई० मे इस उपन्यास का प्रकाशन हुआ है। गजनी के सुल्तान महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर पर जब चढ़ाई की थी, उसी घटना पर उपन्यास के कथा-नक का ताना-बाना बुना गया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी 'सोमनाथ' उपन्यास की रचना की है। इसका प्रकाशन राजपाल एण्ड संस, दिल्ली से हुआ है। चतुरसेन शास्त्री का 'सोमनाथ' उपन्यास हिन्दी जगत में प्रसिद्ध है। इसका कथानक के० एम० मुंशी के 'जय सोम-नाथ' से काफी अंशों में मिलता है। इस उपन्यास में गुजरात के पाटन का वर्णन है। गजनी के सुल्तान महमूद ने सोमनाथ के मन्दिर को लूटा था और मूर्ति को तोड़ा था।

'आलमगीर' उपन्यास के लेखक आचार्य चतुरसेन हैं। इसका प्रकाशन सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली से १९८५ ई० में हुआ है। आलमगीर (औरंगजेब) के जीवन पर कथानक आधारित है।

'महाबली छत्रसाल' उपन्यास के लेखक हैं श्री हरिकृष्ण देवसरे। इसका प्रकाशन उमेश प्रकाशन, दिल्ली से १९६५ ई० में हुआ है। उपन्यास का कथानक बुन्देला वीर छत्रसाल के जीवन पर आधारित है।

'वचन का मूल्य' उपन्यास के लेखक हैं श्री शत्रुघ्नलाल शुक्ल। यह उप-न्यास हिन्दी सेवा सदन, मथुरा से १९६७ ई० में प्रकाशित हुआ। यह रचना मुगल सम्राट शाह आलम (द्वितीय—१७५९-१८०६ ई०) और उसके वजीर कादिर की घटना से सम्बन्धित है।

'त्याग का देवता' उपन्यास की रचना श्री परदेशी ने की है, जिसका प्रका-शन कल्याणमल एण्ड संस, जयपुर से १९६५ ई० में हुआ है। इस उपन्यास में राणा सांगा के जीवन की घटनाओं का विशद वर्णन है।

'भगवान एकलिंग' उपन्यास के रचनाकार हैं श्री सत्यव्रत सुनामी (रामजी

दासपुरि)। यह उपन्यास राजधानी ग्रन्थागार, नई दिल्ली से १९७६ ई० में प्रकाशित हुआ। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है—

"इतिहास घटनाओं का गुम्फन है, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास, इतिहास नहीं होते। यदि ऐसे उपन्यास घटना-प्रधान होकर रह जायें तो उनमें मानव की केवल अपरिष्कृत भावनाओं अर्थात जिज्ञासा, उत्सुकता, आश्चर्य और आशंका का ही स्फुरण और स्पंदन होगा, जबकि उच्चकोटि की रचनाओं के लिए अधिक गम्भीर और शाश्वत तथ्य अपेक्षित हैं। दो संस्कृतियों के संघर्ष-काल की यह गाथा बप्पा रावल और हारित मुनि के प्रसिद्ध व्यक्तित्वों की उज्ज्वल आभा से समृद्ध है।" 'भगवान एकलिंग' उपन्यास में बप्पा रावल का उदात्त चरित्र उभर कर सामने आया है।

'तानसेन' उपन्यास की रचना श्री इकबाल बहादुर देवसरे ने की है और इसका प्रकाशन साहित्य भवन, इलाहाबाद से १९७८ ई० मे हुआ है। इस उपन्यास में अकबर के दरबारी संगीतज्ञ तानसेन के जीवन की कहानी है।

'तख्ते ताऊस' उपन्यास के लेखक हैं आचार्य चतुरसेन, जिसे प्रभात प्रकाशन दिल्ली ने १९७६ ई० में प्रकाशित किया है। इस उपन्यास मे राणा सांगा और बाबर के युद्ध का वर्णन है। कहानी का विस्तार मेवाड़ के राणा राजसिंह-औरंगजेब की घटनाओं तथा मारवाड़ के राणा अजित सिंह के जीवन तक हुआ है।

श्री ओंकार शरद ने 'किले का घेरा' उपन्यास की रचना १९७५ ई० में की। इस उपन्यास का प्रकाशन साहित्य सदन, इलाहाबाद से हुआ है। 'किले का घेरा' उपन्यास की घटनाएँ दक्षिण भारत के अहमदनगर की वीर रानी चाँद बीबी और अकबर की सेना के बीच हुए युद्ध से सम्बन्धित हैं। इस युद्ध मे वीरांगना चाँद बीबी ने अपनी बहादुरी का परिचय दिया। अकबर दक्षिण भारत मे मुगल शासन स्थापित करना चाहता था। उसने अपने बेटे मुराद को बड़ी सेना लेकर अहमदनगर भेजा। मुगल सेना ने पठान-वीरांगना के किले को घेर लिया। घमासान युद्ध हुआ। विश्वासघात से चाँद बीबी की हत्या के बाद ही मुगल सेना किले पर अधिकार कर पाई।

'लाल बाई' उपन्यास के रचयिता बंगला भाषा के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री रमापद चौधरी हैं। आपकी इस चर्चित कृति का हिन्दी अनुवाद श्री मनीषदत्त ने प्रस्तुत किया है और इसका प्रकाशन इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली से १९७४ ई० मे हुआ है। इस उपन्यास में औरंगजेब के शासन काल में बंगाल की क्या स्थिति थी इस पर ऐतिहासिक ढंग से प्रकाश डाला गया है।

'महाराणा उदय सिंह' उपन्यास की रचना किशोरों के लिए श्री राजेश शर्मा ने की है। इस कृति को आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली ने १९७१ ई० में प्रकाशित किया है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में अपने विचार इन शब्दों में रखे हैं—'वीर राजपूतों का देश राजपूताना ही आज का राजस्थान कहलाता है। मातृभूमि और राष्ट्र की आन पर मर मिटने वाले राजपूत वीरों का इतिहास तलवार की तीखी नोक से लिखा गया है। राजस्थान के वीर तलवार की छाया में जन्मे, पले-पुसे, फिर राष्ट्रीय आन के मोर्चे पर डटकर शत्रुओं का सामना करते हुए तलवार की नोक पर ही खेल गए।' इस उपन्यास में राणा उदय सिंह के जीवन की घटनाएँ हैं। उदय सिंह राणा सांगा के पुत्र और राणा प्रताप के पिता थे।

'गढ़ आया, सिंह गया' उपन्यास के लेखक हैं श्री शंकर बाम। इस रचना का प्रकाशन किताब घर, दिल्ली से १९८१ ई० मे हुआ है। उपन्यास किशोरों के लिए लिखा गया है। इसमें महाराज शिवाजी के अभिन्न मित्र एवं सेनापति परम वीर महारथी तानाजी मालसूरे के अमर बलिदान की कहानी ओजस्वी भाषा में लिखी गई है।

'जीजा बाई का बेटा' उपन्यास के रचनाकार श्री कमल शुक्ल हैं। इसका प्रकाशन राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली से १९८५ ई० मे हुआ है। उपन्यास की कथा महाराष्ट्र वीर शिवाजी के जीवन की घटनाओं पर आधारित है।

'एक अंतहीन युद्ध' उपन्यास के रचनाकार डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर हैं। इसका प्रकाशन किताब घर, दिल्ली से १९७९ ई० मे हुआ है। उपन्यास मे लेखक ने राणा प्रताप के स्वाधीनता-संग्राम की घटनाओं का ओजस्वी भाषा मे उल्लेख किया है। उपन्यास का यह कथन पठनीय है, जिसे डॉ० भटनागर ने 'एक अंतहीन युद्ध' उपन्यास के आरम्भ मे उद्धृत किया है—

'पराधीनता चाहे नाम मात्र की हो,
वह है पराधीनता ही
बल्कि पराधीन होने से ही बदतर है।
व्यक्ति स्वतंत्र पैदा हुआ है
इसलिए स्वतंत्रता उसका
जन्मसिद्ध अधिकार है।
पराधीन बनाने वाला,
समग्र मानव जाति का शत्रु है।

उसको सबक सिखलाना
हर मानवता प्रेमी का कर्त्तव्य है।
जाओ, कह दो अपने परवरदिगार से
शाहंशाह अकबर से
कि मैं तो मेवाड़ का राणा हूँ
यहाँ का बच्चा-बच्चा
पराधीन होकर
सुख-चैन की जिन्दगी बसर करने की अपेक्षा
पहाड़ियों की वीरानियों में,
भटक-भटक कर
स्वतंत्रता के शत्रु से
रक्त की आखिरी बूँद तक
लड़ना और मातृभूमि पर कुर्बान होना,
कहीं बेहतर समझता है।'

'रजिया' उपन्यास की रचना हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने की है। इसका प्रकाशन तुलसी प्रकाशन, लखनऊ से १९७४ ई० में हुआ है। उपन्यास में गुलाम वंश के इल्तुतमिश की पुत्री रजिया के जीवन की घटनाएँ विस्तार से उजागर हुई हैं।

किशोरों के लिए 'गढ़ मंडल की रानी' उपन्यास की रचना श्री उमाशंकर ने की है, जिसका प्रकाशन उमेश प्रकाशन, दिल्ली से १९६५ ई० में हुआ है। इस उपन्यास में गढ़ मंडल की वीरांगना रानी दुर्गावती की वीरता का उल्लेख है। रानी ने देश की आजादी के लिए मुगलों से भयंकर युद्ध किया था।

किशोरों को देश-भक्ति का पाठ पढ़ाने के लिए 'दुर्गादास' उपन्यास की रचना श्री शत्रुघ्नलाल शुक्ल ने की है। इसे उमेश प्रकाशन, दिल्ली से १९६४ ई० में प्रकाशित किया गया है। दुर्गादास मारवाड़ का वीर श्रेष्ठ योद्धा था, जिसने औरंगजेब के जबड़े से राजा जसवंत सिंह के पुत्र अजित की रक्षा की थी और अपनी राजभक्ति तथा देश-भक्ति का परिचय दिया था। दुर्गादास के उदात्त चरित्र का उपन्यास में सुन्दर चित्रण हुआ है।

'लोहगढ़' उपन्यास के लेखक हैं पंजाबी भाषा के यशस्वी साहित्यकार श्री

हरनामदास सहाई। 'लोहगढ़' उपन्यास में उन घटनाओं का उल्लेख है जब मुगलों के अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गए थे और सारे देश के हिन्दू बुरी तरह संत्रस्त थे। मुगलों के इन अत्याचारों का मुकाबला करने के लिए तथा हिन्दू जाति को यंत्रणा से मुक्त करने के लिए सिक्ख गुरुओं ने आत्म-त्याग किया और वीरता का परिचय दिया। गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों की एक प्रबल सेना तैयार की और सिक्ख जाति को सैनिक शक्ति में परिणत किया। 'सिंहगढ़' उपन्यास में मुगलों और सिक्खों के उसी संघर्ष की दास्तान है। इस उपन्यास की भूमिका श्री रामचन्द्र वर्मा ने लिखी है तथा इसका प्रकाशन किया है रचना प्रकाशन, इलाहाबाद ने १९६९ ई० में।

'जय एकलिंग' उपन्यास के लेखक हैं श्री परदेशी। इसको अनुराग प्रकाशन, अजमेर से १९६९ ई० में प्रकाशित किया गया है। उपन्यास के मुख पृष्ठ पर लिखा है—

'यह एकलिंग का आसन है,
इस पर न किसी का शासन है,
राणा तू इसकी रक्षा कर,
यह सिंहासन अभिमानी है।

'जय एकलिंग' उपन्यास में लेखक ने मेवाड़ के राणा मेदिनी राय से राणा सांगा के जीवन तक की घटनाओं का उल्लेख किया है। इसमें राणा सांगा के भाई पृथ्वीराज के जीवन की घटनाएँ भी हैं।

'लाल किला' उपन्यास के रचनाकार हैं बंगला भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री प्रमथनाथ बिशी और हिन्दी रूपान्तरकार हैं श्री प्रबोध कुमार मजुमदार। यह उपन्यास वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्रा० लि०, इलाहाबाद से १९६८ ई० में प्रकाशित हुआ है।

'लालकिला' एक वृहद उपन्यास है। इसमें दिल्ली के लाल किले की रोमांचकारी कहानी है। प्रकारान्तर से इसे मुगलिया सल्तनत के उत्थान-पतन की भी कहानी कहा जा सकता है। जैसे इतिहासकार गीबन ने रोमनगरी के खण्डहरों को देखकर मोहाच्छन्न दशा में रोम-साम्राज्य के उत्थान-पतन का इतिहास लिखने का संकल्प किया था। श्री प्रमथनाथ बिशी के हृदय में भी दिल्ली के लालकिले को देखकर ऐसे ही भाव उत्पन्न हुए थे। उसी भावना का परिणाम है 'लालकिला' वृहद उपन्यास।

श्री बिशी ने उपन्यास की भूमिका में अपने ऐतिहासिक उपन्यास के बारे में कैफियत देते हुए लिखा है—'कहने की जरूरत नहीं कि बंकिमचन्द्र की ऐतिहासिक उपन्यास की रीति का वर्तमान लेखक ने अनुसरण करने की कोशिश की है।

किन्तु बंकिम की प्रतिभा कोई सामान्य व्यक्ति में तो सम्भव नहीं। बंकिम के समय में भारतीय इतिहास-ग्रन्थों की संख्या अत्यन्त सीमित थी। तीन-चार इतिहास-ग्रन्थों (जिनमें टॉड का 'राजस्थान') पर निर्भर कर जिस इतिहास के सत्य पर वे पहुँचने में समर्थ हुए थे, उसकी बुनियाद में उनकी दिव्य-प्रतिभा थी। अब इतिहास-ग्रन्थ पर्याप्त हैं, प्रतिभा न होने पर भी निष्ठा और अध्य-वसाय के द्वारा लेखक के लिए इतिहास के सत्य पर पहुँचना एकदम असम्भव नहीं है।'

बंकिम ने स्वयं अपने 'राजसिंह' उपन्यास को एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास कहा है, लेकिन परवर्ती काल के आचार्यो ने उनके दूसरे बहुत से उपन्यासों को भी ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा दी है। इतिहासकार श्री यदुनाथ सरकार के अनु-सार बंकिम का दुर्गेशनन्दिनी' और 'सीताराम' भी ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

'लाल किला' उपन्यास के पृष्ठ ३८७ पर एक सत्य का उद्घाटन इन पंक्तियो मे किया है—

चम्पा के तीन गुण रूप रंग और वास।
इक अवगुण है कोई भौंरा आये न पास॥

'खण्डहर बोल रहे हैं' उपन्यास के रचयिता है हिन्दी के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्री गुरुदत्त। इस उपन्यास का प्रकाशन मकरद प्रकाशन, नई दिल्ली से १९६७ ई० में हुआ है।

उपन्यास के प्राक्कथन मे श्री गुरुदत्त ने लिखा है—'यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी पृष्ठभूमि में हिन्दुस्तान के उस काल का इतिहास लिखा गया है, जिसे मुगलों के ह्रास का काल कहा जाता है। इस कथा का आरम्भ हमने संवत १७०५ तदनुसार ईस्वी सन् १६४८ से किया है।'

'कुछ इतिहास लेखक मुगल सम्राट शाहजहाँ की न्यायप्रियता के लम्बे-चौड़े गीत गाते हैं, किन्तु जो कुछ उसके काल में शाही महलों में घटित हुआ और जो कुछ देश में घटा, वह न्याय और शान्ति का परिणाम नहीं कहा जा सकता। शाहंशाह शाहजहाँ के काल में उसकी अपनी प्रिय बेगम के पेट से उत्पन्न हुआ औरंगजेब गाजी, आगरा के किले में शाहंशाह की सैकड़ों अविवाहित बेगमें, देश में पैदा हुए शिवाजी, चम्पत बुन्देला, गुरु गोविन्द सिंह

तथा मथुरा के जाट इत्यादि। ये सब उत्पन्न हुए सम्राट शाहजहाँ के काल में और लड़े-मरे औरंगजेब के काल में। हमारा ऐतिहासिक निष्कर्ष यह है कि ह्रास का बीजारोपण होता है मुगल साम्राज्य के विलास काल में और उसका परिणाम निकलता है विलास के उपरान्त विश्रान्ति काल में।'

'मुगलों के ह्रास के लिए भूमि तैयार हुई थी जहाँगीर के काल में, बीजारोपण हुआ शाहजहाँ के काल में और ह्रास पनपा औरंगजेब के काल में तथा मुगल-वृक्ष मुर्झा गया औरंगजेब की मृत्यु के बाद।'

संवत १९१६ ई० में श्री किशोरीलाल गोस्वामी ने 'राजकुमारी' उपन्यास का प्रकाशन वृन्दावन (मथुरा) से किया। इस उपन्यास में मल्लिका देवी या बंग-सरोजिनी की वीरता का वर्णन है। उपन्यास की घटना गयासुद्दीन बलबन के काल की है। किशोरीलाल गोस्वामी के अन्य उपन्यास हैं पन्ना, तारा, राजसिंह आदि। उन दिनों बंगला, मराठी, गुजराती के उपन्यास बड़ी संख्या में हिन्दी में अनुदित हो रहे थे। कुछ लेखक इन उपन्यासों का अनुकरण कर नए उपन्यास लिखने मे जुटे थे। ऐसे नव-लेखकों पर 'हिन्दी प्रदीप' पत्र ने बड़ा तीखा व्यंग्य किया है। 'हिन्दी प्रदीप' की २६वीं जिल्द (१९०५ ई०) में लिखा है—'काशी में इन दिनों उपन्यास का बाजार गरम हो गया है। लोग इस समय बंगला, मराठी, गुजराती से तर्जुमा कर उपन्यास लिख रहे हैं और अपना नाम सातवें सवार में लिखा रहे हैं।'

मेवाड़ की वीर क्षत्राणी की असीम रणचातुरी पर बाबूलाल सिंह ने इसी काल-खण्ड में 'वीरबाला' उपन्यास लिखा। इसमें चित्तौड़ के तीसरे साके का वर्णन है, जिसमें वीर जयमल की पत्नी अकबर की यवन सेना का अपने पुत्र पत्ता के साथ डटकर मुकाबला करती है। इसी कथानक, पर बनारस से बाबू गंगा प्रसाद गुप्त का उपन्यास 'वीर जयमल' प्रकाशित हुआ है। काशी से ही 'वीर रमणी' उपन्यास का तीसरा संस्करण १९३१ ई० में प्रकाशित हुआ है। यह उपन्यास मूल रूप से पंजाबी की गुरुमुखी भाषा में है, जिसका भावानुवाद रामसिंह वर्मा ने किया है।

'गढ़-रणथम्भौर' उपन्यास का प्रकाशन कलकत्ता से सं० २०१२ में हुआ, जिसका प्रकाशन श्री एन० एम० झुनझुनवाला ने किया। इसके लेखक हैं श्रीराम वात्स्यायन। यह उपन्यास रणथम्भौर के वीर हम्मीर के जीवन पर आधारित है। इस उपन्यास का प्रथम परिच्छेद उपन्यास की भाँति आरम्भ न होकर निबन्ध के रूप में शुरू होता है, देखिए—

'राजस्थान ! यही आज का पिछड़ा हुआ राजस्थान, एक युग था जबकि यह भारत का नेतृत्व करता था। उस युग में राजस्थान की तलवारों का पानी समस्त संसार के लिए आश्चर्य का विषय था, जबकि आज चाँदी के टुकड़ों की झनझनाहट में राजस्थानी अपने कर्तव्य को भूल कर कितनी दूर निकल आये हैं। .... '

'गढ़-रणथम्भोर' में हम्मीर की उस प्रतिज्ञा का वर्णन किया गया है, जिसके द्वारा उसने शरणागत की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति दी। इसी हठपूर्ण प्रतिज्ञा के कारण इतिहास में रणथम्भोर का हम्मीर 'हठी हम्मीर' के नाम से जाना जाता है।

यादवेन्द्र शर्मा का 'रक्त का टीका' उपन्यास

राजस्थान के नई पीढ़ी के साहित्यकार श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने राजस्थान के ऐतिहासिक कथानकों पर कई उपन्यास लिखे हैं, जिनमें 'ठकुरानी' (१९७१) तथा 'खम्मा अन्नदाता' की विशेष चर्चा है। 'ठकुरानी' उपन्यास राजस्थान के जन-जीवन पर आधारित है, जिसमे इतिहास उभरता है। 'खम्मा अन्नदाता' उपन्यास राजस्थान-साहित्य-अकादमी से पुरस्कृत हो चुका है। यादवेन्द्र जी का उपन्यास 'खून का टीका' १९६० ई० में विद्या प्रकाशन मंदिर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ, जिसमें मेवाड़ के राणा हम्मीर का जीवन और उसकी मुगलो के साथ हुई लड़ाइयों का वर्णन है।

राणा हम्मीर के जीवन की कई घटनाएँ विवादास्पद हैं, फिर भी लेखक ने भरपूर सच्चाई के साथ उन घटनाओं का चित्रण किया है।

लेखक ने 'खून का टीका' उपन्यास को राजस्थान के उन प्रसिद्ध इतिहासकारो को उत्सर्ग किया है, जिन्होंने राजस्थान के छिपे इतिहास को उजागर किया है। ये इतिहासकार हैं—कर्नल जेम्स टॉड, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मूता नैणसी, कविराज श्यामलदास। उपन्यास के प्रथम पृष्ठ पर टॉड की प्रसिद्ध उक्ति को अंग्रेजी और हिन्दी में उद्धृत किया गया है, जिसमे कहा गया है—'राजस्थान का कोई ऐसा छोटा राज्य नहीं है जिसमें थर्मोपली के समान रणभूमि न हो और एक भी ऐसा शहर नहीं है, जिसमें लियोनिदास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो।'

कथानक

राणा हम्मीर चित्तौड़ के राणा लक्ष्मण सिंह का पौत्र तथा अरिसिंह का पुत्र था। जब दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए आक्रमण किया था, तो राणा लक्ष्मण सिंह ने देवी की भविष्यवाणी के अनुसार अपने सभी पुत्रों को युद्ध में भेज दिया। किन्तु कुमार अजय सिंह को युद्ध में नहीं भेजा। उसे यह कह कर कि भविष्य में अरिसिंह का पुत्र ही चित्तौड़ की गद्दी पर बैठेगा, उसे केलवाड़ा दुर्ग मे भेज दिया। राणा लक्ष्मण सिंह के ग्यारह पुत्र युद्ध में मारे गए, जिनमें अरिसिंह भी था। अन्त में राणा लक्ष्मण सिंह और राणा रतन सिंह (भीम सिंह) ने राजपूतों के

साथ अलाउद्दीन की सेना का मुकाबला करते हुए वीरगति प्राप्त की और रानी पद्मिनी ने राजपूत वीरांगनाओं के साथ 'जौहर व्रत' का पालन किया।

चित्तौड़ पतन के बाद अजय सिंह ने अरिसिंह के पुत्र हम्मीर को चित्तौड़ का उत्तराधिकारी नियुक्त किया। १३०१ ई० में हम्मीर को मेवाड़ का अधिकारी बनाया गया था, उस समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का अधिकार मालदेव को सौंप दिया था। हम्मीर ने मालदेव की विधवा पुत्री के साथ विवाह कर पुनः चित्तौड़ का उद्धार किया। मालदेव ने दिल्ली के बादशाह मुहम्मद खिलजी (तुगलक) से शिकायत की। मुहम्मद तुगलक बड़ी सेना लेकर आया पर हार गया। हम्मीर ने उसे तीन माह तक बंदी बना कर रखा और अन्त में अजमेर, रणथम्भौर, नागौर आदि इलाकों को तथा एक सौ हाथी, पचास लाख रुपए लेकर मुहम्मद तुगलक को जेल से मुक्त किया। ऐसे मेवाड़ के वीर हम्मीर के जीवन पर यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने 'रक्त का टीका' उपन्यास की रचना की है।

आलोचना

'खून का टीका' उपन्यास के आरम्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार-कथाकार श्री रांगेय राघव का वक्तव्य प्रकाशित किया गया है, जिसमें लिखा गया है—"खून का टीका' राजस्थान गौरव-गाथा का ज्वलंत प्रतीक है। इसमें एक जागरूक संस्कृति अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध दिखाई देती है। लेखक ने तत्कालीन असहयोग आन्दोलन और मध्यम ऐतिहासिक मार्ग को इसमें प्रकट किया है, जिसमें उसका मौलिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। यादवेन्द्र ने अनेक इतिहास लिखे हैं और वे निरन्तर विकास कर रहे हैं। सामाजिक के अतिरिक्त उनका ऐतिहासिक उपन्यास भी अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है।"

असल में 'खून का टीका' यादवेन्द्र का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है और आपने इसे ऐतिहासिकता प्रदान करने की पूरी चेष्टा की है, किन्तु कथानक में कई ऐसी बातें हैं जो इतिहास से मेल नहीं खातीं। 'खून का टीका' उपन्यास इस कथन से आरम्भ होता है—'मुझे बलिदान दो, मुझे बलिदान दो।' एक परिचित-सी ध्वनि सिसोदिया वंश के स्वाभिमानी एवं धर्मपरायण, एकलिंगेश्वर दीवान राणा रत्नसिंह के विश्वसनीय योद्धा सामन्त लक्ष्मण सिंह 'लाखा' के कर्ण-कुहरों मे ध्वनित-प्रतिध्वनित हुई।' ('खून का टीका' उपन्यास, प्रथम अध्याय, पृ० ६)

लेखक ने राणा लक्ष्मण को राणा रत्नसिंह का विश्वसनीय योद्धा और सामंत बताया है तथा उसका उपनाम 'लाखा' लिखा है। टॉड ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'राज-

स्थान' में रत्नसिंह को लक्ष्मण सिंह का चाचा बताया है, जो पद्मिनी के पति थे। चूंकि लक्ष्मण सिंह उम्र में छोटा था। अतः राज कार्य रत्नसिंह ही देखते थे। रत्नसिंह की रूपवती रानी पद्मिनी के लिए ही अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। आश्चर्य है 'खून का टीका' के कथानक के आधार पर अगर लक्ष्मण सिंह मात्र एक विश्वसनीय सामंत था तो वह या उसके पुत्र और उसका पोता (हम्मीर) चित्तौड़ का राणा कैसे बन सकता था ? लेखक ने लक्ष्मण सिंह के उपनाम 'लाखा' को ही उपन्यास के अन्य पृष्ठों में लिखा है, जिससे प्रतीत होता है कि अरिसिंह सहित सभी राजकुमार राणा लाखा के ही पुत्र थे। जबकि 'राजस्थान' के इतिहास ग्रन्थों में राणा लाखा का काल राणा लक्ष्मण सिंह के बाद की चौथी पीढ़ी में आरम्भ होता है।

सच बात तो यह है कि 'खून का टीका' के रचयिता श्री चन्द्र हिन्दी के प्रसिद्ध नाटककार श्री हरिकृष्ण प्रेमी' और उनके 'उद्धार' नाटक से प्रभावित हैं। 'उद्धार' नाटक में भी यही ऐतिहासिक असंगति हुई है और 'खून का टीका' उपन्यास में भी। हमने 'उद्धार' नाटक की चर्चा में अपने विचार 'नाटक अध्याय' के पृ० २८८ पर व्यक्त किए हैं। 'खून का टीका' उपन्यास पर बंगला के श्री हरिमोहन राय के 'हम्मीर' उपन्यास की भी छाया है। 'खून का टीका' में असहयोग आन्दोलन की कल्पना का आधार भी 'उद्धार' नाटक ही है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने इसमें 'अल्प बचत योजना' का शगूफा जोड़ कर उसे आज के युग-बोध से जोड़ दिया है।

'खून का टीका' उपन्यास के लेखक पर कदाचित गाँधीजी का अहिंसा और कांग्रेसी शासन का प्रभाव था, जिसे आपने उपन्यास में ठूँसने की कोशिश की है, जिससे उपन्यास की ऐतिहासिकता क्षुण्ण हुई है। उपन्यास में वीर हम्मीर के चरित्र को जिस धरातल पर चित्रित किया गया है, उससे मालूम होता है कि वह सिर्फ कूटनीतिक चाल-बाजियों से ही चित्तौड़ के उद्धार में सफल हुआ। हाँ, लेखक ने दो एक नई उद्भावनाओं का चित्रण किया है, जिनमें एक है—ज्योतिष-शास्त्र की प्रकाण्ड मनीषी एवं शास्त्रज्ञाता बरबड़ी। इस बरबड़ी देवी के आदेश से ही हम्मीर ने मालदेव की विधवा पुत्री से विवाह किया और चित्तौड़ का उद्धार किया। आश्चर्य है 'बरबड़ी देवी' इतनी शक्ति सम्पन्न कैसे थीं, जिन्होंने हम्मीर को पाँच सौ घुड़सवार सहायतार्थ दिए। उसका वीर पुत्र भी हम्मीर की मदद के लिए गया। लेखक ने इस शक्ति सम्पन्न देवी पर प्रकाश नहीं डाला है। पूरे उपन्यास में देवी और उसकी वाणी छाई हुई है। जब भी हम्मीर उलझन में पड़ता है उसे बरबड़ी देवी की वाणी याद आ जाती है और वह साथियों के विरोध के बावजूद उस कार्य को करता है। उसे देवी के वचनों के प्रति 'अंध भक्ति' या 'अंध विश्वास' है।

'खून का टीका' उपन्यास में यादवेन्द्रजी ने एक नई उद्भावना यह भी दिखाई है कि मालदेव की बेटी सचमुच में विधवा नहीं थी। मालदेव और उसके विश्वासी मौजीराम कामदार ने यह अफवाह इसलिए फैलाई थी कि विधवा होने के कारण हम्मीर मालदेव की लड़की से विवाह नहीं करेगा। वास्तव में मालदेव ने हम्मीर को जालौर में बुला कर मार डालने का षड़यन्त्र रचा था। इसीलिए उसने अपनी लड़की के विवाह का नारियल हम्मीर के पास भेजा था। हम्मीर ने देवी के आदेश को स्मरण कर उसे स्वीकार कर लिया। देवी के पाँच सौ घुड़सवार उसकी मदद के लिए आ गए। सेना ने जालौर के गढ़ को घेर लिया। इससे मालदेव की योजना असफल हो गई। अब उसे बेटी का विवाह करने पर मजबूर होना पड़ा। तब पुनः षड़यंत्र करके कामदार की मदद से यह अफवाह फैलाई गई कि मालदेव की पुत्री विधवा है। इस पर भी हम्मीर 'देवी' के वचनों का स्मरण कर विवाह के लिए तैयार हो गया। इसी मालदेव की पुत्री की सहायता से चित्तौड़ का उद्धार हुआ।

'खून का टीका' उपन्यास में मालदेव की पुत्री के विधवा होने और न होने की कथा के कारण शिथिलता आ गई। हम्मीर और उसकी पत्नी मे अंत तक संदेह की रेखा बनी रही। यहाँ तक कि जब उपन्यास के अंत मे कामदार ने सारे षड़यंत्र का भण्डाफोड़ किया तब भी लेखक कहता है कि फिर भी सामंतो मे यह शंका बनी ही रही कि कदाचित यह भी कामदार का एक कूटनीतिपूर्ण षड़यंत्र है।

बंगला, हिन्दी तथा राजस्थानी की अन्य रचनाओं मे मालदेव की पुत्री को विधवा दिखाया गया है। बंगला कृतियों में हम्मीर द्वारा विधवा राजकुमारी से विवाह करने की साहसिकता से रचनाकारों ने विधवा-विवाह समस्या पर युगबोध की मोहर लगाई है, किन्तु 'खून का टीका' में इस समस्या को महज एक चाल बता कर इस सामाजिक समस्या पर केवल कुछ तर्क दिए गए हैं। हमने प्रसंगानुसार इस कथानक पर तथा इस समस्या पर पुस्तक में अपने विचार व्यक्त किए हैं। हमने लिखा है कि विधवा-विवाह संस्कार का आन्दोलन बंगाल के समाज-सुधारक विद्यासागर के द्वारा आरम्भ हुआ। जिस प्रकार राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा का विरोध किया था, वैसे ही विद्यासागर ने विधवा-विवाह को उचित बताकर आन्दोलन किया और नारी पर होनेवाले अमानवीय कष्टों का विरोध किया। आज भी समाज मे नारी पर सामाजिक अत्याचार होते हैं। नारी आज भी जलाई जाती है, उसकी अस्मत लूटी जाती है या उसे आत्म-हत्या करनी पड़ती है। सजग समाज में भी नारी पुरुषों की दासता से मुक्त नहीं हुई। जिन यूरोपीय देशों मे नारी मुक्त है, वहाँ उसके दुष्परिणाम सामने हैं। हमारे देश में वह आज भी आर्थिक परतंत्रता को बेड़ियों में आबद्ध है और परमुखापेक्षी है। यह सामाजिक समस्या नारी जाति की ही नहीं, सम्पूर्ण देश की एक बड़ी सामाजिक समस्या है। नाटक, उपन्यास या अन्य साहित्य-कृतियों से सामाजिक समस्याओं का

निदान करने की, समाज में नवजागृति पैदा करने की पहल की जाती है। इस दृष्टि से ‘खून का टीका’ उपन्यास अपना वह प्रभाव नहीं दिखा पाता है, जो चन्द्र ऐसे रचनाकार से अपेक्षित था।

‘खून का टीका’ उपन्यास में राणा हम्मीर अपनी पत्नी को सांत्वना देते हुए पृष्ठ १३७ पर कहता है—‘तुम मंगलमुखी हो। तुम्हारा आगमन मेवाड़ के लिए शुभ होगा।’ ‘खून का टीका’ उपन्यास की रचना करने के बाद श्री चन्द्र ने ‘मंगलमुखी’ कहानी की रचना की। इसमें उपन्यास के ऐतिहासिक तथ्यों का विरोधाभास है, जिस पर हमने कहानी अध्याय में चर्चा की है।

हम श्री यादवेन्द्र शर्मा ‘चन्द्र’ के वक्तव्य को उद्धृत कर अपनी बात समाप्त करेंगे। श्री चन्द्र ने ‘खून का टीका’ उपन्यास के आरम्भ मे लिखा है—‘मैं इतना ही कहूँगा।’ इस वक्तव्य में आपने लिखा है—‘राणा हम्मीर के जीवन की कुछ घटनाएँ बड़ी विवादास्पद हैं। फिर भी मैंने भरपूर सच्चाई के साथ उन घटनाओं का चित्रण किया है तथा इतिहासकारों के वर्णन के सत्य को ग्रहण करने की चेष्टा की है। उपन्यास की त्रुटियों के लिए मैं विज्ञजनों से क्षमा के साथ परामर्श भी चाहूँगा। यह ऐतिहासिक उपन्यास है वह भी प्रथम। अतः क्षमा का अधिकारी हूँ ही।’

श्री यादवेन्द्र शर्मा ‘चन्द्र’ ने बड़ी विनम्रता और साफ़गोई के साथ अपनी बात कही है। इसके बाद हमें कुछ कहना नहीं है। श्री चन्द्र राजस्थानी और हिन्दी के अच्छे कथाकार हैं। आपने राजस्थान के नई पीढ़ी के लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। आपकी रचना ‘खून का टीका’ में कहीं-कहीं मरुधरा की सौंधी गन्ध मिलती है। यथा ‘बाई सा’ ‘राणा सा’ आदि कथनों से तथा यत्र-तत्र कुछ राजस्थानी शब्दों के प्रयोग से उसपर आंचलिकता की छाया दीख पड़ती है। लेखक ने उपन्यास में सूर्यमल मिश्रण की ‘वीर सतसई’ के प्रसिद्ध दो दोहों को भी उजागर किया है। ये दोहे हैं—

आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय,
बहू बलेवा हुलसै, पूत मरेवा जाय।

× × ×

सुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बंधु-समाज,
माँ नह हरखी जनमदे, जतरी हरखी आज।

(‘खून का टीका’ उपन्यास, पृ० १३४)

हमने इन दोहों पर तथा कविराज सूर्यमल मिश्रण की रचनाओं 'वीर सतसई' और 'वंश भास्कर' पर विस्तार से पुस्तक के प्रथम खण्ड में चर्चा की है। 'खून का टीका' उपन्यास के मुख्यवीर ठाकुर अनंग सिंह के चरित्र को उजागर करने के लिए इन दोहों का इस्तेमाल किया गया है। अनंग सिंह युद्ध को ही जीवन का श्रेय और प्रेय मानता था, दूसरी ओर लेखक ने वीर चारण अमरदान के मुख से युद्ध की भर्त्सना कराई है और कहलवाया है—'युद्ध बन्द करो। युद्ध बन्द करो। युद्ध मनुष्य को राक्षस बनाता है, दैत्य बनाता है।' ('वही, पृ० १९५)

'खून का टीका' छठे दशक की रचना है, तब तक टॉलस्टाय की 'युद्ध और शान्ति' रचना चर्चित हो गई थी और 'दिनकर' का 'कुरुक्षेत्र' काव्य युद्ध को धिक्कार रहा था। दुनिया ने द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका को देखा और विश्व-शान्ति के लिए तृतीय विश्व-युद्ध की कल्पना से लोग सिहर जाते थे। आज भी स्थिति वही है। अस्तु, 'खून का टीका' एक सुन्दर कृति है और उसकी भाषा भी उतनी ही सुन्दर है।

एल० एन० बिड़ला के ऐतिहासिक उपन्यास

भारतीय साहित्य में लोककथाओं का अक्षय कोष है। लोककथाएँ आनादि काल से जन-मानस का कण्ठहार बनी हुई हैं। जहाँ एक ओर इन कथाओं ने भारतीय मानस का अनुरंजन किया है, वहीं इनके द्वारा समाज को प्रेरणा और उत्स की नई उद्भावनाएँ मिली हैं। राजस्थान में लोककथाओं का अजस्र स्रोत वर्षों से प्रवहमान है। यद्यपि समय की गति के साथ इस स्रोत की कुछ धाराएँ काल के गाल में विलीन होकर सूख गईं। किन्तु जो शेष हैं वे अपने आप में इतनी सशक्त हैं कि इन्हें पा कोई भी साहित्य अपने को धन्य मान सकता है। समय-समय पर साहित्यिकों एवं साहित्यानुरागियों के भगीरथ प्रयत्न से विलुप्त धाराएँ अपनी उसी उर्वस्वितता को लेकर बही हैं। ऐसा ही प्रयत्न प्रसिद्ध उद्योगपति एवं साहित्यकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास में किया है। आपका यह उपन्यास राजस्थान की बहुचर्चित लोक-कथा पर आधारित है।

'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास

श्री बिड़ला का 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास छठे दशक में कलकत्ता से आंग्ल भाषा में प्रकाशित हुआ था। उस समय मैंने इस उपन्यास पर 'राजस्थानी समाज' पाक्षिक पत्र के विशेषांक १९६३-६४ में एक समीक्षात्मक निबन्ध लिखा था। इसके सम्पादक श्री रतनलाल जोशी ने विशेषांक का प्रकाशन १९६४ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित किया था। 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास का हिन्दी रूपान्तर पश्चात १९६५ ई० में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी संस्करण मे पिलाणी कॉलेज के प्राचार्य डॉ० कन्हैयालाल सहल ने उपन्यास के परिशिष्ट में 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास की संक्षिप्त हिन्दी कहानी प्रस्तुत की थी। हिन्दी रूपान्तर की भूमिका प्रसिद्ध उपन्यासकार-साहित्यकार श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने लिखी है।

श्री वर्मा ने अपनी भूमिका में लिखा है—'राजस्थान के एक बड़े भाग में प्रचलित जनप्रिय लोक-कथा के आधार पर 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने लिखा है। पहले उन्होंने इसे अंग्रेजी में लिखा था। अब यह हिन्दी रूपान्तर है।'

श्री बिड़ला ने उपन्यास की भूमिका में लोक-कथा के ऐतिहासिक अंग पर शोध-पूर्ण प्रकाश डाला है।

'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास का प्रधान नायक 'सुल्तान' प्रतिहार वंशीय ठाकुर है। वह वचन का पक्का, बड़ा साहसी और वीर है। साथ ही कष्ट-सहिष्णु, तपस्वी और सत्चरित्र है। वह जनहित कार्यों में अपने को समर्पित करता है। ऐसे आदर्श राजा और राज्य की परिकल्पना उसके मस्तिष्क में है, जिससे जनता की ज्यादा से ज्यादा भलाई हो सके। जनता ऐसे ही सुचरित्र वाले तरुण को अपना नायक बनाती है, जिसमें उदात्तगुणों की प्रधानता रहती है। मं बाँटे

श्री बिड़ला ने सुल्तान के इस चरित्र को रोचक त ौर निहालदे' घटनाओं में दिखाने की भरपूर चेष्टा की है। चूंकि सुल्तान का जन्म का कृपा से हुआ था। अतः उसे गोरखनाथजी का वरदहस्त सदैव ने अपने ता के रूप में मिलता है। सुल्तान किचलकोट के राजा का पुत्र था। एक बार भूल से तीर चलाने पर उसके द्वारा एक ब्राह्मण कन्या घायल हो गई। इस अपराध के कारण उसे बारह वर्ष के लिए राज्य से निर्वासित होना पड़ा, उस समय वह केवल १४ वर्ष का एक युवक था। वह अपनी बहादुरी से एक जिन को मारता है, बड़े-बड़े डाकुओं और दस्युओं का संहार करता है, दुष्चरित राजाओं का मान भंग करता है। वह अपनी मंगेतर निहालदे से स्वयम्वर में मत्स्य-बेधन कर विवाह करता है। निहालदे रूपसी और रमणी है। योग्य नायक की नायिका बनने के सारे लक्षण उसमें हैं।

राजपूत जिसे एक बार बहन कह देता है, उसे प्राण रहते सम्मान और आदर देता है तथा उसकी रक्षा में प्राण तक देने को तैयार होता है। सुल्तान की यह उदात्त-भावना हमें इदरकोट में मारू के राज्य में मिलती है। मारू सुल्तान से अपनी काम-पिपासा शान्त करना चाहती है, पर वीर सुल्तान उसे बहन का दर्जा देता है और अपने इस प्रण को वह हमेशा निभाता है। मारू की पुत्री के विवाह में 'भात' भरने जाता है।

'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास में घटनाओं की भरमार है। राजस्थान में जरा-जरा सी बात पर युद्ध हो जाते थे। लोक-कथा के इस अंश में इनका वर्णन है। उपन्यास का पूर्वार्द्ध जितना रोचक है, उत्तरार्द्ध उतना नहीं। शायद लेखक घटनाओं के घटाटोप में कथा-सूत्र को पूरी तरह बांध कर नहीं रख सका है।

'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास की कथा राजस्थान की लोक-कथा है, पर उसमें केवल एक ही शब्द कई स्थानों पर राजस्थानी भाषा की अभिव्यक्ति करता है। यह शब्द है 'घाणी-माणी'। 'घाणी-माणी' का अर्थ है चक्कर लगाना या तेजी से चाक की तरह घूमना। जो हो श्री लक्ष्मी निवास बिड़ला का उपन्यास 'सुल्तान और निहालदे' रोचक है और सरल भाषा में लिखा गया है। 'राजस्थान' के कथानकों पर लिखे गए उपन्यासों में 'सुल्तान और निहालदे' का अपना विशेष स्थान है।

यहाँ प्रस्तुत है 'सुल्तान और निहालदे' उपन्यास की एक वीरतापूर्ण घटना [illegible] सुल्तान ने इदरकोट में रहते हुए एक नरभक्षी जिन को मार कर उसके नाक-कान [illegible] थे। इदरकोट के राजा कामध्वज को जब यह पता चला कि जिन को मारने वाः [illegible] कान काट लिए हैं तो उसने हुक्म दिया कि जो जिन के नाक-कान पेश [illegible] म दिया जायेगा। काफी खोज करने पर भी जिन को मारने वाले क [illegible] तब अन्त मे सुल्तान अपने दोस्त पनिया पठान के साथ राजा के साम [illegible] न ने राजा से कहा—'जिन को मारने वाला आदमी यह है।' सुल्ता [illegible] नाक-कान राजा के सामने फेंक दिए। सारा दरबार चकित हो उठा। आप [illegible] प लोगों के सिर सुल्तान के प्रति सम्मान से झुक गए मानो किसी परोक्ष सत्ता ने उन्ह [illegible] सके लिए बाध्य कर दिया हो।

राजा तो इतना अधिक खुश हुआ कि उसने दौडकर सुल्तान को गले लगा लिया और कहा—'तुम्हारा यह कार्य ऐसा है कि नगर की दीवारों पर इसे सुनहरे अक्षरों में अंकित कर देना चाहिए। तुमने हमारे नगर को भीषण संकट से उबार लिया है। तुम्हारी इस लोक-सेवा को हम कभी नहीं भूल सकते। तुम जो चाहो मांग लो।'

'महाराज, मैंने किसी पुरस्कार के लिए जिन को नहीं मारा है।'

जब वह बाहर आया तो सारा शहर सुल्तान को घेर कर खड़ा हो गया। एक हाथी पर बैठा कर उसे जुलूस में ले चले। जब जुलूस रानी मारू के महल के नीचे से गुजरने लगा तो वह अपने को नहीं सम्भाल सकी। उसने सुल्तान को दासी के द्वारा महल मे बुलाया। रानी ने सुल्तान से कहा—

'तुमने हमारे राज्य का जो उपकार किया है, उसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। इतना कुछ करने के बाद हम तुम्हें ऐसे ही नहीं जाने देंगे। मैं पूछती हूँ, तुम्हारे योग्य कोई काम दें तो कैसा रहे? क्यों न तुम हमारे ही साथ रहो?'

'महारानी, मैं स्त्रियों को बहनों के समान समझता हूँ और उसी तरह उनका सम्मान करता हूँ। किन्तु मैं ऐसी जगह नहीं रह सकता, जहाँ एक स्त्री शासन करती है। मैं केवल पुरुषों के नीचे ही काम कर सकता हूँ।'

'मैंने तुम्हारे जैसा व्यक्ति नहीं देखा। तुम जैसे बाहर से हो, वैसे ही भीतर से भी। तुममें झूठा अहं नहीं है, न खोखला दिखावा। तुम लम्पी नहीं हो, इसलिए तुम मुझे पसन्द हो।'

'अगर आप चाहते हैं कि मैं आपके राज्य में रहूँ तो मैं समरकुर्ज के पनिया पठान के साथ रहना चाहूँगा। जहाँ मैं सीधे तौर पर आपके अधीन नहीं रहूँगा।'

रानी ने सुल्तान की बात मान ली। यह भी निर्णय हुआ कि उसे प्रति माह एक लाख रुपए दिए जायेंगे। सुल्तान अपना वेतन गरीबों में बाँट देता और नगर निवासियों के लिए जनहितार्थ कार्य करता। ('मुल्तान और निहालदे' उपन्यास, पृ० ४७-५०)

यह था सुल्तान का चरित्र जिसे श्री बिड़ला ने अपने उपन्यास में सहृदयता से अंकित किया है।

बिड़लाजी का 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास

टॉड के 'राजस्थान' का प्रभाव बंगला-साहित्य के बाद हिन्दी-राजस्थानी तथा अन्य भाषाओं पर पड़ा। उसी का निदर्शन है प्रसिद्ध उद्योगपति कवि-साहित्यकार-कथाकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला का उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' (The curse of Padmini) इस उपन्यास का मूल अंग्रेजी संस्करण १९७१ ई० में बम्बई के भारतीय विद्या भवन से और हिन्दी रूपान्तर दूसरे वर्ष (१९७२ ई०) नई दिल्ली के सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित हुआ। हिन्दी अनुवादक हैं डॉ० उमापति राय चंदेल।

पद्मिनी का शाप' उपन्यास की रचना इतिहास की पृष्ठभूमि पर की गई है। इसकी कहानी जायसी के 'पद्मावत' और टॉड के 'राजस्थान' से अधिक मेल खाती है, किन्तु पूरा कथानक ऐतिहासिक तथ्यों से बंधा हुआ नहीं है, लेखक ने जगह-जगह अपनी कल्पना के रंग भरे हैं और इतिहास के कुछ नवीन दिगन्तों का भी उद्घाटन किया है। प्रेम, त्याग तथा शौर्य की मर्मस्पर्शी पृष्ठभूमि पर रचा गया यह हिन्दी का अनोखा उपन्यास है। इतिहास और कल्पना से गुम्फित होने पर हम इसे इतिहास का रोमांस कह सकते हैं। लेखक श्री बिड़ला ने अपनी प्रस्तावना के शीर्ष पर अनातोले फ्रांस की उक्ति को उद्धृत कर सच्चाई पर मोहर लगा दी है—

'जिन ऐतिहासिक पुस्तकों में झूठी बातें बिल्कुल नहीं होती वे बेहद उबानेवाली होती हैं—All historical books which contain no lies are extremly tedious—Anatole France" यह बात काफी हद तक सत्य के नजदीक है और इसी कारण हमने इसे इतिहास के रोमांस से संज्ञापित किया है।

स्वतंत्रता का प्रहरी

चित्तौड़ देश की स्वतंत्रता का प्रहरी रहा है। इसने कई साके झेले हैं, यहाँ की मिट्टी देशभक्तों के माथे का चंदन बनी है। बलिदान की भूमि राजस्थान में इसका गौरवपूर्ण स्थान है। इन भावों से लेखक अभिभूत है, जिसका साक्ष्य है प्रस्तावना में श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला का यह कथन (पृष्ठ ४ पर)—'चित्तौड़ नाम में एक सम्मोहन है। इतिहास के विद्यार्थी, लोककथाओं के पाठक और जिज्ञासु पर्यटक इसकी मनोहर शोभा को देखते नहीं अघाते—यहाँ देखने के लिए दृश्य भी बहुत हैं और सोचने के लिए विचार भी। असल में चित्तौड़ मनुष्य की कल्पना में, जो सूक्ष्म रंगों और प्रखर प्रकाश किरणों से भरपूर है, इस प्रकार अनुस्यूत है कि उसको उससे किसी तरह अलग नहीं किया जा सकता। चित्तौड़ के इतिहास का केन्द्र-बिन्दु यह है कि यह हमारे देश में राष्ट्रीय-चेतना और बलिदान-विषयक साहस का पालना है। एक के बाद एक कई पीढ़ियों तक शूर-वीर योद्धाओं ने, अकथ विपदाओं और अभावों के बावजूद, स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया है। यह अमर देश-भक्तों का घर है। इसकी स्वाधीनता पर पहला आक्रमण किया दिल्ली की सल्तनत ने। चित्तौड़ ने कई वर्षों तक शत्रु से डटकर लोहा लिया और जरा भी खम नहीं खाया।"

इतिहास का साक्ष्य

श्री बिड़ला अच्छे साहित्यकार और अनुसंधान करने वाले विद्वान हैं। आपने उपन्यास को कल्पना के सतरंगी इन्द्रधनुषी रंग से सजाया-संवारा है; इतिहास की गहराई से खोज ही नहीं, पूरी छान-बीन भी की है। उनका पृष्ठ ६ पर प्रस्तावना का यह कथन हमारी बात की पुष्टि करता है—'उस समय का इतिहास अमीर खुसरो के 'तारीख-ए-अलाई', जियाउद्दीन बर्नी के 'तारीख-ए-फिरोज़शाही' और अबुल फज़ल के 'आईने-अकबरी' में दर्ज है, लेकिन इनकी सूचनाओं में अन्तरविरोध मिलता है। पद्मिनी की कहानी पर आधारित एक दूसरा ग्रन्थ है 'छाभोदय।' इन सभी इतिहासों को जायसी के 'पद्मावत' ने पीछे छोड़ दिया है। 'पद्मावत' एक अत्यन्त सुन्दर और सबल काव्यकृति है, जिसकी कथा 'खज़ायन उल् फ़तूह' से ली गई है। इन समसामयिक इतिवृत्त-संग्रहों के अतिरिक्त टॉड द्वारा

लिखित 'ऐनाल्स एण्ड ऐण्टिक्यूटीज ऑफ राजस्थान' भी है, जिसकी सामग्री बहुत कुछ 'खुमान रासो' शीर्षक एक पुराने रासो-ग्रन्थ से संकलित की गई है।[?]

ऐयाशी का पुतला

अलाउद्दीन खिलजी कामुक और ऐयाश था। उसकी इस हविस के कारण कई जंग हुए। इसका बखान बंगला, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के लेखकों ने किया है। हमने यथास्थान उसका उल्लेख पुस्तक में किया है। उसके इस कामुक और अमानवीय कृत्य पर जहाँ कई साहित्य-मनीषियों ने उसकी कड़ी आलोचना की है, वहीं पद्मिनी ने जौहर के पूर्व उसे 'शाप' दिया है। उसी कथन को रेखांकित करने के लिए लेखक ने 'पद्मिनी का शाप की अवतारणा की है।

अलाउद्दीन के वासनापूर्ण जीवन पर लेखक के विचार यहाँ द्रष्टव्य हैं—'चित्तौड़ पर धावा करने के पूर्व अलाउद्दीन ने गुजरात के राजा कर्णदेव बघेल पर हमला किया। कर्णदेव की रानी कमलादेवी बहुत सुन्दर थी। उसी को प्राप्त करने के लिए उसने यह आक्रमण किया था। एक लोककथा के अनुसार, इस सुन्दरी युवती ने विनोद के झोंक में या सुल्तान का ध्यान अपनी ओर से हटाकर किसी दूसरी स्त्री की ओर लगाने के उद्देश्य से, रूपवती पद्मिनी को हथियाने के लिए उसे उसकाया था। असल में, इतिहासकार बताते हैं कि अलाउद्दीन की कभी न बुझनेवाली वासना की प्यास का शिकार एकाधिक स्त्रियाँ हुई थीं। कहते हैं कि उसने पहले कमलादेवी को हथियाया, फिर पद्मिनी को अपने कब्जे में लेने की कोशिश की और बाद में देवगिरि के राजा रामदेव की सुन्दरी कन्या छिताई पर अपनी कुदृष्टि डाली। यों उसकी वासना की भेंट चढ़ने वाली कम प्रसिद्ध स्त्रियों की तो कोई गिनती नहीं।" ('पद्मिनी का शाप', पृ० ५-६)

जेकर बिटिया सुन्दर देखी ता पर जाय धरे हथियार

असल में सुन्दरी स्त्रियों के कारण संसार में कई युद्ध हुए हैं। ऐसे युद्ध प्रसंगों पर विश्व-साहित्य में अनेक ग्रन्थ रचे गए हैं, जो अमर काव्य की कोटि में आते हैं। ग्रीक, लैटिन, संस्कृत में कई ऐसे पौराणिक आख्यान हैं। लेखक बिड़ला जी ने भी इसकी चर्चा प्रस्तावना के उपसंहार में पृष्ठ ८-९ पर की है—'पद्मिनी के भाग्य की

तुलना इतिहास की कुछ प्रसिद्ध राजकन्याओं के साथ की जा सकती है। रानी पद्मिनी को ट्राय की हेलन के समान बताया गया है और टॉड ने इसी रूप में उसकी सराहना की है। उसी रूप में या उससे मिलते-जुलते कुछ दूसरे रूप में – स्पृहणीय एवं आराध्य पद्मिनी में कुछ-कुछ वैसा ही आकर्षण या सम्मोहन था जैसा कि मिश्र की क्लिओपेट्रा में था। पद्मिनी के भाग्य ने उसको तो प्रभावित किया ही, परन्तु उसके साथ-साथ उसके देश को भी किया, और इस रूप में वह फ्रांस की मेरी इन्ट्वाइनेट के सदृश्य है। बर्क ने फ्रांसीसी रानी की गरिमा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक भावभीना गीत लिखा था। जिसमें उसने एक जगह कहा है कि ऐन्ट्वाइनेट की रक्षा के लिए दस हजार तलवारें एकदम अपनी म्यानों से निकल सकती थीं। पद्मिनी के लिए तो दस हजार से भी अधिक तलवारें सचमुच ही चमक पड़ी थीं। चित्तौड़ के प्रति प्रेम की ज्वाला और उसकी रानी की सदाशयता के प्रति भक्ति, एक अटल विपत्ति के रूप में उपस्थित होने पर, इस शौर्य प्रदर्शन की प्रेरणा बनी थीं। पद्मिनी का आख्यान गहरी आस्था और प्रेम की कोमल भावना से मुखरित है तथा असंख्य हृदयों में यह अमूल्य निधि की भांति संजोयी हुई है। यही कारण है कि आज भी चित्तौड़ काव्यात्मक और देशभक्तिपूर्ण तीर्थ-यात्रा का स्थान बना हुआ है।'

एल० एन० बिड़ला : कृतित्व और व्यक्तित्व

वस्तुतः राजस्थान के वीरों और वीरांगनाओं में कुछ चरित्र मिथक बन गए हैं, जिनमें पद्मिनी और राणा प्रताप हैं। इनके आख्यानों को कवियों, नाटककारों और उपन्यास लेखकों ने निजंधरी आख्यान के रूप में उपस्थित किया है। इन उपाख्यानों ने मानवीय उत्कर्ष प्रदान किया है और इसीलिए ये चरित्र साम्प्रदायिक भावनाओं से बहुत ऊपर उठ गए हैं। उल्लेखनीय है कि श्री लक्ष्मी निवास बिड़ला स्व० घनश्यामदास जी बिड़ला के ज्येष्ठ पुत्र हैं और सुचिन्तित साहित्यकार हैं। आपका जन्म पिलानी में सन् १९०९ ई० में हुआ था। आप हिन्दी और अंग्रेजी के विद्वान हैं तथा राजस्थानी भाषा-संस्कृति के उपासक हैं। आपके निर्देशन में बंगाल हिन्दी-मण्डल से कई साहित्यिक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। आपने अंग्रेजी में 'उमाज तपस्या' (उमा की तपस्या) खण्ड-काव्य लिखा है, जिसकी कहानी कालिदास के 'कुमार सम्भव' काव्य में वर्णित है, पर इसमें आपने कई नई उद्भावनाओं का संयोजन किया है। दूसरी पुस्तक अंग्रेजी में है 'फोक टेल्स फ्रॉम राजस्थान' (राजस्थान की लोक-कथाएँ) एवं अंग्रेजी में ही

आपके लिखे तीन उपन्यास हैं, जिनके नाम हैं 'सुल्तान और निहाल्दे', 'प्रेम की देवी' और 'आँचल और आग' (सभी ऐतिहासिक उपन्यास)। बिड़लाजी के तीन निबन्ध-संग्रह हैं—'कहिए समय विचारी', 'जीवन की चुनौतियाँ' और 'बीते दिन वे लोग' जो आपके चिन्तन का अद्भुत नमूना हैं। इसके अतिरिक्त बागवानी पर आपकी अंग्रेजी में पुस्तक हैं—'प्लानिंग ए लैण्डस्केप गार्डन' (उद्यान निर्माण एवं सज्जा) तथा 'पापुलर टेल्स ऑफ राजस्थान'। ये कृतियाँ श्री लक्ष्मीनिवासजी को साहित्य के ऊँचे धरातल पर स्थापित करती हैं।

क्रान्तिकारी कार्य

प्रस्तुत उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' आपकी नवीन कृति है। आश्चर्य है घनश्यामदास बिड़ला गाँधीजी के विशेष अनुयायी और कृपा-पात्र थे। अहिंसा को भारतीय राजनीति में स्थापन के लिए भूषण की 'शिवा-बावनी' के गाँधीजो इसलिए विरोधी थे कि उससे हिंसा तथा साम्प्रदायिक द्वेष का प्रचार होता है, पर लक्ष्मीनिवासजो ने 'पद्मिनी का शाप' लिख कर एक क्रान्तिकारी साहित्य-सेवी का कार्य किया है। हम ने 'गाँधीवाद' की इस मानसिकता पर पुस्तक के प्रथम खण्ड के पृष्ठों में विचार किया है तथा प्रो० सुधीन्द्र एवं राष्ट्रकवि 'दिनकर' के विचार 'जौहर' तथा 'प्रताप-चरित्र' की आलोचना में उपस्थित किए हैं। अस्तु, अब हम 'पद्मिनी का शाप' (ऐतिहासिक उपन्यास) पर विचार करेंगे।

पद्मिनी के चरित्र को लेकर बंगला भाषा में काव्य, नाटक और उपन्यास लिखे गए। रंगलाल का काव्य 'पद्मिनी उपाख्यान' १९वीं शताब्दी में अत्यधिक चर्चित हुआ और उससे बंगला के साहित्य-सेवियो को प्रेरणा मिली, जिनमें माइकेल मधुसूदन दत्त और उनका दुखान्त नाटक 'कृष्ण कुमारी' उल्लेखनीय है। बंगला नाटककार क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद ने १९०६ ई० में तथा हरिपद चट्टोपाध्याय ने १९०५ ई० में 'पद्मिनी' नाटक लिखे। १८९८ ई० में बंगला में 'पद्मिनी' पर उपन्यास लिखा गया। इस तरह बंगला-साहित्य में 'पद्मिनी' पर प्रचुर साहित्य रचा गया और हिन्दी में भी। ऐसे चर्चित उदात्त चरित्र पर लक्ष्मीनिवासजी ने अपनी लेखनी का चमत्कार दिखा कर 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास की रचना की है।

'पद्मिनी का शाप' की कहानी

आलोच्य उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' यद्यपि आधुनिक काल अर्थात् १९७२ ई० की रचना है, पर इसमें अध्यायों का विभाजन विभिन्न शीर्षकों से हुआ है, जो १९वीं या बीसवीं सदी के आरम्भिक काल की पद्धति है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है

'अशुभ भविष्यवाणी।' इसे हम कथा का बीज कह सकते हैं। इसी में कथा का अंकुर विद्यमान है। चित्तौड़ के राणा समर सिंह शिकार के लिए जंगल में जाते हैं और रात में उनकी भेंट एक वृद्धा से होती है, वह कहती है—'तुम तीन साल तक और राज करोगे। तुम्हारे बाद रतन सिंह सिंहासन पर बैठेगा। लेकिन रात अंधेरी है और सूरज बहुत दूर है। रतन सिंह को अब से कहीं ज्यादा हिम्मत से काम लेना होगा। परीक्षा की बहुत सी घड़ियाँ आयेंगी और खूब खून-खराबा होगा। पद्मिनी के साथ उसका विवाह हो जाने के बाद ये बातें होंगी। वह पद्मिनी से विवाह करेगा। ....और वही चित्तौड़ के विनाश का कारण बनेगी। चित्तौड़ को पाने के लिए बहुत से सिसोदियों को बलिदान होना पड़ेगा।' ('पद्मिनी का शाप', पृ० २)

इस प्रकार प्रथम परिच्छेद में ही भविष्यवाणी के रूप में उपन्यास की कथा का संकेत दे दिया गया है। यहाँ एक बात का उल्लेख आवश्यक है कि टॉड ने अपने ग्रन्थ में पद्मिनी के पति का नाम राणा भीम सिंह दिया है। वह राणा लक्ष्मण सिंह का चाचा था और अल्प वय में सिंहासन पर बैठा था। चाचा भीमसिंह ही अभिभावक के रूप में शासन चलाता था। किन्तु जायसी ने पद्मिनी के पति का नाम रत्न सेन लिखा है। इतिहास रचयिताओं ने उसका नाम रतन सिंह ही स्वीकारा है, किन्तु राणा समर सिंह का उल्लेख नहीं किया है। लेखक ने अपनी कल्पना से भविष्यवाणी के द्वारा उपन्यास में चमत्कार पैदा किया है।

जायसी का प्रभाव

दूसरा परिच्छेद है 'तानाकशी रंग लायी।' रतन सिंह की प्रथम रानी प्रभावती एक दिन पति को ताना देकर कहती है—'आप पद्मिनी से शादी क्यों नहीं कर लेते, जो आपको पसन्द का खाना खिला सके।' (वही, पृ० ५) इस ताने को सुनकर रतन सिंह अपने चार साथी घुड़सवारों को लेकर सिंहल द्वीप के लिए अर्थात पद्मिनी को पाने के लिए प्रस्थान कर देता है। राणा समर सिंह जब शिकार से लौटते हैं तो सुनते हैं कि रतन सिंह पद्मिनी को पाने सिंहल चला गया है। टॉड ने रतन सिंह (भीमसिंह) की प्रथम रानी का कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, जायसी ने प्रथम रानी का नाम नागमती बताया है। पद्मिनी की बात का पता 'पद्मावत' में हीरामन तोते से लगता है और वह योगियों का वेश बनाकर पद्मिनी को पाने सिंहल द्वीप की यात्रा करता है। जायसी ने नागमती के विरह का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। रतन सिंह सिंहल पहुँच कर पद्मिनी से विवाह करता है और बहुत कष्ट से वापस चित्तौड़ लौटता है। बिकलाजी के उपन्यास में भी जायसी की

भांति रतन सिंह की यात्रा और पद्मिनी के साथ उसके विवाह का वर्णन किया है। इतना जरूर है कि लेखक ने सिंहल के इतिहास और सिंहल जाने तथा लौटने की यात्रा का रोमांचक विवरण उपस्थित किया है।

नई उद्भावना

उपन्यासकार ने कई सूत्रों से अलाउद्दीन के पास पद्मिनी की बात पहुँचवाई है, इसमें गुजरात के बघेल राजा की रानी कमला देवी प्रमुख है। पश्चात दिल्ली दरबार के षड़यंत्रकारी तथा मेवाड़ के सगर सिंह से पद्मिनी को पाने की योजना बनती है। सगर सिंह सिंहल-यात्रा में रतन सिंह के साथ गया था। उसे अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का शासक बनाने का प्रलोभन दिया था। जायसी ने राघव चेतन से अलाउद्दीन के पास पद्मिनी की सूचना भिजवाई है। अन्ततः उपन्यास में वही लोक प्रचलित कहानी का तानाबाना है। अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर कई बार आक्रमण होता है, असफल होने पर वह दर्पण में पद्मिनी का चेहरा देख कर दिल्ली लौटने का आश्वासन देता है। दर्पण में पद्मिनी का बिम्ब दिखाया जाता है, अलाउद्दीन छल से राणा रतन सिंह को बन्दी बनाता है और पुनः पद्मिनी सात सौ पालकियों में वीरों को लेकर जाती है और राणा का उद्धार होता है। युद्ध में गोरा-बादल की वीरता का वर्णन है। पुनः चित्तौड़ पर आक्रमण होता है और राजपूत वीर जौहर-व्रत का पालन करते हैं। पद्मिनी अग्नि में प्रवेश के पूर्व शाप देती है—'याद रखो, हमारे संघर्ष का यही अन्त नहीं है। हमारे वंश के दूसरे लोग भी हैं, जो चित्तौड़ को स्वतंत्र कराये बिना दम नहीं लेंगे। वे अगले अभियान के लिए योजना बनायेंगे। मैं अलाउद्दीन को शाप देती हूँ कि वह बहुत दिन जीयेगा, लेकिन उसका जीना मरने के बराबर होगा। उनके बेटे और उसकी बेगम तक उसके साथ धोखा करेंगे। वह शान्ति के लिए तड़पेगा, लेकिन शान्ति उसे कभी नहीं मिल पायेगी। उसने अपनी इच्छा से या अपनी सनक के कारण जिन हजारों आदमियों को मौत के घाट उतार दिया है, वे उससे अपनी मौत का बदला जरूर लेंगे और वह कुत्ते की मौत मरेगा।' ('पद्मिनी का शाप', पृष्ठ संख्या १७४)

इसके बाद पद्मिनी आग की लपटों में भस्म हो गई। अग्नि में प्रवेश के पूर्व जौहर में आत्माहुति देनेवाली वीरांगनाओं की कतार थी। वे गीत गा रही थीं, अग्नि-देवता का और पद्मिनी उनमें आगे-आगे गीत गाती थी—

हे शुद्ध, पवित्र, उज्ज्वल और स्वर्णिम अग्नि देवता,

प्रकट होओ, हमारी प्रार्थना सुनो
और अपना दर्शन हमें दो।...." (वही, पृ० १७३)

इतिहास की खोज

'पद्मिनी का शाप' उपन्यास के १६वें परिच्छेद 'एक युग का अन्त' में राणा समर सिंह अपनी मृत्यु के पूर्व अपने खानदान के सभी लोगों को बुलाते हैं। वे राणा लक्ष्मण सिंह को चित्तौड़ की रक्षा के लिए कहते हैं। लक्ष्मण सिंह इसे स्वीकारता है। समर सिंह कहते हैं अपने पुत्र रतन सिंह से—'खाली स्वतंत्र रहने की लालसा एक छलना है। बन्धन में रहो, फिर भी स्वतंत्र रहो, यह है आनन्द का असली द्वार। लक्ष्मण सिंह तुम्हारे चाचा हैं। इनकी आज्ञा का वैसे ही पालन करना, जैसा मेरी आज्ञा का करते थे।' (वही, पृ० १०३)

टॉड साहब ने अपने 'राजस्थान' ग्रन्थ में भीमसिंह (रतन सिंह) को लक्ष्मण सिंह का चाचा बताया है, किन्तु बिड़लाजी ने लक्ष्मण सिंह को रतन सिंह का चाचा दर्शाया है। इसी तरह की कई ऐतिहासिक नई खोजों का उपन्यास में उल्लेख है।

'पद्मिनी का शाप' उपन्यास के पृ० १०६ पर लिखा गया है—'चित्तौड़ का किला अपने आदि रूप में मौर्य-काल का बना हुआ है। राहुप ने इसको बाद में अधिक सुदृढ़ और दुर्जेय बना दिया था उसने 'रावल' की उपाधि की जगह 'राणा' की उपाधि प्रचलित कर दी थी। उसने अपने वंश का नाम भी बदल डाला और उसे 'सिसोदिया' नाम दिया।" उपन्यास में ऐतिहासिक सूचनाएँ हैं और चित्तौड़ के इतिहास पर नई रोशनी पड़ती है।

शाप की छाया

'पद्मिनी का शाप' उपन्यास का अन्तिम परिच्छेद है—'शाप की छाया'। इसमें अलाउद्दीन का कारुणिक अन्त दिखाया गया है। इस तरह उसका प्रलाप जारी रहा......शायद वह कहना चाहता था—'क्या लोग मुझे माफ कर देंगे ?' उसके भीतर जो दर्द उठ रहा था, उसको वह दबा नहीं पा रहा था। हजारों निर्दोष आदमियों का खून उसके हाथों पर से बहता जान पड़ा और उसकी अंगुलियों के जोड़ उस खून से चिपचिपे हो गये।' (वही, पृ० १६१)

'सांझ का झुटपुटा बढ़ता जा रहा था। आसमान में बादल, डूबते सूरज के दहकते गोले को छू कर लाल-लाल हो रहे थे। ऐसे समय में एक

दुबली-पतली देह चंदोवेदार मय्यत पर रखी हुई थी.... (वही, पृ० ११२)

श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला का उपन्यास 'पद्मिनी का शाप' एक सशक्त रचना है। कथा कहने का ढंग अनूठा है। लेखक की काव्यमयी भाषा मन को मोहती है। अंग्रेजी में ऐसा अनूठा उपन्यास दुर्लभ है और हिन्दी अनुवाद भी काफी सुरुचिपूर्ण ललित भाषा में हुआ है। हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इसे मील का पत्थर की संज्ञा दी जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

बिड़लाजी का 'प्रेम की देवी' उपन्यास

श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने 'प्रेम की देवी' उपन्यास की रचना १९७३ ई० में की थी, जिसके दूसरे संस्करण का प्रकाशन १९८६ ई० में सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ। इस उपन्यास में कोडमदे और सादू (साधू या शार्दूल सिंह) के पराक्रम और अनन्य प्रेम का हृदय-स्पर्शी वर्णन किया गया है।

उल्लेखनीय है कि बंगला भाषा के प्रसिद्ध कवि रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथाएँ लेकर 'पद्मिनी उपाख्यान' (१८५८ ई०) और 'कर्मा देवी' (१८६२ ई०) काव्य-ग्रन्थों की रचना की थी। असल में कवि रंगलाल ने राजस्थान की तीन वीर रमणियों के उज्ज्वल चरित्र को उजागर करने के लिए तीन काव्य-ग्रन्थ लिखे थे। उनका तीसरा काव्य-ग्रन्थ है 'शूर-सुन्दरी' (१८६८ ई०) जो कवि पृथ्वीराज की पत्नी को लेकर रचित हुआ है। इस वीर क्षत्राणी ने नौरोज के मेले में अकबर की छाती पर कटार लेकर प्राणघातक हमला किया और अकबर को हमेशा के लिए नौरोज के मेले को बन्द करने पर मजबूर किया। ऐसा करने पर ही सम्राट अकबर को प्राणों की भीख मिली। हमने इन तीनों काव्य-ग्रन्थों पर पुस्तक के प्रथम खण्ड के 'काव्य अध्याय' में विस्तार से चर्चा की है। हमने यह स्थापना की है कि आधुनिक बंगला-साहित्य का 'पद्मिनी उपाख्यान' प्रथम काव्य-ग्रन्थ है, जिसकी रचना कवि रंगलाल ने टॉड के 'राजस्थान' से उपकथा लेकर की है। पद्मिनी उपाख्यान के सिलसिले में हमने साहित्यकार श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला के 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास की चर्चा की है तथा 'पद्मिनी का शाप' उपन्यास पर अपने विचार पिछले पृष्ठों में व्यक्त किए हैं। यह एक सुखद घटना है कि १९वीं शताब्दी के भारतीय नव-जागरण में रंगलाल ने राजस्थान के जिन रमणी रत्नों पर अपनी कालजयी रचनाओं का निर्माण किया, उन्हीं राजस्थान की वीर नारियों को २०वीं शताब्दी में श्री बिड़ला ने अपने उपन्यासों का कथ्य बनाया।

'कर्मादेवी' काव्य और 'प्रेम की देवी' उपन्यास

श्री बिड़ला के 'प्रेम की देवी' उपन्यास में तथा कवि रंगलाल के 'कर्मादेवी'

काव्य में कथानक तो एक ही है, किन्तु प्रस्तुतीकरण की शैली और कथानक का ताना-बाना भिन्न रूप में है। कोई एक सौ-सवा सौ वर्ष के अन्तराल में कथ्यशैली में भिन्नता का होना कोई अजूबा बात नहीं। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि 'कोडमदे' की कथा राजस्थान के चारण-भाटों की जुबान पर आज भी तन्मयता के साथ गाई जाती है। हमने रंगलाल के 'कर्मादेवी' काव्य के प्रसंग में कवि मुकुल और डॉ० मनोहर शर्मा के द्वारा रचित कोडमदे सम्बन्धी काव्य रचनाओं की भी पुस्तक के प्रथम खण्ड के 'काव्य अध्याय' में चर्चा की है।

कवि रंगलाल बन्द्योपाध्याय ने अपनी कहानी टॉड के 'राजस्थान' से पूरी तरह से लेकर अपने काव्य-ग्रन्थ 'कर्मादेवी' की रचना की है, किन्तु श्री बिड़ला ने राजस्थान के पूरे इतिहास को साक्ष्य मे रख कर 'प्रेम की देवी' उपन्यास की कथा का ताना-बाना बुना है। यद्यपि उपन्यास मे इतिहास काफी मात्रा मे उभर कर आया है, लेकिन कथानक मे कुछ ऐसी घटनाओं का भी समावेश हुआ है, जिनका अन्य किसी ग्रन्थ मे उल्लेख नहीं है। सच पूछा जाय तो श्री बिड़ला ने अपने उपन्यासों मे अनातोले फ्रांस की इस उक्ति को काफी अंशों में सार्थक किया है—'जिन ऐतिहासिक पुस्तकों में झूठी बातें बिल्कुल नहीं होतीं, वे बेहद उबानेवाली होती हैं। कदाचित इसी गरज से लेखक ने अपने उपन्यासों में ऐसी घटनाओं की रचना की है जिनसे प्रतीत होता है कि राजपूत जानबूझ कर विपत्तियों को न्यौता दिया करते थे। चारों तरफ युद्ध का वातावरण होने पर तथा अन्तत:पुर में षड़यन्त्र की घटनाओं के घटने पर भी नायक और नायिका जंगल-विहार या झील के किनारे मनोरंजनार्थ जरूर जायेंगे और अनजाने षड़यन्त्र के जाल में फसेंगे। ऐसी घटनाएँ जहाँ बिड़लाजी के 'आँचल और आग' उपन्यास में हैं—'प्रेम की देवी' उपन्यास मे भी देखी जा सकती हैं। राजपूत अपने दुर्गों को पूरी चौकसी से सुरक्षित रखते थे और लम्बी अवधि तक दुर्ग मे रहते हुए युद्ध करते थे, किन्तु उनके अपने दुर्ग में ही ऐसे सुराग रहते थे और षड़यन्त्र के काण्ड होते थे, जिन्हें पढ़ने से उनकी रणनीति और कुशाग्र बुद्धि पर तरस आता है। ऐसे षड़यन्त्रों के शिकार 'आँचल और आग' के नायक वीर बीसलदेव को भी होना पड़ा और 'प्रेम की देवी' कोडमदे तथा उसके पिता माणिक राव को भी। जो वीर युद्ध-क्षेत्र में चक्रव्यूह की रचना करते हैं, बड़े-बड़े युद्ध जीतते हैं, उनके अपने किले में ऐसी सामान्य बातों का घटित होना निश्चय ही शंका उत्पन्न करता है। अस्तु, हम उपन्यासों में ऐसी घटनाओं से बच नहीं सकते हैं। घटनाओं को रोचक, कौतूहलवर्द्धक और अतिरंजनापूर्ण बनाने से शायद उपन्यास-रस का परिपाक होता है, इसे मान लेना चाहिए।

'प्रेम की देवी' में रंगलाल की 'कर्मादेवी' काव्य-कृति की भाँति साद् और कोडमदे की आकस्मिक भेंट नहीं होती है, अपितु साद् और उसके पिता राणावेन मोहिल-वाटी के राजा माणिकराव चौहान के यहाँ युद्ध में शरीक होने के लिए अपनी सेना लेकर

पहुँचते हैं। उन दिनों मालवा और गुजरात के मुसलमान पठानों से मेवाड़ के राणा कुम्भा की युद्ध की तैयारी हो रही थी। रणगदेव और माणिकराव की सेना भी राणा कुम्भा के साथ थी। कोडमदे माणिक राव की वीर कन्या थी, जो परम रूपवती थी। पूंगल के ओरठ ठिकाने के सरदार रणगदेव का पुत्र सादू भी बड़ा वीर युवक था। सादू और कोडमदे की द्रोणपुर के किले में भेंट होती है। दोनों एक-दूसरे के प्रति आसक्त होते हैं। सादू माणिक राव से प्रदर्शन युद्ध में अपने करतब दिखा कर माणिक राव का स्नेह पाता है और साथ ही कोडमदे के हृदय में अपना स्थान बनाता है। रंगलाल के 'कर्मादेवी' में काव्य में वीर साधू अपने पराक्रम का प्रदर्शन करता हुआ माणिक राव के यहाँ आता है। उसकी वीरता की कहानी मरुभूमि के इलाके में प्रसिद्ध थी। वीर साधू को अपने महल में देखकर कर्मादेवी उसके प्रति आसक्त होती है। अवश्य ही रंगलाल ने भी साधू के वीर कार्यों का प्रदर्शन अपने काव्य में किया है। कर्मादेवी राठौर वीर अरंकमल की वाग्दत्ता थी, किन्तु साधू को देखने के बाद उसने राठौड़ की रानी बनने का सपना त्याग दिया। 'प्रेम की देवी' उपन्यास में सादू और कोडमदे के प्रेम प्रसंग के बाद माणिक राव अरंकमल (अडंकमल) से कोडमदे के विवाह का प्रस्ताव करता है। हाँ, एक बात रंगलाल और बिड़लाजी की कथा में एक ढंग की है कि कोडमदे अपने पिता से अरंकमल के स्थान पर सादू से विवाह करने की बात कहती है। पहले तो माणिक राव राजी नहीं होता है, पर कोडमदे के प्रेम के हठ के सामने झुक जाता है और सगाई का नारियल पूंगल भेजा जाता है।

नूतनता

श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने 'प्रेम की देवी' उपन्यास में एक नई कहानी की अवतारणा की है, यह कहानी नागपुरा के नवाब शम्स खाँ की बेटी अजीजा की है। 'प्रेम की देवी' उपन्यास के तीसरे अध्याय में दिखाया गया है कि नागपुरा के नवाब शम्स खाँ के विरुद्ध राणा कुम्भा, माणिक राव, बूंदी के हाड़ा नरेश, सादू तथा उसके पिता की सेना ने सम्मिलित रूप से युद्ध किया था। इस युद्ध में शम्स खाँ मारा गया। पठान सेना पराजित हुई। शम्स खाँ की बेटी अजीजा रूपवती थी। माणिक राव ने उसे बन्दी बना लिया और अपनी पुत्री कोडमदे के साथ उसे रखने की इच्छा से द्रोणपुर ले आया। जब माणिक राव ने अजीजा को बन्दी बनाया था तब पास में ही सादू अपने घोड़े पर सवार था। अजीजा सादू की वीरता से मुग्ध हुई और उसके प्रति अनायास ही आकर्षित हो गई। युद्ध समाप्त होने के बाद मित्र राजाओं की सेना अपने-अपने राज्यों को लौट गई। माणिक राव अजीजा को लेकर अपने राज्य में लौट आया। सादू और उसके पिता भी पूंगल लौट गए। सादू युद्ध के बाद कोडमदे से नहीं मिल सका। पर अजीजा के मन में सादू के प्रति प्रेम का सैलाब उमड़ आया। अपने इस प्रेम

में वह इतनी ईर्षालु हो गई कि कोडमदे की हत्या करने तथा उसके अपहरण के कुत्सित कर्म में लिप्त हो गई। माणिक राव अजीजा से बेटी की भांति प्रेम करता और कोडमदे भी उसे अपनी बहन का प्यार देती। सच है—'बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ की कागा।।' की तुलसी की उक्ति के समान मुसलमान लड़की में इस स्नेह से कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उपन्यासकार ने अजीजा की कहानी से एक प्रतिद्वन्द्वी उपनायिका की कहानी की कल्पना की है, किन्तु वह इतनी अमानवीय हो गई है कि पाठकों को अधिक रस नहीं मिलता। अजीज़ा की कहानी के तानेबाने में लेखक ने तांत्रिक भैरवों के वाम-मार्गी कर्मों को भी दिखाने की चेष्टा की है। वाम-मार्गी किस प्रकार सुरा-सुन्दरी के द्वारा सिद्धियाँ प्राप्त करने की कोशिश करते थे। इन सबको दिखा कर 'प्रेम की देवी' उपन्यास मे एक अछूते प्रसंग को पाठकों के सामने रखा है। अस्तु, अब हम अजीजा की कहानी की विस्तार से चर्चा नहीं करना चाहते। माणिक राव ने अजीजा का निकाह एक नवाब से करा कर उससे निजात पाई और सुख का अनुभव किया।

'प्रेम की देवी' उपन्यास में कोडमदे की वीरता और सतीत्व का वर्णन किया गया है। सादू से विवाह होने के बाद कोडमदे और सादू ने पूँगल के लिए प्रस्थान किया। माणिक राव को अर्रकमल के आक्रमण की आशंका थी। अत: उसने बेटी और दामाद को विदा करने के समय साथ में मेहिलवाटी सेना भेजने का प्रस्ताव किया। वीर सादू ने विनम्रता के साथ इसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि उसकी अपनी सेना किसी भी आक्रमण का सामना करने में सक्षम है। 'प्रेम की देवी' उपन्यास के १२वें अध्याय में दिखाया गया है कि बीकानेर रियासत के पास एक झील के किनारे अर्रकमल और सादू की सेना में मुकाबला हुआ। युद्ध मे लोग मरेंगे, इससे अच्छा है कि दोनों वीर प्रतिद्वन्द्वी आपस में द्वन्द्व-युद्ध कर अपने भाग्य का फैसला कर लें। यह प्रस्ताव दोनों पक्षों को पसन्द आया और द्वन्द्व-युद्ध हुआ। इस युद्ध मे दोनों ही योद्धा अर्थात सादू और अर्रकमल एक दूसरे के आघात से बुरी तरह घायल हुए। सादू की तत्काल मृत्यु हो गई और अर्रकमल बाद मे युद्ध के घावों से पीड़ित होकर मर गया।

कोडमदे ने अपने प्रिय के मरने पर सती होने का निश्चय किया उसने अपने दोनों हाथ काटने का अनुरोध किया। उसके इस त्याग से उस वीर बाला का चरित्र राजस्थान की रमणियों में शीर्ष स्थान पर है। जिस स्थान पर युद्ध हुआ था, आज भी वहाँ पर 'कोडमदे सर' स्मारक के रूप में उस नारी-रत्न की याद दिलाता है। 'प्रेम की देवी' उपन्यास में लेखक ने इस घटना को अपने नजरिये से उपन्यास में प्रस्तुत किया है। जब कोडमदे अपने पिता के सेनापति जगत सिंह से अपने दोनों हाथ काटने के लिए कहती है, किन्तु जगत सिंह ऐसा करने में संकोच करता है तब कोडमदे घायल अर्रकमल के पास जाती है और कहती है—'अगर तुम अपने की हालत में होते, तो मैं सादू

के बाद तुम से अवश्य लड़ती। मैं साडू की पत्नी हूँ, इसलिए, मैं तुम्हें अपने बड़े भाई जैसा ही मानती हूँ। आज तुम्हारी बहन तुमसे एक वरदान मांगती है।'

इस कथन ने अरंकमल को क्षण भर के लिए सोच में डाल दिया। वह बोला—'हाँ, अब मैं तुम्हारा भाई हूँ और तुम जो चाहो मांग सकती हो।'

'अपने किसी आदमी को आदेश दो कि मेरे हाथों को काट डाले।' कोड़मदे ने बड़े निराकुल भाव से कहा।

अरंकमल भौंचक रह गया। वह इसका मतलब नहीं समझ सका। बोला—'तुम मरते हुए एक आदमी पर और पाप का बोझ क्यों लादना चाहती हो?'

'तुमने कोई पाप नहीं किया और अगर तुमने किया भी है, तो जान-बूझ कर नहीं। यह तो संयोग की बात है। अगर मेरी भेंट तुमसे द्रोणपुर की झील के पास न हुई होती तो शायद यह दुर्घटना न घटी होती। सब कुछ ईश्वर के अधीन है। तुम्हारी कोई गलती नहीं। अब, क्या तुम मनचाही पूरी नहीं कराओगे?

बड़ी हिचक के साथ एक दिलेर सैनिक सामने आया। कोड़मदे जमीन पर बैठ गई और अपने दोनों बगल उसने हाथों को फैला दिया। तलवार के हर वार के साथ उसका एक-एक हाथ कट कर धरती पर गिर पड़ा। कोड़मदे ने सौम्य भाव से अरंकमल के सामने माथा झुकाया। वह भट्टी-शिविर की ओर चल पड़ी। चलते-चलते उसने उस राठोड़ सैनिक से जिसने उसके हाथ काटे थे, कहा कि वह उसके हाथों को लेकर उसके साथ आये।

कोड़मदे ने भट्टी-सेनापति को बुलाया और उससे कहा—'हाथों को ले जाकर तुम मेरी सासजी के चरणों पर रख देना। मैं स्वयं जाकर चरण-धूलि नहीं ले सकी और उनका आशीर्वाद नहीं प्राप्त कर सकी। अब मेरे ये हाथ उनके चरण छुएंगे। उनसे निवेदन करना कि वे मुझे आशीर्वाद दें।'

कोड़मदे चिता पर अपने प्रिय पति के शव को गोद में लेकर सती हो गई—'हे भगवान' यह आवाज अरंकमल की थी। अपने दोनों हाथ जोड़ कर उसने माथे से लगाये। भट्टी और राठोड़ सैनिक चिता को घेर कर अगल-बगल खड़े थे। सब मूक थे।' ('प्रेम की देवी' उपन्यास, १२वां परिच्छेद, पृ० १५२-१५४)"

कवि रंगलाल ने अपने काव्य 'कर्मादेवी' में कोड़मदे के इस महान त्याग का

बड़ी ही प्रभावोत्पादक भाषा में वर्णन किया है। उन्होंने दिखाया है कि कोड़मदे ने अपने दोनों हाथों को काटने का अनुरोध अपने भाई से किया। उसने अपने एक हाथ को मोहिल कवि के पास भिजवाया और दूसरा अपनी ससुराल। उसके दोनों हाथ गहनों और मणि-माणिक-मुक्ता से लदे-पदे थे। वह मोहिल कवि को अपने हाथ का उपहार देकर इस घटना का बखान करने का अनुरोध करती है तथा दूसरा हाथ अपने ससुर के यहाँ भेज कर यह बताना चाहती है कि उनकी पुत्र-वधू कैसी थी।

कोड़मदे पर राजस्थानी भाषा में जितनी रचनाएँ हुई हैं, उनमें इस घटना का इसी प्रकार वर्णन है, किन्तु 'प्रेम की देवी' उपन्यास में थोड़ा अन्तर है। रंगलाल ने १९वीं शताब्दी में बंगला भाषा में जिस काव्य की रचना की उसमें नवीनता का पुट था। भारत भ्रमण करने वाला सैलानी 'कर्मादेवी सरोवर' को देखकर चारण से इसकी कथा पूछता है और 'कर्मादेवी' काव्य की कथा-यात्रा शुरू होती है। रंगलाल ने जिस आत्मीयता से कर्मादेवी के वीर-चरित्र का वर्णन किया है, वैसा वर्णन परवर्ती रचनाओं में नहीं बन पड़ा है।

'प्रेम की देवी' उपन्यास के लेखक ने 'कोड़मदे' का अर्थ बताया है—'प्रेम की देवी'। आपने उपन्यास के प्रथम अध्याय में पृष्ठ १८ पर लिखा है—'दे' का अर्थ है 'देवी'। उपन्यास के पृष्ठ १८ पर ही आगे लिखा है—'कोड़मदे माणिक राव की इकलौती लाड़ली बेटी थी। कहा जाता है कि माणिक राव ने हनुमान जी की आराधना की थी, उसी के फलस्वरूप उनकी यह बेटी जनमी थी।'

सचमुच कोड़मदे वीर देवी थी, वीर क्षत्राणी थी और थी सच्ची प्रेमिका। श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने उपन्यास के 'आमुख' में इस वीर रमणी के सम्बन्ध मे अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए हैं—

'यह नारी मध्ययुगीन इतिहास में कोड़मदे के नाम से प्रसिद्ध है। 'दे' विशेषण 'देवी' शब्द का संक्षिप्त रूप है। कोड़मदे को लोग देवी तुल्य मानते थे। वास्तव में, नारी के प्रति सम्मान और उसके सौम्य प्रभाव की स्वीकृति राजपूत-जीवन की एक विशिष्ट रोचक एवं उदात्त प्रवृत्ति रही है। कोड़म का अर्थ है 'प्रेम'।' ('प्रेम की देवी' उपन्यास, आमुख, पृ० २)

बिड़लाजी ने राजस्थान की ऐसी ही वीर रमणियों का उल्लेख किया है, जिनमें पद्मिनी, संयोगिता, महाराज जसवन्त सिंह की रानी, हाड़ा रानी आदि हैं। आपने 'आमुख' के पृष्ठ तीन पर टॉड के कथन को उद्धृत किया है—

'नारी जाति के अकेलेपन के बावजूद, उनकी कारगुजारियों और उनके व्यक्तिगत गुणों की जानकारी उन-उन स्थानों में अपना प्रकाश फैलाती जाती

है, जिन-जिन स्थानों में सैलानी चारण यात्रा करता जाता है। यद्यपि वे अदृश्य हैं, तो भी वे देख सकते हैं कि जन-प्रवाद एकदम असत्य नहीं होते, बहुधा वे किसी सत्य घटना पर आधारित होते हैं। ये घटनाएँ जिस या जिन व्यक्तियों से सम्बन्धित होती हैं, उनको वे लोगों के निजी पर्यवेक्षण-क्षेत्र में ला देती हैं, जैसा कि साढू और मोहिल राज-कन्या के मामले में हुआ है। बहुत आदिम काल से ही, हिन्दू-इतिहास के हर पृष्ठ में, राजपूत-समाज पर नारी का प्रभाव अंकित मिलता है।'

'प्रेम की देवी' उपन्यास में श्री एल० एन० बिड़ला ने पूँगल के वीर का नाम 'साढू' बताया है जबकि टॉड ने तथा रंगलाल ने उसे 'साधू' नाम से अभिहित किया है। राजस्थानी कवि मेघराज मुकुल और डॉ० मनोहर शर्मा ने अपने कोड़मदे सम्बन्धी काव्यों में उसे 'शार्दूल सिंह' के नाम से उजागर किया है और अरकमल को अरड़कल के नाम से। जो भी हो, बिड़लाजी की 'प्रेम की देवी' औपन्यासिक कृति एक सरस और सशक्त रचना है।

बिड़लाजी का 'आँचल और आग' उपन्यास

'आँचल और आग' उपन्यास के लेखक श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला हैं। यह उपन्यास दूसरी बार सस्ता-साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से १९८७ ई० में प्रकाशित हुआ। श्री बिड़ला के चर्चित उपन्यास हैं—'पद्मिनी का शाप', 'प्रेम की देवी', 'सुल्तान और निहालदे'। ये सभी इतिहास-मूलक उपन्यास हैं। इनके कथानक इतिहास से लिए गए हैं। इतिहास एक सूखा विषय है, किन्तु लेखक ने अपनी सरस शैली में उसे मनोरंजक और कौतूहलवर्द्धक बना दिया है। सस्ता साहित्य मण्डल के मंत्री और साहित्यकार श्री यशपाल जैन ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है—'आँचल और आग' उपन्यास एक ऐसा उपन्यास है, जिसे पढ़ने से इतिहास के ज्ञान के साथ-साथ उपन्यास के आनन्द का भरपूर रस मिलता है। लेखक को अनुभव हुआ कि इतिहास-पुरुष बीसलदेव को, जो स्वतंत्रता के अमर पुजारियों में से थे, प्रकाश में लाने का प्रयत्न नहीं हुआ। उनको जो यश मिलना चाहिए था, नहीं मिला। अतः उन्होंने उनके सम्बन्ध में जो साहित्य उपलब्ध था, उसका अध्ययन किया और उस सामग्री के आधार पर ताना-बाना बुन कर इस उपन्यास की रचना की। उन्होंने इस बात का विशेष-ध्यान रखा है कि बीसलदेव की ऐतिहासिकता यथावत बनी रहे, उस पर आँच न आने पावे।

साथ ही इस बात की भी सावधानी रखी कि उसके चरित्र के वर्णन में कहीं भी अतिरंजना न होने पावे।'

'लेखक ने उस ताने-बाने में बीसलदेव की प्रियतमा राजमती के, जो 'धारा की पद्मिनी' के नाम से विख्यात थी, चरित्र को भी गूंथा। बीसलदेव के उदात्त चरित्र की विशेषता यह थी कि उन्होंने अपनी प्रेयसी को पाने के लिए उसके पिता से युद्ध नहीं किया, बल्कि दूसरा मार्ग अपनाया। उसके भाई की युद्ध में सहायता करके हृदय को जीता। उपन्यास में जहाँ शौर्य की आग धधकती है, वहाँ प्रेम की धारा भी प्रवाहित होती है। इस प्रकार यह कृति जीवन के दो प्रमुख रसों का विशेष रूप से आस्वादन कराती है।'

'आँचल और आग' उपन्यास में श्री बिड़ला ने शौर्य और शृङ्गार के दोनों पक्षों को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। उपन्यास के प्रथम अध्याय में बीसलदेव और राजमती की प्रथम भेंट जंगल मे एक बारहसिंगे के आखेट में होती है। बीसलदेव ने बारहसिंगे पर निशाना साध कर एक बाण छोड़ दिया। बाण बाहरसिंगे की गर्दन मे बायीं ओर लगा, लेकिन तभी अचानक कहीं से एक सनसनाता तीर आया, जो उसकी गर्दन की दायीं ओर घुस गया और वह गिर पड़ा। बीसलदेव अपने शिकार की ओर बढ़े। उनके शिकार पर किसी दूसरे ने बाण चलाया है, यह सोचकर उनका चेहरा तमतमा गया।

तभी दूसरी ओर से आती हुई एक बाला पर उनकी दृष्टि पड़ी, जो वेश-भूषा और चालढाल में कोई राजकुमारी जान पड़ती थी। उसके साथ दस महिला सैनिक हाथ में नंगी तलवारें लिए आ रही थीं। बाला के रूप सौन्दर्य को देखकर बीसलदेव के मुख से सहसा निकल पड़ा—'सुन्दर! उदीयमान सूर्य की झिलमिलाती कान्ति।'

'इस तरह बोलने और मेरे शिकार पर तीर चलाने का तुम्हें साहस कैसे हुआ?' बाला उत्तेजित हो गई। यह बाला ही धारा नगरी की राजकुमारी राजमती थी।

इस प्रकार लेखक ने प्रेमी और प्रेमिका की प्रथम भेंट आखेट मे दिखाई है। इसके बाद पुनः दोनों प्रेमियों की भेंट झील के किनारे एक शिव मन्दिर में होती है। दोनों बाद में गन्धर्व विवाह करते हैं।' ('आँचल और आग' उपन्यास, पृ० १६-१७)

'आँचल और आग' उपन्यास पढ़ने से प्रतीत होता है कि लेखक ने इतिहास के एक वीर-पुरुष को उपस्थित किया है, किन्तु आश्चर्य है वीर-पुरुष की भाँति धारा की राजकुमारी भी अपने राज्य से काफी दूर शिकार और वन-विहार के लिए आती

है। उसके रूप का उपासक विजय सिंह सोलंकी भी वहाँ आता है . और बलात् राजमती का अपहरण करना चाहता है। तभी बीसलदेव वहाँ उपस्थित होता है। दोनों में युद्ध होता है और सोलंकी मारा जाता है।

लेखक ने उपन्यास में के प्रथम परिच्छेद में ही तर्क देकर लिखा है कि वर्षा ऋतु में ही राजाओं को युद्ध में कठोर श्रम से कुछ अवकाश मिलता था। वर्षाकाल युद्धों के लिए उपयुक्त नहीं होता था। इस समय राजा आखेट में निकलते थे। साथ ही लेखक ने उस समय के बारे में लिखा है कि मध्यकाल में राजाओं को दूसरे छोटे-बड़े राजाओं के आक्रमणों से ही अपने राज्य को बचाने के लिए हमेशा चौकन्ना नहीं रहना पड़ता था, बल्कि उन्हें अपनी प्रजा को बटमारों से भी सुरक्षित रखना पड़ता था।

गुजरात के अजयमेरु के राजा बीसलदेव को अपने राज्य में भी षड़यन्त्रकारियों का सामना करना पड़ा। जब वह आखेट से लौटा तो एक षड़यन्त्रकारी ने उसका जीवन लेने के लिए महल में ही आक्रमण किया। इस प्रकार धारा नगरी के राजा भोज की कन्या राजमती भी वन-विहार से जब लौटी तो रास्ते में सिद्धपुर के रावल के यहाँ रुक गई, जहाँ उसे षड़यन्त्र में बन्दिनी बनना पड़ा। बड़ी कुशलता से उसे मुक्ति मिली। ये कुछ ऐसो घटनाएँ हैं, जिनसे कई प्रश्न सामने आते हैं। जहाँ इतने सारे षड़यन्त्र हों, वहाँ बीसलदेव और राजमती को वन-विहार के लिए जंगल में लम्बी यात्रा करनी पड़ी और साथ में बड़ी सेना ले जानी पड़ी। ये बातें अस्वाभाविक सी लगती हैं। प्रतीत होता है जैसे लेखक ने महज श्रृङ्गार और प्रेम प्रदर्शन करने के लिए ही इन घटनाओं का संयोजन किया है।

बीसलदेव स्वतन्त्रता का पुजारी है। वह विदेशी आक्रान्ताओं से देश को आजादी को सुरक्षित रखने के लिए दृढ़-संकल्प है। लेखक श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला ने उपन्यास की प्रस्तावना के पृष्ठ ७ में लिखा है—

'इस उपन्यास का नायक बीसलदेव स्वतंत्रता के अमर पुजारियों की श्रेणी में आता है और उसका स्थान इस कोटि के महापुरुषों में काफी ऊँचा है।'

'उसकी असाधारण योग्यता की ओर लोगों का यथोचित ध्यान नहीं गया और यही कारण है कि उसकी जितनी प्रसिद्धि होनी चाहिए थी, हो नहीं पाई। एक बात में वह बेजोड़ है, शत्रु के हाथों उसका पराभव नहीं हुआ। एक अन्य चौहान राजा, पृथ्वीराज चौहान ने भी मुहम्मद गोरी से युद्ध किया था, किन्तु दुर्भाग्यवश अन्तिम युद्ध में वह मुहम्मद के द्वारा पराजित हो गया। फिर भी उसके चारण चंदबरदाई ने उस पर रासो (पृथ्वीराज रासो) काव्य

लिखा, जिसके कारण उसका नाम लोगों की स्मृति में आज तक बना हुआ है। बीसलदेव चौहान ने न केवल महमूद गजनवी को (जिसने सोमनाथ के मंदिर को लूटा और मूर्ति को तोड़ा था) उसके अन्तिम आक्रमण के समय हराया, वरन देश से उसके शासन का नाम निशान तक मिटा दिया था। पृथ्वीराज की प्रियतमा संयुक्ता की तरह बीसलदेव की भी प्रियतमा थी— राजमती, जो धारा की पद्मिनी के नाम से प्रसिद्ध थी। पृथ्वीराज की तरह वह अपनी प्रियतमा के पिता से नहीं लड़ा, उल्टे उसने राजमती के भाई की उसके शत्रुओं के विरुद्ध सहायता कर राजमती का हृदय जीता। लेकिन अपने जीवन-वृत्त पर एक 'रासो' की रचना करने के लिए उसके पास चन्द जैसा कोई कवि नहीं था। इसीलिए उसके विषय में हमको अधिक ज्ञात नहीं है।'

बीसलदेव अवश्य ही वीर था, स्वतन्त्रता-प्रेमी था, किन्तु उसने जब अपने ही राज्य में महन्त की धर्मान्धता का शमन करने में कठिनाई अनुभव की तब उसे कूटनीतिज्ञ के आसन पर बैठाने में संकोच होता है। अस्तु, जो भी हो श्री बिड़ला ने इतिहास की काफी खोज कर 'आँचल और आग' उपन्यास की रचना की है। आपने कर्नल जेम्स टॉड के 'राजस्थान' से सहायता ली है। आपने उपन्यास के अन्त में पृष्ठ १९० पर परिशिष्ट में 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में उन तथ्यों को उपस्थित किया है, जिनके आधार पर आपने उपन्यास की रचना की है। यह उपन्यास वि० सं० १०८२ की घटनाओं पर आधारित है। बीसलदेव दिल्ली के तोमर राजा जयपाल का समकालीन था। बीसलदेव के ही समकालीन थे गुजरात के दुर्लभ और भीम, धारा के राजा भोज और उदयादित्य, मेवाड़ के पयसी और तेजसी। महमूद गजनवी का आक्रमण ४१७ हिजरी या १०२६ ई० या १०८२ सम्वत में हुआ था।

टॉड ने 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' के प्रथम खण्ड के पृ० २०६ पर लिखा है—

"We will rest satisfied with stating that the Chohans of Ajmer and the Gehlotes of Cheetore were alternately friends and foes; that Doorlub Chohan was slain by Bersi Raoul in a grand battle fought at Kowario of which the Chohan annals state. Again, in the next reign we find the renowned Beesuldeo, son of Doorlub, Combining with Raoul Tejsi of Cheetore to oppose the progress of Islamic invation (Attack of Mohammad Gajani)."

(Tod's Rajasthan, Chapter IV, Vol. I, Page 206)

श्री बिड़लाजी ने 'आँचल और आग' उपन्यास की 'प्रस्तावना' में लिखा है कि बीसलदेव के पास चन्द के जैसा कोई कवि नहीं था, जो 'पृथ्वीराज रासो' के समान

काव्य की रचना करता, किन्तु वास्तविकता यह है कि नरपति नाल्ह कवि विग्रहराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव का समकालीन था। कदाचित वह राजकवि था, जिसने 'बीसलदेव रासो' की रचना की। अवश्य ही 'बीसलदेव रासो' 'पृथ्वीराज रासो' के समक्ष छोटी सी एक सौ पृष्ठों की रचना है। 'बीसलदेव रासो' में चार खण्ड हैं। यह काव्य २००० चरणों में समाप्त होता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ ३८ पर लिखा है—"दिए हुए सम्वत के विचार से कवि अपने नायक का समसामयिक जान पड़ता है। पर वर्णित घटनाएँ, विचार करने पर, बीसलदेव के पीछे की लिखी जान पड़ती हैं। यह घटनात्मक काव्य नहीं, वर्णनात्मक है। इसमें दो ही घटनाएँ है। बीसलदेव का विवाह और उनका उड़ीसा जाना। इसमें से पहली बात तो कल्पना-प्रसूत प्रतीत होती है। बीसलदेव से सौ वर्ष पहले ही धार के प्रसिद्ध परमार राजा भोज का देहान्त हो चुका था। अतः उनकी कन्या के साथ बीसलदेव का विवाह किसी पीछे के कवि की कल्पना ही प्रतीत होती है।" 'आँचल और आग' उपन्यास में न तो बीसलदेव को उड़ीसा भेजा गया है और न ही उसमें राजमती का विरह-वर्णन है।

असल में बीसलदेव ऐसे वीर पुरुष के उदात्त चरित्र को निरुपित करने मे नाल्ह कवि पूर्णतः सफल नहीं हुए। अतः 'बीसलदेव रासो' को 'रासो' कहना ही असंगति है। वस्तुतः यह प्रेमाख्यान-काव्य है। इसमें 'रासो' की बृहद्ता नहीं। हाँ, राजा बीसलदेव के राज-कवि सोमदेव के 'ललित विग्रहराज नाटक' (संस्कृत) में बीसलदेव के वीर-चरित्र का अच्छा चित्रण हुआ है।

'आँचल और आग' उपन्यास का प्रथम संस्करण कब प्रकाशित हुआ इसका उल्लेख उपन्यास में नहीं है। हिन्दी की रचनाओं में यह दोष देखा जाता है कि उनमें रचना तिथि अथवा प्रथम प्रकाशन तिथि का उल्लेख नहीं के बराबर होता है। शोध-कर्ता के लिए ऐसी स्थिति मे रचनाकार की कथा-यात्रा का सम्यक मूल्यांकन करना कठिन हो जाता है।

'आँचल और आग' उपन्यास इतिहास का आईना है। इसमे विदेशी आक्रमण के शुरू की तथ्यपरक घटनाओं का सुन्दर विवरण है। इनसे पता चलता है कि आक्रमण-कारी यवन किस प्रकार जासूसी के षड़यन्त्रों से हिन्दुओं में फूट डालने की कोशिश करते थे। हिन्दूकुश और खैबर-दर्रों की रोमांचक तथा कौतूहलवर्द्धक घटनाओ से उप-न्यास भरा पड़ा है। श्री बिड़लाजी की ऐतिहासिक औपन्यासिक कृतियाँ विस्तार से शोध-कार्य की अपेक्षा रखती हैं। इसी कारण हमने अपनी विनम्र लेखनी का यत्किंचित बड़े फलक पर इस्तेमाल किया है। श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला से हिन्दी-साहित्य को अभी भी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

पंचम अध्याय

बंगला कहानियों में राजस्थान

भूमिका

कथा कहने और सुनने की मानवीय प्रवृत्ति आदिकाल से रही है, लेकिन उसका आरम्भ में क्या रूप रहा होगा कहना कठिन है। आलोचकों का मत है कि बौद्धकालीन जातक कथाएँ ही कहानियों का आदि रूप प्रस्तुत करती हैं। ये कहानियाँ जनता की हैं और जनता की भाषा में कही गई हैं। सम्भवतः बाद में पण्डितों ने इनमें फेर-बदल कर इन्हें राजकुमारों के लिखा—ऐसी कहानियाँ 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' में मिलती हैं। 'वृहत् कथा' का पूरा अंश मिलने के अभाव में इतिहासकार इसके आगे कुछ कहने में मौन हैं। कथा द्वारा सन्देश देना भी कहानी का एक उद्देश्य है। 'बाइबिल' में कही गई या 'हितोपदेश' वा 'पंचतंत्र' की कथाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं। मध्यकाल में पुरानी कहानियाँ घटना प्रधान होती थीं। बाद में इनमें चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान ने प्रवेश किया। असल में हम आज जिसे कहानी की संज्ञा देते हैं, उसका सूत्रपात भी उपन्यास की भांति बीसवीं शताब्दी में ही हुआ।

सुप्रसिद्ध आंग्ल आलोचक विलियम हेनरी हड्सन ने एक स्थान पर कहा है कि कहानी-उपन्यास में सब कुछ सत्य होता है, बस नाम और तिथियाँ सत्य नहीं होतीं। इतिहास में कुछ भी सत्य नहीं होता, बस नाम और तिथियाँ ही सत्य होती हैं। ऐतिहासिक कहानियों में दोनों का सामंजस्य है, अर्थात उसमें इतिहास का सत्य भी है तथा नाम और तिथियाँ भी इतिहास सम्मत हैं। कहने का तात्पर्य ऐतिहासिक कहानियाँ इतिहास और साहित्य को या सत्य को जोड़नेवाली कड़ी हैं। वैसे इतिहास और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं, लेकिन ऐतिहासिक कहानी दोनों का सम्पर्क-सूत्र है। वह कहानी भी है और इतिहास भी। ऐतिहासिक कहानियों में कल्पना की उड़ान के लिए गुंजाइश नहीं रहती, उसकी सीमा बन्धी रहती है।

हमारे यहाँ पौराणिक कहानियाँ अनगिनत हैं। इनमें भी इतिहास है। कितने ही खण्ड-काव्य-महाकाव्य ऐतिहासिक कथानक ही हैं। इन्हें आख्यायिका के नाम से अभिहित किया जाता है। भारतीय भाषाओं के आधुनिक काल में अंग्रेजी शिक्षा के बाद कहानी लिखने की परम्परा का आरम्भ होता है, किन्तु अन्य कहानियों की तुलना में ऐतिहासिक कहानियों की संख्या कम है। बंगला में गल्प साहित्य का अजस्र भण्डार है, किन्तु उस अनुपात में ऐतिहासिक कहानियाँ नहीं हैं। हिन्दी के बारे में भी यही बात लागू होती है।

हिन्दी में कहानी या आख्यायिकाओं का सूत्रपात 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन के समय से हुआ। 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आख्यायिका की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'आख्यायिका' अथवा कहानी काल्पनिक हो ही नहीं सकती। आरम्भिक युग की प्राय: सभी आख्यायिकाएँ ऐतिहासिक अथवा पौराणिक प्रसंगों पर आधारित होती हैं। द्विवेदी की ये कहानियाँ १९०४-५ ई० में प्रकाशित हुईं। हिन्दी में ऐतिहासिक कहानियों के लिखने में श्री वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि का नाम उल्लेखनीय है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के सं० २०१८ के तेरहवें संस्करण) के पृष्ठ ४८० पर लिखा है—'अंग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसे छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ या कहानियाँ निकला करती हैं वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' नाम से बंग-भाषा में चल पड़ी थीं। ऐसी कहानियों के दर्शन 'सरस्वती' पत्रिका में होते हैं, 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष (सं० १९५७) में ही पं० किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' नाम की कहानी छपी जो मौलिक जान पड़ती है। इसके उपरान्त तो उसमें कहानियाँ बराबर निकलती रहीं पर वे अधिकतर बंग-भाषा से अनुदित या छाया लेकर लिखी होती हैं। बंग-भाषा से अनुवाद करने वालों में इण्डियन प्रेस के मैनेजर बाबू गिरिजा कुमार घोष, जो हिन्दी कहानियों में अपना नाम 'लाला पार्वती नन्दन' देते थे, विशेष उल्लेख योग्य हैं। उनके बाद 'बंग महिला' का स्थान है जो मिरजापुर निवासी बाबू रामप्रसन्न घोष की पुत्री और बाबू पूर्णचन्द्र की धर्मपत्नी थीं। उन्होंने कई कहानियों का बंगला से अनुवाद किया और कुछ मौलिक कहानियाँ लिखीं जिनमें एक थी 'दुलाईवाली' जो सं० १९६४ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई।'

आचार्य शुक्ल ने तिथि के हिसाब से किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी को ही हिन्दी की पहली कहानी स्वीकार किया है। इस तरह हिन्दी कहानी-लेखन पर भी बंगला का प्रभाव वैसे ही पड़ा जैसे हिन्दी नाटकों और उपन्यासों पर पड़ा। पहले बंगला की कहानियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और पश्चात मौलिक कहानियाँ लिखी जाने लगीं।

बंगला कहानियों में राजस्थान

यद्यपि नाटक और उपन्यास की भाँति 'राजस्थान' की उपकथाओं को लेकर

बंगला-साहित्य में अधिक कहानियाँ नहीं लिखी गईं; किन्तु वास्तविकता यह है कि साहित्य की इस विधा की प्रेरणा में भी मुख्य हाथ टॉड के 'राजस्थान' का ही रहा। डॉ० सुकुमार सेन ने 'बंगला-साहित्य का इतिहास' के पृष्ठ २११ पर अपना मन्तव्य इन शब्दों में दिया है—'कविता की ही भाँति गद्य में भी रोमांस-रचना की सबसे पहली प्रेरणा टॉड के 'राजस्थान' तथा इसी तरह की अन्य कृतियों से प्राप्त हुई। किसी बंगाली लेखक द्वारा रचित सबसे पहली ऐतिहासिक कहानियों की पुस्तक शशिचन्द्र की अंग्रेजी में लिखित 'द टाइम्स ऑफ योर' है।'

शशिचन्द्र दत्त—(१८२४ ई०—१८६१ ई०)

कलकत्ता के रामबगान के दत्त-परिवार के शशिचन्द्र दत्त एक ख्याति लब्ध लेखक थे। इसी परिवार में बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यास लेखक रमेशचन्द्र दत्त का जन्म हुआ था। शशिचन्द्र इनके चाचा थे। असल में रमेशचन्द्र के पिता ईशानचन्द्र और शशिचन्द्र दोनों ही रिचार्डसन के शिष्य थे। रिचार्डसन हिन्दू कॉलेज में अध्यापक थे। फलतः रिचार्डसन की शिक्षा-दीक्षा से दोनों भाई पश्चिम के ज्ञानार्जन के प्रति आकर्षित हुए। शशिचन्द्र का झुकाव इतिहास की ओर ज्यादा था। यही कारण है कि उनकी अंग्रेजी कविताएँ इतिहास की कहानियाँ बन गईं। शशिचन्द्र ने टॉड के 'राजस्थान' का अवलम्बन कर 'द टाइम्स ऑफ योर' या 'टेल्स फ्रॉम इण्डियन हिस्ट्री' (The times of yore or Tales from Indian History) नामक पुस्तक १८४५ ई० में लिखी, जिसमें चौबीस ऐतिहासिक कहानियाँ संकलित हैं। पश्चात १८७७ ई० में इन कहानियों का बंगला-भाषा में हरिश्चन्द्र कविरत्न ने 'उपन्यास माला' पुस्तक के रूप में अनुवाद किया। उल्लेखनीय है शशिचन्द्र की कहानियाँ ही बंगला-साहित्य-कारों के लिए प्रेरणा-स्रोत बनीं और उनका ध्यान टॉड के 'राजस्थान' पर गया। फलतः बगला में प्रचुर मात्रा में काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ और इतिहास, पुस्तकों के प्रणयन की होड़ सी लग गई।

डॉ० विजित कुमार दत्त ने अपनी पुस्तक 'बांगला साहित्ये ऐतिहासिक उपन्यास' (पृ० ४०-४१) में लिखा है— १९वीं सदी के आरम्भ में ही बंगाल के पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त लोगों पर अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ना शुरू हो गया था। ऐसे वातावरण में शशिचन्द्र ने अंग्रेजी भाषा में टॉड के 'राजस्थान' से ऐतिहासिक कहानियाँ लिखीं। स्वाभाविक है कि इन कहानियों ने देश-प्रेम की भावना को जगाया। स्वयं शशिचन्द्र भी अंग्रेज कवि चाटार्टन से प्रभावित थे।'

शशिचन्द्र की कहानियों में सिकन्दर के भारत आक्रमण से लेकर पानीपत की लड़ाई तक की कथाएँ हैं। इन कहानियों में ज्यादातर कहानियाँ मुगलकाल से सम्बन्धित हैं, फिर भी राजपूतों की गौरव-गाथा उनमें भी दीख पड़ती है। शशिचन्द्र ने ऐतिहासिक कहानियों को लेकर पन्द्रह वीर-काव्य की कविताएं 'इण्डियन बेलेड्स' (Indian Balleds) नाम से लिखीं। इन वीर-रस कविताओं में राजस्थान का शौर्य-वीरत्व-प्रतिध्वनित है।

शशिचन्द्र की कहानियों में उल्लेखनीय हैं—'अजमेर गढ़', 'कन्नौज सुन्दरी', 'पृथ्वीराज-संयुक्ता की कहानी', 'पद्मिनी उपाख्यान', 'भील सरदार और राजपूत रमणी', 'देवलादेवी', 'मेवाड़ के राणा सांगा', 'हुमायूँ का पलायन', 'नौरोज का मेला और पृथ्वीराज की पत्नी', 'अमर सिंह का दरवाजा' आदि। इन कहानियों में राजपूत इतिहास के वे बीज विद्यमान है, जिनका प्रस्फुटन परवर्ती काल में बंगला-साहित्य के प्रख्यात नाटककारों, उपन्यासकारों और कथा लेखकों ने किया।

स्वर्ण कुमारी देवी

बंगला-साहित्य में जिस परिमाण से राजस्थान की वीर-कथाओं को लेकर नाटक और उपन्यास रचे गए, उस दृष्टि से कहानियों और काव्य-ग्रन्थों की संख्या कम है। शशिचन्द्र के पश्चात कहानी विधा में जिस कथा-शिल्पी का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है, वे हैं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्ण कुमारी देवी। इनकी दस कहानियों का एक संकलन 'नव कहानी' के नाम से १८९२ ई० में प्रकाश में आया। यह उनकी कहानियों का प्रथम संकलन है, जिसे उन्होंने 'स्वामिन' को उत्सर्ग किया है। इस संकलन की चार कहानियाँ 'राजस्थान' से ली गई हैं। ये हैं—'कुमार भीम सिंह', 'क्षत्रिय रमणी क्षत्रियेर स्त्री, अश्व उ तरवारी' एवं 'सन्यासिनी'।

स्वर्ण कुमारी देवी की कहानियों पर डॉ० पशुपति शासमल ने अपनी गवेषणामूलक पुस्तक 'स्वर्ण कुमारी उ बांग्ला साहित्य' (पृष्ठ २७३) में लिखा है—'टॉड ने अपने ग्रन्थ में जिन घटनाओं को इंगित किया है स्वर्ण कुमारी ने अपनी कल्पना-शक्ति से उन्हें अधिक रोचक और हृदयग्राही बनाया है। स्वाभाविक है कि इन कहानियों में इतिहास स्वयं आ गया है, पर लेखिका ने उसे विकृत नहीं होने दिया है, बल्कि अपनी प्रतिभा से कहीं उसे संक्षिप्त किया है और कहीं आवश्यकतानुसार विस्तार दिया है।'

राजस्थान का भीष्म

'कुमार भीम सिंह' कहानी का वर्णन लेखिका ने टॉड के आधार पर ही किया है, किन्तु राणा राजसिंह की दो रानियों का नाम चंचल कुमारी और कमल कुमारी उनकी अपनी कल्पना की उपज है। टॉड साहब ने रानियों का नामोल्लेख नहीं किया है, लेकिन बंकिम ने अपने 'राज सिंह' उपन्यास में राजसिंह की रानी का नाम चंचल कुमारी दिया है। इसी रूपनगर की चंचल कुमारी के कारण राणा का औरंगजेब के साथ युद्ध हुआ। 'राजसिंह' पर हमने 'उपन्यास अध्याय' में विस्तार से चर्चा की है।

कुमार भीम के जन्म के समय घटी एक घटना से राजपूतों के आचार-व्यवहार का पता चलता है। कहा जाता है कि राणा राजसिह अपनी छोटी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करते थे। छोटी रानी चंचल कुमारी के गर्भ से जब जयसिंह का जन्म हुआ तो उसके कुछ समय पूर्व बड़ी रानी के गर्भ से भीम सिंह का जन्म हुआ था। नये कुमार के जन्मने पर जच्चा-घर में ही राजपूत उसके हाथ में अमरधन नामक एक प्रकार का स्वास्थ्यकर खण्डुआ पहना दिया करते थे, जो तिनकों का बनता था। महाराणा ने अपने नवजात कुमार को खण्डुआ पहनाया, किन्तु छोटे पुत्र की माता पर अत्यन्त अनुराग होने के कारण उन्होंने उसी के पुत्र की भुजा में वह अमरधन पहना दिया। राणा ने इस कार्य को इस भाव से किया कि मानो भूल से ऐसा हुआ है, परन्तु असल में यह भूल नहीं थी। अस्तु, दोनों कुमार जब बचपन की देहरी लांघ कर तरुणाई में प्रविष्ट हुए तो छोटे पर पिता का अधिक स्नेह देख कर बड़ा कुमार ईर्ष्या न करे इसे दृष्टिगत रखकर एक दिन राणा ने भीम सिंह को अपने पास बुलाया और अपनी तलवार को म्यान से निकाल कर उसके हाथ में देते हुए गम्भीर स्वर में बोले—'इस तलवार से अपसे छोटे भाई को मार डालो नहीं तो भविष्य में राज्य पर घोर संकट आने वाला है।'

टॉड ने अपने राजस्थान में इस घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है—

A circumstance occured at his (Jai Sing) birth, which is desc/iptive of manners may deserve notice. A few hours only intervened between his (Jai Sing) entranee into the woild and that of another son called Bheem. It is customary for the father to bind round the arm of the new born infant a root of that species of grass called the Amirdhob, the 'imperishable' dhob, well known for its nutritive properties and luxurlan vegetation under the most intense heat. The Rana first attached the ligature ronsd the arm of the youngest, apparently an oversight, though in fact from superior affection for his mother. As the boys approached to manhood the

Rana apprehensive that this preference might creat dissension, one day drew his sword, and placing it in the hand of Bheem (the elder), said, it was better to use it at once on his brother, than hereafter to endanger the safety of the state. (Annals and Antiquities of Rajasthan—By James Tod, Vol-I, Chapter-XIV, Page 311-312).

उदार हृदय तेजस्वी भीम अपने पिता की इस अकपट युक्ति को सुनकर किंचित भी विस्मित न हुए। पिता ने जिस संकट में पड़ कर यह कष्टकर वचन कहे थे, उसे कुमार भीम भली प्रकार समझ गए थे। उस संकट से उद्धार करने के लिए भीम ने स्थिर और अचल भाव से उत्तर दिया—'हे पिता श्री! आप कुछ भी शंका न करें, मैं आपके सिंहासन को छू कर कहता हूँ कि आज से मैं समस्त स्वत्व को त्याग कर अपने छोटे भाई जयसिंह को दे दूँगा। मैंने राज्य को छोड़ा। आपके चरणों को छूकर कहता हूँ कि आज से देवारी गिरिमार्ग के बीच में यदि एक बूँद जल तक भी पान करूँ तो मैं महाराणा राजसिंह का पुत्र नहीं।'

यह कहकर कुमार भीम ने पिता से विदा ली, अपनी सेना और सामन्तों को बुलाया और सौभाग्यलक्ष्मी पाने की आशा से उनके साथ उदयपुर से प्रस्थान कर गया। राजपूतों के इतिहास में ऐसे दृष्टान्त विरल हैं कि स्वेच्छा से राजपूत ने अपने राज्याधिकार का परित्याग किया हो। शायद इसी घटना ने लेखिका का मन मोह लिया और उन्होंने 'कुमार भीम सिंह' कहानी की रचना बड़े मनोयोग से की। कुमार चण्ड ने भी अपने छोटे भाई मुकुल के लिए ऐसी ही भीष्म प्रतिज्ञा की थी जिसका वर्णन बंगला के प्रख्यात नाट्यकार गिरीशचन्द्र ने 'चण्ड' नाटक में किया है। कुमार भीम का भी यह कार्य महाभारत के भीष्म के सदृश्य है।

प्रतिज्ञा की रक्षा

कुमार भीम सिंह ने जब उदयपुर का परित्याग किया उस समय भीषण गर्मी थी। दोपहर का सूर्य प्रचण्ड तेज से चमक रहा था। हवा का नामोनिशान नहीं था, वृक्ष का पत्ता तक नहीं हिल रहा था। उदयपुर के सामने देवारी गिरिमार्ग दुपहरिया के सूर्य की भयानक तीक्ष्ण किरणों से अग्नि-कुण्ड बना हुआ था। फिर भी कुमार और उसके साथी पसीने से तरबतर होकर पहाड़ की चढ़ाई पार कर रहे थे। घोड़े आगे बढ़ने में कष्ट का अनुभव कर रहे थे। आखिर एक छायादार वृक्ष के नीचे रुक कर भीम ने घूम कर मातृ-भूमि की ओर सजल नेत्रों से देखा। हाय री विडम्बना! कहाँ तो मारवाड़ का सिंहासन मिलने की बात थी और अब तपती लू और गर्मी में दूर देश जाना पड़ रहा

है। भीम फिर भी दुखी नहीं हुए, उन्हें अपनी वीरता और बाहुबल का पूरा भरोसा था। लेकिन प्यास से उनके कण्ठ सूख रहे थे। पात्रवाहक को उन्होंने जल लाने की आज्ञा दी। वह उसी समय चाँदी के गिलास में सामने के झरने से शीतल जल ले आया। भीम ने उस शीतल जल को पीने के लिए गिलास मुँह की ओर बढ़ाया कि सहसा उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया—'देवारी गिरिमार्ग में एक बूँद जल भी ग्रहण करूँ तो मैं महाराणा राजसिंह का पुत्र नहीं।' फलस्वरूप उन्होंने शीतल जल को पृथ्वी पर डालकर चाँदी के गिलास को झरने की ओर फेंक दिया और बनदेवी को सम्बोधित करते हुए बोले—'हे बनदेवी! अपराध क्षमा करना। मैं भूल गया था, इसी से अपनी प्रतिज्ञा भी भंग करना चाहता था। सचमुच मुझे देवारी गिरिमार्ग में एक बूँद जल पीने का अधिकार नहीं है।'

पश्चात कुमार ने घुड़सवारों सहित गिरिमार्ग को पार किया। अपने राज्य को छोड़कर वे बादशाह के पुत्र बहादुरशाह के पास जा पहुँचे। वहाँ उनका आदर-सत्कार हुआ और उन्हें तीन सहस्र घुड़सवार-सेना का सरदार बनाया गया और उनके भरण-पोषण के लिए बारह जनपद दिए गए। पर मुगलों के सेनापति के साथ उनका झगड़ा होने से बहादुरशाह के द्वारा वे सिन्धु नदी पार भेजे गए। काबुल में उनका प्राणान्त हो गया। कहते हैं कि भीम घुड़सवारी में बड़े पटु थे और दौड़ते घोड़े की पीठ पर भी वे खड़े हो जाते थे और पेड़ की डाल पकड़ कर झूल जाते थे। इसी कौतुक में उनकी दर्दनाक मृत्यु हो गई।

टॉड साहब ने भीम सिंह के वंशधर बुनीराराज से इस वृतान्त को सुना था। उसी को उन्होंने ज्यों का त्यों 'राजस्थान' में लिपिबद्ध कर दिया और स्वर्ण कुमारी ने इसे एक रोचक कहानी का रूप दे दिया।

वीर राजपूतनी

'क्षत्रिय रमणी' कहानी में लेखिका ने राजकुमार अरि सिंह और वीर राजपूत-बाला की प्रणय कथा का वर्णन किया है। इस वीर बाला ने अपने असीम पराक्रम से एक बराह को जुवार के डंठल से मार दिया था। खेत की रखवाली करते हुए उस रमणी के द्वारा गुलेल से फेंके एक मिट्टी के ढेले से राजकुमार के एक घोड़े का पैर टूट गया था। इतना ही नहीं उस वीर रमणी से जब राजकुमार के साथियों ने कौतुक करना चाहा तो उसने माथे पर दूध की मटकी होते हुए भी एक भैंस के बच्चे को इस प्रकार उछाल कर फेंका कि कौतुक करने वाला सैनिक घोड़े से जमीन पर आ गिरा। ऐसी वीर रमणी के प्रति राजकुमार का आकर्षित होना अजूबा बात नहीं थी। पता चला कि चंदानी कुल (चौहान वंश की एक शाखा) के एक दीन राजपूत की वीर

रमणी कन्या है। राजकुमार अरिसिंह प्रणय की याचना के लिए कन्या के पिता के पास गया। पहले तो राजपूत राजी नहीं हुआ पर पत्नी के समझाने पर उसने विवाह की स्वीकृति दे दी। क्षत्रिय वीर बाला से अरिसिंह का विवाह हो गया और उसके गर्भ से जिस बालक का जन्म हुआ, मेवाड़ में वह राणा हम्मीर के नाम से विख्यात है।

'क्षत्रिय रमणी' कहानी को लेखिका ने टॉड के 'राजस्थान' से लिया है। कहीं-कहीं कहानी लेखिका स्वर्ण कुमारी ने नई उद्भावनाओं का समावेश किया है। जब उसके चलाए गए मिट्टी के ढेले से राजकुमार का घोड़ा घायल हो जाता है तो वह क्षमा याचना ही नहीं करती है, अपितु घोड़े के पैर में दवा का लेप भी करती है। कहानी में लेखिका ने यह भी दिखाया है कि राजकुमार स्वयं वीर रमणी के दूध के घड़े को गिराने का कौतुक करता है, पर खुद घोड़े से जमीन पर गिर जाता है, जबकि 'राजस्थान' में ऐसा नहीं है। देखिए—

"His (Hamir) father Ursi, being out on a hunting excursion in the forest of Ondwa with some young chiefs of the court, in pursuit of the boar entered a field of maize, when a female offered to drive out the game. Pulling one of the stalks of maize, which grows to the height of ten or twelve feet, she pointed it, and mounting the platform made to watch the corn, impaled the hog, dragged him before the hunter and departed. Though accustomed to feats of strength and heroism from the nervous arms of their country-women, the act surprised them.

...It was proposed, in frolic, to overturn her milk, and one of the companions of the prince dashed rudely by her, but without being disconcerted, she entangled one of her charges with the horse's limbs, and brought fhe rider to the ground.

\+ + +

They (Ursi and Chundano Rajputnee) were married, and Hamir was the son of the Chundano Rajputnee.

(Ibid, Page 216-217)

कहानी में लेखिका ने भूड़ीदारजी के चरित्र की कुशलता से अवतारणा की है और इस पात्र से कहानी में नई जान आ गई है। इस कहानी में लेखिका का मुख्य उद्देश्य क्षत्रिय रमणी की वीरता दर्शाना रहा है। इस उपकथा की रोचकता इतनी अधिक है कि बंगला-साहित्य में कई लेखकों ने इसका सरस वर्णन किया है। इनमें उल्लेखनीय है रमेशचन्द्र दत्त एवं अवनीन्द्रनाथ ठाकुर। रमेशचन्द्र ने 'राजपूत जीवन संध्या' उपन्यास में 'अहेरिया' परिच्छेद में इस घटना का वर्णन किया है तथा अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक उत्कृष्ट कहानी की रचना की है।

राजपूत की आन : घोड़ा, तलवार और स्त्री-धन

अन्य दो कहानियों की कथा लेखिका ने 'राजस्थान' से ली है, किन्तु ये कहानियाँ उतनी रोचक और प्रभावोत्पादक नहीं बन सकी हैं। फिर भी इतना तो कहना ही होगा कि रमेशचन्द्र दत्त ने वीर रमणी की जिस कहानी को वर्णनात्मक शैली में लिखा है, उसे स्वर्ण कुमारी ने कहानी-विधा का नव्य रूप प्रदान किया है। 'क्षत्रियेर स्त्री, अश्व उ तरवारी' कहानी में लेखिका ने बूंदी के राजा देव सिंह और उनके अश्व-प्रेम की कथा का वर्णन किया है। कहा जाता है कि बूँदी के राव बांगा के बाद राव देवा सिंहासन पर विराजमान हुए। राव देवा के हरराज, हथजी और समर सिंह नामक तीन पुत्र थे।

राव देवा के शासन काल में हाडा लोगों ने जब प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तो दिल्ली के बादशाह सिकन्दर लोदी का ध्यान उनकी ओर गया। उसने हाडा नरेश राव देवा को दिल्ली बुला भेजा। राव देवा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरराज को बंबावदा (बूँबडौंडा) के सिंहासन पर अभिषिक्त कर छोटे पुत्र समर सिंह को साथ लेकर दिल्ली की यात्रा की। हाडा जाति के कवियों का कहना है कि राव देवा बहुत दिन तक दिल्ली में रहे। अन्त में जब राव देवा के अश्व को दिल्ली के बादशाह ने लेना चाहा तो विरोध का सूत्रपात हो गया। यह अश्व राव देवा को बड़ा प्रिय था। इस पाथर घोड़े की एक खूबी थी कि यह नदी-नाले को लम्बी छलांग में पार कर लेता था और उसके पैर मे एक बूंद जल तक नहीं लगता था। राव देवा ने सम्राट के अश्वपाल को रिश्वत देकर पाथर देश की अश्विनी (घोड़ी) से एक घोड़े का बच्चा पैदा करवाया। वह अश्व-बच्चा जब बड़ा हुआ तो लोगों की आँख में गड़ने लगा। सम्राट भी घोड़े की विशेषता पर मुग्ध हो गया और उसने उसे लेने की इच्छा जाहिर की। राव देवा ने बड़ी युक्ति से धीरे-धीरे अपने परिवार को दिल्ली से स्वदेश भेज दिया और परिवार के लोग जब निरापद हो गए तो वे एक दिन घोड़े की पीठ पर सवार होकर, हाथ में तलवार लेकर बादशाह के महल के सम्मुख पहुँचे। बादशाह उस समय महल के झरोखे में बैठा था। राव देवा ने नीचे से ही घोड़े की पीठ पर चढ़े हुए बादशाह को अभिवादन कर कहा—'जहाँपनाह ! मेरा यह अन्तिम अभिवादन है। मेरा एक निवेदन है कि आप राजपूतों से तीन चीजें पाने की आकांक्षा न करें, प्रथम उनका अश्व, द्वितीय उनकी स्त्री और तृतीय उनकी तलवार।' यह कह कर राव देवा ने घोड़े को एड़ लगाई और वह वायु वेग से वहाँ से उड़ चला। इस प्रकार राव देवा सकुशल बिना किसी विघ्न बाधा के स्वदेश लौट आए।

इसी घटना को दृष्टि में रखकर लेखिका ने 'क्षत्रिय स्त्री, अश्व उ तरवारी' कहानी का ताना-बाना बुना है। टॉड के 'राजस्थान' में इस घटना का तथा अन्य

की उत्पत्ति का वर्णन है। लेखिका ने राव देवा को राजा देव सिंह नाम दिया है। 'राजस्थान' के दूसरे खण्ड में टॉड साहब का वर्णन इस प्रकार है—

The Haras had now obtained such power as to attract the attention of the emperor, and Rae Deva was summoned to attend the court when Secunder Lodi ruled. He therefore, installed his son, Hur-Raj in Bumdoda, and with his youngest Samarsi, repaired to Delhi. Here he remained till the emperor coveting a horse of the "King of Pathar", the latter determined to regain his native hills. Its birth is thus related. The King had a horse of such mettle, that "he could cross a stream without wetting his hoof". Deva bribed the Royal equerry, and from a mare of the Pathar had a colt. Deva sent off his family by degrees, and as soon as they were out of danger, he saddled his charger, and lance in hand appeared under the balcony where the emperor was seated "farewell, King", said the Rangra, "there are three things your majesty must never ask of a Rajpoot, his horse, his mistress, and his sword.

(Vol. II, Ibid, Page 371)

मेवाड़ गौरव

स्वर्ण कुमारी देवी के पश्चात् १८९८ ई० में विनय कुमार गंगोपाध्याय द्वारा लिखित कहानी-संग्रह 'मेवाड़ गौरव' प्रकाश में आया, जिसमें टॉड के 'राजस्थान' से तेरह कहानियाँ ली गई हैं। ये कहानियाँ हैं—'वापादित्य', 'समर सिंह', 'पद्मिनी', 'हम्मीर', 'चण्ड'; 'कुम्भ', 'पृथ्वीराज', 'संग्राम सिंह', 'रत्न सिंह', 'धात्री पन्ना', 'उदय सिंह', 'राणा प्रताप' और 'मेवाड़ पतन'। उल्लेखनीय है कि टॉड के 'राजस्थान' में मेवाड़ अंश का विस्तार से वर्णन हुआ है और इसी अंश से अधिक से अधिक कहानियाँ लिखी गई हैं। इन कहानियों में जोड़ासांकू ठाकुर परिवार के चित्र-शिल्पी अवनीन्द्र नाथ ठाकुर की कथाएँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

असल में बंग-भंग के बाद देश-प्रेम और स्वदेशी वस्तुओं के प्रति लोगों में एक नयी भावना जगी। इस भावना को मूर्त रूप देने के लिए तथा छात्रों और युवा पीढ़ी में वीरों का भाव जगाने के लिए टॉड के 'राजस्थान' को आधार बना कर मातृभूमि पर मर मिटने वाले चरित्रों का चित्रण किया जाने लगा। इस प्रसंग में जाहिर है बंग भाषा के लेखकों को मेवाड़ अंश ने सबसे अधिक प्रभावित किया। क्रमशः विभिन्न कथाकारों द्वारा इन वीर नायकों पर लिखी गई कहानियाँ इतनी चर्चित हो गईं कि

बार-बार उनको अपने नजरिए से लिखा जाने लगा। किन्तु जैसा कि हमने कहा है इन कहानी लेखकों में चित्रकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी लेखनी से जो भाषागत, शिल्पगत और भावगत वैशिष्ट्य उपस्थित किया वैसा अन्य लेखकों में देखने को नहीं मिलता। मजे की बात है कि रवीन्द्रनाथ के ठाकुर-परिवार से ही इस दिशा में स्वर्णकुमारी देवी ने अग्रणी भूमिका निभाई और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने उसे देश-प्रेम के प्रशस्त मार्ग पर गतिशील कर दिया।

'राजकहानी'

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा विरचित कहानी संग्रह 'राजकहानी' के नाम से १९०९ ई० में प्रकाशित हुआ। अवनीन्द्र की काव्यमयी प्रांजल भाषा और टेकनिक इतनी प्रभावोत्पादक हुई कि 'राजकाहिनी' के अब तक ३१ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। अन्तिम संस्करण १९८४ ई० में प्रकाशित हुआ है। इससे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि आज भी बंगला-साहित्य में इन कहानियों का कितना महत्व है। कहानीकार स्वयं चूँकि प्रसिद्ध चित्रकार हैं, इसलिए कहानियों के बीच-बीच में उनकी तुलिका का सुन्दर चित्रों के रूप में कमाल देखा जा सकता है। इन चित्रों मे चित्रकार ने राजस्थान की पुरानी चित्रकला को नए सांचे में ढाल कर अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है।

'राजकाहिनी' में टॉड के 'राजस्थान' से जो कहानियां ली गई है वे हैं— 'शिलादित्य', 'गोह', 'बप्पादित्य', 'पद्मिनी', 'हम्मीर', 'हम्मीरेर राज्यलाभ', 'चण्ड', 'राणा कुम्भ', 'संग्राम सिंह'। इसमें व्यतिक्रम है राणा प्रताप का। सम्भव है राणा प्रताप पर बंगला भाषा में प्रचुर साहित्य रचा गया। इसलिए लेखक ने इनके जीवन पर लेखनी नहीं चलाई। डॉ० वरुण कुमार चक्रवर्ती ने 'टाडेर राजस्थान उ बांग्ला साहित्य' ग्रन्थ (पृष्ठ १८३) में लिखा है—'चूंकि अवनीन्द्रनाथ ने इन कहानियों की रचना छात्रों को लक्ष्य में रख कर की थी इस कारण उनके मनोरंजन के लिए लेखक ने नवीन उद्‌भावनाओं का संयोजन किया है और कुछ घटनाओं को जानबूझ कर छोड़ दिया है। अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर लेखक ने 'राजस्थान' ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं को नई कल्पना से सजाया-संवारा है। इस प्रसंग में उनकी अनूठी उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं को रेखांकित किया जा सकता है। अलौकिक घटनाओं में भी लेखक की अपनी सूझ-बूझ द्रष्टव्य है।'

अवनीन्द्रनाथ ने 'राजकाहिनी' में राजस्थान के गौरवोज्ज्वल इतिहास को

उत्कीर्ण किया है, इसमें उनकी जोड़ासांकू ठाकुरबाड़ी से विरासत में मिली मानसिकता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के इस परिवार ने राष्ट्रीय भावना का शंख फूंक कर स्वातन्त्र्य-संग्राम में अपनी स्तुत्य भूमिका अदा की है। अवनीन्द्रनाथ इस परिवार के सदस्य हैं और हैं रवीन्द्रनाथ के चचेरे भाई। इसलिए स्वाभाविक है कि उनकी रचना-प्रक्रिया राष्ट्रीय भावना और देश-प्रेम से परिपूर्ण है। केवल रोमांसपूर्ण कहानियाँ लिखना ही अवनीन्द्रनाथ का मूल लक्ष्य नहीं था, वे किशोर बालकों में राजस्थान के वीरों की साहसिकता, देश-प्रेम और त्याग को भरना चाहते थे। और इस बड़े उद्देश्य को दृष्टि में रखकर 'राजकाहिनी' की रचना हुई है। इतिहास और कल्पना का इन कहानियों में मनिकांचन योग हुआ है। वस्तुतः राजपूताना की ऐतिहासिक उपकथाएँ इस संकलन में काल और देश की सीमा को लांघ गई हैं। कदाचित इसी कारण बार-बार सुनी हुई कहानियाँ भी पाठक को बरबस पढ़ने के लिए बाध्य करती हैं और एक नई स्फुरण, उत्कण्ठा और जिज्ञासा पैदा करती हैं।

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध कथा शिल्पी और आलोचक श्री प्रमथनाथ विशी ने 'श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर : बांग्लार लेखक' पुस्तक (पृ० ६६) में अपना मन्तव्य इन शब्दों में व्यक्त किया है—'लेखक ने इतिहास के चश्मे को उतार कर उसमें कथा-कल्पना का चश्मा लगा लिया है। फलतः नजदीक घटनाएँ तो स्थूल और आईने की तरह चमकती दीख पड़ती हैं। यह कथाकार अवनीन्द्रनाथ की अपनी मौलिक प्रतिभा है।' दरअसल अवनीन्द्रनाथ का कहानी कहने का ढंग अपना है और अनूठा है। इस अनूठेपन के चलते ही उनकी कहानियो की इतनी चर्चा और लोकप्रियता है और है 'राजकाहिनी' के दर्जनों संस्करणों का प्रकाशन।

शिलादित्य

'राजकाहिनी' में 'शिलादित्य' प्रथम कहानी है। इसी शिलादित्य से कनकसेन की वंश परम्परा में मेवाड़ राज्य की शुरूआत होती है। जब शिलादित्य का जन्म हुआ उस समय वल्लभीपुर के राजा कनकसेन के वंश में सातवाँ राजा राज्य करता था। शिलादित्य इस वंश की आठवीं पीढ़ी का राजा है। राजस्थान के भट्ट कविगण वल्लभीपुर के महाराज कनकसेन को ही मेवाड़ राज्य का संस्थापक मानते हैं। उनके मतानुसार कनकसेन भारतवर्ष के उत्तर मे स्थित लोहकोट या लाहोर में वास करते थे। उन्हें १४४ ई० में अर्थात सम्वत २०० में सौराष्ट्र आना पड़ा। कनकसेन की चौथी पीढ़ी में राजा विजयसेन ने विजयपुर की स्थापना की। उन्होंने वल्लभीपुर और विदर्भ नामक और भी दो नगरियाँ बसाई थीं। इन नगरियों में वल्लभीपुर ही अधिक प्रसिद्ध है। अनुसन्धानकर्ताओं के अनुसार वर्तमान भावनगर से पाँच कोस उत्तर-पश्चिम में वल्लभी

नामक जो नगरी है, वही प्राचीन वल्लभीपुर का बचा हुआ भाग है। 'शत्रुंजय महात्म्य' नामक जैन धर्म ग्रन्थ में इस राज्य की सत्यता प्रमाणित होती है।

कनकसेन द्वारा मेवाड़ के सूर्यवंश की स्थापना के भट्ट कवियों के मत को जयपुर के राजा जयसिंह ने स्वीकार किया है और उन्होंने अपने इतिहास में इसका उल्लेख किया है। महात्मा टॉड को वल्लभीपुर की खोज के लिए सौराष्ट्र की यात्रा करनी पड़ी थी। 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' के अतिरिक्त 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' नामक टॉड का दूसरा ग्रन्थ है, जो १८३९ ई० में लन्दन से प्रकाशित हुआ था। टॉड के प्रथम ग्रन्थ 'राजस्थान' की प्रथम जिल्द १८२९ ई० में तथा दूसरी जिल्द १८३२ ई० में प्रकाशित हुई थी। कहा जाता है कि पश्चिमी राजस्थान के पोलिटिकल एजेन्ट के पद से सेवामुक्त होकर इङ्गलैण्ड लौटने के लिए १ जून १८२२ ई० को टॉड साहब ने उदयपुर से बम्बई के लिए प्रस्थान किया और गोगुन्दा, बीजापुर, सिरोही तथा आबू होते हुए वे गुजरात पहुँचे। तदन्तर गुजरात और सौराष्ट्र का भ्रमण करते हुए वे कच्छ पहुँचे। वहाँ माण्डवी में 'पट्टामार' जहाज पर चढ़ कर समुद्र मार्ग से बम्बई पहुँचे और तदन्तर लन्दन लौट गए।

उदयपुर से माण्डवी तक की अपनी यात्रा का विवरण टॉड ने 'ट्रेवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' ग्रन्थ में दिया है। इस ग्रन्थ मे उन्होंने राजस्थान के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों, पुरातन अवशेषों, आदिवासी निवासियों का बडा ही रोचक विवरण दिया है। यह सामग्री इतिहास के विद्यार्थियों के लिए बड़ी उपयोगी है।

डॉ० रघुवीर सिंह ने 'राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व' पुस्तक (पृष्ठ २१) मे लिखा है—'यों इस ग्रन्थ (ट्रेवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया) के प्रारम्भिक सात अध्याय राजस्थान के इतिहासकारों के लिए अवश्य ही जानकारीपूर्ण और उपयोगी है। राणा वंश की परम्पराओं को निर्धारित करने के लिए वल्लभी की दिशा तलाश कर मेवाड़ के राणाओं की उस प्राचीन राजधानी का पता लगाने टॉड सौराष्ट्र में स्थित वल्लभी के खण्डहरों में पहुँचे थे। इस यात्रा का संक्षिप्त विवरण ग्रन्थ के तेरहवें अध्याय के अन्तिम पृष्ठों में मिलता है।' उल्लेखनीय है कि हिन्दी विश्वभारती अनुसन्धान परिषद, बीकानेर की ओर से १९७९ ई० मे आयोजित डॉ० दशरथ शर्मा स्मृति व्याख्यान-माला के अन्तर्गत डॉ० रघुवीर सिंह ने राजस्थान के प्रमुख इतिहासकारो यथा मुहणोत नैणसी, कर्नल जेम्स टॉड, श्यामलदास दधवाडिया, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जगदीश सिंह गहलौत, डॉ० दशरथ शर्मा पर विद्वत्तापूर्ण भाषण किए थे। उन्हीं का संकलन उक्त पुस्तक मे है।

टॉड कृत Travels in Western India या 'पश्चिमी भारत की यात्रा' नामक अंग्रेजी पुस्तक का पुनर्मुद्रण नहीं हो सका है। उक्त ग्रन्थ की एक अलभ्य प्रति पुरातत्वाचार्य और जैन साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान मुनि जिनविजय के पास थी। उसी का राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के उप-संचालक श्री गोपाल राम बहुरा ने हिन्दी में सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया है, जिसका प्रकाशन १९६५ ई० में हुआ।

शिलादित्य की कहानी

श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर की 'शिलादित्य' कहानी इस प्रकार है—बल्लभीपुर में राजा कनकसेन के वंश के जब अन्तिम राजा राज्य करते थे उस समय शिलादित्य का जन्म हुआ था। उस समय बल्लभीपुर में सूर्य कुण्ड नामक एक पवित्र कुण्ड था। उस कुण्ड के परिपार्श्व में अति विशालकाय सूर्य मन्दिर में एक पुजारी थे। वे नि:सन्तान थे और अकेले ही तीस सेर के पीतल निर्मित प्रदीप को लेकर सूर्य देवता की पूजा-आरती करते थे। ब्राह्मण पुजारी अस्सी वर्ष की उम्र मे काफी थक गए थे और अपने को एकाकी अनुभव करते थे। उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि उनके पश्चात सूर्य देवता की पूजा-आरती कौन करेगा? भगवान सूर्य ने भक्त के मन की बात को अनुभव किया और एक शीतकाल की रजनी में मन्दिर के मुख्य द्वार पर एक ब्राह्मण-कन्या वहाँ आ उपस्थित हुई। उसके जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों मे भी उसकी सुन्दरता फूटी पड़ती थी। ब्राह्मण ने देखा कन्या सुलक्षणा है, पर उसके विधवा वेश को देख कर उन्होंने प्रश्न किया—'तुम कौन हो? क्या चाहती हो?'

विनीत स्वर में दोनों हाथ जोड़ कर कन्या ने कहा—'हे प्रभु! मैं आपकी शरण में आश्रय चाहती हूँ। मैं ब्राह्मण कन्या हूं, गुर्जर देश के वेदविज्ञ ब्राह्मण देवादित्य की एक मात्र कन्या हूं, मेरा नाम सुभागा है विवाह की रात को ही मैं दैवदुर्विपाक से विधवा हो गई। इस कारण मुझ हतभागी को निकाल दिया गया। मेरी माँ थीं, वे भी गत हो गईं। हे प्रभु! आप मुझे आश्रय दीजिए।'

ब्राह्मण ने कहा कि यहाँ भी सुख के साधन नहीं हैं। मुझे कष्ट से दिन काटने पड़ते हैं। वृद्ध ब्राह्मण जब ऐसा कह रहे थे तो उनके अन्तरमन में एक ध्वनि हुई—'अरे तुम जिस संगी की कामना करते थे वह निधि तुम्हें मिल रही है।' अन्ततः देवादेश को वृद्ध ब्राह्मण ने शिरोधार्य कर लिया और सुभागा मन्दिर में रहने लगी। काफी दिन बीत गए। अब सुभागा ब्राह्मण के सभी कार्यों में हाथ बँटाती और मन्दिर की मनोयोग से सेवा करती, किन्तु तीस सेर के पीतल के प्रदीप से आरती करना

उसके बूते की बात नहीं थी। अतः बल्लभीपुर नगरी में आकर वह एक दिन एक सेर वजन के पीतल के प्रदीप को ले आई। जब वह लौटी तो ब्राह्मण ने सुबह की पूजा-आरती पूरी कर ली थी। एक सेर के प्रदीप को देख कर ब्राह्मण ने कहा—'नियमानुसार सुबह जिस प्रदीप से देवता की आरती की गई है, सायंकाल भी उसी प्रदीप से पूजा-आरती होगी। कल नए प्रदीप से पूजा होगी।' बाद में दिन का सारा कार्य समाप्त होने पर ब्राह्मण पुजारी ने सुभागा को अपने निकट बड़े आदर से बुला कर सूर्य-मन्त्र की दीक्षा दी। इस मन्त्र के जाप से स्वयं सूर्य देवता भक्त को दर्शन देकर मनोकामना पूर्ण करते हैं, लेकिन इस मन्त्र की विशेषता है कि इसका जीवन में एक बार ही प्रयोग किया जा सकता है, दोबारा मन्त्र-जाप से मृत्यु निश्चित है।

सायंकाल रात्रि-पूजा के बाद प्रदीप बुझते ही वृद्ध-ब्राह्मण का जीवन-प्रदीप भी बुझ गया। सुभागा अकेली रह गई।

शुरू-शुरू में तो सुभागा को एकाकी जीवन अटपटा लगा, किन्तु शनैः शनैः वह इसकी अभ्यस्त हो गई। उसने नए सिरे से मन्दिर के आस-पास वाटिका लगाई और जब उस वाटिका में फल-फूल खिले तो पशु-पक्षियों के साथ आस-पास के बच्चे भी वहाँ आकर खेलने लगे। अब सुभागा अंशतः आश्वस्त हुई, किन्तु फिर भी उसे जीवन जैसे कचोटता था। आखिर एक दिन उसने मन्दिर के एकान्त कोने में बैठकर ध्यान लगाया और सूर्य-मन्त्र का जाप करने लगी। आहिस्ता-आहिस्ता उस निरभ्र कोने में आलोक की छटा विकीर्ण होने लगी और स्वयं सूर्य देवता आ उपस्थित हुए। सूर्य के प्रचण्ड तेज को सुभागा सहन नहीं कर सकी और उसने अपने दोनों हाथों से आँखें बन्द कर ली। सूर्य देवता ने कहा—'घबड़ाओ नहीं बेटो, तुम वर की याचना करो।' और सूर्य की तेज आभा क्रमशः क्षीण होकर सुभागा के माथे पर आ टिकी। सुभागा ने कहा—'हे नाथ! मैं पति-पुत्रहीन अनाथिनी हूँ, विधवा हूँ, अकेली हूँ। मुझे वर, दीजिए कि अब मैं इस संसार में न रहूँ और तत्काल मेरी मृत्यु हो जाय।' मृदु हास्य से सूर्य देवता ने कहा—'बेटी! देवता के वर से मृत्यु नहीं होती, देवता के अभिशाप से मृत्यु होती है, अतः तुम वर की याचना करो।' आखिर सुभागा ने सूर्य देवता को प्रणाम कर कहा—'हे प्रभु! अगर आप वर ही देना चाहते हैं तो मुझे आप अपने समान एक तेजस्वी पुत्र और चन्द्रमा की स्निग्ध किरणों से युक्त एक पुत्री दीजिए।' सूर्य देव 'तथास्तु' कहकर अन्तर्ध्यान हो गए।

सुभागा अवचेतनावस्था में वहीं सोई रही और जब जगी तो देखा उसके पास दो शिशु सोये हैं। उनमें से एक बालक था और दूसरी बालिका। सूर्य देवता का वर सार्थक हुआ। सुभागा ने दोनों बच्चों को गोद में ले लिया। चूँकि लोगों की नजरों से

गोपन बच्चों का जन्म हुआ था। इसलिए सुभागा ने बालक का नाम रखा गोयब और बालिका का गायबी।

जब गोयब और गायबी बड़े हुए तो गोयब पास के गाँव के स्कूल में पढ़ने लगा और गायबी माता सुभागा के पूजा-कार्य में सहायता करने लगी। गोयब उदण्ड और अस्थिर प्रकृति का था और गायबी शान्त आचरण की थी। गोयब से उसके सहपाठी डरते और उसे अपना राजा मानते। एक दिन सब सहपाठियो ने मिलकर गोयब को विधिवत तिलक लगा कर राजा बनाया और उससे पूछा—'गोयब! हम तुम्हारा नाम जानते हैं, तुम्हारी माँ का क्या नाम है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है?' गोयब ने कहा—'मेरा नाम गोयब, बहन का नाम गायबी और मेरे पिता का नाम ··'। गोयब को निरुत्तर देख सभी बालक उसका मजाक उड़ाने लगे। गोयब क्रोध से अस्थिर हो उठा और दौड़ा हुआ मन्दिर मे आया। उसने तीस सेर वजन के प्रदीप को उठाकर फेंक दिया और सूर्य मूर्ति को भी उठा कर फेंकने के लिए उद्यत हुआ। गोयब के इस आचरण से सुभागा भयभीत हुई। उसने क्रोध का कारण पूछा। गोयब ने क्रोध का कारण बताया। गोयब को आश्वस्त कर उसने समझाया कि सूर्य ही उसके पिता हैं। गोयब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वह अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। अन्त मे विवश होकर सुभागा ने मन्दिर का द्वार बन्द करने की आज्ञा दी। उसने कहा—'मैं जो नहीं चाहती थी वही होने जा रहा है। मुझे इतना ही दुःख है कि आज के बाद तुम बच्चे अनाथ हो जाओगे, फिर भी तुम जिद्द पर उतर आए हो तो मैं अभी सूर्य देवता का स्मरण करती हूँ।' गायबी ने भाई को बहुत समझाया पर वह अड़ा रहा। आखिर सुभागा ने सूर्य-मंत्र का जाप किया और सूर्य देवता उपस्थित हुए। सुभागा ने देवता से प्रश्न किया—'प्रभु! गोयब और गायबी किसकी संतान हैं?' सूर्य देवता ने कोई उत्तर नहीं दिया और धीरे-धीरे प्रकाश क्षीण होने लगा। सुभागा निष्प्राण हो गई। गोयब चिल्लाया 'माँ! माँ!!' पर कोई उत्तर नहीं मिला। सूर्य देवता ने भी कोई उत्तर नहीं दिया, बस एक राख की ढेर की ओर इशारा कर दिया। क्रोध के आवेश में गोयब ने पास में पड़े एक शिलाखण्ड को उठाया और उसे सूर्य देवता पर दे मारा। शिलाखण्ड सूर्य देवता के मुकुट से टकरा कर दूर छिटक कर जा गिरा और गोयब मूर्छित हो गया।

जब गोयब को होश हुआ तब तक सूर्य देवता अन्तर्ध्यान हो चुके थे। पास में बैठी गायबी क्रन्दन कर रही थी। गोयब ने बहन से पूछा—'सूर्य देवता कहाँ हैं?' गायबी ने तब उस काले शिलाखण्ड को दिखाते हुए कहा—'भाई! यह आदित्य शिला है। इस शिला को तुम जिस पर फेंकोगे उसकी मृत्यु निश्चित है। सूर्य

देवता यह तुम्हें दे गए हैं, और कह गए हैं कि तुम उनके ही पुत्र हो, आज से तुम्हारा नाम हुआ शिलादित्य। तुम्हारा वंश सूर्यवंशियों के नाम से इस धरती पर शासन करेगा और तुम जब स्मरण करोगे तब उस सूर्य-कुण्ड से सप्तघोड़ों का रथ तुम्हारे लिए अवतीर्ण होगा। उस पर सवार होकर तुम दिग्विजय करोगे।' गोयब ने कहा—'बहन ! मैं दिग्विजय के लिए निकल रहा हूँ, पर तुम्हें कहाँ छोड़ूँ ?' उत्तर में गायबी ने कहा—'तुम मुझे इसी सूर्य मन्दिर में छोड़ दो और मन्दिर के द्वार बन्द कर दो। मैं वाटिका के फल-फूल खा कर जीवित रहूँगी और जब तुम राजा बनोगे तो तुम्हारी यह बहन सूर्य मन्दिर से राज-महल में चली जायगी।

गोयब ने ऐसा ही किया। उसी दिन गोयब तो सात घोड़ों के सूर्य रथ पर सवार होकर दिग्विजय के लिए निकल पड़ा पर रात में सूर्य मन्दिर एक भूकम्प के झटके से पाताल में चला गया। आधा मन्दिर धरती के बाहर रहा, गायबी भी उसी में समा गई और शेष हो गई।

गोयब एक-एक कर राज्य जीतता रहा और अपनी सेना लेकर विजय वैजयन्ती फैलाता रहा। अन्त में उसने बल्लभीपुर के राजा को निहत कर राज्य सिंहासन प्राप्त किया और शिलादित्य के नाम से राजा बना। उसने इसके बाद चन्द्रावती नगर की राजकन्या पुष्पावती से विवाह किया। एक दिन जब वह पुष्पावती के साथ शयन मन्दिर में था तभी उसे अपनी बहन गायबी का स्मरण हो आया। वह तत्काल वहाँ से उठा और सेना लेकर सूर्य मन्दिर पहुँचा, पर वहाँ तो कब का सब कुछ शेष हो चुका था। मन्दिर के खण्डहरो से सिर पीट कर बहन को खोजकर शिलादित्य पुनः लौट आया अपने महल में।

उसकी आज्ञा से सूर्य-कुण्ड को स्वर्ण मेखला से घेर कर पक्का बनाया गया। शिलादित्य ने सूर्य मन्दिर में नई मूर्ति की स्थापना नहीं की। मन्दिर का भाग जितना धरती के अन्दर चला गया था, वह उसी रूप में रहा। जब भी युद्ध-विग्रह होता शिलादित्य सूर्य की उपासना करता और सूर्य-कुण्ड से सात घोड़ों का रथ निकल कर उपस्थित होता। शिलादित्य जब भी उस रथ में सवार होकर जाता, विजयी होकर लौटता। उसके इस सूर्य-कुण्ड रहस्य को उसका एक विश्वासघाती मंत्री जानता था। उसीसे उसका सर्वनाश हुआ।

एक बार सिन्धु पार से पारद नामक एक असभ्य जाति के एक दल ने जब बल्लभीपुर पर आक्रमण किया तो उसी विश्वासघाती मंत्री ने घूस लेकर षड़यन्त्र किया। शत्रु ने सूर्य-कुण्ड में गो-मांस डाल दिया। जब शिलादित्य ने सूर्योपासना की और

सूर्य-कुण्ड से रथ का आह्वान किया तो रथ नहीं निकला। शिलादित्य ने अलग-अलग घोड़ों का नाम लेकर पुकारा, पर सब व्यर्थ गया। युद्ध हुआ और युद्ध में सूर्य का वर-पुत्र सदा के लिए धरती पर सो गया। विधर्मी सोने के मन्दिर को लूटकर बल्लभीपुर को तहस-नहस कर लौट गए।

गोह या गोहिल

म्लेच्छों के आक्रमण के पूर्व ही महाराज शिलादित्य ने रानी पुष्पावती को उसके पिता के घर भेज दिया था। वह गर्भवती थी। पुष्पावती के पिता चन्द्रावती नगरी के प्रभार राजा थे। यह नगरी विन्ध्य पर्वत की तलहटी में है। जब महाराज की मृत्यु का समाचार पुष्पावती को मिला तो वह मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी और सती होने का आग्रह करने लगी। चूंकि उसके गर्भ मे शिशु था, अतः उसे समझाया गया और वह सती होने से विरत हो गई।

पश्चात मालिया शैलमाला की एक गुफा में पुष्पावती को एक पुत्र-रत्न पैदा हुआ। गुफा में जन्मने के कारण उसका नाम गोह या गोहिल रखा गया। इसी गोह के कारण मेवाड़ के वंशधरों का नाम गोहिल पड़ा। रानी पुष्पावती ने मालिया शैलमाला के निकट की वीरनगर बस्ती की कमलावती नामक एक ब्राह्मण स्त्री के सुपुर्द अपने नवजात पुत्र को कर दिया और स्वयं चिता में जल कर सती हो गई। रानी ने चिता की अग्नि में प्रवेश करने के पूर्व कमलावती से कहा—'हे देवी! अपने हृदय के धन प्राण प्यारे कुमार को तुम्हारे हाथ में सौंपती हूँ, अब तुम ही इसकी माता हो, देखो इसको अपना पुत्र समझना और लालन-पालन करना। कुमार को ब्राह्मणोचित शिक्षा देकर समयानुसार एक राजपूत कन्या से इसका विवाह कर देना।'

कमलावती ब्राह्मण बालक की भांति गोह का पालन करने लगी। लेकिन वीर पिता की सन्तान गोह को पठन-पाठन में कोई रुचि नहीं थी। बड़ा होने पर वह पहाड़ों, कन्दराओं में निर्भय घूमने लगा और भील तथा राजपूत बालकों की तरह भांति-भांति के युद्धाभ्यास और आश्चर्यजनक कारनामे करने लगा।

मेवाड़ के दक्षिण पार्श्व की वनी शैलमाला के भीतर ईडर नामक एक भील राज्य है। उस समय मण्डलीक उस राज्य का भील राजा था। इसी भील राज के भील बालकों के साथ गोह जंगलों में घूमता और उत्पात करता। भील लोगों की गोह के प्रति विशेष प्रीति थी। कहा जाता है कि एक दिन खेल ही खेल में भील तथा राजपूत बालकों ने गोह को अपना राजा बना लिया। एक भील बालक ने अपनी उंगली काट कर गोह को राज-तिलक कर दिया। वृद्ध मण्डलीक ने जब इस घटना का वृतान्त सुना

तो उसने गोह को बुलाकर अपना राज्य उसे सौंप दिया। किन्तु इस घटना का उपसंहार अत्यन्त घृणित और कालिमामय है। इसमें गोह के चरित्र में विश्वासघातकता और कृतघ्नता का कलंक लगा हुआ है। भीलराज मण्डलीक ने अपने वंशधरों को राज्य न देकर गोह को दिया, उसी गोह से भीलराज का प्राणान्त हुआ। इस बात का निश्चय करना बड़ा कठिन है कि किस कारण राजकुमार गोह ने ऐसा किया। अब्बुल फजल और भट्ट लोग भी इसमें कोई कारण नहीं बताते। परन्तु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'गोह' कहानी में इस प्रसंग पर नए सिरे से प्रकाश डाला है।

अवनीन्द्रनाथ ने लिखा है—'मंडलीक निःसंतान था। उसका एक छोटा भाई था। दस वर्ष पूर्व वह मंडलीक से लड़-झगड़ कर हिमालय में चला गया था और वहाँ भील-राज्य की स्थापना कर राज्य करता था। जब मंडलीक ने गोह को युवराज बनाया, उसी दिन वह हिमालय से मंडलीक के राज्य में आया था। राजपूत बालक को युवराज पद देने से वह नाखुश था, उसने अपने बड़े भाई मंडलीक को एकान्त में समझाया—'तुमने यह अनर्थ क्यों किया। राजपूत बालक को युवराज बनाकर तुमने भील-वंश का नाश किया है।' मंडलीक गोह को पुत्रवत स्नेह करता था। अतः वह छोटे भाई की बात से नाराज हो गया। छोटा भाई भी नाराज होकर लौट गया।'

उसी दिन रात को मण्डलीक ने गोह से प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया और गोह से उसकी छुरी मांगी। मण्डलीक ने कहा—'इस छुरी से मैं तुम्हारे दुश्मन का संहार करूँगा।' यह कर मण्डलीक जंगल में अकेला निकल पड़ा। अन्धेरी रात में उसने एक मकान के दरवाजे को खटखटाया। कोई उत्तर नहीं मिला। दरवाजा धकेल कर वह अन्दर गया। देखा उसका छोटा भाई निष्प्राण जमीन पर लेटा है। उसे अपने मृत भाई के लिए पश्चाताप हुआ और क्रन्दन करता हुआ वह बाहर आया। बाहर एक चट्टान से टकरा कर गिर पड़ा और गोह की छुरी उसके हृदय को बेध गई। वह वहीं चिरनिद्रा में सो गया। दूसरे दिन जब एक राजपूत ने आकर गोह से कहा—'यह तुमने क्या किया? अपने रक्षक का ही भक्षण कर लिया।' गोह क्रोधित हो उठा। उसने राजपूत का बध करने की आज्ञा दी और मण्डलीक का दाह-संस्कार करके भील राज्य के सिंहासन पर बैठ गया।

बप्पादित्य

गोह के बाद राजपूतों के प्रति भीलों में ईर्ष्या और द्वेष की एक ऐसी चिनगारी जल उठी जो भीतर ही भीतर दावानल की तरह जलती रही और गोह की आठवीं

पीढ़ी में भयंकर आग बन कर प्रज्ज्वलित हुई। इस आग में बप्पा के पिता नागादित्य भीलों के हाथों मारे गए और ईडर राज्य पर पुन: भीलों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इसी भील-विद्रोह की रोमांचकारी घटना को लेकर रवीन्द्रनाथ की बड़ी बहन स्वर्ण कुमारी देवी ने 'विद्रोह' उपन्यास की रचना की, जिस पर हमने 'उपन्यास अध्याय' में विचार किया है।

अवनीन्द्र नाथ ने 'बप्पादित्य' कहानी में लिखा है—नागादित्य बड़ा अत्याचारी राजा था। उसके अत्याचार से भील बेहद नाराज थे। वह भीलों की बहू-बेटियों को जबरन राजपूतों के पास दासी बना कर भेज देता था और स्वयं भी ऐयाशी में डूबा रहता था। उसने भीलों के पशु-शिकार पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया था। इन्हीं से जल-भुन कर एक दिन भीलों ने उस समय नागादित्य की हत्या कर दी जब वह खुद शिकार खेलने गया था।

उस समय नागादित्य के पुत्र बप्पा की उम्र कुल पाँच वर्ष की थी। भीलों ने राजपूतों से प्रतिहिंसा लेने की ठान ली। नागादित्य की रानी ने किसी प्रकार बालक बप्पा की प्राण रक्षा की। वह गुप्त-मार्ग से बालक को लेकर वीर नगरी की कमलावती के उसी ब्राह्मण परिवार के पास आई, जिसने एक समय गोह की प्राण-रक्षा की थी और उसका लालन-पालन किया था। कमलावती के वंशधरों ने इस गुरुदायित्व को स्वीकार कर लिया अर्थात बप्पा को पालने का भार अपने ऊपर ले लिया और रानी सती हो गई।'

जिस दिन बप्पा को ब्राह्मण-परिवार को सौंपा गया, उसी दिन एक भील स्त्री ने अपने दो छोटे बच्चों के साथ ब्राह्मण के घर में आश्रय लिया। यह भीलनी उस परिवार की थी, जिसके परिवार ने अपनी अंगुली काट कर गोह को राजतिलक किया था। भील इस परिवार पर कुपित हो गए और उसके घर आदि को फूंक दिया। लाचार होकर भीलनी ब्राह्मण के यहाँ सुरक्षा के लिए चली आई। ब्राह्मण परिवार के मुखिया ने वीर नगरी का परित्याग कर दिया। बप्पा और भीलनी के दोनो बालकों को लेकर वह मांडेर के किले में चला आया। वहाँ एक यदुवंशी भील था, जिसने ब्राह्मण और उसके साथियों को सुरक्षा प्रदान की। मांडेर का किला झारोली से १५ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। मांडेर में भी बप्पा को पूर्णत: सुरक्षित नहीं समझा गया। अत: उसे पराशर नामक स्थान मे भेज दिया गया। पराशर के पास ही त्रिकूट पहाड़ी थी जहाँ तलहटी में नागेन्द्र या नागदा नगर बसा हुआ है। यहाँ घना जंगल है। उस जंगल में शिवोपासक ब्राह्मण निवास करते थे। उन्हें बप्पा को सौंप दिया गया।

बप्पा के बारे में कई विचित्र कहानियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि वे ब्राह्मणों को गाय चराया करते थे। इन गायों में से एक गाय रोज वन में आकर एक शिवलिंग

पर अपने थनों से दूध गिरा आती थी। जब घर लौटती तो उसके थनों में दूध नहीं रहता। ब्राह्मण बप्पा पर सन्देह करने लगे। बप्पा ने भी उस गाय पर विशेष नजर रखनी शुरू की। एक दिन वह उसके पीछे-पीछे जंगल में गया। देखा कि गाय एक कन्दरा में घुस कर शिवलिंग पर दूध की धार छोड़ रही है। इस विचित्र दृश्य से बप्पा को कौतूहल हुआ। उसने देखा शिवलिंग के पास ही एक तपस्वी ध्यानमग्न हैं। यह तपस्वी हारित ऋषि थे। बप्पा के कारण उनका ध्यान भंग हो गया। बप्पा ने उनको प्रणाम किया। हारित प्रसन्न हो गए। तब से रोज बप्पा उनकी सेवा करने लगा। प्रसन्न होकर हारित ने बप्पा को 'एक लिंग का दीवान' पदवी दी और कई अमोघ अस्त्र दिए। कहा जाता है कि इसी प्रकार गोरखनाथ जी ने भी बप्पा को मगरा नामक गिरिकुट में एक अद्‌भुत तलवार दी थी। ऐसी ही कथाओं में यह भी है कि बप्पा ने एक बार खेल ही खेल में नगेन्द्र नगर के सोलंकी राजा की लड़की से झूलनोत्सव में विवाह कर लिया था।

बप्पा ने अपनी माँ से सुना था कि वह चित्तौड़ के सूर्य वंशी राजा का भानजा है। अत: अपने अस्त्रों और साथियों को लेकर वह चित्तौड़ पहुँचा। जिस समय बप्पा चित्तौड़ पहुँचा उस समय इस नगर मे मौर्य वंश का भान नामक राजा राज्य करता था। महाराज भान ने अपने भानजे का आदर-सत्कार किया। बप्पा को उन्होंने अपने अधीन सामन्त बना लिया और भरण-पोषण के लिए उसे थोड़ी भूमि दे दी। महाराज से बप्पा की विशेष प्रीति देखकर अन्य राजपूत चिढ़ने लगे।

इसी समय एक विदेशी शत्रु ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर उसे घेर लिया। राजा ने सभी सामन्तों को शत्रु से लड़ने की आज्ञा दी। किन्तु सामन्त मौके की तलाश में थे, उन्होंने कहा—'आप अपने प्रिय सामन्त सेनापति को लड़ने भेजिए।' कुमार बप्पा इस बात को सुनकर दूने उत्साह से अकेला ही अपने सैनिकों को लेकर युद्ध करने चल पड़ा। कुमार बप्पा की अद्‌भुत वीरता के सामने शत्रु के पाँव उखड़ गए और बप्पा विजयश्री धारण कर चित्तौड़ पहुँचा। आक्रमणकारी सलीम की शत्रु सेना गजनी वापस लौट गई।

बप्पा की इस विजय से अन्य राजपूत सामन्त असन्तुष्ट होकर चित्तौड़ से अन्यत्र चले गए। राजा भान ने उनको बहुत समझाया, दूत भेजे, पर वे वापस लौट कर नहीं आये। सिर्फ उन्होंने इतना कहा हमने महाराज का नमक खाया है, इसलिए एक वर्ष तक उनसे युद्ध नहीं करेंगे। इसके बाद षड़यन्त्र का दौर चला। बप्पा को राजा भान के विरुद्ध उकसाया गया और बप्पा के सेनापतित्व में असन्तुष्ट सामन्तों ने महाराज भान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राज्य का लोभ भयंकर होता है। उस समय मनुष्य अपने पराये को भी नहीं देखता। बप्पा ने युद्ध में विजयी होकर अपने मामा को गद्दी से

उतार दिया और खुद चित्तौड़ का महाराज बन गया।

सोलह वर्ष के बप्पा ने राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद देवबन्दन की राज कन्या से विवाह किया और हिन्दू मुकुट, हिन्दू सूर्य, राजगुरु आदि कई उपाधियाँ धारण कीं। बप्पा के साथी दोनों भीलों को जागीरें दी गई। उन्होंने अपने रक्त से बप्पा के माथे पर राजतिलक किया था। तब से भीलों के द्वारा बप्पा के वंशधर आज भी उन भीलों के वंशधरों से रक्त का तिलक लगा कर ही सिंहासन पर बैठते हैं। राजा मान की हत्या का कलंक बप्पा के सिर लगा। जिस मामा ने उसे मान दिया, सम्मान दिया और राज्य तक देने को तैयार था, उसके साथ बप्पा ने अमानुषिक कार्य किया।

महाराजाधिराज बप्पा ने एक सौ वर्ष को आयु पाई। उनकी कई रानियाँ थीं, जिनमें यवन भी थीं। उनकी सन्तान भी १३० बताई जाती हैं। कहते हैं कि जब उनकी मृत्यु हुई तो यवन रानियो ने उन्हें दफनाने की मिन्नत की और हिन्दू रानियों ने जलाने की। किन्तु जब उनके शव को चादर उघाड़ कर देखा गया तो वहाँ सिर्फ कुछ फूल ही थे। इस अद्भुत घटना का वर्णन टॉड ने भी किया है और कहानीकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी। ऐसा ही वृतान्त हिन्दी के सन्त-कवि कबीरदास के बारे मे भी कहा जाता है।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'शिलादित्य', 'गोह' और 'बप्पादित्य' कहानियों के अतिरिक्त जो कहानियाँ लिखी हैं वे हैं—'पद्मिनी', 'हम्मीर', 'हम्मीर का राज्य लाभ', 'चण्ड', 'राणा कुम्भा', 'संग्राम सिंह'। ये कहानियाँ काफी प्रसिद्ध हैं। अतः हम यहाँ इन पर विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे, किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि अवनीन्द्रनाथ ने सभी कहानियों में अपनी मौलिक प्रतिभा को पूरी छाप छोड़ी है।

राजपूतों की वीर कहानियाँ

१९३८ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से अंग्रेजी में पाठ्य-पुस्तक के रूप में 'Tales of Rajput Chivalry' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। यह पुस्तक कलकत्ता विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा के पाठ्यक्रम में वर्षों चलती रही। इस पुस्तक में राजपूत वीरों की वीरतापूर्ण कहानियों का बड़ी ही सरस भाषा में वर्णन किया गया है। पुस्तक छात्रों के लिए है। पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर ही लिखा गया है कि इस पुस्तक की सभी कहानियाँ टॉड के 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' ग्रन्थ से ली गई हैं। पुस्तक के आरम्भ में कर्नल जेम्स टॉड की जीवनी दी गई है तथा इसमें 'बप्पा रावल', 'समर सिंह', 'रानी पद्मिनी', 'राणा हम्मीर', 'राणा कुम्भा' और 'रायमल के पुत्रों की कहानियाँ' संकलित हैं।

पुस्तक की भूमिका में लिखा गया है—'भारतीय विद्यार्थी यूरोप के वीरों

की निरंजरी और ऐतिहासिक कहानियों को पढ़ने का तो सौभाग्य पाते हैं, पर उन्हें भारतीय वीरों की कहानियाँ पढ़ने को नहीं मिलतीं। टॉड ने अपने ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' में राजपूत वीरों की अनेक कहानियाँ लिखी हैं। चूँकि यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिए पढ़ने में कठिन है। अतः सरल और सुबोध अंग्रेजी भाषा में उस ग्रन्थ की कुछ कहानियों को इस पुस्तक में समाविष्ट किया गया है।'

भूमिका के अन्त में लिखा गया है—

Of the Rajput states the most important were Mewar, Marwar, Amber, Bikaner, Jaisalmer, Bundi and Kotah. By common concent, Mewar stood foremost amongst them and was regarded as their leader. Tod's 'Annals and Antiquities of Rajasthan' gives the history of the important Rajput states from the earliest times down to the period when they were linked through treaties with Great Britain. The present selection however consists only of a string of narratives from the annals of Mewar, once the glory of Rajasthan'. (Tales of Rajput Chivalry, Page 18)

हिन्दी-राजस्थानी भाषा में राजस्थान पर कहानियाँ

यह हम देख चुके हैं कि टाड के 'राजस्थान' का प्रभाव पहले बंगला-साहित्य पर पड़ा और तदन्तर हिन्दी और राजस्थानी में इसका प्रभाव देखा जा सकता है। अब हम हिन्दी-राजस्थानी के कथाकारों द्वारा 'राजस्थान' के आधार पर रचित कहानियों पर विचार करेंगे।

टॉड ने राजस्थान में लम्बी अवधि तक निवास किया था और उसने चारण भाटों की विरुदावली के अतिरिक्त जनश्रुतियाँ सुनी थीं। इन तथ्यों के आधार पर उसने अपने प्रसिद्ध 'राजस्थान' ग्रन्थ का निर्माण किया। यहाँ हम पहले कुछ प्राचीन कहानियों का उल्लेख कर इस तथ्य की पुष्टि करना चाहेंगे।

विक्रम सम्वत २०१७ में श्री भंवरलाल नाहटा के सम्पादन में 'हम्मीरायण' काव्य पुस्तक का प्रकाशन हुआ। राजस्थान के इतिहास में हम्मीर का बड़ा प्रभावशाली चरित्र है और इस चरित्र पर बंगला में अनेक कहानियाँ लिखी गईं। 'हम्मीरायण' काव्य-पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखी है। यह पुस्तक सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, बीकानेर से प्रकाशित हुई है। वीरवर चौहान हम्मीर इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, जिनके हठ के सम्बन्ध में कहा गया है— 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार।' राजस्थान के इस वीर के सम्बन्ध में जैनाचार्य जयचन्द सूरी ने 'हम्मीर' महाकाव्य की रचना की थी। डिंगल में 'हम्मीर रासो' काव्य प्रसिद्ध है। इसका उल्लेख हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में सभी इतिहासकारों ने किया है। इसी प्रकार 'प्राकृत पैंगलम्' में हम्मीर सम्बन्धी फुटकर रचनाएँ एवं मैथिल कोकिल कवि विद्यापति की पुस्तक 'पुरुष परीक्षा' में भी हम्मीर का वृतान्त है। विक्रम सम्वत १६३६ में व्यास भांडा ने 'हम्मीरायण' काव्य की रचना पुरानी राजस्थानी में की थी। इसमें ३२६ छन्द हैं। 'हम्मीरायण' की चौपाई का नमूना यहाँ प्रस्तुत है—

> कासिपराय तणउ पुत्र भाण, श्री सूरिज प्रणमउँ सुविहाण,
> हम्मीरायण अति सुरसाल, 'भांड' गायो चरिय सुविसाल, (४)
> राय हमीर तणी चउपई, सांभलिज्यो एक मनह थई,
> रणथंभवरि जे विग्रह हुवा, राय चहुयाण तहाँ झूझिया, (५)

'प्राकृत पैंगलम्' में हम्मीर सम्बन्धी कई पद मिलते हैं, उनमें से एक यहाँ हम

प्रस्तुत करते हैं—

मुंचहि सुन्दरि पाअं अप्पहि हसिऊण सुमुहि खग्गं मे।
कप्पिअ मेच्छशरीर पच्छई वअणाइ तुम्ह धुअ हम्मीरो ॥
(प्राकृत पैंगलम्, पद्य सं० ७१)

अपभ्रंश के गाहिणी छन्द में यह पद लिखा गया है, जिसका अर्थ है कि हे सुन्दरी, पाँव छोड़ दो, हे सुमुखी हँस कर मेरे लिए खड्ग याने तलवार दो। म्लेच्छों के शरीर को काटकर हम्मीर निःसन्देह तुम्हारे सुन्दर मुखड़े का दर्शन करेगा।

हम्मीर रणथम्भौर का राजा था। उसने उल्लू खाँ के दो विद्रोही सरदारों (महिमा शाही और मीर गमरू) को शरण दी थी। इससे उल्लू खाँ क्रोधित हो गया। उसने बदला लेना चाहा। पर हम्मीर ने पहले ही उसे मार भगाया। अलाउद्दीन को जब यह सूचना मिली तो उसने सेना लेकर रणथम्भोर को आ घेरा। उसने कहला भेजा कि वह राजकुमारी देवलदे, धारू और बीस वेश्याओं (नर्तकियों), अनेक गढ़ों और और हाथियों को बादशाह की नजर करे। साथ ही उसने कहला भेजा कि शरण में आये मीर भाइयों को भी बादशाह के सुपुर्द कर दे। राणा हम्मीर ने शरणागत की रक्षा में अलाउद्दीन से युद्ध किया।

अलाउद्दीन और हम्मीर के बीच हुए युद्ध और वीर रमणियों द्वारा किए गए जौहर का वर्णन कवि विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा' संस्कृत पुस्तक में इस प्रकार किया है—

मा जीवन्तु स्त्रियोऽनाथा, वृक्षेण च बिना लताः
साध्वीनां जगतिप्राणाः पतिप्राणानुगामिनः ॥ ३ ॥

जब हम्मीर ने युद्ध के पूर्व अन्तःपुर की स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाने का हुक्म दिया तो वीर रमणियों ने उत्तर दिया—"स्वामिन, हमारे स्वर्ग यात्रा महोत्सव में आप बाधा क्यों डालना चाहते हैं? अपने प्राणपति के बिना हम वहाँ कैसे रह सकती हैं? क्योंकि इस संसार में वृक्षों के बिना लतायें और पति के बिना स्त्रीगण कैसे जियें? पतिव्रताओं के प्राण तो पति के अनुगामी होते हैं।

इस प्रकार शरणागत की रक्षा में युद्ध कर हम्मीर वीरगति को प्राप्त हुए और वीर बालाओं ने जौहर किया।

विद्यापति ने अवहट्ट (अपभ्रंश), संस्कृत और देशज भाषा (मैथिली) में रचनाएँ की थीं। 'कीर्ति पताका' और 'कीर्तिलता' पुस्तकें अवहट्ठ भाषा में हैं—जो

'विद्यापति पदावली' मैथिली भाषा में है। बंगला के इतिहासकारों ने इसे 'ब्रजबुली' कहा है। 'पुरुष परीक्षा' संस्कृत में लिखी गई है, हम्मीर के युद्ध के बारे में विद्यापति ने लिखा है—

'ततः प्रभाते युद्धे वर्तमाने हम्मीरदेव स्तुरगारूढ़ः कृत सन्नाहो निज सुभट सार्थ सहितः पराक्रमं कुर्वाणो दुर्गान्निस्सृत्य खंगधाराप्रहारैर्विपक्षवाजिनः पातयन् कुन्जरान् घातयन् रथान् निपातयन् कबंधान् नर्तयन् रुधिरधारा प्रवाहेणमेदिनी मलंकुर्वन शरशकलित सर्वांगस्तुरगपृष्ठे त्यक्तप्राणः सन्मुखः संग्रामभूमौ निपपात् सूर्यमण्डल भेदीच बभूव।' (पुरुष परीक्षा—विद्यापति)।

तब प्रातः काल युद्ध शुरू होने पर अश्वारोही हम्मीर अपनी सेना सहित वीरतापूर्वक किले से निकल शत्रुओं पर टूट पड़ा। घोड़ों को रौंदता हुआ, हाथियों को मारता हुआ, रथों को तोड़ता हुआ तथा कबन्धों को नचाता हुआ एवं धरती पर खून की नदी बहाता हुआ हम्मीर युद्ध में घोड़े की पीठ पर ही वीरगति को पा सूर्यलोक गया।

राजस्थानी कवि मेघराज मुकुल ने भी १९४६ ई० में 'हमीर हठ' कविता की रचना की। 'हम्मीर हट' कविता मुकुलजी के 'उमंग' काव्य में है। जब अलाउद्दीन ने राणा की पुत्री देवलदे की मांग की तो उस वीरांगना ने कहा—

जद बेटी हम्मीरदेव री आगे आई,
देख आबरू पर विपदा, मन में अकुलाई ॥ ('उमंग' काव्य)

उस वीरबाला ने सतीत्व रक्षा के लिए जौहरव्रत का पालन किया। अग्नि में प्रवेश के पूर्व उसका कथन द्रष्टव्य है—

बोली, मैं हम्मीर-सुता जाणूं हूं मरणो।
जाणू हूँ अपणे सत-बल ने ऊँचो करणों ॥
म्हैने आबरू म्हारी धरा रो प्यारी।
मरणै नै मंगल जाणै, वा कदै न हारी ॥ ('उमंग' काव्य)

हिन्दी में रुद्रनारायण द्वारा लिखित 'आदर्श भूमि अथवा चित्तौर' कहानी-संग्रह सर्वाधिक चर्चित पुस्तक है। इसका प्रकाशन १९२५ ई० में इण्डियन प्रेस, प्रयाग से हुआ था। टॉड के 'राजस्थान' से पुस्तक की सामग्री एकत्र की गई है। लेखिका ने भूमिका में लिखा है—'प्यारे पाठक! संसार में वही मनुष्य धन्य है जो अपनी मातृभूमि की उचित सेवा करता है। भारतवर्ष के इतिहास में जो गौरव चित्तौड़ को प्राप्त है वह कदाचित इस नये युग में अन्य किसी स्थान को नहीं

मिल सकता। भारतीय इतिहास में चित्तौड़ की वही प्रतिष्ठा है जो यूनान के इतिहास में 'थरमापोली' को है। अन्तर केवल इतना ही है कि थरमापोली पर तो स्पार्टा के लोग एक ही बार मरे-कटे किन्तु चित्तौड़ पर भारतवर्ष के राजपूत मर-मर कर जीते रहे।....'

लेखक ने आगे लिखा है—

'यों तो चित्तौड़ के इतिहास में भी तीन साके विख्यात हैं जैसे कि पानीपत की तीन लड़ाइयाँ, किन्तु इन तीन के अतिरिक्त और भी कई लड़ाइयाँ चित्तौड़ में हुई हैं। पानीपत की तीनों लड़ाइयों में हिन्दुओं को ही पराजित होना पड़ा, परन्तु चित्तौड़ में जय-दुन्दुभी हिन्दुओं की ही अधिक बजी है। जो हो, भारतवर्ष ने इस अधःपतन के समय में भी चित्तौड़ के द्वारा अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के प्रति कई बार राजपूतों का बलिदान किया है। कई बार नारियों ने हाथ में नंगी तलवार लेकर शत्रुओं को परास्त किया है और चित्तौड़ के किले की इंच-इंच भर भूमि वीर राजपूतों के शोणित से सिंच चुकी हैं। ओह! किले के भीतर चलते-चलते हृदय कांपने लगता है कि कहीं किसी वीर के रक्त पर हमारा पैर न पड़ जाय। वास्तव में हिन्दुओं के नैतिक इतिहास में चित्तौड़ का स्थान ऊँचा है।'

'आदर्श भूमि अथवा चित्तौड़' को कहानी-संग्रह न कह कर इतिहास पुस्तक भी कहा जा सकता है जिसमें गुहिलों की वंश परम्परा से लेकर मेवाड़ के अंग्रेजी राज्य में अन्तर्मुक्त होने तक का इतिवृत्त है। इसमें गुहिल, बप्पा रावल, महारानी पद्मिनी, राणा हम्मीर, राणा कुम्भ, राणा संग्राम सिंह, हल्दीघाटी की लड़ाई आदि का रोचक वर्णन है।

आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'दुखवा मैं कासे कहूँ' कहानी-संग्रह राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। आचार्य चतुरसेन ने १९०६ ई० से लेखन कार्य आरम्भ किया था और जीवन पर्यन्त लिखते रहे। आपने आधी सदी के दीर्घकाल में लगभग चार सौ कहानियाँ लिखीं, जिनमें अधिकांश अपने कला-वैशिष्ट्य के कारण सुविख्यात हो गईं। ऐतिहासिक कहानीकारों में हिन्दी-साहित्य में आपका प्रमुख स्थान है। शैली की दृष्टि से भी आपका नाम हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में आदर से लिया जाता है। आचार्य चतुरसेन की कहानियों को साधारणतया निम्न विषयानुसार

वर्गीकृत किया जाता है—मुगल, बौद्ध, ऐतिहासिक, राजपूती, सामाजिक, समस्या-प्रधान, राजनीतिक, वीरता-प्रधान, भाव-प्रधान, प्रेम-प्रधान, कौतुक-युक्त तथा पारिवारिक।

'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' सम्भवतः आचार्य चतुरसेन की सबसे अधिक प्राचीन कहानी है, जो सन् २० या २१ के लगभग लिखी गई थी। उन दिनों वे चिकित्सक के रूप में किसी रियासत में एक राजकुमारी की दवा-दारू करने गए थे। वहाँ उन्होंने राजकुमारी का रूप-वैभव और उसके शरीर पर लाखों रुपए मूल्य के हीरे-मोती देखे और राजकुमारी की मानसिक स्थिति का अध्ययन किया। शायद इसी से प्रभावित होकर उन्होंने इस कहानी की रचना कर डाली। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' कहानी सर्वप्रथम हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'सुधा' में प्रकाशित हुई थी। 'दुखवा मैं कासे कहूँ' कहानी-संग्रह मे २६ कहानियाँ हैं।

'नूरजहाँ का कौशल' कहानी में सम्राज्ञी नूरजहाँ के प्रेम के एक अछूते भाव को दिखाया गया है। 'शराबी की बात' कहानी मे सम्राट जहाँगीर के जीवन की एक अलमस्त घटना पर प्रकाश डाला गया है। 'हल्दीघाटी' कहानी मे राणा प्रताप और उनके भाई शक्ति सिंह के भ्रातृ-प्रेम को दर्शाया गया है। चित्तौड की अद्वितीय सुन्दरी रानी पद्मिनी ने अपनी आन निभाने के लिए अपनी चौदह सहस्र क्षत्राणियों के साथ चितारोहण किया। उसके रूप के लोभी क्रूर सुल्तान अलाउद्दीन ने रक्तरंजित तलवार लेकर जब रगमहल में प्रवेश किया तो उसे राजपूतनी की राख ही मिली थी। 'राजपूतनी की राख' कहानी मे आचार्य चतुरसेन ने उसी घटना की हृदयस्पर्शी रूपरेखा चित्रित की है। 'भाट का वचन' कहानी एक आदर्श रोमांचकारी गाथा है जो गुजरात के प्रसिद्ध सोलंकी राजा कुमारपाल से सम्बन्धित है। इसमे सामन्तशाही का एक पहलू दिखाया गया है। यह एक भाट के ओजपूर्ण उत्सर्ग की कहानी है। 'लात की आग' कहानी मे राजपूतों की मनोवृत्ति पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है।

'रघुपति सिंह' कहानी मे महाराणा प्रताप के एक वीर राजपूत रघुपति सिंह की देशभक्ति का चित्रण है। राणा प्रताप ने अपने त्याग-बलिदान से अनेक वीरों को स्वदेश पर मर-मिटने की शिक्षा दी थी और 'रघुपति सिंह' ऐसे ही वीरों मे से एक था। 'वीर विजय' कहानी में शेर खाँ (मुकुन्द दास) के साहस की घटना का वर्णन है। मुकुन्ददास ने औरंगजेब को नाकों चने चबवाए, युद्ध में भी और बातों में भी। एक बार औरंगजेब ने उसे भूखे शेर से निहत्थे लड़ने के लिए ललकारा। परन्तु मुकुन्ददास से डर कर शेर एक ओर बैठ गया। उसी वीरवर की अनुपम वीरता की झलक 'वीर विजय' कहानी में है। इस कहानी के कथ्य पर हमने पुस्तक के प्रथम खण्ड में रवीन्द्रनाथ की 'मानी' कविता के प्रसंग में पृ० २२६ पर विस्तार से चर्चा की है।

'मन्दिर का रखवाला' कहानी में ओरछा के एक मन्दिर को औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति से बचाने की दास्तान है। आलमगीर (औरंगजेब) यद्यपि क्रूर था परन्तु उसकी पुत्रियाँ सहृदय थीं। शाहजादी बदरुन्निसा ओरछा युवराज से प्रेम करती थी। उसी करुण भावावेश में उसने अपने पिता के सिपहसालार रणदूलह खाँ द्वारा ओरछा के एक मन्दिर को टूटने से बचाया था।

'राजपूत बच्चे' (कहानी-संग्रह) के लेखक चतुरसेन हैं। इस कहानी-संग्रह का प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से १९८३ ई० में हुआ है। इसमें राजस्थान के राजपूत वीर बच्चों की कहानियाँ हैं, जिनमें मुख्य हैं—'हठी हम्मीर', 'मेढ़ले का सरदार', 'जैसलमेर की राजकुमारी', कुम्भा की तलवार' आदि कहानियाँ।

'राजपूत नारियाँ' (कहानी-संग्रह) के रचनाकार भी आचार्य चतुरसेन हैं। इस कहानी-संग्रह का प्रकाशन प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से १९८२ ई० मे हुआ है। राजपूत बच्चों की भाँति इन कहानियों में राजस्थान की वीर नारियों की गाथाएँ हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं 'पतिव्रत धर्म। इस कहानी में मारवाड़ के राजा यशवन्त सिंह की वीर पत्नी की कहानी है। 'राजपूतनी की राख' कहानी मे पद्मिनी के जौहर की कथा है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का 'कहानी खत्म हो गई' कहानी-संग्रह का प्रकाशन दिल्ली से हुआ। इस संग्रह मे कई ऐतिहासिक कहानियाँ हैं—जैसे 'सिंहगढ़ विजय', जिसमें वीर शिवाजी और उनके सहयोगी तानाजी की वीरता का वर्णन है। 'शोरा भी' कहानी में एक वृद्ध भील सरदार की वीरता का चित्रण है। औरंगजेब की सेना ने जब मेवाड़ पर आक्रमण किया तो मुगल सेना मेवाड़ के एक गाँव मे पहुँची। उस समय गाँव मे केवल एक भील उपस्थित था, उसी ने मुगल सेना से मोर्चा लिया और अपने प्राणो की आहुति दी। उस वीर की स्मृति में आज भी राजस्थान की भील बालाएँ गीत गाती हैं।

ऐतिहासिक कहानी-संग्रह

१९२२ ई० चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक कहानी संग्रह' प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में भारतवर्ष के इतिहास से सोलह घटनाओं को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं। पुस्तक लिखने में अर्म का इतिहास,' एम० एल्फिन्स्टन का भारत का इतिहास, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द का भारत का इतिहास, बर्नियर का यात्रा विवरण तथा टॉड के इतिहास से सहायता ली गई है। सोलह कहानियों को दो भागों में यथा पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में विभाजित किया गया है। पूर्वार्द्ध में 'सोमनाथ पर महमूद गजनवी की चढ़ाई',

'हल्दीघाटी' की चढ़ाई', 'शिवाजी और अफजल खाँ', 'दिल्ली से शिवाजी का छुटकारा', 'औरंगजेब और उसके तीन भाई', 'नादिरशाह की हिन्दुस्तान पर चढ़ाई' आदि कहानियाँ हैं। उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी शासनकाल की घटनाओं पर आधारित कहानियाँ हैं।

देश की आन पर

१९४० ई० में 'देश की आन पर' कहानी-पुस्तक लिखी गई। इसके लेखक हैं श्री गणेश पाण्डेय, जिसका प्रकाशन प्रयाग से हुआ। इस कहानी संग्रह में 'पत्थर की छतरी' में वीर दुर्गादास के पुत्र जुझारू सिंह की वीरता का वर्णन है। मुजफ्फर बेग ने मुगल सेना के सेनापति के रूप में एक बड़ी सेना लेकर मारवाड़ पर आक्रमण किया था। उस समय औरंगजेब की सेना और भीलों का युद्ध हुआ। इस युद्ध में जुझारू सिंह ने अपनी वीरता का परिचय दिया और वीरगति को प्राप्त हुआ। आज भी जोधपुर-दुर्ग के दक्षिण की ओर लूनी नदी पर जुझारू सिंह की पत्थर की छतरी उसकी वीरता की यशोगाथा गाती है।

राजपूतनियाँ

१९३८ ई० में श्री जगदीश प्रसाद माथुर 'दीपक' का कहानी-संग्रह 'राजपूतनियाँ' का प्रकाशन दिल्ली से हुआ। इस कथा-संग्रह में आन पर मर मिटनेवाली रजपूती महिलाओं की आदर्श-अनुपम कहानियाँ हैं।

इण्डियन प्रेस, प्रयाग से कृष्णा प्यारेलाल का 'भारतीय ऐतिहासिक कहानियाँ' संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें पृथ्वीराज, अकबर, बाबर, प्रताप, शिवाजी आदि पर रोचक कहानियाँ हैं। राजस्थानी भाषा में लिखित 'राजस्थानी बातां' कहानी-संग्रह का प्रकाशन श्री सूर्यकरण पारीक के सम्पादन में हुआ। यह पुस्तक सेठ घनश्यामदास बिड़ला को समर्पित की गई है। इस कहानी-संग्रह का प्रकाशन १९३४ ई० में नवयुग साहित्य मन्दिर, दिल्ली से हुआ। १९५६ ई० में श्री आनन्द कुमार द्वारा रचित 'राजस्थान की वीरगाथाएँ' कहानी-संग्रह का प्रकाशन दिल्ली से राजपाल एण्ड सन्स द्वारा हुआ। इसमें 'राणा संग्राम सिंह', 'पृथ्वीराज', 'वीरबाला तारा', 'चित्तौड़ का दूसरा साका', 'प्रतापी राणा प्रताप', 'जैसलमेर का साका', 'चण्ड की भीष्म-प्रतिज्ञा', 'कोटा का स्वाधीनता संग्राम', 'बूँदी की रानी की खून की होली' आदि रोचक और चमत्कारिक कहानियाँ हैं। 'खून की होली' के कथानक पर विश्व कवि रवीन्द्र की 'होरिखेला' कविता है, जिसका वर्णन हमने प्रथम खण्ड के काव्य-अध्याय में किया है। १९५७ ई० में श्री वृन्दावनलाल वर्मा का कहानी-संग्रह

'ऐतिहासिक कहानियाँ' का प्रकाशन मयूर प्रकाशन, झाँसी से हुआ। १९६६ ई० में 'जौहर के अक्षर' कहानी-संग्रह का प्रकाशन दिल्ली के नेशनल पब्लिशिंग हाउस से हुआ। इस कहानी-संग्रह की लेखिका हैं श्रीमती संतोष 'शैलजा'। कहानी-संग्रह में 'क्रान्तिकारिणी', 'नन्हीं बलिदानी', 'स्वतंत्रता की तड़प', 'मातृभूमि का ऋण', 'जौहर के अक्षर' (पद्मिनी पर), 'प्रण की रक्षा' (राणा प्रताप पर), 'मीनाबाजार' (पृथ्वीराज की पत्नी पर), 'डोली की लाज' (रूपनगर की राजकुमारी पर), 'दूसरो न कोय' (मीरा पर) आदि कहानियाँ हैं।

जहूरबख्श

साहित्यकार जहूरबख्श द्वारा विरचित 'आर्य-महिला रत्न' का प्रकाशन कलकत्ता से सं० १९८१ में हुआ। इस पुस्तक की भूमिका पत्रकार श्री ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने लिखी है—'अध्यापक जहूरबख्श ने थोड़े दिन पहले मुस्लिम महिला रत्नों की जीवनियाँ लिखी थीं। इस बार उन्होंने आर्य-महिलाओं के जीवन-चरित्र पर लेखनी चलाई है। मुसलमान होकर भी आपने जिस निष्पक्षता से हिन्दू देवियों के चरित्र लिखे हैं, उसके लिए आप पक्षपात रहित व्यक्ति के समान सधन्यवाद के पात्र हैं।'

'आर्य-महिला रत्न' में १३ आर्य महिलाओं की कथा है। इनमें मुख्य हैं—'मीनल देवी' (दक्षिण भारत के चन्द्रपुर-नरेश जयकेशी की कन्या), 'वीरमती' (देवगिरी के सेनापति की पुत्री, जिसने अलाउद्दीन खिलजी से युद्ध किया था), 'विद्युल्लता' यह वीर रमणी चित्तौड़ के एक वीर सरदार की कन्या थी, जिसने अलाउद्दीन से युद्ध किया था, 'जीजाबाई, (शिवाजी की वीर माता), 'महारानी प्रभावती' यह रूपनगर की राजकुमारी थी जिसका मेवाड़ के राणा राज सिंह से विवाह हुआ था और औरंगजेब से युद्ध हुआ था। 'हाड़ारानी' मेवाड़ के वीर सरदार चूड़ावत की नवोढ़ा, जिसने अपने वीर पति को युद्ध में भेजने के लिए अपना मस्तक काट कर दे दिया था। इस प्रकार जहूरबख्श ने सभी कहानियों में आर्य्य ललनाओं की वीरता दिखाई है।

सं० १९८६ में कलकत्ता से श्री बैजनाथ केडिया द्वारा लिखित कहानी-संग्रह 'अस्फुट कलियाँ' का प्रकाशन हुआ। सं० १९८३ में कलकत्ता से निहालचन्द वर्मा ने पं० रामशंकर त्रिपाठी की पुस्तक 'भारत के महा-पुरुषों' का प्रकाशन किया, जिसमें टॉड के ग्रन्थ के आधार पर बप्पारावल से लेकर राणा राज सिंह तक के वीरों की कहानियाँ हैं।

शिवपूजन सहाय की 'मुण्डमाल' कहानी

पं० नन्ददुलारे बाजपेयी के सम्पादन में प्रयाग से 'हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों' के संकलन का प्रकाशन सम्वत १९८७ में हुआ। इस संकलन की १३ कहानियों में प्रसिद्ध साहित्यकार श्री शिवपूजन सहाय की सुप्रसिद्ध कहानी 'मुण्डमाल' है, जो हाड़ारानी के त्याग और वीरता का अद्‌भुत रोमांचकारी दृष्टान्त है। जब रूपनगर की राजकुमारी चारुमती (चंचल कुमारी) से जबरन विवाह करने के लिए औरंगजेब की सेना आई तो मेवाड़ के वीर राणा राजसिंह ने उस अबला के सतीत्व की रक्षा की और विवाह किया। इस विवाह को सम्पन्न कराने में अर्थात औरंगजेब की सेना को रास्ते में रोकने के लिए सरदार चूडावत ने अपनी वीरता का परिचय दिया। वीर चूड़ावत को युद्ध मे प्रेरणा देने के लिए उसकी नवविवाहिता हाड़ारानी ने अपना सिर काटकर चूड़ावत को वीर-व्रत पालन में सहायता की। इसी आख्यान को लेकर शिवपूजन सहाय ने 'मुण्डमाल' कहानी की रचना की है। यह कहानी हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में अपना स्थान रखती है।

'मुण्डमाल' कहानी इस प्रकार है—'महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूडावतजी आज औरंगजेब का दर्प दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जाने वाले हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी अठारह वर्ष से अधिक नहीं है, तथापि जंगी जोश के मारे वे इतने फूल गए हैं कि कवच मे नहीं अंटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिए वे ज्यों ही हाथ में लगाम थामकर उचकना चाहते हैं, त्यों ही अनायास उनकी दृष्टि सामने वाले महल की झंझरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवोढ़ा पत्नी खड़ी हैं, जा पड़ती है।

हाड़ा वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका ब्याह हुए दो-चार दिनों से अधिक नहीं हुआ होगा। अभी नवोढ़ा रानी के हाथ का कंकण हाथ में ही शोभा बढ़ा रहा है। अभी कजरारी आँखें अपने ही रंग में रंगी हुई हैं। पीत-पुनीत चुनरी भी अभी धूमिल नहीं हो पाई है। सोहाग का सिन्दूर दुहराया भी नहीं गया है। फूलों की सेज को छोड़ कर और कहीं गहनों की झनकार भी नहीं सुन पड़ी है। अभी पायल की रुनझुन ने महल के एक कोने में ही बीन बजायी है। अभी घने पल्लवों की आड़ में ही कोयल कुहकती है। अभी कमल सरीखे कोमल हाथ पूजनीय चरणों पर चन्दन भर ही चढ़ा पाये हैं। अभी संकोच के सुनहरे सींकड़ में बन्धे हुए नेत्र लाज ही के लोभ में पड़े हुए हैं। अभी चाँद बादलों ही के अन्दर छिपा हुआ था, किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की उदित-विदित शोभा देखने के लिए घन-पटल में से अभी-अभी प्रकट हुआ है। ('हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ' पृ० २०२-२०३)

यह है मुण्डमाल के कहानीकार की वर्णन-शैली और शब्दों का चमत्कार।

शिवपूजन सहाय ने इस कहानी को हृदय की गहराई में उतर कर लिखा है, जिसके एक-एक शब्द में ताजगी और स्निग्धता है।

चूड़ावत सरदार अपनी नवोढ़ा को देखते ही सहम जाते हैं। हृदय का उत्साह मन्द पड़ जाता है। वे रानी से मिलने चन्द्र-भवन में जाते हैं। पति को खिन्न देखकर हृदयहारिणी हाड़ा रानी कहती है—'प्राणनाथ! मन मलोन क्यों है?'''जबकि सभी सामन्त-सूरमा संग्राम के लिए सज-धज कर आप ही की आशा में अंटके हुए हैं, तब क्या कारण है कि आप व्यर्थ व्याकुल हो उठे हैं? उदयपुर के गाजे बाजे के तुमुल शब्द से दिग्दिगंत डोल रहा है। वीरों के हुँकार से कायरों के कलेजे भी कड़े हो रहे हैं। भला ऐसे अवसर पर आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है? लड़ाई की ललकार सुनकर लंगड़े-लूलों को भी लड़ने-भिड़ने की लालसा लग जाती है, फिर आप तो क्षात्र-तेज से भरे हुए क्षत्रिय हैं। प्राण-नाथ! शूरों को शिथिलता नहीं शोभती। क्षत्रिय का छोटा-मोटा छोकरा भी क्षण भर में शत्रुओं को छील-छाल देता है, परन्तु आप प्रसिद्ध परा-क्रमी होकर क्यों पस्त पड़ गए हैं?' (वही, पृ० २०३-२०४)

हाड़ा रानी के इस कथन में राजस्थान की वीर क्षत्राणी की शूरता झलकती है और लेखक की भाषा में काव्य का लाटानुप्रास। इस अलंकारपूर्ण शैली का हिन्दी कहानियों में अभाव है। शिवपूजनजी की कहानी अपनी सानी नहीं रखती। चूड़ावत सरदार उस कोमलांगी में चपला की सी चमक देख कर चकित हो गए। बोले—'प्राणप्यारी! रूपनगर के राठौर वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात्कार से ब्याहने आ रहा है। इसके पहले ही वह राज-कन्या हमारे माननीय राणा बहादुर को वर चुकी है। कल पौ फटते ही राणाजी रूपनगर की राह लेंगे। हम बीच में ही बादशाह की राह रोकने के लिए रणयात्रा कर रहे हैं। शूर-सामंतों की सैकड़ों सजीली सेनाएँ साथ में हैं सही, परन्तु हम लड़ाई से अपने लौटने का लक्षण नहीं देख रहे हैं। इस बार घनघोर युद्ध होगा। हमलोग जी-जान से लड़ेंगे। हजारों हमले हड़प जायेंगे। समुद्र सी सेना भी मथ डालेंगे। हिम्मत हरगिज न हारेंगे।'''हिम्मत तो हजार गुनी है, मगर मुगलों की मुठभेड़ में महज मुट्ठी भर मेवाड़ी वीर क्या कर सकेंगे? तो भी हमारे ढलैत, कमनैत और बानैत ढाढ़स बांध कर डट जायेंगे। हम

सत्य की रक्षा के लिए पुर्जे-पुर्जे कट जायेंगे। प्राणेश्वरी! किन्तु हमको केवल तुम्हारी ही चिन्ता बेढब सता रही है।....' (वही, पृ० २०६-२०७)

चूड़ावत सरदार में युद्ध की उमंग थी, किन्तु अपनी नवोढ़ा पत्नी की चिन्ता से वे उदास थे। पति को उत्साह से युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए हाड़ा रानी ने कहा—

'प्राणनाथ! सत्य और न्याय को रक्षा के लिए, लड़ने जाने के समय, सहज-सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना को मन में घर करने देना आप के समान प्रतापी क्षत्रिय-कुमार का काम नहीं है।....मेरा मोह छोड़ दीजिए। भारत की महिलाएँ स्वार्थ के लिए सत्य का संहार करना नहीं चाहतीं। आर्य्य-महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी सम्पत्तियों से बढ़कर 'सतीत्व ही अमूल्य-धन है', जिस दिन मेरे तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुट जायगा, उसी दिन मेरा जातीय गौरव अरावली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिरकर चकना-चूर हो जायगा। यदि नव-विवाहिता उर्मिला देवी ने वीर-शिरोमणि लक्ष्मण को सांसारिक सुखोपभोग के लिए कर्त्तव्य-पालन से विमुख कर दिया होता, तो क्या कभी लखनलाल को अक्षय यश लूटने का अवसर मिलता? वीर-वधूटो उत्तरा देवी ने यदि अभिमन्यु को भोग-विलास के भयंकर बन्धन में जकड़ दिया होता, तो क्या वे वीर-दुर्लभ गति को पाकर भारतीय क्षत्रिय-नन्दनों में अग्रगण्य होते?....सती-शिरोमणि सीता देवी की सतीत्व-रक्षा के लिए जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गंवाई जरूर, लेकिन उसने जो कीर्ति कमाई और बधाई पाई, सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई। वीरों का यह रक्त-मांस का शरीर अमर नहीं होता है, बल्कि उनका उज्ज्वल-यशोरूपी शरीर ही अमर होता है।....सतीत्व के अस्तित्व के लिए रणभूमि में ब्रजमंडल की सी होली मचाने वाली खड्ग-देवी ही उनकी सती सहगामिनी होती है। आप सच्चे राजपूत वीर हैं, इसलिए सोत्साह जाइए और जाकर एकाग्र मन से अपना कर्त्तव्य पालन कीजिए। मैं भी यदि सच्ची राजपूत-कन्या हूँगी, तो शीघ्र ही आपसे स्वर्ग में जा मिलूँगी....।' (वही, पृ० २०८)

ऐसी वीर नारी के वचनों से किसे गर्व न होगा ? यह ही है भारत की वीर-भुजा राजस्थान की वीरांगनाओं की वीरोचित भाषा। वे हँसते-हँसते पति और पुत्र को युद्ध-भूमि में भेजती हैं, देश की स्वतन्त्रता के लिए नारी की मर्यादा के लिए। हमने इसीलिए शिवपूजन जी की कहानी को यहां विस्तार से उद्धृत करने की चेष्टा की है।

चूड़ावतजी का चित्त हाड़ा रानी के हृदयरूपी हीरे को परख कर पुलकित हो उठा। उन्होंने दूने उत्साह से युद्ध के लिए प्रस्थान किया। घोड़े को ऐड़ लगाते ही चूड़ावत के हृदय पटल पर हाड़ा रानी की छवि पुनः उभरती है, उधर हाड़ा रानी मन ही मन सोचती है अगर पति का मन मुझ में ही लगा रहा तो विजय लक्ष्मी किसी प्रकार भी उनके गले में जयमाला नहीं डालेगी। इसी विचार तरंग में रानी डूबी हुई थी कि चूड़ावत सरदार का एक प्रिय सेवक आकर बोला—'चूड़ावतजी चिह्न चाहते हैं—दृढ़ आशा और अटल विश्वास का।'

हाड़ा रानी ने सेवक को दाहिने हाथ से अपना सिर काटकर दे दिया। सेवक 'दृढ़ आशा और अटल विश्वास का चिह्न' (सैनाणी) लेकर चूड़ावत के पास पहुँचा। चूड़ावत अपूर्व आनन्द में मस्त होकर ऐसे फूल गये कि कवच की कड़ियाँ धड़ाधड़ कड़क उठीं।

सुगन्धों से सींचे हुए मुलायम बालों के गुच्छों को दो हिस्सों में चीरकर चूड़ावतजी ने उस सौभाग्य-सिन्दूर से भरे हुए सुन्दर शीश को गले में लटका लिया। मालूम हुआ मानों स्वयं भगवान रुद्रदेव भीषण भेष धारण कर शत्रु का नाश करने जा रहे हैं। सब को भ्रम हो गया कि गले में काले नाग लिपटे हैं या लम्बी-लम्बी सटकार लटें हैं, अटारियों से, आकाश से एक स्वर फूट उठा—

'धन्य मुण्डमाल !!!' (वही, पृ० २१०)

सचमुच श्री शिवपूजन सहाय की यह अमर कृति 'मुण्डमाल' विश्व की अमर कथाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इसमें राजस्थान की जिस वीर क्षत्राणी और वीर सरदार का वर्णन है, वह विश्व-साहित्य में विरल है। ऐसे ही वीरों और वीरांगनाओं पर राजस्थान को ही नहीं सम्पूर्ण भारत को गर्व और गुमान है।

हमने 'बंकिम का 'राज सिंह' उपन्यास' के प्रसंग में पृ० ३५५ से ३६० तक रूपनगर की राजकुमारी की सतीत्व रक्षा में सरदार चूड़ावत और हाड़ा रानी के त्याग बलिदान को विस्तार से उल्लिखित किया है। इस कहानी को 'मेवाड़ का इतिहास' ग्रन्थ के रचयिता कुमार हनुवंत सिंह तथा पूर्ण सिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है और उसी को टॉड के हिन्दी अनुवाद 'टॉड कृत राजस्थान का इतिहास' में उद्धृत किया गया है। श्री शिवपूजन सहाय की

'मुण्डमाल' कहानी और 'मेवाड़ का इतिहास' की कहानी में भाषा और भाव की सादृश्यता है। चूँकि 'मेवाड़ का इतिहास' में वर्णित कहानी श्री सहाय की 'मुण्डमाल' कहानी से पूर्व की कहानी है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य शिवपूजन सहाय ने इस कहानी से 'मुण्डमाल' की रचना-प्रक्रिया में प्रेरणा ली थी। चूँकि राजस्थान के कथाकारों और साहित्यकारों को हिन्दी-साहित्य में वह स्थान नहीं मिल सका, जो उन्हें मिलना चाहिए था। 'मुण्डमाल' कहानो के साथ शिवपूजन बाबू हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हो गए। हमें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पैनी दृष्टि पर आश्चर्य होता है कि उनके 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'मेवाड़ का इतिहास' की हाड़ा रानो की कहानी पर चर्चा कैसे नहीं हुई। हमने इस पुस्तक (बंगला-साहित्य में राज-स्थान) के प्रथम खण्ड में पृ० ६० पर हिन्दी गद्य के विकास के सन्दर्भ में कविराज श्यामलदास के 'वीर विनोद' से गद्य का उद्धरण देकर आचार्य शुक्ल की चूक पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

कवि दिनकर का 'चित्तौड़ का साका' कहानी-संग्रह

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने बालोपयोगी एक कहानी-पुस्तक 'चित्तौड़ का साका' की रचना की है। पटना के उदयाचल प्रकाशन से १९६४ ई० में इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ, जिसके प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है—'इस छोटा सी पुस्तक को अपने देश के कोमलमति बालकों और बालिकाओं के हाथ में रखने का सुयोग पा कर हम सच्चे हृदय से प्रसन्न हैं। मेवाड़ का स्थान भारतवर्ष में ही नहीं, प्रत्युत, समस्त विश्व के इतिहास में अत्यन्त ऊँचा रहा है और चित्तौड़ तो सम्पूर्ण मेवाड़ के बलिदानों की केन्द्र भूमि ही है।'

प्रस्तुत पुस्तक में चित्तौड़ के तीनों साकों की कहानियों को कवि दिनकर ने बालोपयोगी भाषा में, वरन अत्यन्त ओजस्वी ढंग से प्रस्तुत किया है। चित्तौड़ के तीन साकों के अतिरिक्त इस पुस्तक में हठी हम्मीर, मेवाड़-मुकुट, राणा सांगा, पन्ना धाय का अपूर्व बलिदान और गौरव की अन्तिम शिखा-महाराणा प्रताप पर भी लेखक ने कलम चलाई है और उनके अपूर्व त्याग, बलिदान का बखान किया है। 'चित्तौड़ के पहले साके' कहानी में चित्तौड़ पर अलाउद्दीन के आक्रमण तथा रानी पद्मिनी के जौहर व्रत की कथा है। दूसरे साके में चित्तौड़ पर गुजरात के सुलतान बहादुर शाह के आक्रमण और राणा सांगा की रानी जवाहर बाई और रानी करुणावती (कर्णवती) के

जौहर की कहानी है। तीसरे साके में जयमल और पत्ता की वीरता का वर्णन है।

उल्लेखनीय है कि दिनकरजी ने टॉड के 'राजस्थान' के अंग्रेजी संस्करण से अपनी कहानियों की कथाएँ ली हैं और आपने अंग्रेज टॉड द्वारा नामों और स्थानों को उन्हीं की वर्तनी में तदनुरूप उल्लिखित कर दिया है। दिनकरजी 'संस्कृति के चार अध्याय' के द्वारा इतिहासकारों की कोटि में समझे जाने लगे थे। किन्तु उन्होंने इन कहानियों के इतिहास प्रसिद्ध पात्रों के नामों का टॉड के अनुरूप ही उल्लेख किया है, यह आश्चर्य की बात है। 'चित्तौड़ का पहला साका' में पृष्ठ १ पर लिखा गया है—'तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जब राणा लखुमसी मेवाड़ के राजसिंहासन पर आसीन हुए, तब मेवाड़ अपने पूरे प्रताप के साथ उत्तरी भारत में देदीप्यमान हो रहा था। बप्पा रावल और खुमान तथा राणा समसी की वीरता की कहानियों के बीच, मेवाड़ अपना मस्तक ऊँचा किए हुए, देश भर की प्रतिष्ठा का पात्र हो रहा था और राजे महाराजे इस बात को मानने लगे थे कि हिन्दुओं का सूर्य्य, सचमुच ही, चित्तौड़ के कोट पर बसता है।' असल में टॉड ने राजस्थान के वीरों को अपनी अंग्रेजी भाषा के उच्चारण के कारण लिखा था—

"Lakumsi succeeded his father is S. 1331 (A D 1275), a memorable era in the annals, when Cheetore, the reponsitory of all that was precious yet untouched of the arts of India was stormed by emperor Alla-o-din. (Tod's Rajasthan, Part-I, Page 212)

Samarsi was born in Sambat 1206 Though the domestic annals are not silent on his acts...(Ibid, Page 206)

राजस्थान के इतिहास ग्रन्थों में सभी इतिहासकारों ने 'लखुमसी' न लिखकर 'लक्ष्मण सिंह' और 'समरसी' न लिखकर 'समरसिंह' लिखा है। दिनकरजी पाँचवे दशक में जब कलकत्ता पधारते थे, तो कलकत्ता के वाराणसी घोष स्ट्रीट स्थित जनवाणी प्रेस में ठहरते थे और पं० ज्ञानेन्द्र शर्मा का आतिथ्य ग्रहण करते थे। उनकी गोष्ठी में पं० हजारीलाल शर्मा (सम्पादक-प्रकाशक, दैनिक राष्ट्रदूत, जयपुर), पं० शिवनारायण शर्मा, श्री छेदीलाल गुप्त आदि की गोष्ठी में मैं भी जाया करता था। बाद में दिनकर जी साहू शान्ति प्रसाद जैन के अलीपुर स्थित निवास में ठहरने लगे थे। राजस्थान के लोगों के बीच में अनेक दिनों के सहवास के उपरान्त भी इतिहास की ऐसी भ्रान्ति उनकी रचनाओं में कैसे रह गई, सचमुच विस्मय की बात है। इतना ही नहीं दिनकरजी ने पद्मिनी के पति को भीमसिंह बताया है, जबकि जायसी ने उसे राजा रतनसेन कहा है। यहाँ भी दिनकर जी ने टॉड का ही अनुसरण कर दिया है। देखिए 'चित्तौड़ का साका' के पृष्ठ २ पर—'जब राणा लखुमसी सिंहासन पर आरूढ़ हुए, तब उनकी अवस्था छोटी थी। अतएव, राज्य के संचालन और उसकी रक्षा का भार

उनके चाचा भीमसिंह पर था। भीमसिंह का ब्याह चौहान-वंश की राजकुमारी पद्मिनी के साथ हुआ था, जो अपने समय की अद्वितीय सुन्दरी समझी जाती थी।'

"Bheemsi was the uncle of the young prince (Lakumsi), and protector during his minority He had sxpoused the daughter of Hamir Sank (Chohan) of Ceylon, the cause of woes unnumbered to the Sesodias, Her name was Pudmani, a title bestowed only on the superlatively fair, and transmitted with renown to posterity by tradition and the song of the bard." (Ibid, Page 213).

'गौरव की अन्तिम शिखा—राणा प्रताप' कथा में दिनकरजी ने पृष्ठ ३७ पर स्वतन्त्रता के पुजारी प्रताप पर इन शब्दों में अपने भाव व्यक्त किए हैं—'महाराणा प्रताप का जीवन स्वतंत्रता के एक ऐसे पुजारी का जीवन था, जो राजपाट धन-दौलत, यहाँ तक कि जीवन के साधारण-से-साधारण सुखों की भी बलि देकर अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने में ही जीवन की सार्थकता मानता है।'

इस प्रकार कविवर दिनकर ने 'चित्तौड़ का साका' पुस्तक मे मेवाड़ और राजस्थान के वीरों और वीरांगनाओं की अद्भुत वीरता का अपनी ओजस्वी भाषा मे वर्णन किया है। दिनकरजी की काव्यमयी भाषा ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण है। देश की भावी पीढ़ी को लेखक ने प्रेरणा देने के सत् उद्देश्य से ही इस पुस्तक की कहानियों की रचना की है और वीर चरित्रों का चित्रण किया है। कुल ४४ पृष्ठो की इस छोटी पुस्तक में बड़ी मार्मिक बातें कही गई हैं और तीन-चार सो वर्षो के इतिहास को उरेहा गया है।

प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ

१९६१ ई० में २९ कहानीकारों की ऐतिहासिक कहानियों का एक संकलन 'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' के नाम से दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादक हैं श्रीकृष्ण, श्री मनमोहन सरल एवं श्री अरुण। कहानी-संग्रह में कुल २९ कहानियाँ हैं। इसमें आनन्द प्रकाश जैन की कहानी 'अन्तिम नाग' मुगल सम्राट शाहजहाँ के जीवन की एक घटना पर आधारित है। गोविन्द वल्लभ पंत की कहानी 'राष्ट्रद्रोही का धन' में शिवाजी के औरंगजेब की जेल से भागने की एक रोचक घटना का वर्णन है। कहानी-संग्रह में आचार्य चतुरसेन की प्रसिद्ध कहानी है—'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी'। श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा की कहानी

'कल्याणी' में सगर सिंह के धर्म-परिवर्तन करने वाले पुत्र महावत खाँ और उसकी पत्नी कल्याणी की कहानी है।

'ऐतिहासिक प्रतिनिधि कहानियाँ' कहानी-संग्रह के सम्पादक श्री मनमोहन सरल की कहानी 'अधरों की मदिरा' बाबर के जीवन के एक अछूते प्रसंग को लेकर लिखी गई है। शहंशाह बाबर साकी और शराब का पुजारी था और युद्ध के बाद रंग-रेलियों में डूब जाता था। उसकी साकी थी गुलाब, जो बेहद सुन्दर और हूर-हुस्न की परी थी।

बहिश्त जैसी रंगीनी में डूब कर बाबर एक दिन गुलाब के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए बोला—'गुलाब, अगर तू न होती तो शायद मेरी यह जीत नहीं हो सकती थी। तेरी रफाकत का अहसास मुझे मैदाने-जंग में अजीब सा जोश दिलाता रहा। नीम-बाज आँखें....।' (ऐतिहासिक प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० १२५)

बाबर रंगरेलियाँ मना रहा था और उधर कोई एक लाख रजपूती सेना लेकर राणा सांगा बाबर पर आक्रमण करने के लिए सीकरी की तरफ आ रहा था। यह खबर बाबर को मिली, उसके आनन्द में विघ्न पड़ गया। खानवा के मैदान में राजपूत और मुगल सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। बाबर की तोपों की बिना परवाह किए राजपूत मुगल सेना पर टिड्डी दल की भांति उमड़ पड़े। युद्ध में पराजय के संकेत देख कर बाबर ने शराब से तौबा की और ताउम्र शराब न पीने की कसम खाई। उस समय गुलाब उसके पास ही खड़ी थी। वह भी बाबर को शराब न पीने के लिए कहा करती थी। अगले दिन पुनः घमासान युद्ध हुआ। राणा सांगा तीरों से मुगल सेना पर तीर बरसा रहे थे। वे बाबर को तीर का निशाना बनाने की पूरी चेष्टा में थे। तभी एक सनसनाता तीर आया और बाबर के सामने खड़ी गुलाब के लग गया। वह ढेर हो गई, बाबर बच गया।

मरते हुए गुलाब ने कहा - 'शहंशाह ने जब शराब ही छोड़ दी तब मेरी क्या जरूरत रह गई, लेकिन शहंशाह की जरूरत तो अब और ज्यादा हो गई है। इसलिए इस नाचीज ने बीच में खड़े होकर यह गुस्ताखी की है। माफ करें, जहाँपनाह !'

बाबर की आँखों में सागर उतर आया। (वही, पृ० १३१)

इस संग्रह में 'चट्टान और लहर' कहानी है, जिसके लेखक हैं श्री रतनलाल बंसल। इस कहानी में औरंगजेब के जीवन की उस घटना का वर्णन है, जिसमें उसकी बेटी जेबुन्निसा ने एक ईरानी शेर के मिसरे को पूरा कर औरंगजेब को कविता के प्रति आकर्षित किया था। ऐतिहासिक कहानी लेखक श्री वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी

'माँ के आँसू' में महाराष्ट्र के वीर बाजीराव और उमाबाई के जीवन की एक मार्मिक घटना का वर्णन है।

'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' कहानी-संग्रह की सर्वाधिक सशक्त कहानी है 'केसर का रंग', जिसमें राजपूती शान की गौरव पताका को बड़ी ऊँचाई पर फहराते दिखाया गया है। इस कहानी के रचयिता हैं श्री विश्वदेव शर्मा।

'केसर का रंग' रजपूती वीरता की अनोखी कहानी है। 'केसर' शब्द कहानी में 'श्लेष' अलंकार को अभिव्यक्त करता है। कहानी की केन्द्र-विन्दु भी अनिंद्य सुन्दरी 'केसर' है, जिसको पाने के लिए शेरशाह सूरी ने कालिंजर के किले पर हमला किया था। कालिंजर के महाराज कीरत सिंह की केसर बाई रानी थी। शेरशाह कालिंजर के साथ केसर को भी हथियाना चाहता था।

शेरशाह राजपूतों की वीरता से भली-भांति परिचित था। तभी उसने अपने वजीर ईसा खाँ से कालिंजर पर हमला न करने के इरादे से कहा था—'राजपूत कौम एक ऐसा साज है, ईसा खाँ! जिसे जब भी छेड़ोगे उसमें से मारू राग ही निकलेगा। मारना और मर जाना इनकी मौरुसी आदत है।' (वही, पृ० २३८)

हुआ भी यही राजपूतों ने केसरिया बाना पहन कर शेरशाह की सेना के साथ जीवन-मरण का युद्ध किया और 'केसर' ने अपनी सहेलियों के साथ 'जौहर व्रत' का पालन किया। 'केसर' ने ज्वाला में प्रवेश करने के पूर्व तोप से एक ऐसा गोला दागा, जिसने दुश्मन की बारूद में आग लगा दी और भीषण विस्फोट से आग के शोले भड़क उठे। उस आग में शेरशाह बुरी तरह घायल हो गया और अन्तिम हिचकी लेते हुए बोला—'राजपूत....एक ऐसा साज है, जिसे जब भी छेड़ोगे मारू राग ही निकलेगा....।'

दूसरे दिन जब शाही सेना ने दुर्ग में प्रवेश किया तब भी राख के विशाल ढेर के नीचे केसरिया अंगारे दहक रहे थे। ('केसर का रंग' कहानी, पृ० २४२)

'नमक के लिए' कहानी के लेखक हैं श्री शशिभूषण सिंहल। आपने इस कहानी में औरंगजेब की क्रूरता को उजागर किया है। औरंगजेब ने सल्तनत पाने के लिए अपने पिता शाहजहाँ को कैद किया और भाइयों को मौत के घाट उतारा। शाहजहाँ को कैद करके ही वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने शाही हकीम मुकर्रम को दवा के रूप में शाहजहाँ को जहर पिलाने का हुक्म दिया। मुकर्रम शाहजहाँ की परिचारिका गुल-अनार से प्रेम करता था। उसने 'नमक' का फर्ज अदा करने

के लिए शाहजहाँ को दिया गया जहर खुद पी लिया और नमक का फर्ज अदा कर गया। गुल मुकर्रम के मृत शरीर पर कटे पेड़ की शाखा की तरह टूट कर गिर पड़ी। (वही, पृ० २७५)

श्रीमती सावित्री निगम की कहानी 'गूजरी महल' में ग्वालियर की एक गूजरी के त्याग-बलिदान को बड़ी आत्मीयता से उरेहा गया है। उस प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति ने सच्चे प्रेम के लिए अपने प्राणों को विषपान कर न्यौछावर कर दिया पर ग्वालियर के महाराज मानसिंह के जीवन पर बदनुमा दाग नहीं लगने दिया। इस त्याग की मूर्ति की साक्षी में आज भी ग्वालियर के किले की तलहटी में गर्व से मस्तक उठाये 'गूजरी महल' प्रेम की देवी, त्याग की मूर्ति गूजरी के अनुपम बलिदान की याद दिलाता है।

'दस अंगुलियाँ : एक धागा' कहानी के कथाकार हैं श्री सुरेश भटनागर। आपने इस देश-भक्ति की बेमिसाल कहानी में मराठा युवकों के अजीबोगरीब करतबों को दिखाया है। मराठा देशपाण्डे एक बेहतरीन बुनकर था, जिसने औरंगजेब के हुक्म पर दो लाख लोगों के लिए ईद की नमाज के वास्ते एक शामियाना बनाया था और औरंगजेब की बहन रोशनआरा के लिए एक खूबसूरत लिबास बनाई थी। वह लिबास इतनी महीन थी कि बारह तह करके पहनने पर भी रोशनआरा नंगी दीखती थी। इस पर नाराज होकर औरंगजेब ने देशपाण्डे को फाँसी के तख्ते पर झुला दिया, किन्तु उसका साथी पहले ही रुखसत हो गया। दक्षिण के जंगे-मैदान में औरंगजेब की भेंट देशपाण्डे के साथी से हुई। उसने बादशाह औरंगजेब के प्रश्न के उत्तर में कहा—

'शहंशाह! देशपाण्डे से एक दिन रोशनआरा ने पूछा था कि धागा टूट जाता है किन्तु लच्छी कहाँ टूटती है। सो यह बात है कि देशपाण्डे मारा गया, किन्तु देश-भक्ति की शृंखला कभी टूट नहीं सकती।'

इतना कह कर वह जय-भवानी की हुँकार भर कर युद्ध-क्षेत्र में मुगल सेना का संहार करने लगा। ('प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ', पृ० ३००)

'प्राचीर के पीछे' कहानी शेरशाह सूरी के जीवन की, उसके मुफलिसी जीवन की एक अजीब दास्तान है, जब वह अपनी सौतेली माँ के अत्याचारों से सहसराम में पड़ौसियों के यहाँ मारा-मारा घूमा करता था। उस वक्त उसके पड़ौसी करीम बख्श ने उसे छाती से लगा कर प्यार-दुलार दिया था और शेरशाह सूरी का नाम तब फरीद खाँ था, उसने करीम बख्श की बेटी नसीम से शादी करने का वायदा किया था। शेरशाह सूरी के बिहार-बंगाल जीतने के समय करीम बख्श एक दिन आधी रात को प्राचीर के पीछे उससे मिलने आया और उसने नसीम से शादी करने की बात कही। करीम बख्श की

गरीबी पर थू करके शेरशाह ने उसे प्राचीर के अन्धेरे में चुना दिया। इस सुन्दर कहानी के कहानीकार हैं श्री स्वरूप ढौंढियाल।

इस प्रकार 'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' कहानी-संग्रह में कई उच्चकोटि की कहानियाँ हैं, जो राजपूत-मुगल काल को चित्रित करती हैं। इन कहानियों पर टॉड के 'राजस्थान' की छाया झलकती है।

'राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान' कहानी-संग्रह में राजस्थान के पौराणिक-ऐतिहासिक उपाख्यानों का संग्रह है। इन उपाख्यानों को प्रो० कन्हैयालाल सहल ने सम्पादित किया है। पुस्तक का प्रकाशन १९४९ ई० में पिलानी (राजस्थान) से हुआ है।

'राजस्थानी बात संग्रह' के सम्पादक हैं डॉ० नारायणसिंह भाटी। इस संग्रह का प्रकाशन राजस्थान शोध-संस्थान, जोधपुर से हुआ है।

'भूले न भुलाये' कहानी-संग्रह के लेखक हैं श्री रामेश्वर टांटिया, जिसका प्रकाशन हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता से १९८४ ई० में हुआ है। इसकी भूमिका प्रो० कल्याणमल लोढ़ा ने लिखी है। श्री टांटिया उद्योग-व्यवसाय के साथ-साथ राजनीति से भी जुड़े थे, सांसद और सुलेखक थे। उनकी अन्य कृतियों का एक बड़ा संकलन 'रामकुमार टांटिया-समग्र' का प्रकाशन हिन्दी प्रचारक, काशी से १९९० ई० में हुआ है।

'राजस्थान की प्रेम-गाथाएँ' कहानी-संग्रह की लेखिका हैं श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत। इसका प्रकाशन आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली से १९८७ ई० में हुआ है।

'प्रभातियौ तारौ' (कहानी-संग्रह) इस कहानी-संग्रह में राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कथाकार डॉ० नृसिंग राजपुरोहित की कहानियों का संकलन है। ये कहानियाँ राजस्थानी भाषा में लिखी गई हैं। 'प्रभातियौ तारौ' का प्रकाशन नीलकण्ठ प्रकाशन, बाड़मेर (राजस्थान) से १९८३ ई० में हुआ है। डॉ० नृसिंग राजपुरोहित को 'प्रभातियौ तारौ' कहानी-संग्रह पर राजस्थान अकादमी तथा भारतीय भाषा परिषद, कलकत्ता की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

'प्रभातियौ तारौ' कहानी-संग्रह में राजा टोडरमल पर एक कहानी है, जिसमें टोडरमल का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

'बादशाह अकबर भणियौ कम पण गुणियो घणो। इण कारण गुणीजना रो पूरो पारखी। गुणारी कीमत करण वाळो। उनरे दरबार में विद्वानां अर गुणीजनां री ओपतौ आदर सममान। ए गुणीजन नव रतना रै नाम सूं विख्यात। आप-आप री विद्या में प्रवीण अर पारंगत। एक-एक सूं आगळा।

अकबर नै इणां माथै अणूँतो गुमेज। इण नव रतना में प्रमुख रतन टोडरमल। बादशाह अकबर रौ खास माणीतो आदमी। मूंछ रौ बाल। टोडरमल विद्या रौ सागर अर गुणा रौ निधान।' ('प्रभातियौ तारौ', पृ० १)

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की कहानी 'मंगलमुखी' 'प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' कहानी-संग्रह की प्रतिनिधि कहानी है। यह मेवाड़ के राणा हम्मीर के जीवन की घटना पर आधारित है। उस समय हम्मीर मेवाड़ का राणा जरूर था। किन्तु चित्तौड़ पर मालदेव का राज्य था। अलाउद्दीन ने चित्तौड़-विजय के बाद उसे मालदेव को दे दिया था। मालदेव अपनी पुत्री का विवाह हम्मीर से करना चाहता था। हम्मीर ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बाद में पता चला कि मालदेव की पुत्री विधवा है। तर्क-वितर्क के बाद मालदेव की विधवा पुत्री के साथ हम्मीर का विवाह हो गया और दो वर्ष बाद चित्तौड़ पर हम्मीर का अधिकार हो गया। चित्तौड़ जीत कर जब हम्मीर अपनी रानी के पास गया तो देखा रानी दीपक के क्षीण प्रकाश में उदास बैठी है, हम्मीर ने रानी से कहा—'राजकन्या ! आप कुलक्षणी नहीं, कुल-मर्यादा हैं। जो कहते हैं कि विधवा अमंगलकारी होती है, वे मिथ्या भाषण करते हैं। उसका मुँह देखना भी पाप होता है, यह भी झूठ है। देखो, आपको प्राप्त करने के पश्चात् मैं मेवाड़ का राणा बना हूँ।'

मंगलमुखी ने रोते-रोते हम्मीर के चरण पकड़ लिए। ('प्रतिनिधि ऐतिहासिक कहानियाँ' पृ० १६४)

'मंगलमुखी' कहानी में ऐतिहासिक घटना के साथ-साथ विधवा-विवाह समस्या पर भी लेखक ने अपने सुचिन्तित विचार पात्रों के मुख से कहलवाये हैं।

श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' ने राणा हम्मीर के जीवन पर 'खून का टीका' उपन्यास की रचना की है। यह उनका प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में और 'मंगलमुखी' कहानी में ऐतिहासिक तथ्य कुछ भिन्नता लिए हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक को अपनी ऐतिहासिक भूलों का बाद में पता चला और 'मंगलमुखी' कहानी में आपने इतिहास सम्मत घटनाओं का उल्लेख किया। वैसे 'हम्मीर' का चरित्र विविधताओं से भरा है और ऐसे चरित्र के चित्रण में 'उपन्यास' के कथानक और 'कहानी' के कथ्य में असमानता का आ जाना कोई अनोखी बात नहीं।

राजस्थान के कहानी लेखकों में श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' का नाम हिन्दी के विशिष्ट कहानी लेखकों में गिना जाता है। आपका जन्म सन् १९३२ में बीकानेर में

हुआ था। पाँचवें दशक में आप कलकत्ता प्रवास में थे। उन दिनों आपकी कहानियाँ 'रूपलेखा' मासिक (अब दैनिक) में छपती थीं। उस समय आप से 'रूपलेखा' सम्पादक श्री बी० एल० शाह के सलकिया (हवड़ा) स्थित निवास स्थान में अक्सर हमारी भेंट होती और राजस्थान की ऐतिहासिक कहानियों पर चर्चा होती। श्री चन्द्र ने सैंकड़ों कहानियाँ और एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे हैं। आपकी कृतियाँ राजस्थान के इतिहास को उजागर करने में सबल और सशक्त हैं। १९५८ ई० मे यादवेन्द्र की कहानियों का संग्रह 'नेत्रदान' नाम से दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इसमें आपकी ९ कहानियाँ हैं। 'इन्सान, भगवान और शैतान' कहानी में सम्राट अकबर पर व्यंग्य-विद्रूप है। कहानी मे कहा गया है—'सम्राट की देह इन्सान की है, बात भगवान की और विचार शैतान के।' ('नेत्रदान' कहानी-संग्रह, पृ० १९)

'वृद्धा भी कूद पड़ी' कहानी मे लेखक ने अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण की घटना का वर्णन किया है। कहानी इस प्रकार शुरू होती है—'चित्तौड़ की भूमि रक्तरंजित हो उठी, यवनों की सेना ने चित्तौड़ के चारों ओर भयंकर घेरा डाल रखा था।' युद्ध में भयंकर रक्तपात हुआ। राजपूत वीरों ने अपनी वीरता का परिचय दिया। रानी पद्मिनी ने अपनी सहेलियों के साथ जौहर-व्रत का पालन किया। विजय की खुशी में अलाउद्दीन ने गढ़ में प्रवेश किया। सिपहसालार ने निवेदन किया—'जहाँपनाह! चित्तौड़ की तमाम औरतें आग में कूद-मरी हैं। इन्सान का नाम तक नहीं है।'

'पद्मिनी भी ?' आँखें विस्फारित हो गईं खिलजी की।

'हाँ, सिर्फ एक औरत उस ज्वाला के समीप बैठी है—गुम-सुम! खिलजी उसके पास गया, वह बोली—'मैं चित्तौड़ की माँ हूँ। दिल्लीपति का इन्तजार कर रही थी। आज आया है रक्त-पिपासु। सौंदर्य के लिए इन्सानों की बलि देने वाला शैतान! वासना के पतनशील गर्त में मानवी भावनाओं को डुबाने वाला नीच।' पुनः वृद्धा बोली—'कल तू भी मरेगा, मृत्यु किसी से भी भाई-चारा नहीं करती·····' और वृद्धा ध्यानमग्न होकर भड़कती ज्वाला में कूद पड़ी। (वही, पृ० ५९) इस कहानी में लेखक ने अलाउद्दीन के अमानुषिक हिंसक कार्यों की तीव्र भर्त्सना की है।

१९६७ ई० यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र का दूसरा कहानी-संग्रह 'क्षणभर की दुल्हन' बीकानेर से प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी दस कहानियाँ हैं। इन ऐतिहासिक कहानियों के पूर्व 'चन्द्र' के दो ऐतिहासिक उपन्यास 'केसरिया पगड़ी' और 'खून का टीका' प्रकाशित हो चुके थे। इस संकलन की सभी कहानियाँ राजस्थान के इतिहास से

सम्बन्धित हैं। लेखक ने टॉड के 'राजस्थान' के अतिरिक्त राजस्थान के अन्य इतिहासकारों के इतिहास से कहानियों के कथानक लिए हैं।

'क्षणभर की दुल्हन' में वीर नारी कोड़मदे की कहानी है, जो शार्दूल सिंह से विवाह करने के बाद पति के साथ सती हुई। चिता में चढ़ने के पूर्व उसने अपने दोनों हाथों को कटवा कर एक अपने पिता के यहां तथा दूसरा ससुर के यहाँ भिजवाया।

मृत्यु के पूर्व कोड़मदे ने अपने एक हाथ को काट डाला। उसे शार्दूल के पिता रणंगदेव को देने हेतु उसने अपने विशेष सेवक से कहा—'यह मेरे ससुर को दे देना। उनसे प्रार्थना करना कि आपकी बहू कैसी थी, यह उसका हाथ ही बता देगा। ऐसी पुत्र-वधू के लिए आपका पुत्र वीर-गति को प्राप्त हुआ है।' और दूसरा हाथ उसने एक सैनिक से कटवा कर अपने पीहर यह कहते हुए पहुँचाने का आदेश दिया—'राव सा से कहना कि आपकी पुत्री ने अपने धर्म का पालन कर लिया।' और स्वयं सोलह शृङ्गार के साथ आग में बैठकर सती हो गई। (वही, पृ० ११२)

राजस्थान की लोक-कथाएँ

राजस्थान में लोक-कथाओं का अजस्र स्रोत है। वैसे तो लोक-कथाओं की जड़ें विश्व के समस्त देशों में पाई जाती हैं, किन्तु युगों से सामन्ती पंजे में जकड़े, किन्तु वीरत्व और शौर्य को जन्म देने वाले राजस्थान में इनका महत्व है। जाड़े की रातों में अंगीठी या अलाव जला कर लोग आतुरता से कहानी सुनने बैठ जाते हैं और बहुत रात गए तक कथा का क्रम जारी रहता है. इन कथा-कहानियों में लोक-जीवन की कथाएँ फूटती हैं। ऐसी ही लोक-कथाओं का संग्रह 'राजस्थानी लोक कथाएँ' नाम से बम्बई से प्रकाशित हुआ, जिसके रचयिता हैं श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला। श्री बिड़ला की 'राजस्थानी लोक-कथाएँ' का अंग्रेजी अनुवाद 'पापुलर टेल्स ऑफ राजस्थान', १९६७ ई० में बम्बई से प्रकाशित हुआ है। दूसरा चर्चित 'बहता पानी निर्मला' कहानी-संग्रह दिल्ली के सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित हुआ है। इन कथाओं के लेखक हैं उद्योगपति स्व० भागीरथ कानोड़िया।

१९७८ ई० में भारत के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं सुलेखक सेठ घनश्यामदास बिड़ला की पुस्तक 'बिखरे विचारों की भरोटी' का प्रकाशन सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली से हुआ। इस पुस्तक में घनश्यामदास जी के आत्म-कथात्मक संस्मरण तथा रेखाचित्र हैं। इन रेखाचित्रों को पढ़ने से हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के रेखाचित्र सामने उभर आते हैं।

श्री बिड़ला ने 'हीरा', 'नाहरसिंह' तथा 'बाबा खिचड़ीदास' पर रेखाचित्र लिखे हैं, जिनमें राजस्थान की वीरता, धीरता और सामाजिक परम्परा उजागर होती है। 'बिखरे विचारों की भरोटी' के पृष्ठ ६३ पर 'हीरा' का रेखाचित्र है। देखिए—

हीरा को अपने बाल्यकाल की कोई स्मृति नहीं थी, पर उसका खयाल था कि उसके माँ-बाप सम्वत १९०० के भयंकर दुर्भिक्ष में बिना अन्न के, भूख के मारे मर गए थे। सं० १९०० और १९०१ ये दोनों साल अत्यन्त दुर्भिक्ष के थे। सुना है, इन दोनों सालों में राजपूताना में लाखों मनुष्य बिना रोटी खाये कुत्ते की मौत मर गए। चूंकि ये दोनों दुर्भिक्ष एक के बाद एक सटे आये, इसलिए लोगों ने इनका नाम 'सैंया' और 'भैया' रखा। सम्वत १९०० के दुर्भिक्ष का नाम पड़ा 'सैंया' और १९०१ के दुर्भिक्ष का नाम 'भैया' पड़ा। इनकी भीषणता का खयाल दिलाने के लिए लोग आज भी गीतिका—'चाकी चाले रे सैया, माणस बोले रे भैया' गाते हैं अर्थात सैया और भैया की भीषणता के बाद 'चक्की चलती है या तो मनुष्य अब भी बोल रहे हैं।' ऐसा कथन भी आश्चर्यजनक माना जाता है। ('हीरा' पृ० ९३)

इस चित्रण मे राजस्थान के दुर्भिक्षों की भयानकता का पता चलता है। मरु-धरा (राजस्थान) हमेशा अकाल और दुर्भिक्ष से जूझता रहा है, उक्त विवरण इसका साक्षी है।

'हीरा के मन में एक तमन्ना थी। उस जमाने में चोर-धाड़ियों (डाकुओं) का खूब उपद्रव था। हीरा चाहता था उसकी धाड़ियों (डकैतों) से मुठभेड़ हो। हीरा का ऊँट तो हवा से बातें करनेवाला था ही। उसकी बन्दूक भी हाजिर जबाब थी। घोड़ा दबानें भर की देर कि निशाना सीधे लक्ष्य पर जा लगता। लोग कहते थे कि हीरा का शरीर चाहे छोटा हो, उसकी बन्दूक कभी धोखा नहीं देती।' (वही, पृ० ९७)

इस वर्णन से राजस्थान में उन दिनों चोर-बटमारों का कितना जोर था, इसका पता चलता है। राजस्थान में चोरों की एक जात ही बन गई, जिन्हें मीणा (चोर) कहते हैं। 'हीरा' के रेखाचित्र में हीरा की बहादुरी, दिलेरी और उसकी दानशीलता का सुन्दर वर्णन किया गया है पृष्ठ १०१ पर—

'क्या शान की जिन्दगी हीरा ने बसर की! हीरा का न कोई रासो है, न कोई महाभारत, पर हीरा का शौर्य किस वीर से कम रहा? अभिमन्यु की शोहरत इसलिए फैली कि वह अकेला व्यूह में घुस गया और वीरोचित मृत्यु का उसने आलिंगन किया। पर हीरा भी तो अकेला चौदह से लड़ा। यदि जीता नहीं तो उसमें हीरा का क्या दोष!

और दान भी तो कर्ण से क्या कम! कर्ण का महाभारत में बड़ा नाम है, और हीरा का कोई ग्रन्थ नहीं बना, इसी बुनियाद में हीरा परख में कम नहीं उतर सका। तीन बार हीरा ने अपना खजाना खाली कर दिया। यह उदारता कर्ण से किस बात में कम उतरती थी? और हीरा की वफादारी तो लाजवाब। बड़े-बड़े श्लोकों से भरे ग्रन्थों में चौंधिया जाने से यदि हम इन्कार करें तो मैं कहूँगा कि हीरा का शौर्य, उसकी दान-शूरता और उसकी वफादारी बेमिसाल चीजें हैं।

हीरा मर गया। उसकी छोटी-सी स्मृति हरयाणे जोहड़े (तालाब) में एक कुई (कुँआं) और एक कोठरी के रूप में आज भी खड़ी है। बड़े-बड़े स्मारकों के सामने यह तुच्छ यादगार नाचीज है, पर इसके पीछे जो शान है, उसकी भी तो कोई बकत है? यदि इस यादगार में जिन्दा जबान होती तो वह कह उठती—

यहाँ सोता है एक तुच्छ प्राणी,
जिसका शरीर था रूपे का,
जिसका सिर था सोने का,
और जिसका दिल था हीरे का।' (वही, पृ० १०२)

स्व० घनश्यामदास बिड़ला ने 'हीरा' की रचना जनवरी, १६४१ ई० में की थी।

इसी प्रकार 'नाहरसिंह' में एक राजपूत के जीवन का रेखाचित्र है तो 'बाबा खिचड़ीदास' में एक अजीब घटना का।

हमने यथासाध्य, पाठकों के समक्ष हिन्दी-राजस्थानी भाषा में 'राजस्थान' पर रचित कहानियों की बानगी प्रस्तुत की है। सम्भव है अच्छी रचनाएँ छूट गई हों।

निष्कर्ष : स्थापना

निष्कर्ष

हमने 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' के प्रथम-खण्ड के दो अध्यायों यथा 'इतिहास का गवाक्ष' एवं 'बंगला-काव्यों में राजस्थान' के द्वारा यह दर्शाया है कि १९वीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण में टॉड के 'राजस्थान' का बंगला-साहित्य पर किन कारणों से तथा कितने विस्तार से प्रभाव पड़ा। हमने यह भी दिखाने की चेष्टा की है कि महामना कर्नल जेम्स टॉड कृत 'एनाल्स एण्ड एन्टीक्यूटीज ऑफ राजस्थान' ग्रन्थ का प्रभाव न केवल बंगला-साहित्य पर पड़ा, अपितु भारत की समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं का साहित्य टॉड के 'राजस्थान' से अनुप्रेरित और उर्ध्व-सित हुआ। साहित्यिक दृष्टि से १९वीं सदी के भारतीय पुनर्जागरण की यह सबसे बड़ी विशेषता है और उसमें 'राजस्थान' ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

बंगाल के क्रान्तिकारी कवि रंगलाल की काव्य-कृति 'पद्मिनी उपाख्यान' आधुनिक बंगला-साहित्य की प्रथम काव्य-रचना है, जो 'राजस्थान' की उपकथा पर आधारित है। इस काव्य में १८५७ ई० की आजादी की गूंज रंगलाल की इन पंक्तियों में अनुगुंजित होती है—'स्वाधीनता, हीनताय के बांचिते चाय हे, के बांचिते चाय ?' अर्थात स्वाधीनता के अभाव में कौन जीना चाहेगा और पराधीनता की नागपाश अपने पैरों में कौन पहनना चाहेगा ? कवि रंगलाल बन्दोपाध्याय के बाद तो बंगला-साहित्य के रचनाकार 'राजस्थान' से वीर-चरित्रों की कथाएँ लेकर साहित्य भण्डार को भरने लगे और देश की आजादी की लड़ाई को ऊर्जा देने लगे।

हमने बंगला-साहित्य की सभी विधाओं पर 'राजस्थान' के प्रभाव को दर्शाने की विनम्र चेष्टा की है। साहित्य की मुख्य विधाएँ हैं—काव्य, नाटक, उपन्यास, गल्प इतिहास। अतः हमने 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' ग्रन्थ के दो खण्डों में इन साहित्य-विधाओं की रचनाओं पर अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'बंगला-साहित्य में राजस्थान' के प्रथम-खण्ड में दो अध्याय समाविष्ट हैं तथा प्रस्तुत द्वितीय-खण्ड में तीन अध्याय हैं, यथा—'बंगला-नाटकों में राजस्थान', 'बंगला-उपन्यासों में राज-स्थान' एवं 'बंगला-कहानियों में राजस्थान।' इन अध्यायों में हमने बंगला की कृतियों के साथ-साथ हिन्दी और राजस्थानी भाषा की रचनाओं का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। शायद इस प्रकार का अध्ययन हिन्दी-साहित्य में प्रथम है, जिसके लिए हमें प्रथम-खण्ड के प्रकाशन के पश्चात विद्वानों का आशीर्वचन और उत्साह-वर्द्धक सहयोग मिला है।

स्थापना

जिस प्रकार रंगलाल की काव्य-कृति 'पद्मिनी उपाख्यान' आधुनिक बंगला-साहित्य की प्रथम काव्य-रचना है। वैसे ही बंगला-साहित्य के प्रख्यात कवि-नाटककार

माइकेल मधुसूदन दत्त की दुखान्त नाट्यकृति 'कृष्णकुमारी' आधुनिक बंगला-साहित्य की ही प्रथम ट्रेजडी नहीं है, बल्कि वह सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की प्रथम दुखान्त नाट्य-रचना है, जो 'राजस्थान' की उपकथा पर आधारित है। इसी भाँति ऋषि बंकिमचन्द्र चटर्जी की औपन्यासिक कृति 'राजसिंह' आधुनिक बंगला-साहित्य के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का गौरव प्राप्त करने वाली रचना है। हमने अपने अध्ययन में यह स्थापित करने की चेष्टा की है कि आधुनिक बंगला-साहित्य टॉड के 'राजस्थान' से अनेक दृष्टियों से समृद्ध हुआ है, जिसका पुष्ट प्रमाण है रंगलाल की प्रथम काव्य कृति 'पद्मिनी उपाख्यान' (१८५८ ई०), माइकेल का प्रथम दुखान्त नाटक 'कृष्णकुमारी' (१८६० ई०) और बंकिम का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'राजसिंह' (१८८२ ई०)। हमने अपनी स्थापना बंगला-साहित्य के इतिहासकारों, आलोचकों तथा रचनाकारों की पुस्तक-भूमिकाओं को साक्ष्य में रख कर की है।

चूँकि बंगाल में ही आधुनिक शिक्षा-पद्धति का सबसे पहले प्रचार-प्रसार हुआ और अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के साथ-साथ पश्चिम की विचार-धारा का प्रवेश हुआ। फलस्वरूप आधुनिक भारतीय-साहित्य अंग्रेजी-साहित्य और पश्चिम की मनीषा से उद्बुद्ध हुआ। पश्चिम के विद्वान हमारे प्राचीन साहित्य से प्रभावित हुए। उन्होंने हमारे प्राचीन साहित्य और मेधा की उच्च कण्ठ से प्रशंसा की और हम पश्चिम के आधुनिक साहित्य से अभिभूत हुए। इसका फल हुआ भारतीय पुनर्जागरण। फलतः सर्व प्रथम बंगला-साहित्य में आधुनिक साहित्यिक विधाओं पर रचना-प्रक्रिया शुरू हुई और तदन्तर हिन्दी, राजस्थानी एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं में रचना-प्रणयन का कार्य आरम्भ हुआ। चूँकि बंगला-साहित्य सबसे पहले टॉड के 'राजस्थान' से प्रभावित हुआ। अतः बंगला-साहित्य मे 'राजस्थान' की उपकथाओं पर साहित्य सृजन हुआ। इन रचनाओं का भारतीय भाषाओं पर प्रभाव पड़ा। सर्वप्रथम बंगला की कालजयी रचनाओं का हिन्दी-राजस्थानी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ और तत्पश्चात इन भाषाओं में मौलिक रचनाएँ प्रणीत होने लगीं। इसी तथ्य को हमने अपने अध्ययन मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है और दिखाया है कि बंगला-साहित्य की रचनाओं का आरम्भिक युग में अनुवाद हुआ और फिर बहल्ले से मौलिक रचनाएँ लिखी जाने लगीं।

हमारा यह शोध-कार्य प्रथम और अन्तिम नहीं है। हमने तो सिर्फ बंगला-हिन्दी-राजस्थानी का सम्बन्ध-सेतु बनाकर देश की भावनात्मक एकता को सुदृढ़ करने का एक विनम्र प्रयास किया है। हमारे पश्चात इस मार्ग को पुख्ता और प्रशस्त करने के लिए अनुसन्धानकर्त्ता विद्वान सामने आयेंगे।

('बंगला-साहित्य में राजस्थान' के प्रथम-खण्ड में भी पृ० ३१६ पर हमने 'निष्कर्ष और स्थापना' शीर्षक से अपना मन्तव्य प्रेषित किया है।)

★

बंगला-साहित्य में राजस्थान

(द्वितीय खण्ड)

अनुक्रमणिका

ग्रन्थ

★

ग्रन्थकार

अनुक्रमणिका : ग्रन्थ

इ

उ

ए

ऐ

ओ

औ

अं

क

ख

ग

ध

न

प

स

ह

क्ष

अनुक्रमणिका : ग्रन्थकार

ल

व

श

स

ह

क्ष

ज्ञ

श

'बंगला-साहित्य में राजस्थान' शोध-ग्रन्थ पर विद्वानों की सम्मतियाँ

'बंगला-साहित्य में राजस्थान' शोध-प्रबन्ध से मैं अभिभूत हो गया। प्रो० शिवकुमार ने एक मौलिक शोध-प्रबन्ध हिन्दी को दिया है। इस महत रचना से एक नई रोशनी हिन्दी को मिली है। हिन्दी-साहित्य के भाण्डार को विद्वान लेखक ने समृद्ध किया है। इस महत्वपूर्ण शोध-कृति के लिए शोधकर्त्ता की जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम है।

प्रो० शिवकुमार भारतीय वाङ्मय के पण्डित, विद्वान, रचनाकार, साहित्यकार, चिन्तक, विवेचक और समीक्षक भी हैं। इस ग्रन्थ को लिख कर उन्होंने अपने आचार्यत्व को सिद्ध कर दिया है। पुस्तक के 'आत्मनेपद' से इसकी पुष्टि होती है। अतएव, अब उन्हें आचार्य शिवकुमार कहना सर्वथा उचित प्रतीत होता है। शिवकुमार जी को मैं गत चार दशकों से जानता रहा हूँ। इसलिए उनके 'आत्मनेपद' का मैं गवाह भी हो सकता हूँ। मैं यह भी दावा कर सकता हूँ कि वे राजस्थान के सम्बन्ध में कुछ भी लिखने के दावेदार है, अधिकारी विद्वान हैं। वैसे वे राजस्थान के मूल निवासी हैं।

आचार्य शिवकुमार जी ने आलोच्य ग्रन्थ को शोध-प्रबन्ध के रूप में लिखने की तैयारी की, जिसका व्यापक विवरण उन्होंने 'आत्मनेपद' में दिया है। शोध की दृष्टि से यह विषय बड़ा व्यापक हो गया है। पुस्तक के उप-शीर्षक में भी इसका उल्लेख किया गया है—'१९वीं सदी के नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में टॉड के 'राजस्थान' का बंगला, हिन्दी तथा राजस्थानी पर प्रभाव'।

अपने शोध-प्रबन्ध में आचार्य शिवकुमार ने अन्वेषण किया है, वह प्रशंसनीय है। जिस पाण्डित्य और परिश्रम का परिचय इस शोध-ग्रन्थ में किया गया है, उस पर पी० एच० डी० ही नहीं डी० लिट् से भी ऊँची उपाधि दी जा सकती है। आचार्य शिवकुमार की यह रचना हिन्दी-साहित्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसका आदर हिन्दी संसार करेगा।

मेरी ऐसी कामना है कि प्रो० शिवकुमार इसी प्रकार के मौलिक शोध-कार्य द्वारा हिन्दी का भाण्डार भरने में सक्षम हों।

भागलपुर
२४-१०-८९

प्रोफेसर डॉ० विष्णुकिशोर झा 'बेचन'
प्रति उपकुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय